तिरुपति श्रीवेङ्कटेश्वर

(तिरुपति बालाजी)

हिन्दी अनुवाद

प्रो. यद्दनपूडि वेङ्कटरमण राव

प्रो. गोपाल शर्मा

अंग्रेजी मूल

श्री साधु सुब्रह्मण्य शास्त्री

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्

तिरुपति

2019

TIRUPATI SRI VENKATESWARA
(TIRUPATI BALAJI)

Hindi Translation
Prof. Yaddanapudi Venkataramana Rao
Prof. Gopal Sharma

English Original
Sri Sadhu Subrahmanya Sastry

T.T.D. Religious Publications Series No.1286
©All Rights Reserved

First Edition - 2019

Copies : 500

Published by
Sri Anil Kumar Singhal, I.A.S.,
Executive Officer,
Tirumala Tirupati Devasthanams,
Tirupati.

D.T.P:
Office of the Publications Division
T.T.D, Tirupati.

Printed at :
Tirumala Tirupati Devasthanams Press
Tirupati

प्राक्कथन

हमारे मंदिर हजारों वर्षों से पवित्रता की संस्थाएँ बनी हुई हैं। वे मात्र धार्मिक संस्थाएँ नहीं रहीं, बल्कि विद्या, सामाजिक एवं मनोरंजन के केन्द्र भी रहे हैं। मंदिर के दीवारों पर उत्कीर्णित अभिलेख, प्रजा के धार्मिक व सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालते हैं। हमारे मंदिरों को आध्यात्मिक ऊर्जस्विता से संपन्न व दुराक्रम्य दुर्ग के समान बनाने में न हमारे इस भू के संरक्षकों का हाथ रहा और न ही इन मंदिरों की भव्यता का हस्त रहा है, बल्कि वह हमारे दृढ़ निश्चयी सेना रूपी स्त्री-पुरुषों की अटल भक्ति ही रही है। इन स्थानों में देवता मूर्तियाँ पवित्र बनीं, और इसीलिए वे वहीं रहकर इनके जीवन में शाश्वत विकीर्णक की भाँति उपस्थित रह गईं। उनके कृपा-कटाक्ष प्राप्ति की प्रतीक्षा ने प्रजा के जीवन पथ को प्रशस्त बनाया।

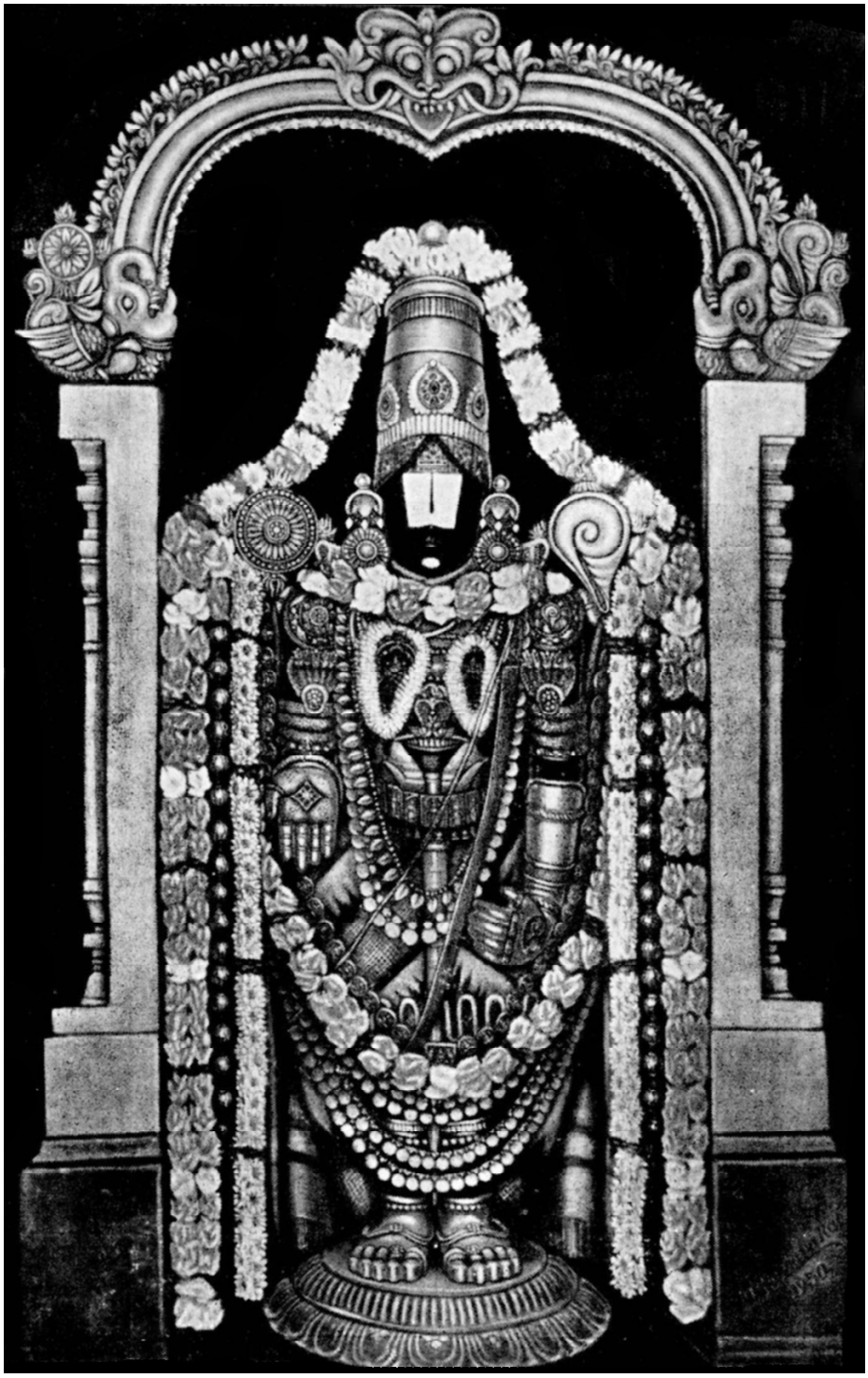
जितने मंदिर भगवान श्रीमन् नारायण के नाम से हैं; उनमें हमारे भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर का मंदिर हमारे अध्यात्मिक लोकाचार का प्रतीक बनकर दिखाई देता है। इसलिए भगवान वेङ्कटेश्वर भारत देश के करोडों भक्तों के हृदय में पैठ गए। इस मंदिर का प्रादुर्भाव, इतिहास लेखन से पूर्व ही हुआ था, इसकी अनुश्रुति तथा उत्कीर्णन संबंधी प्रमाण इस मंदिर की वृद्धि तथा विकसन के समाचार प्रस्तुत करते हैं।

आपके सामने प्रस्तुत 'तिरुपति श्रीवेङ्कटेश्वर' ग्रंथ, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के पुरालेखविद् स्व. श्री साधु सुब्रह्मण्य शास्त्री के द्वारा लिखा गया है, जिसे प्रथमतः 1981 में ति.ति.दे. ने प्रकाशित किया था। यह ग्रंथ मंदिर के इतिहास के साथ-साथ, मंदिर की पूजापद्धति संबंधी पहलुओं का विस्तृत विवरण तथा वराह एवं भविष्योत्तर पुराणों के उद्धरण भी प्रस्तुत करता है। यह ग्रंथ मंदिर की वास्तुकला, समर्थ सत्ताधिकारी प्रशासकों के पालन का जीवंत रूप विस्तार से प्रकाश में लाता है। लेखक ने अनेकानेक संगीतज्ञों, कवियों तथा लेखकों का व्यापक ब्यौरा प्रस्तुत किया जिन्होंने अपनी पदावली के द्वारा भगवान श्रीनिवास के अमित वैभव को चिरस्मरणीय बना दिया।

'तिरुपति श्रीवेङ्कटेश्वर', को प्रकाशित करते हुए हमें परम हर्ष हो रहा है क्योंकि इस ग्रंथ को अनिवार्य रूप से हर एक भक्त को अपने पास रखना है।

सदा श्रीहरि की सेवा में,

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्,
तिरुपति





निवेदन

प्लुटार्च के 'लाइफ आफ जूलियस सीजर' का अंग्रेजी अनुवाद सर थामस नार्थ ने किया है। वही शेक्सपियर के लिए 'जूलियस सीजर' नाटक का आधार बना था। लेकिन प्रथम अनुवाद कृति मुझे नहीं मिली। मैं ने रेवेरेंड लांग हार्न द्वारा किये गये प्लुटार्च के अनुवाद के बारे में ''पीपुल्स बुक'' सीरिज में पढा है। उसमें कहा गया है कि सीजर को कोषाध्यक्ष (Quaestor) के रूप में स्पेइन भेजा गया था। उस समय उनकी उम्र 30 वर्ष की थी। उनका जन्म ई. पू. 103 में हुआ था। उस समय वे कॉडिज गये। वहाँ के हेर्कुलिस मंदिर में उन्होंने अलेक्जांडर की मूर्ति देखी। अलेक्जांडर की भारत तक की विश्व विजय परंपरा को उस समय तक पूरा विश्व जान चुका था। उस वक्त अलेक्जांडर की उम्र 30 वर्ष की ही थी। इस बात ने जूल्यिस सीजर में एक प्रकार की चिंता जागृत की और वे व्यथित भी हुए। रो पडे। उस वक्त सीजर के साथ उनके दोस्त और कुछ सहचर वहाँ थे। वे आश्चर्यचकित हो गये। उस समय जूलियस सीजर ने उनसे कहा - ''क्या आप समझते हैं कि मेरे रोने का कोई अर्थ नहीं है? जब अलेक्जांडर विश्व विजयी हुए थे तब वे 30 वर्ष के भी नहीं थे। वे समस्त विश्व को जीत गये और उनकी मृत्यु भी हो गयी। वे अपने पीछे कुछ अपनी ख्याति भी छोड गये। मैं अपने जीवन का 30 वाँ वर्ष बिता रहा हूँ। मैं ने आज तक अपने पीछे अपने नाम को याद रखने लायक कुछ भी नहीं किया। इसी बात ने मुझे रुला दिया है। इसी कारण मैं अब आँसू गिरा रहा हूँ।''

जूल्यिस सीजर के जीवन की इस घटना ने मुझे प्रेरित किया। मेरी आँखों से भी आँसू टपकीं। उस समय मेरी उम्र 30 वर्ष की भी नहीं थी। यह सोच भी नहीं पा रहा था कि मुझे भी अपने जीवन काल में कुछ सार्थक कार्य संपन्न करने का मौका मिलेगा। अपने साधारण मानव जीवन काल में, चाहे उस समय सीजर 30 वर्ष के भी नहीं थे उन्होंने आँसू बहाया था, अलेक्जांडर तुल्य यश प्राप्त किया है। उनकी साहस पूर्ण उपलब्धियाँ इस के साक्षी हैं। इसके बाद जब कभी मेरे विचारों के सामने जूलियस सीजर उभरे मेरी आखें आँसू से भर जाती थीं।

महाकवि मिल्टन ने ''आज मैं ट्वंटीथर्ड इयर'' शीर्षक से एक सानेट अपने चौबीसवें जन्मदिन के अवसर पर लिखी थी। वह दिन 9 दिसंबर, 1632 का दिन था। उसमें उन्होंने कहा है कि 'मैं पुरुषत्व प्राप्ति के समय के पास तक पहुँच गया हूँ।' लेकिन अभी अभी नव युवक ही लग रहे थे। वह समय उनके जीवन काल की वसन्त ऋतु ही था। उस समय की सोच ने उन्हें जागरूक बनाया। परन्तु अपने कुछ सम वयस्कों ने जो कुछ प्राप्त किया था उसके सम भी वे प्राप्त नहीं कर सके थे। फिर वे अपनी अंतः चेतना में पहुँच गये। मस्तिष्क की परिपक्वता तक पहुँच नहीं पाये थे जो उनके समकालीनों में थी। लेकिन वे अपने ही समय के इंतजार में रहे। सोचने लगे कि चाहे ज्यादा हो कम जो आगे जहाँ तक

समय ले जाएगा वहाँ तक मैं समय के साथ चलूँगा। वही मुझे 'स्वर्ग का रास्ता दिखाएगा'। बस, वे जो चाहते थे वही हुआ और वही मिला। अपने सामने आये सुअवसरों का भगवान की कृपा पर विश्वास रखकर सदुपयोग किया। उन्होंने समझा कि मैं अपने महानिर्णायक सत्ता के अधीन हूँ।

उन्होंने अपने समय के अधीन ही रहना चाहा। मिल्टन की इच्छा थी कि मैं अच्छे इतिवृत्त को लेकर कुछ अच्छा ही लिखूँ। कुछ विषय चुनकर कलम चलाना चाहा। कुछ समय बाद राजा आर्थर और उनके दरबारी ''नैट्स'' पर लिखने का प्रयत्न किया। यह विषय वस्तु उनकी प्रेमगाथाओं से संबन्धित इतिवृत्तों से भरा था। परन्तु मिल्टन प्यूरिटन थे। उन्हें कार्य जचा नहीं। अन्ततोगत्वा वे बाइबिल की वस्तु की ओर आकर्षित हुए और कार्य संपन्न भी किया। परिणाम ही उनका ''पारडैज़ लास्ट'' है। उनके लिए आनंद दायक वृत्त था। पूरा किया और अपना मान्य मंजिल भी प्राप्त किया।

उपर्युक्त विशिष्ट व्यक्तियों के जीवनों से मुझे भी प्रेरणा मिलती रही। मेरे मन और मस्तिष्क में कुछ करने की इच्छा जागृत हुई। कुछ सार्थक काम करने का मन हुआ। लेकिन मैं अपना भविष्य नहीं जानता था। परन्तु उत्कट इच्छा मेरे में थी और मैं उसी से चालित था।

सन् 1919 के मई महीने में तिरुमल - तिरुपति देवस्थानम् के ''विचारणकर्ता'' श्री महंत प्रयागदास जी द्वारा, भगवान की सेवा में मेरी नियुक्ति की गई थी। तब से लेकर लगभग 25 वर्ष पर्यन्त श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की सेवा में ही मैं ने अपने को अर्पित किया। मेरे हृदय में भक्ति, विश्वास, तत्परता और ईमानदारी ही रहे थे। मैं ने अपने प्रशासनिक कार्यों का निर्वाह इन्हीं भावों से युक्त होकर संभाला है।

सन् 1921 में श्री हेच. कृष्णशास्त्री, सरकारी एपिग्राफिस्ट, डॉ. यफ्.डब्ल्यू. थामस, इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन, के साथ तिरुमल आये थे। श्री महंन्त जी ने देवस्थानम् के दिवान पेशकार श्री सी.दोरस्वामय्या, बी.ए.बी.एल्. को आदेश दिया कि वे तथा श्री कृष्ण शास्त्री मिलकर, श्रीवेङ्कटस्वामी और श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिरों के दीवारों पर लिखित शिलालेखों की प्रतिलिपि तैयार कराने के लिए पुरालेखशास्त्री (एपिग्राफिस्ट) को अपने यहाँ से प्रतिनियुक्त (डिप्यूट) करने के संबन्ध में उनकी इच्छा प्रतिनिवेदित करें। श्री दोरस्वामय्या के निवेदन पर श्रीकृष्ण शास्त्री ने कहा कि मैं हमारे यहाँ के असिस्टेंट आर्कियलॉजिकल सूपरिटेंडेंट से पूछकर उनकी सलाह के अनुसार लूँगा। अपना निर्णय श्री महन्त जी को अवश्य सूचित करूँगा। ''श्रीकृष्ण शास्त्री ने अपने वादे के अनुसार किया। श्री महंत जी को सूचित किया कि सूपरिंटेंडेंट का विचार है कि अपने यहाँ के काम से निपटने के लिए भी आवश्यक संख्या में लोग नहीं हैं। क्योंकि उनका कार्यक्षेत्र समूचा दक्षिण भारत है। इसलिए अपने यहाँ से किसी

को प्रतिनियुक्त नहीं कर पायेंगे। लेकिन उनकी ओर से एक सलाह अवश्य मिली। उसके अनुसार देवस्थानम् अगर किसी को चुनकर उनके पास भेजेगी, तो वे अवश्य उस व्यक्ति को आवश्यक प्रशिक्षण दिलायेंगे। ऐसे व्यक्ति को प्रशिक्षण देने के लिए छः महीने का समय भी लग सकता है। प्रशिक्षण प्राप्त कर वह अवश्य देवस्थानम् का कार्य संपन्न कर पायेगा।''

श्री महंत जी और श्री दोरस्वामय्या दोनों ने आपस में विचार - विमर्श किया। देवस्थानम् की ओर से किसी को चुनकर मद्रास भेजने का निर्णय लिया। उस समय एपिग्राफिकल सर्वे ऑफिस मद्रास (चेन्नै) में था। उस समय मैं श्री महंत जी का निजी सहायक (परसनल असिस्टेण्ट) था। जब विचार - विमर्श चल रहा था, तब मैं भी उनके साथ था। श्री दोरस्वामय्या ने मेरा नाम प्रस्तावित किया। श्री महंत जी ने मुझसे पूछा कि 'क्या तुम प्रशिक्षण लेने जाओगे'। बिना सोचे - विचारे, मैं ने 'हाँ' कह दिया। यह मेरे लिए बहुत अच्छा अवसर था। मूल्यवान और विद्वत्तापूर्ण कार्य साधने की दिशा में प्रशिक्षण प्राप्त करने के अवसर को मैं खोना नहीं चाहता था। उस प्रकार के दायित्व को स्वीकार करने की मानसिकता अपने अध्ययन काल में ही मेरी बन चुकी थी। श्री महंत और श्री दोरस्वामय्या, दोनों, मेरे निर्णय से खुश हुए। मद्रास के एपिग्राफिकल सूपरिंटेंडेंट को मेरा नाम सूचित किया गया। उन्होंने मद्रास सरकार से आवश्यक अनुमति प्राप्त की। जी.ओ.नं. 610 (फाइनान्स), 14 जून 1921 के द्वारा मुझे अनुमति की सूचना मिली। अगस्त 1921 में मैं ने प्रशिक्षणार्थ चेन्नै के कीलपाक प्रान्त में स्थित ऑफिस में प्रवेश किया। कुछ विशेषज्ञों के साथ तंजाऊर गया। वहाँ पहुँचकर प्रायोगिक कार्य सीखा। क्षेत्र कार्य करने मैं ने तंजाऊर, तिरुचिनापल्लि, मदुरै, डेंदुलूरु, एल्लूर, विजयवाड़ा, नेल्लूरु, श्रीकालहस्ति आदि प्रान्तों में भ्रमण किया। फरवरी 1922 को प्रशिक्षण लेकर फिर मैं तिरुपति देवस्थानम् में कार्यरत हुआ।

तत्पश्चात् मैंने श्रीवङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिरों की दीवारों पर लिखित शिलालेखों की प्रतिलिपियाँ तैयार करना आरंभ किया। इस कार्य में मुझे पंडित वी.विजयराघवाचार्य, श्री आर.कृष्णा राव का सहयोग मिला। श्री कृष्णा राव तिरुपति देवस्थानम् हाई स्कूल में अध्यापक थे।

शिलालेखों के प्रतिलिपीकरण के साथ साथ ताम्र-पत्रों में लिखित संकीर्तनकार अन्नमाचार्य के गीतों की भी प्रतिलिपियाँ बनायीं। उसी क्रम में चिन्न तिरुमलाचार्य (अन्नमाचार्य के पौत्र) तथा पेद्द तिरुमलाचार्य (अन्नमाचार्य के पुत्र) की रचनाओं का भी प्रतिलिपीकरण किया। मूल रचनाएँ ताम्र - पत्रों और ताड पत्रों में थीं। उनको कागजों पर उतारा गया। उनसे कुछ रचनाओं का चयन कर मैं ने एक संग्रह पुस्तकाकार में प्रकाशित करवाया। 'आध्यात्म संकीर्तनलु' और 'श्रृंगार संकीर्तनलु' इसी प्रकार के अन्य दो रचना - संग्रह थे। मेरे अनुरोध पर श्री कलाबरी वेङ्कटरमण कवि, तेलुगु पंडित, देवस्थानम् हाई स्कूल, ने इनकी अधो सूचिकाएँ (फुटनोट्स) बनायी हैं। इनके बाद और तीन पुस्तकें प्रकाशित की गयीं।

सन् 1930 में हमारा एपिग्राफिकल ऑफिस मद्रास को स्थानांतरित किया गया। हम अपने साथ तीन संदूकों के अभिलेख ले गये। अपने आंडरसन स्ट्रीट में स्थित ऑफिस में उनको रखा। 1931 - 32 में भगवान के लिए मणि-खचित किरीट की तैयारी के समय मुझे मद्रास में प्रतिनियुक्त (डिप्यूट) किया गया। मेरा काम कार्यनिरीक्षण था। स्वर्ण किरीट बनवाने के लिए गद्वाल संस्थानम् की रानी आदि लक्ष्मीदेवम्मा ने सोने को भेंट दिया थ। मेरे स्थानांतरण के पश्चात् पंडित विजयराघवाचार्य जी ने 'एपिग्राफिकल' कार्य को अकेले ही संभाला।

श्री महंत जी के हाथों से तिरुपति देवस्थानम् की व्यवस्था समय के साथ मद्रास सरकार के पर्यवेक्षण में आ गयी। मद्रास सरकार ने एक कमेटी बनायी। उस कमेटी के द्वितीय कमीशनर श्री ए. रंगनाथ मुदलियार के समय देवस्थानम् मुद्रणालय ऑफिस (प्रेस ऑफिस) चेन्नै के आंडरसन स्ट्रीट से थियोसोफिकल सोसाइटी की बिल्डिंग में गयी। सही मूल्य पहचानने में असमर्थ मैनेजर पंडित विजयराघवाचार्य ने कुछ वर्षों बाद हमें सूचना दी कि संकीर्तनों की प्रतिलिपियों को अनुपयुक्त मानकर सबको जलवा दिया तथा खाली संदूकें नये प्रांगण में भिजवायीं।

पंडित जी और मेरे द्वारा प्रतिलिपि किये गये शिलालेख लगभग 1150 थे। ये दो मंदिरों से संबन्धित ही थे। उन शिलालेखों से और अन्य स्रोतों से प्राप्त आधारों से मैं ने देवस्थानम् का एफिग्राफिकल प्रतिवेदन तैयार किया। इसमें विजयनगर सम्राट श्रीकृष्णदेव राय से संबन्धित, उनके सेना - अभियानों से संबन्धित, उनके दरबार में कार्यरत अधिकारियों से संबन्धित, तथा ताल्लपाक परिवार के संगीतकारों से संबन्धित विवरण हैं। प्रथम दो खण्डों (जिल्दों) का अनुवाद भी प्रस्तुत किया। इनमें प्रथम में पल्लव राजाओं और पल्लव शिलालेखों का, चोळ तथा पांड्य शिलालेखों का, तेलुगु पल्लव और यादव राजाओं का परिचय मिलता है। कुछ अप्रधान प्रान्तीय शासकों का, देवगिरि के यादवों का, भी उल्लेख किया गया है।

मैं ने अपनी सेवानिवृत्ति से पहले एक शोध निबन्ध भी प्रस्तुत किया था। उसमें अनेक राजवंशों से संबन्धित समाचार शिलालेखों के आधार पर संगृहीत किया गया है। ''ईदिर अंदु'' (Edir Andu) के बारे में चर्चा की है। मुझसे तैयार किये गये ''एपिग्राफिकल'' कार्य की प्रशंसा विद्वानों द्वारा की गयी थी।

सन् 1969 में मैं ने ''तिरुपति वेङ्कटेश्वर'' पर कार्य का आरंभ किया और उसे 1971 तक पूरा किया। किये गये कार्य का परिष्करण 1975 तक चलता रहा। 1973 में मैं ने अपने कार्य को कांची के श्री चंद्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी के सामने रखा। उन्होंने प्रो. के.एकांबरम् के द्वारा कुछ परिष्कारोपयुक्त सूचना दिलवायी। स्वामी ने उनके द्वारा मेरी पुस्तक के विषय को जाना। वहाँ से यह पुस्तक मुझे 31-5-1974 को मिली।

मैं ने कांची शंकर पीठ के परमाचार्य से आशीर्वाद पाकर श्री वेंकटेश्वर के पदकमलों पर पुस्तक अर्पित की हैं। आशा से अधिक विश्वास है कि यह पुस्तक भक्तों और विद्वानों से समान रूप से समादृत होगी। इस कार्य के पीछे जिन लोगों और विद्वानों की सहायता मिली, उन सब को मेरी कृतज्ञताएँ।

इस संदर्भ में स्मरणीय हैं शिरोमणि सुस्वरम् गोपालकृष्णाचार्य, विश्रांत पंडित। वे प्रमुख भी हैं जिन्होंने मेरे साथ बैठकर बहुत पढा है। इसमें श्रीवेंकटाचल माहात्म्यम् उल्लेखनीय है। उनके पुराण आदि का अध्ययन कर मुझे उनके उपाख्यानों को समझने में सहायता भी की है। मेरे पारिवारिक बन्धु शिरोमणि वट्टिपल्ले बालकृष्ण शास्त्री विद्वान भी एक महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं। वे श्री नटकंठीरव शास्त्रुलु के पौत्र हैं। आपने मुझे पद्मपुराण समझाया है। वे अवकाशप्राप्त सीनियर तेलुगु पंडित थे। श्री पार्थसारथी अय्यंगार, विश्रांत वैखानस पंडित, ने श्रीवराह पुराण समझाकर मेरी सहायता की है। श्री कृष्णा रेड्डी, उपाचार्य, यस.वी. हाई-स्कूल, तिरुमल, ने पुस्तक प्रकाशन में मेरी उल्लेखनीय सहायता की है। वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। श्री कामिसेट्टि श्रीनिवासुलु सेट्टि, एस.वी.आर्ट्स कॉलेज के तेलुगु लेक्चेरर ने पुस्तक प्रकाशन में मुझे सहयोग दिया है। वे भी साधुवाद के योग्य हैं।

पुस्तक के प्रकाशन के लिए तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के कार्यनिर्वहण अधिकारी और अन्य अधिकारियों को धन्यवाद!

सस्नेहमय आपका

Subrahmanyasastry.

साधु सुब्रह्मण्य शास्त्री

सहमतियाँ और पुनरवलोकन

I दिनांक 09-03-1926 का डॉ.यस. कृष्णस्वामी अय्यंगार का पत्रः

''मैं ने अभी अभी उसका [अभिलेखों पर प्रतिनिवेदन का] आनंदातिरेक से अनुशीलन किया है - - - मेरे विचार से आपने प्राथमिक प्रतिवेदन के संदर्भ में उपयुक्त पद्धति का अनुसरण किया है। निश्चयात्मक रूप से अभिलेखों से संबन्धित प्रतिवेदन रोचक एवं समग्र सूचनाएँ उपलब्ध कराता है।''

II विजयनगरम् कॉलेज के प्रिन्सिपल आचार्य के.आर. सुब्रह्मण्यन द्वारा ''द हिन्दू'' नामक दैनिक पत्रिका में दिनांक 28-08-1933 को प्रकाशित पुनरवलोकन (रिव्यू) -

''श्री शास्त्री जी ने ऐसा श्रमसाध्य एवं उपयोगी कार्य किया है जिससे उनकी ख्याति एक जागरूक पुराशास्त्रज्ञ तथा सहज इतिहासज्ञ के रूप में व्याप्त होगी। उनके सामने जो महत् कार्य रखा गया था वह सामान्य नहीं, कष्टसाध्य ही था। यह कहा गया है कि उन्होंने 1,200 अभिलेखों को धैर्य और सहन शक्ति के साथ निरखा और बुद्धि कौशल के साथ प्राप्त समाचार को, जो सामान्य कथन शैली में प्रस्तुत था, पढ़कर प्राप्त समाचार से संबन्ध स्थापन के साथ व्यक्त किया है। इस में मूल्यवान कार्य को स्पष्ट देख सकते हैं और उसके आधार पर आगे आनेवाले जिल्दों में संपन्न होनेवाले कार्य का भी अंदाज लगा सकते हैं''

''लेखक ने इस प्रस्तुक को दो भागों में विभाजित किया है। प्रथम भाग में अभिलेखों की सहायता से तिरुपति, तिरुचानूरु और तिरुमल पर संपन्न होनेवाले दैनिक अर्चना-कार्यक्रमों और सेवाओं का समग्र स्वरूप स्पष्ट किया गया है - यथा प्रसाद समर्पण, उत्सव और तदर्थ दिये गये देवदान, खेत और अन्य संपत्तियाँ आदि का विवरण। ये दान राजवंशों, राजाओं, सामंतों और अन्य सामान्य भक्तों द्वारा संपन्न हैं - - -''

''भाग II में दक्षिण भारत के राजवंशों से संबद्ध समाचार है जो अभिलेखों पर आधारित है। तुलुव वंश से संबन्धित समाचार तो कुछ अंशों में पूर्ण और मौलिक ही है। विजय नगर साम्राज्य काल से संबद्ध धार्मिक गुरुओं का समाचार नया, महत्वपूर्ण एवं सुपाठ्य है - - -''

''पुस्तक तो विजय नगर साम्राज्य की जानकारी चाहनेवाले हर विद्यार्थि के लिए अवश्य पठनीय है।''

III मद्रास प्रेसिडेन्सी कॉलेज के प्रो.वी.रंगाचार्य ने, जो बाद में तंजाऊर विश्वविद्यालय में भी आचार्य रहे हैं, डॉ.यस कृष्णस्वामी अय्यंगार द्वारा लिखित ''ए हिस्टरी ऑफ तिरुपति वाल्यूम II के ''रेव्यू'' पर दिनांक 11 जुलाई 1943 में लिखा है -''

''सामान्यतः साधारण जनता को इसका पता ही नहीं है कि तिरुपति देवस्थानम् कमेटी ने आठ जिल्दों में 3,042 पृष्ठों का अभिलेखीय समाचार संग्रह कराकर प्रकाशित किया है। इस महत्वपूर्ण कार्य के आरंभिक जिल्द में विविध प्रकार के धार्मिक उत्सवों से संबन्धित सूचनाओं के साथ - साथ सामान्य जनों के लिए आकर्षक समाचार भी संजोया गया है। इस में प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री का सुरुचिपूर्ण विश्लेषण है जो मंदिर से संबन्धित अभिलेखों और अन्य सूत्रों में निबद्ध किया गया था। जिल्द I - 273 पृष्ठों का है। इस में मंदिर के अभिलेखीय उल्लेखों से उसकी आरंभिक स्थितियों को सूचित किया गया है। आश्चर्य की बात है कि ये रेकार्ड्स आरंभिक समय तक की सूचनाएँ ही न देकर सन् 800 से सन् 1450 तक के अंशों का भी स्पर्श करते हैं। - - - डॉ. कृष्णस्वामी अय्यंगार द्वारा प्रस्तुत इतिहास का प्रथम जिल्द, जिसका पुनरालोकन पहले ही हो चुका था, से संबद्ध विषय सामग्री मात्र से संबन्धित है। अन्य पाँच जिल्दों में, जो 2,400 पृष्ठों में विस्तृत है, विजयनगर साम्राज्य के सालुव, तुलुव और आरवीडु राजवंशों से संबन्धित विवरण है। इसके साथ साथ बिजापुर, गोलकोंडा, मुगल, कर्नाटक, फ्रेंच और ब्रिटिश कालों का भी विवरण है। यह सन् 1801 तक का समाचार देता है। इन जिल्दों के संपादन में दिवंगत पंडित विजयराघवाचार्य और यस. सुब्रह्मण्य शास्त्री की अविराम कार्य नियति अभिनंदनीय हैं।''

IV श्री के.वी. सुब्रह्मण्य अय्यर (मद्रास पुरालेखा संग्रहालय विभाग) कोयंबत्तूर का दिनांक 14-01-1956 का पत्रः

''तिरुपति मंदिर के अभिलेखों के प्रकाशन के संबन्ध में मैं ने जो बात पहले कही थी उसी का पुनरुल्लेख करता हूँ कि यह कर्तव्य निष्ठ कार्य है जो संपादक को विशिष्ट मान्यता प्रदान करता है।''

V राव बहादूर आचार्य के.वी. रामस्वामी अय्यंगार, मद्रास (ट्रावेन्कूर विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और यस.वी. ओरियंटल कॉलेज, तिरुपति के निदेशक) का दिनांक 11-01-1948 का पत्रः

'आण्डु - एदिराण्डु' पर आप के मूल्यवान लेख की एक प्रतिलिपि मुझे भेजने के लिए पहले मेरे धन्यवाद आप स्वीकार कीजिए। यह एक बहुत ही विशिष्ट विषय से संबन्धित है। मेरी राय में आपने सुव्यवस्थित रूप में श्रम के साथ अभिलेखा सामग्री को प्रामाणिक तौर पर प्रस्तुत किया है। - - - जैसे ही मैं अपना सही समय पाऊँगा, आपके लेख का अध्ययन गौर से अवश्य करूँगा। - - - आपका इस प्रकार अमूल्य प्रपत्र तैयार करना अभिनंदनीय है। आप को साधुवाद संप्रेषित करना मैं अपना प्रथम कर्तव्य मानता हूँ। मैं ने सोचा था कि आप इतिहास और विश्वविद्यालय से खोये गये हैं, परन्तु देवस्थानम् को मिले और स्वीकृत हुए हैं।''

VI आचार्य के.वी. रंगस्वामी अय्यंगार, दिल्ली, का दिनांक 27-04-1948 का पत्रः

‘‘‘आण्डु एदिराण्डु’ पर प्रस्तुत आपके प्रपत्र की प्रति मुझे मिली है। आपकी अभिव्यक्तियाँ मुझे हमेशा पहेलियाँ ही रही हैं।’’

आपका सिद्धान्त आकर्षक और विषय में नवल है। वह अपने साथ निर्माणात्मक विशेषता को लेकर है। सामान्यतः यह माना जाता है कि राजा अपनी पराजय को कभी स्वीकार नहीं करता या अपने राज्याधिकार से पदच्युत नहीं मानता। राजा सामान्य जन से अलग मानसिकता का होता है। मुखस्तुति और प्रार्थना-मांग के इच्छुक होता है। इसीलिए भारतीय अभिलेखीय सामग्री (साहित्य) को नमक के साथ स्वीकार करना है। लेकिन आपके सिद्धान्त ने यह स्पष्ट घोषित किया है कि दक्षिण के राजा लोग और दक्खन के सुल्तानों ने बेझिझक इसे स्वीकार किया है। आधिकारिक रिकार्डों में निक्षिप्त किया है। इस में उनके तात्कालिक रूप से अधिकार खो देना भी है। हम जानते हैं कि सही शास्त्रीय प्रामाणिक पुरातन अभिलेखों के संग्रहालयों की व्यवस्था करना कितना महत्वपूर्ण कार्य है। उक्त प्रकार की स्वीकार्यता यह सूचित करती है कि राजा लोगों का और सम्राटों का गर्व भी अभिलेखीय सठीकता के सामने झुक जाता है।

आपने उचित संख्या के अभिलेखों को विश्लेषित और व्याख्यायित किया है। ‘एदिराण्डु’ शब्द यह सूचित करता है कि कितनी बार एक राजा का शासन टूटा और फिर कायम हुआ है। आप अपने निर्णयों पर अटल भी नहीं रहे हैं; बल्कि अपनी ओर से स्पष्ट अनुरोध भी किया है कि विद्यार्थि उपलब्ध सामग्री का पुनरवलोकन करें और सिद्धान्त की निर्दोषिता तथा उसके मूल्य का अंकन करें अपने ही सिद्धान्त के साथ - - मेरा विश्वास है कि आगे के युवा शोधार्थि इस दिशा में कार्य अवश्य करें, प्रधानतया सरकारी अभिलेख संग्रहालयों में कार्यरत होनेवाले युवा। अगर सिद्धान्त प्रतिपादन मार्ग सही निकलता है तो वह आगे राजाओं और राजवंशों के विस्तृत अध्ययनों में भी सहकारी सिद्ध होगा, प्रधानतः ‘‘एदिराण्डु’’ में सूचित कालक्रम के संबन्ध में।

जहाँ तक मेरे अध्ययन ज्ञान का संबन्ध है उसके आधार पर कह सकता हूँ कि मुझे इस प्रकार के विश्लेषण किन्हीं अन्य क्षेत्रों से संबन्धित अभिलेख अध्ययनों से प्राप्त नहीं हैं।

मुझे आश्चर्य होता है कि एक पराजय या पदच्युति के बाद किसी राजा ने द्वितीय राज्याभिषेक संपन्न कर लिया हो। ‘एदिराण्डु’ इस प्रकार की सूचना देता है और घटना को सूचित करता है। एक युवराज का अभिषेकोत्सव अपने समय में इस प्रकार होना, पारंपरिक पद्धति से भिन्न रूप में चलना अभिषेकोत्सव (सिंहासनाधिरोहणोत्सव) की प्रामुख्यकता को सूचित करता है। अशोक के संदर्भ में राज्याभिषेक उत्सव राज्याधिकार प्राप्ति के तीन वर्ष बाद संपन्न हुआ था। लेकिन अगर एक राजा का

अपने अधिकार से दूर किये जाने पर, वह भी तीन बार, राज्याभिषेक संपन्न होना ''एदिराण्डु'' सूचित करता है। इस प्रकार की व्याख्या शायद असफल ही मानी जाएगी।

चाहे कुछ भी हो आपकी विशेष परिकल्पना की सराहना ही करनी है। इसके आधार पर अनेक उलझी समस्याएँ सुलझ भी सकती हैं। शायद सभी को सुलझा भी सके। अभिलेखीय मूल्य से संवैधानिक प्रमुखता अधिक मूल्यवान होती है। यह दक्षिण भारतीय राज वंशों के मुकुटों में (ताजों में) एक और पंख जोडनेवाला ही साबित होगा। यह उत्तर भारतीय अभिलेखीय विवरण परंपराओं में नहीं मिलता।

- - - - मैं आचार्य वी.आर.आर. दीक्षितर से कहूँगा कि वे एक युवा अनुसंधाता को आपके सिद्धांत की कसौटी पर हर अभिलेख को कस कर देखें और विपक्षीय या विरोधी व्याख्याओं पर भी लागू कर निष्कर्ष निकालें।

आपका प्रपत्र सकारात्मक रूप से अन्य ऐसे सिद्धान्त पत्रों के मूल्यांकन में, तोलने में, अवश्य सहकारी होगा जिन पर पीहेच. डी. उपाधि दी जा सकती है।

सादरपूर्व अभिनंदन सहित।

* * *

श्री लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर के मृदु मधुर चरण कमलों में विनय, विश्वास और भक्ति सहित

तथा

सत्य भाव और स्नेह स्मृतियों के साथ

मेरी माता श्रीमती देवी (1871 - 1899);

मेरे पिता श्री वेङ्कटेश्वर शास्त्रुलु (1860 - 1924);

मेरी ज्येष्ठ पुत्री कामाक्षी देवी (1919 - 1944);

मेरे ज्येष्ठ पुत्र नरसिंह शास्त्री (1921 - 1968);

मेरा कनिष्ठ पुत्र कृष्ण शास्त्री (1929 - 1972);

मेरी सहधर्मचारिणी श्रीमती वेङ्कटलक्ष्मम्मा (1901 - 1978);

मेरे मामा श्री वट्टिपल्ले नरकंठीरव शास्त्री (1869 - 1910);

को

समर्पित

- साधु सुब्रह्मण्य शास्त्री

(अंग्रेजी मूल लेखक - 1889 - 1981);



श्री साधु सुब्रह्मण्य शास्त्री जी
ग्रंथकार

जन्मः 17-12-1889 देहावसानः **10-09-1981**

25 मार्च सन् **1977** को शास्त्री जी का सम्मान किया गया था। संयोग से उसी दिन को ताल्लपाक अन्नमाचार्य जी का देहावसान दिवस भी था। खेद की बात है कि शास्त्री जी का यह भाषण साहित्य सभा का अंतिम भाषण रहा। **10** सितम्बर, **1981**, एकादशि पुण्यदिवस को शास्त्री जी ने अपना देह छोड़ा।

प्रार्थना

(1) विघ्न - ध्वान्त - निवारणैक - तरणीर विघ्नाटवी - हव्यवाट ।
विघ्न - व्याल - कलाप - मत्त - गरुडो विघ्नेभ - पंचाननः ।।
विघ्नोत्तुङ्ग - गिरि प्रभेदन - पवीर विघ्नाब्धि - कुंभोद्भवो ।
विघ्नाघौघ - घन - प्रचण्ड - पवनो विघ्नेश्वरः पातु माम् ।।

(हे विघ्नेश्वर! आप पाप रूपी अंधकार को दूर करने वाले सूर्य हैं, विघ्न वन के लिए अग्नि हैं, विघ्न रूपी सर्पों के लिए गरुड़ स्वरूप हैं, रोडों के लिए मत्त गज हैं, विघ्नवत उमडनेवाले अडचनों के लिए कडकनेवाली बिजली हैं, विघ्न सागर के लिए अगस्त्य हैं, बादलों के लिए तूफान हैं - मेरी रक्षा कीजिए प्रभू!)

(2) याकुंदेन्दु तुषारहार धवला, या शुभ्र वस्त्रान्विता ।
या वीणा वरदण्ड मण्डित करा, या श्वेत पद्मासना ।।
या ब्रह्माच्युत शंकर प्रभृतिभिर, देवैस्सदा पूजिता ।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निश्शेष जाड्यापः ।।

(हे माता सरस्वती! आप हिम और चन्द्र के समान धवल स्वच्छ हैं। आप शुभ्र वस्त्रों को ही धारण करनेवाली हैं। आपके हाथों में हमेशा वीणा शोभित रहती है, नहीं नहीं आप के हाथों की वीणा आपके हाथों को शोभा प्रदान करती है, आप का आसन श्वेत कमल है। आप सर्वथा ब्रह्म, अच्युत और शंकर द्वारा पूजित - अर्चित रहती हैं। आप कृपा भाव से मेरे अंदर व्याप्त अज्ञान को दूर कीजिए।)

(3) शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशम् ।
विश्वाकारं गगन सदृशं मेघवर्णं सुभांगम् ।।
लक्ष्मीकांतं कमल - नयनं योगि हृध्यान गम्यम् ।
वन्दे विष्णुं भव - भय हरं सर्वलोकैक नाथम् ।।

(हे शांताकार! हे भुजगशयन! पद्मानाभ! सुरेश! विश्वाकार! हे गगन समान! हे मेघवर्ण! सुभांग! हे लक्ष्मीकांत! हे कमल नयन, हे योगियों के हृदयवासी! हे भव दुःखों के नाशक! हे सर्व लोक नाथ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ! वन्दे वन्दे!)

(4) यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।
बौद्ध बुद्ध इति प्रमाण - पर्तेवः कर्तति नैवायिकाः ।।

अर्हन् नित्यथा जैन - शासन - रताः कर्मेति मीमांसकः ।
शो यं नो विदधातु वाञ्चित -फलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ।।

(हे त्रिलोक नाथ! शैव आपको शिव मानकर आराधना करते हैं। इसी तरह वेदान्ती आपको ब्रह्मन्, बौध्द बुद्ध भगवान मानकर, तार्किक लोग कर्ता, जैन अर्हत और मीमांसक कर्म मानकर आपकी उपासना में लीन रहते, वे हमें उचित वर प्रदान करें।)

(5) विना वेङ्कटेशं न नाथो न नाथः ।
सदा वेङ्कटेशं स्मरामि स्मरामि ।।
हरे! वेङ्कटेश! प्रसीद प्रसीद ।
प्रियं वेङ्कटेश प्रयच्छ प्रयच्छ ।।

(श्रीवेङ्कटेश्वर को छोड़कर कोई और नाथ नहीं है। मैं हमेशा हमेशा वेङ्कटेश्वर का ही स्मरण करूँगा। हे भगवान आप मुझपर प्रसन्न हो जाइए। मैं आपकी ही शरण में आऊँगा। मुझे स्वीकार कीजिएगा।)

(6) वन्दे पद्मकरां प्रसन्न वदनां सौभाग्यदां भाग्यदाम् ।
हस्ताभ्यां अभयप्रदां मणिगणैर नाना विधैर्भूषिताम् ।।
भक्ताभीष्ट वरप्रदां हरि - हर - ब्रह्मादिभिस्सेविताम् ।
पार्श्वे पंकज शंख पद्म निधिभिर्युक्तां सदा शक्तिभिः ।।

(हस्त में कमल धारण करनेवाली लक्ष्मी की मैं वंदना करता हूँ। हमेशा प्रसन्न मुखमण्डलवाली, सौभाग्य प्रदायिनी, अभय हस्त युक्ता, मणि - माणिक्यों से लसित आभूषण धारण करनेवाली, भक्तों को वांछित वर देनेवाली, हरि - हर - ब्रह्मादि से सेवा प्राप्त करनेवाली, सदा शक्ति समन्विता श्रीलक्ष्मी देवी की मैं वंदना करता हूँ।)

(7) असारे संसारे निज भजन दूरे जडधिया भ्रमंतम्,
मामन्धं परम कृपया पातुमुचितम्,
मदन्याः को दीनस्तव कृपण रक्षातीनिणुनेः
त्वदन्यः को वा मे त्रिजगति शरण्यः पशुपते ।।

(हे पशुपति! मेरा उद्धार करना समुचित ही है। क्योंकि इस असार संसार में कौन आपकी अर्चना - उपासना से दूर रह सकता है? मुझसे अधिक दीन कौन हो सकता है? मेरे रक्षक आपके सिवा और कौन हो सकता है? बस, मेरा उद्धार आप ही के वश में है।)

(8) वाग्देविं इति यां वदन्ति मुनयः क्षीराब्धिकन्यां इति,
क्षोणि भृत्तनयां इति श्रुति गिरो यां - आमनन्तिस्फुटम् ।
एकां एव फल प्रदाम् बहुविधाकारां तनुं बिभ्रातिम्
कामाक्षीं कविभिर्नुतां च सुभागां वंदे महेशप्रियाम् ।।

(हे महेशप्रिया पार्वती माता! मुनि आपको वाग्देवी कहते हैं। श्रुतियाँ आपको क्षीराब्धिकन्या, भूमिजा कहती हैं। एक फल मात्र अर्पित करने से आप बहु फल प्रदान करने वाली बन जाती हैं। हे कामाक्षी! आप कवियों द्वारा बहुविध शरीरा के रूप में मान्य हैं। आप मेरी रक्षा कीजिए।)

* * *

विषयानुक्रमणिका

संख्या	अध्याय		पृ. सं.
1.	आमुख	- - -	1
2.	श्वेत वराह कल्प की गाथा - I	- - -	3
3.	वेङ्कटाद्रि पर वराह भगवान का वास तथा तत्परिणामतः पर्वत का महत्व	- - -	6
4.	विभिन्न युगों में क्रीडाद्रि के विभिन्न नाम	- - -	10
5.	श्रीस्वामी पुष्करिणी तथा अन्य तीर्थों का माहात्म्यम्	- - -	15
6.	विष्णु का निवास धाम वेङ्कटाद्रि	- - -	30
7.	ब्रह्म, देवतागण और ऋषियों का वेङ्कटाद्रि पर भगवान विष्णु का दर्शन और राजा दशरथ का वेङ्कटाचल पर आना	- - -	37
8.	ब्रह्मोत्सव का आरंभ	- - -	48
9.	श्रीमहाविष्णु का श्रीवेङ्कटेश्वर के रूप में वेङ्कटाचलवास तथा अवसरिक दर्शन	- - -	55
10.	मित्रवर्मा के पुत्र के रूप में आकाशराजा का जन्म	- - -	68
11.	नैमिशारण्य से ऋषि - मुनियों का वेङ्कटाद्रि पर आगमन	- - -	77
12.	वेङ्कटाचल पर श्रीवेङ्कटेश्वर का मंदिर	- - -	79
13.	आनंदनिलय के महोज्वल विमान के तले गर्भगृह में श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी	- - -	93
14.	वैष्णव आळ्वारों के द्वारा श्रीवेङ्कटेश्वर का गुणगान	- - -	113
15.	श्रीवेङ्कटेश्वर को राजवंशीय और अन्य भक्त जनों से प्रस्तुत सेवाएँ	- - -	141
16.	मंदिर की आवश्यकताओं की आपूर्ति	- - -	165
17.	विजयनगर साम्राज्य का आरंभिक काल	- - -	175
18.	राजा सालुव नरसिंह का राज्यकाल	- - -	188
19.	सम्राट कृष्णदेवराय काल	- - -	220
20.	सम्राट अच्युतराय काल	- - -	249

21. सम्राट सदाशिवराय का राज्य काल - - - 272

22. आरवीडु वंश - शसक और अनुगामी काल - - - 296

23. विजय नगर साम्राज्य का पतन - - - 309

24. ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा वेङ्कटेश्वर मंदिर का अधिग्रहण एवं प्रबन्धन - - - 330

25. ब्रिटिश द्वारा मंदिर प्रबन्ध का महंतों को हस्तांतरण करते हुए इसे त्यागना और फलस्वरूप समृद्धि होना - - - 364

26. लेखकों, कविगणों एवं संगीतकारों का समर्पण एवं गुणानुवाद गायन - - - 372

27. श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में नित्य पूजा विधान - - - 425

28. श्रीवेङ्कटेश सुप्रभातम् : संक्षिप्त नोट - - - 433

29. श्रीवेङ्कटेश अष्टोत्तर शत नामः (श्रीवेङ्कटेश के एक सौ आठ नाम) - - - 435

* * *

स्वीकृति

निम्नांकित व्यक्तियों के प्रति ग्रंथकार कृतज्ञता एवं स्नेहमयी धन्यवाद समर्पित करते हैं, जिन्होंने इस ग्रंथ के निर्माण में अपना सहयोग दिया

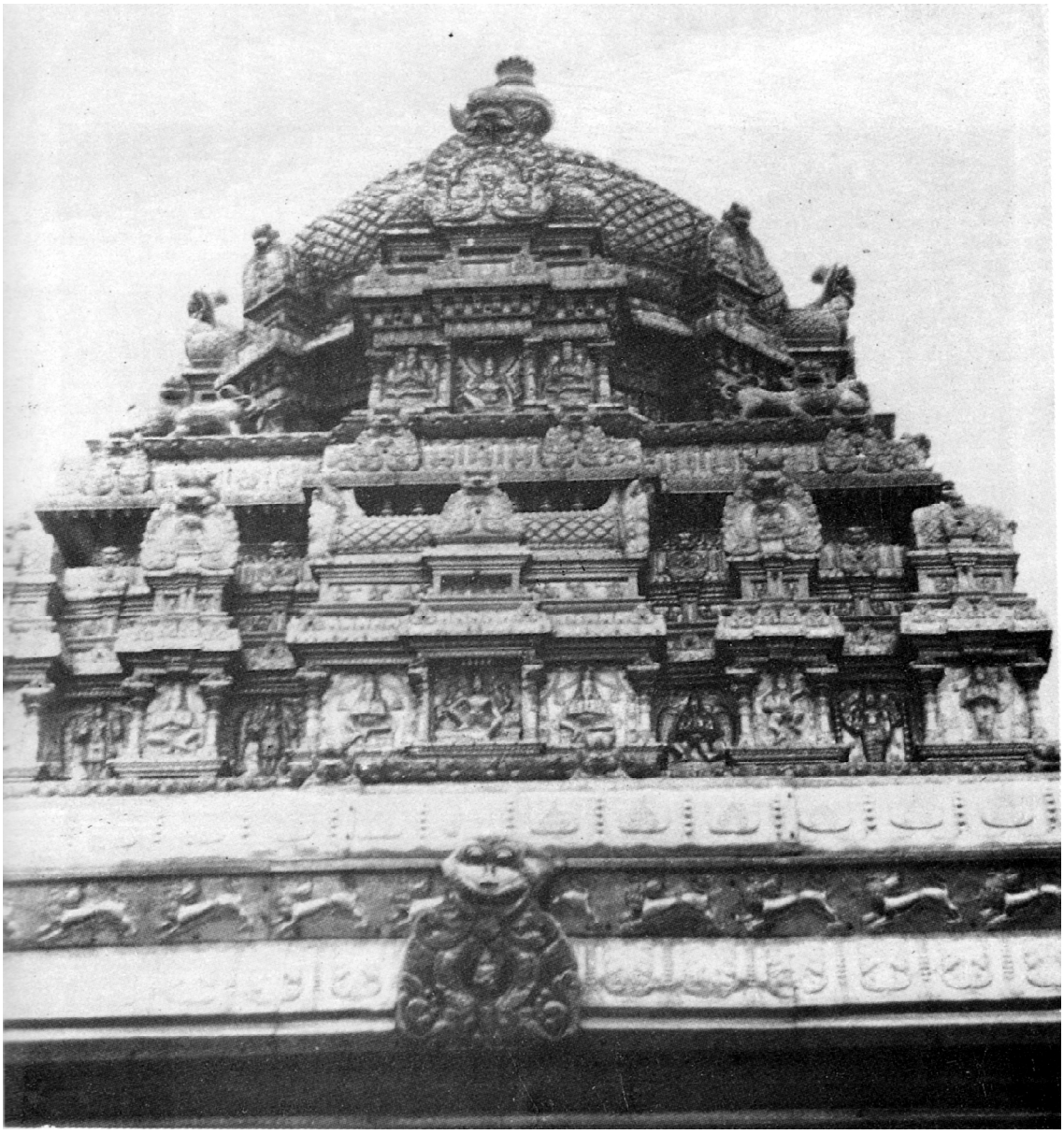
1. अध्यक्ष व, ति.ति.दे. का न्यास परिषद्
2. श्री सी.अन्नाराव, पूर्व अध्यक्ष, ति.ति.दे. का न्यास परिषद्
3. श्री पी.वी.आर.के. प्रसाद, आई.ए.एस., कार्यनिर्वहणाधिकारी, ति.ति.दे.
4. श्री पी.राजगोपाल राजू, आई.ए.एस., धर्मदाय आयुक्त
5. श्री एस.कृष्णा रेड्डी, (गोपीकृष्ण) एम.ए., बी.ई.डी., उप प्राचार्य, एस.वी.हाई स्कूल, तिरुमल, इस ग्रंथ के संपादक
6. श्री के. श्रीनिवासुलु चेट्टी, एम.ए., विशेष अधिकारी, श्री अन्नमाचार्य प्राजेक्ट, ति.ति.दे.
7. डॉ. के.एस.आर. दत्ता, एम.ए., पी.एच.डी., प्रधानाचार्य, एस.वी.ओरियंटल कॉलेज, तिरुपति
8. श्री एम. विजयकुमार रेड्डी, एल.पी.टी., प्रबंधक, ति.ति.दे. प्रेस, तिरुपति
9. श्री आर. सूर्यनारायण मूर्ति, पी.आर.ओ., ति.ति.दे.
10. श्री के. सुब्बाराव एम.ए., संपादक, सप्तगिरि, ति.ति.दे.
11. श्री एम. गोपाल रेड्डी, उपप्रबंधक, ति.ति.दे. प्रेस के सभी कर्मचारी
12. श्री तम्मन्ना, पर्यवेक्षक, ति.ति.दे. गार्डेन्स
13. श्रीमती साधु गिरिजा सारथी, मेरी कनिष्ठ पुत्री, जिसने मेरे वृद्धाप्य में मेरी देखभाल माँ भाँति की थी।

- एस. एस. शास्त्री

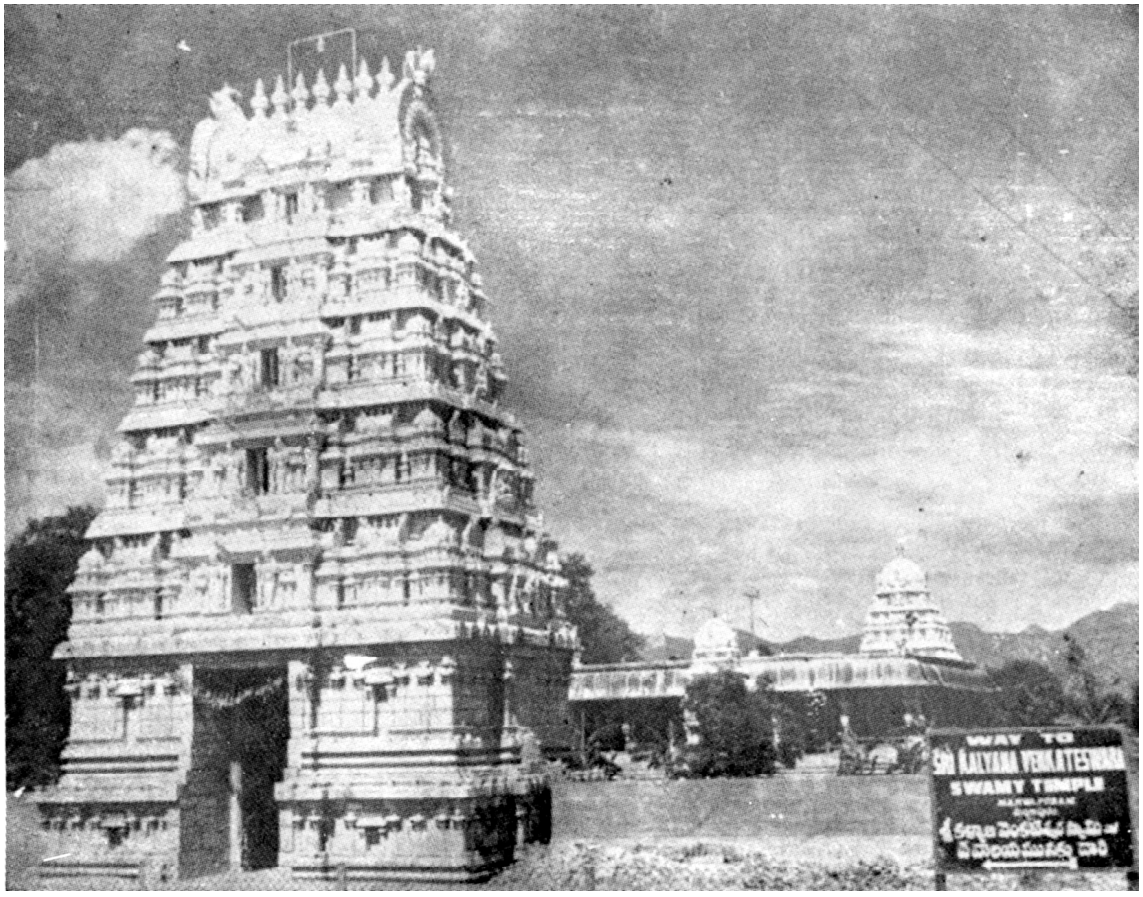


वज्रकवचधारी श्रीमलयप्प स्वामी

मलयप्प स्वामी जिस मुकुट से सुशोभित हैं, उसे श्री साधु सुब्रह्मण्य शास्त्री (रचनाकार) के पर्यवेक्षण में सन् 1930 के आस पास बनाया गया था। इसको बनाने के लिए आवश्यक सोना, अमूल्य रत्न आदि को पूर्वसुवासिनी गद्वाल की महारानी ने दिया था।



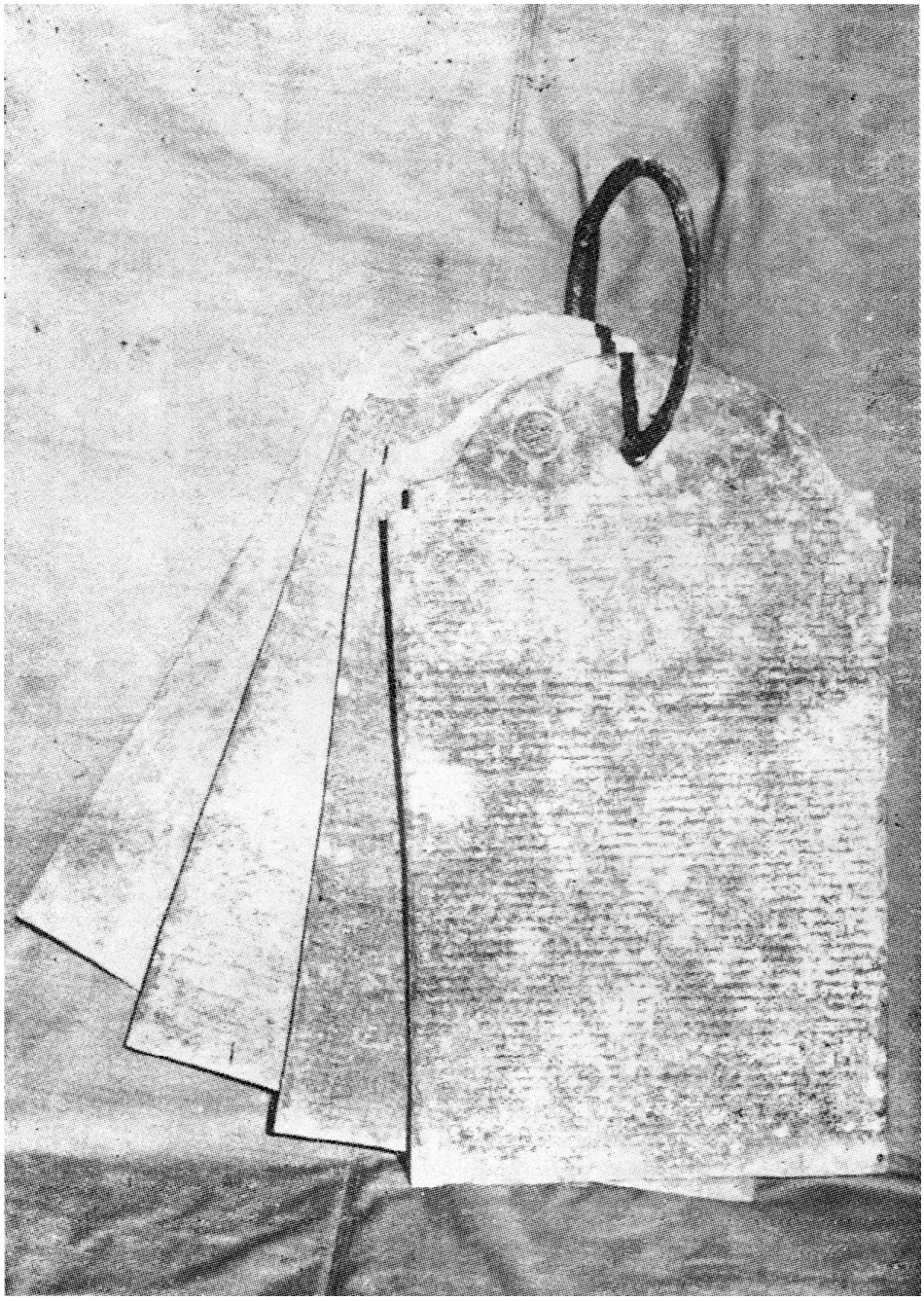
श्री आनंदनिलय - विमान
(अध्याय - 13)



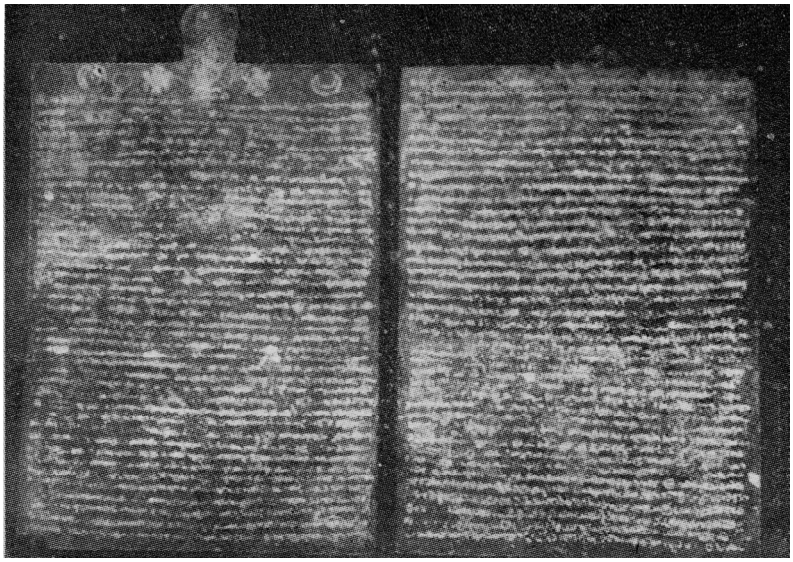
श्री कल्याण वेङ्कटेश्वर स्वामी का श्रीनिवासमंगापुरम् मंदिर
(तिरुपति गाँव से सात (7) मील की दूरी पर यह स्थित है)



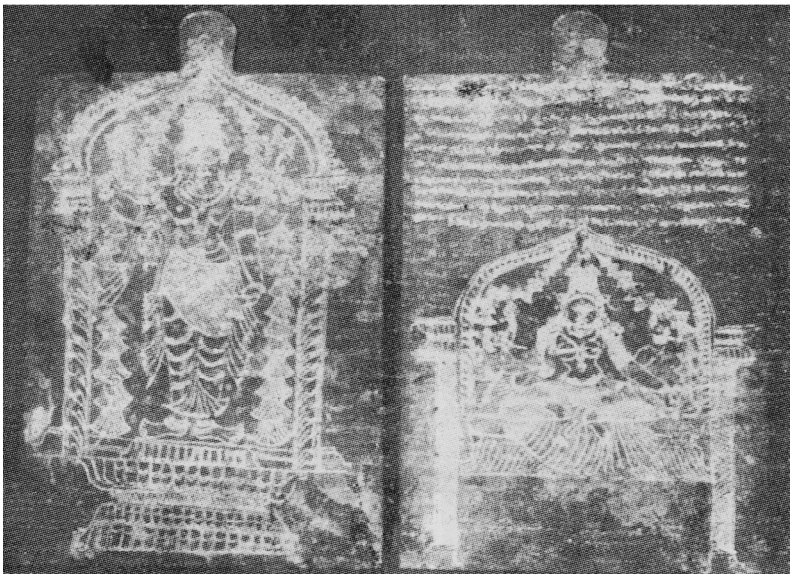
कालेपत्थर से बनी चक्रवर्ति अच्युतदेवरायलु - उनकी पत्नी वरदाजियम्म की मूर्तियाँ, तिरुमल मंदिर के प्रतिमा मण्ड़प में दिखाई देती हैं (पृ. 84)



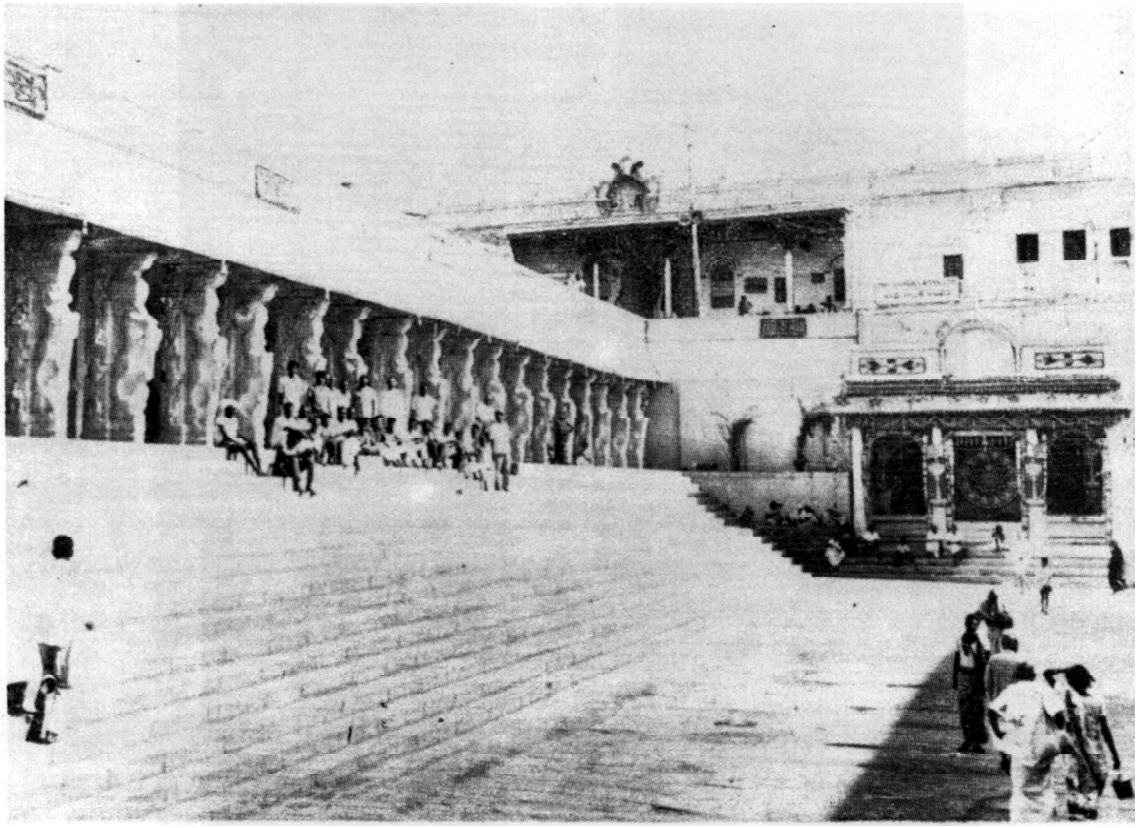
ताल्लपाक कवि एवं वाग्गेयकार के संकीर्तन ताम्बे के तश्तरियों पर उत्कीर्णित किये गये हैं। एक छल्ले में इन तश्तरियों को समूहों में बांधे गये हैं।



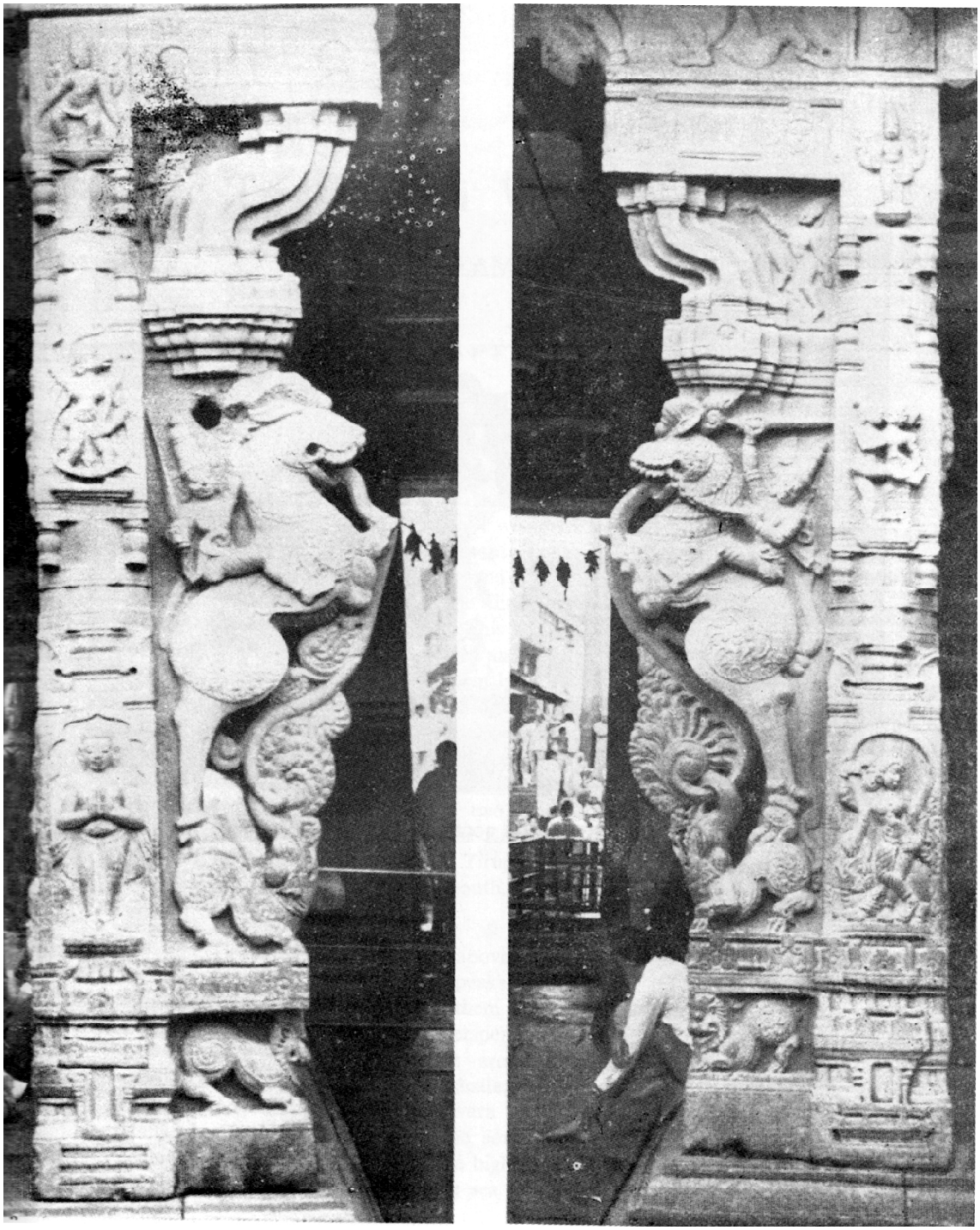
तिरुचानूर श्रीपद्मावती देवी द्वारा यह घोषणा कि वे पद्मशाली कुल की वंशांकुरा - तत्संबंधी ताम्बे में उत्कीर्णित अभिलेख (पृ. 247)



ताल्लपाक चिन्नन्न का 'पादकानिक' अभिलेख (ई.पू. 1543) जिसमें पद्मावती मैया के साक्ष्यवचन उत्कीर्णित हैं



तिरुमल श्री हरि मंदिर के सामने स्थित 'वेइ काल्ल मण्ड़पम्' (एक हजार स्तम्भों का मण्डप) - मण्डप के नीचे सीढियाँ - मण्डप में स्तम्भों की कतार - (**P. 88-89**) मंदिर की दाईं ओर, ऊपर दिखाई देने वाला भवन ही 'श्री हाथीराम जी मठ' है। महंतों के समय यह उनका प्रशासनिक भवन था। तिरुमल के सभी कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए यही प्रधान कार्यालय था। महंतों ने देवस्थान के लिए 'विचारण कार्यकर्तलु' के रूप में 90 वर्षों तक अपना प्रशासन चलाया। (अध्याय - 25)। मण्डप के निचले भाग में 'कोलुवु मण्डप' स्थित था। यहाँ सहस्र दीपालंकरण सेवा संपन्न होती थी। अब हर दिन शाम के छः बजे को संपन्न होता है। 'वेइ काल्ल मण्डपम्' को मिटाने के बाद आजकल यात्रियों को विचरण के लिए विस्तृत भू भाग मिला है। यात्रीगण धक्का - मुक्की से बच सकते हैं।



विजयनगर साम्राज्य कालीन शिल्पचातुर्य तिरुमल मंदिर में विद्यमान स्तम्भों के मनोरम मूर्तियों से मालूम होता है।



तिरुमल पहाड़ के निचले भाग तिरुपति में स्थित 'कपिलतीर्थम्' (पृ. 15, 320, 331)
आज का कपिलतीर्थ, प्राचीन अभिलेखों में 'आळ्वारतीर्थम्' नाम से प्रसिद्ध था।
अतिप्राचीन वैष्णवालय, शिवालय में परिणत हुआ।
आळ्वार तीर्थ के रूप में यह तिरुमल का मुखद्वार बनकर ख्याति पाई।

अध्याय - 1

आमुख

'तिरुपति' भारत के अत्यधिक ख्यात तीर्थ - स्थानों में प्रथम गण्य है। यह पवित्र क्षेत्र 13°41" उत्तर अक्षांस (नार्थ लॉटिट्यूड) और 79°24" पूर्व रेखांश (ईस्ट लांगिट्यूड) पर आजकल के आन्ध्रप्रदेश के चित्तूर जिले की दक्षिणी छोर पर है। इस शहर के पास ही स्थित शैल शिखर पर भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी के अवतरित होने के कारण ही इस शहर का नाम 'तिरुपति' है। तिरुमल शैल शिखरमाला, 'शेषाचल' नाम से ख्यात है। यह पहाडी प्राँत कडपा जिले में शेषाचल कहलाता है, तो कर्नूल जिले के उत्तरी प्राँत में 'नल्लमल' (काला पहाड)। चित्तूर, कडपा और कर्नूल जिलों में व्याप्त तीनों पहाडी श्रृंखलाओं की जोड पूर्वी घाटियों का आधा उत्तरी भाग है। इन पहाडी घाटियों का ऊपरी भाग अनेक पंक्तियों में बहु वलयों में और पर्वत श्रेणियों के रूप में तीन जिलों में परिव्याप्त हैं। इन को देखने से ऐसा लगता है कि एक महानाग कुंडली डालकर बहुत ही प्रशस्त और प्रशांत हो आराम कर रहा है। पुराणों के अनुसार ये आदिशेष ही हैं जो समस्त विश्व को अपने सहस्र फणों पर संभालते रहते हैं। पौराणिक परंपरा में मान्यता है कि ये श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी को अपने सात फणों पर लेकर उनकी सेवा में रत हैं। साथ - साथ अहोबल नरसिंह को अपनी कुंडलीकृत शय्या पर तथा पवित्र कृष्णा नदी के दक्षणी तट पर विराजमान श्रीशैल पर्वत रूपी अपनी पूँछ पर श्री मल्लिकार्जुन स्वामी को वहन किये हुए हैं। अहोबल क्षेत्र और श्रीशैल क्षेत्र दोनों कर्नूल जिले में हैं। नल्लमल पहाडी श्रृंखलाओं में हैं। ये तिरुपति से क्रमशः 120 और 180 मील की दूरी पर स्थित हैं। श्रीकालहस्तीश्वर, तिरुपति के पास ही केवल 25 मील की दूरी पर विलसित है। श्रीकालहस्ति क्षेत्र, शेष के फण के मुखस्थान पर स्थित है।

तिरुपति का पहाडी तल बंगाल की खाडी तल से 2820 फुट की ऊँचाई पर है और उसका विस्तार क्षेत्र लगभग 100 वर्गमील में है। यह पहाडी विस्तार सात श्रृंखलाओं से युक्त है जो सर्पराज आदिशेष के सप्त फणों के रूप में मान्य है। इनमें पहले के चार लगभग सपाट और लगातर हैं जब कि पाँचवाँ और छटवाँ गहरी और सघन गिरि - कंदराओं से युक्त है। इसे *'अवसारि'* या 'अव्वाचारीं' कोना' कहते हैं। कोना का अर्थ ''व्यॉली'' (घाटी) है। इन सप्त गिरियों को *शेषाचल, वेदाचल, गरुडाचल, अंजनाचल, वृषभाचल, नारायणाचल और वेङ्कटाचल* नामों से अभिहित किया गया है। इनमें श्रीवेङ्कटेश्वर सातवीं गिरि श्रृंखला पर श्रीस्वामी पुष्करिणी के दक्षिणी तट पर स्थित अपने मंदिर विमान में विलसित हैं। यह नारायण गिरि की ऊँची गिरि से लगभग दो मील के अंतराल में है। नारायण गिरि शिखर समुद्री तल से लगभग 3600 फुट की ऊँचाई पर है।

ऐसे महान वेङ्कटाचल पर विलसित होने के कारण ही भगवान को वेङ्कटेश्वर नाम मिला है। श्रीवेङ्कटेश्वर सप्तगिरि के अधिदेवता हैं। वैसे कोई अन्य नाम इतना विशेष ख्यात नहीं है, यद्यपि ये

सहस्र नामों से अर्चित हैं। तिरुपति (श्रीपतिपुर) नाम, जिसका अर्थ 'लक्ष्मीपति' है, वैसे तो वेङ्कटाचल को मिलना चाहिए था, जहाँ पर श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में विलसित हैं। लेकिन यह नाम पहाडी तल में (नीचे) स्थित नगर को मिला है। तिरुपति नगर 'मुन्सिपल टाउन' है (हाल ही में कार्पोरेषन बना है)। पहाड के ऊपर, गिरि शिखर पर मंदिर के आसपास का गाँव 'तिरुमल' (पवित्र गिरि) कहलाता है। 'तिरुमल' को 'ऊपरी तिरुपति' (= एगुव तिरुपति) तथा तिरुपति नाम से प्रसिद्ध नगर को 'दिगुव तिरुपति' (= निचला तिरुपति) भी कहा जाता है।

ऊपरी तिरुपति अथवा तिरुमल पर श्रीवेङ्कटेश्वर का पवित्र मंदिर है तो श्री गोविन्दराज स्वामी एवं श्रीकोदंडराम स्वामी के मंदिर 'निचला तिरुपति' में है। श्रीकपिलेश्वर स्वामी का मंदिर पहाड के चरण तल में स्थित है। पास ही के तिरुचानूर में श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी की पट्टरानी श्रीपद्मावती देवी का मंदिर विराजमान है। इनको श्रीमहालक्ष्मी और श्रीअलरमेलमंगा (अलमेलुमंगा) भी कहते हैं। इसी मंदिर के पास ही श्रीकृष्ण और श्रीबलराम के मंदिर भी देखने को मिलते हैं। श्रीसुंदरराज स्वामी का भी मंदिर यहाँ स्थित है।

श्रीपराशरेश्वर स्वामी तिरुचानूर के पास के योगिमल्लारम गाँव में हैं। योगिमल्लारम, प्राचीन समय में तिरुचानूर का ही भाग था। तिरुचानूर 'तिरुच्योगिनूर' का विकसित रूप है। 'तिरुच्चोगिनूर' मानी 'श्री योगी का गाँव' है। इसमें 'योगी' शब्द पराशर योगी के साथ जुडता है जिन के कारण 'योगि मल्लारम' नाम पडा है। यहाँ के पराशरेश्वर (मंदिर की स्थापना इनके द्वारा होने के कारण उनके नाम पर पराशरेश्वर है) आराध्य देव के रूप में स्थापित हैं। कालांतर में 'तिरुच्चोगिनूर' 'तिरुच्चुकनूर' बन। शुकपुर, शुकपुरी और शुकग्राम आदि नामों के पीछे श्रीशुक योगी का संबन्ध भी जुड जाता है। श्रीशुक योगी या श्रीशुक महर्षि के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने यहाँ विलसित श्रीकृष्ण की आराधना की थी।

आळ्वारों और आचार्यों ने तिरुपति पहाड को वेङ्कटाचल, वेङ्कटगिरि और वेंगडम (वेङ्कटम्) नामों से अभिहित किया है। यहाँ पर दिव्य आनंद निलय विमान में श्रीवेङ्कटेश भगवान विराजमान हैं। इस क्षेत्र को विशिष्ट धार्मिक और पौराणिक प्रसिद्धि मिली है। दक्षिण भारत के तीर्थ क्षेत्रों में विशिष्ट स्थान तिरुमल को प्राप्त है। भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर का लीला पर्वत मानते हुए भक्त इस पहाड को 'कीडाद्रि' भी कहते हैं। यह श्रीमहाविष्णु का श्रीवैकुण्ठ ही मानते हैं। वैसे तो वैकुण्ठ विष्णु भगवान का वास स्थल ही है। यहीं श्रीमहालक्ष्मी समेत हो वे रहते हैं। गरुड ने भगवान के आदेश से ही इस वैकुण्ठ को भूमि पर लाकर रखा है। मान्यता है कि श्रीश्वेतवराह स्वामी ने इस प्रकार की आज्ञा दी थी। श्वेत वराह स्वामी भी विष्णु के अवतार ही थे।

* * *

अध्याय - 2

श्वेतवराह कल्प की गाथा - I

(श्रीवराह स्वामी का पाताल से भूमि का उद्धार करना, और गरुड द्वारा क्रीडाद्रि को धरती पर लाना)

(यह गाथा वराह पुराण, भाग-1, अध्याय-1 तथा 3 में वर्णित है)

दो हजार *चतुर - युगों* के बीच (अर्थात् आठ हजार *युगों* के बीच के समय में) जो कि ब्रह्म के लिए एक दिन और एक रात का समय है, सूर्य भगवान ने अपनी तीक्ष्ण किरणों द्वारा आग उगली थी। उस समय अनेकों अनेकों वर्षों तक वर्षाएँ भी नहीं हुई थीं। इस कारण से तापित और व्यथित साधुजन और *तपोधनों* ने, जिन्होंने अपनी तपस्या के बल पर आत्मानुभूति प्राप्त की थी, भूमाता के दुःख को दूर करने और *जनलोक* (सप्त लोकों में से एक, पृथ्वी) के रक्षार्थ ब्रह्मा के पास पहुँचकर प्रार्थनापूर्वक कहा कि जंगल और पर्वतमालाएँ प्रचंड अग्नि ज्वालाओं में जल कर राख हो गयी हैं। उस पर वायुदेव ने बहुवर्षों तक क्रुद्ध हो झंझाएँ चलायीं। घनघोर घटा समूह बने। मेघों ने मूसलाधार वर्षाएँ कीं। परिणामस्वरूप पृथ्वी पिघल कर पाताल में डूबी। इस स्थिति में पृथ्वीमाता एक हजार युग पर्यन्त रहीं। यह समय ब्रह्म के लिए एक रात का अंश था। युगों पर्यन्त का यह समय *प्रलयकल्प* था।

उस समय विष्णु, जो जीव तथा पदार्थों के सर्जक, संरक्षक और संहारक थे, एक वट पत्र पर शयन रत थे। उस समय *वटपत्रशायी* अपने आप में मग्न होकर पृथ्वी के पुनरुत्थान की सोच में लीन थे। पृथ्वी की रक्षा के ध्यान में थे। इस सोच को मन में रखकर वे *पाताल लोक* में पृथ्वी को ढूँढते पहुँचे। उस संदर्भ में उन्होंने भयंकर श्वेत वराह का रूप धारण किया था। उस वराह रूप में भगवान ने हिरण्याक्ष से भयंकर युद्ध किया। हिरण्याक्ष, उस समय नारकीय लोक के सम्राट थे। यही हिरण्याक्ष हिरण्यकशिप का भाई था। हिरण्याक्ष के पर्वताकार शरीर को श्वेतवराह अवतारी विष्णु ने अपने कठोर दंष्ट्रों से (नुकीले और तेज दोंतों से) चीर दिया। राक्षस के रक्त से रंजित होकर सात समुद्र लाल लाल हो गये। श्वेत वराह ने अपार जल राशि से पृथ्वी माता को अपने दान्तों पर सुरक्षित रखकर आदिशेष के फणों पर रख दिया। फिर खडे रह गये। उस समय ऐसा लगा कि वहाँ जनलोक का एक महापर्वत खडा है। विष्णु भगवान के कार्य से संतुष्ट होकर ब्रह्म, देवता समूह और महर्षि गण आदि ने *वेद मंत्रों* से श्वेत वराह अवतारी विष्णु भगवान का जय गान किया। सबने पृथ्वी को पुनर्व्यवस्थित करने की बात उनके सामने रखी।

श्वेत वराह ने पृथ्वी की स्थापना की और *सप्त सागरों* की सीमा रेखाएँ बाँधी। इतना ही नहीं पूर्वस्थित *सप्तलोकों* की भी प्रतिष्ठा की। तब जाकर विष्णु ने ब्रह्म को बुलाकर आज्ञा दी कि वे पूर्ववत

जगत की सृष्टि में लगें। तब से बहुत समय तक विष्णु भगवान ने पृथ्वी की रक्षा और जन रक्षा के लिए यहीं रहना चाहा। उसके लिए उन्होंने गरुड को वैकुण्ठ से *क्रीडाचल* को समस्त स्वार्गिक परिषद के साथ पृथ्वी पर लाने के लिए भी कहा। आज्ञा पाकर, गरुड वैकुण्ठ पहुँचे। तब समस्त *सुर समूह* विष्वक्सेन के नेतृत्व में पृथ्वी पर आया। विष्वक्सेन, वैकुण्ठ के रक्षक और विष्णु के सेनापति थे। इसी बीच वराह ने अपने वास के लिए उपयुक्त पवित्र क्षेत्र का भी चयन किया। यह क्षेत्र साठ *योजन* (600 मील) पर्यन्त विस्तृत था। गोमती नदी के दक्षिण में पूर्व सागर की पश्चिम दिशा में तथा रुक्मा - नदी की उत्तरी तट पर था। यह *पुण्य पुरुषों* के लिए उपयुक्त वास स्थल भी बन गया।

गरुड ने प्राकृतिक वैभव से, ऊँची - ऊँची पर्वत शिखरों से शोभित क्रीडाचल को उस पवित्र क्षेत्र में बसाया। ये पर्वत शिखर सुवर्ण आभा से मण्डित और बहुमूल्य मणि - माणिक्यों से युक्त थे। ऐसा लगता था मानो *पंचोपनिषदों* का उज्वल प्रकाश पुंज चमक रहा हो। उपनिषद देवता समूह उस क्षेत्र में बस गया। देवताओं के वास से पर्वत शिखरों की स्वर्णिम कांति और प्रबल हुई। उसी प्रान्त ने नारायणगिरि नाम से अभिहित होकर प्रसिद्धि प्राप्त की। नारायणाद्रि चौड़ाई में तीन *योजन* (तीस मील) और लंबाई में तीस *योजन* (300 मील) है। आकृति में आदि शेष सम है। पर्वत हरि के शंख के आकार में ढला है। यह क्षेत्र सभी प्राणियों के आवास के लिए उपयुक्त तथा पवित्र क्षेत्र बनकर ही रहा। समस्त मानव कोटि के लिए अपने को समर्पित करने योग्य बन गया। स्वरूप में अनुपम हो सभी के लिए *मुक्ति* प्रदाता के रूप में विलसित हो गया। यह क्षेत्र आकस्मिक यात्रियों को भी मोक्ष प्रदान करता है।

श्वेत वराह ने नारायणाद्रि को अपने द्वारा चयनित क्षेत्र में स्थापित करने का आदेश दिया। ऐसा करने के पश्चात् वहाँ पवित्र विमान में (मंदिर के गर्भ गृह में) वे स्वयं विराजमान हो गये। मंदिर का विमान अनेक कलशों से शोभित और बहुमूल्य मणि - माणिक्यों से मण्डित हो दिव्य उज्ज्वल प्रकाश से विलसित है। अमूल्य मणियों से लसित *महामणि मंटप* का सौंदर्य अवर्णनीय और अनुपम है। उससे सटकर मंदिर की पूर्वदिशा में पवित्र वन के बीच *स्वामी पुष्करिणी* है। इसकी दक्षिण दिशा में देवाधिदेव कमलाक्ष विष्णु भगवान शंख, चक्र और गदा से विलसित हैं। उनके वक्षःस्थल के दक्षिण पार्श्व में श्रीलक्ष्मी ने भी विलसित होकर *दिव्य विमान* को अपना वास बनाने का निर्णय लिया।

ब्रह्म, देवता समूह, मुनि गण, सप्त ऋषि और अन्य भक्तों ने तब श्रीश्वेत वराह स्वामी से प्रार्थना की - ''हे भगवान! आपके भीकर दंष्ट्रों और वक्र विकराल भौंहों से तथा उज्वल प्रखर अस्त्रों सम लटकती आपकी लटों से आपका स्वरूप अति भयंकर लग रहा है। देवताओं और भक्तों के संतोष के लिए आप सस्मित वदन हो विराजिएगा। ऐसे रूप में आप इस पर्वत पर ही रहिएगा। आपने मानवों और पवित्रात्माओं के वास के लिए पृथ्वी माता की रक्षा की है। इसलिए आप प्रशांत हो यहाँ रहिए। मानवों की रक्षा कीजिए। यहाँ से ही भक्तों की इच्छाओं की पूर्ति कीजिए। कामित वर प्रदान कीजिए। ध्यान

योग और कर्म योग द्वारा आपको पाने में अशक्त जनों के लिए भक्ति ही एक मार्ग होता है न, प्रभु! उसी मार्ग पर चलकर वे सर्व सिद्धियाँ पा सकेंगे।''

सब की प्रार्थना सुनकर तुरन्त वराह स्वामी ने अपना विकराल रूप वर्जित किया। प्रशान्त रूप को स्वीकारा। उस स्थिति में वे चतुर्भुज और स्मित वदन से युक्त हुए। अनेक आभूषणों से लसित हुए। श्रीदेवी और भूदेवी संयुत हुए। तब उन्होंने विनम्र देवता समूह को संबोधित करके कहा - ''मैं इस वेङ्कटाद्रि को वैकुण्ठ से अधिक चाहता हूँ। मेरा निर्णय है कि मैं यहाँ श्रीदेवी और भूदेवी सहित रहकर भक्तों की कामनाएँ पूरी करूँ।'' भगवान ने देवताओं को अपने अपने वास स्थानों पर लौट जाने का आदेश दिया। तुरत अन्तर्धान भी हो गये।

वैकुण्ठात् परमो ह्येषा वेङ्कटाख्यो नगोत्तमः।
अत्रैव निवसाम्ये श्री भूमि - सहितो ह्यहम्।। (श्लो - 12)

ददामि प्रार्थितान् अर्थान् मनुजेभ्यः सदा सुरान्।। (श्लो - 13)

(श्रीवाराह पुराण, भाग - 1, अध्याय - 35)

* * *

अध्याय - 3

वेङ्कटाद्रि पर वराह भगवान का वास तथा तत्परिणामतः पर्वत का महत्त्व

जब से श्रीवराह स्वामी ने पृथ्वी की रक्षा की और गरुड ने वेङ्कटाद्रि को वैकुण्ठ से लाकर प्रसू पर बसाया, तब से वे लक्ष्मी समेत इस पहाड पर अव्यक्त रूप से रहने लगे। इस पर्वत की चोटियाँ, जल धाराओं से युक्त होकर, तपस्यारत पुण्यात्मओं से विलसने लगीं। ब्रह्म ने स्वयं स्पष्ट रूप से उद्घोषित किया कि स्वामी श्वेत वराह *कल्प* के अन्त तक यहाँ अधिवसित रहेंगे। हर कल्प में वे पृथ्वी की रक्षा कर, स्थापित और पुनःपुनः सृजित करते ही रहेंगे। ऋषि - *मुनियों* द्वारा यह कल्प *श्वेत वराह कल्प* नाम से मान्यता पायेगा।

(हमारे संस्कार *संकल्पों* में भी श्वेत वराह कल्प का स्मरण किया जाता है। पहाडी श्रृंखलाओं से आवृत क्षेत्र ही *श्रीश्वेत वराह क्षेत्र* है।)

जब जब पाप, पवित्रता को नष्ट पहुँचाते हैं, जब जब *धर्म* को हानि पहुँचती है तथा *अधर्म* का विस्तार होता है, राक्षसों और दुष्टों का विकट रूप उभरता है, तब तब भगवान वराह *नर - देव* के रूप में अवतरित होते हैं। समय के अनुरूप रूप धारण कर पापों और पापियों का नाश करते हैं। सुधर्म की स्थापना के साथ - साथ पवित्रता को भी सुरक्षा देते हैं। वेद विद्याओं को प्रोत्साहित करते हैं। अपने वास क्षेत्र से सभी प्राणियों के सामने प्रकटित होते हैं। श्रीलक्ष्मी, देवता समूह तथा अन्य सेवक वृन्द के साथ *शेष शैल* पर भ्रमण करते रहते हैं। वेङ्कटाद्रि पर अपना स्थिर वास बनाते हैं। यह सब इसलिए कि वे इस क्षेत्र को *स्वर्ग* से अधिक आनंद प्रदायक मानते हैं। उनका विश्वास है कि यह अत्यंत पवित्र क्षेत्र है। स्वर्ग, सूर्य लोक और अपने वैकुण्ठ से भी यह क्षेत्र उन्हें अत्यंत प्रिय है।

आस्थाय श्वेत - पोत्रित्वं - उज्जहार धरां यदा। (श्लोक 4)

तदैवानाय्य वैकुण्ठाद अचलं गरुडेन वै।
कल्पादावेव भगवान लीलारस महोदधिः।। (श्लोक 5)

विहरन रमया - शार्धम् दरी - निर्झर सानूषु।
प्रकाशश्च प्रकाशश्च तिष्ठत एव सदा गिरौ।। (श्लोक 6)

यावत् - कल्पं वसत्येव प्रोक्तां च परमेष्ठिना।
कदाचित् पुण्य - शैलेभ्यो दर्शनं वितरत यसौ।। (श्लोक 7)

कल्पे कल्पे च धरणीं उद्धरत एवं - एव हि।
श्वेत वाराह रूपेण धरणी चोधृता यतः।। (श्लोक 8)

श्वेत वाराह कल्पस्याद आख्यया मुनयोः ययमू।। (श्लोक 9)

सर्वदा शेष शैलेन्द्रे विहरन रमया सह।
नित्यैर्मुक्तैश्च देवैश्च काम - रूपैश्च संयुवैतः।। (श्लोक 13)

तिष्ठत - एव सदा तस्मिन वेङ्कटाख्ये नगोत्तमे।
वैकुण्ठ - स्वर्ग सूर्येभ्यः स्वगेहेभ्योऽधिक अप्रियः।। (श्लोक 14)

अयं भगवतो ह्यद्यः पर्वतः पुण्य - काननः।। (श्लोक 15, अध्याय 36)

(वाराह पुराण, भाग-1, अ. 4, श्लो 4-15)

यह पर्वत मूलतः स्वर्ग के महाविष्णु की *क्रीडाद्रि* है। इसे जब वराह स्वामी ने अपना वास क्षेत्र बनाया तो इसका वैभव और अधिक बढ़ा। इसकी शक्तियाँ अनगिनत और अनमोल हो गयीं। इसीलिए यहाँ पर मानव शक्ति का भी फलीभूत होना अवश्य संभव हो जाता है। *मंत्रसिद्धि, ज्ञान सिद्धि* और *कर्म सिद्धि* आदि की, बिना अवरोध के, प्राप्ति सहज और सरल है। यहाँ तक कि स्वल्प आध्यात्मिक कार्यक्रम भी इस पर्वत पर संपन्न हो जाय तो इच्छित संकल्पों की सिद्धि में संपूर्ण सहायक हो जाते हैं। समस्त पवित्र *तीर्थ* इस पर्वत पर विराजित हैं। विश्वास और भक्तिपूर्वक उपासना से भक्त की (साधक की) सारी आकांक्षाएँ सिद्ध होती हैं। ज्ञानार्थी ज्ञान सिद्ध हो जाता है। उसे विद्वत्ता समग्र रूप से संप्राप्त होती है। जो भक्त सुवर्ण आदि की प्राप्ति से संपन्न होना चाहता है, उसे अवश्य प्राप्त होता है। जो सत्संतान की आकांक्षा से यहाँ पहुँचता है, उसे अवश्य संतान की प्राप्ति होती है। जो राज्याधिकार चाहता है उसे वह मिल ही जाता है। जो शारीरिक कमियों से निवृत्त हो सुखी रहना चाहता है, उसे स्वस्थता प्राप्त हो जाती है। स्वास्थ्य सिद्धि सरल हो जाती है। सभी भक्तों की इच्छाओं को पूरने का पवित्र क्षेत्र यही है। धन, धान्य, पशु संपत्ति आदि की इच्छाएँ भी पूर्ण होती हैं।

मंत्रसिद्धिस्तपस्सिद्धिर्यज्ञा सिद्धि स्तथैव हि।। (श्लोक 15)

काम्यस्य कर्मणः - सिद्धिर्येवं - अन्याश्च सिद्धयः।
भवन्त्यत्र नराणां च न हि विघ्नादिकं क्वचित्।। (श्लोक 16)

अल्पेन तपस्याभीष्टं सिध्यत - यस्मिन - गिरौ - वरे।
सर्व तीर्थानि सततं पुण्यान - यत्रैव सन्ति हि।। (श्लोक 17)

य एवं सेवते नित्यं श्रद्धा - भक्ति समन्वितः।
ज्ञानार्थि ज्ञानं आप्नोति द्रव्यार्थि कनकं बहु।। (श्लोक 18)

पुत्रार्थी पुत्रं आप्नोति नृपो राज्यं च विन्दति।
व्यंगश्च सांग सद्रूपं प्रशून धान्यानि विन्दति।। (श्लोक 19)

यं यं कामयते मर्त्यः तं तं आप्नोति सर्वथा।। (श्लोक 20)

(वराह पु. भाग-1, अ. 4, श्लो. 15-20)

कनकाचल पर आठ प्रकार के खान हैं। वे केवल पवित्रात्माओं को ही दर्शन भाग्य प्रदान करते हैं। युग युगों से यही होता आ रहा है। यह श्रीनिवास गिरि है। भगवान श्रीनिवास का अधिवास पर्वत है। एक समय यह सुवर्ण पर्वत के रूप में दिखाई देता है तो एक समय ज्ञान के प्रकाश के रूप में। एक समय वज्र - लहसुनियों का खान लगता है तो एक समय श्रीनिवास के दिव्य आवास के लिए अलंकृत दिव्य स्थली के रूप में। कभी पत्थरों का पहाड रूप में परिलक्षित होता है तो कभी दिव्य धाम बनकर। ये परिवर्तन समय के आवर्तन के साथ घटित होते रहते हैं।

परिणामतः कोई भी मनुष्य इसके महत्वपूर्ण रूप का न तो सही अनुमान लगा सकता है और न ही पवित्र प्रकृति के स्वरूप की कल्पना कर पाता है। वास्तव में यह वेङ्कटाद्रि प्राकृतिक तथा स्वर्णिम आभा से युक्त है। कलियुग में यह सामान्य पत्थरों का पर्वत ही लगता है।

अष्टानाम खनयः सन्ति लोहानां कनकाचले।
युग भेदेन दृश्यंते नराणां पुण्य कर्मणाम्।। (श्लोक 30)

श्रीनिवास गिरिश्चयं कदाचित कनकाचलः।
कदाचित ज्ञानरूपोयं कदाचिद् रत्नरूपकः।। (श्लोक 34)

श्रीनिवास इवाभाति कदाचिद् भूषणोज्वलः।
काल भेदेन केषानचित प्राकृताचल रूपधृत।। (श्लोक 35)

अप्राकृतस्स्वर्ण सानुर अपि श्री वेङ्कटाचलः।
प्राकृताचलवद् भूमौ भविष्यति कलौ युगे।। (श्लोक 36)

(वाराह पु. भाग-1, अ. 26, श्लो. 33)

संपूर्ण भक्ति से इस पर्वत पर चढनेवालों के पैरों में शक्ति बढ़ती है। पंगु गिरि लांघते हैं। अन्धों के नेत्र कमल सदृश हो निर्मल दृष्टि पाते हैं। मूक वाक्शक्ति पाकर ज्ञान प्राप्ति के मार्ग पर बढता है। बधिर को सब कुछ सुनाई देता है। निस्संतान स्त्री बहु संतानवती बनती है। गरीब धनी बनता है। यह

सब भक्ति से ही संभव है जो विश्वास और समर्पण भाव से युक्त रहती है। समुन्नत वरदान शक्ति से यह पर्वत विभासित है। इस सबसे यह स्पष्ट विदित है कि व्यक्ति संपूर्णतया और निश्चिततया वेङ्कटाद्रि से शुद्ध प्रकृति पा सकेगा। स्वस्थ और स्वच्छ मन पायेग।

वेङ्कटाद्रौ परां भक्तिं वहंगच्छति चेदगिरम्।
पंगुर्जंघाल एव स्याद अचक्षुः पद्मलोचनः।। (श्लोक 31)

मूको वाचस्पति र्दूराश्रावी तु बधिरो भवेत।
वंध्या तु बहु पुत्रा च निर्धन स्साधनो भवेत।। (श्लोक 32)

एतत सर्वं गिरौ भक्ति मात्रेनैव भवेद ध्रुवम्।
तत्त्वतो वेङ्कटाद्रेस्तु स्वरूपं वेत्तिकः पुमान।। (श्लोक 33)

(वाराह पु. भाग-1, अ. 8, श्लो. 31 - 33)

* * *

अध्याय - 4

विभिन्न युगों में क्रीडाद्रि के विभिन्न नाम

विभिन्न *युगों* और भिन्न भिन्न समयों में अनेक कारणों से *क्रीडाद्रि* विशिष्ट विशिष्ट अभिधानों से (नामों से) *मुनियों* द्वारा पुकारी गयी है। यथा *कृतयुग* में *वृषभाचल, त्रेतायुग* में *अंजनाचल, द्वापरयुग* में *शेषाचल* और *कलियुग* में *वेङ्कटाचल* (वाराह पु. भाग-1, अ. 4, श्लो. 21 - 37)। इनके अतिरिक्त निम्न उद्धृत नाम भी प्रचलित हैं -

चिंतामणि : वांछित कामनाओं की पूर्ति करने के कारण

ज्ञानाद्रि : ज्ञान प्राप्त कराने की शक्ति से मण्डित होने के कारण

तीर्थाद्रि : अनेक पवित्र तीर्थों से युक्त होने के कारण

पुष्कराद्रि : लाल लाल सुंदर कमलों से विराजित पुष्करिणियों से संयुत होने के कारण

***वृषाद्रि* या धर्माद्रि** : अपनी उन्नति के लिए धर्म देवता के इन पवित्र श्रेणियों में तपस्यारत होने के कारण

इतना ही नहीं, *कृत युग* में वृषभासुर नामक *राक्षस* ने अनधिकार पूर्वक इस पर्वत को अपने अधीन में कर यहाँ के ऋषि - *मुनियों* को पीडित किया था। लेकिन उसने तुंबुर तीर्थ में पाँच हजार वर्षों के लिए कठोर तपस्या भी की। इस घोर तपस्या के समय वह हर दिन *तुंबुरु तीर्थ* में पवित्र स्नान कर अपना सिर काटकर श्रीनरसिंह स्वामी के *शालग्राम* को एक फूल के समान अर्पित किया करता था। सिर कटने के तुरन्त बाद उसके शरीर पर एक और नया सिर उग आता था। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान नारायण प्रत्यक्ष हुए। उस राक्षस से कामना पूछा। राक्षस ने कोई वर नहीं माँगा। उसने नारायण के साथ केवल युद्ध करने की इच्छा प्रकट की। भक्त की इच्छा का तिरस्कार भगवान कैसे कर सकते हैं? फलतः दोनों के बीच द्वंद्व युद्ध चला। बहुत समय तक दोनों के बीच समरूप से युद्ध चला। अंततः नारायण को अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग करना पडा। वृषभासुर भी यही चाहता था। क्योंकि *सुदर्शन चक्र* से मरने वाले के लिए *परमपद* (स्वर्ग) प्राप्ति आवश्यंभावी है। परम गति सुनिश्चित हो जाने के पश्चात् *असुर* ने चाहा कि वह पहाड उसके नाम से पुकारा जाय। भगवान ने भव्यरूप से राक्षस की इच्छा स्वीकार की। उसे अपने बहुओं में लिया। तभी से इस पर्वत का नाम वृषभाद्रि पडा। *कृत युग* में यह वृषभाचल नाम से व्यवहृत रहा है।

(भविष्योत्तर पुराण, अध्याय-1, श्लो. 40 - 68 - इस गाथा को जनक के पुरोहित शतानंद ने राजा जनक को सुनाया था।)

कनकाद्रि : इस पर्वत का आकार सुवर्ण कुंभ (कनक घटा) के रूप में होने के कारण, यह नाम पड़ा।

नारायणाद्रि : नारायण नामक एक ब्राह्मण ने इस पर्वत पर घोर तपस्या की थी। उसके नाम पर ही यह नारायणाद्रि हुआ।

(भविष्य पुराण ने इस पर्वत को चार *युगों* में चार नामों से ख्यात बताया है : वृषाद्रि या वृषभाद्रि, अंजनाचल, शेषाचल और वेङ्कटाचल। वाराह पुराण भाग - 1, अ. 1, श्लो. 57 - 58 के अनुसार *कृतयुग* में यह *अंजनाद्रि, त्रेतायुग* में *नारायणाद्रि, द्वापरयुग* में *सिंहाद्रि* तथा *कलियुग* में *वेङ्कटाचल* या *वेङ्कटाद्रि* नामों से प्रसिद्ध रहा है।)

वैकुण्ठाद्रि : विष्णु भगवान के अधिवास धाम वैकुण्ठ से लाकर इस पर्वत को यहाँ प्रतिष्ठित करने के कारण यह वैकुण्ठाद्रि नाम से प्रसिद्ध है।

सिंहाचल : नृसिंह का अवतार लेकर राक्षस हिरण्यकशिप के पुत्र प्रह्लाद की रक्षा हरि ने की है। इस घटना का प्रान्त यही माना जाता है। इसीलिए यह सिंहाचल बन पड़ा।

अंजनाद्रि : *वनचरों* के राजा केसरी की पत्नी थी अंजनादेवी। संतान के लिए उन्होंने मतंग महर्षि से मार्ग की सलाह माँगी। महर्षि ने कहा कि पंपानदी (हंपी के पास) के किनारे *नृसिंहाश्रम* के पास से पचास *योजन* की दूरी पर वेङ्कटाचल पर आकाश गंगा की झरी के पास जाकर बारह वर्ष की तपस्या करेंगी तो उनकी इच्छा पूरी होगी। यह स्थान नारायण गिरि के उत्तर में एक कोस की दूरी पर है। तपस्या के फलस्वरूप अंजनादेवी को एक पुत्र होगा। मतंग ऋषि की सलाह लेकर अंजनादेवी वेङ्कटाद्रि पहुँची। वहाँ की स्वामी पुष्करिणी में पवित्र स्नान किया। उसकी प्रदक्षिणाएँ की। वहाँ के *अश्वर्थ वृक्ष* की भी *प्रदक्षिणा* की। स्वामी पुष्करिणी तट पर विराजमान वराहस्वामी का *दर्शन* किया। फिर वे आकाशगंगा तीर्थ पहुँची। अपने पति केसरी और *मुनियों* के अशीर्वाद लेकर अपने बारह वर्ष की तपस्या आरंभ की। *तपस्या* के प्रथम वर्ष में अंजनादेवी ने केवल जल ग्रहण किया। वायुदेव ने प्रसन्न होकर इसके बाद हर दिन एक फल दिया। बारहवें वर्ष के अंत में वायुदेव ने उन्हें एक विशेष फल प्रदान किया। इससे वे गर्भवती हुईं। उनको एक पुत्र हुआ। नाम रखा गया आंजनेय। आगे उन्हें हनुमान नाम मिला। इसी हनुमान ने देवताओं की सहायता की। अंततः वे राम से मिले और उनके अपर भक्त हो गये। अंजनादेवी के लिए योग्य पवित्र तपस्या स्थल बनने के कारण इस पर्वत को *त्रेतायुग* में अंजनाचल नाम मिला।

(इस गाथा का पूरा विवरण भविष्योत्तर पुराण के अध्याय - 1 के श्लोक 68 - 84 में मिलता है। वाराह पुराण भाग - 1 अध्याय - 4 के श्लोक 28 - 29 में अंजनादेवी की तपस्या और हनुमान के जन्म का संकेत मात्र मिलता है।)

वराहाद्रि : वराह इस क्षेत्र में स्थित रहने के कारण यह *वराह क्षेत्र* है।

नीलगिरि : वानरों के प्रधान 'नील' का वास स्थान होने के कारण यह नीलगिरि नाम से प्रसिद्ध है।

वेङ्कटाचल या वेङ्कटाद्रि : *अमृत* अर्थ से युक्त धातु ''*वें*'' है और ''*कट*'' मानी *ऐश्वर्य* से जुडकर ''वेङ्कट'' शब्द बना है। यह पर्वत संसार की विभूतियों और स्वर्ग प्राप्ति प्रदान करने की शक्ति से मण्डित होने के कारण ''वेङ्कटाद्रि'' नाम से अभिहित है।

वेङ्कारो अमृत बीजस्तु कटम ऐश्वर्य मुच्यते।
अमृत ऐश्वर्य संघत्वाद वेङ्कटाद्रि रिति स्मृतः।।

(वाराह पुराण, भाग - 1, अ. 4, श्लो. 31)

''*वें*'' और ''*कट*'' धातुओं के लिए एक और दूसरा अर्थ भी निष्पन्न किया गया है। ''*वें*'' का अर्थ सर्वपाप और ''*कट*'' का अर्थ 'काटनेवाला या नाश करनेवाला'। इस पर्वत ने श्रीकालहस्ति के माधव नामक एक ब्राह्मण के सभी पापों का नाश किया था। यह *कलियुग* में घटित घटना है। फलतः इस अद्रि को 'वेङ्कटाद्रि' नाम मिला। इस गाथा का विस्तारपूर्वक वर्णन ब्रह्माण्ड पुराण और भविष्योत्तर पुराण में मिलता है। ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि ऋषियों द्वारा यह नाम प्रचार में आया है। उन *ऋषियों* ने भृगु महर्षि के द्वारा यह पवित्र गाथा सुनी थी। यह 'वेङ्कटाचल माहात्म्यम्' में भी वर्णित है। भविष्योत्तर पुराण के अनुसार चतुरानन (ब्रह्म) से *कलियुग* में यह नाम प्रचार किया गया है।

अनेन पापजालं वै यस्माद् दग्धं द्विजन्मनः।। (ब्र. पु. अ. 6. श्लो. 42)

वेङ्कटाचल इत्यस्य प्रसिद्धिर्भुवि वर्तताम्।
सर्वा पापानि वें प्राहुः कटस् - तद् - दाह उच्यते।। (वही. श्लो. 43)
सर्वपाप दहो यस्माद - वेङ्कटाचल इत्यभूत।। (वही. श्लो. 44)
तदा नाम चकार आद्रेर्वेङ्कटाचल इत्यपि।
सर्व पापानि वें प्राहुः - कटस् तद्दाह उच्यते।। (भवि. पुराण, अ. I, श्लो. 226)
तस्माद वेङ्कट शैलो अयं लोके विख्यात कीर्तिमान। (वही. अ. V, श्लो. 227)

श्रीनिवासगिरि : देवताओं के इस गिरि पर भगवान विष्णु ने दर्शन दिया था। विष्णु के वक्षःस्थल पर दक्षिण पार्श्व में (दा ओर) श्रीलक्ष्मी का वास है। इसीलिए भगवान विष्णु का सार्थक नाम 'श्रीनिवास' है। उन्होंने इस गिरि को वास बनाया। इसीलिए इस गिरि का नाम श्रीनिवास गिरि पड़ा।

आनंदाद्रि : *श्रीवैकुण्ठ* के निवासी देवता समूह का आनंद के साथ यहाँ रहना और अखण्ड आनंद प्रदाता भगवान का वास क्षेत्र होना दोनों इस नाम के पीछे है। 'आनंदाद्रि' वास्तव में सब भक्तों को आनंद प्रदान करनेवाली अद्रि है।

श्रीशैल : आनंद और संपत्ति प्रदान करने की विलक्षण शक्ति से विलसित होने के कारण और श्रीलक्ष्मी देवी का वास स्थान होने के कारण यह शैल *'श्रीशैल'* कहलाता है।

शेषशैल, शेषाचल और शेषाद्रि : *द्वापर युग* में वायुदेव एक बार भगवान श्रीमन्नारायण के दर्शनार्थ तूफानी वेग से *वैकुण्ठ* पहुँचे। उस समय भगवान विष्णु श्रीदेवी के साथ विलास मंदिर में थे। उस समय द्वार रक्षक आदिशेष थे। उन्होंने वायुदेव को रोका। इस पर वायुदेव क्रुद्ध हुए। दोनों के बीच कुछ समय तक द्वंद्व युद्ध चला। अंततः वे नारायण के पास पहुँचे। हर एक ने अपना दर्प प्रदर्शित करते हुए कहा कि वही पराक्रमी है और श्रेष्ठ है। उनके बडप्पन की परीक्षा के लिए भगवान ने आदिशेष से कहा कि ''तुम अपने बल से आनंद पर्वत को कसकर पकडे रहो।'' वायुदेव से कहा - ''तुम इस पर्वत को मेरु पर्वत की उत्तरी दिशा में उड़ाकर फेंको।'' परीक्षा का स्वरूप यही था कि वायुदेव आदिशेष के परिष्वंगन (घेरे से) पर्वत को हिलायेगा। वायुदेव और आदिशेष के बीच शक्ति प्रदर्शन की यह परीक्षा थी। भयंकर होड चली। समस्त संसार हिले। शेष की विष ज्वालाओं और वायुदेव के प्रकंपनों से सर्वत्र हलचल मच गयी। ब्रह्म, इंद्र और समस्त देवता समूह वहाँ पहुँचा। संग्राम को विराम देने की बात कही। प्रार्थना की। परन्तु न वायुदेव ने बात सुनी और न ही आदिशेष ने। तब ब्रह्म ने आदिशेष से कहा - ''भगवान विष्णु आपकी असमान शक्ति को जानते हैं और हम सब भी। विश्व मंगल के लिए हे आदिशेष! आप कुछ ढीला कीजिए ताकि आप की कृपा से वायुदेव को विजय मिले। हमेशा विष्णु की सेवा में रत रहने के कारण आपने पूर्णता पायी है। ईर्ष्या आप के लिए शुभकर और श्रेयस्कर नहीं है।'' इस पर आदिशेष ने अपने को थोडा ढीला किया। वायुदेव का प्रकोप बढा। तेज तूफानी हवा चली। आनंद पर्वत केवल आधी *क्रोश* की दूरी पर जा गिरा और सुवर्णमुखी नदी की उत्तरी दिशा में स्थिर हो गया। आदिशेष अपने पर थोपी गयी पराजय से कुछ खिन्न अवश्य हुए। ब्रह्म तथा अन्य देवताओं ने उन्हें फिर समझाया ''आप वेङ्कटाद्रि में समाहित रहेंगे और भगवान विष्णु भी यहाँ रहेंगे।'' इसके बाद ब्रह्मादि देवता समूह वहाँ से अपने अपने लोकों की ओर चल दिया। तब आदिशेष विष्णु के सामने प्रणमित हुए। फिर वे एक विशाल पर्वत बने। इसकी विस्तृति तीस *योजन* पर्यन्त थी। आदिशेष का फण वेङ्कटाद्रि बना जहाँ पर

श्रीवेङ्कटेश्वर विलसे। मध्यभाग अहोबिलम् हुआ। यहाँ पर श्रीनृसिंह स्वामी ने अपना वास बनाया। पूँछ का भाग श्रीशैल बना जहाँ श्रीमल्लिकार्जुन रहने लगे। इस प्रकार *द्वापर युग* में यह पर्वतमाला शेषशैल और शेषाद्रि नामों से ख्यात हो गय।

(यह गाथा भविष्योत्तर पुराण भाग - 1, श्लो. 85 - 132 में मिलती है।)

इस तरह उस समय से पवित्रता तथा महानता से लसित होकर स्वर्ग का *क्रीडाचल* श्रीवराह स्वामी और श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए पृथ्वी का वास क्षेत्र बना। अनेक शुभ लक्षणों एवं सुगुणों से अभिमण्डित हो यह क्षेत्र अनुपम शक्तियों से पूर्ण हुआ है। चतुर्मुख ब्रह्मा, षण्मुख सुब्रह्मण्य, सहस्राक्ष इंद्र और सहस्रफणी आदिशेष सब मिलकर भी इस क्षेत्र की महिमा का वर्णन नहीं कर पायेंगे। चाहे सामान्य की चर्म चक्षुओं के लिए सामान्य पहाड सा भले ही क्यों न दिखे, फिर भी मानवों की भक्ति यहाँ प्रफुल्लित होकर निर्मल बनेगी। *भक्ति* की तीव्रता से मानव वांछित फल प्राप्त करेंगे। संक्षेप में कहा जाय, तो यही होगा कि समस्त मानव कोटि को *धर्म, अर्थ, काम* और *मोक्ष* की सिद्धि यहीं मिलेगी। तपस्या करने की शक्ति के अभाव में भी मानव वेङ्कटाद्रि से आलंबन पायेंगे और मुक्ति प्राप्त करेंगे।

(वराह पु. भाग-1, अ. 4, श्लो. 35-37 तथा अ. 3, श्लो. 32-33)

* * *

अध्याय - 5

श्रीस्वामी पुष्करिणी तथा अन्य तीर्थों का माहात्म्यम्

श्रीस्वामी पुष्करिणी भगवान विष्णु की विहार *पुष्करिणी* है। इस का मूल स्थान *वैकुण्ठ* धाम है। श्रीलक्ष्मी और भूदेवी के लिए अत्यंत प्रिय है। इसकी जल राशि अति पवित्र, सुगन्ध युक्त, स्वच्छ, निर्मल और ग्रहणीय है। यह गंगा और अन्य पवित्र नदियों की जन्मधात्री है। *गरुड* ने इसे वैकुण्ठ से लाकर श्रीविष्णु के विहार के लिए यहाँ स्थापित किया है। श्रीस्वामी पुष्करिणी सभी पापों का परिहारक है। स्वर्ग की *विरजा* नदी के समान पापों को नाश करती है। समयानुसारेण उन्नति प्रदान करती है। इसमें नित्य स्नान सभी पापों को दूर कर सत्पल प्रदान करता है। इसके जल के दर्शन मात्र से और स्पर्श मात्र से समस्त भौतिक इच्छाएँ पूरी होती हैं। गंभीरता से इसका ध्यान करना अत्यंत *महिमा* युक्त बनाता है।

(वराह पु. भाग-1, अध्याय - 3, श्लो. 17 - 21)

स्वामी पुष्करिणी तट पर निवास करनेवाले चराचर प्राणी *देवताओं* से अधिक संपन्न माने जाते हैं। लेकिन *वैभव* को बहुत कम लोग जानते हैं तथा पहचानते कम हैं (वराह पु. श्लो. 22 - 23)। इसमें स्नान से *प्रायश्चित* का फल भी सद्यःप्राप्त होता है। पुष्करिणी स्नान सभी कामनाओं को पूरा करता है और वेङ्कटाद्रीश से संबद्ध करता है। इससे प्राप्त फल का मूल्य अवर्णनीय और अतुलनीय है। स्वामी पुष्करिणी में स्नान, सद्गुरु की सेवा से ज्ञान प्राप्ति, और *एकादशी व्रत* को रखना - इन तीनों की प्राप्ति अत्यंत कठिन है। इससे अधिक, मनुष्य जन्म की प्राप्ति, संपूर्ण आयु की प्राप्ति, उचित कार्य संपन्न करना तथा स्वामी पुष्करिणी स्नान करना, ये सभी सामान्यतः असंभव है।

स्वामि पुष्करिणी स्नानं सद्गुरोहः पाद सेवनम्।
एकादशी व्रतं चापि त्रयं अत्यंत दुर्लभम्।। (श्लो. 25)

दुर्लभं मानुषं जन्म दुर्लभं तत्र जीवनम्।
स्वामि पुष्करिणी स्नानं त्रयं अत्यंत दुर्लभम्।। (श्लो. 26)

स्वामी पुष्करिणी स्नान में निहित पाप विनाशन शक्ति असीम और अनंत है। तारकासुर संहार के कारण श्रीसुब्रह्मण्य स्वामी को जो *ब्रह्महत्या* पाप लगा था। उसे स्वामी पुष्करिणी के स्नान ने मिटाया था। (वरा. पु. श्लो. 28 और 29)। विष्णु भगवान को अर्पित नित्य कार्यक्रमों और आनुष्ठानों का निर्देश वेदों द्वारा किया गया है। लेकिन स्वामी पुष्करिणी के तट पर, समय समय पर किये जानेवाले धार्मिक अनुष्ठानों से शारीरिक कमियाँ और पंगुताएँ दूर हो जाती हैं। इसका उल्लेख तो नहीं हैं, लेकिन इसके साक्ष्य प्रस्तुत हैं। वासव का संदर्भ यह स्पष्ट करता है। गौतम ऋषि ने इन्द्र को सहस्राक्ष होने का शाप

दिया था। इससे उसके शरीर में सहस्र आँखें उद्भूत हुईं। यानी सहस्र रंध्र पडे। इन्द्र को उनसे मुक्ति स्वामी पुष्करिणी में स्नान से मिली है (वरा. पु. श्लो. 31 - 32)।

दशरथ पुत्र राम रावण संहार के लिए भाई लक्ष्मण, हनुमान और सुग्रीव सहित *पंपा सरोवर* के तट प्रान्त से गुजरते हुए अंजनादेवी की प्रार्थना पर वेङ्कटाचल पधारे थे। उस समय श्रीरामचन्द्र जी ने अपने परिवार सहित स्वामी पुष्करिणी में स्नान किया। एक रात वहीं ठहरे। तत्पश्चात् उन्होंने रणभूमि की ओर प्रस्थान किया। लंका पहुँचकर रावण पर विजय प्राप्त की (वरा. पु. अ. 41, श्लो. 3 - 6)। रावण और उसकी शक्तिशाली सेना पर विजय प्राप्ति के साथ साथ उन्हें सीता भी मिली। सीता माता के साथ वे अयोध्या पहुँचे। राज्य सिंहासन पाकर अनन्त काल पर्यन्त राज्य किया। राम की विजय और राज्य प्राप्ति का श्रेय स्वामी पुष्करिणी स्नान को भी मिलता है। (वरा. पु. अ. - 42, श्लो. 27-28)

श्रीवराह स्वामी ने वेङ्कटाचल की महिमा और श्रीस्वामी पुष्करिणी की महत्ता के बारे में अपनी देवेरी धरणी देवी (भूदेवी) को बताया थ। साथ-साथ अन्य पवित्र *तीर्थों* की महानता भी उसी संदर्भ में बतायी। उस समय उन्होंने स्पष्ट घोषित किया है कि तीनों लोकों के समस्त *पवित्र तीर्थों* में स्नान से प्राप्त होनेवाले पुण्य के समान फल मात्र *'स्वामी पुष्करिणी'* स्नान से मिल जाता है। पवित्र स्वामी पुष्करिणी की सेवा के लिए त्रिलोकों के तीर्थ राज आकर इस पवित्र गिरि पर विराजमान हुए हैं।

(वरा. पु. भाग - 2, अ. - 1, श्लो. 50 - 52)

बहुत पुराने समय में शंखण नामक एक पदच्युत राजा था। वे स्वामी पुष्करिणी के उत्तरी तट पर छः मास पर्यन्त कुटिया बनाकर रहे। उस कुटिया के पास एक वल्मीक भी था। पुष्करिणी में तीन बार पवित्र स्नान कर पवित्र मन से रोज श्रीवेङ्कटेश्वर की उपासना करते थे। राजा की भक्ति पूर्वक उपासना से प्रसन्न होकर, भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर श्रीदेवी और भूदेवी सहित अपने भव्य *विमान* में *पुष्करिणी* के मध्य से उभरकर प्रकट हुए। राजा शंखण को दर्शन देकर राज्य की पुनः प्राप्ति का वर दिया। उस समय ब्रह्म, *ऋषि - मुनि, सिद्ध लोग* और *सप्त ऋषि* भी वहाँ थे। उनके समक्ष ही स्वामी ने राजा से कहा - ''हे राजन्! जब आपने श्रीस्वामी पुष्करिणी में पवित्र स्नान किया तभी आप में *महा-भक्ति* उत्पन्न हो गयी। इतना ही नहीं, आप का राज्य आप को मिल ही गया। इसी प्रकार जो भी स्वामी पुष्करिणी में पवित्र स्नान करता है उसके सारे पाप दूर हो जाते हैं और *स्वामित्व* उसकी भक्ति की मात्रा और प्रखरता के अनुरूप मिल जाता है। उसका मन स्वच्छ निखरता है। अंततोगत्वा मुझे प्राप्त करता है। वह कभी भी दूसरों की अधीनता में नहीं रहेगा। पराधीन नहीं होगा।''

भगवान की इस घोषणा के पश्चात् देवताओं ने उच्च स्वर में कहा कि इस पुष्करिणी को *''श्रीस्वामी पुष्करिणी''* कहना ही समुचित होग। इससे संबन्धित चिरंतन महत्ताओं के कारण ही यह

सकल *तीर्थ साम्राज्ञी* (स्वामिनी) हैं। प्राचीन *रूढियों* के अनुसार भी यह तीर्थ रानी है। स्वयं प्रभु ने इसे उपयुक्त रूप से व्याख्यायित किया है। यही इस तीर्थ की महानता और शक्ति का निरूपक है। *''स्वामित्वम्''* प्रदान करना इस पुष्करिणी का प्रथम गुण है। स्वामी की उत्कृष्टता का अधिसूचक है यह *स्वामी* पुष्करिणी। इस तीर्थ का महत्व इस प्रकार उद्घोषित है -

मा शुचस्त्वं मयादत्तं स्वामित्वं पूर्वं आगतम्। (श्लो. 37)

यास्मात तव महाभक्तिं - स्वामि - पुष्करिणी जले।
येकेचन समागत्य स्नानं कुर्वन्ति संयुताः।। (श्लो. 38)

स्वामि पुष्करिणी तीर्थे स्वामित्वं प्राप्नुयुर्नराः।
तेषां व्रतानुगुण्येन स्वामित्वं भवति ध्रुवम्।। (श्लो. 39)

स्याद्धि तेषां पराधीन भावलेशः कदापि न।
त्वं च गत्वा महीपाल कुरु राज्यं अकण्टकम्।। (श्लो. 40)

समक्षं देवदेवानां इत्युक्त्वन्तरधीयत।
स्वामि पुष्करिणी शब्दो रुढास तस्मिनत्सरोवरे।। (श्लो. 41)

व्युत्पत्तिः कथिता तस्यासतीर्थानां स्वामिनि यतः।
स्वामि पुष्करिणीत्येव तस्मात पूर्वं पुरातनः।। (श्लो. 42)

प्रोक्तेदानीं भगवता व्युत्पत्तिस् तस्य सम्मता।
स्वामित्वस्य प्रदानाचोह स्वामि पुष्करिणी त्वियम्।। (श्लो. 43)

अहो! महत्वं तीर्थस्य.....। (श्लो. 44)

(वरा. पु. भाग - 1, अ. - 6, श्लो. 37 - 44)

स्वामी पुष्करिणी का *''मुक्कोटि* पर्व'' (तीन करोड तीर्थों का मिलन पर्व) *धनुर्मास* के *शुक्ल द्वादशी* को मनाया जाता है। यह साधारणतः दिसंबर - जनवरी के बीच आता है। इस तिथि पर सूर्योदय के समय के साथ विष्णु *चक्र* (चक्रत्ताळ्वार) का उत्सव सहित स्वामी पुष्करिणी में स्नान संपन्न होता है। विश्वास है कि उस समय सकल *देवता समूह* पुष्करिणी में प्रवित्र स्नान के लिए वेङ्कटाद्रि पहुँचता है। यह दिन अत्यंत पवित्र दिन माना जाता है। भक्त जन तीर्थ स्नान करते हैं। (स्कंद पु. भाग - 1, अ. 17, श्लो. 20 - 23)

सत्रह तीर्थों का माहात्म्य

1. *कपिल तीर्थम्*

(वरा. पु. भाग - 1, अ. 8, श्लोक 4 - 8 में इसके बारे में संक्षिप्त उल्लेख है। इसका समग्र परिचय वामन. पु. अ. 4, श्लो. 36 - 47 में प्राप्त होता है।)

शेषाद्रि पदतल प्रांत में कपिलेश्वर *लिंगाकार* में अवतरित हुए हैं। इससे पहले भगवान शिव *पाताल* लोक में कपिल मुनि द्वारा आराधित थे। कुछ विशिष्ट कारणवश कपिलेश्वर लिंग रूप में भूमि से निकलकर भूमि तल पर यहाँ उद्‌भवित हुए हैं। सुरों (देवताओं) ने भगवान शिव की यहाँ आराधना की है। जहाँ उद्‌भूत हुए हैं वहीं उनकी प्रतिष्ठा भी की। कपिलेश्वर के लिंग रूप में उद्‌भवित होने से पहले ही *कामधेनु* (सुर गाय) यहाँ आ गयी। यहाँ एक छोटी गुफा है। इसी गुफा का नाम ''कपिलतीर्थ'' है। यहाँ एक तीर्थम् (झरनी) भी है। यहाँ के शिव की आराधना - पूजा से सभी पाप मिट जाते हैं। कपिलेश्वर की शक्ति अनुपम है (वरा. पु.)।

कपिल लिंग मूलतः *पाताल लोक* में विराजित तथा कपिल महर्षि से पूजित था। *कामधेनु* उनका *अभिषेक* किया करती थी। यह *लिंग* पृथ्वी को भेद कर ऊपर आया है। लिंग का ऊपर की ओर बढ़ना *कामधेनु* को स्वीकार नहीं था। *कामधेनु* ने अपने खुर से बढती को रोकने का प्रयास किया। परिणामतः प्रारंभ की निशान लिंग पर पडी। लिंग का निछला भाग चाँदी के समान धवल और मध्य भाग सुवर्ण आभा से अधिक प्रकाशमान है। लिंग का शिरो भाग सूर्य प्रकाश के समान उज्ज्वल है। इनके पाँच सिर हैं। त्रिनेत्र (तीन आँखें) भी गोचरित हैं। पाँच रंगों से युक्त होकर देखने पर प्रचण्ड लगते हैं, लिंग रूपी शिवजी। लिंग का मूल *पाताल* में शाश्वत रूप से है। कपिल महर्षि के द्वारा सबसे पहले आराधित होने के कारण यहाँ के शिव जी का नाम कपिलेश्वर पडा। *कृत युग* से ये यहाँ पर विराजमान हैं। ये *त्रेता युग* में *अग्निदेव* से आराधित हुए थे। इसलिए ये 'अग्नेय लिंग' भी माने जाते हैं। इनका आदि - अंत कोई पा नहीं सकते। (कहा जाता है कि पहले ब्रह्म ने इस लिंग को नापने के लिए आदि तक पहुँचने का प्रयास किया था और विष्णु ने अन्त का पता लगाने। दोनों अंततः असफल ही रह गये।)

द्वापर युग (तीसरा युग) में भगवान विष्णु के *चक्र* (सुदर्शन) ने इनकी उपासना की। *कलियुग* (आज का चौथा युग) में भी यह आराधना जारी है। यहाँ का लिंग कपिला गाय के द्वारा भी पूजित है। कपिलेश्वर के सामने पवित्र जल धारा और तीर्थ *सरोवर* देखने को मिलते हैं। इसी सरोवर के *बिल* से कपिलेश्वर उभर कर पृथ्वी पर विलसित हैं। पवित्र जल से संपूरित *कपिल तीर्थ* की झरी अत्यंत महिमा युक्त है। इसके दर्शन मात्र से पाप झड जाते हैं। इसमें पवित्र स्नान करने से *अश्वमेध* यज्ञ और *वाजपेय याग* का फल मिलता है। जल प्रपात का स्नान पुनर्जन्म राहित्य प्रदाता है। कहने का तात्पर्य यह कि यहाँ का पवित्र स्नान मनुष्य को आगे के जन्मों से मुक्त करता है एवं मुक्ति प्रदान करता है।

कार्तिक मास में *''मुक्कोटि पूर्णिमा''* के दिन त्रिलोकों के *सभी तीर्थ* आकर इस तीर्थ में समाहित रहते हैं। वे मध्याह्न की चार *घंटिकाओं* (चार घण्टों) तक यहाँ रहते हैं। उस समय पर इस तीर्थ में पवित्र स्नान *ब्रह्मलोक* सिद्धि प्रदान करता है। यहाँ एक तिल सम सुवर्णदान *मेरु पर्वत* सम पुण्य देता है। इस संदर्भ में यहाँ किया जानेवाला अन्नदान *सोम लोक (चंद्रलोक)* में अन्नदान सम माना जाता है। यहाँ *कन्यादान* (लडकी का विवाह) करना, *गोदान* करना, *विद्यादान* करना, *विद्या - मंत्रोपदेश* कराना - सब *स्वर्ग* (देवताओं का लोक) लोक सिद्धि के कारक हैं। *कैलाश, वैकुण्ठ* और *ब्रह्मलोक वास* की प्राप्ति की इच्छा भी पूरी होती है। जो यहाँ मंत्र-श्लोक (मंत्रोच्चारण) सहित समस्त *तीर्थों* के समागम के समय पर पवित्र स्नान करता है, उसे उपयुक्त सभी फल प्राप्त होते हैं। यहाँ का *कार्तिक* पूर्णिमा के दिन का स्नान अत्यंत महत्वपूर्ण और शान्ति तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला होता है। यह *विष्णु पादम्* (विष्णु का चरण) प्राप्ति कारक है।

(वामन. पु. अ. - 4, श्लो. 36 - 47 तथा 50 - 57)

जब श्रीवेङ्कटेश्वर ने अपनी माता सम सेविका वकुलमाता को पद्मावती देवी के साथ अपना विवाह कराने के लिए आकाशराजा के पास भेजा था, तब उन्होंने वकुलामाता से पहले *कपिल तीर्थ* में पवित्र स्नान करने और कपिलेश्वर की पूजा करने की बात भी कही थी। माता ने ऐसा ही किया था। उनको अपने कार्य में सफलता भी मिली थी। (भविष्योत्तर पु. अ. - 8, श्लो. 79 - 82)

2. *शक्र तीर्थम्*

कपिल तीर्थम् के ऊपर पर्वत शिखर पर अत्यंत पवित्र *शक्र तीर्थम्* है। माना जाता है कि शक्र (इन्द्र) को शक्र तीर्थ स्नान से गौतम ऋषि के शाप से मुक्ति मिली थी। अहल्या से छद्म रूप में मिलने के प्रयत्न के करण ही गौतम ने इन्द्र को शाप दिया था। अहल्या गौतम महर्षि की धर्म पत्नी थीं। शक्र तीर्थ को *वज्र तीर्थ* भी कहते हैं।

3. *विष्वक्सेन सरोवर*

शक्र तीर्थम् के ऊपरी प्रान्त में विष्वक्सेन *सरस्* (तीर्थम्) है। विष्वक्सेन वरुण के पुत्र हैं। अपनी *तपस्या* के बल से उन्होंने विष्णु से सारूप्य प्राप्त किया है। विष्णु के सान्निध्य (सन्निधि) में रहते हुए वे *वैकुण्ठ* की सेना के सेनापति भी हैं। विष्णु सारूप्य की प्राप्ति के फलस्वरूप ये भी शंख - चक्र धारी बने हैं।

4-8. *पंचायुध तीर्थम्*

भगवान विष्णु के पाँच आयुध हैं - *शंख, चक्र, गदा, सारंग* (धनुष) और *नंदक* (खड्ग)। इन आयुधों के नामों से *विष्वक्सेन ससस्* में पाँच तीर्थ विराजमान हैं। ये पाँच तीर्थ अत्यंत पवित्र और महत्वपूर्ण हैं।

9. *अग्निकुण्ड तीर्थम्*

यह तीर्थ *पंचायुध तीर्थ* के ऊपर है। उस तक पहुँचना दुष्कर और कठिन है।

10. *ब्रह्म तीर्थम्*

ऊपर स्थित तीर्थों में यह अंतिम *तीर्थ* है। इसे *महाहत्या* पाप को शमित और परिहरित करने की शक्ति प्राप्त है। यह अत्यंत महिमा युक्त माना जाता है।

11-17. *सप्तर्षि तीर्थम्*

ब्रह्म तीर्थम् के पास सप्त ऋषियों के नाम पर सात तीर्थ हैं - कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, और वशिष्ठ। इन तीर्थों का जल अति पवित्र माना जाता है। ये सप्त तीर्थ सात तीर्थों का समूह है। इनमें क्रमशः एक के बाद एक का महत्व दस गुना अधिक गिना जाता है।

एक बार एक ब्राह्मण ने समस्त *तीर्थों* की *यात्रा* का संकल्प लिया। उस समय विष्णु देव ने उनके सपने में दर्शन देकर सलाह दी कि ''इस *पुष्कर शैल* पर अति पवित्र तीर्थ हैं। ये तीर्थ अत्यंत महिमावान है। इन *तीर्थों* का आरंभ *''कपिल तीर्थम्''* से होता है। अगर तुम इन तीर्थों में पवित्र स्नान करोगे तो अमित फल पाओगे। इन *तीर्थों* में पवित्र हृदय से, धार्मिक दृष्टि से स्नान करोगे तो समस्त पापों का परिहार होगा। अनेक *तीर्थों* के पवित्र - स्नानों से अधिक फल मिलेगा।'' तब ब्रह्म ने इन्हीं *तीर्थों* की यात्रा का संकल्प किया और (हरि-गिरि) वेङ्कटाचल के लिए ब्रह्मलोक से निकले। सभी *तीर्थों* के साथ सप्तर्षि *तीर्थ* का सेवन किया। इस प्रकार वेङ्कटाचल के *तीर्थों* के साथ विष्णु द्वारा घोषित और ब्रह्म द्वारा वांछित सप्त ऋषि तीर्थम् पूर्णफल प्रदायक हुए।

तैंतीस करोड पचास लाख तीर्थों की समवेत महिमा, त्रिलोकों के तीर्थों की महत्ता इन सप्तर्षि तीर्थों में निहित है। यह हरिगिरि (वेङ्कटाचल) का महत्व है। सप्त गिरियों, सात पहाडों, की प्रकृति की रमणीयता के बीच पवित्र तीर्थों का स्नान अतुलनीय आनंद प्रदान करता है। वेङ्कटाचल के दर्शन की सर्वोत्कृष्ट पावनता अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। श्रीकृष्ण के बडे भाई बलराम ने इस *तीर्थ-यात्रा* का फल पाया है।

वेङ्कटाचल के अन्य तीर्थ

1. *पांडव तीर्थम्*

श्रीकृष्ण के परामर्श के अनुसार पंच पांडवों ने (युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) वेङ्कटाचल की यात्रा की। एक वर्ष भर यहाँ वास किया। यहाँ के *क्षेत्र पालकों* से सुरक्षा भी प्राप्त की। यहाँ के *तीर्थों* के जल का पान किया। पवित्र स्नान किये। एक वर्ष के बाद युधिष्ठिर ने सपना देखा कि एक वर्ष के वेङ्कटाद्रि वास (महा-तीर्थ) से उनके सारे पाप धुल गये। उन्हें पवित्र होने का विश्वास मिला।

इससे विजय प्राप्ति की भावना संपुष्ट हुई। अपने स्वाधिकार प्राप्त करने की शक्ति से मण्डित होकर ही वे हस्तिनापुर की ओर चले।

पांडवों के निवास स्थान पर विलसित *तीर्थ* उनके नाम से अभिहित होकर *पांडव तीर्थ* हुआ। यह तीर्थ श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी के मंदिर से लगभग एक मील की दूरी पर ईशान्य दिशा में है। इसके पास ही एक बडी चट्टानी गुफा है। कहा जाता है कि इसे पांडवों ने अपने निवास के लिए बनाया है।

उक्त *तीर्थ* को *गोगर्भ तीर्थम्* भी कहा जाता है। एक जबरदस्त दबाव के कारण पश्चिमी पक्ष में यहाँ एक जल वाहिका बनी है। दबाव पक्ष गाय के गर्भ के समान रहा। इसीलिए यह गोगर्भ तीर्थ बना। इस तीर्थ में पवित्र स्नान के लिए रविवार का दिन महत्वयुक्त माना जाता है। इस पर भी वह दिन *वैशाख* शुद्ध द्वादशी का दिन हो अपूर्व होता है। वैसे वैशाख शुद्ध द्वादशी का दिन तीर्थ स्नान के लिए महत्वपूर्ण है। मंगलवार का दिन भी उसी प्रकार की महत्ता से युक्त माना जाता है। इन दिनों में इस तीर्थ में पवित्र स्नान करनेवाले भक्तों को अतुलित आनंद और स्वर्ग सुख प्राप्त होता है।

(वरा. पु. भाग - 1, अ. - 8, श्लो. 23 - 27 तथा भाग - 2, अ. - 1, श्लो. 70 - 71)।

2-4. *जरहर, वलिघ्न* और *रसायन तीर्थम्*

ये तीनों *तीर्थ* वेङ्कटाद्रि पर स्थित गुफाओं में हैं। स्वामी पुष्करिणी की पूर्व दिशा में उससे बाईस बाण की दूरी पर हैं। भगवान की माया के कारण ये ओझल हो गये हैं। फलतः सामान्य मानव इनको अपनी आँखों से देख नहीं सकते। (वरा. पु. भाग - 1, अ. - 40, श्लो. 27 - 29)

5. कठाह तीर्थम्

यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के विमान की प्रदक्षिणा मार्ग की उत्तरी दिशा में है। *कठाह तीर्थ* को *''तोट्टि तीर्थम्''* भी कहते हैं। श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी का *अभिषेक जल (तीर्थ)* इस कठाह से इकट्ठा होता है। भगवान का अभिषेक शक्रवार को मनाया जाता है। अभिषेक जल में चंदन और केसर मिला रहता है। इसके तीर्थ को तीन बार छोटी मात्रा में स्वीकार करने से सभी पापों का नाश होगा - यह भक्तों का विश्वास है। तीर्थ स्वीकरण ''नमो वेङ्कटेशाय'' *(अष्टाक्षरीमंत्र)* नाम जप से करना उत्तम फल दायक है। यह जप अपने आप में *भुक्ति, भक्ति* और *मुक्ति* प्रदायक है तथा पाप निवारक है। अगर नित्यप्रति पवित्र मन से तीर्थ स्वीकार किया जाय तो शांति का मार्ग प्रशस्त होगा एवं मन निश्चल रहेगा।

कहा जाता है कि स्वामी पुष्करिणी जल से प्रक्षालन, वेङ्कटेश्वर भगवान का *दर्शन, कठाह तीर्थ* का सेवन - इनकी प्राप्ति अत्यंत कठिन है। इनको पाना मुश्किल है।

(स्कंद पु. भाग - 2, अ. I, श्लो. 28 - 35) (वही. श्लोक 34 - 35)

स्वामि पुष्करिणी स्नानं वाराह श्रीश दर्शनम्। (श्लो. 34)

कठाह तीर्थ पानं च त्रयं त्रैलोक्य - दुर्लभम्।
बहुना किमिहोक्तेन ब्रह्म - हत्यादि नाशकम्।। (श्लो. 35)

6. *विरजा तीर्थम्*

यह छोटा तीर्थ है। स्वामी मंदिर के *संपंगि प्रदक्षिणा* में (दूसरे प्राकार में) स्थित है। प्रवेश द्वार के पास स्थित खाद्य - भाण्डागार की वायुव्य दिशा में एक कोने में है। विश्वास है कि वैकुण्ठ की *विरजा* नदी का पवित्र जल श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के पद पद्मों को छूता हुआ बह यहाँ आता है। यह प्रकार से पत्थर का कठोह है। तीर्थ के फैलाव को रोकने के प्रयास में सीस लोह को पिघालकर बीच में डालकर किया गया है। यहाँ का जल अत्यंत पवित्र माना जाता है।

7. *आकाशगंगा तीर्थम्*

यह मंदिर की उत्तर दिशा में दो मील की दूरी पर है। कहा जाता है कि इस *तीर्थ* पर अंजनादेवी ने बारह वर्ष पर्यन्त तपस्या की थी। यह त्रेता युग की घटना थी। उन्होंने तपस्या फलस्वरूप हनुमान को पुत्र के रूप में पाया था। इस तीर्थ का जल महिमा संपन्न है।

प्राचीन काल में रामानुज नामक एक *ब्राह्मण* ने यहाँ पवित्र मन से तपस्या की थी। उनकी *तपस्या* से प्रसन्न होकर *शंख - चक्र* धारी श्रीविष्णु लक्ष्मी समेत प्रत्यक्ष हुए और उस ब्रह्मण को आशीर्वाद देते हुए कहा - ''जो इस *तीर्थ* में, *मेष* मास में (*चैत्र* के महीने में) पूर्णिमा तिथि पर पवित्र स्नान करेगा उसे सुख जीवन की प्राप्ति होगी। इसके लिए *चित्ता* नक्षत्र का समय अत्यंत श्रेष्ठ है। इस समय पर पवित्र स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होगा। जो ऐसा करेगा, वह जीवन भर पवित्र रहकर अंत में भगवान को प्राप्त करेगा।'' (स्कंद पु. भाग - 1, अ.11, श्लो. 2 - 33)

(स्नान के लिए पवित्र दिन और समय का निर्देश वरा. पु. भाग - 2, अ. I, श्लो. 68 - 69 में है।)

एक बार एक धार्मिक तथा स्वाध्यायी *ब्राह्मण* ने एक और स्वाध्यायी धार्मिक *ब्राह्मण* को अपने पिता जी के श्राद्ध में भोक्ता के रूप में बुलाया। श्राद्ध भोज के पश्चात् तथा श्राद्ध कर्म की समाप्ति के तुरंत बाद यजमान का मुँह गधे के मुँह का जैसा दिखाई पडने लगा। यजमान *ब्राह्मण* परेशान हो गया। यह ब्राह्मण गोदावरी नदी तट का निवासी थ। *सुवर्णमुखी* नदी के किनारे आश्रम में रहनेवाले अगस्त्य ऋषि ने कहा कि यह सब संतानहीन *ब्राह्मण* को श्राद्ध में भोक्ता के रूप में बुलाने का फल है। निदान पूछा गया। तब अगस्त्य जी ने बताया कि जाकर *आकाश गंगा* तीर्थ में पवित्र स्नान करोगे तो तुम्हारा विकृत आकार दूर होगा, तुम पूर्ववत बन जाओगे। ऋषि के आदेश के अनुसार यजमान ब्राह्मण ने आकाश गंगा *(तीर्थ)* में स्नान किया और अपना पूर्व स्वरूप पाया। (स्कंद पु. भाग - 1, अ. 12, श्लो. 25 - 56)

भगवान बालाजी वेङ्कटेश्वर के अभिषेक के लिए हर दिन आकाश गंगा *तीर्थ* को तीन चाँदी के घडों में लाया जाता है। यह कार्य सात *आचार्य पुरुषों* के परिवार के सदस्यों से संपन्न किया जाता है। ये ही भगवान के मूल विराट के सामने *''मंत्र - पुष्पम्''* का पठन करते हैं। यह नित्य कर्तव्य है और पवित्र मन से किया जाता है। ये आचार्य तिरुमल नंबि के वंशज हैं। तिरुमल नंबि *वैष्णव आचार्य* नादमुनि के पौत्र और रामानुजाचार्य के मामा थे। रामानुजाचार्य *विशिष्टाद्वैत दर्शन* के प्रतिष्ठापक आचार्य हैं। इनका समय 11 वीं सदी है। इतना ही नहीं, वाल्मीकि रामायण के निगूढ़ अर्थ का निरूपण इन्होंने किया था। तिरुमल नंबि अपने दादाजी आलवंदार की प्रेरणा से वेङ्कटाचल सपरिवार आये। उनके साथ उनकी दो अविवाहिता बहिनें भी आयीं थी। इनमें से एक का विवाह आचार्य रामानुज के पुत्र केशव सोमयाजी के साथ संपन्न हुआ। केशव सोमयाजी मद्रास (चेन्नै) के पास के श्रीपेरुंबदूर में रहते थे। तिरुमल नंबि ने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की पूजादि में उपयोग के लिए एक फूल का बगीचा भी लगाया। वेङ्कटेश्वर भगवान के नित्याभिषेक के लिए पापविनाशन तीर्थ से जल लाकर देते रहे। *पाप विनाशन तीर्थ* बालाजी के मंदिर की उत्तर दिशा में लगभग तीन मील की दूरी पर है। भगवान की पवित्र सेवा में ही अपना समस्त जीवन बितानेवाले जब बूढे हुए तो *आकाश तीर्थ* से जल लाने लगे। आकाश तीर्थ *पापविनाशनम् तीर्थ* से कम दूरी पर है। इस परंपरा को तिरुमल नंबि के परिवार के आचार्य आज भी निभा रहे हैं।

8. *पापविनाशन तीर्थम्*

यह तीर्थ भगवान के मंदिर से तीन मील की दूरी पर, उत्तर की दिशा में स्थित है। इस तीर्थ का पवित्र स्नान अत्यंत शुभकर है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र युक्त शुक्ल सप्तमी का दिन इसके लिए परमश्रेष्ठ माना जाता है। अगर वह तिथि रविवार को पडी तो परमाति पवित्र है। इसी प्रकार *उत्तराभाद्रा* नक्षत्र युक्त शुक्ल पक्ष का द्वादशी दिन भी परम श्रेष्ठ है। इसके साथ साथ *आश्वयुज* मास के रविवार का दिन भी उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। इस दिन पर तीर्थ स्नान सकल पापों को धोने की शक्ति रखता है। उक्त दिनों में पवित्र स्नान करते समय अगर *शालग्राम* की प्राप्ति हो तो उस स्नान को अत्यंत प्रभावशाली और लाभकर माना जाता है। (ब्रह्म पु. अ. 4, श्लो. 24 - 25)

वैशाख मास के *पुष्या नक्षत्र* अथवा *हस्ता* नक्षत्र युक्त रविवार का दिन भी पवित्र स्नान के लिए श्रेष्ठ माना गया है। (वरा. पु. भाग - 2, अ. - 1, श्लो. 72 - 73)

9. *वैकुण्ठ तीर्थम्*

यह तीर्थ भगवान के मंदिर से दो मील की दूरी पर ईशान्य की दिशा में विराजमान है। इस तीर्थ का उद्गम स्थान एक गुफा है। इसे *'वैकुण्ठ गुहा* (गुफा)' कहते हैं। इसी के कारण इस तीर्थ का नाम *'वैकुण्ठ तीर्थ'* पडा है।

त्रेता युग में रावण संहार के लिए, श्रीरामचन्द्र जी की सेना (वानर) लंका की ओर निकल पडे। रास्ते में अंजनादेवी और हनुमान की प्रार्थना से राम ने सेना सहित श्रीस्वामी पुष्करिणी के तट पर ठहरे। *वानर* सेना आसपास के पहाडों पर घूमने लगी। सेना के गज, गवाक्ष, गवया, शरह आदि कुछ वानर ईशान्य दिशा में एक दिन चले। उन्होंने एक स्थान पर एक गहन और अंधकारपूर्ण गुफा देखी। सभी उसमें घुसे। कुछ दूरी पर उन्हें एक प्रकाशवान नगर दिखा। वह सुवर्ण निर्मित नगर था। उसके फाटक और तोरण भी सोने से बने थे। नगर में सुंदर सुंदर बगीचे थे। बगीचों के बीच स्वच्छ पानी के नहर थे। नगर के *गोपुर, मण्डप, प्राकार* आदि अमूल्य रत्नों से जडित थे। सभी नगर वासियों के चार चार हाथ थे। उन हाथों में *शंख, चक्र* आदि शस्त्र थे तथा वे स्वच्छ धवल वस्त्र पहने हुए थे। मूल्यवान सुवर्ण आभूषणों से सुसज्जित थे। वे सानंद विचरण कर रहे थे।

उस नगर के मध्य में एक दिव्य *विमान* था। उसमें दिव्य *सिंहासन* पर एक दिव्य पुरुष विराजमान थे। उनके हाथ आसन के सिंहों के सिरों पर थे। ये *आदिशेष* के सहस्र फणों की छाया में विलसे थे। *शंख चक्र* धारी थे। *पीतांबर* पहने थे। मणि - माणिक्यों से जडित आभरण और *किरीट* पहने हुए थे। उर पर *वैजयंती* और *वनमालाएँ* विराजमान थीं। वक्षःस्थल पर *श्रीवत्स* था। देव - दासियाँ *धवल चाँवर* डुला रही थीं। दिव्य पुरुष का आनन उज्वल काँतियाँ बिखेर रहा था।

अकस्मात एक बलवान चतुर्भुज व्यक्ति वानरों को हाथ में डण्डा लेकर डराने लगा। डर के मारे *वानर* सब गुफा से बाहर भागे। अपने साथियों के पास जाकर इस अनोखी घटना की बात कही। वे सब पुनः गुफा में घुसे। लेकिन वहाँ पूर्व दृश्य नहीं मिला। सब कुछ गायब थ।

भगवान नारायण की कृपा से कुछ *वानरों* को ही उस सुंदर दृश्य का *दर्शन* लाभ मिला था। यह उनका सौभाग्य था। यह भगवान विष्णु का स्वार्गिक धाम का दृश्य था। इस धाम में रहकर भगवान सौभाग्यशाली *भक्तों* को ही इस प्रकार का दिव्य दर्शन देते रहते हैं। (वरा. पु. भाग -1, अ. 10) इसीलिए यहाँ का तीर्थ *वैकुण्ठ तीर्थ* है। तीर्थ जल परम पवित्र है। इस गुफा से प्रवाहित स्रोत के जल में पवित्र स्नान अत्यंत प्रभावकारी और सुखदायी है।

ऐसी वैकुंठ गुहा (गुफ़ा) में प्रवेश और दर्शन मात्र से *वानरों* को मुक्ति मिली है। उनको भगवान विष्णु का सान्निध्य मिला है। वे आज भी सामान्यों की दृष्टि से बाहर हो, नित्य सेवारत हैं। वे रात्रियों के समय ही भगवान की आराधना करते हैं। उस तीर्थ का जल रजत ''कटोरियों'' में भरा मिलता है। भक्तों में वितरित होता है।

10. जाबाली तीर्थम्

यह तीर्थ मंदिर की उत्तरी दिशा में दो मील की दूरी पर स्थित है। जाबाली ऋषि यहाँ अपने शिष्यों सहित रहे थे। यहाँ रहकर जाबाली ऋषि ने भगवान की आराधना की थी।

बाद में, अगस्त्य ऋषि अपने शिष्यों के साथ यहाँ बहुत समय तक रहकर भगवान वेंङ्कटेश्वर की *पूजा* की।

(वरा. पु. भाग - 1, अ. 21, श्लो. 21 - 24)

11. *चक्र तीर्थम्*

यह *तीर्थ* मंदिर की उत्तर पश्चिम दिशा में है। यहाँ *श्रीवत्स गोत्र* के पद्मानायक नामक भक्त ने इस परिसर में रहनेवाले *राक्षसों* को नाश कराने के लक्ष्य से *बारह वर्ष* पर्यन्त श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी की *तपस्या* की थी। भगवान उनकी तपस्या से प्रसन्न हुए। उन्हें उसी प्रान्त में रहने के लिए कहा। तत्पश्चात् भगवान ने अपने *सुदर्शन चक्र* को दानवों का संहार करने की आज्ञा दी। राक्षसों का दमन हुआ। पद्मनायक ने वहीं तपस्या की और मुक्ति पायी। (स्कंद पु. भाग - 1, अ. 13)

सुंदर नामक एक और श्रीरंगम् का *ब्राह्मण* शापग्रस्त होकर *राक्षस* बन गया था। उसने वशिष्ठ महर्षि के आदेश के अनुसार इस तीर्थ पर पहुँचकर तपस्या की। अपना पूर्व रूप पाया और अंत में मुक्ति भी पायी। (स्कंद पु. भाग - 1, अ. 14)

इस *तीर्थ* पर श्रीलक्ष्मी नृसिंह और *सुदर्शन चक्र* की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। *कार्तिक* कृष्ण पक्ष द्वादशी को यहाँ *''पायसम्''* (चावल में दूध मिलाकर उबाला जाता है और बाद में चीनी मिलायी जाती है) का नैवेद्य मूर्तियों को अर्पित होता है। यह बालाजी के यहाँ से आता है। यह तीर्थ प्रसाद के रूप में भक्तों में वितरित होता है।

12. *रामकृष्ण तीर्थम्*

यह तीर्थ मंदिर की उत्तर दिशा में छः मील की दूरी पर स्थित है। कहा जाता है कि यहाँ श्रीकृष्ण ने *तपस्या* की थी और *तीर्थ* का निर्माण भी करवाया। बाद में रामकृष्ण मुनि नामक एक तपस्वी ने भी यहाँ कठोर तपस्या की। उनकी तपस्या शताब्दियों तक चली। तपस्वी की चारों ओर वल्मीक बना। उनकी तपस्या से डर कर इन्द्र ने मूसलादार वर्षाएँ की, बिजलियाँ गिरायीं। लेकिन तपस्वी टस से मस नहीं हुए। अपनी तपस्या जारी रखी। अन्ततोगत्वा वल्मीक ढह गया। श्री महाविष्णु *गरुड* वाहनारूढ हो प्रत्यक्ष हुए। उस समय विष्णु ने कहा - ''*पुष्या* नक्षत्र युक्त *पूर्णिमा* के दिन मकर मास (जनवरी) में मैं आपकी तपस्या से प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष हुआ हूँ, दर्शन भी दिया। जो भी भक्त इस दिन को इस *तीर्थ* में नहायेगा वह सब प्रकार की व्यथाओं और बाधाओं से मुक्त होगा।'' (स्कंद पु. अ. 5)। इस विशेष तिथि के अवसर पर अनेक भक्त यहाँ आते हैं और *तीर्थ* स्नान करते हैं। श्रीकृष्ण की पूजा करते हैं। जो कुछ भी *नैवेद्य* के रूप में अर्पित होता है वह सब भक्तों में वितरित होता है।

13. कुमारधारा तीर्थम्

यह तीर्थ मंदिर की वायुव्य दिशा में छः मील की दूरी पर स्थित है। *माघमास* (फ़रवरी) की पूर्णिमा का दिन यहाँ स्नान के लिए मुख्य दिन माना जाता है। इस तीर्थ में स्नान *गंगा* स्नान सम फल प्रदान करता है। पवित्र तिथि पर बालाजी के मंदिर से *'प्रसादम्'* यहाँ भेजा जाता है एवं भक्तों में वितरित होता है। इस *तीर्थ* पर कार्तिकेय ने (कृत्तिका नक्षत्र में जन्मे शिव पुत्र कुमार स्वामी) देवसेना के साथ श्रीवेङ्कटेश्वर की आराधना की है। *कार्तिकेय* के ही अन्य नाम *कुमार, कुमार स्वामी* और *सुब्रह्मण्यम्* हैं। (वरा. पु. भाग - 2, अ. 1, श्लो. 61 - 65)। कुमारस्वामी ने अपने *ब्रह्महत्या* दोष से मुक्ति पाने के लिए इस तीर्थ के पास तपस्या की। कुमार को तारकासुर के वध से ब्रह्महत्या दोष मिला था। तारकासुर ब्रह्म वंश का था। *देवताओं* की रक्षा के लिए कुमार स्वामी ने तारकासुर का वध किया। उन्होंने दोष से मुक्त होने के लिए *अष्टाक्षरी मंत्र* (ओम् नमो वेङ्कटेशाय) का जप करते हुए *तपस्या* की थी। तपस्या स्थाल यही *तीर्थ* था। इसीलिए इस *तीर्थ* का नाम *कुमारधारा तीर्थ* पडा। (मार्कण्डेय पु. अ.4)। मान्यता है कि कुमारस्वामी ने श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी को किरीट (मुकुट) अर्पित किया है।

एक समय एक बूढे भक्त *ब्राह्मण* ने अपनी आँखों की दृष्टि खोयी। रास्ता भूल गया। पहाडी रास्तों से लुढका। लुढकते - लुढकते ''कुमार कुमार'' पुकारते अपने पुत्र का स्मरण किया। उस समय श्रीवेङ्कटेश्वर एक युवक का रूप धारण कर उस पहाडी प्रांत में विहरण कर रहे थे। उस बूढे ब्राह्मण को लुढकते देखा। संभाला और पूछा कि उन्हें क्या चाहिए। बूढे ब्राह्मण ने उत्तर दिया - ''मैं जर्जर हूँ। मुझमें लेश मात्र शक्ति भी नहीं है। मैं नित्य नैमित्तिक धार्मिक कार्य निर्वहण नहीं कर सकता हूँ। मेरा कोई अपना नहीं है। मैं अपने आश्रम का रास्ता भी नहीं जान पा रहा हूँ। मैं एक निरीह ब्राह्मण हूँ, गरीब हूँ। भगवान ने मुझे पूर्ण आयु तो दी है, लेकिन केवल गरीबी की कठिनाइयों को झेलते और दुःखों को भोगते ही दिन काटे हैं।''

वृद्ध ब्रह्मण की दयनीय गाथा सुनकर *भगवान* ने मुस्कुराते हुए पूछा - ''तुम्हारा देह जर्जर है। अंधे भी हो गये हो। क्या तुम अब भी और जीना चाहते हो? सत्य बोलो।''

प्रत्युत्तर में वृद्ध *ब्राह्मण* ने कहा - ''हे युवक! मेरी स्थिति वास्तव में अब दुर्भर है। फिर भी भगवान की कृपा से मेरा जीवन और बढेगा तो मैं धार्मिक कार्यों का निर्वाह करना चाहता हूँ। नित्य पूजाएँ करना चाहता हूँ। मैं यज्ञ यागादि द्वारा देव ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ। तब जाकर मैं इस पार्थिव शरीर से मुक्त होना चाहूँगा।''

इस पर युवा (भगवान वेङ्कटेश्वर) ने बूढे का हाथ अपने हाथ में लिया। पवित्र तीर्थ पर ले गया। तीर्थ में नहाने के लिए ब्राह्मण से कहा। यह भी कहा कि तीर्थ स्नान के बाद दोनों मिलकर ही उसके

आश्रम में जायेंगे। ब्राह्मण ने तीर्थ में एक डुबकी ली। आश्चर्य, वह सोलह वर्ष का युवक हो गया। तब युवक रूपधारी भगवान ने सहस्र शीर्ष, सहस्र हस्त वाले पुरुष रूप लिया। स्वर्ग से देवता समूह ने उन पर फूलों की वर्षा बरसायी। उस अनोखे दृश्य को देखकर परम आनंद प्राप्त किया। ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो, हाथ जोडकर रह गया। भगवान ने ब्राह्मण से कहा - ''मैं ने तुमको एक शक्तिशाली शरीर दिया है। आवश्यक संपत्ति भी दी है। अब तुम अपने यज्ञ-यागादि धार्मिक कर्मकांड का निर्वाह करो। सुखी जीवन बिताओ। अपनी आशाओं की पूर्ति कर लो।'' बस, भगवान अन्तर्धान हो गये।

देवताओं ने भगवान की भूरि भूरि प्रशंसा की। बूढा ब्राह्मण अब युवा बना गया। कहा जाता है कि उसके ''कुमार'' (युवा) बनने की घटना के कारण ही उस *तीर्थ* का नाम ''कुमारधारा'' तीर्थ पडा। इससे एक विश्वास भी हो गया कि इस तीर्थ में पवित्र स्नान करनेवालों की सारी कामनाएँ संपन्न हो जायेंगी। अंततः विष्णु के चरणों में स्थान भी प्राप्त होगा।

(वरा. पु. भाग - 1, अ. 5, श्लो. 31 - 52 और मार्कण्डेय पु. अ. 3, श्लो. 11 - 43)

14. *तुम्ब, तुंबुर कोना या फल्गुणी तीर्थ*

यह तीर्थ भगवान के मंदिर की उत्तर दिशा में घने जंगल के बीच है।

मीन मास (मार्च - अप्रैल) में पूर्णिमा का दिन यहाँ तीर्थ स्नान के लिए पवित्र दिन माना गया है। वह *उत्तर फल्गुणी* नक्षत्र का *''मुक्कोटि''* का दिन अति पवित्र है। मोक्षप्रद भी है। इस तिथि पर तीन करोड (मुक्कोटि) *देवता* यहाँ आकर पवित्र स्नान करते हैं। यह विश्वास आज भी है। इस तीर्थ में पवित्र स्नान से सारी व्यथाएँ दूर होती हैं और पुनर्जन्म की भी छूट मिल जाती है।

(वरा. पु. भाग - 2, अ. 1, श्लो. 66 - 68)

एक समय इस तीर्थ के पास एक *गंधर्व* (देवता संगीतज्ञ) रहता था। उसकी कामना थी कि उसे और उसकी पत्नी को इस पवित्र *तीर्थ* में स्नान का फल मिले। उसकी इच्छा थी कि दोनों मिलकर *माघ मास* (मार्च - अप्रैल) में सूर्योदय के समय पर ही पवित्र स्नान करें। अपना आश्रम रंगोलियों से अलंकृत हो (साफ - सुथरा) परिशुभ्र रहें। प्रसाद बनाकर भगवान को नैवेद्य चढायें। अधिदेवता का *प्रदक्षिणा* - नमस्कार करें। तत्परिणाम स्वरूप अरिषड्वर्गों की पीडा से मुक्त हो। (अरिषड़ वर्ग हैं - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य।) पत्नी समेत उसे मोक्ष मिले। गंधर्व की पत्नी ने इस प्रकार के निर्वहरण में साथ देने से इनकार किया। क्योंकि वह शीत काल का समय था। ठंडी जलधाराओं को वह सहन नहीं कर पायेगी। गंधर्व क्रुद्ध हो गया। पत्नी को भेड बन जाने का शाप दिया और कहा कि वह जाकर एक वृक्ष के नीचे बिल में रहे। पत्नी ने पति के पैरों पर गिरकर क्षमा याचना की। तब गंधर्व ने कहा कि

उसका वह भेड का रूप उस समय तक रहेगा जब अगत्स्य मुनि अपने शिष्यों समेत यहाँ पधारेंगे। उनके यहाँ पर पहुँचते ही पूर्व रूप मिल जायेगा। गंधर्व के कथन के अनुसार अगत्स्य महामुनि उस *तीर्थ* में शिष्यों को साथ लेकर आये। शिष्यों को उन्होंने तीर्थ का *माहात्म्य* (महिमा) सुनाया। उस *माहात्म्य* गाथा को गंधर्व की पत्नी ने भी भेड के रूप में सुना। तब उसका शाप दूर हो गया और उसने अपना पूर्व रूप पाया। *गंधर्व* की पत्नी पुनः गंधर्वी बनी।

उस *गंधर्व* के नाम पर इस तीर्थ का नाम *'तुंबुरु तीर्थ'* पडा। (स्कंद. पु. अ. 16)

इस *तीर्थ* के पास तरिगोंड वेंगमांबा ने श्रीवेङ्कटेश्वर को पाने के लिए *तपस्विनी* बनकर तपस्या की। यह 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ में घटित हुआ। वेंगमांबा की तपस्या का स्थान आज भी दर्शनार्थियों के लिए प्राप्य है। (हाल ही में तरिगोंड वेंगमांबा के नाम पर भक्तों के लिए एक अन्न प्रसाद वितरण भवन का निर्माण भी हुआ है। उसमें हजारों की संख्या में भक्त नित्यप्रति अन्नप्रसाद ग्रहण करते हैं।)

15. *सनक - सनंदन तीर्थम्*

आत्मा की मुक्ति के लिए योग मार्ग को अपनाकर चलने से अनेक कष्ट सामने उभरते हैं। उनको पार करना महान तपस्वियों के लिए भी कठिन होता है। कठिनाइयों को पार करने के मार्ग के बारे में जब पूछा गया तो उन्हें *सनक - सनंदन तीर्थ* में पवित्र स्नान करने की सलाह मिली थी। यह तीर्थ *पापनाशनम् तीर्थ* की उत्तरी दिशा में चार मील की दूरी पर है। यह *सिद्ध* और *योगियों* का स्थान माना जाता है। यह सामान्य मानव की मांसल दृष्टि से परे ही रहता है। अर्थात् कोई भी व्यक्ति अपनी चर्मचक्षुओं से इसे देख नहीं सकता। जो *योग साधना* करना चाहता है उसे पहले स्वामी पुष्करिणी में *मार्गशीश* मास (धनुर्मास, दिसंबर - जनवरी) के शुक्ल द्वादशी की तिथि को पवित्र स्नान करना है। इस मास को *धनुर्मास* भी कहते हैं। *''मुक्कोटि द्वादशी''* के दिन समर्पित भाव से इस *तीर्थ* में स्नान कर, तेरहवें दिन से पवित्र शरीर और मन से *श्रीवेङ्कटेश्वर का अष्टाक्षरा मंत्र जप* के साथ *योग साधना* आरंभ करनी होती है। उसे अविघ्न करनी होती है। इससे निस्संदेह साधना पूर्ण रूपेण संपन्न होगी।

(वरा. पु. भाग - 1, अ. 28, श्लो. 31 - 36)

16. *कायरसायन तीर्थम् या अस्ति - सरस तीर्थम्*

यह तीर्थ *सनक - सनंदन तीर्थ* के ऊपर है। यह भी अगोचर है। इस तीर्थ का जल पान शरीर को तुरंत स्वच्छ और स्वस्थ बनाता है। इसकी शक्ति की परीक्षा के लिए अगर पका पीले रंग का पत्ता इसके जल प्रवाह में डालेंगे तो तुरंत वह पत्ता हरित हो जाता है। पानी पर तिरता प्रवाहित हो जाता है। लेकिन इस तीर्थ का मुखस्थान *सनक - सनंद* के द्वारा ढक दिया गया है। इसीलिए इसका स्रोत मानव दृष्टि से

परे है। फिर भी *महात्मा लोग* भगवान की कृपा हो तो इसका दर्शन पा सकते हैं। भगवान वेङ्कटेश्वर का स्मरण करते हुए अपने मन और शरीर को दृढ रखकर उनकी सेवा में अपने को समर्पित करनेवाले लोग सही भक्त रहेंगे। हरि (विष्णु) *शेष* हैं तो मानव *शेषी* हैं। अतः मनुष्य को नित भगवान का स्मरण करना होता है। उपयुक्त धार्मिक कार्य निभाने पडते हैं। *शास्त्रानुमोदित* कर्मों के द्वारा ही मनुष्य मुक्ति पा सकता है। मानव को शरीर, सुख, ज्ञान, शक्ति, भूमि, गृह, संपत्ति आदि भगवान वेङ्कटेश्वर की कृपा से ही प्राप्त होते हैं। मानव को समझना चाहिए कि सारी भौतिक विभूतियाँ नष्ट होनेवाली हैं। पाप कृत्य हमें दुखों की ओर ले जाते हैं। पुण्य कर्म हमें स्वर्ग प्राप्ति के प्रशस्त मार्ग पर ले जाते हैं। भगवान ही सभी कर्मों के प्रेरक हैं। उन्हीं पर मनुष्य को अपनी दृष्टि केन्द्रित करनी है। *धर्म सूत्रों* द्वारा निर्देशित मार्गों पर चलने की इच्छा रखकर आगे बढना मानव का कर्तव्य है। इसका मार्ग दर्शन *सद्गुरु* द्वारा ही सुलभ है। सद्गुरु से हमेशा, सब कालों में, सब दशाओं में *वेद - वेदांत* मार्गों को हमें पाना है। उपयुक्त रीति से स्वीकारना भी हमारा कर्तव्य होता है। संक्षेप में कहा जाय तो मानव को अपने जीवन काल में निषेधित कार्यों से दूर रहना होता है और निर्देशित पंथ को अपनाना होता है तथा परिशुद्ध जीवन बिताना होता है।

(वरा. पु. भाग - 1, अ. 28, श्लो. 37 - 49)

तुंबुरु *तीर्थ* में ही श्रीवेङ्कटेश्वर ने राजा तोंडमान को एक *ब्राह्मण* की पत्नी के पार्थिव शरीर को डुबो देने का आदेश दिया था। एक ब्राह्मण राजा तोंडमान की देखरेख में अपनी पत्नी को सौंपकर *वारणासी* (बनारस, काशी) की यात्रा पर गया था। उस समय ब्राह्मण की पत्नी गर्भवती थी। जब ब्राह्मण काशी यात्रा से लौटा तब राजा ने पाया कि ब्राह्मण की पत्नी मर चुकी है। राजा ने कुछ अनदेखी दिखायी थी। इस तीर्थ में भगवान के आदेश से शव को डुबाने से ब्राह्मण की पत्नी पुनर्जीवित हो गयी। यह वृत्तांत इस तीर्थ की महिमा को उद्घोषित करता है। (पृष्ठ. 85 - 86)

17. *देव तीर्थम्*

यह *तीर्थ* एक तालाब है। मंदिर की वायुव्य दिशा में घने जंगल में यह तीर्थ स्थित है। इसमें एक पवित्र स्नान करने से मानव को दीर्घायु और सुख संपत्तियाँ मिलती हैं। विशेषकर पुष्या नक्षत्र में व्यातिपात - योग के समय पर अथवा *श्रवणा* नक्षत्र युक्त सोमवार का दिन अधिक प्रशस्त माना जाता है। इस समय पर स्नात भक्त को निश्चित *स्वर्ग* की प्राप्ति होती है।

(वरा. पु. भाग - 2, अ. 1, श्लो. 74 - 80)

* * *

अध्याय - 6

विष्णु का निवास धाम वेङ्कटाद्रि

(भविष्योत्तर पुराण, अध्याय - 2)

प्रथम तीनों *युगों (कृत, त्रेता और द्वापर)* में विष्णु वेङ्कटाद्रिवासी रहे हैं। *कलियुग* के आरंभ में उन्होंने अपने बारे में और वैकुण्ठ के संबन्ध में सोचा। साथ साथ *नित्यों, मुक्तों* के बारे में भी विचार किया। श्री देवी, भूदेवी और नीला देवी के साथ वे *वैकुण्ठ* चले। इस क्षेत्र का, वेङ्कटाचल का भार, वराह स्वामी को सौंपकर, वे वैकुण्ठ चले गये।

एक बार नारद मुनि वेङ्कटाचल पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर उनको सूचना मिली कि विष्णु भगवान *वैकुण्ठ* वापस लौट गये। तुरन्त नारद जी ने *सत्यलोक* जाकर इसकी सूचना ब्रह्म को दी। उन्हें खेद हुआ। उन्होंने नारद से कहा कि जब विष्णु वेङ्कटाद्रि पर थे तब पृथ्वी के निवासी पवित्र मनवाले और विशिष्ट व्यवहारवाले रहे थे। वराह जी अब इस स्थिति को शायद संभाल नहीं सकते। *ब्रह्मोत्सव* का निर्वाह भी सही ढंग से चला नहीं पायेंगे। ब्रह्म ने ही स्वयं श्रीवेङ्कटेश्वर के ब्रह्मोत्सव का आरंभ किया था। उन्होंने ही एक इमली के पेड को एक स्थान पर बोया था। वसुदेव और दशरथ के अहं को प्रेरित करेंगे तथा देवकी देवी और कौसल्या देवी दोनों की शक्तियों को भी। वे इस इमली के वृक्ष के नीचे एक वल्मीक में रहे। उन्हें लगा कि उससे ही आगे का कार्य सरल होगा। अब नारद को श्रीविष्णु को वैकुण्ठ से वेङ्कटाद्रि पर लाने का प्रयास करना होगा जिससे वे आकर वल्मीक में बसे।

ब्रह्म का आदेश लेकर नारदजी गंगा नदी के किनारे पर पहुँचे। वहाँ कश्यप मुनि अन्य मुनियों के साथ यज्ञ कर रहे थे। उनसे नारदजी ने पूछा कि यज्ञ फल किस देव को वे अर्पित करनेवाले हैं? भृगु और अन्य ऋषि वहाँ उपस्थित थे। वे आपसी विचार विमर्श से इस संबन्ध में किसी प्रकार के निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। अंततः सबने भृगु महर्षि से इस संबन्ध में कुछ निर्णय लेने के लिए कहा। भृगु महर्षि को हविस और यज्ञ फल प्राप्त करने योग्य देव की परीक्षा लेनी थी। उनका निर्णय सबके लिए मान्य होगा। तदर्थ, पहले निर्णय लिया गया कि त्रिमूर्ति में ब्रह्म, विष्णु और शिव में यागफल स्वीकारक की परीक्षा लेनी है। उन्हीं में से योग्य को चुनना है। भृगु को अपना निर्णय कश्यप महर्षि को सुनाना है।

प्रथमतः भृगु *सत्यलोक* पहुँचे। वहाँ ऋषियों की सभा में ब्रह्म थे। उनके सामने सष्टांग प्रणाम किया। सामने का एक आसन ग्रहण कर बैठ गये। भृगु का व्यवहार ब्रह्म को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने भृगु पर ध्यान नहीं दिया। कुशल मंगल पूछा नहीं। भृगु के वहाँ रहने की ओर भी दृष्टि नहीं दी। भृगु ने ब्रह्म से कुछ अच्छा व्यवहार चाहा था। उन्होंने सोचा कि ब्रह्म रजो गुण से चालित हैं। *रजो गुण* से युक्त व्यक्ति क्रोध, असंतुलन और अन्य इसी प्रकार के गुणों से युक्त रहते हैं। भृगु का तुरंत निर्णय था कि ब्रह्म

हविस आदि को प्राप्त करने योग्य नहीं है। उनमें ऋषि ने दिव्यता की कमी देखी। बस भृगु ने ब्रह्म को शाप भी दे दिया कि पृथ्वी पर उनके मंदिर नहीं होंगे। उनकी पूजाएँ नहीं होंगी।

शीघ्रगति से ब्रह्म की सभा से निकलकर शिव की परीक्षा के लिए कैलाश की ओर चल पडे। जब भृगु *कैलाश* पहुँचे तब शिव जी पार्वती के साथ विलास में डूबे थे। भृगु कैलाश पहुँचकर दिव्य दंपति के सामने खडे हो गये। पार्वती लज्जा से दूर हटीं और शिव क्रुद्ध हो गये। शिव की आँखें लाल लाल हो गयीं। भृगु ने सोचा कि शिवजी भी हविस पाने की योग्यता नहीं रखते हैं। ये तमोगुण युक्त देव हैं। मुक्ति प्रदान करने की योग्यता इनमें नहीं है। तमोगुण वालों में अंधकार, जडता, नासमझी, आदि गुण प्रचुर मात्रा में रहते हैं। भृगु ने सोचा कि शिवजी को भी शाप देना है। बस, उनका शिवजी के लिए शाप था कि उनकी विग्रह पूजा नहीं होगी। शरीर की आकृति में शिव की पूजा नहीं होगी। उनके लिंग रूप में ही *पूजा* होगी। ऐसा कहकर वे वैकुंठ की ओर चले।

बस भृगु वैकुण्ठ की ओर चले। उस समय विष्णु भगवान श्री महालक्ष्मी के साथ आदि शेष पर (शेष तल्प पर) शयनित थे। भृगु की ओर ध्यान नहीं दिया। भृगु ने क्रोध में आकर उनके वक्षःस्थल पर पदाघात किया। विष्णु का वक्षःस्थल श्रीमहालक्ष्मी का वास स्थान था। विष्णु चौंक पडे। *महर्षि* को नमस्कार किया। *अर्घ्य* दिया। *पाद्य* दिया। उनके सामने बैठे भी। भृगु के पैर को उठाकर अपनी जंघा पर रख लिया। हाथों से पैर को दबाया। यह सब ऐसा किया कि मानो भृगु के पैर को कष्ट हो गया और अपने हाथों से दबाने से उन्हें शांति और उपशांति दोनों मिलेंगी। लेकिन वास्तव में भृगु के पद तल में शोभित एक आँख को दबोचना ही विष्णु भगवान का लक्ष्य था। उस आँख के कारण ही भृग में अहं का विस्तार था। विष्णु की इस लीला से भृगु का अहं दूर हो गया। इतना करने के बाद भगवान ने भृगु से क्षमा माँगी और कहा कि उनका वैकुण्ठ में आना बहुत ही अच्छा था। पर उन्हें इसकी सूचना नहीं दी गयी थी। पूर्व सूचना रही होती तो उनके सत्कार का रूप अलग ही हुआ होता। वे नहीं जानते थे कि महर्षि उनसे मिलने आ रहे हैं। इसीलिए वे शांत होकर शयनित थे। इसी कारण वे कुछ नहीं कर पाये। ऋषि ने उन्हें दण्ड दिया। इस संबन्ध में भगवान का कहना था कि यह दण्ड उनको मिलना ही चाहिए। वास्तव में एक बात तो सत्य है कि उनका वक्षस्थल कठोर है। उससे टकराकर ऋषि को अत्यंत कष्ट सहना पड़ा होगा। इसके बाद विष्णु ने भृगु का पैर धोया। उस पानी से अपने को प्रोक्षित भी किया।

विष्णु भगवान के व्यवहार से *भृगु* अत्यंत प्रसन्न हुए। उनके नम्र वचनों से उनको आनंद मिला। उनके आदर - सत्कार से ऋषि का मन भर गया तथा स्वयं अपने व्यवहार से लज्जित हो गये। भगवान की आँखों से आँखें मिलाकर देख नहीं पाये। धीरे धीरे संभलकर ऋषि ने विष्णु भगवान से कहा - ''भगवान! मैं आपकी महानता से हतप्रभ हूँ। आपकी गरिमा का और महत्ता का वर्णन मैं शब्दों में नहीं

कर सकता हूँ। यह मेरी सीमा के बाहर ही ठहरता है। आप ही सर्वोत्तम देव हैं।'' इसके बाद भगवान से आज्ञा लेकर *ऋषि* लौटे।

भृगु महर्षि सीधे गंगा तट पर पहुँचे। कश्यप और अन्य मुनि गण यज्ञरत थे। भृगु ने अपनी परीक्षाओं का सविवरण समाचार उनको दिया। ब्रह्म के *रजोगुण* और शिव के *तमोगुण* युक्त होने की बात कही। विष्णु को *सत्त्वगुण* युक्त और यज्ञ फल प्राप्त करने योग्य देव भी घोषित किया। *मोक्ष* प्रदान करने की क्षमता से युक्त नारायण को ही उपयुक्त देवता के रूप में पाने के अपने निर्णय को सुना दिया। सब ने स्वीकार किया कि यज्ञ का फल भगवान विष्णु को ही समर्पित किया जाय।

भृगु के *वैकुण्ठ* से वापस लौटते ही श्रीमहालक्ष्मी अत्यंत चिंतित और व्यथित हुईं। उन्होंने सोचा कि ''भृगु ने यह जानते हुए भी कि विष्णु ब्रह्म के पिता हैं, उनका वक्षस्थल लक्ष्मीदेवी का वास स्थान है, उस पर पदाघात किया। विष्णु तो परब्रह्म हैं। फिर भी उन्होंने सब कुछ सहा। परन्तु यह मुझे और मेरी अहं को स्वीकार्य नहीं है। मुझे तो धक्का पहुँचानेवाला है। पति ने तो *ऋषि* को क्षमा किया। लेकिन मैं इस स्थिति से समझौता नहीं कर सकती।'' इतना सोचकर निर्णय लिया कि अब वे अपमानित वक्षःस्थल पर नहीं रह पायेंगी। वहाँ से कहीं दूर जाकर उन्हें तपस्या लीन होना है। बस, विष्णु के वक्षःस्थल से निकलकर, रूठकर *वैकुण्ठ* से निकल पडीं। उनका लक्ष्य स्थान *करवीरपुर* (कोल्हापुर या कोल्लापुरम्) हो गया। यह करवीरपुर आजकल, महाराष्ट्र प्रान्त में है। वहाँ ठहर कर करवीरपुर वासियों से अर्चित - पूजित होती स्थिर वासिनी हो गयीं तथा तपस्या लीन भी रहीं।

लक्ष्मी देवी के विरह में तडपते हुए विष्णु सामान्य मनुष्य की भाँति दुखित हुए। भूदेवी और नीलादेवी दोनों को प्रेम से कहा कि *वैकुण्ठ* में ही रहें। वे *वैकुण्ठ* से निकलकर लक्ष्मीदेवी की खोज करेंगे। उन्हें अवश्य वापस लायेंगे। वैकुण्ठ छोडकर भगवान विष्णु वेङ्कटाद्रि पहुँचे। वहाँ वे एक वल्मीक में घुसे। वल्मीक (बिल) एक इमली के पेड के नीचे था। वह स्वामी पुष्करिणी के तट पर दक्षिण दिशा में था। एक हजार वर्ष तक वे छिपे ही रहे। उस वल्मीक से प्रकाश तो फैल रहा था, पर उसे किसी ने पहचाना तक नहीं था। इसी बीच *कलियुग* का आरंभ भी हो गय। यह आठवें *द्वापर* के बाद का कलियुग था। काल के चलते - चलते इस पृथ्वी पर शासन एक चोल राजा के हाँथों में आया।

कोल्हापुर में जो वास कर रही थीं, उस श्रीमहालक्ष्मी ने अनुभव किया कि श्रीमहाविष्णु *वैकुण्ठ* छोडकर एक वल्मीक में वेङ्कटाचल पर तपस्या करते हुए रह रहे हैं। क्षण भर के लिए आवेग और क्रोध में आकर वे स्वयं वैकुण्ठ छोड आयी हैं। इसका पश्चात्ताप भी उन्हें होने लगा। परन्तु अपने निर्णय पर उन्होंने अटल रहना ही चाहा। पर वे चुप नहीं रह सकी। एक ग्वालिन का रूप धारण कर चोल राजा की रानी के महल के पास टहलने लगीं। सोचने लगीं कैसे मैं चोल राजा और रानी को खुश करूँ? ब्रह्म

ने माँ लक्ष्मी देवी का मन समझा तथा उनके मनोभावों को पहचाना। ब्रह्म तो उनके पुत्र ही हैं न! उन्होंने एक गाय का रूप धारण किया। शिव जी एक बछडा बन गये। दोनों लक्ष्मी के सामने आये। गाय और बछडे को लेकर ग्वालिन (लक्ष्मी देवी) महल के पास गयीं। ब्रह्म और शिव पर महालक्ष्मी का अमित विश्वास था। अवश्य उनसे अपने पति को दूध के रूप में आहार मिलेगा। उनकी सही देखभाल होगी। उधर चोळ रानी भी अपनी संतान के लिए दूधवाली अच्छी गाय चाहती थी। गाय और बछडे उन्हें बहुत पसंद आये। राजा से कहकर ग्वालिन से गाय और बछडे को खरीदा। रानी के हाथों इनकी अच्छी देखभाल होगी, इस विश्वास के साथ लक्ष्मीदेवी कोल्हापुर वापस लौट गयीं।

रानी ने गाय और बछडे को राजा की गोशाला में भिजवाया। राजा की गोशाला में दो हजार गायें थीं। रानी द्वारा भेजी गयी गाय को अच्छी तरह देखभाल करने के आदेश के साथ गोशाला में इन्हें भेजा गया। अन्य पशुओं के साथ गोपालक नयी गाय को चराने हर दिन वन ले जाने लगा। 'कपिला', गाय रूप धारी ब्रह्म रोज वल्मीक के पास पहुँचकर विष्णु के लिए दूध की धारा बहाने लगे। बिल तक जाना और दूध गिराना किसी की नजर में नहीं पडा। विष्णु रोज दूध पीते थे। रानी ने कपिला गाय का दूध न देना पहचाना। क्योंकि वे उसी गाय की दूध अपनी संतान के लिए चाहती थी। गोपालक को बुलाकर खरी - खोटी सुनायीं। दूसरे दिन गोपालक ने उस गाय का पीछा किया। उसका वल्मीक के पास जाना, बिल में दूध की धाराएँ गिराना सब देखा। गोपालक गुस्से में आ गया। उसके हाथ में एक कुल्हाडी थी। उसे गाय की ओर फेंकी। तब विष्णु ने बिल से बाहर आकर उसे बचाते हुए चोट अपने सर पर ली। भगवान ने सोचा कि 'गाय मुझे हर दिन अपना दूध पिला रही है। यह मेरी माता समान है। इसकी मृत्यु मैं सह नहीं सकता हूँ'। कुल्हाडी उनके सिर पर लगते ही उनके सिर से रक्त तूफानी वेग से ऊपर उछला। रक्त की फव्वारा हो गयी। इस आश्चर्यजनक दृश्य को गोपालक ने देखा और लुढक कर जमीन पर गिर पडा। गिरते ही उसके प्राण हवा में मिल गये।

गाय ने गोपालक को गिरकर - मरते देखा। वह राजसभा की ओर दौड चली। चोळ राजा उस समय अपनी दरबार में थे। सभा में राजा के सामने गाय जमीन पर गिरकर लोटने लगी। राजा को देखकर जोर से रंभाने लगी। फिर खडी हो गयी। कुछ कदम पीछे रखी। राजा गाय की चेष्टाओं को देखकर आश्चर्यचकित हो गथा। अपने नौकरों को समाचार पाने के लिए आदेश दिया। वे पहाड पर गये। वल्मीक के पास पहुँचकर आसमान की ओर फव्वारे की तरह ऊपर उडननेवाली रक्त धाराओं को देखा। नौकर तुरंत राजा के पास दौड आये। उस भयंकर दृश्य के बारे में राजा से कहा। तुरन्त चोळ राजा पालकी में बैठकर वल्मीक के पास पहुँचे। भयानक दृश्य को देखकर अचंभा रह गये। राजा, अपने मंत्रियों से बात करने लगे। बस, इतने में भगवान स्वयं वल्मीक से बाहर निकले । वे तब *शंख* और *चक्र* धारण किये हुए थे। राजा को संबोधित कर गरजते हुए कहा - ''हे राजा! सुन! मैं ने इस बिल का शरण

लिया था। मेरी न कोई माता है और न ही पिता। मैं अकेला हूँ। सब से दूर हूँ। यह करुणामयी गाय मुझे निरंतर दूध पिलाती रही है। यह मेरी माता है। आज यह गोपालक इसे मारने पर उतरा था और गाय के सिर पर कुल्हाडी फेंकी। उसे रोकने मैं ने सिर उठाया। कुल्हाडी मेरे सिर पर लगी। उसने पाप किया है। अपने पाप को अपनी आँखों से देखकर गिर कर मर गया। गो हत्या का पाप उसे लगा है। तुम्हें भी उसके पाप को बाँट कर सहना होगा। क्योंकि वह तुम्हारा नौकर है। मुझे मारने का अपराध भी भोगना होगा। इसलिए ''मैं तुमको भूत बन जाने का शाप दे रहा हूँ।'' शाप सुनकर राजा अवाक् रह गये। कुछ ही क्षणों में संभलकर भगवान के सामने प्रणमित हुए। उठकर आँसुओं की धारा बहाने लगे। गद्‌गद् हो भगवान से हाथ जोडकर कहा - ''हे भगवान! मैं ने जानबूझ कर कोई अपराध नहीं किया है। कोई घातक योजना नहीं बनायी। मेरा इसमें कोई अपराध नहीं है। बिना किसी कारण के मुझे दोषी ठहराना कहाँ तक उचित है, प्रभू! यह मेरे लिए असहनीय शाप है।'' विष्णु भगवान ने राजा पर दया की और कहा - ''हे राजा! मैं अपने शाप को वापस नहीं ले सकता। दिन भर की घटनाओं ने मेरी इस प्रकार की मानसिकता बनायी है। तुम को हद से अधिक दुख और ताप सहना पडा। मुझे भी इस पर खेद है। आपके प्रति मेरे हृदय में छिपे प्रेम को भी मैं विस्मृत नहीं कर सकता। *कलियुग* तक इस शाप को भोगना होगा। तुम्हें कलियुग में एक उदारचेता राजा का जन्म होगा। उनका नाम आकाश राजा होगा। वे अपनी पुत्री पद्मावती का विवाह मुझसे करेंगे। उस समय एक रत्न जडित किरीट (मुकुट) हर शुक्रवार को छः *घटिकास* (2 घंटे और 24 मिनट) के समय तक मेरे सिर पर धारण करेंगे। उस समय मेरी आँखों से आनंद भाष्प धरती पर गिरेंगे। तब उन्हें देख पाओगे। उसी समय तुम्हारा शाप मिटेगा। तुम अतुलित आनंद पाओगे।'' चोळ राजा भूत बन गये।

भगवान विष्णु ने घाव का तीव्र क्लेश अनुभव किया। *देवगुरु* बृहस्पति को याद किया। वे आये। उनको अपने घाव के बारे में बताया। शीघ्र उपशमन के उपाय कहने के लिए कहा। वृहस्पति ने साथ लाये रसायन द्रव्य का लेप किया। कुछ सुश्रूषा की। उपयुक्त औषधियों और जडी बूटियों को ढूँढ लानेवाला कोई नहीं था। उनके बारे में बताकर बृहस्पति चले गये। विष्णु स्वयं बृहस्पति द्वारा बतायी गई ओषधियों को ढूँढने वन में निकले।

उसी समय वृषभासुर संहारक वराहस्वामी भूदेवी समेत पर्वत श्रेणियों, गुफाओं आदि को देखते घूमते - घूमते चले। उसी समय उन्हें वेङ्कटाद्रि का स्मरण आया। उस ओर चले। उसी अंचल में विष्णु भगवान भी जडीबूटियों के लिए ढूँढ रहे थे। लेकिन वे सामान्य मानव के रूप में थे। मानव रूप में विष्णु को वराह स्वामी ने *राक्षस* समझा। उनसे भिडने के लिए तैयार हो गये। वराह स्वामी ने अपने शरीर को झटकाकर बहुत बडा किया। भयंकर रूप से घुरघुराया। विष्णु भगवान कुछ पीछे हटकर एक झाडी की आड में छिपे। वराह देव ने उनका पीछा किया। विष्णु ने उनके सामने आँसू बहाया। वराह ने उनको देखकर पहचान लिया। वे समझ गये कि उनके सामने मानव रूप में जो गोचर है, वे भगवान विष्णु ही

हैं। अपनी भ्रांत धारणा के लिए पछताते हुए उनसे वराह ने *वैकुण्ठ* के बारे में पूछा। उन्होंने यह भी पहचाना कि उनके वक्षःस्थल पर महालक्ष्मी नहीं है। यह भी पूछा कि वे क्यों मानव रूप में यहाँ घूम रहे हैं। उनके सिर पर घाव क्यों है? क्यों वे एक झाडी के पीछे छिपे? क्यों आँसू गिराये? क्यों साहस के साथ सामने खडे नहीं हुए? ये सब क्रीडाएँ क्यों? लीला क्या है?

विष्णु भगवान ने वराह देव को सारी घटनाएँ सुनायीं। अपने वेङ्कटाचल आने के पीछे का लक्ष्य बताया। सिर के चोट की घटना स्पष्ट की। बृहस्पति के द्वारा सूचित जडिबूटियों की बात बतायी। उन्हें ढूढने निकलने की बात भी कही। इन सबसे दोनों के मिलन की बात भी स्पष्ट हो गयी। अन्त में विष्णु भगवान ने कहा - ''हे वराह! सिर का घाव तीव्र है। मेरा सिर दुख रहा है। कष्ट से त्रस्त हूँ। अधिक रक्त बह गया है। मेरी शक्ति क्षीण हो गयी है। दुर्बलता के कारण मैं आप से भिड नहीं पा रहा हूँ। आपकी भयानक घुरघुराहट मुझे एक प्रकार से चुनौती ही थी। इसीलिए मैं ने अपने आप को छिपा लिया है। अब आपने स्वयं सहृदयता से बात चलायी, मेरी - दर्द कुछ शमित हुई। व्यथा कम हुई। मैं आपके पास आ सका हूँ। वैकुण्ठ में न रहने की इच्छा के कारण ही मैं यहाँ वेङ्कटाद्रि पहुँच गया हूँ। एक वल्मीक में वास कर रहा हूँ। यह क्षेत्र आपका है। आपमें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। मैंने आपको तुरंत पहचाना है। अब मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे अपने पास रहने दें।''

तब वराहस्वामी ने विष्णु से कहा - ''मेरा बहुत समय तक वेङ्कटाद्रि छोड रहने का कारण वृषभासुर है। उसको ढूँढते - ढूढते मैं बहुत दूर चला गया था। उसके साथ सुदीर्घ युद्ध चला। मैं भूलोक वैकुण्ठ वेङ्कटाद्रि से दूर रहा। उसको मार कर मैं अभी लौट आया हूँ। चलिए, हम दोनों का मिलना हो गया। हमारा यह मिलन हमारे लिए स्नेह बन्धन का अवसर बन गया। अब मुझे अत्यंत लाभ मिल गया।'' वराह स्वामी की उत्तरदायित्वपूर्ण भावना को पाकर विष्णु को भी सुख मिला। अच्छा संदर्भ पाकर विष्णु भगवान ने अपनी इच्छा वराह स्वामी के सामने रखी- ''हे वराह जी! मेरे लिए रहने लायक थोडी जगह मुझे दीजिएगा। *कलियुगान्त* तक मैं यहाँ रहूँगा।''

वराह स्वामी को आश्चर्य हुआ। वे जानते हैं कि गरीब को झूठी आशाएँ नहीं देनी चाहिए और धनवान तथा बलवान को आश्रय देना भी उचित नहीं। इसे ध्यान में रखकर वराह स्वामी ने कहा कि अगर वे सही मूल्य चुकायेंगे तो जमीन अवश्य मिलेगी। वह भी केवल एक सौ फुट की जगह। वराह जी को मूल्य चुकाने की बात पर विष्णु ने प्रार्थना की - ''अगर लक्ष्मी मेरे पास होती तो अवश्य मैं मूल्य चुकाता। लक्ष्मी मुझे छोडकर चली गयी हैं। वे कोल्हापुर में रह रही हैं। मुझे पैसा किसकी सेवा करने से मिलेगा? मेरी तो यहीं रहने की इच्छा है। इसका एकमात्र कारण भक्तों की मनौतियाँ हैं। मैं आजकल उन्हीं पर निर्भर हूँ। समस्त पृथ्वी अब आपकी है। आपने ही उनकी रक्षा की है। *पाताल लोक* से उभारे हैं। (वास्तव में हिरण्याक्ष ने भूमि को डुबा रखा था तो वराह स्वामी ने अपने दान्तों पर उठाकर बाहर रखा।)। इसलिए अब आप मुझे थोडी जगह दे दीजिए। उसकी सीमाएँ बाँधकर रखिएगा। मैं उन्हीं

सीमाओं में रहूँगा। एक साधारण मानव के समान रहूँगा। किन्तु लोगों को अवश्य आकर्षित करूँगा। उन पर ऐसा प्रभाव डालूँगा कि वे रोज आपकी आराधना *पंचामृत* (पानी, दूध, दही, घी तथा शहद का मिश्रण) से करेंगे।'' भक्तगण सबसे प्रथम आपकी पूजा करेंगे, आपको ही कानुक (भेंट) देंगे।

वराह जी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। एक सौ फुट जगह विष्णु भगवान को दे दी। इतना ही नहीं अपने पास रहनेवाली वकुलमालिका को उनकी सहायता के लिए उनके साथ भेजा। तब से वकुलमालिका हर दिन विष्णु को *श्यामका अन्न* शहद के साथ मिलाकर खिलाने लगी। दवा - दारू बनाकर उनके सिर के घाव की सुश्रूषा भी की। उनकी नित्य - नैमित्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति में तन्मय भाव से लगी ही रही। भक्ति और प्रेम के मिश्रित भाव से उनकी देख - भाल करती रही। वकुलमालिका और कोई नहीं, द्वापर युग की यशोदा माता ही थी। वह श्रीकृष्ण की लीलाएँ मात्र से संतुष्ट नहीं थी। वे तो बाल लीलाएँ थीं। उनके आगे के जीवन की *लीलाओं* से भी आनंद पाना चाहती थी। इसीलिए यशोदा माँ ने ही वकुलमालिका बनकर पुनर्जन्म लिया। वेङ्कटाचल पर श्रीवेङ्कटेश्वर की सेवा में लीन होकर भगवान की जीवन लीला से जुड गयी।

श्रीवराह ने वेङ्कटाचल की महत्ता और महिमा बताने के बाद श्रीस्वामी पुष्करिणी और अन्य *तीर्थों* का भी विवरण दिया। *श्रीवराह मंत्र* की विशिष्टता बतायी। अब तक घटी घटनाओं के साथ आगे घटित होनेवाली से विवाह का भी संकेत दिया। *वैवस्वत मन्वंतर* के *आदि और कृत युग* की बातें तथा भारत के भविष्य में घटनेवाली विशेषताओं का भी संकेत दिया- ''धाता यथा पूर्वं अकल्पयत्।''

(वरा. पु. भाग - 2, अ. 3, श्लो. 1)

इसके बाद वैवस्वत मनु के समय के एक *कृत युग* में वायुदेव की बात भी की। उस समय *वायुदेव* ने घोर तपस्या की थी। उस समय भगवान के वक्षःस्थल पर श्रीलक्ष्मी शोभित थी। भगवान उनकी तपस्या से मुदित हुए। प्रत्यक्ष होकर एक वर उन्हें दिया था। उसके अनुसार वे श्रीनिवास बनकर श्रीदेवी और भूदेवी समेत वेङ्कटाद्रि पर *आनंदनिलय विमान* में रहेंगे। उसी *विमान* में वास करेंगे।

देव सेनानी कुमार स्वामी भी उनकी आराधना करेंगे। अगस्त्य मुनि ने इस पर्वत पर बारह वर्ष की *तपस्या* की और चाहा कि *कल्पांत* तक विष्णु भगवान वेङ्कटाद्रि पर रहें और भक्तों की इच्छाएँ पूरी करें। विष्णु ने तब स्वीकारा था। तत्परिणामस्वरूप श्रीलक्ष्मी और भूदेवी सहित यहाँ विराजित रहेंगे। इस प्रकार वायुदेव और स्कंद (कुमार स्वामी) की इच्छाएँ पूरी हुईं। वे भी उनकी सेवा में रत हुए।

(वरा. पु. भाग - 2, अ. 3, श्लो. 2 - 11)

* * *

अध्याय - 7

ब्रह्म, देवतागण और ऋषियों का वेङ्कटाद्रि पर भगवान विष्णु का दर्शन और राजा दशरथ का वेङ्कटाचल पर आना

(वराह पुराण - भाग - 1, अ. 43 - 50)

एक समय पर व्यास मुनि ने *पौराणिक* सूत से कहा था कि श्रीवेङ्कटेश्वर ने अपने पूर्व प्रकटित रूप लेने पर सबसे पहले अपना प्रथम *दर्शन* ब्रह्म को दिया। इस बात को सूतमुनि ने *नैमिशारण्य* में शौनकादि *मुनियों* को इस प्रकार बताया -

एक समय पर दुष्ट *राक्षसों* (दैत्यों) ने *योगियों, मुनियों,* इन्द्र और *देवताओं* को सताना आरंभ किया। ये राक्षस हिरण्यकशिप के वंशज थे। दानवों के अत्याचार वे सहन नहीं कर पाये। अपने कष्टों को सुनाने के लिए, सब मिलकर क्षीराब्धि (क्षीर का समुद्र) में रहने वाले भगवान विष्णु के पास पहुँचे। उन्होंने उस समय प्रार्थना की - ''हे क्षीराब्धिशयन! जल प्लावन के समय आपने स्वयं विश्व की समस्त *प्राणियों* को अपने उदर में रखकर उनकी रक्षा की थी। आपने ही विश्व की पुनः सृष्टि के समय जड - चेतन जगत का निर्माण किया। सृष्टि के बाद आप ही विश्व स्वरूप बनकर व्याप्त हुए हैं। समस्त विश्व के सृष्टि कर्ता बने हैं। आप ही जगत्कर्ता हैं। आपने विश्व के शासन का दायित्व तो स्वीकारा है। अब आप क्षीर सागर में आदिशेष पर श्रीमहालक्ष्मी के साथ योगमुद्रा में शयनित हैं। हमारी व्यथाओं पर किंचित भी ध्यान नहीं दे रहे हैं। इससे हमारी स्थिति क्या होगी? हे प्रभु! हे भगवान! देवाधिदेव! हे दयासागर! हम पर दया कीजिये। कुछ कीजिए।''

सबकी प्रार्थनाएँ प्रस्तुत होने के पश्चात् वैकुण्ठ के सेनापति ने उनके पास आकर कहा कि *मायाप्रवर* विष्णु भगवान आजकल वेङ्कटाद्रि पर विराजे हैं। वहाँ जाकर ही भगवान से मिलना है। इस पर उन्होंने शंका की। वे भगवान को *क्षीराब्धि* छोडकर पृथ्वी पर जाने का कोई कारण नहीं समझा। इसलिए उन्होंने वैकुण्ठ जाने का निर्णय लिया। रास्ते में उन्होंने *वीणा* वादन में मग्न नारद जी मिले। वे वैकुण्ठ से ही लौट रहे थे। सभी ने समवेत स्वर में त्रिलोक संचारी नारद से तीनों लोकों का समाचार पूछा। नारद ने मुनियों से कहा - ''मैं विष्णु भगवान की आराधना के लिए वैकुण्ठ गया। वहाँ अब विष्णु भगवान नहीं हैं। अब वे श्रीलक्ष्मी समेत पृथ्वी पर एक पर्वत पर रह रहे हैं।'' नारद से समाचार पाकर सब मिलकर नारद सहित ब्रह्म से मिलने *ब्रह्मलोक* पहुँचे। उन्होंने सोचा था कि कम से कम विष्णु भगवान के पुत्र ब्रह्म अवश्य विष्णु का समाचार जानते होंगे। वे जानना चाहते थे कि असल में विष्णु भगवान कहाँ रह रहे हैं।

ब्रह्मलोक में चतुर्मुख चतुर्भुज ब्रह्म से मिले। वहाँ कमलासन ब्रह्म गायत्री, सावित्री और सरस्वती सहित अपने सेवक, परिवार और *अष्ट - दिक्पालकों* से परिवेष्ठित हो विराजमान थे। कुशल मंगल के

बाद *देवताओं* और *ऋषियों* ने ब्रह्म से निवेदन किया - ''हे चतुरानन! आप की कृपा से हम सब कुशल हैं। लेकिन रावण के अनुचरों का उत्पीडन असहनीय हैं। उनके पक्ष के कुछ *दानव* श्रीशैल (वेङ्कटाद्रि) प्रान्त में फैलकर ऋषि मुनियों की तपस्याओं को भंग कर रहे हैं। उन्हें अनेक यातनाएँ पहुँचा रहे हैं। वे चाहते हैं कि ऋषियों की *तपस्या* निष्फल हो जाय। अब तक वे सब सहनशील रहे हैं। उनकी सहनशीलता की पराकाष्ठा हो गयी है। आगे कुछ सहन करने की क्षमता उनमें नहीं है। हमारा निर्णय है कि भगवान विष्णु ही एक मात्र रक्षक हैं। वे ही दानवों का संहार कर सकते हैं। हम सब ने मिलकर उनको ढूँढा। लेकिन वे कहीं नहीं मिले। आप सृष्टिकर्ता हैं। हमारे रक्षक भी हैं। आप ही हमारे लिए एक मात्र आधार हैं। भगवान विष्णु की सूचना देकर हमें अनुग्रहीत कीजिए।''

कुछ क्षण के लिए *ब्रह्म* सोच में पड गये। तत्पश्चात् देवताओं और ऋषियों को संबोधित कर कहा - ''हे *देवतागण!* हे ऋषिप्रवर! रावण ने कठोर तपस्या की है। तपस्या से उसने दिव्य वरों को प्राप्त किया है। इस कारण उसे असाधारण शक्ति मिली है। उसने मानव की शक्ति को अकिंचन माना है। मानव को छोडकर अब कोई उसे मार नहीं सकता, क्योंकि उसने मानव के द्वारा मृत्यु संभव न हो ऐसा वर नहीं माँगा। अब मानव को छोडकर अन्य कोई *देवता* या शक्ति उसे पराजित नहीं कर सकती। कोई और उसका संहार नहीं कर सकता। इसीलिए उसकी मृत्यु केवल मानव से ही संभव हो सकती है। यह कार्य केवल विष्णु ही कर सकते हैं। वे ही इसके लिए सही मार्ग निकाल सकते हैं। माध्यम भी ढूँढ सकते हैं। अब वे पृथ्वी पर वेङ्कटाचल पर निवास कर रहे हैं। वेङ्कटाचल उनका मनभाया पर्वत है। वहाँ पहुँचने के लिए तैयार हो जाइए। मैं भी आप के साथ आऊँगा। हम सब मिलकर वेङ्कटाचल पर उनको ढूँढेंगे। इतना ही नहीं, इक्ष्वाकु वंशी दशरथ जी भी वेङ्कटाद्रि पहुँचेंगे। वहाँ वे स्वामी पुष्करिणी तट पर संतान प्राप्ति के लिए तपस्या करेंगे। भगवान विष्णु अवश्य संतुष्ट होंगे। उनको वरदान देंगे।'' सब *देवतागण* ब्रह्म के साथ ब्रह्मलोक (सत्यलोक) से *भूलोक* चले। *सिद्ध* और साधुओं की तपस्या स्थली गिरि- कंदराओं से भरकर पवित्रता बिखेरनेवाली दिव्य गिरि वेङ्कटगिरि पहुँचे। *गंधर्वों* का दिव्य संगीत वहाँ प्रतिध्वनित हो रहा था। *अप्सराएँ* और देवाँगनाएँ जब नाचती, तब उनके नृत्य, गान और घुँघुरुओं का नाद समस्त वन्य प्रान्त में प्रतिध्वनित हो रही थी। ऋषि मुनियों ने, जो विष्णु की खोज में निकले थे, अनुभव किया कि उनके सामने से गुजरनेवाले पशु - पक्षी, *गंधर्व* आदि स्वयं विष्णु ही हैं, श्रीवेङ्कटेश्वर ही हैं।

उस समय पृथ्वी पर राजा दशरथ शासन चला रहे थे। साठ हजार वर्ष से अयोध्या उनकी राजधानी थी। राज्याधिकार तो उनके पास था। लेकिन उनकी कोई संतान नहीं थी। उन्होंने अपने परिवार *पुरोहित* से विचार विमर्श किया। महर्षि वशिष्ठ जी ही उनके परिवार के पुरोहित थे। वशिष्ठ जी कुछ समय तक मन में ही ध्यानरत रहे। कुछ सोच - समझकर कहा कि ''पुण्यात्माओं को कोई पाप नहीं लगता। दशरथ जी, आपने अपने पूर्व जन्मों में कभी कुछ पाप अवश्य किया है। उसके प्रभाव से ही आज आप इस

जन्म में संतान विहीन हैं। फिर भी इसका हल है। आपको वेङ्कटाचल जाकर श्रीवेङ्कटेश्वर की तपस्या करनी है। वेङ्कटाचल, पवित्र गंगा से दक्षिण में, दो *योजन* में स्थित विस्तृत दिव्य वन्य प्रान्त है। यह वैकुण्ठ से पृथ्वी पर लाया गया पवित्र *क्रीडा क्षेत्र* है। इसीलिए यह पर्वत शिखर प्रान्त श्रीवेङ्कटेश्वर का मनोनीत प्रान्त है। यह भगवान को वैकुण्ठ से अधिक प्रिय है। श्रीविष्णु यहाँ वेङ्कटेश्वर नाम से अपनी देवेरियों के साथ विराजमान हैं।'' आगे कहा -

''भगवान वेङ्कटेश्वर के दर्शनाभिलाषी होकर *देवता गण, योगिपुंगव* और *ब्राह्मण* यहाँ *तपस्या* करते हैं एवं धार्मिक अनुष्ठान किया करते हैं। विश्व - कल्याण के लिए ब्रह्म भी विष्णु वासस्थली पर ही, उनके समक्ष ही, *तपस्या* करते हैं। वे अपने भक्तों के प्रति अत्यंत दयालु हैं एवं करुणा समुद्र हैं। आप भी उनकी आराधना मुक्त मन से करेंगे तो अवश्य आपकी कामना पूर्ण होगी।''

महर्षि *(पुरोहित)* वशिष्ठ के परामर्श के फलस्वरूप राजा दशरथ को अत्यंत आनन्द मिला। तपस्या के लिए वे वेङ्कटाद्रि की ओर चले। यात्रा में गंगा, गोदावरी, कृष्णवेणी, भद्रा, तुंगा, पंपा, भवनाशिनी आदि नदियों में पवित्र स्नान किये। अंततोगत्वा वे वेङ्कटाचल पहुँचे। वहाँ के पर्वत शिखरों और घाटियों के सौंदर्य से मंत्रमुग्ध हुए। झरनों, सरोवरों, तालाबों आदि में पवित्र स्नान किये। पवित्र स्नान से पुनीत होकर निर्मल मन से पुत्र संतान की कामना लेकर दशरथ आगे बढे।

दशरथ और वशिष्ठ महर्षि तीर्थों की यात्रा करते - करते, अंत में वेङ्कटाद्रि पहुँचे। वहाँ उन्होंने पाया कि स्वामि पुष्करिणी तट पर अनेक प्रकार के याग आदि क्रियाओं में लग्न साधुजन, क्षेत्र को और पुनीत कर रहे हैं। उनमें कुछ विष्णु का स्मरण करते हुए *योग* साधनारत हैं तो कुछ मूर्ति को ध्यान में रखकर फूलों से उनकी पूजा कर रहे हैं। कुछ यज्ञ - यागादि क्रियाएँ संपन्न कर रहे हैं तो कुछ *मंत्र* जप निष्ठ हैं। कुछ *प्रणव* नाद ओंकार का उच्चारण कर रहे हैं तो अपनी अपनी इच्छा के अनुसार *तारक - ब्रह्म - मंत्र, वराह मंत्र, वासुदेव द्वादशाक्षर मंत्र, गोपल बीज मंत्र, नारायण अष्टक्षरी मंत्र* आदि का जाप कर रहे हैं। इन सबके बीच चतुर्भज ब्रह्म भी थे। उन्हें देखकर दशरथ को आश्चर्य हुआ। ब्रह्म के हाथ में जपमाला (स्फ़टिक माला) थी और वे व्याघ्र चर्मासन पर विराजमान हो *तपस्या* में लीन थे। दशरथ ने उस दिव्य मंगल पवित्र दृश्य को देखकर अत्यंत विस्मय का अनुभव किया।

वशिष्ठ जी ने दशरथ को महर्षियों और ब्रह्म की तपस्याओं के फलस्वरूप भगवान विष्णु के प्रत्यक्ष होने के समय की निकटता का अनुमान लगाया और स्वामि पुष्करिणी में पवित्र स्नान करने की सलाह दी। तत्पश्चात् वशिष्ठ जी ने *श्री वेङ्कटेश्वर अष्टाक्षरी मंत्र और यंत्र* (उसका रुप चित्र) का उपदेश दिया। निर्देशित किया कि वे निष्ठा से मंत्र जप करते हुए तपस्या में लीन हो। वशिष्ठ महर्षि भी *कुशासन* (एक प्रकारे के घास का आसन) पर आसीन होकर अष्टाक्षरी मंत्र *जप* के साथ तपस्यारत हो गये।

एक दिन अकस्मात तपस्या में लीन सभी ने मेघ गर्जन सम गंभीर ध्वनि सुनी। उन्होंने आकाश पर चारों ओर दृष्टि दौडाई। इतने में चकाचौंध करनेवाली बिजली कौंध गयी। तपस्वियों की आँखें उस प्रकाश को सहन नहीं कर पायीं। सबने आँखें मूँद लीं। इतना होने पर भी उन्होंने अपनी तपस्या जारी रखी। उस प्रकाश के मध्य एक *दिव्य विमान* (दिव्य मंदिर) दिखाई दिया। वह अनगिनत मंदिर *शिखरों* (गोपुर) के बीच था। अनेक *प्राकारों* से विलसित था। कनकमय द्वार थे। मणि - माणिक्यों से विभूषित वंदनवारों से, तोरणों से, *गोपुरों* (कलषों) से विलसित था। गोपुर शिखर स्वर्णकलशों से विराजमान था। *विमान* के आँगन में सामने ही अमूल्य वज्रों से शोभित *क्रीडा - मंटप* था। क्रीडा मंटप के मध्य आस्थान मंटप विलसित था। आस्थान मंटप के खंभों पर रत्न जडे हुए थे। उसके चार दरवाजे (द्वार) *द्वारपालकों* से परिरक्षित थे। उसमें एक *मणि - मंटप* भी था। समस्त स्वर्ण स्तभों से विराजमान यह मंटप अत्यंत पवित्र तथा अत्यंत प्रभावशाली लग रहा था। उस प्रकाश के बीच एक रथयात्रा दिखी। वह *रथ* अश्व चालित था। गज, वृषभ आदि जंतु तथा मधुर ध्वनियों को निसृत करनेवाला पक्षी वृन्द रथ यात्रा को और शोभित कर रहे थे। भेरी नाद चारों दिशाओं को अपना बना रहा था। सुंदर नदियाँ नमन करती और हाथों को उठाकर हिलाती अपनी भक्ति भावनाओं को व्यक्त करती दिखाई दे रही थीं। कुछ भद्र महिलाएँ कर्पूर नीराजन अर्पित कर रही थीं। कुछ स्त्रियाँ अपने नृत्य - गान से वातावरण को और आकर्षक बना रही थीं। दृश्य परम अद्‌भुत और भक्ति युक्त था।

दिव्य और भव्य दृश्य का दर्शन पाकर ब्रह्म, अन्य *देवता सनक, अगस्त्य, योगियों* और *मुनियों* का वृन्द सभी स्तब्ध रह गये। उनको पता ही नहीं चला कि आँखों के सामने क्या हो रहा है और उन्हें क्या करना है। उस प्रभाव से सबसे पहले ब्रह्म सचेत हुए। सबको उन्होंने प्रकृतिस्थ किया। तब जाकर ब्रह्म ने कहा - ''हे भक्तगण! लगता है कि यह *विमान* भगवान विष्णु का ही *विमान* है। यह वैकुण्ठ से ही आया है। आप सब मेरे साथ उसमें प्रवेश कीजिए। उसको सही दृष्टियों से देखते हुए दर्शन लाभ प्राप्त करेंगे।'' दशरथ ने भी उनका अनुसरण किया। मुखद्वार पर उनको द्वार पालक मिले। वे थे चण्ड और प्रचण्ड। वे दोनों *शंख चक्र* - धारी थे। ब्रह्म आदि को उन्होंने नमस्कार किया। वे सभी आगे बढे। *विमान* तक पहुँचने के लिए उन्हें सात द्वारों को पार करना है। सबसे होकर अन्ततः वे विमान में पहुँचे। विमान के मध्य नील घनश्याम विष्णु को पाया। विष्णु भगवान के दक्षिण पार्श्व में श्रीलक्ष्मी और वाम पार्श्व में भूदेवी विराजमान थीं। वे विमल नेत्रों से भगवान विष्णु को देख रही थीं। विष्णु और उनकी देवियों के सिरों पर देदीप्यमान मुकुट शोभित थे। भगवान के कानों में *मकर - कुण्डल* शरीर पर (ब्रह्मसूत्र) यज्ञोपवीत, कंठ में सुवर्ण *कण्ठहार,* छोटी - छोटी घंटिकाओं से युक्त सोने की म्यान में *खड्‌ग* और *मंजीर नूपुर* (पायल) चरणों में विराजमान थे। सहस्र काँतियों को बिखेरनेवाला *सुदर्शन चक्र* उनके दक्षिण हस्त में तथा *पांचजन्य* (शंख) वाम हस्त में प्रकाशमान थे। चतुर्भुजी स्वामी का एक और दक्षिण

हस्त तो चरणों की ओर संकेत करता है, *वरद मुद्रा* में और एक हस्त विशिष्ट *अभय सूचक मुद्रा* में थे। कटि पर धरा हाथ यह सूचित करता है कि भक्तों का जीवन सागर कटि तक ही डुबो सकता है।

(भगवान विष्णु के *दिव्य - विमान* में उक्त स्वरूप - विवरण में उद्धृत लक्षण आज की मूल विराट मूर्ति में भी ज्यों का त्यों हैं। भगवान का राजसी रूप उनके आखेट गमन (पारुवेटा) उत्सव में स्पष्ट झलकता है। कुछ संदर्भों में विशेषकर *'पूलंगि - सेवा'* (फूलों से सेवा) नामक विशेष सेवा में वे तो वैभव मूर्ति लगते हैं। कुछ विशेष संदर्भों में उनका क्रोधी भयानक रूप भी गोचरित होता है।)

भगवान भक्तों को हमेशा सस्मित दिव्य वदन से भासित दर्शन ही देते हैं। उनकी करुणापूर्ण दृष्टियाँ और आकर्षक दिव्य रूप भक्तों पर दया, करुणा, शालीनता, क्षमा आदि बरसानेवाले ही हैं। *आदि - और अंत* रहित *(आद्यंत रहित)* नारायण *अव्ययी* (कभी क्षत नहीं होनेवाला) और पुरुषोत्तम हैं। *महर्षियों* और *मुनियों* (तपोधन) ने भगवान के उक्त दिव्य रूप का दर्शन लिया। अपने आपको भूलकर, दिव्य अनुभूति से ओतप्रोत होकर हर्षातिरेक में आनंदाश्रु बरसाते हुए नृत्य करने लगे। सभी विष्णु दर्शन से प्रशान्त मन हुए।

अगस्त्य और *महर्षियों* ने भगवान की प्रशंसा की। उन्होंने कहा - ''हे *यज्ञरूपा!* हे *यज्ञभोक्ता!* हे यज्ञ फल प्रदाता! हे *यज्ञ रक्षक!* आपको शत - शत नमन। (रामावतार में आपने राक्षसों का संहार कर विश्वामित्र के महायज्ञ की रक्षा की है।) आप *यज्ञ, श्राद्ध, दान* आदि मानवोचित धार्मिक कर्मों के रक्षक हैं। आप अपने ही भक्तों की रक्षा ही नहीं बल्कि अन्य *देवताओं* के भक्तों की रक्षा का भार भी वहन करते हैं। यह इसलिए कि आप सब में हैं और सब की कामनाएँ पूरा करते हैं। यह निश्चित भी है कि आप विश्वव्यापी हैं। आपके स्मरण और आपको संतुष्ट किये बिना कोई भी धार्मिक कार्य पूरा हो नहीं सकता। आरंभ अथवा अंत में या बीच में ही सही, अवश्य आपकी अर्चना - पूजा करनी ही है। तभी समस्त मानव के कार्य - कलाप और धार्मिक कृत्य सफल माने जाते हैं। सभी कार्य सफल भी तभी होते हैं। भक्तों द्वारा संपन्न यज्ञ, पूजाओं, जपों आदि द्वारा संतुष्ट होकर आप सब पुरुषार्थ उन्हें प्रदान करते हैं। *धर्म, अर्थ, काम* और *मोक्ष* नामक पुरुषार्थ प्राप्त कर भक्त जीवन्मुक्त होते हैं। ये सब धार्मिक कार्य और यज्ञ, आपके आदेश से ही वेदों में निर्देशित हुए हैं। हम सब इन्हें आपकी सेवा मानकर ही संपन्न करते हैं। हम अपने आप इन्हें समर्थ और सूक्ष्म रूप में पूरा नहीं कर सकते। उन्हें संपन्न करने के लिए हम आप की प्रार्थना करते हैं। आपकी कृपा के अभाव में उनको निभाते समय जो भूलें होती हैं उनसे आप ही भक्तों की रक्षा करते हैं। आप उदारतापूर्वक क्षमा करते हैं।''

इसके बाद इन्द्र और अन्य *देवता समूह* ने मिलकर श्रीमहाविष्णु से निवेदन किया - ''हे वेङ्कटाचलपति! हे शेषाद्रिवास! हे सिंहाचलवासी! हे श्रीमन्नारायण! हे वासुदेव! हमारे विनम्र प्रणाम स्वीकार कीजिए। असीम कृपा से आपने *पाताल* से पृथ्वी को उभारकर पुनःस्थापित किया है। इतना ही

नहीं इसके बाद आपने मानव समूह की रक्षा के लिए इस पर्वत पर रहने का निर्णय भी लिया। क्षीर सागर मंथन के समय आपने अमूल्य सहयोग दिया है। उससे निकले *अमृत* को बहुत ही सावधानी से देवताओं में बाँटा है। फलस्वरूप *देवताओं* की रक्षा भी हुई। आप आकांक्षा रहित हैं। आप अपने लिए कुछ चाहते नहीं हैं। आपके सब कार्य भक्तहित के लिए ही घटित होते हैं। अपने रूप को समय की माँग के अनुसार परिवर्तित करते हैं। कभी आप सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष और सहस्रहस्त हो *विश्वरूप* धारण करते हैं तो कभी दो ही हाथों से युक्त होकर शोभावान मानव बनते हैं। कभी आप निराकार भासित होते हैं और केवल ज्ञान नेत्र गोचरित हो विराजते हैं। ऋषि मुनि इसीलिए आपको *निर्गुण* के रूप में स्वीकार कर आपका ध्यान करते हैं। आपका *सगुण* रूप भी उनको उतना ही आकर्षक होता है। भक्तों के लिए सगुण रूप ही अधिक मान्य ठहरता है, जबकि ज्ञानियों को निर्गुण रूप। वेदांती तो आपके *सत्, चित्* और आनन्द स्वरूप की आराधना करते हैं। आप दिव्य पुरुष और दिव्य शरीर से युक्त हैं। उपासना के लिए आपका दिव्य रूप सभी के लिए स्वीकार्य भी है। सब आपकी पूजा अर्चना इसी स्वरूप को मानकर करते हैं।''

इसके बाद सनकादि *मुनियों* की बारी आयी। उन्होंने भगवान को संबोधित कर प्रार्थना स्वर में कहा - ''हे महाविष्णु! हे वैकुण्ठवासी! आप विश्व के सृष्टिकर्ता हैं। आप विश्वरूपा हैं। फिर भी आप किसी से भी प्रभावित नहीं हैं। आपको हमारे नमन! *समाधि* की स्थिति में हम आपको आधार - षट्चक्रों के बल पर अनुभूत करते हैं, सुषुम्ना नाडी से, केवल बुद्धि से ही ग्रहणीय होता है, प्राप्त करते हैं हम आप को। आप *अरूपा* और *स्वयंप्रकाश रूपा* हैं। हमारे हृदय कमलों में आपको बिठाकर साधना रत होते हैं। आप नीलकमल, *पीतांबरधारी*, अच्युत, वेदवेद्य हैं। फिर भी वेदों द्वारा आप विविध रूपा घोषित हैं - *'वेदस्य अविधयम्'।''*

सनकादियों की प्रार्थना के बाद कोसल देश के राजा दशरथ ने भगवान से निवेदन किया - ''रमापति! रमा (लक्ष्मीदेवी), जिनकी कृपा पाने के लिए ब्रह्म, इन्द्र और *समस्त देवता समूह* आराधना करते हैं, आपकी कृपा चाहती है। आपके आयुध ने ही त्रिपुरासुर संहार के संदर्भ में *त्रिपुरारी* (शिव) को सहायता पहुँचायी है। *असुर* के तीन पुरों का नाश भी तभी संभव हो पाया था। ब्रह्म और अन्य देवताओं की सृष्टि आपने ही की है। उनके सृजन से ही विश्व सृजन हो पाया है। उनको इस कार्य में आपने ही नियोजित किया है, प्रभू! वे सब आपके आदेशानुसार ही विश्व की गति को नियंत्रित करते हैं। आपका वास स्थल वैकुण्ठ मात्र उनकी परिसीमा में नहीं रहता है। यह विश्व में घटित परिणामों से हमेशा मुक्त रहता है। मैं, अकिंचन, आपके सत्य स्वरूप को कैसे समझ पाऊँगा?''

अंततः चतुर्मुख ब्रह्म, जिनके चारों मुँह *वेदोच्चारण* से स्वयं सुगंधित हैं, विष्णु भगवान से कहने लगे - ''हे भगवान! *वेद* घोषित करते हैं कि इस जगत की सृष्टि से पहले केवल *'सत्'* था। पदार्थ उसी रूप

में समा था। आप *सत्* स्वरूप हैं, हे *नारायण!* उस *'सत्'* से ही जल का उद्भव हुआ। जल में जीवन शक्ति भरी गयी। उससे द्रव बना। द्रव से अंड और अंड से मेरा जन्म हुआ है। तत्पश्चात आपके दिव्य आदेश तथा समुचित परामर्श पाकर ही मैं ने सृष्टि कार्य संपन्न किया है। आप की प्रेरणा के बिना सृष्टि संभव नहीं हुई होती। अतः आप ही एक मात्र सृष्टिकर्ता हैं। मुझे मालूम ही नहीं कि आपने मुझ जैसे कितने ब्रह्माओं का सृजन किया यह भी नहीं जानता कि मुझसे पहले आपने कितने ब्रह्माओं का सृजन किया है। आप *चित्* और *अचित्* स्वरूप हैं। जगत् में व्याप्त *चित्* (मानव और मानवेतर जीव) और *अचित्* (पदार्थ समूह) सब आप ही हैं। इस प्रकार आप विश्वरूपा हैं।''

जिस तरह दो सुंदर और आकर्शक रंगवाले पक्षी एक वृक्ष पर रहते हुए भी एक पक्षी पेड का फल खाता है तो दूसरा पक्षी उसे देखता रहता है, उसी प्रकार *जीवात्मा* (अहंकार) मनुष्य के शरीर में रहता हुआ *पुण्य* (अच्छाई, आनंद) फल से आनंद प्राप्त करता है और *पाप* (बुराई) कर्मों से दुःख। आप तो उसी शरीर में परिव्याप्त रहते हैं। आंतरिक आत्मा केवल देखता हुआ साक्षी के रूप में रहती है। शरीर परिणामों को भोगता है। इस सबके पीछे आप रहते हैं। आप ही के कारण आत्मा को अनुभूति प्राप्त होती है। आपकी कृपा से ही मानव मुक्त होता है। हे लक्ष्मीपति! आप का रूप, आपका सत् और विश्वव्याप्त शक्ति सब असीम हैं।''

[दो पक्षी - *जीवात्मा* और *परमात्मा* का एक ही शरीर में
वास की गाथा 'श्वेताश्वतरोपनिषत्' के अध्याय - 4
श्लोक - 6 तथा 'मुण्डकोपनिषत्' मुंडकम् - 3 के
प्रथम खण्ड के श्लोक - 1 में इस प्रकार
समान रूप से कही गयी है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पाप फलं स्वाद्वत् त्यनश्नन्नन्यो अभ् चाकशीति।।

वराह पुराण में अध्याय - 48 के श्लोकों 38 से 40 में निम्न शब्दों में बात स्पष्ट की गयी है -

एकं वृक्षं समासाते सुपर्णावयुतौ हरेः। (38)

तयोरन्यः कर्मजन्यं फलमश्नाति सर्वदा।
अस्पृष्टगन्धस्तत्रैव दीप्यसे त्वं यथा रविः।। (39)

नियंता सर्वजीवानां प्रेरकश्चानुमोदकः।
सत्यं ज्ञानमनन्तं च त्वद्रूपं वै श्रयः पते।। (40)

(यह श्लोक मांडूक्योपनिषत् में भी है)]

''*वेदों* ने कहा है कि *देवताओं* और *गंधर्वों* का आनंद मानवों के आनंद से सौ गुना अधिक होता है। लेकिन आपकी कृपा के बारे में *वेद* मौन धारण किये हुए हैं। उसका अनुमान वे नहीं लगा पाये हैं। जब वेद ही उसका अनुमान पाने में असमर्थ हैं, तो आपकी नाभि से उत्पन्न कमलज मैं कैसे आप की कृपा की सीमा निर्धारित कर पाऊँगा? आपके गुणों का अंदाजा मैं कैसे लगा पाऊँगा? हे प्रभू! आप गुणों के अपार सागर हैं। हमने अपने अपूर्ण ज्ञान से ही आप के गुणों की प्रशंसा की है। इसमें कुछ दोष हैं तो हमें क्षमा कीजिएगा। आप दयालू हैं। आप सुसंपत्ति और स्वार्गिक परमानंद के मूर्तरूप हैं। आप वर प्रदान करने में उदार हैं। हम आपकी कृपा दृष्टि के प्रार्थी हैं।''

महर्षियों, योगियों, देवताओं तथा *ब्रह्म* की प्रार्थनाओं तथा निवेदनों से श्रीमहाविष्णु अत्यंत प्रसन्न हुए। अपनी कृपा दृष्टियाँ उन पर प्रसरित की। तब विष्णु ने ब्रह्म से कहा - ''हे ब्रह्म! तुम्हारी बातों से मुझे आनंद मिला है। प्रशंसाओं से प्रसन्न हूँ। आप सब लोग यहाँ किस उद्देश्य से एकत्रित होकर आये हैं?''

सबकी ओर से ब्रह्म ने भगवान से कहा - ''हे प्रभु! पहले विश्रवस के पुत्र रावण ने घोर तपस्या की और *देवताओं* तथा *दानवों* से मृत्यु न होने का वर पाया था। उसने समझा कि मानव अकिंचन है। मानवों का नाम लेना छोड दिया। अपने वरदान से मस्त होकर रावण समस्त ऋषियों, योगियों और मानवों को तंग करने में लगा है। उससे प्रोत्साहित *राक्षसों* ने समस्त लोकों में जाकर साधुओं और योगियों को कष्ट पहुँचाने में लगे हैं। उनकी तपस्याएँ भंग करने लगे हैं। आपको ढूँढते हुए हम *वैकुण्ठ* और *क्षीरसागर* गये। वहाँ से यहाँ आये। हे शत्रुनाशक! आप लोक रक्षा का कर्तव्य भूलकर इस वेङ्कटाचल पर रमा के साथ आनंद विहारों में लीन हैं। हमने आपको यहाँ पाया। हम पर करुणा प्रसारित कीजिए! हमारी रक्षा कीजिए। अन्यथा हम किसके पास जायें?''

दुःख पीडित देवता समूह की ओर देखकर भगवान से कहा - ''मैं आपका रक्षक हूँ। रावण को लेकर आपको परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। कुछ ही समय में मैं विश्व को त्रास पहुँचानेवाले रावण और उसके अनुचर राक्षसों का संहार करूँगा।''

अगस्त्य महर्षि की ओर मुडकर भगवान विष्णु ने कहा - ''हे यशस्वी महामुनि अगस्त्य! आपकी कामना क्या है? आप मुझसे क्या चाहते हैं?''

अगस्त्य का जवाब था - ''हे देवाधिदेव! आपके कमल - सम सुंदर वदन को मैं एक निमेष मात्र के लिए भी अपनी दृष्टियों से ओझल होने देना नहीं चाहता हूँ। आपकी सेवा से एक क्षण मात्र के लिए भी मुक्त होना नहीं चाहता हूँ। मैं आपके दर्शन मात्र के लिए यहाँ आया हूँ। आपने पूछा है, इसलिए मेरा आप से एक निवेदन है। आपके लिए प्रिय यह वेङ्कटाचल सबके लिए पवित्र है। लेकिन कुछ राक्षस

इस प्रांत को अपने दुष्कृत्यों और व्यवहारों से अपवित्र कर रहे हैं। उन्हें कुछ वरदान भी मिले हैं। इसी कारण वे दूसरों को असहनीय व्यथाएँ पहुँचा रहे हैं। आपके पवित्र निवास के परिसर में और अन्यत्र भी ऐसे कर्म निंदनीय हैं। इस प्रान्त में वास करनेवाले सब आपके ही भक्त हैं। आपको उनका कल्याण अपनी दृष्टि हमें रखना है। उनको आधियों और व्याधियों से रक्षा प्रदान करना आपका कर्तव्य ही है न! उनको सुख - संपत्तियाँ प्रदान कर सुखी जीवन की व्यवस्था करना आपका ही काम है न! उनकी संतान की सुरक्षा, उनमें व्याप्त ईर्ष्या का निवारण, संतानहीन को संतान का वरदान आप दीजिए। उसी प्रकार के समभाव से मुझपर भी कृपा दृष्टि रखिए, प्रभू!'' विष्णु ने अगस्त्य महर्षि को वांछित फल सिद्धि का वर दे दिया और साथ-साथ आश्वस्त किया कि भगवान स्वयं अपने कर्तव्य निर्वहण पर दृष्टि देंगे।

सनकादि मुनियों और *योगियों* की ओर मुडकर प्रभु ने उनका कुशल मंगल पूछा। उन्होंने तब भगवान से प्रार्थना की - ''हे भगवान! यह प्रांत बहुत ही शांत प्रांत है। *तपःसिद्धि* के लिए उपयुक्त स्थल है यह! लेकिन आजकल अत्याचारियों के दुर्व्यवहारों से त्रस्त है। उनके दुष्कृत्यों से इस प्रांत को बचाना है। यह आप से ही संभव है। वैकुण्ठ से आपके यहाँ आने का एक मात्र लक्ष्य यही था न, प्रभु! वैकुण्ठ से आप इसी उद्देश्य से यहाँ आये हैं न! आपने यहाँ आकर अपने आपको छुपाया है। भक्तों को अपने *दर्शन* से दूर रखा है। हम सब मिलकर आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप भक्त सुलभ बनें आपका दर्शन सुलभ प्राप्य हों। आप यहीं रहिए। आप उदार बनिए। हम इसी प्रकार का वरदान आपसे माँगकर प्राप्त करने यहाँ आपको ढूँढते आये हैं।'' विष्णु ने सभी की बातें मानने और व्यवहार रत होने का आश्वासन दिया।

इन्द्र की ओर अपनी दृष्टि प्रसारित कर उनसे अपनी इच्छा प्रकट करने के लिए प्रभु ने कहा। तब इन्द्र ने सविनय निवेदित किया - ''हे अच्युत! रावण से त्रस्त होकर हम जगह जगह भागते भागते फिर रहे हैं। रावण हमें असहनीय रूप से तंग कर रहा है। अब आप ही हमारे रक्षक हैं।'' उत्तर में *कमलापति* (लक्ष्मी के स्वामी) ने घोषणा की - ''हे इन्द्र! अब अपने भय को छोड दो। आनंद से रहो। समझो कि रावण की मृत्यु हो ही गयी है। मुझ पर विश्वास करो! मैं कुछ ही समय में यह कार्य संपन्न करूँगा।''

अब शंकर की बारी थी। शिव की ओर मुड़कर उनसे बात सुननी चाही। शिव जी ने तब विष्णु से कहा - ''हे वेङ्कटेश्वर! आप जहाँ रहते हैं वहीं मैं भी रहना चाहता हूँ।'' शिव की इच्छा सुनकर *वृषगिरीश्वर* (पहाड़ के स्वामी) वेङ्कटेश्वर को अत्यंत संतोष हुआ। हर्षातिरेक में प्रभु ने ईश्वर से कहा- ''कलियुगान्त तक मैं वेङ्कटाचल पर ही रहूँगा। अब आप वेङ्कटाद्रि के पास जहाँ कहीं भी रहना चाहते हैं रह सकते हैं। मेरी इच्छा है कि पर्वत पद - तल में *कपिल - तीर्थ* पर आप रहे तो लोक का कल्याण सुगम होगा।'' शंकर ने अपनी स्वीकृति दी।

अब राजा दशरथ ने प्रभु की ओर देखा। उनकी ओर मुडकर मंदहास किया प्रभु ने। दशरथ ने विनम्र होकर कहा - ''प्रभु! आपकी कृपा से मैं स्वतंत्र होकर बहुकाल से शासन कर रहा हूँ। मैं ने धन संपत्ति भी पायी है। प्राप्त धन को उचित मात्रा में मैं ने *ब्राह्मणों* में वितरित भी किया है। दान कर्म किया है। सभी शत्रुओं पर विजय पायी है। मेरी एक मात्र इच्छा असंपूर्ण रह गयी है। मैं एक पुत्र चाहता हूँ। लोक विश्वास है - ''अपुत्रस्य गतिर्नास्ति''। पुत्रहीन व्यक्ति *स्वर्ग* प्राप्त नहीं कर सकता। मुझे एक सद्गुण संपन्न पुत्र प्राप्ति का वरदान दीजिए। शक्तिशाली, धैर्यशाली और विनय संपन्न पुत्र प्राप्ति का वर दीजिए। वह ऐसा पुत्र हो जो सबका मार्गदर्शक बने।'' राजा दशरथ की इच्छा सुनकर विष्णु ने कहा - ''हे राजन्! आपने पूर्व जन्म में कुछ पाप किये हैं। उन्हीं के कारण आप अब तक निस्संतान हैं। अब क्या किया जा सकता है?'' भगवान के मुँह से ऐसी बात सुनकर दशरथ ने विनम्र होकर कहा - ''हे गोविन्द! सूर्योदय से जैसे अंधकार भाग जाता है वैसे ही आप के दर्शन भाग्य से सब के सब पाप मिट जाते हैं। मेरे साथ भी अब यही होगा, न! यही मेरा विश्वास है। *वेद* उद्घोषित करते हैं कि भगवान विष्णु के *दर्शन* से पूर्व कृत पाप सब समूल कट जाते हैं। मुझे आपके दर्शन का सौभाग्य मिला है। अब से मेरे पापों का प्रभाव कैसे रह सकता है? प्रभु आप ही बताइए।'' दशरथ के वचन सुनकर वेङ्कटेश्वर ने कहा - ''हे राजा दशरथ! आपके शब्दों में निहित प्रशस्ति को मैंने पहचाना है। आप के मन में व्याप्त *भक्ति* भावना स्पष्ट प्रकट हुई है। मुदित होकर मैं आप को चार पुत्र होने का वर प्रदान कर रहा हूँ। आपने चार प्रशंसात्मक छंदों में अपनी बात कही है न! इसीलिए आपको उत्कृष्ट गुण संपन्न पुत्र ही होंगे। आप अयोध्या पहुँचकर *पुत्रकामेष्ठि* (पुत्र प्राप्ति के लिए किए जानेवाला यज्ञ) यज्ञ कीजिएगा।'' यह वरदान श्रीवेङ्कटेश्वर से प्राप्त कर अपने राजगुरु वशिष्ठ के साथ अयोध्या जाने के लिए आज्ञा माँगी। प्रभु ने विनती स्वीकार का संकेत दिया।

सब को साथ लेकर वेङ्कटाद्रि पर आये ब्रह्म की ओर दृष्टि फैलाते हुए भगवान ने उनके मन की बात कहने के लिए कहा। आश्वासन भी दिया कि जो कुछ वे माँगेगे उन्हें अवश्य प्रदान करेंगे। उस समय ब्रह्म ने कहा - ''हे प्रभु! इस सुरम्य और पवित्र क्षेत्र में आपको अकेले होकर हमेशा के लिए वास करना है। आपका दिव्य *दर्शन* सभी मानवों के लिए सुलभ प्राप्य होना है। वह भी सर्वकाल - सर्वावस्थाओं में संभव होना है। सामान्यतः मानव लोभी और विलासी बनकर रहते हैं। वे अपनी पेट भरने को महत्व देकर उसकी ओर ही दृष्टि केंद्रित रखते हैं। उनमें गुण और दोष समझने की शक्ति नहीं रहती। वे साधारणतः दुर्बल, रोगी और कामुक रहते हैं। वे पाशविक प्रवृत्ति से चालित होकर जीवन व्यतीत करते हैं। वे इतना ही जान पाते हैं कि अपने लिए लाभ किससे होता है। *कलियुग* में पापियों की संख्या अधिक होती है। मानव भौतिक दृष्टि को अपनाकर चलता है। परिणामतः वे शारीरिक आवश्यकताओं को संपन्न करने की दिशा में ही उन्मुख रहते हैं। आजीविका की पूर्ति में ही लगे रहते

हैं। अपनेपन के अलावा उन्हें कुछ भी सूझता नहीं है। उन्हें इह लोक दृष्टि ही आकर्षक लगती है। परलोक अथवा जीवन के बाद की बात उनके सामने उभरती ही नहीं। परिणामतः वे दुर्भर जीवन जीते हैं। अगर उन पर आप की कृपा नहीं होगी, उनको अपने-अपने भाग्य पर छोड देंगे, उनके प्रति आप निष्क्रिय रहेंगे तो वे अंततोगत्वा पाप कर्मी ही बनेंगे। जैसे जैसे उनकी संख्या बढेगी वैसे वैसे उनकेलिए आपको नये नये नरक लोकों का निर्माण करना पडेगा। नहीं तो वे सब एक नरक में समा नहीं सकेंगे। हे वेङ्कटेश्वर प्रभु! आप कृपालु हैं, दयालू हैं। आप ऐसी विकृत स्थिति को देख नहीं सकते हैं न! सहन भी नहीं कर पायेंगे। अतः आप उनकी ओर करुणा दृष्टि प्रसारित कीजिए, उनको आशीर्वाद दीजिए और उनका उद्धार कीजिए। इस सबकेलिए आपको वेङ्कट नग पर ही रहना होगा। रहिएगा।''

प्रत्युत्तर में विष्णु ने कहा - ''हे पद्मसंभव! तुमने जो माँग रखी है वह अत्यंत प्रशंसनीय और वरणीय है। इस पर मुझे गहराई से सोचना है। तुम्हारे वचनों में गंभीरता है और महानता भी। अपनी सृष्टि के प्रति प्रेम बात बात में झलक रहा है। मन की बात प्रार्थना के रूप में तुम ने रखी है। *कलि युगान्त* तक यहीं रहने का मैं ने निश्चय लिया है। सबको मेरा *दर्शन* अवश्य सुलभ साध्य रहेगा। अनन्त, गरुड, विष्वक्सेन सब यहाँ रहेंगे। साथ साथ श्रीदेवी, भूदेवी और नीलादेवी भी यहाँ आकर मेरे साथ रहेंगी। *तपस्वी* यहाँ *तपस्सिद्धि* पायेंगे तथा *योगी* यहाँ योग सिद्धि। सभी पुष्करिणियों के *स्वामी* (राजा) का स्थान पाकर यहाँ की *पुष्करिणी* 'स्वामी पुष्करिणी' के रूप में प्रभावशाली और पवित्र बनेगी। गंगा और अन्य पवित्र नदियाँ अपना स्रोत यहीं से ग्रहण करेंगी। सब प्रान्तों में स्रवंतियाँ बन कर पापियों को पुण्यवान बनायेंगी। वैकुण्ठ की ऐरम्मद - तटाक (पवित्र जलकुंड) ही यहाँ स्वामी पुष्करिणी के रूप में अवतरित हुई है। इसमें पवित्र स्नान करनेवाले सभी पापों से मुक्ति पायेंगे। इनता ही नहीं उनकी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी। शारीरिक वैकल्य दूर होंगे। सभी रोग नष्ट होंगे। मेरे भक्त इन सबको प्राप्त करेंगे। अंधापन, बहरापन, मूकता और पंगुता सब से मुक्त होंगे मेरे भक्त। दारिद्र्य दुःख उनको छुएगा तक नहीं। आज से ही सब भक्त और सामान्य जन इस क्षेत्र में निर्भय हो विचरण कर पायेंगे।''

ऐसी उद्घोषणा के पश्चात् भगवान श्रीनिवास ने *सुदर्शन* चक्र को आदेश दिया कि कुमुद आदि अनुयायियों के साथ समस्त प्रांत पर दृष्टि रखे। *दैत्यों, यक्षों, राक्षसों,* नागों आदि पर ध्यान रखें। पवित्र जनों और अच्छे लोगों को उनसे कोई कष्ट न पहुँचे, इस पर भी दृष्टि रखें। दूसरों की संपत्ति का हरण न हो। राक्षस आदि का समूल नाश करें। सुदर्शन ने भगवान की आज्ञा का अनुपालन स्वीकार किया और स्थिति की सूचना भी दी।

* * *

अध्याय - 8
ब्रह्मोत्सव का आरंभ

(ब्रह्म द्वारा श्रीविष्णु - वेङ्कटेश्वर के ब्रह्मोत्सवों का आरंभ)

(वाराह पुराण - भाग - 1, अध्याय - 50-53 और अध्याय - 58)

भगवान द्वारा प्रयोग किया गया सुदर्शन दुष्ट शक्तियों और विनाशकारी दानवों का नाशकर विष्णु मूर्ति के पास लौट आया। तब विष्णु ने ब्रह्म से पूछा कि 'बताओ, कुछ और मेरे लिए बचा है क्या? हे पुत्र! निस्संकोच पूछो? तुम कुछ और चाहते हो क्या?' ब्रह्म का उत्तर था- ''प्रभु! आप सहृदयता से स्वीकार करेंगे तो मैं मन की बात आपके सामने रखूँगा।'' विष्णु ने मुस्कुराते हुए मुख - मुद्रा से ही अपनी सहमति जतायी। हरि से सविनय ब्रह्म ने निवेदन किया - ''देवाधिदेव! मैं आप की अनुमति से आपके लिए एक *महोत्सव* (बड़ा पर्व) करना चाहता हूँ। श्रीलक्ष्मी सहित आप उस उत्सव में भाग लेंगे। उत्सव का आरंभ *ध्वजारोहण* (ध्वज को फ़हराना) से किया जायेगा। आपको इसे स्वीकार करना ही होगा।'' जगद्रक्षक ने स्वीकारा। उत्सव को महावैभव के साथ मनाने की योजना बनी। समय का निर्धारण हुआ। सूर्यमान के अनुसार *कन्या मास* (सितम्बर - अक्तूबर) में *श्रवणा नक्षत्र* के दिन अवभृथ में सपन्न होनेवाला उत्सव मनाने का निश्चय हुआ। यह भगवान का अवतरण दिन एवं उनका जन्म दिन था। समस्त देवता समूह, ऋषि - मुनि, साधु - संत दिशादिशांतों से उत्सव में आमंत्रित किये गये। बहुत वैभवपूर्ण ढंग से संपन्न होनेवाला था। सब आये। वेंङ्कटाद्रि पहुँचकर सब ने पाया कि यही दिव्य वैकुण्ठ है। *परात्पर* से विनती की कि वे यहाँ *''श्रीनिवास''* नाम को स्वीकार कर रहें और ब्रह्म द्वारा आयोजित इन उत्सवों के समय सभी को अपना दिव्य *दर्शन* प्रदान करें।

उत्सव के लिए दूर दूर से भक्त आने लगे। वेङ्कटाद्रि के पास के नगर और गाँवों के भक्तों ने आनेवाले भक्तों के लिए मार्ग में नाशता - पानी की व्यवस्था की। समय पर सभी भक्त वेङ्कटाद्रि पहुँच गये। अशेष भक्त वाहिनी को देखकर ब्रह्म ने विश्वकर्मा को विश्राम मंदिर तथा अन्य व्यवस्थाओं के लिए आवश्यक घर आदि के निर्माण का आदेश भी दिया। विश्वकर्मा ने अनेक विश्राम गृह, भोजन - शालाएँ, जल - घर आदि की व्यवस्था की। उन्होंने जल्दी से स्वामी के दिव्य-विमान के चारों ओर चोटी का निर्माण करवाया।

उत्सवों के दिनों में ब्रह्म ने वेङ्कटेश्वर के लिए विविध प्रकार के मिष्टान्न, खीर, पुलिहोरा आदि नैवेद्यों की व्यवस्था की। विविध वाहनों पर उत्सव निर्वाह की योजना बनायी। उत्सव में *हाथी, वृषभ, अश्व,* गरुड़ आदि ने भी भाग लिया। विविध प्रकार के वाद्य, संगीत, नाच - गान, आदि की व्यवस्था उत्सव के संदर्भ में की गयी। *वेद पाठ* भी किया जाता रहा। भगवान ने शेषवाहन, गरुड वाहन, अश्व वाहन आदि पर आरूढ हो भक्तों को *दर्शन* दिया। उत्सव के दिनों में *यागशाला* में यज्ञ यागादि कार्यक्रमों

का निर्वाह भी किया गया। ब्रह्म के द्वारा आयोजित यह उत्सव अत्यंत पवित्रता और निर्मल मन से संपन्न किया गया।

उत्सवों के आठवें दिन पर श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की *रथ - यात्रा* संपन्न की गयी। दिव्य और अमूल्य आभरणों से लसित हो श्रीनिवास ने श्रीदेवी और भूदेवी सहित चारों 'माड़ा वीथियों' (मंदिर की चारों ओर की वीथियों को 'माडा वीथियाँ' कहते हैं) में भ्रमण किया। श्रीदेवी - भूदेवी ने भी सकलाभरणों से विभूषित हो उत्सवों में भाग लिया। हर दिन उत्सवांत में मंदिर के *'आस्थान मंटप'* में विशेष रूप में अर्चित होते रहे हैं भगवान।

ब्रह्म द्वारा भगवान वेङ्कटेश्वर का *महोत्सव* अत्यंत वैभव के साथ चला। इससे भगवान अधिक आनंदित हुए। प्रसन्न होकर श्रीनिवास ने ब्रह्म की प्रशंसा की और घोषणा की कि - ''इस प्रकार उत्सवों का निर्वाह आगे चलकर हर वर्ष *कन्या मास* में तुमने जैसा मनाया वैसे ही मनाया जायेगा। इस प्रकार के उत्सवों को मनानेवाले और उनमें भाग लेनेवाले सब लौकिक सुख - भोग तो पायेंगे ही, अन्त में *ब्रह्म लोक* भी प्राप्त करेंगे। इन उत्सवों में भाग लेनेवाले भक्त वे जितनी दूरी की यात्रा करेंगे उतनी ही दूरी की कमी मुझे प्राप्त करने में पायेंगे। इतना ही नहीं, वे इह - लोक में जीवन का सुख भी पायेंगे। मेरे उत्सवों में भाग लेने के लिए आनेवाले भक्तों के लिए आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था यहाँ के शासक करेंगे। जो मेरे उत्सवों में आनेवाले भक्तों के लिए भोजन की व्यवस्था करेगा उसे सत्संतान की प्राप्ति होगी। उसकी वंश परंपरा भी समृद्धि पायेगी। अन्नदान करनेवाले भक्त अंततोगत्वा मुझे प्राप्त करेंगे । उन्हें *स्वर्गलोक* वास मिलेगा। अंधे, बहरे, पंगु, मूक आदि को जो अन्न - वस्त्रदान करेंगे, उनको भी मेरा अनुग्रह प्राप्त होगा, सुख - संपदाएँ भी मिलेंगी। मेरे उत्सवों में भाग लेने के लिए आनेवाले भक्त मन में जो इच्छा लेकर आयेंगे वह अवश्य पूरी होगी। वेङ्कटाद्रि पर जो भी जन्म लेगा उसका मरण भी यहीं होगा। उसे अंततोगत्वा मैं मुक्ति प्रदान करूँगा। वेदों में जो भी संप्राप्तियाँ घोषित की गयी हैं उन सबको मैं भक्तों तक पहुँचाऊँगा। इस पवित्र धाम पर पहुँचकर भक्त मुझसे सब प्रकार के फल प्राप्त करेंगे। पृथ्वी पर आनंद से रहकर मेरे पद वास प्राप्त करेंगे। इस पवित्र वेङ्कटाचल पर जो भी वास करेगा उसे मैं राज वैभव और आनंद संप्राप्त कराऊँगा। जो इस पर्वत पर निवास करनेवाले भक्तों को शिक्षा दिलाने की व्यवस्था करेगा वह मेरी प्रशंसा का पात्र होगा और अंततः मुझे अवश्य प्राप्त करेगा। ऐसे दाता लोग तीनों लोकों में प्रसिद्धि पायेंगे। उनके परिवार के लोग और बन्धु भी उसी प्रकार का जीवन व्यतीत करते हुए मुक्ति पायेंगे।''

इस प्रकार की घोषणा के बाद वेङ्कटेश्वर ने *देवताओं* को संबोधित कर कहा - ''हे देवलोकवासी! मानव जो मुझे फल और फूल की मालाएँ अर्पित करेगा, जो *नैवेद्यम* चावल और तरकारियाँ प्रसाद और अन्नदान के लिए देगा, जो मुझे मणि - माणिक और आभरण भेंट करेगा, वे सब संतान सुख, संपत्ति सुख और आनंद प्राप्त करेंगे। मनुष्य जो मेरी आराधना करेगा उसकी इच्छाएँ और कामनाएँ पूरी होंगी।

जो इस पर्वतवासी मानवों का अहित करेगा उसका नाश होगा। जो मेरे धाम की पैदल यात्रा करेगा उसे उपयुक्त फल मिलेगा। स्वामी पुष्करिणी में पवित्र स्नान कर मेरी सभक्ति पूजा करेगा उसे पूर्ण संतोष और आत्मतृप्ति मिलेगी।''

इस प्रकार की घोषणाएँ करने के पश्चात् श्रीवेङ्कटेश्वर ने विशाल हृदय से ब्रह्म और अन्य देवताओं की कामनाओं की पूर्ति की। *श्रीदेवी* और *भूदेवी* सहित *दिव्य-आनंद-निलय-विमान* में तब जाकर श्रीनिवास ने प्रवेश किया। वहाँ प्रस्तुत *देवता* समूह सभी ने जय - जयकार की। उन पर फूलों की वर्षा की। देव - दुंदुभियाँ बजीं।

उत्सवों के अंतिम दिवस पर *श्रवणा* नक्षत्र आया। वह उत्सवों के अंतिम चरण का समय था। उत्सव एक पवित्र यज्ञ ही थे। श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए *अवभृथ* स्नान की व्यवस्था की गयी। स्वामी पुष्करिणी से पवित्र उपयुक्त स्थल इसके लिए और क्या होगा? स्वामी पुष्करिणी में अवभृथ स्नान का कार्यक्रम सुव्यवस्थित पद्धति में चला। ब्रह्म, *देवता समूह,* ऋषि - *मुनियों, योगियों* तथा अन्य भक्तों ने पवित्र मन से पुष्करिणी में स्नान किया।

अवभृथ स्नान के पश्चात् सनक योगी ने वहाँ उपस्थित सभी को संबोधित करते हुए कहा - ''सभी ध्यान से सुनिए! देवाधिदेव विष्णु भगवान का क्षेत्र है यह। यह पुष्करिणी समस्त *तीर्थों* में अग्रगण्य है। भगवान की ही है। भगवान का *अवभृथ* स्नान भी आज यहाँ संपन्न हुआ है। जिन्होंने इस पुष्करिणी में आज स्नान किया है, उस समय जब स्वयं भगवान इस तीर्थ में डुबकी ले रहे थे, वे सब *पुण्यात्मा* होंगे। उनके पूर्व के पाप पूर्ण रूप से धुल जायेंगे। उसी क्षण पर धुल गये ही होंगे।'' शिवजी ने सनक योगी की बात का समर्थन किया। विष्णु भगवान ने ''तथास्तु'' कहा।

ब्रह्म के द्वारा परिकल्पित, संकल्पित, आयोजित उत्सवों का समापन *अवभृथ* स्नान से संपूर्ण हुआ। तब भगवान के लिए *''पुष्प यागं''* की व्यवस्था हुई। विविध पुष्पों से भगवान की पूजा की गयी। इस विशेष पूजा में भगवान आकंठ फूलों में डूबे। यह पुष्पार्चना *मंत्रोच्चारण* के साथ चली। यह पुष्प पूजा वैभव अत्यंत आकर्षक और प्रभावशाली रहा।

ब्रह्म द्वारा संपन्न किये गये महोत्सव ने भगवान विष्णु को अतुलित आनंद प्रदान किया। उससे संतुष्ट विष्णु ने कमलोद्भव से कहा - ''हे ब्रह्म! तुम्हारे हाथों से मनाये गए यह उत्सव मेरे लिए अत्यंत संतोषदायक रहा है। मैं नहीं जानता कि तुम्हें मैं क्या दे सकता हूँ। सिर्फ इनता ही कह सकता हूँ कि 'तुम ही मैं हूँ और मैं ही तुम हो' - ''त्वमेवाहं अहमत्वं हि। हम दोनों एक ही हैं, अब कहो तुम क्या चाहते हो?''

विष्णु भगवान से ब्रह्म को मिली अत्यंत मूल्यवान प्रशंसा थी यह! ब्रह्म ने प्रभु से कहा कि ''मैं आपसे जो पाना चाहता था वह अब मुझे मिल ही गया है, प्रभू! मैं और क्या चाह सकता हूँ? मेरी एक

ही कामना है कि आप यहीं *(विमान)* रहकर *भक्तों* के भय दूर करें। उनको वरदान देते रहिएगा। यही मेरी एकमात्र कामना है।'' विष्णु ने ब्रह्म की प्रार्थना मानी। तत्पश्चात् अपने सृष्टिकार्य के निर्वहण के लिए ब्रह्म *सत्यलोक* वापस चले गये।

इसी प्रकार इन्द्र अमरावती को और शिव कैलास को चले गये। अगस्त्य महामुनि अपने शिष्यों के साथ आश्रम लौटे। *योगी* अपनी *योग* साधना में रत हुए। विष्णु ने सबसे यही कहा कि वे अपने अपने कार्य समग्रता से कर लोक - कल्याण में अपना अपना योगदान दें।

सनकादि *योगियों* ने *पापनाशनम् तीर्थ* के आसपास अपनी अपनी कुटियाँ बनायीं। *सप्तऋषि* ईशान्य दिशा में *फल्गुनीधारा तीर्थ* (तुंबुरु तीर्थ) के पास के *आश्रमों* में जाकर तपस्या लीन हुए। श्रीमहालक्ष्मी देवी ने वशिष्ठ महर्षि की पत्नी अरुन्धति से प्रार्थना की - ''माता! आप महिलाओं के बीच उज्वल तारा हैं। पवित्र महिलाओं को हर पूर्णिमा के दिन आपके *दर्शन* से फल मिले। प्रधानतः *फाल्गुण* मास का दर्शन अत्यंत फल प्रदायक सिद्ध हो।'' लक्ष्मी देवी ने ही उस *तीर्थ* का नामकरण किया। तब से वह तीर्थ ''फल्गुनी तीर्थ'' नाम से प्रसिद्ध हो गया। श्रीलक्ष्मी ने भी घोषणा की कि वे भी उस तीर्थ में पवित्र स्नान करनेवालों की वांछित कामनाएँ पूरेंगी। इसीलिए मुनियों ने इस प्रांत को तपस्या के लिए चुना।

उत्सवों में भाग लेने के लिए आये कुछ *देवताओं* ने भी स्वामी पुष्करिणी और *देव-नदी* के आसपास वेङ्कटाद्रि पर ही रहकर वेङ्कटेश्वर की सेवा और ध्यान में लीन होकर युगान्त तक रहने का निर्णय लिया।

जाबाली महर्षि ने भी अपने शिष्यों के साथ रहने का निर्णय लिया और मंदिर की उत्तर - पश्चिमी दिशा में अपनी *कुटी* बनायी। वेङ्कटेश्वर भगवान की सेवा में रहने की इच्छा से कुछ अन्य ऋषियों ने भी वेङ्कटाचल पर रहने का निश्चय किया। अगस्त्य महर्षि ने भगवान के लिए एक बगीचे का निर्माण किया सुवर्णमुखी नदी तट पर। श्रीदेवी - भूदेवी सहित श्रीनिवास की पूजा के लिए ही उस बगीचे के फूलों का उपयोग करते रहे।

भगवान श्रीनिवास *कृत, त्रेता* और *द्वापर युगों* में वेङ्कटाद्रि पर रहकर भक्तों की पूजाएँ ग्रहण करते हुए स्थिरवासी बन गये। *कलियुग* के आरंभ होने पर भी स्वामी वेङ्कटाचल नहीं छोडे।

मिथिला के राजा जनक *त्रेता युग* (भविष्योत्तर पुराण, अध्याय I) में मैथिली प्रांत पर शासन करते थे। वे अपनी और अपने भाई कुशद्वज की पुत्रियों के लिए उपयुक्त वर पा नहीं सके। उनकी कुल मिलाकर चार राजकन्याएँ थीं। चार उपयुक्त राजकुमार उन्हें नहीं मिले। राज *पुरोहित शतानन्द* जी ने राजा जनक को सलाह दी कि वे उपयुक्त रीति से वर ढूँढने का प्रयत्न करें। वे चार राजकुमारियाँ थीं - सीता, मांडवी, ऊर्मिला और श्रुतकीर्ति। सीता तो जनक की पोषिता पुत्री थी। जनक को यज्ञभूमि को जोतते समय मिली थी। उनको उसी समय लगा था कि ये साक्षात् श्रीमहालक्ष्मी ही हैं। इसीलिए शतानन्द

ने कहा कि सीता के लिए उपयुक्त वर *दैवांश* संभूत ही होगा। जनक शंकाग्रस्त हुए। क्या कोई राजकुमार विष्णु के अंश से युक्त मिल पायेगा। *ऋषि* ने सांत्वनात्मक स्वर में कहा कि अवश्य कहीं जन्मा ही होगा। होगा, नहीं, जन्मा ही हैं, अपने तीन भाइयों के साथ। इस समाचार के साथ एक और बात भी शतनन्द ने जनक से कही - ''राजन्! दक्षिण में एक पवित्र पर्वत है। नाम उसका वेङ्कटाचल है। उसकी पवित्रता और महानता का वर्णन करना सामान्य के लिए संभव नहीं है। उसकी महानता का श्रवण ही फल प्रदायक है। जो सुनेगा वह अपनी इच्छाएँ पायेगा। परिणामस्वरूप उसके पाप, भय, व्याधियाँ, दुःख और अन्य दुष्प्रभाव दूर हो जायेंगे। पहले इसकी गाथा सुनकर ही अष्टदिक्पालकों ने अपने अपने स्थान प्राप्त किये हैं।

शतानन्द ने जनक को वेङ्कटाद्रि की *चार युगों* में विलसित महत्ताएँ सविवरण बतायीं। श्रीवेङ्कटेश्वर की गाथा के साथ पर्वत पर विलसित सकल *तीर्थों* की विशिष्टताएँ जातायीं। शतानन्द से वेंङ्कटाद्रि का वृत्तांत सुनकर मिथिलापति के मन में उसके दर्शन की अदम्य इच्छा जगी। जनक के साथ शतानन्द वेङ्कटाचल की यात्रा के लिए निकले। स्वामी पुष्करिणी में पुण्य स्नान किया। वेङ्कटेश्वर स्वामी और भूवराह स्वामी की पूजाएँ की। दर्शन का लाभ उनको मिला। श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न दामादों के रूप में जनक को मिल गये। राम ने सीता से, लक्ष्मण ने ऊर्मिला से, भरत ने मांडवी से तथा शत्रुघ्न ने श्रुतकीर्ति से विवाह किया। जनक के आनंद की सीमा नहीं रही।

एक समय शौनकादि *मुनि* समूह *नैमिशारण्य* में सूत महर्षि से पौराणिक कथाएँ श्रद्धापूर्वक सुन रहे थे। उसी क्रम में श्रीवेङ्कटेश्वर और वेङ्कटाचल के बारे में भी कुछ गाथाएँ सूतजी ने सुनायीं। इस पर वे संतुष्ट नहीं हुए। महर्षियों ने सूत जी से प्रार्थना की कि वे वेङ्कटनग और वेङ्कटनगाधिपति के संबन्ध में सविस्तार बतायें। कृत, त्रेता और द्वापर युगों से अधिक *कलियुग* की गाथा बतायें। *कलियुग* में कौन - कौन उनकी सेवा करेंगे तथा भक्तों को किस प्रकार के वरदान मिलेंगे - यह भी बतायें। तब सूत जी ने पहले कलियुग के लक्षण बताये। तत्पश्चात् श्रीवेङ्कटेश्वर कलियुग में युगदेव बनेंगे यह भी स्पष्ट किया।

पिबतां वेङ्कटेशस्य कथां दिव्यरसायनम्।
अस्यत्र तृप्तिर्नास्माकं भूयस्तृष्णा च भूयसी।। (वाराह पु. अध्याय 58, श्लो. 2)

पहले भी *ऋषियों* ने इसी प्रकार की तृष्णा दिखायी थी, श्रीवेङ्कटेश्वर की गाथा के श्रवण के लिए। हर कोई इसी प्रकार लालाइत होता है भगवान की दिव्य गाथा श्रवण के लिए -

वराहाद्रिकथा नृणां श्रोतृणाममृतोपमा।
वैकुण्ठाद्रेः कथां श्रोतुं भूयस्तृष्णा विवर्द्धते।। (वाराह पु. श्लो. 1)

भ्रूहि तेषां तु तीर्थानां माहात्म्यं पुण्यवर्द्धनम्। (वाराह पु. अध्य. 40, श्लोक 1 और 3)

वेङ्कटाद्रेस्तु माहात्म्यं जन - कर्ण - रसायनम्।
श्रुण्वतां नास्ति तृप्तिस्तु मुनीनां नो बुधोत्तम।। (श्लोक 1)

भूयः कथय वृत्तांतं श्रुतं किञ्चित - त्वया पुरा। (वही, अ. 41, श्लो. 1-2)

अहो, गिरिप्रभावोऽयं वर्णनीयः कथं बुधैः। (वही, अ. 41, श्लो. 47)

(गिरिप्रभाव का वर्णन बुधजन भी कर नहीं सकेंगे।)

भगवान वेद - शास्त्रार्थ - तत्त्व - ज्ञान सुनिष्ठित
श्रुतं सूत महाश्चर्यं - इहाख्यानमनुत्तमम्।। (श्लोक 1)

वेङ्कटाद्रि - प्रभावोयमीदृशः पापनाशनः।
तत्रैव भगवत्प्रीत्रीदृशी निस्तुला खलु।। (श्लोक 2)

वेङ्कटेशो महाश्चर्य दिव्य चारित्र भूषणः।
आश्चर्यं तस्य चारित्रमद्भुतं परमाद्भुतम्।। (श्लोक 3)

अदृष्टाश्रुत पूर्वं तत्कुत्रापि जगतीतले
श्रृण्वतामिदं आख्यानं नास्ति तृप्तिस्तपोधन।। (वाराह पु. अ. 53, श्लो. 1-4)

प्रकृतितः वैभवशाली श्रीवेङ्कटेश्वर की महत्ता उज्वल है। वेङ्कटाद्रि की महिमा अनन्यतम है। इसीलिए नैमिशारण्य में *महर्षियों* ने सूत जी से बार - बार और - और कहने की प्रार्थना की थी। अधिकाधिक कथाएँ सुनने के बाद भी ऋषि - मुनि समूह तृप्त नहीं हुआ। उनके लिए गाथाएँ कर्णामृत ही थीं। आज भी श्रीवेङ्कटेश्वर का *दर्शन* भक्तों के लिए अनुपम है। उनकी अनुभूतियाँ अवर्णनीय हैं। भगवान की मूर्ति ही उतनी आकर्षक हैं। भक्त बार - बार उस मूर्ति का दर्शन लाभ पाकर अपने को धन्य मानते हैं। भक्त उस मूर्ति को ज्यादा से ज्यादा समय तक देखना चाहते हैं। उस दर्शन का सुख ही अलग होता है।

कलियुग में कलि प्रभाव में कुछ तो अपने चर्म चक्षुओं से देखकर मात्र शिला विग्रह मानते हैं। उनका दिव्य दर्शन भक्तों के लिए तो अत्यंत आनंद प्रदायक होता है। अनेक युगों पहले पृथ्वी पर लाया गया *दिव्य विमान* तो अब अदृश्य है। लेकिन *भक्तों* ने नये सिरे से भगवान के लिए विमान का निर्माण किया है। *कलियुग* में वहीं से भक्त भगवान का वैभव - दर्शन पाते हैं। चाहे जो भी हो भगवान इस कलियुग में बीतनेवाली स्थितियों का निरीक्षण करते ही रहते हैं। लेकिन *कलियुग* के व्यवहारों में भाग लेते नहीं हैं। पूर्व युगों में भगवान की सक्रियता देखी समझी जा सकती है। *कलियुग* के संदर्भ में भगवान का निर्णय है अप्रत्यक्ष रहकर ही भक्तों का उद्धार करना। उदारता से भक्तों की रक्षा और कठिनता से दुष्टों का दमन - यह चलता ही रहता है। भगवान हमेशा वेङ्कटाद्रि पर रमा समेत ही रहते हैं। माँ के बिना भक्तों की रक्षा कैसे?

भगवान अच्छी तरह जानते हैं कि *कलियुग* का मानव दुर्बल - मस्तिष्कवाला होता है। मात्र भगवान के स्मरण से ही कलियुग में मानव भगवान की कृपा का पात्र होता है। भगवान के उत्सवों में भाग लेने और अन्य सेवाएँ कराने मात्र से भगवान अपने *भक्तों* से संतुष्ट होते हैं और उनकी कामनाएँ पूरी करते हैं। इसके लिए देवताओं को स्वर्ग से उतरकर आना होता है। पुष्करिणी में पवित्र स्नान करना होता है। उनकी पूजाएँ करनी होती हैं। तब जाकर श्रीनिवास देवताओं की कामनाएँ संपन्न करते हैं। कुछ देवता आकर वेङ्कटशैल पर रहना चाहते थे। उन्होंने भगवान की तपस्या की और ऐसा वरदान भी पाया।

भगवान वेङ्कटाचल पर रहकर भक्तों के लिए सुलभ हुए हैं। भक्त सुलभ श्रीवेङ्कटाचलपति इसीलिए विश्व विख्यात हैं। *भक्त* जन अपनी *श्रद्धाभक्ति* मात्र से उनको अपनी ओर खींच सकते हैं। उसी से संतुष्ट हो वे भक्तों पर अपनी कृपा बरसाते हैं। सफल *भक्तों* को देखकर अन्य लोग भगवान की ओर उन्मुख होते हैं। उन पर *भक्ति* में विकास पाते हैं। इस मार्ग पर *भक्त* होकर भगवान की ओर आकृष्ट होनेवाले भक्तों की संख्या अधिक ही है। हिन्दू भक्त ही नहीं अन्य धर्मावलंबी भी भगवान की ओर इसी मार्ग से आकृष्ट होते हैं। *वेदों* की बात को न माननेवाले बौद्ध और जैन भी वेङ्कटेश्वर की ओर आकृष्ट हुए हैं और होते रहेंगे। भगवान की आराधना विश्वजनीन है।

आश्चर्य का विषय है कि इस युग में (कलियुग में) श्रीवेङ्कटेश्वर अच्छे सौदागर भी हैं। भक्तों की मनौतियों के रूप में धन पाकर उसी मात्रा में उनकी इच्छाएँ पूरा करते हैं। धनियों को अधिक धन देना है, तभी उनकी कामनाएँ पूरती हैं। वैसे स्वयं भगवान को धन की आवश्यकता नहीं है। वे भौतिक और लौकिक कामनाओं से परे हैं। वे अपनी ओर से सकल जनों का कुशल - मंगल ही चाहते हैं। उसी दिशा में धन की उपयोगिता भी होती है।

कलियुग के लोग अधिकतर पापात्मा बनते हैं। पापियों के लिए इस युग में भगवान वेङ्कटेश्वर के अलावा शरणागत रक्षक अन्य कोई भगवान या शक्ति नहीं है। स्वामी पुष्करिणी के समान कोई अन्य पुष्करिणी इस पृथ्वी पर नहीं है जो पापियों के समस्त पापों का हरण करने में उतना समर्थ हो।

कलिदोषपरीतानां नराणां पापकर्मणाम्। (श्लोक 39)
वेङ्कटेशत्परो देवो नास्तन्यः शरणं भुवि।
वेङ्कटेश समो देवो नास्ति नास्ति महीतले।। (श्लोक 40)
स्वामि-पुष्करिणी-तीर्थ-समं नास्ति न चस्ति हि। (श्लोक 41)

(वाराह पु. अ. 58, श्लो. 39 और 41)

* * *

अध्याय - 9

श्रीमहाविष्णु का श्रीवेङ्कटेश्वर के रूप में वेङ्कटाचलवास तथा अवसरिक दर्शन

वेङ्कटाचल प्राकृतिक होते हुए भी असामान्य, पवित्र एवं महत्वपूर्ण है। यह वैकुण्ठ से पृथ्वी पर लायी गयी विष्णु की क्रीडाद्रि है। इसीलिए भगवान पृथ्वी पर यहीं रह रहे हैं। यह उनका अत्यंत प्रिय प्रान्त है। श्वेत वराह ने पहले उत्कृष्ट तथा उज्वल अपने *विमान* में श्री स्वामी पुष्करिणी तट पर वास बनाया। तत्पश्चात् दिव्य और सुंदर मूर्ति महाविष्णु ने श्रीदेवी और भूदेवी समेत हो शंख - *चक्र* धारी के रूप में श्रीनिवास नाम से यहाँ, स्वामी पुष्करिणी के दक्षिण प्रान्त में *दिव्य-विमान* को अपना वास ग्रहण किया। (वराह पु. - भाग-1, अध्याय - 34, श्लो. 23-27)

भगवान के अन्य नामों में वेङ्कटेश्वर और वेङ्कटेश प्रसिद्ध हैं। वेङ्कटेश्वर *मायावी* और सर्वशक्तिवान हैं। वे विश्वजनीन शक्ति संपन्न और *लीला - परवशः (लीला पुरुषोत्तम)* हैं। एक समय पर वे अपनी देवी श्रीमहालक्ष्मी जी के साथ वेङ्कटाद्रि पर विहरण कर रहे थे। उस समय कुछ मुनि यहाँ यज्ञ - यागादि कार्यों में अपने को अर्पित कर उत्कृष्ट रूप से चला रहे थे। क्योंकि यह स्थल अत्यंत पवित्र और दिव्य था। यज्ञ आदि के लिए उपयुक्त प्रान्त था। विष्णु भगवान की साधना में वे लगे थे। श्रीदेवी समेत होकर श्रीनिवास उस प्रान्त में विहार करते पहुँचे। मुनियों ने उन्हें एक राजा समझा। परन्तु दिव्य प्रकाश को बिखेरती उनकी उज्वल कान्ति से वे हतप्रभ भी हुए। उनके पास पहुँचनेवाले श्रीनिवास से मुनियों ने पूछा - ''हे राजन्! आप कौन हैं? अपके माता - पिता कौन हैं? आपका नाम क्या है?''

उक्त प्रश्नों के उत्तर में भगवान ने कहा - ''असल में मैं राजा नहीं हूँ। मेरा कोई वर्ण नहीं है। मैं न ब्राह्मण हूँ, और न क्षत्रिय, न वैश्य हूँ और न ही शूद्र। मेरे माता - पिता भी नहीं हैं। मेरा कोई निश्चित वास भी नहीं है। मैं सर्वत्र रहता हूँ। मैं सब कुछ खाता हूँ। मैं सर्वत्र घूमता हूँ। मैं अनेक रूप धारण करता हूँ। मेरा अपना कोई नाम नहीं है। मैं गुणों से मुक्त हूँ। मैं आप से एक ही बात कहना चाहता हूँ। केवल आप लोगों से मिलने आया हूँ।'' (वराह पु. - भाग-1, अ. - 37, श्लो. 20-21)

नाहं राजा न वा विप्राः कचिज्ञातिश्च नैव मे।
न च माता न च पिता नैवा आवासश्च कुत्रचित।। (श्लोक 20)

सर्वावासः सर्व भक्षस्सर्वग स्सर्वरूपाधृत।
निर्नामा निर्गुणश्च अहं युष्मान द्रष्टुमिह आगतः।। (श्लोक 21)

इसके बाद उन्होंने यज्ञ विधान में कुछ कमियों को दिखाकर उनके औचित्य पर प्रश्न किया। लेकिन *मुनियों* ने कोई जवाब दिया। इतना ही नहीं यज्ञाग्नि में *'वपा'* (मज्जा) को निर्धारित समय पर डालने के

लिए उद्यत हुए। उसी समय पर यज्ञ कुण्ड से *शंख - चक्र* धारी, उज्वल आभरणों से विभूषित, *श्रीवत्सांकित* वक्षःस्थल वाले स्वामी उभरे। अपने हाथ फैलाकर *'वपा'* को अपने हाथों में ले लिया। *मुनि* आश्चर्यचकित हो गये। भगवान ने जोर से कहा - ''मुझे संतोष है।'' बस वे अन्तर्धान हो गये। भगवान विष्णु के दर्शन से *मुनियों* को संतोष हुआ। क्योंकि भगवान विष्णु ही यज्ञेश्वर हैं। उन्होंने स्वयं ''वपा'' को स्वीकार किया। मुनियों ने *यज्ञ* को पूरा किया।

एक बार लडका बनकर वेङ्कटाद्रि पर विहरण कर रहे थे, प्रभु। एक बूढ़ा जो अंगों से शिथिल और दुर्बल, अन्धा और कुछ बहरा *ब्राह्मण* था, अपने *आश्रम* तक ले जाने के लिए अपने पुत्र को ''कुमार, कुमार'' चिल्ला चिल्लाकर पुकार रहा था। भगवान वेङ्कटेश ने जो बच्चे के रूप में वहाँ थे, अपने हाथ का सहारा दिया। एक जलधारा के पास ले गये। उस *ब्राह्मण* से कहा कि वह इस धारा में स्नान करें। स्नान के बाद वह वृद्ध *ब्राह्मण* एक युवक बन गया। वह अब सोलह वर्ष का युवक था। वेङ्कटेश ने उसे यौवन *विश्वात्मा* के साथ साथ धन भी दिया। वह अपने आश्रम में लौटा। नित्य यज्ञ करने में लीन हो गया। भगवान ने उस ब्राह्मण को दिव्य दर्शन (एक सहस्र नयन, एक सहस्र वदन, सहस्र शिर, एक सहस्र हाथों) भी दिया और अन्त में अपने में मिलने का वर भी दिया। वह तीर्थ जिसमें स्नान से *ब्राह्मण युवक बना* था *''कुमार धारा तीर्थ''* नाम से प्रसिद्ध हो गया। (पृ. 33-34)

प्राचीन काल में चन्द्रवंश के *शंखन* नाम के राजा थे। संकास्य नामक नगर को राजधानी बनाकर शासन करते थे। सामंत राजाओं द्वारा वे पदच्युत हुए। राज्य खोकर वे तीर्थ यात्रा पर रामेश्वरम गये। राम सेतु के पास पवित्र स्नान किया। वापसी में सुवर्णमुखरी नदी के पास वे आये । उसमें भी पवित्र स्नान किया। फिर *पद्मसरोवर* पहुँचे और पवित्र स्नान किया। उन्होंने वहाँ पद्मावती देवी की पूजा की। वे अपने जीवन के संबन्ध में दुखी हुए। अपनी दीन स्थिति पर विकल हुए। उनको आगे बढने का कोई रास्ता नहीं दिखाई दे रहा था। अपने खाने - पीने के बारे में उनके सामने चिंता थी। व्यथित हो लेटे। नींद लग गई।

नींद में ही उन्होंने एक दिव्य वाणी सुनी - ''हे राजन्! आप ज्ञानी हैं। आपको दुःखी होकर रहना नहीं चाहिए। यहाँ से केवल दो मील की दूरी पर विश्व विख्यात पवित्र वेङ्कटाचल है। उस पर्वत पर *कमलापति* (विष्णु) वास कर रहे हैं। वे *कामधेनु* (पवित्र वरप्रदाता गाय) वे *कल्पतरु* (वरप्रदाता वृक्ष) हैं। भक्तों के लिए *चिंतामणि* (वरप्रदाता अमूल्य रत्न) हैं। भक्तों के कष्टों को दूर करनेवाले कलियुगनाथ हैं। उनके मंदिर के पास ही स्वामी पुष्करिणी है। उसके उत्तरी भाग में एक वल्मीक भी है। उसके पास आप एक कुटी बनाइए। उसमें रहते हुए श्रीवेङ्कटेश भगवान की आराधना कीजिए। आपको पूजा कार्यक्रम छः महीने तक चलाना होगा। प्रतिदिन तीन बार उस पुष्करिणी में नहाकर आराधना करें। नित्य उपासना क्रम से आप को अपना राज्याधिकार अवश्य मिलेगा।''

ढाढ़स देनेवाली वाणी को सुनकर शंखन जाग गये। उसके मन को शांति मिली। वे वेङ्कटाद्रि पहुँचे। स्वामी पुष्करिणी तट पर वल्मीक पाया। पास ही भक्तपूर्ण हृदय से कुटी बनायी। पवित्र स्वामी पुष्करिणी में स्नान किया। अपना पूजा क्रम आरंभ किया। छः मास पर्यन्त अकुण्ठित दीक्षा से भगवान की आराधना और सेवा संपन्न की।

एक दिन भगवान अकस्मात स्वामी पुष्करिणी में प्रत्यक्ष हुए। उनका *विमान* देदीप्यमान था। *श्रियःपति* (विष्णु) *शंख, चक्र, गदा* आदि से युक्त थे। वे दिव्याभरणों से लसित थे। श्रीदेवी - भूदेवी समेत थे। उनके साक्षात्कार के कुछ ही क्षणों बाद ब्रह्म, *मुनिगण, सिद्ध* समूह, देवता लोग सब वहाँ उपस्थित हुए। *देव* दुंदुभियाँ बजने लगीं। अप्सरायें नृत्य करने लगीं। *वेद पठन* होने लगे।

शंखन आश्चर्यचकित हो गये। अपने ध्यान से बाहर आये। स्वामी के सामने प्रणमित हुए। भगवान से प्रार्थना भरे शब्दों से निवेदन किया- ''हे देवाधिदेव! आपकी कृपा से मुझे जो राज्य मिला था उसे शत्रु सामंत राजाओं ने छीन लिया है। मुझे पदच्युत किया। हे जगन्नायक! मुझ पर दया दिखाइए। मेरी रक्षा कीजिए। आपके *दर्शन* से मैं संतुष्ट हूँ। शरणागत हूँ।''

भगवान ने राजा से कहा - ''जिस दिन आपने स्वामी पुष्करिणी में पवित्र स्नान किया है उसी दिन आपको अपना राज्य प्राप्त हो गया है। जो इस स्वामी पुष्करिणी में संपूर्ण विश्वास और पवित्र हृदय से स्नान करेगा उसे *स्वामित्व* प्राप्त हो ही जाता है। वह भी उनके विश्वास और भक्ति की मात्रा के अनुरूप ही मिलेगा। आपने विशुद्ध मन से मेरी उपासना की है। आपको फल मिल गया है। अब आप अपने राज्य की ओर जाइए। राज्य प्राप्त कीजिए और धर्मानुसार शासन कीजिए।'' शंखन से इतना कहकर स्वामी अदृश्य हो गये।

शंखन के राज्य में सामंत राजाओं के बीच मन - मुटाव बढे थे। आपसी कलह हुए। हर एक ने चाहा कि संपूर्ण राज्य उसी के अधीन हो। इसके कारण सबका विनाश हुआ। राज्य की स्थिति से प्रजा व्यथित थी। किसी कमजोर राजकुमार को अधिकार देना नहीं चाहती थी। ऐसे ही समय पर शंखन ने राज्य में प्रवेश किया। अपना सिंहासन पाया। प्रजा का आदर्श पालन किया।

(वराह पु. - भाग-1, अ. 38)

(इस कथा का संक्षिप्त संकेत पहले ही किया गया है)

एक समय में, *मध्यदेश* में, आत्माराम नामक एक पंडित ब्राह्मण (वाराह पुराण भाग-1, अध्या. 39) रहते थे। वे भगवान के प्रति भक्ति और ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा भाव रखनेवाले थे। अपने पिता के देहान्त के बाद उस ब्राह्मण की संपत्ति क्षीण हो गयी। वे अपने परिवार का पालन - पोषण भी नहीं कर

पा रहे थे। उनके पास दूसरों को देने के लिए कुछ भी नहीं रह गया। दीन स्थिति से दुःखित होकर वेङ्कटाद्रि की यात्रा पर निलक पडे। पहले कपिलतीर्थम् पहुँचे। वहाँ के तीर्थ में पवित्र स्नान किया तथा कपिलेश्वर की पूजा की। तदनंतर पर्वत पर चढते हुए सत्रह *तीर्थों* में नहाया। एक स्थान पर बैठकर अपनी स्थिति पर विचार मग्न हुए। अकस्मात् उनके सामने सनत्कुमार आये। पास ही एक गुफा में वे तपस्यारत थे। ब्राह्मण ने उनके पैरों पर गिरकर अपने लिए रास्ता बताने की प्रार्थना की ताकि वे कष्टों से मुक्त हों।

अपनी योग दृष्टि से सनत्कुमार ने आत्माराम से कहा कि उसने अपने पूर्व जन्म में किसी पर दया नहीं दिखायी। इतना ही नहीं, अन्यों को भी दान - धर्म करने से रोका था। शांत जीवन बितानेवाले लोगों के रास्तों में रोडे लगाये। अपने जीवन काल में एक बार भी विष्णु भगवान का नाम स्मरण नहीं किया। उसका कर्म फल अब भोग रहे हैं। उन्होंने ब्राह्मण को सलाह दी कि वे श्रीलक्ष्मी की आराधना करें। श्रीमहाविष्णु की वक्षःस्थलवासिनी लक्ष्मीदेवी अवश्य उनको कष्टों से उभारेंगी। *महामंत्र* का उपदेश भी सनत्कुमार ने उस ब्राह्मण को दिया। [मंत्र है - ॐ श्रीं, ॐ नमः परमायै लक्ष्मी विष्णु-वक्षःस्थितायै, मायै श्री तरिकायै स्वाहा'']

महामंत्र का जप करते हुए आत्माराम, वेङ्कटाद्रि पहुँचे। *मंदाकिनी* (गंगा) और *विरजा* जल स्रोतों से पूरित स्वामी पुष्करिणी में पवित्र स्नान किया। स्नान करने के तुरंत बाद ही उन्होंने अपने सामने एक सुंदर फूलवन को देखा। उसके बीच विराजमान *मंटपों, गोपुरों* से युक्त एक *विमान* को पाया। उसमें से दिव्य संगीत नाद सुनाई दे रहा था। नृत्यों की रवलियाँ सुनीं। उसके पास पहुँचे। श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी का दिव्य दर्शन पाया। पद्मनयन, *शंख - चक्रधारी* के दर्शन से मुग्ध हुआ। उनके वरद हस्त और कटि हस्त से आश्वस्त हुआ। उनका रूप शत कोटि कामदेव सम कांतियों से युक्त था। श्रीदेवी और भूदेवी दोनों स्वामी के पार्श्वों में विराजित थीं। वह दिव्य रूप दर्शन ही था। आत्माराम को अमित आनंद हुआ। विनय और भक्ति से ओतप्रोत हो आत्माराम ने भगवान से प्रार्थना की - ''हे भगवान! आप भक्तों के आश्रयदाता हैं। उनके अंतिम गम्य हैं। आप सृष्टिकर्ता, रक्षक और विनाशक भी हैं। आप सर्वोत्तम भगवान हैं, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं। मैं आपके सामने प्रणमित होता हूँ।''

त्वमेव परमं धाम त्वमेव परमा गतिः। (श्लोक 42)

त्वमेव जगतां स्रष्टा धाता हर्ता महेश्वरः।
इति स्तुतं शिवेनापि विधिना अपि स्तुतं सदा।। (श्लोक 43)
सर्वं त्वमेव जानासि सर्वात्मं सत्वां नमाम्यहम्।। (श्लोक 44)

(वाराह पु. - अ. 42, श्लो. 42-44)

उस समय दया स्वरूप विश्वेश्वर वेङ्कटेश्वर ने आत्माराम से कहा कि वे उनके *महालक्ष्मी मंत्र* जप से अत्यंत प्रसन्न हैं। उनको क्षमा कर दिया। इतना ही नहीं उन्हें अत्यंत समृद्धि और पूर्ण आयु भी प्रदान किया। भगवान से वरदान पाकर आत्माराम ने पवित्र जीवन बिताया और अंततोगत्वा मुक्ति भी पायी।

प्राचीन समय में वसु नामक एक *निषाद* था। वह वेङ्कटाद्रि पर इमली के पेड के नीचे पत्नी के साथ रहा। उसी वृक्ष के नीचे एक वल्मीक में (बिल में) भगवान विष्णु थे।

(वरा. पु. भाग - 2, अ. 9, श्लो. 1-15)

वह *निषाद श्यामका* बीजों की चावल से खाना बनाकर उसमें शहद मिलाकर रोज भगवान को अर्पित किया करता था। श्रद्धापूर्वक निवेदन के बाद बचे प्रसाद को दंपति खाते थे। इस प्रकार कुछ समय बीता। श्रीनिवास ने दंपति को एक पुत्र दिया। उन लोगों ने उसका नाम 'वीर' रखा। वीर कुछ बडा हुआ। *श्यामकान्न* तैयार करने का आदेश देकर दंपति शहद जुटाने के लिए वन में गये। उन्होंने बच्चे को यह भी बताया कि श्यामकान्न में घर में उपलब्ध शहद को मिलाकर भगवान को अर्पित करें और बाद ही वह खये। उस दिन वीर ने माता - पिता के कहे के अनुसार ही किया। घर लौटने के बाद दंपति ने पाया कि उनके लिए खाना नहीं है। सोचा कि वीर ने भगवान को अर्पित किये बिना पूरा खाना खा लिया हो। *निषाद* कुपित हुआ। तलवार लेकर वीर को मारने पर उतरा। उसके अनुसार वीर ने दो गलत कार्य किये। एक बिना भगवान को निवेदित किये खाना खाया। ऐसा खाना अपवित्र खाना है। उसका दूसरा कार्य अपवित्र खाना खाना है। जब *निषाद* ने तलवार उठायी, तभी विष्णु भगवान ने वल्मीक से बाहर निकल कर हाथ पकडकर उसे रोका। निषाद आश्चर्यचकित हो गया और पीछे मुडकर देखा। विस्मित होकर देखा कि भगवान का आधा शरीर उसके पीछे है। वे *शंख-चक्र* धारी हैं। एक हाथ से उन्होंने उसको ही रोका। तलवार को नीचे गिरा दिया और भगवान के सामने साष्टांग प्रणाम करते हुए विनम्र होकर निषाद ने कहा - ''हे देव! आज मेरे पुत्र ने महा-अपराध किया है। आपको श्यामकान्न दिये बिना सब उसी ने खाया। मैं इस अपराध के लिए उसे क्षमा नहीं कर पा रहा हूँ। मैं उसे मार देना चाहता हूँ। आप क्यों मुझे रोक रहे हैं?'' इस पर भगवान ने निषाद को बताया- ''हे निषाद! तुम्हारा पुत्र तुमसे ज्यादा मेरा भक्त है। पूर्ण *भक्ति* के साथ उसने *श्यामकान्न* मुझे दिया। इसके बाद ही उसने खाया है। तुम मुझे स्वामी पुष्करिणी तट पर विलसित मूर्ति मात्र समझते हो। उसने मेरा विश्वव्याप्त रूप पहचाना है। मुझे विश्वात्मा समझा है। मेरे दर्शन के फलस्वरूप वह तुझे प्राप्त हुआ है। इसीलिए मैं उसकी रक्षा के लिए दौड पडा हूँ। वह मेरा स्वच्छ और विनम्र *भक्त* है।'' *निषाद* ने विष्णु भगवान के *दर्शन* से अत्यंत सुख प्राप्त किया।

प्राचीन काल में यानी बहुत समय पहले पाण्ड्य देश (वाराह पु.भाग 2, अध्या. 9, पृ. 16-50) में रंगदास नामक एक व्यक्ति था। बचपन से उसमें विष्णु भक्ति के बीज अंकुरित थे। उनकी उम्र बढ़ी।

उसने तीर्थयात्राएँ की। नारायणपुरी पहुँचा। वहाँ के वराह स्वामी की पूजाएँ की। वहाँ उसने वेङ्कटाद्रि पर विलसित श्वेत वराह स्वामी के बारे में सुना। श्रीनिवास भगवान के महत्व को जाना। आगे की यात्रा में वह सुवर्णमुखरी नदी तक पहुँचा। उसमें पवित्र स्नान किया। बाद में *पद्मसरोवर* में नहाया। वहाँ के श्रीकृष्ण की पूजाएँ की। बलराम की भी प्रार्थना की। अपनी यात्रा जारी रखी। वेङ्कटाद्रि की यात्रा में पहले कपिलतीर्थ पर शिव की अर्चना की। कपिला गाय की भी वंदनाएँ की। फिर आगे वेङ्कटाचल की ओर बढता हुआ चक्रतीर्थ में भी पवित्र स्नान किया।

(कपिल तीर्थ के लिए रखा गया नया नाम ही *चक्रतीर्थ* है। विजय नगर सम्राट अच्युतराय ने शक संवत्सर 1453 में (सन् 25 जून, 1531 में) अपने शासनकाल के द्वितीय वर्ष में *चक्रतीर्थ* नाम को दो भाषाओं में शिला फलक पर खुदवाया है। ये भाषाएँ हैं - तेलुगु, कन्नड। तमिल भाषा में इसका नामांकन कराया - *आळ्वार तीर्थ।* इस समय की प्राप्त घाटना विवरण के अनुसार रंगनाथ ने पहले इस *तीर्थ* में पवित्र - स्नान नहीं किया। बाद में *शिव* की *दर्शन* - आराधना में उन्होंने यहाँ आकर पवित्र स्नान किया)

वेङ्कटाचल के रास्ते में रंगदास से वैखानस गोपीनाथ मिला। वह श्री वेङ्कटेश्वर भगवान की अर्चना - *पूजा* के लिए वेङ्कटाद्रि जा रहा था। उसके साथ रंगदास भी वेङ्कटाचल चला। वेङ्कटाचल पहुँचकर स्वामी पुष्करिणी में स्नान किया। तत्पश्चात् जंगल में इमली के पेड की ओर गया। यह पेड स्वामी पुष्करिणी के पास ही था। वहाँ वृक्ष के नीचे रंगदास ने *शंख-चक्र-गदा-खड्गधारी,* शार्ङ्ग, पंचायुध नीलघनश्याम देही तथा कमलाक्ष विष्णु को देखा। विष्णु भगवान वहाँ श्रीदेवी और भूदेवी समेत थे। सूर्य, वायु और वर्षा से वे रक्षित नहीं थे। उनका वाहन *गरुड* अपने पंखों की छाया में भगवान को कुछ रक्षा दे रहे थे। इस रूप में रंगदास ने भगवान का *दर्शन* पाया। उसको आश्चर्य हुआ। वहीं भगवान की पूजा के लिए एक फूलों का बगीचा बनाने का निर्णय रंगदास ने लिया। गोपीनाथ द्वारा भगवान को अर्पित *प्रसाद* का अंश पाकर ही रंगदास वहाँ अपना भगवान का सेवा कार्य चलाता था। रंगदास ने भूमि को साफ़ किया। आस पास के बडे वृक्षों को इमली वृक्ष को छोडकर, सब को काटा। भगवान के लिए अधिक प्रिय *चंपक* वृक्ष को उसने काटे बिना छोड दिया। भगवान के आदेशानुसार खुरदरे पत्थरों से एक छोटी दीवार उनकी चारों ओर बनायी। फूलों के पौधे लगाये। कुछ ही समय बाद वे फूलने लगे। रंगनाथ गोपीनाथ को हर दिन फूलमालाएँ बनाकर देने लगे। भगवान वेङ्कटेश्वर उनसे अलंकृत और पूजित होते थे। पूजा के बाद उनका *दर्शन* बहुत ही नेत्रानंद दायक होता था। इसी क्रम में रंगदास ने अपने जीवन के सत्तर वर्ष बिताये। उसके दिन आनंद और भक्ति के साथ बीते।

ऐसी स्थिति में एक दिन रंगदास बगीचे में फूल चयन कर रहा था तो देखा कि एक *गंधर्व* अपनी रानियों के साथ स्वामी पुष्करिणी में स्नान करने एक सुंदर देदीप्यमान *विमान* में आये। पुष्करिणी में जलक्रीडा रत हुए। उनकी क्रीडा को देखकर रंगदास विस्मित हुआ। अपना काम और कर्तव्य भूल गया।

जैसे ही *गंधर्व* जलक्रीडा के बाद अपने विमान में चढकर उडे वैसे ही रंगदास प्रकृतिस्थ हुआ। होश में आया। अपनी भौतिक प्रक्रिया पर लज्जा का अनुभव किया। उसका स्वामि-कार्य भूलना गलत था। अन्य आकर्षणों की ओर मुडना गलत था। उसके कारण स्वामी को मालाओं और फूलों के अर्पण में देरी हो गयी। रंगदास ने फिर पुष्करिणी में स्नान किया। नये फूलों का चयन किया। वेङ्कटेश नाम जप के साथ फूल लेकर भगवान के पास पहुँचा। अर्चक गोपीनाथ क्रुद्ध हुए। पूछा कि देरी क्यों हुई? उपयुक्त और ठीक समय पर फूल और मालाएँ क्यों नहीं लाया। रंगदास चुपचाप खडा रहा।

उस समय भगवान ने उनके सामने प्रत्यक्ष होकर कहा - ''रंगदास! मैं ने आज तुम्हारे इंद्रिय निग्रह की परीक्षा की है। तुमने अपने को अधीन में नहीं रखा। अपने इंद्रियों के आकर्षण के सामने हार गया। फिर भी तुम्हारे इतने समय तक की सेवा से मैं प्रसन्न हूँ। मैं वर प्रदान कर रहा हूँ कि तुम अगले जन्म में *गंधर्व* राजा सम ऐश्वर्यवान राजा बनकर सुख भोगो। लेकिन तुम्हारा मन विलास की ओर नहीं जायेगा। बुद्धि तुम्हें भक्ति की दिशा में ही रखेगी। मेरी सेवा में ही लीन रहोगे। उस समय तुम मेरे लिए एक भव्य मंदिर का और दिव्य *विमान* का निर्माण कराओगे। चारों ओर ऊँचे शिखर और बडे बडे पत्थरों की दीवारों का भी निर्माण तुम्हारी देख-रेख में होगा। आज तो तुमने खुरदरे पत्थरों की दीवारें ही बनायी हैं। भव्य मंदिर निर्माण से अत्यंत यश तुम्हें प्राप्त होगा। उसके बाद मैं तुम्हें *मुक्ति* प्रदान करूँगा। तभी तुम्हें भौतिक शरीर से भी मुक्ति मिलेगी। तब तक अपने इस जीवन को इसी प्रकार की सेवा में बिताओ। इसी प्रकार मैं अपने भक्तों को सही दिशा बताकर सही मार्ग में प्रवृत्त कराता रहूँगा। अंततोगत्वा वे जीवन मुक्त होंगे। यही मेरी प्रकृति है और प्रवृत्ति भी।'' रंगदास भगवान के वचनों से संतुष्ट हुआ। आगे का जीवन भगवान की सेवा में पवित्र मन से लगाया।

रंगदास ने उस जीवन के अंत में मृत्यु पायी। भगवान के कहे अनुसार उसे पुनर्जन्म भी मिला। उसने चन्द्रवंशी राजा सुवीर और रानी नंदिनी के पुत्र के रूप में जन्म पाया। राज दंपति ने उसका नाम तोंडमान रखा। पांच वर्ष की उम्र से ही तोंडमान राजकुमार भगवान विष्णु के भक्त बन गये।

धीरे धीरे प्रवर्द्धमान हो युवा बने राजकुमार तोंडमान। युक्तवयस्क तोंडमान का विवाह पांड्य राजकुमारी पद्मा के साथ संपन्न हुआ। अपनी पट्टरानी के साथ *स्वयंवर* से चुनी गयी अपनी कई अन्य पत्नियों से उनका जीवन आनंदमय रहा।

तोंडमान राजा बन गये। नारायणपुर को राजधानी बनाकर राज्य करने लगे। एक दिन वे शिकार खेलने के लिए अपने सहायकों के साथ पिताजी से अनुमति लेकर जंगल में गये। चलते - चलते वेङ्कटाद्रि के पास पहुँचे। वेङ्कटाद्रि की सीमा में कदम रखते ही उन्होंने पाया कि हाथियों का एक झुंड उनकी ओर भागता आ रहा है। वे कुछ पीछे हटे। हाथियों का झुंड उनका पीछा किया। वे सुवर्णमुखरी नदी तक पहुँच

गये। वहाँ शुक महर्षि का आश्रम था। आश्रम में गये। महर्षि के सामने प्रणमित हुए। हाथियों के झुंड ने पीछे चला गया। वन में बढते बढते आगे देखा कि वहाँ एक वल्मीक (बिल) है। उसमें रेणुकादेवी रहती थीं। उनसे आशीर्वाद लिया। कुछ कदम आगे बढ़ाये। वहाँ उसने एक पंचरंगी तोता पाया। वह 'श्रीनिवास श्रीनिवास' चिल्ला रहा था। तोंडमान उसको पकडना चाहता था, लेकिन वह उठकर श्रीवेङ्कटाद्रि की ओर गया। राजा ने पीछा किया। पर्वत चढा। *श्यामाक* खेत में पहुँचा। उस खेत का मालिक एक वनचर था। *वनचर* ने तोंडमान को पहचाना। राजा के सामने झुककर वंदना की और खडा रह गया। तोंडमान ने उस तोते के बारे में वनचर से पूछा। उसने राजा तोंडमान को बताया - ''हे राजन्! यह श्रीनिवास का प्रिय तोता है। उन्होंने लाड - प्यार से उसे पाला है। श्रीदेवी और भूदेवी भी उसे उतने ही प्रेम से देखती हैं। वह उनके मंदिर में रहता है। उसको पकडना असंभव है। अब तो मध्याह्न का समय हो ही रहा है। आप मेरी झोंपडी में आराम कर सकते हैं। मैं थोडी ही देर में भगवान की पूजा करके लौटूँगा। आपकी सेवा के लिए मेरा लडका रहेगा।'' तोंडमान ने उस वनचर से पूछा कि क्या वे भगवान की पूजा के लिए उसके साथ चल सकते हैं? क्योंकि राजा के मन में भगवान के दर्शन की इच्छा जगी थी।

[[वराह पु. - भाग - 2, अ. 9, श्लो. 51-108 और अ. 10) यहाँ पर श्लो. 51 में तोंडमान को राजा सुवीर और रानी नंदिनी का पुत्र बताया गया है। भविष्य पुराण में तोंडमान के माता - पिता का उल्लेख नहीं है। आकाश राजा को राजा मित्रवर्मा और पांडुराज कुमारी का पुत्र बताया गया है। आकाश राजा को ही यज्ञ के लिए हल जोतते समय पद्मावती मिली थी। पद्मावती का विवाह श्रीवेङ्कटेश्वर के साथ हुआ है। आकाशराजा के बाद तोंडमान ने राज्याधिकार को अपना हक माना। आकाश राजा के पुत्र वसुदास को भगवान ने राज्य दिलाया। वह भी युद्ध के बाद। तोंडमान को भी राज्य दिलाया। इससे पता चलता है कि तोंडमान मित्रवर्मा के द्वितीय पुत्र हैं (भविष्य पु. अ. 12, श्लो. 45-48) इस प्रकार तोंडमान के माता - पिता के संबन्ध में विषयांतर मिलता है। *वाराह-पुराण* और *भविष्योत्तर पुराण* में देखिए।)]]

वनचर तोंडमान को भगवान के पास साथ ले जाने के लिए सहमत हुआ। श्यामकान्न बनाकर उसमें शहद मिलाया। आम के पत्तों का एक दोना बनाकर उसमें हरि के लिए प्रसाद रखा। तब जाकर तोंडमान और वनचर दोनों मिलकर हरि के पास पहुँचे। वहाँ वनचर ने उनको पुरुषोत्तम विष्णु भगवान को दिखाया। *शंखचक्र* धारी विष्णु को चिद्विलासी रूप में श्रीदेवी और भूदेवी के साथ देखकर प्रसन्न हुए। वे *पीतांबर* तथा शिर पर *किरीट* (मुकुट) पहने हुए थे। यहाँ भगवान प्रतिदिन स्कंद (सुब्रह्मण्य स्वामी) से भी अर्चित होते थे। उनके चरण कमल बिल में थे। शरीर का ऊपरी भाग ही दिखाई दे रहा था। *निषाद* (शिकारी) और राजा दोनों भगवान के सामने प्रणमित हुए। तोंडमान उस मूर्ति के दर्शन से आश्चर्यचकित हो कर रह गये। उनकी आँखों से आनन्द अश्रु बहने लगे। *निषाद* ने श्यामकान्न भगवान को अर्पित

किया। इसके बाद प्रसाद का आधा भाग राजा को दिया और बाकी आधा प्रसाद लेकर अपनी कुटी में पहुँचा। राजा भी साथ थे।

निषाद के यहाँ रात को राजा ने विश्राम किया। दूसरे दिन सुबह ही तोंडमान राजधानी के लिए रवाना हो गये। वे पुनः रास्ते में रेणुकादेवी के मंदिर में गये। देवी की पूजा की। मिष्टान्न और अन्य नैवेद्य अर्पित किये। घी के दीप जलाये। वे देवी की प्रार्थना कर ही रहे थे कि उनका एक सहायक अकस्मात वहाँ दौडता पहुँचा। उस पर देवी आयीं। राजा को संबोधित करते कहा - ''हे राजन्! आपका साम्राज्य अब स्थापित होगा। आप के नाम पर राजधानी की स्थापना होगी। आप उस पर शासन करेंगे। आप मेरे अपने हैं। मेरे भक्त हैं। आप को श्रीवेङ्कटेश्वर की कृपा भी मिलेगी।''

अनुयायी के मुँह से देवी के वचन और अपने लिए विशिष्ट वरदान पाकर तोंडमान ने रेणुका देवी को नमन किया। शुक मुनि के आश्रम की ओर बढे। शुक महर्षि को नमन कर उनसे पद्मसरोवर *माहात्म्य* सुनाने की इच्छा उनके सामने प्रकट की। *'पद्मसरोवर'* श्री शुकपुरी (यानी आज का तिरुचानूर) में है। श्री शुकपुरी को तिरुच्चुकनूर, तिरुचानूर, अलरमेल-मंगापुर भी कहते हैं।

श्री शुक महर्षि ने राजा तोंडमान को *पद्मसरोवर* की गाथा इस प्रकार सुनाई - ''हे राजन्! युगों पहले श्रीमहालक्ष्मी और उनके पतिदेव श्रीमहाविष्णु दूर्वास महर्षि के कारण भूलोक में आ गये। यहाँ श्रीमहाविष्णु ने श्रीमहालक्ष्मी के साथ *तपस्या* की। उन्होंने दस हजार दिव्य वर्षों के लिए *पद्मसरोवर* के पास तपस्या की थी। इन्द्र आदि देवताओं ने श्रीहरि और श्रीलक्ष्मी को बहुत ढूँढा। यहाँ आकर उन्होंने श्रीमहालक्ष्मी और श्रीमहाविष्णु को एक साथ पाया। सबने मिलकर प्रार्थना की - ''हे लक्ष्मी जी! आप ब्रह्म की माता हैं। इस समस्त विश्व की माता भी हैं। आप सागर तनया हैं। कृपा कर हम पर अनुग्रह कीजिए। *ऋक्, यजुः* और *सामवेद* की समन्वित *ब्रह्म-विद्या* मूर्ति हैं आप! आपकी कृपा से ही ब्रह्म जगत के सृष्टि-कार्य को संपन्न कर रहे हैं। *रुद्र* (शिव) विनाश कार्य में सफलता पा रहे हैं। आप हमारी ओर कृपा दृष्टि फेरिए।''

सबकी प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर श्रीमहालक्ष्मी ने कहा - ''हे देवता गण! आप अपनी शक्ति से ही *असुरों* का संहार कर सकेंगे। आप अपनी-अपनी जागहों पर वापस जाइए। जो मेरा *स्तोत्र* (प्रार्थना), मंत्र, जपते हुए मेरा स्मरण करेंगे, वे बेघर नहीं होते, वे घरवान बनेंगे। बिल्व पत्रों से मेरी पूजा- अर्चना करते हैं तो उनको *धर्म, अर्थ, काम* और *मोक्ष* सब *पुरुषार्थ* सरल होंगे। जो *पद्मसरोवर* में स्नान करेंगे और विष्णु धर्मचारिणी के रूप में मेरी आराधना करेंगे, उनको समस्त सुख - संपत्तियाँ, संपूर्ण जीवन और चरम आनंद तथा मोक्ष (परमानंद) मिलेंगे।'' इस प्रकार का वर प्रदान कर लक्ष्मी, विष्णु के साथ वैकुण्ठ की ओर चलीं।

शुक जी ने तोंडमान से आगे कहा - ''हे राजा! *पद्मसरोवर* की महत्ता भी सुनने योग्य है। यह मानवों के समस्त पापों का नाश करता है। इस सरोवर में जो पवित्र स्नान करके देवी का नाम स्मरण करता है, वह उनके अनुग्रह का तुरंत पात्र बन जायेगा। आप यहाँ अपने भाग्य से ही पहुँचे हैं। इसे अपना सौभाग्य समझकर पद्मसरोवर में पवित्र स्नान कीजिए। यहाँ स्नात होकर अपने यहाँ पहुँचना आपके लिए शुभकारी ही होगा।'' तोण्डमान ने शुक के आदेश का पालन करते हुए पद्मसरोवर में स्नान किया। तत्पश्चात् अपनी नगरी में लौटे।

तोंडमान द्वारा अपने पिता का राज्य पाना

(वरा. पु. भा. 3, अ. 10, श्लो. 1-53)

शुक महर्षि के *आश्रम* से वापस लौटने के तुरंत बाद ही उनके पिता ने तोंडमान को *युवराज* घोषित किया। उसकी बुद्धि और शक्ति का परीक्षण तीन वर्ष पर्यन्त किया। तोंडमान को राज्याभिषिक्त कर सुवीर ने अपनी पत्नी नंदिनी सहित वानप्रस्त आश्रम स्वीकार किया। वे वन में चले गये।

निषाद (वनचर) वेङ्कटाद्रि पर *श्यामक* धान की फसल पैदा करता था। उसी से बने अन्न में शहद मिलाकर भगवान को अर्पित करता था। एक दिन उसने पाया कि उसका खेत एक वराह से नाश किया जा रहा है। वह धान कुछ खाता और बहुत खराब करता था। *निषाद* ने उसके पदचिह्न देखे। धनुष - बाण लेकर उसके आने की प्रतीक्षा कर रहा था कि उसने हाथी के समान बहुत ही बडे वराह को खेत में आता देखा। वह बहुत नाराज हो गया। उधर वराह भी उतना हो क्रोधी बन गय। जोर से घुरघुराते आगे आया और *निषाद* ने भी उसे मारने धनुष संभाला। लेकिन शीघ्रता से वराह, वल्मीक में घुस गया। क्रुद्ध होकर निषाद ने वल्मीक को खोदा। वराह देव बाहर आये तो तुरंत निषाद मूर्छित हो जमीन पर गिरा। उसका पुत्र पास ही था। उसने वराह से प्रार्थना की। अपने पिता को क्षमा करने के लिए कहा।

वराह *निषाद* पर आवाहित हो गये और उसके मुँह से घोषित किया - ''मैं वराहदेव हूँ। मैं हमेशा इस चींटियो के बिल में रहता हूँ। तोंडमान को मेरा यह आदेश सुनाओ। मुझे इसी जगह पर प्रतिष्ठित करना है। यहीं पर मेरी उपासना - प्रार्थना होनी है। पहले श्यामा गाय के दूध से मुझे अभिषेकित करना है। उस राजा को मेरी आज्ञा सुनाओ। इस के बाद एक काला पत्थर मिलेगा। उसे पाकर उससे भूदेवी सहित वराह मूर्ति को बनाना है। भूदेवी को मेरी वाम जंघा पर बिठाना है। इसके बाद उस मूर्ति को धार्मिक अनुष्ठानों के साथ प्रतिष्ठित करना है। हर दिन दो समयों पर उसकी पूजा - अर्चना होनी है। इसके बाद इसी प्रकार का कार्यक्रम श्रीनिवास (विष्णु) के लिए भी संपन्न करना है। श्रीनिवास का विग्रह मेरे दक्षिण पार्श्व में एक और बिल में प्राप्त होगा। उनका कपिला गाय के दूध से पहले अभिषेक संपन्न करना है। दूध से अभिषेक करते हुए उनके विग्रह को बिल से निकालना है। जब तक उनके चरणों का

दर्शन न हो तब तक उनका अभिषेक क्रम चलता ही रहना होगा। उनको पवित्र नैवेद्य भी अर्पित करना है। हर दिन उनकी पूजा - अर्चना चलनी है। *प्राकारों* का, मंदिर का, विमान का निर्मण भी तोंडमान को कराना है। यह मेरा आदेश है। जाकर राजा तोंडमान को बताओ।''

इस प्रकार की घोषणा के बाद *निषाद* के शरीर से वराह स्वामी निकल गये। निषाद अपनी पूर्व स्थिति पा गया। स्वस्थ हो गया। वनचर के पुत्र ने घटना की पूरी बात अपने पिता को सुनायी। तुरंत ही *निषादाधिपति* वसु अपने सहयोगियों के साथ तोंडमान की राजधानी गया। राजा को पूरा वृत्तांत सुनाया। वराह स्वामी का आदेश भी सुनाया। फिर अपने स्थान पर वापस आ गया।

इस पर राजा तोंडमान ने अपने मंत्रियों को बुलाया। वराह स्वामी के आदेश सुनाये। उनको आज्ञाएँ दी कि अगले दिन ही वेङ्कटाचल पर जाने के लिए तैयारियाँ की जाय। अपने यहाँ के गोपालकों को भी आदेश दिया कि राज्य में मिलनेवाली श्यामा और कपिला गायों को इक्कट्ठा करके वेङ्कटाद्रि ले आयें। अपनी रानियों को शुभ समाचार दिया। उनसे भी कहा कि वे भी वेङ्कटाचल जाने के लिए तैयार हो जायें।

भगवान को याद कर राजा तोंडमान रात को सोये। भगवान श्रीनिवास ने स्वप्न में उन्हें दर्शन दिया और उन्हें एक आसान सुरंग के रास्ते से वेङ्कटाचल पहाड पर ले गये। वह उनके राजमहल से सीधा रास्ता था। पहाड पर जाने के लिए सामान्यतया मिलनेवाला रास्ता टेढा- मेढा और ऊबड - खाबड था। रास्ते भर में पत्ते झडे रहते थे। अगले दिन सुबह ही राजा तोंडमान घोडे पर अधिरोहित होकर डालियों और पत्तों से सूचित रास्ते से गुफा मार्ग तक पहुँचे। वहाँ गुफा के आसपास एक छोटे नगर को बसाया। उसे अपने महल से मिलाया। वहाँ एक *प्राकार* का भी निर्माण कराया। वह एक रहस्य स्थान था। वहाँ रहते हुए राजा ने योजना बद्ध रूप में कार्य करने का निर्णय लिया। जब आस-पास के वृक्षों को कटवाने तैयार हो रहे थे, तब भगवान ने राजा के सामने प्रत्यक्ष होकर कहा - ''हे तोंडमान! इस इमली के पेड और *चंपक* वृक्ष दोनों को मत कटवाना। इमली का पेड मुझे और चंपकवृक्ष लक्ष्मी के लिए प्रिय हैं। *प्राकार* का निर्माण *गोपुरद्वार* के साथ बनवाओ। गर्भ आलय जो मेरा निवास स्थान है, उस के ऊपर *विमान* का निर्माण करवाना। तुम्हारे ही वंशज नारायण उसे सुवर्ण मण्डित करेगा। वह उसका काम होगा।''

भगवान की सूचनाओं के अनुरूप तोंडमान ने *प्राकार,* मुखद्वार और एक शिखर बुर्ज बनवाया। नित्य *पूजा* की व्यवस्था की। सुरंग मार्ग से वे नित्य मंदिर जाते थे। पूजाएँ संपन्न करते थे। इस प्रकार उन्होंने धर्माश्रित विधि से शासन किया। समस्त सुखों को भी पाया। भक्ति उनके लिए सर्वोपरि रही।

वीर शर्मा की उत्तर की तीर्थयात्रा

(वरा. पु. भा. 2, अ. 10, श्लो. 50-78)

तोंडमान सुचारु रूप से शासन चला रहे थे। उस समय दक्षिण राज्य से अपनी पत्नी के साथ गंगा की ओर तीर्थयात्रा में एक ब्राह्मण निकला। उसकी पत्नी उस समय गर्भवती थी। कुछ दूर आयी। लेकिन आगे चलने में उसको कष्ट होने लगा। उस समय वे दंपति तोंडमान के राज्य में पहुँचे। ब्राह्मण ने सोचा कि धर्मात्मा राजा के पास अपनी पत्नी सुरक्षित रहेगी। राजा के पास पहुँचकर सहायता की याचना की। राजा ने उसकी प्रार्थना मानी। राजा के पास उनकी रक्षा में पत्नी को छोडकर ब्राह्मण तीर्थयात्रा में आगे चला। तोंडमान ने गर्भवती स्त्री को अंतःपुर के एक कोने के रानीवास के पास रखा। वहाँ तक कोई जा नहीं सकता। छः महीने के लिए आवश्यक आहार पदार्थ भी उसके लिए रखवाया। उसकी देखभाल के लिए नौकरानियों को भी रखा। कुछ समय में ही उसके बारे में सब कुछ भूल गये।

ब्राह्मण ने अपनी तीर्थयात्रा पूरी की। उसने तीर्थयात्रा में पूरे दो वर्ष लगा दिये। वापस लौटने, के बाद ब्राह्मण राजा के पास पहुँचकर पत्नी के बारे में पूछा। उसे देखकर ही राजा को ब्राह्मण की पत्नी की याद आयी। जब ब्राह्मण छोडकर गया, वह उस समय गर्भवती भी थी। ब्राह्मण को कुछ जवाब दिये बिना ब्राह्मण स्त्री की ओर ध्यान दिया। उसकी सुख - सुविधा की पूछताछ की। राजा स्वयं अंतःपुर की ओर गये। ब्राह्मण के लिए उचित रूप से रहने की व्यवस्था करायी। अंतःपुर में पूछने पर राजा को पता चला कि ब्राह्मण स्त्री को केवल छः महीनों के लिए ही खान - पान की व्यवस्था की गई थी। बाद में उसकी सूचना किसी ने राजा को नहीं दी। भूख से तडपती हुई वह मर गयी। राजा तोंडमान घबरा गये। वे गुफा मार्ग से नृसिंह भगवान के पास पहुँचे। नृसिंह ने उनको वेङ्कटेश्वर के पास जाने की सलाह दी। राजा तोंडमान श्रीनिवास भगवान की सन्निधि में पहुँच गये। उनके सामने प्रणमित हुए। अपनी भूल के कारण ब्राह्मण स्त्री की हुई मृत्यु के बारे में उनसे निवेदन किया। श्रीनिवास ने राजा को तसल्ली दी और आदेश दिया - ''हे राजा! उस ब्राह्मण स्त्री के शव को अच्छी तरह सजाकर एक पालकी में बिठाकर अस्थितीर्थ पहुँचना। *अस्थितीर्थ* मेरे मंदिर की पूर्व दिशा में है। वहाँ ले जाकर उस तीर्थ में उनका स्नान करवाओ। वह पुनर्जीवित होगी। उसके बाद उसे तुम उन्हें ब्राह्मण को सौंप दो।''

तुरंत राजा अन्तःपुर लौटे। पालकी मंगायी। अपनी रानियों के साथ, पालकी में ब्राह्मण स्त्री के शव को रखकर *अस्थितीर्थ* पहुँचे। सबने मिलकर अस्थितीर्थ में स्नान किया। ब्राह्मण स्त्री के शव को भी नहलवाया। एक डुबकी के साथ ब्राह्मण स्त्री जीवित हो गयी। तीर्थ के जल से मुस्कुराती बाहर आयी। राजा ने ब्राह्मण स्त्री को ब्राह्मण के हाथों में सौंपा। ब्राह्मण दंपति संतोषपूर्वक राजा से आज्ञा लेकर स्वदेश लौटे। उन्हें राजा ने धन भी दिया।

इसके बाद श्रीनिवास भगवान ने तोंडमान से कहा - ''राजा तुमको असमय - कुसमय मेरे मंदिर में आना नहीं चाहिए। नैवेद्य के समय ही आपको मेरे मंदिर में आना है। उसी समय मेरी पूजा सुवर्ण कमलों से करनी है। तुम्हारी सारी इच्छाएँ अवश्य पूरी होंगी।'' तब से राजा तोंडमान भगवान के आदेशानुसार पूजा करने लगे। (वरा. पु. भा.2, अ.10, श्लो. 79-102)

एक दिन राजा ने देखा कि मिट्टी के बने *तुलसी* के पत्ते उनके सुवर्ण कमलों के साथ भगवान के पाद पद्मों पर थे। राजा कुछ समझ नहीं पाये। ये मिट्टी से बने *तुलसी* के पत्ते कहाँ से आये? राजा के मन में शंका उत्पन्न हो गयी। तब भगवान ने कहा - ''हे राजा! मेरा *भक्त* और एक है। वह कुम्हार है। वह तुम्हारे राज्य के ही कुर्वा गाँव में रहता है। वह मुझे अपने घर में प्रतिष्ठित कर मिट्टी के तुलसी पत्तों से पूजता है। उसकी *अर्चना* मैं स्वीकर करता हूँ।'' राजा उस कुम्हार को देखने उसके घर पहुँचे।

उस कुम्हार का नाम भीम था। राजा को अपने घर पर देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया। राजा को नमस्कार किया। आदर के साथ अपने यहाँ उचित स्थान पर बिठाया। तब तोंडमान ने उससे पूछा कि ''तुम भगवान की पूजा किस प्रकार कर रहे हो? कुम्हार ने उत्तर दिया यथा - ''मैं कुम्हार हूँ, मैं यह नहीं जानता कि *अर्चना* क्या होती है। आप से किसने कहा कि मैं पूजा करता हूँ!'' तोंडमान ने कहा - ''स्वयं श्रीनिवास भगवान ने तुम्हारी पूजा की प्रशंसा की है। इस कारण मैं तुम्हारे पूजा-विधान जानने के लिए ही तुम्हारे पास आया हूँ।''

तब कुम्हार ने स्मरण किया। भगवान ने उससे पहले कहा था कि ''जब तुम्हारी *पूजा* की बात राजा तोंडमान को मिलेगी और वे तुम्हारे यहाँ पहुँचेंगे तब तुम्हें मोक्ष मिलेगा।'' यह भगवान वेङ्कटेश्वर का वरदान था। इतने में कुम्हार ने देखा कि भगवान उन्हें तारने के लिए *विमान* में आ रहे हैं। कुम्हार भीम अपनी पत्नी के साथ विमान में बैठ गया। *विष्णु पदों* (परमपद, वैकुंठ) में स्थान पाया। राजा के देखते-देखते विष्णु के साथ उनके लोक में पहुँच गया।

तोंडमान इस आश्चर्यजनक दृश्य को देखकर स्तंभित हो गये। अपनी राजधानी में पहुँचे। अपने पुत्र श्रीनिवास को राज्य सिंहासन पर बिठाया। अकेले ही *तपस्या* के लिए एक निर्मल जगह पर पहुँच गये। तपस्या की। भगवान ने श्रीदेवी और भूदेवी समेत *गरुड* पर आरूढ़ होकर प्रत्यक्ष होकर राजा से पूछा कि उन्हें किस प्रकार का वर चाहिए। तब राजा ने कहा - ''हे भगवान! मैं आपकी *स्वर्ग-लोक* कृपा से संतुष्ट हूँ। मुझे पुनर्जन्म राहित्य प्रदान कीजिए। मैं आपके *स्वर्ग-लोक* में कुछ स्थान मात्र पाना चाहता हूँ और कुछ नहीं।'' तुरन्त एक विमान वहाँ पहुँचा। तोंडमान उसमें बैठे और *विमान* वैकुण्ठ की ओर चला।

* * *

अध्याय - 10

मित्रवर्मा के पुत्र के रूप में आकाशराजा का जन्म

(**वराह पु. भाग** 2, **अध्याय** 3, **श्लो.** 12-38)

श्रीवराह ने भूदेवी से एक बार इस प्रकार कहा - ''*चतुर्युगों* के क्रम में अट्ठाईसवाँ चतुर्युग क्रम चल रहा था। उसके अंतिम चरण में *महाभारत* युद्ध समाप्त हुआ। उससे द्वापर युग का अंत और *कलियुग* का आरंभ भी हो गया। *कलियुग* में विक्रमार्क शक में शूद्रक और अन्य राजाओं ने शासन किया। उनमें से किसी ने भी मुझे पहचाना नहीं। सब *स्वर्ग लोक* सिधारे। इसके बाद चन्द्रवंश में मित्रवर्मा नामक राजा का जन्म हुआ। वे *महारथी* बने। उन्होंने तोंडमंडलम् क्षेत्र पर शासन किया। नारायणपुर उनकी राजधानी थी। उन्होंने पांड्य राजकुमारी से विवाह किया। उनके पुत्र ही थे आकाशराजा। आकाशराजा का धरणी नामक शक राजकुमारी से विवाह हुआ। उपयुक्त समय पर राजा मित्रवर्मा ने अपने पुत्र आकाशराजा को राज्यासन दिया। राजा स्वयं पत्नी समेत वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर वेङ्कटाद्रि पर तपस्या के लिए पहुँचे। आकाशराजा तब सम्राट बने।

बहुत समय तक आकाशराजा की कोई संतान नहीं हुई। पुत्र की कामना से पुत्रकामेष्ठि *यज्ञ* करने का उन्होंने निश्चय किया। उसके लिए पहले जमीन को जोतना था। आरणी नदी के किनारे पर यज्ञ के लिए सोने के हल से जोत कर नवधान्य (नौ प्रकार के बीज) बोने की प्रक्रिया में कार्यरत थे। जब नवधान्य बो रहे थे तब राजा ने एक सोने की पेटी में सहस्रदल कमल में एक सुंदर बालिका को देखा। पहले वे आश्चर्यचकित हो गये। क्षणों में उनकी आँखों से आनंदभाष्प बरस पडे। ''यह बच्ची मेरी है। भगवान ने कृपा भाव से मुझे इस बच्ची को दिया है।'' - कहते हुए बच्ची को हाथों में लिया। उसी समय आकाशवाणी सुनायी पडी - ''हे राजन्! वास्तव में यह बच्ची आप की ही है। उसका संरक्षण कीजिए ।'' राजा ने बच्ची को आनंद के साथ रानी धरणी देवी के हाथों में सौंपा। बच्ची को सुवर्ण पद्म में पाने के कारण बेटी को 'पद्मावती' नाम दिया गया। (लेखक ने मूल में 'पद्मिनी' नाम दिया है, पर प्रचलित नाम 'पद्मावती' को ही यहाँ स्वीकार किया गया है।)

कुछ ही समय बाद रानी धरणी देवी गर्भवती हुई। एक पुत्र को जन्म दिया। यह राजा के लिए और आनंद की बात ही थी। गायों को दान में दिये। धार्मिक अनुष्ठान किये। पुत्र का नाम रखा 'वसुदास'।

कुछ वर्ष बीते। पद्मिनी युवती बनी। एक दिन वे अपनी सखियों के साथ - उद्यान वन में घूम रही थीं। उसी समय नारद मुनि उधर से गुजर रहे थे। उन्होंने पद्मावती को देखा। उनके उज्वल सौंदर्य को देखकर अभिभूत हुए। उनके पास पहुँचकर उनके माता - पिता के बारे में पूछा। उनकी हस्तरेखाएँ देखीं। आश्चर्यचकित हो गये। तब नारद जी ने पद्मावती से कहा - ''तुम्हारा वर्छस्व बहुत ही आकर्षक है।

तुम्हारी शारीरिक आभा अतुलनीय है। श्रीलक्ष्मी समान दिखाई दे रही हो। तुम्हें अवश्य श्रीमन्नारायण ही पति के रूप में मिलेंगे।'' नारद जी चले गये।

पद्मिनी ने अपनी सखियों से फूल चुनने के लिए कहा था। सखियाँ फूल इक्कट्ठा कर रही थीं। उन्होंने उस समय देखा कि एक बहुत बडा मस्त हाथी जो हथिनों के संग में विहर रहा था, अकस्मात् उस बगीचे में घुस आया। पद्मावती की सखियाँ भयभीत हो गयीं। एक बडे वृक्ष के पीछे छिप गयीं। उसी समय उन लोगों ने देखा कि एक धवल अश्व पर एक सुंदर युवक सवार होकर उस ओर आया। उसके एक हाथ में *सारंग* (धनुष) था और दूसरे हाथ में बाण थे। वह *पीतांबरधारी* था। शरीर पर यज्ञोपवीत शोभित था। स्वर्ण आभरण पहना हुआ था। वह मस्त हाथी के पीछे - पीछे आया। उस युवक को देख हाथी भाग गया। अश्वारोही ने पद्मावती की सखियों के पास जाकर पूछा कि क्या उन्होंने किसी *मृग* (ईहा मृग) को इस ओर जाते देखा? उनका उत्तर था - 'नहीं'। उन्होंने उस युवक से प्रश्न किया कि ''क्यों तुम राजा के उपवन में घुस आये? इसमें आखेटकों का प्रवेश निषिद्ध है।''

युवक घोडे से उतरा। उनसे पूछा - ''तुम लोग कौन हो? वहाँ एक कोने में बैठी युवती कौन हैं?'' सखियों ने कहा - ''वे राजकुमारी हैं। आकाशराजा की पुत्री हैं। आकाशराजा इस प्रांत के राजा हैं। हम स्वयं राजकुमारी की सखियाँ हैं। लेकिन आप कौन हैं? आपका नाम क्या है? किस वंश के हो? आपके माता पिता कौन हैं? जरा बताइए।''

इस पर घुडसवार युवक ने उत्तर दिया - ''मैं सूर्यवंशी हूँ। मेरे अनेक नाम हैं। मेरे सब नाम मनुष्यों को पवित्र बनाने की शक्ति रखते हैं। मेरे शरीर का रंग श्याम है। इसीलिए मैं कृष्ण कहलाता हूँ। मेरा एक *शंख* है। वह अपनी शक्ति से शत्रुओं को भयभीत करता है। मेरे पास *चक्र* है। वह शत्रुओं का नाश करता है। मेरा *धनुष* तो अनुपम शक्ति समन्वित है। मैं विश्ववीर हूँ। मैं वेङ्कटाद्रि पर रहता हूँ। कुछ सहायकों के साथ मैं आखेट के लिए निकला तो मेरे सामने एक भयंकर भेड आया। उसका पीछा करता करता मैं अकेला यहाँ तक पहुँच गया हूँ। मैं यहाँ एक सुन्दर और मणिकान्ति सम प्रकाश बिखेरनेवाली इस युवती (पद्मिनी) को देखकर तुम लोगों के पास आया हूँ। तुम लोगों से यही पूछना चाहता हूँ कि क्या मैं उससे विवाह कर सकता हूँ। मैं उसको पूर्ण मन से चाहता हूँ।''

पद्मावती की सखियों ने उनके प्रस्ताव पर रुष्ट होकर चेतावनी दी कि अगर राजा को यह समाचार मिलेगा तो वे उसे कठिन दण्ड देंगे। उन लोगों ने युवक से तुरंत वहाँ से निकल जाने के लिए कहा - 'अगर नहीं निकले तो परिणाम अच्छे नहीं रहेंगे' - यह उन लोगों की आखरी बात थी। वह मानो डर रहा हो, ऐसा चेहरा दिखाकर श्रीनिवास वेङ्कटाद्रि लौटा। वहाँ पहुँचकर, जो सहायकों के रूप में आखेट में उनका साथ दिया था, उन देवताओं को वापस जाने के लिए कहा। वे *मणिमंटप* में गये। पद्मावती

को मन में रखकर खाट पर लेट गये। सोचने लगे कि वे लक्ष्मी ही हैं और कोई हो नहीं सकतीं। वे अवश्य क्षीराब्धि तनया ही हैं।

वकुलमालिका, जो श्रीनिवास की सेविका बनकर आयी थी, वह श्रीनिवास के लिए मध्याह्न का भोजन लेकर आयी। श्रीनिवास ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वकुलामाता के पूछने पर उन्होंने एक और गाथा का वर्णन किया। उस संदर्भ में उन्होंने कहा - ''*त्रेता युग* में देवताओं की प्रार्थना पर *राक्षसों* के संहार के लिए मैं ने दशरथ पुत्र राम के रूप में अवतार लिया था। उस समय वेदवती नामक एक पवित्र महिला ने सीता की सहायता की थी। सीता तो श्रीमहालक्ष्मी का ही अवतार है। जनक सुता बनकर पृथ्वी पर आयीं। जब हम वनवास में थे तब एक दिन मारीच नामक राक्षस सुवर्ण मृग बनकर *आश्रम* के पास विचरण कर रहा था। वह हमें धोखा देने के लिए ही आया था। सीता ने सोने का हिरण चाहा। मुझसे कहा कि मैं जाकर उसे पकडकर लाऊँ। मैं ने उसे पकडने की कोशिश की। वह दौडकर भागा। उसे मारने के लिए मैं ने बाण छोड़ा। बाण राक्षस मारीच को लगा। मारीच ने ''हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण!'' कहकर जोर से चिल्लाया। सीता ने उस समय सोचा कि मैं कष्ट में हूँ और मेरे प्राण खतरे में हैं। मारीच ने कंठ बदलकर मेरे सुर में चिल्लाया था। सीता ने समझा कि मैं ही चिल्ला रहा हूँ। लक्ष्मण ने यद्यपि कहा ही था कि मुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सकेगा, फिर भी सीता ने लक्षण को मेरी रक्षा के लिए भेजा। तब सीता आश्रम में अकेली पड गयीं। रावण उनके सामने *सन्यासी* के रूप में आया तथा भिक्षा माँगी। उसका लक्ष्य सीता का हरण ही था। अग्निदेव ने उस समय सीता को *पाताल लोक* में पहुँचाया। अपनी पत्नी स्वाहा देवी के संरक्षण में रखकर *आश्रम* में सीता की छायामूर्ति को बनाया। रावण ने सीता की छायामूर्ति को ही असली सीता समझा और उन्हें लंका ले गया। वहाँ उन्हें बन्दी बनाया। छायामूर्ति को अनेक प्रकार से तंग किया। वास्तव में वह छायामूर्ति ही वेदवती थी। जब छायामूर्ति सीता की रक्षा कर मैं वापस लाया तब वे अग्नि परीक्षा निमित्त आग की चिति में गयी। अग्निदेव ने *पाताल* से स्वाहा देवी के आश्रय में रहनेवाली असली सीता को लाकर मुझे अर्पित किया। तब सीता ने मुझसे प्रार्थना स्वर में कहा कि मैं वेदवती को ग्रहण करूँ, क्योंकि उन्होंने सीता के लिए रावण से कष्ट सहे। वे सीता ही बनकर रहीं। उनसे भी सीता ने इसी प्रकार की बात कही। तब मैं ने उत्तर में कहा था कि मैं इस अवतार में एक पत्नीव्रत हूँ। उसे स्वीकार कर नहीं सकता। लेकिन सती वेदवती *ब्रह्मलोक* में रहेंगी। *देवताओं* की पूजाएँ स्वीकारती हुई अट्ठाईसवें *कलियुग* तक रहेंगी। मैं अट्ठाईसवें कलियुग में वेङ्कटेश्वर के रूप में अवतार लूँगा। उस समय वेदवती भी आकाशराजा की पुत्री पद्मावती के रूप में अवतरित होंगी। तब ही मैं उन्हें स्वीकार कर सकता हूँ। अब वह समय आ गया है। पद्मावती अवतरित हुई। उन्हीं को मैं ने आकाशराजा के उपवन में देखा है। मैं उनके सौंदर्य पर आकर्षित हो गया हूँ। उनके बिना मैं रह नहीं सकता, जी नहीं सकता। अतः अब आपको प्रयत्नशील होना है। हमारा विवाह संपन्न कराना है।''

वकुलमालिका ने कार्य निर्वहण का दायित्व स्वीकार किया। नारायणपुर का रास्ता बताने के लिए पूछा। श्रीनिवास ने तब वकुलामाता से कहा - ''यहाँ से नृसिंह गुफा के पास जाइए। उस गुफा मार्ग से आप सुवर्णमुखरी नदी तट पर पहुँच जायेंगी। वहाँ *अगस्त्य* मुनि का *आश्रम* है। पास ही अगस्त्येश्वर का मंदिर है। अगस्त्य महर्षि द्वारा प्रतिष्ठित शिव जी का *अगस्त्येश्वर लिंग* है। उनकी पूजा - अर्चना कीजिए। वहाँ से कुछ ही दूरी पर *शुकब्रह्म महर्षि* का भी आश्रम है। उनके आश्रम के पास ही पद्मसरोवर है। उसमें पवित्र - स्नान कीजिए। छाया शुक के पास जाइए। वे वहीं पर *तपस्यारत* रहते हैं। उनके आश्रम के पास ही कृष्ण और बलराम भी विलसे हैं। उनसे आशीर्वाद लीजिए। वहाँ नदी को पार कीजिए। वहाँ से बगीचों को पार करती आरणी नदी तक पहुँच जाइए। वहाँ के उपवन में आराम कीजिए। उसके पास ही नारायणपुरी उत्तर की दिशा में है। वह गाँव आरणी नदी से परिवेष्ठित है। नारायणपुर में जाइए। वहाँ जाकर आप अपनी कुशलता से काम कीजिएगा।'' फिर वे पलंग पर लेट गये।

वकुलमालिका एक लाल रंग के अश्व पर चढकर श्रीनिवास द्वारा निर्देशित मार्ग पर नारायणपुर के लिए निकली। आरणी नदी में स्नान किया। विश्राम किया।

उस समय अगस्त्येश्वर मंदिर में पूजा के लिए कुछ युवतियाँ आयी थीं। वकुलमालिका ने उनके पास जाकर पूछताछ की। युवतियों ने कहा कि वे आकाशराजा के अंतःपुर से आ रही हैं और वे पद्मावती देवी की सहेलियाँ हैं। वे एक सुंदर युवक से हाल ही में मिली थीं। उनके आकर्षण में बीमार हो गयी। वे विरह ताप अनुभव कर रही हैं। वह व्यक्ति एक युवक था। घोडे पर सवार होकर उधर राजा की पुष्पवाटिका में विहरण करनेवाली राजकुमारी से मिला था। राजकुमारी पद्मावती देवी के कुशल मंगल की कामना से, अगस्त्य महर्षि, शिवलिंग की अभिषेक-पूजाएँ कर रहे हैं। ज्योतिषियों ने भगवान का *अभिषेक* कराने की सलाह दी है। हम पूजा सामग्री लेकर आयीं हैं। वकुलामाता ने रानी से मिलने की अपनी इच्छा उनके सामने रखी। पद्मावती की सखियों ने *अभिषेक* पूजा के बाद उन्हें रानी धरणी देवी के पास ले जाने का आश्वासन दिया।

इसी बीच एक पुरंदस्त्री आयीं। उसने धरणी देवी को बताया - ''आपकी पुत्री किसी प्रकार की बीमारी से पीडित नहीं हैं। वे वेङ्कटाद्रि निवासी श्रीवेङ्कटेश्वर के प्रेम में विह्वल हैं। श्रीवेङ्कटेश्वर भी उन्हें उतना ही चाहते हैं। उन्होंने आपके पास एक दूत को भेजा है। वह एक स्त्री है। विवाह की बात आपसे करेंगी। उस विवाह की बात से आपकी पुत्री स्वस्थ हो जायेगी। आपकी पुत्री सामान्य राजकुमारी नहीं है। साक्षात् श्री लक्ष्मी ही हैं।''

यह सुनकर धरणी देवी, पुत्री पद्मावती के पास गयीं। उनसे पूछा कि उन्हें क्या चाहिए। पद्मावती ने उत्तर में कहा - ''माताजी! मेरा मन एक ही विषय से ग्रस्त है। वह एकमात्र ही है। वह मेरी आँखों के सामने गुजरा दृश्य ही है। वह दृश्य पवित्र मनों को भी अवश्य आकर्षित करता है। उस दृश्य के लिए

ब्रह्म आदि तो *तपस्या* करते हैं। आध्यात्मवेत्ताओं के लिए वह दृश्य कुछ सुलभ होता है। वह दृश्य समस्त विश्व के एक मात्र सत्ता का दृश्य है। वह समस्त देव तत्वों से उत्तम है। वह दृश्य देवताओं के देवता का दृश्य है। उनको पाने के बाद कोई भी कुछ और पाने की इच्छा अथवा आशा नहीं रखेगा। उनको पाने पर सब विजय यों ही प्राप्त होंगी। माता उसे मेरे लिए प्राप्त कराइएगा।''

पुत्री की आश्चर्यचकित करनेवाली बातें सुनकर रानी धरणी देवी अवाक रह गयी। फिर संभल कर पुत्री से कहा - ''हे लाडली! मुझे उन *भक्तों* के लक्षण बताना जो उसे प्राप्त करना चाहते हों।'' पद्मावती ने उत्तर में वैष्णव भक्तों के लक्षण गिनाये। *विष्णु भक्तों* के शरीर में लगनेवाली मुद्राओं का विवरण दिया। वे *पंचायुध* मुद्राएँ होती हैं। *शंख* और *चक्र* की मुद्राएँ भुजाओं पर, *सारंग* और *शर* की मुद्राएँ सिर पर, *गदा* की मुद्रा माथे पर और *खड्ग* की मुद्रा वक्षःस्थल पर अंकित होती हैं। ये बाह्य शरीर पर अंकित होनेवाली मुद्राएँ हैं। भगवान पर विश्वास, सत्य धर्मिता, दया, पवित्रता आदि तो स्वच्छ मन से आचरित होनेवाले हैं। वेदों को मानना और वैदिक कार्यों का अनुसरण उनके लिए प्रधान हैं। इन सबसे युक्त लोग ही *वैष्णव* हैं। ऐसे भक्त ही अपने पवित्र व्यवहारों और आचरणों द्वारा *''ब्रह्मन''* को पा सकते हैं। तत्पश्चात् पद्मावती ने स्पष्ट शब्दों में कहा - ''माँ मेरा मन उस स्थिति को पाने के लिए लालायित हो रहा है। मैं हमेशा नीलघन श्याम विष्णु को ही चाहती हूँ। अन्य कोई मेरे मन के लिए ग्राह्य नहीं हैं। मैं 'हरि, अच्युत, नारायण' नाम रटती रहती हूँ। उनके नाम स्मरण मात्र से मैं जीवित रह रही हूँ। मेरी इच्छा पूर्ति का मार्ग ढूँढो माँ!''

[[पद्मावती का पूर्ण परब्रह्म संबन्धी आध्यात्मिक पक्ष और अनजाने आखेटक, जिससे वे वाटिका में मिली थीं, की ओर आकर्षण कुछ असंगत ही लगता है। क्योंकि उनकी वेदना और मानसिक व्याकुलता का कारण आखेटक-घुडसवार ही है। अगर वे वास्तविक रूप से आध्यात्मिक स्थिति में रही हों तो अवश्य सब कुछ सुगमता से पार कर गयीं होती। इतना ही नहीं, अपनी माता से परिहार मार्ग पूछना भी कुछ तर्क संगत नहीं लगता। केवल लेखक की कल्पना यहाँ काम करती दिखाई देती है। लेखक (कवि ने मूल कृति में) ने ऐसा प्रयत्न किया है जिसके द्वारा *विष्णु भक्त* एवं *वैष्णव* के लक्षण पद्मावती के द्वारा स्पष्ट हो।

ताल्लपाक अन्नमाचार्य ने अपने *संकीर्तनों* में वैष्णव के लक्षण स्पष्ट किये हैं। उनके अनुसार वे नित्य, मुक्त, निर्मलचित्तुलु, निगमांतविद होते हैं। उन्होंने इस संकीर्तन को 'मालवी-राग' में गाया। वे *शंख* और *चक्र* मुद्रांकित होते हैं। भौतिक आकर्षणों से परे, कामनाओं से *मुक्त* और मानवीय होते हैं। ब्रह्म आदि देवताओं के सम स्थिति के इच्छुक नहीं रहते। भगवान के प्रति केवल विश्वास और समर्पण भाव रखते हैं। भौतिक कर्मों की ओर असंपृक्त रहते हैं। स्वस्थ प्रकृतिवाले रहते हैं। श्रीवेङ्कटेश्वर के प्रति भक्ति भाव युक्त रहते हैं।]]

[[अन्नमाचार्य ने श्रीवेङ्कटेश्वर के भक्तों की विशेषताओं को स्पष्ट रेखांकित किया है। उन्होंने भक्त के संदर्भ में एक कीर्तन की पल्लवी में घोषित किया है -

''एकुलजुडैननेमि एव्वडैननेमि आकड
नातडे हरिनेरिगिनवाडु।''

(वह कोई भी हो, किसी कुल का हो, इससे होता क्या है? अन्त में हरि को जाननेवाला ही वह (भक्त) है।)

इसके बाद उन्होंने भक्त के लक्षणों को और स्पष्ट किया है - वह सत्य रूपी संपत्ति से विलसित होता है। वह दूसरों का दूषण नहीं करता। सर्व प्राणियों के प्रति दया रखता है। सभी को अपने ही समान मानता है। पूतात्मा होता है। सच्चरित होता है। धर्म बद्ध आचरण का अतिक्रमण नहीं करता, *हरि भक्ति* (विष्णु के प्रति भक्ति) का विस्मरण नहीं करता। संसार में सभी का हित ही करता है। शत्रुता का भाव कभी मन में आने नहीं देता। विश्वात्मा का बोध उसे सर्वदा रहता है। श्रीवेङ्कटेश भगवान का विनम्र *भक्त* होकर ही रहता है। अन्नमाचार्य तो पद्मावती देवी की भावनाओं से युक्त थे ही।]]

पद्मावती और धरणी देवी के बीच बातें चल ही रही थीं कि अगस्त्येश्वर मंदिर से सखियाँ *अभिषेक,* पूजा संपन्न होने के बाद अंतःपुर में वापस लौटीं। उनके साथ वकुलमालिका भी वहाँ पहुँची। सखियों ने वकुलमालिका का परिचय रानी को दिया और उनके आने का उद्देश्य भी रानी के सामने स्पष्ट किया।

वकुलमालिका ने रानी से कहा - ''हे महाराणी! मैं वेङ्कटाद्रि से आ रही हूँ। मेरा नाम वकुलमालिका है। भगवान श्रीमन्नारायण मेरे मालिक हैं। वे वेङ्कटाचल पर श्रीवेङ्कटेश्वर नाम से वास कर रहे हैं। एक दिन वे आखेट खेलने के लिए वन में गये। उन्होंने एक मस्त हाथी को देखा। उसका पीछा किया। लेकिन उसको पा नहीं सके। रास्ते में अकस्मात् वे शंख नृपति से मिले। शंख नृपति श्रीदेवी-भूदेवी सहित विष्णु की मूर्ति को एक चट्टान पर चित्रित कर उनकी पूजा में निरत थे। उनसे भगवान को सूचना मिली कि शंख नृपति श्वेत नृपति के पुत्र हैं। वे हैहय वंश के थे। उन्होंने अपना जीवन पवित्रता के साथ बिताया। संपत्ति को दान - धर्मों में वितरित किया। लेकिन जीवन की कामना पूरी नहीं हुई। वे भगवान की अनुकंपा प्राप्त करना चाहते थे। आकाशवाणी से उनको मार्गदर्शन मिला था। पाकर वे वेङ्कटाचल आये। अगस्त्य महर्षि के आदेशानुसार वे तपस्या रत हुए हैं। श्रीदेवी और भूदेवी सहित वेङ्कटेश की आराधना कर रहे थे। वेङ्कटेश्वर ने राजा को बताया - ''हे राजन्! वेङ्कटाद्रि की उत्तर दिशा में एक पर्वत शिखर पर *न्यग्रोधा* (बरगद) वृक्ष है। उसके नीचे वेङ्कटेश्वर हैं। एक और बात है, उनके पास जाने से पहले आप पवित्र स्वामी पुष्करिणी में पवित्र स्नान कीजिए। उसके पश्चिमी तट पर एक *अश्वत्थ* वृक्ष है। उसके

नीचे एक वल्मीक है। वट वृक्ष और अश्वत्थ वृक्ष के बीच रहकर *तपस्या* कीजिए। उस वल्मीक में श्वेत वराह स्वामी रहते हैं। ये स्वामी धर्मात्माओं और पवित्रात्माओं को ही अपना दर्शन देते हैं।'' शंख नृपति को मार्गदर्शन देकर वेङ्कटेश अश्वारूढ़ हो हाथी को ढूँढते आगे बढे। चलते चलते आरणी नदीं तक पहुँच गये। वहाँ से उस उपवन में पहुँचे जहाँ सुंदर सखियों के बीच एक दिव्य प्रकाश से युक्त युवती मिली। वे फूल चयन कर रही थीं। दिव्य सौंदर्य से विलसित कन्या को देखकर अश्वारूढ़ श्रीनिवास वहाँ ०रुक गये।

यह जानकर कि वे आकाशराजा की पुत्री हैं, श्रीनिवास वेङ्कटाद्रि वापस लौटे। आते ही उन्होंने मुझे बुलाकर कहा - ''वकुलमालिका, आप तुरंत आकाशराजा की नगरी में जाइए। उनकी रानी धरणी देवी से मिलकर कहिए कि वे अपनी पुत्री का विवाह उनसे करायें।'' यहाँ सब कुछ ठीक कराकर मैं लौटकर उन्हें सूचना दूँगी। इसीलिए मैं यहाँ आयी हूँ। आप महाराजा से कहिएगा। उपयुक्त उत्तर पाकर मुझे बताइए। आप अपनी पुत्री से इस संबन्ध में बात कर सकती हैं। उनके मन की बात भी जान सकती हैं। इतना ही चाहती हूँ कि आप सब ओर से उचित समाधान पायें।''

रानी धरणी देवी का मन शांत हुआ। पद्मावती के हृदय की बात जानी। राजा से मिलीं। राजा ने अपने मंत्रियों को बुलाया। श्रीवेङ्कटेश्वर की ओर से आई हुई वकुलमालिका की बात कही। विषय प्रस्तावित किया। सबने प्रस्ताव को स्वीकार किया और एक स्वर में कहा कि आपकी पुत्री अत्यंत भाग्यशालिनी हैं। श्रीमहालक्ष्मी की सहपत्नी होने का सौभाग्य उन्हें मिल रहा है। उनका जीवन आनंदमय ही रहेगा। राजा भी संतुष्ट हुए। विवाह शुभ *मुहूर्त* को निश्चित करने के लिए आकाशराजा ने बृहस्पति को स्मरण किया। *देवलोक* से देवगुरु बृहस्पति आये। उन्होंने अपनी सलाह दी कि राजकुमारी का जन्म नक्षत्र *मृगशिरा* (पाँचवा नक्षत्र) है और श्रीनिवास का *श्रवणा* (22 वाँ नक्षत्र) नक्षत्र। दोनों के लिए विवाह का शुभ नक्षत्र *उत्तर फल्गुणी* नक्षत्र ही होगा। वैशाख मास ही सब दृष्टियों से श्रेष्ठ है।

तब आकाशराजा ने वकुलमालिका की ओर मुडकर कहा - ''हे माता! आप वेङ्कटेश्वर से जाकर सारी बातें कहिए। विवाह का जो *मुहूर्त* निश्चित किया गया है, उसकी सूचना दीजिए ताकि वे अपनी तैयारियाँ आरंभ करें। समय पर यहाँ पधारें।'' इसके बाद आकाशराजा ने शुक महर्षि को आह्वानित कर उनकी ओर से वेङ्कटाद्रि जाने की प्रार्थना की। शुकजी वकुलमालिका के साथ वेङ्कटाचल गये।

तत्पश्चात् राजा ने अपने पुत्र वसुदास को बुलाया। इन्द्र और अन्य देवताओं को आमंत्रित करने उसे देवलोक भेजा। राजा ने विश्वकर्मा को बुलाया। विश्वकर्मा देव लोक के शिल्पी हैं। उनसे प्रार्थना की कि वे पूरी नगरी के अलंकरण का दायित्व स्वीकार करें। उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। इन्द्र ने आवश्यक वर्षा बरसायी। कुबेर ने धन राशियाँ उंडेली। यम धर्मराज ने सबको स्वस्थ रखने का दायित्व लिया। वरुण ने मणि - माणिक्यों की वर्षा की। फिर वे सब वेङ्कटाचल पहुँचे क्योंकि वहाँ की व्यवस्थाएँ भी उन्हें करनी हैं।

उधर वकुलमालिका शुक *महर्षि* के साथ वेङ्कटाचल पहुँची। वेङ्कटेश्वर से निवेदित किया - ''हे भगवान! आपके आदेशानुसार मैं नारायणपुर गयी। आपका कार्य सफल हो गया है। विवाह का समाचार आपको देने के लिए शुक ब्रह्मर्षि भी मेरे साथ आये हैं।''

शुक जी ने श्रीनिवास *भगवान* का अभिवादन किया और कहा - ''हे श्रीनिवास! पहले पद्मावती का शब्द लीजिए। उन्होंने मुझे आपसे निवेदित करने के लिए कहा है कि 'हे माधव! मैं भूपुत्री हूँ। मुझे आप की सहगामिनी के रूप में स्वीकार कीजिएगा। मैं हमेशा आपकी सेवा में रहूँगी। आप का ही नाम स्मरण करूँगी। मैं ने अपने शरीर पर आप की मुद्राएँ अंकित करा ली हैं। *शंख* और *चक्र* मुद्रांकिता हूँ मैं। मैं आपके *भक्तों* को ही चाहती हूँ। मैं सब काम आपके मन के अनुकूल ही करूँगी। आपकी सेवा में रत रहूँगी। कृपया मुझे स्वीकार कर अनुग्रहीत कीजिएगा।''

शुक जी के मुँह से पद्मावती की बातें सुनकर श्रीनिवास अति प्रसन्न हुए। तब शुक जी को संबोधित करते हुए श्रीवेङ्कटेश्वर ने कहा - ''शुक जी! आप पद्मावती को बताइएगा कि मैं ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की है। विवाह के लिए ठीक समय पर मैं पहुँचूँगा। देवता समूह मेरे साथ रहेगा।'' इतना कहकर एक *तुलसी* माला शुकजी को दी और कहा कि इसे पद्मावती को देकर ही उन्हें समाचार देना है।

शुक जी तुलसी माला लेकर नारायणपुर पहुँचे। माला पद्मावती तक पहुँचायी गयी। पद्मावती ने माला स्वीकार की। उसे पहनकर श्रीनिवास के आगमन का इंतजार करने लगी।

आकाशराजा को भी शुकजी ने शुभ समाचार दिया। उन्होंने चन्द्रमा से प्रार्थना की कि वे अतिथियों (ऋषियों, साामान्य प्रजा) और *देवताओं* के लिए आवश्यक भोजन आदि की व्यवस्था की देख रेख करें। विवाह के लिए आवश्यक कार्य निर्वहण के लिए उपयुक्त व्यक्तियों को आकाशराजा ने नियुक्त किया।

समानांतर में भगवान ने श्रीलक्ष्मी को बुलवाकर आवश्यक कार्यों का दायित्व सौंपा। लक्ष्मी जी ने परिचारिकाओं को सूचनाएँ देकर विवाह की तैयारियाँ परिपूर्ण करायीं। परिचारिकाओं ने सुगंधित तेल और गरम पानी की व्यवस्था भी की। स्वर्णाभरण और वस्त्र आदि का इंतजाम हो गया। सरस्वती और गौरी ने भी अपना अपना दायित्व निभाया। श्रीनिवास के मंगल स्नान की व्यवस्था की गयी। लक्ष्मी ने अपने हाथों से मंगल स्नान कराया। श्रीनिवास को पहनने के लिए *पीतांबर* वस्त्र लाये गये। श्रीनिवास वर के रूप में अलंकृत हुए। लक्ष्मी सहित वे *गरुड* पर आरूढ़ हुए। ब्रह्म, देवतगण, ऋषि - मुनि समूह के साथ सब नारायणपुरी की ओर बढे। मंगल वाद्य बज रहे थे। ऋषि समूह वेद मंत्र उच्चरित कर रहे थे। अलंकृत रथों में वकुलमालिका, अन्य देवता स्त्रियों और ऋषि पत्नियों सहित हो नारायणपुर के लिए निकली। वह अत्यंत वैभवपूर्ण विवाह दृश्य था।

समरूप से नारायणपुरी में पद्मावती को प्रदक्षिणम् मार्ग से समुचित रूप में वधू बनाकर *ऐरावत* पर बिठाया गया। नारायणपुर की नगर वीथियों से पुरद्वार तक वर के स्वागत के लिए जुलूस में चलकर सब

पहुँचे। वर और वधू वहाँ मिले। वर और वधू पक्षवालों का एक-दूसरे के साथ परिचय हुआ। वहाँ पर निर्मित मंगल - मंटप में सब विराजित हुए। ब्रह्म स्वयं *पुरोहित* बने। शुभ मुहूर्त में शास्त्र विधि से सब मांगलिक विधियाँ (होमादि) संपन्न की गयीं। शुभ मुहूर्त में *मंगल सूत्र* धारण हुआ। तत्पश्चात् अन्य वैवाहिक परंपराएँ चार दिन पर्यन्त धूमधाम से चलायी गयीं।

विवाह के बाद आकाशराजा की अनुमति से पद्मावती और श्रीनिवास श्रीलक्ष्मी के साथ *गरुड* पर आरूढ़ होकर वेङ्कटाद्रि पहुँचे। रास्ते भर में देव दुंदुभियाँ बजती रहीं। ब्रह्म की अगुवानी में *ऋषि, मुनि, देवता* समूह सब श्रीगिरि पहुँचे थे। श्रीनिवास पद्मावती सहित *मणि मंटप* में पधारे। श्रीलक्ष्मी और पद्मावती समेत श्रीनिवास *सिंहासन* पर विराजमान हुए।

आकाशराजा भी वधु पद्मावती देवी के साथ सहज परंपरा के अनुरूप चावल, दाल, शक्कर, फल आदि लेकर आये। वज्र, आभरण, मोतियाँ आदि को भी भेंट के रूप साथ लाकर पुत्री और दामाद को समर्पित किया। सभी भेंट उनकी ओहदा और वैभव के अनुरूप ही थीं। यह विवाह सामान्य विवाह नहीं बल्कि आकाशराजा सम्राट की पुत्री का था और श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान वर थे। वेङ्कटेश जी ने ससुर का उपयुक्त रूप से सम्मान किया और कन्यादान करने तथा अमूल्य पुरस्कार प्रदान करने के लिए धन्यवाद देते हुए कृतज्ञता ज्ञापित की। आकाशराजा ने उत्तर में दामाद से कहा - ''हे श्रीनिवास! आप तो भगवान हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आपका ससुर बन गया। अब मेरी कोई कामना रह नहीं गयी। एक ही इच्छा है हमेशा हमेशा मैं आपका *भक्त* बनकर ही रहूँ। आपका यह वरदान मेरे लिए अनमोल ही होगा। मुझे थोडी जगह चाहिए आपके हृदय में, बस। इससे मैं अपना ध्यान आप की ओर केन्द्रित रख सकता हूँ।'' भगवान ने अपने ससुर को तो वर दे ही दिया। वे संतुष्ट हुए। भगवान ने उन्हें भक्त के रूप में ही नहीं ससुर के रूप में भी समादृत किया।

ब्रह्म और अन्य अतिथि भगवान के विवाह के बाद वेङ्कटाद्रि आये थे। उनकी ओर भी श्रीनिवास ने ध्यान दिया। उनका समुचित रूप से सत्कार किया। फिर उन्हें अपने अपने स्थानों पर जाने की अनुमति भी दी। सब लोगों के जाने के बाद श्रीलक्ष्मी और पद्मावती के साथ श्रीनिवास ने विलास-विहार किया। इसके उपरांत वे मंदिर में पहुँचे।

(वराह पुराण अध्याय II, सं. 440 में वेङ्कटेश्वर के श्रीलक्ष्मी और पद्मावती के साथ रहने की गाथा है तो भविष्योत्तर पुराण में आकाशराजा से पुरस्कृत होकर *अगस्त्याश्रम* में रहने की बात है। वे वहाँ छः महीने रहें। क्योंकि विवाह के बाद छः महीने तक पर्वत शिखरों पर वर को चढना नहीं चाहिए। यह एक प्रथा है। उन्होंने इसके लिए प्रतिज्ञा ली थी। आजकल भी यह प्रथा इस प्रांत में है।)

* * *

अध्याय - 11

नैमिशारण्य से ऋषि-मुनियों का वेङ्कटाद्रि-आगमन

(वराह पुराण, भाग - 1, अ. 62)

नैमिशारण्य में एक समय अनेक *ऋषि* - मुनि इक्कट्ठे हुए थे और वह भी सूत महर्षि के आश्रम में। उनसे उन लोगों ने अनेक *पौराणिक* गाथाएँ सुनीं। उसी संदर्भ में सूत जी ने उन्हें श्वेत-वराह-कल्प *(श्वेत वराह स्वामी)* की गाथा सुनायी थी। साथ साथ उसी वृत्त से जुडे श्रीवेङ्कटेश्वर के अवतरण की गाथा भी विशेष रूप से उनको सुनायी गयी। इसी सिलसिले में वेङ्कटाचल पर्वत, वहाँ के पवित्र *तीर्थ* आदि के महत्व का विवरण सूत जी ने ऋषि- मुनियों को दिया। वैसे तो सूत जी ख्यात *पौराणिक* थे। पौराणिक गाथाओं के अच्छे ज्ञाता थे। उत्सुकता से श्रीवेङ्कटाचल और श्रीवेङ्कटेश्वर की महानता की जानकारी प्राप्त करने के बाद उन ऋषियों ने पवित्र वेङ्कटाचल क्षेत्र दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की। साथ साथ श्रीवेङ्कटेश्वर की अर्चना पद्धति और आराधना की प्रविधि के बारे में विस्तार से समझाने की प्रार्थना ऋषियों ने सूत जी से की। उनके उत्साह और पवित्र कामना का आदर करते हुए सूत जी ने कहा - ''हे ऋषि - मुनियों! आपको अष्टोत्तर शत नाम मंत्रों से उनका नाम स्मरण करना है। भगवान के एक सौ आठ नामों का नित्य स्मरण भक्त के लिए आवश्यक है। भगवान *तुलसी* माला और तुलसीदल पसंद करते हैं। फूल भी उन्हें प्रिय हैं। उपयुक्त रूप में इनसे पूजा कीजिए। वेङ्कटाचल पर्वत श्रेणियों को देखते ही आपको नमन करना है। पहले *कपिलेश्वर तीर्थ* में पवित्र स्नान करना है। कपिलेश्वर स्वामी वेङ्कटाचल के पद तल में विराजमान हैं। इसके बाद पर्वत पर अनेक तीर्थ हैं जो रास्ते में ही पडते हैं। उन तीर्थों में भी स्नान कीजिए। अंत में भगवान के मंदिर के पास ही स्वामी-पुष्करिणी है। पहले स्वामी-पुष्करिणी के पवित्र-स्नान के पश्चात् उसी पुष्करिणी तट पर विलसित भू-वराह स्वामी का दर्शन कीजिए। पूजा कीजिए। इसके बाद ही आपको श्रीलक्ष्मी और भूदेवी समेत श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान का दर्शन करना और उनके *'अष्टोत्तरनाम'* के साथ पूजादि सेवाएँ करनी हैं। वैसे भगवान का नाम स्मरण मत भूलिएगा।''

सूत जी से आवश्यक सूचनाएँ और मार्ग दर्शन लेकर *महामुनियों* ने वेङ्कटाचल की यात्रा आरंभ की। नैमिशारण्य से निकल कर गंगा, गोदावरी, कृष्णा तथा अन्य पवित्र नदियों में पवित्र स्नान करते हुए वे वेङ्कटाचल पहुँचे। वेङ्कटाद्रि के दर्शन मात्र से उनमें आनंद की लहर उठी। नाम कीर्तन के साथ नाचे - गाये। *कपिलतीर्थम्* में पवित्र स्नान किया। कपिलेश्वर का दर्शन किया। स्वामी - पुष्करिणी में स्नात होकर भू-वराह की आराधना संपन्न की। अंततोगत्वा श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की सन्निधि में पहुँचे। उनके सामने विनम्र होकर प्रार्थना की - ''हे हरि! आपकी दिव्य प्रभा का वर्णन करना हम जैसों की शक्ति

से बाहर की बात है। आपके गुणों को तो हम किस सीमा तक जान सकते हैं? अद्‌भुत गुण सामान्य की बुद्धि की पहचान से परे ही ठहरते हैं न! *धर्म* की स्थापना के लिए आप त्रिविक्रम बने थे। वामन के रूप में अवतरित होकर आपने तीनों लोकों को नाप कर ही त्रिविक्रम हुए हैं न! आप को शत - शत नमन! हे प्रभु! आप इस *विश्व* के विधाता हैं। समस्त विश्व तो आपकी सृष्टि में एक चौथाई मात्र है। *व्योमं* अर्थात् जल और आकाश तो आपकी सृष्टि के तीन बटा चार अंश ही है। आप *परब्रह्म* हैं। *वेदों* के कर्ता आप हैं। चतुर वर्ण आप से सृजित हैं। अग्नि, सूर्य और चन्द्र आदि का अस्तित्व ही आप के कारण है। हे प्रभु! आप विश्वात्मा हैं, विश्व स्वरूपा हैं। नाम, रूप और गुण सब अगणित हैं। वेद आपकी विभूति का वर्णन कर बाद में ''नेति नेति'' कहते हैं। उनका स्वर यही बताता है कि भगवन इतना ही, इतना ही नहीं और भी हैं!'' इस प्रकार भगवान की स्तुति कर वे उनके चरणों में प्रणमित हुए। अष्टोत्तर शतनामों के साथ पूजादि कार्य संपन्न किये।

ऋषि - *मुनियों* की श्रद्धा और भक्ति से भगवान वेङ्कटेश्वर अत्यंत प्रसन्न हुए। उनसे कहा - ''हे मुनियों! जब आप सब मिलकर सूत जी से *वेङ्कटाचल माहात्म्यम्* सुन रहे थे, तभी मैं ने उसका फल आपको प्रदान कर दिया था। वह फल आपको दीर्घकालीन तपस्या से प्राप्त होनेवाले फल से अधिक है। अब आप जो भी चाहेंगे उसे प्रदान करने के लिए तैयार हूँ। जो कोई भी सुदूर प्रान्त में रहता है, अगर वह *वेङ्कटाचल माहात्म्यम्* का श्रवण करता है तो उसे मैं संपूर्ण फल प्रदान करता हूँ। उसकी कामनाएँ अवश्य पूरी हो जाती हैं। जो *कन्या मास* (सितंबर-अक्तूबर जब उनके ब्रह्मोत्सव मनाये जाते हैं) में संपन्न होनेवाले *ब्रह्मोत्सवों* में भाग लेते हैं उनको और अधिक फल प्रदान करता हूँ। इस पृथ्वी पर सब कुछ भोगने के पश्चात् मैं उन्हें मोक्ष भी प्रदान करता हूँ।''

भगवान वेङ्कटेश्वर के वैभव को देखकर हतप्रभ हुए ऋषि - *मुनियों* ने वेङ्कटाचल पर ही पाँच वर्ष रहकर तपस्या की। अनेक तीर्थों में पुण्य स्नान किये। धार्मिक कार्यों का निर्वाह किया। अन्त में *नैमिशारण्य* की ओर चले। वहाँ पाँच वर्षों तक ठहरे। सूत महर्षि से मिले। भगवान, पवित्र पर्वत, *तीर्थ* आदि के बारे में उन्होंने पहले जो कुछ कहा था उस सब की अनुभूति पाकर वे तृप्त हुए और भगवान की लीलाओं को उनके मुँह से सुनकर उनका *दर्शन* किया। इसीलिए सूत जी को पवित्र मन से धन्यवाद दिया। उनसे पुनः आशीर्वाद लेकर अपने-अपने आश्रमों में लौटे और भगवान की तपस्या में लीन हो गये।

* * *

अध्याय - 12

वेङ्कटाचल पर श्रीवेङ्कटेश्वर का मंदिर

श्रीवेङ्कटेश्वर *दिव्य-आनंद-निलय-विमान* में रहकर भक्तों को *दर्शन* प्रदान कर रहे हैं।

विष्णु भगवान जब वैकुण्ठ से इस पृथ्वी पर आये थे, तब उनके लिए अपना कोई वास स्थान नहीं था। उनकी न माता थी - न ही पिता थे, न कोई पुत्र - पुत्री, और न कोई भाई - बन्धु। ब्रह्म ने वेङ्कटाद्रि पर एक इमली का वृक्ष सृजित किया तथा उसके नीचे एक वल्मीक (बिल)। ये *स्वामी पुष्करिणी* (पृ.27) की दक्षिण दिशा में और उसके तट पर थे। विष्णु उस वल्मीक में दस हजार वर्ष तक रहे। उस समय उन्होंने किसी को भी *दर्शन* नहीं दिया। यहाँ तक कि उन्हें कोई देख भी न सके। लेकिन उस बिल से प्रकाश तो विकीर्ण हो रहा था। इस प्रकार कुछ समय बीता। *आठवें युगांतर* (पृ. 27) में *द्वापर युग* बीता और कलियुग का आंरभ हो गया। कलियुग में ब्रह्म, कपिला गाय बनकर और शिव उसका बछडा बनकर उनको हर दिन *दूध* (पृ.29) देने पृथ्वी पर अवतरित हुए। कपिला गाय हर दिन बिल में दूध की धारा छोडकर विष्णु की भूख मिटाती थी। *कलियुग* के प्रभाव से ही भूख लगती थी।

पुराणों में कहा गया है कि एक *कृत युग* में, वैवश्वत मनु के शासन काल में, वायुदेव ने प्रभु श्रीनिवास की तपस्या की थी। तपस्या से प्रसन्न होकर वायुदेव को भगवान ने एक वर दिया और कहा कि वे श्रीदेवी और भूदेवी के साथ वेङ्कटाद्रि पर स्वामी - पुष्करिणी के दक्षिणी तट पर बसेंगे। उनका *विमान* किसी से दर्शित नहीं होगा। इस रूप में वे *कलियुगान्त* तक रहेंगे। यह वायुदेव को दिया गया वरदान था। शिव के पुत्र स्कंद (कुमार स्वामी) (पृ.32) ने भी स्वामी की तपस्या यहाँ की थी। बाद में अगस्त्य महर्षि की तपस्या से प्रसन्न होकर वेङ्कटेश्वर स्वामी ने उनको एक वरदान दिया। उसके अनुसार भगवान मानवों को अपना दर्शन प्रदान करने के लिए राज़ी हो गये। लेकिन वैकुण्ठ से पृथ्वी पर आया *दिव्य विमान* अदृश्य रहेगा। भगवान ने उस समय कहा था कि एक और *भक्त* मेरे लिए मंदिर और विमान का निर्माण करेगा कलियुग में (पृ.49)। वराह स्वामी द्वारा पृथ्वी का उद्धार हुआ। राक्षस हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को *पाताल* में पहुँचा दिया था। पृथ्वी के उद्धार के बाद वैकुण्ठ का *क्रीडाचल* भूमि पर लाया गया। उसे (विमान) को वेङ्कटाचल पर बसाया भी गया। तब से श्रीनिवास स्वामी पुष्करिणी के तट पर रहने लगे। तट की दक्षिणी दिशा में मंदिर और विमान भी बनाये गये। वहीं श्रीनिवास का वास है।

विष्णु ने विमान में ही से ब्रह्म, ऋषि-मुनियों, दशरथ आदि को दर्शन दिया था। स्वामी - पुष्करिणी तट पर ही ब्रह्म ने श्रीनिवास के उत्सव मानये थे जो आगे *ब्रह्मोत्सवों* के नाम से हर वर्ष मनाये जा रहे

हैं। स्वामी ने यहीं पर राजा शंखन को दर्शन देकर उन्हें पुनः राज्य सिद्धि का वर प्रदान किया था। आत्माराम नामक ब्राह्मण का उद्धार भी यहीं से संपन्न हुआ है। निषाध वसु इसी स्वामी पुष्करिणी के तट पर भगवान का दर्शन पाकर मुक्त हुआ। वसु तो भगवान को श्यामकान्न शहद मिलाकर हर दिन अर्पित करता था। रंगदास को इमली वृक्ष के नीचे के बिल से दर्शन दिया था स्वामी ने। रंगदास ने खुरदुरे पत्थरों से स्वामी के लिए चारों ओर दीवारें बनायी थीं। प्राकार और विमान का निर्माण राजा तोंडमान ने कराया था। असल में रंगदास ने ही अगले जन्म में तोंडमान राजा का जन्म लिया था। रंगदास और निषाध वसु ने मिलकर ही श्रीनिवास और श्रीवराह स्वामी की स्वयंभू मूर्तियों को वल्मीक में (बिल में) पहले पाये थे। पहले का मंदिर *प्राकार* उन्हीं के समय में बना थ। अगले जन्म में रंगदास ने ही राजा तोंडमान बनकर भगवान के आदेशानुसार ही मंदिर आदि का निर्माण कराया था।

श्रीवराह ने भूदेवी को श्रीवेङ्कटेश्वर की गाथा बतायी थी। उसके अनुसार अट्ठाईस चतुर्युगों के बाद (यानी कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग मिलकर एक *चतुर्युग* बनता है। ऐसे 28 चतुर्युगों के बाद) अंतिम *द्वापर युग* में *महाभारत* युद्ध चला था। कलियुग का आरंभ महाभारत युद्ध की समाप्ति से होता है। *कलियुगारंभ* में भी शक, शूद्र आदि राजवंशों का समय बीत गया। उस समय के अंतराल में कोई भी श्रीवेङ्कटेश्वर को पहचान नहीं सका। उनके निवास तक पहुँच नहीं पाये। तब जाकर चंद्रवंश में राजा मित्रवर्मा का जन्म हुआ। वे नारायणपुर को राजधानी बनाकर तूणीरमंडल पर राज्य करते थे। आकाशराजा उनके पुत्र ही थे।

आकाशराजा की पोषिता पुत्री पद्मिनी थी। पद्मावती से श्रीनिवास का मिलन एक बगीचे में हुआ। तभी उन्होंने विरह तप्त होकर *मणिमंटप* में पहली बार प्रवेश किया। वहाँ शय्या पर प्रभु लेटे थे। इससे स्पष्ट है कि आकाशराजा के समय में ही भगवान का निवास मंदिर पहली बार बना है। वह भी पूर्णरूप से नहीं, केवल आंशिक रूप में, उस समय कुछ कमरे ही बने होंगे।

ऐतिहासक दृष्टि से देखा जाय तो सबसे पहले *मणिमंटप* निर्माण विजयनगर साम्राज्य के प्रधान मंत्री अमात्यशेखर मल्लना के द्वारा हुआ है। ये मल्लना ही श्रीमाधवदास हैं। ये चंद्रगिरि में रहते थे। (चंद्रगिरि किला तिरुपति के पास ही है। वह विजयनगर साम्राज्य की तीसरी राजधानी थी)। उनका समय शक संवत्सर 1339 था (सन् 1417 का समय है।) उन्होंने ही *आनंद निलय विमान* का कुछ कार्य संपन्न किया है। इसके कुछ संकेत भी मिलते हैं। (तिरुपति प्राच्य लिखित भाण्डागार में मिलनेवाले एक लेख से विदित होता है - खं. I, क्रम संख्या 196 तथा 198। इससे यह स्पष्ट है कि आकाशराजा द्वारा निर्मित *मणि - मण्टप* मंदिर के अंदर का एक *मंटप* ही हो सकता है। हो सकता है कि यह आज *द्वारपालकों* के पीछे विलसित *मंटप* ही हो। इसे आज *स्तपन मंटप* (*स्नपन* मंटप) कहते हैं।

चाहे कुछ भी हो, श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए लिजंदरी तोंडमान के द्वारा मणिमण्टप और विमान का निर्माण सबसे पहले कराया गया है। उनकी ऐतिहासिकता और उनके द्वारा निर्मित मंदिर के अंशों के संबन्ध में स्पष्ट कहा नहीं जा सकता। परन्तु इतना तो है कि भारत के दक्षिण में निर्मित मंदिर आदि *द्रविडियन* और *पल्लव* शिल्पकला से युक्त है।

मूलतः श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी की मूल विराट - मूर्ति की प्रतिष्ठा परम पावन गर्भालय में हुई है। वह आलय बारह फुट की चतुर्भुजी है। उसके सामने उसी प्रकार का एक उपकक्ष है। वह भगवान का *शयन मंटप* भी है। पहले भक्त वहीं से भगवान का दर्शन पाते थे। एक *प्रदक्षिणा पथ* भी है। इसकी चौडाई 5 फुट की है दक्षिण दिशा में। उत्तर दिशा में लगभग 17 फुट की है। मूल विराट के *अभिषेक* जल को ग्रहण करनेवाला एक कटाह भी वहाँ है। इसमें इक्कट्ठा अभिषेक जल एक छोटी नलिया से जाता है। उचित रूप में आजकल इसमें कुछ परिवर्तन हुए हैं। प्राचीन भारतीय *शिल्प शास्त्र* के अनुसार *गर्भगृह* (गर्भालय) और *अर्द्ध मण्टप* का निर्माण किया गया है। इनमें सीमित परिमाण में कांति मिलती है। भगवान के दर्शन से भक्तों के हृदय में आध्यात्मिक भावनाओं को यह प्रेरित करता है। कम कांति या सीमत प्रकाश में उज्वल मूल विराट का दर्शन असीम आत्मतोष देनेवाला ही है। दर्शन मात्र से भक्ति, गौरव, भय, आश्चर्य, दैवत्व आदि भावनाओं का संचार सहज ही भक्त के मन में हो जाता है। वहाँ भक्त को प्रशांत वातावरण मिल जाता है। घृत दीपों की मंद मंद कांतियों में भगवान का दर्शन भक्त की आत्मा को विकसित और आकृष्ट करने के उद्देश्य से ही योजना बद्ध रूप में व्यवस्थित है। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर का और प्रधान शिखर *(गोपुर)* का दूर से दर्शन भी इसी प्रकार की अनुभूति भक्त को देती है। *महामणि मण्टप* का निर्माण भी इसी प्रकार हुआ है। वहाँ भी कुछ अंधियारा और उसमें धीमी कांतियों के बीच भगवान को देख पाने की व्यवस्था है। यहीं पास में घी के दीपों की कांति से विलसित *मुख मंण्टप* है। यहाँ पर भगवान के मूल्यवान आभरणों को संदूकों में सुरक्षित रखा जाता है। यह सब ईसा के बाद 13 वीं शती की व्यवस्था थी। मंदिर से जुडा एक प्रवेश मार्ग है जो *''मुक्कोटि - एकादशी''* को ही खुलता है। इसको दूसरे ही दिन बन्द किया जाता है। भक्तों का विश्वास है कि उस दिन को उस मार्ग से भगवान की *प्रदक्षिणम् (परिक्रमा)* करना बहुत ही महत्वपूर्ण है एवं वह वैकुण्ठ प्राप्ति का मार्ग है। यह मार्ग बन्द होने के कारण शायद *अभिषेक तीर्थ* एक कटाह में (पत्थर का बना) संचित होता है और वहाँ से बाहर इकट्ठा होने पर कटाह तीर्थ को भक्त स्वीकारते हैं। यह आजकल चालू नहीं है। भगवान का *अभिषेक तीर्थ* अत्यंत पवित्र है।

मुख - मण्टप से जुडकर ही *तिरुमहामणिमण्टप* भी है। इसका निर्माण मल्लना अमात्यशेखर ने सन् 1417 में कराया था। अन्य दो प्रकारों के निर्माण संबन्धी सूचनाएँ कुछ अप्राप्य हैं। इनका निर्माण कुछ शक्तिशाली और संपन्न राजाओं या भक्त अधिकारियों द्वारा किया गया होगा।

श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए एक मंदिर होने की बात उनके अपने मंदिर से आखेट के लिए निकलने की घटना के वर्णन में मिलती है। वे पद्मावती से मिलकर अपने मंदिर में ही वापस आये। इसका उल्लेख तो वराह पुराण में मिलता है लेकिन उस मंदिर के निर्माता का उल्लेख उसमें नहीं है। भविष्योत्तर पुराण में स्पष्ट कहा गया है कि स्वयं भगवान ने तोंडमान राजा को मंदिर निर्माण का आदेश दिया था (अ. 13, श्लो. 26-39)। तोंडमान आकाशराजा के छोटे भाई है। तोंडमान से भगवान ने कहा था कि मेरा कोई भवन नहीं है। उसका निर्माण कर उन्हें समर्पित करना तोंडमान का काम है। *भवन* निर्माण के बाद ही श्रीवेङ्कटेश्वर पद्मावती सहित *अगस्त्याश्रम* से वेङ्कटाद्रि गये। स्वामी पुष्करिणी के पास के स्थल निर्देश के साथ श्रीनिवास ने ही अपने लिए दो शिखरों *(गोपुरों)* और तीन *प्राकारों* सहित मंदिर निर्माण की बात कही थी। *ध्वजस्तंभ* निर्माण का भी उल्लेख है। सात द्वार, *आस्थान मंडप, याग मंटप, गो-शाला,* घुडसाल, हाथियों के लिए शाला, फूल मंडप, रसोई घर आदि से युक्त महा मंदिर का निर्माण किया गया। इनके साथ पेय-जल का कुँआ भी है। इस प्रकार भवन निर्माण की योजना स्वयं भगवान की ही कही जा सकती है।

राजा तोंडमान ने भगवान के आदेश का अक्षरशः पालन किया है। उन्होंने सुंदर अलंकृत *विमान* और गरुड मूर्ति का निर्माण किया। सुवर्ण कलशों की स्थापना की। एक योजन का पर्वत चढने के लिए सीढियाँ बनायीं। रास्ते पर यात्रियों को आराम देनेवाले हर *योजना* (आठ से दस मील) *मण्टपों* का निर्माण किया। इतना कार्य संपन्न होने के बाद ही तोंडमान ने स्वामी को वेङ्कटाचल पर निर्मित मंदिर में प्रवेश करने की प्रार्थना की थी। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान तब पद्मावती देवी समेत वेङ्कटाचल पधारे। उनके साथ इन्द्र, *देवतागण* और ऋषि - मुनि समूह भी था। *वेद विद* भी थे।

बस, श्रीनिवास गर्भालय में सुंदर दिव्य विमान तले आनंद के साथ रहने लगे। यह विमान आनंद - निलय - विमान कहलाने लगा। वह भक्तों को अमित आनंद प्रदाता है (श्लो. 81)। श्रीवेङ्कटेश्वर के दो हाथों में शंख और चक्र विलसित हैं और दो हाथों में से दक्षिण हस्त उनके पादपद्मों की ओर इंगित करता है तो वाम हस्त कटि पर धरा है। यह कटि प्रदेश का वाम हस्त संकेत देता है कि भक्तों के लिए संसार सागर कटि तक ही सीमित है। अर्थात् भक्त के लिए जगत का जीवन एक सागर है तो उस सागर में वह डूबेगा नहीं। वह मात्र कटि तक की गहराई ही में रहेगा। अर्थात् उसे पार करना इतना दुर्भर नहीं रहेगा। भक्त भगवान के चरण कमलों में आत्म संतोष प्राप्त करेगा (श्लो. 82-85)। भविष्योत्तर पुराण का यह अंश स्पष्ट कहता है कि मंदिर के निर्माण कर्ता राजा तोंडमान ही थे।

''मुक्कोटि प्रदक्षिणम्'' (प्राकारम्) की दीवारों के कुछ पत्थरों पर लेख हैं। मंदिर के अंदर से मिले कुछ शिलालेख हैं। उनमें कुछ भूपालों के उल्लेख मिलते हैं जिन्होंने मंदिर के निर्माण और पुनरुद्धार कार्यों

में भक्ति तथा प्रपत्तियों के साथ भाग लिया था। इनमें भूपाल श्रीमान विजयादित्य प्रथम उल्लेखनीय हैं। संभव है कि ये ही बाण राजा विजयादित्य महाबली बाणराय हो। ये पल्लव राजा विजयदंति विक्रमवर्मन (सन् 779 - 830) के सामंत राजा थे (ति.ति.दे. प्राचीन लेख, जिल्द-1, क्र.सं. 3, पृ. 10)। इसी क्रम में कोप्पात्र महेन्द्र पन्मूर (महेंद्रवर्मा I, पल्लव सम्राट, सन् 600-630); राजराज चोल ने, जो अपनी सोलह वर्ष की आयु में ही राज्य सिंहासन पर बैठे थे, भगवान के माथे पर शोभायमान स्वर्ण *पट्टम* (पट्टिका) बनाकर भेंट की; दोवागढ रानी परांतकदेवी अम्मन, जो परांतक II सुंदर चोल की पत्नी है (शिला लेख क्र.सं.14); उलगमादेवी, राजराज I की रानी (क्र.स.16); राजेंद्रचोल, राज राज I (सं.19) के पुत्र और उत्तराधिकारी है; वीर राजेन्द्र देव I (क्र.सं 22); कुलोत्तुंग चोल - I और उनकी महारानी अवनिमुलूदुडयाल (क्र.सं. 26-32); मधुरांतक पोट्टपि चोल अल्लुम तिरुक्कालत्ति देव (क्र.सं. 42), जटावर्मन सुंदर पाड्य I (क्रम. सं. 52, 54, 55) और विजय गंडगोपाल (क्र.सं. 67, 68, 69, 72, 74, 77, 79) हैं।

उक्त सभी 7 वीं शती से 13 वीं शती तक के इस प्रान्त के राजा थे। इनके विवरणों से संबन्धित शिलालेख *''मुक्कोटि प्रदक्षिणम्''* के दीवारों पर और कुछ स्थानांतरित फलकों में हैं। *मुक्कोटि प्रदक्षिणा* प्राकार एकाधिक बार पुनर्निर्मित या पुनरुद्धरित है। इसलिए भी शायद कुछ फलक प्राकार से अलग हो मिले हैं। ये *द्वितीय प्राकार* में एक जगह सुरक्षित मिले हैं। इनमें कुछ तो *विमान प्रदक्षिणा* के सामनेवाले *गोपुर* के सामने *ध्वजस्तंभ* के पास भी प्राप्त हुए हैं। कुछ लेख तो बाह्य *प्राकार* पर भी हैं। मंदिर के मुखद्वार (महाद्वार) से जुडा प्राकार ही बाह्य प्राकार है।

इससे स्पष्ट होता है कि *'मुक्कोटि - प्रदक्षिणम्'* के *प्राकार* की दीवारें 13 वीं शताब्दी तक सुरक्षित थीं। उनपर राजराज चोल III; जटावर्मन सुंदर पाण्ड्य I; वीर नरसिंहदेव यादवराय; विजयगण्ड गोपाल और अन्य शासकों ने 13 वीं शती में लेख खुदवाये। इन शिलालेखों का मूल्य न जानने के कारण और बिना सही योजना के पुनरुद्धार के प्रयत्नों में शिलालेखों पर उत्खचित मूल्यवान सामग्री नष्ट हो गयी। वीर नरसिंह यादवराय ने 13 वीं सदी में अपने *स्थानत्तार* (मैनेजर) तिरुप्पुल्लणिदासर के निवेदन पर अपने शासन काल के 40 वें वर्ष में (सन् 1245 के आसपास), पुनरुद्धार की अनुमति दी थी। पुनरुद्धार की पक्रिया में जो भी लेख शिथिल हो गये थे उनका पुनर्लेखन भी करने के आदेश थे। उनको अपनी अपनी पूर्व जगहों पर रखने का भी निर्णय था। चार चोल राजाओं के लेख (क्र.सं. 8, 9, 14, 19 और 88, पृष्ठ 12, 16, 22, 28 और 119 जो तिरुपति देवस्थानम् के संग्रह मूल वाल्यूम् I हैं) इसके प्रमाण हैं। राजशासन की विज्ञता के लिए प्रमाण स्वरूप भी हैं। (ति.दे. ऐपिग्राफिकल रिपोर्ट का पृष्ठ 2)।

द्वितीय प्राकार, जो *विमान प्रदक्षिणा* की चारों ओर है, उसकी दोनों ओर यानी बाहर और अंदर की ओर *(संपंगि प्रदक्षिणम्)* अधिक संख्या में शिलालेख हैं। ये प्रथम विजयनगर राजा सालुव नरसिंह

के समय के हैं। कुछ श्रीकृष्णदेव राय और अच्युतदेवराय के समय के भी इनमें हैं। ये राजा *संगम वंश* के थे। अधिक लेख सदाशिव राय और आरवीडु राजाओं के हैं। आरवीडु राजाओं में प्रधानतः वेङ्कटपतिराय का नाम उल्लेखनीय हैं। ये लेख तीसरे *प्राकार* के दीवारों की दोनों ओर देखे जा सकते हैं।

प्रथम दो उन्नत *प्राकारों* का निर्माण यादव राजाओं के समय में प्रधानतः संपन्न हुआ था। इनमें प्रथम उल्लेखनीय राजा वीर नरसिंह यादवराय हैं। ये इस प्रान्त के शक्तिशाली और प्रभावशाली राजा थे। इन के आराध्य देव श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान ही हैं। श्रीवेङ्कटेश्वर के प्रति उनकी प्रतिबद्धता ने उनसे पहले के पुरालेखों को पुनः रचित कराने के लिए प्रेरित किया है। इन लोगों ने अपने पूर्व शासक और विजयनगर राजवंश के लेखों को भी इसी प्रकार सुरक्षित रखा।

लगता है कि कुछ समय बाद पूर्व दिशा में इन दोनों *प्रकारों* को कुछ विस्तृत किया गया है। शायद यह कार्य मुखद्वार या महाद्वार पर शिखर *(गोपुर)* निर्माण के संदर्भ में हुआ होगा। उस समय पूर्व लिखित लेख, जो प्रधान *प्राकार* के द्वार के अगल - बगल में थे, कुछ को निकालना पडा हो। उस संदर्भ में उल्लिखित लेखों को कुछ क्षति पहुँची होगी।

विमान प्रदक्षिणा के पास के द्वितीय *प्राकार* से सटकर ही मंदिर की पाकशाला, लंबा *मंटप* है। *मंटप* के साथ ही जुडी जुई है *यागशाला।* साथ - साथ उसकी पश्चिम दिशा में कुछ अन्य कमरे भी हैं। *कल्याण-मण्टप**, हरे खम्भों से युक्त है। ये चार खंभे बहुत ही सुंदर, कुछ हल्के ताडन से सुरीले संगीत को निसृत करनेवाले हैं। उत्तरी दिशा के अंत में श्रीवेङ्कटेश्वर की उत्सव मूर्तियों को रखने का कमरा भी है। ये मूर्तियाँ उस समय *ब्रह्मोत्सवों, दीपावली* उत्सव आदि के समय, बाहर लायी जाती थीं। फिर अभिषेकम तथा *नैवेद्य (प्रसाद, पण्यारम्)* के पश्चात् पुनः वहीं सुरक्षित रखी जाती थी। *आस्थानम्* और अन्य पारंपरिक उत्सवों में भी इसी प्रकार संपन्न होता है। कुछ विशेष पर्व तथा उच्च अधिकारियों के समक्ष होनेवाले उत्सव *'तिरुमामणिमंटप'* में भी चलते थे। उन समयों में श्रीराम और अन्य परिवार देवताओं की मूर्तियाँ यागशाला में रखी जाती थीं। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की *मूल विराट मूर्ति* के पास ही श्री *भोग - मूर्ति* और श्री *उग्र मूर्ति* गर्भालय में ही रहती हैं।

[पाकशाला के मुखद्वार के पास ही कुछ हठ कर वकुलमालिका की मूर्ति है। ये श्रीवेङ्कटेश्वर की पोषिता माता है। पहले ये वराह स्वामी के पास रहती थीं। वराह स्वामी ने ही वकुलमालिका को श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की सेवा में नियुक्त किया था। उपयुक्त रूप में उनकी मूर्ति पाकशाला में स्थापित है। पूर्व जन्म में वकुलमालिका ही यशोदा माता थीं। श्रीकृष्णावतार में उन्होंने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का आनंद लिया था, अन्य कार्य नहीं देखे। इसीलिए आगे के जन्म में वे वेङ्कटेश्वर की पोषिता माता पुनः बनी हैं।]

[*इस *मंटप* में कुछ वर्ष पहले तक श्रीमलयप्पस्वामी वेङ्कटेश्वर का *कल्याणोत्सव* मनाया जाता था। श्रीदेवी और भूदेवी के साथ भक्ति प्रपत्ति सहित भक्तों की ओर से संपन्न होनेवाला उत्सव ही *'कल्याणोत्सव'* है। यहाँ संपन्न होने के कारण ही इसे 'कल्याण - मंटप' कहा गया है। आजकल कल्याणोत्सव उसकी दक्षिण दिशा में स्थित *'रंगनायकुल मंटप'* में संपन्न किया जा रहा है।]

इसी प्रकार कुछ कमरे और ऊँचे ऊँचे मंच पश्चिम और उत्तर दिशाओं में द्वितीय प्राकार से सटकर निर्मित किये गये हैं। उत्तर दिशा में *विमान प्रदक्षिणम्* के पास ही विविध उपयोगों को दृष्टि में रखकर कमरों का निर्माण हुआ है। प्रधानतः वाहनों (गरुड, गज, अश्व, तिरुच्चि, आदि) की सुरक्षा के लिए; पुस्तकें, दस्तावेजों को रखने के लिए; रिकार्ड्स को रखने के लिए; प्रसाद *(पण्यारम्)* भण्डागार (लड्डू, वडा आदि को रखने के लिए); सामग्री रखने के लिए (घी, आदि); मूर्तियों की सजावट के लिए काम में आनेवाले पदार्थ, वस्त्र *(सभा अर)* आदि को रखने के लिए; चंदन घिसने के लिए; कर्पूर आदि-आदि को पीस कर पूजादि में उपयोग करने के लिए; आदि आदि को दृष्टि में रखकर पश्चिम और उत्तर प्राकार के साथ अनेक कमरों का निर्माण किया गया है। इस प्राकार के साथ वैष्णव आचार्य रामानुज और श्री योग नरसिंह स्वामी के मंदिर भी हैं। इसी प्राकार के साथ अन्नमाचार्य के संकीर्तनों को सुरक्षित रखने का एक कक्ष भी है। इसमें अन्नमाचार्य के लगभग 3000 ताम्रपत्रों में लिखित 18,000 *संकीर्तन* (गीत/पद) सुरक्षित मिले हैं। उनके साथ - साथ ताल्लपाक अन्नमाचार्य के पुत्र पेद्द तिरुमलाचार्य और पौत्र चिन्न तिरुमलायार्च के पद भी प्राप्त हुए हैं। वैसे तो ताल्लपाक के वंश ने भगवान के लिए अपने को समर्पित किया है। उनके सब गीत भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर पर ही हैं। ''अन्नमाचार्य के जीवन चरित'' में उनके पौत्र चिन्न तिरुमलाचार्य ने स्पष्ट घोषित किया है कि अन्नमाचार्य ने 32,000 *संकीर्तन (पद)* लिखकर भगवान को अर्पित किया है (देवस्थानम् एपिग्राफिकल रिपोर्ट, पृ - 2, 279-302)। ये तिरुमल मंदिर के *संकीर्तनाचार्य* हैं। अब भी इनकी परंपरा चल रही है।

जिस प्रकार ''संपंगि प्राकारम्'' में अनेक मूल्यवान स्थल और कमरे हैं उसी प्रकार दोनों बडे *प्राकारों* की दीवारों के बीच मुक्त *मंटप* में कुछ ऊँचे आसन पर विजयनगर सम्राट श्रीकृष्णदेवराय और उनकी दो रानियों की ताम्र मूर्तियाँ हैं। तिरुमल देवी और चिन्नादेवी श्रीकृष्णदेवराय की रानियाँ हैं। उसी प्राकार के दक्षिण भाग में आरवीडु वंश के राजा वेङ्कटपति राय महाराज-1 तथा अच्युतराय महाराज एवं उनकी पत्नी वरदाजी अम्मन की ताम्र मूर्तियाँ भी हैं। श्रीकृष्णदेवराय, तिरुमलदेवी, चिन्नदेवी और वेङ्कटपतिदेव के नाम ताम्र मूर्ति की भुजाओं पर अंकित हैं। लेकिन अच्युतराय और वरदाजी - अम्मन के नाम इस प्रकार अंकित नहीं हैं। इसीलिए पुरालेखविद् (एपिग्राफिस्ट) ने अनुमान लगाया है कि वे वेङ्कटपति देवराय के पिताजी और माताजी से संबंधित हैं। उनके नाम हैं - तिरुमल देवराय और

वेङ्कटांबा। (आर्कियलाजिकल सर्वे रिपोर्ट-1911-1912, 189, पादटिप्पणी 3 (फुटनोट))। मैं ने उसी निर्णय को तिरुपति देवस्थानम् एपिग्राफिकल रिपोर्ट में दी है (फोटोग्राफ्स संख्या. 53)। आश्चर्य की बात यह है कि प्राचीन *''दिट्टम्''* में (एक प्रकार का लिखित आदेश) इन मूर्तियों को *निवेदन (नैवेद्य)* चढाने की बात स्पष्ट उल्लिखित है। इस ''दिट्टम्'' में तिरुमलराय की मूर्ति के होने की बात है लेकिन मूर्ति अप्राप्य है। इसके बाद मैं ने अपनी रिपोर्ट में संशोधन किया है। उसकी सूचना दी है। लेकिन रिपोर्ट में परिवर्तन अंकित नहीं है। अगर देवस्थानम् अधिकारी कुछ ध्यान देकर इन्हें सुधारने का प्रयास करेंगे तो अच्छा होगा।

[श्रीकृष्णदेवराय और उनकी रानियाँ भक्ति प्रदर्शित करती हुई, हाथ जोडकर भगवान की वंदना करती मिलती हैं। इसका उल्लेख 'रायवाचकम्' में भी मिलता है। 'रायवाचकम्' राज परिवार पर लिखी गयी 'वचनिका' है। (मद्रास विश्वविद्यालय के प्रकाशन 'सोर्सेस ऑफ विजयनगर हिस्टरी' में भी इसके साक्ष्य मिलते हैं।) ये प्रतिमा रूप भगवान के प्रति श्रीकृष्णदेवराय की भक्ति के सूचक हैं। यह भी सूचित है कि श्रीवेङ्कटेश्वर की उत्सव मूर्तियाँ उनके सामने लायी जाती हैं ताकि भगवान उनको आशीर्वाद दें। मूर्तियों की स्थापना 2 जनवरी, 1517 को हुई है। उसी दिन पर या दो दिन पहले श्रीकृष्णदेवराय ने भगवान के सामने अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये होंगे। यहीं से कृष्णदेवराय ने अपनी कुंभकोणम् की तीर्थ यात्रा आरंभ की थी। कुंभकोणम् में महामह उत्सव (मामगम् उत्सव) में भाग लेने वे गये थे। यह उत्सव 6 फरवरी, 1517 को मनाया गया है। (तिरुपति देवस्थानम् एपिग्राफिकल रिपोर्ट, पृ 186, ०नोट-2)। ये तीनों मूर्तियाँ स्वयं कृष्णदेवराय के पर्यवेक्षण में स्थापित हुई हैं, इसलिए यह भी संभव है कि मूर्तियों के सामनेवाले *मंटप* का भी शुभारंभ उन्होंने ही किया हो। इस *रंगमंटप* में श्रीरंगम् के श्रीरंगनाथ स्वामी की उत्सव मूर्ति भी रही होगी। श्रीरंगम् तमिलनाडु के तिरुच्चिनापल्लि जिले में है। यह मूर्ति पाँच - छः दशाब्दियों तक वहाँ रही। जब श्रीरंगम् पर मुसलमानों के आक्रमण हुए थे, तब श्रीरंगनाथ की मूर्ति यहाँ लायी गयी। मालिक कफूर का आक्रमण सन् 1310 में और मुहम्मद बीन तुगलक के आक्रमण बाद में हुए थे। भगवान की मूर्ति छिपा कर यहाँ लायी गयी। मैसूर राज्य से होती हुई मूर्ति यहाँ पहुँची। बाद में विजयनगर साम्राज्य के सम्राट बुक्कराय-I के सुपुत्र कुमार कंपना II के द्वारा मदुरै के सुलतान शासन को परास्त किया गया तब उनके सेनापति सालुव मंगिदेव और गोप्पना आदि ने 14 वीं शती में रंगनाथ की उत्सवमूर्ति को पुनः श्रीवेङ्कटेश्वर के मंदिर से ''सेंजी'' (चेंजी) और वहाँ से कुछ ही समय बाद श्रीरंगम पहुँचायी। रंगनाथ की मूर्ति श्रीरंगम् के मंदिर में पुनः स्थापित हुई (तिरुपति देवस्थानम् एपिग्राफिकल रिपोर्ट, पृ.131)।]

रंगमण्टप, पत्थर से बने बडे बडे खंभो से सुशोभित हैं। इन खंभो पर सुंदर और आकर्षक शिल्पकला का विन्यास मिलता है। इस *मंटप* के दक्षिणी भाग में सुवर्ण *शेष वाहन* रखा हुआ है। कुछ

वर्षों से यहाँ अन्य वाहन भी रखे जा रहे हैं। यहाँ *'कल्याण - उत्सव'* भी मनाया जाता था। (आजकल कल्याणोत्सव यहाँ नहीं मनाया जाता है।)। रंगनायक मंटप के आंगन प्रान्त में मंदिर का एक छोटा कार्यालय है। यहाँ पर कुछ सेवाओं से संबन्धित टिकट बेची जाती हैं। आरंभ में यह कार्यालय *महामणि - मंटप* के पास था। (आजकल यह कार्यालय यहाँ नहीं है। अन्यत्र व्यवस्थित है।)

तिरुमलराय मंटप

रंगमंटप के पश्चिमी पक्ष में *तिरुमलराय मंटप* है। यह बडा मंटप है और ध्वजस्तंभ की उत्तरी दिशा में है। यह कुछ ऊँचे मंच पर, सीढियों सहित स्थित है। यहाँ कु छ उत्सव मूर्तियाँ 'आस्थानम् उत्सव' के समय रखी जाती हैं।

सालुव नरसिंह ने सन् 1473 में *डोला-महोत्सव-अन्न-ऊँजल-तिरुनाल (डोलोत्सव)* का आरंभ कराया था। इसे 'ऊँजलि सेवा' कहते हैं। पहले यह उत्सव *मिथुन* मास (*आणि* मास) में मनाया जाता था। इन उत्सवों के समय में (जून-जुलाई) भगवान को प्रसाद आदि को अर्पित करने के लिए सालुव नरसिंह ने अपनी माता के नाम पर *'मल्लायम्मन - संधि'* की योजना बनायी थी। *चित्तिरै* उत्सव के लिए (अप्रैल में) सात दिवसीय पूजादि के लिए भी उन्होंने चावल आदि की व्यवस्था की थी। आणि मास में बीस दिन पर्यन्त चलनेवाले *''कोडै तिरुनाल उत्सव''* और संक्रमण - उत्सव (मकर संक्रांति पर्व के समय) के लिए भी उन्हीं के समय में व्यवस्थाएँ की गयी थीं। स्वामी पुष्करिणी के तट पर स्थित *''तीर्थवारी मंटप''* को भी परंपरित मंदिर पुरोहितों से उन्होंने खरीदा है। वहाँ की आवश्यक व्यवस्थाएँ भी उन्होंने की हैं। नौ दिन पर्यन्त चलनेवाले स्वामी *ब्रह्मोत्सवों* के लिए भी उन्होंने 'दोम्मरपट्टी' गाँव को दान में दिया था। यह पडैवीडु राज्य के अधीन था (ति.ति.दे. लेख खंड II, क्र.सं.50)।

दोम्मरपट्टी गाँव से मिलनेवाली आमदनी *''अन्नाऊँजल''* उत्सव के लिए और प्रसादों के निर्वहण के लिए काफी मानी गयी है। इससे संबन्धित इतना ही विवरण प्राप्त है।

शायद यह सब *तिरुमलराय मंटप* में मनाये जानेवाले उत्सव ही हो सकता हैं। नंदन नाम संवत्सर (शक. 1394) के '*उत्थान* द्वादशी' (कार्तिक शुक्ल एकादशी) के दिन 'दुर्ग समुद्रम्' गाँव को श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिरों के निर्माण के लिए दान में दिया गया था। (वाल्यूम II, कं.सं. 79)। यह समय 13 अक्तूबर, 1472 है। शायद इस अनुदान से ही मंदिर के अधिकारियों ने उस समय शिखर (गोपुर) का निर्माण हाथ में लिया। समानांतर में तिरुमल पर नरसिंहराय मंटप का भी निर्माण राजा के इच्छानुसार हुआ होगा। इस पर एक शिलालेख मिलता है। वह 30 मई 1482 का है। इसमें स्पष्ट है कि उक्त गाँव को कार्य निर्वाहक विभाग (पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट) को दखल किया जाय। विभाग को

अनुदान मिला और आवश्यक निर्माण कार्य और पुनरुद्धार कार्य भी संपन्न किये गये हैं। (खंड II, क्र. सं. 79)।

'दुर्गसमुद्रम्' का दान दिनांक 13 अक्तूबर 1472 को हुआ और *''डोला महोत्सवम्''* (अन्नऊँजल तिरुणाल) जून 1473 में मनाया गया है। क्र.सं. 79 से प्राप्त सूचना के अनुसार पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट ने निर्माण कार्य अनुदान प्राप्ति के तुरंत बाद ही आरंभ किया तथा *नरसिंहराय मंटप* का आंशिक निर्माण ही हुआ होगा जब ''ऊँजल उत्सव'' (डोलोत्सव) मनाया गया। सालुव नरसिंह राय ने इस असंपूर्ण या अध बनाये *मंटप* में ही उत्सव में भाग लिया होगा। पूरा निर्माण मई, 1482 में हुआ होगा।

समय के साथ साथ *नरसिंह राय मंटप* उत्सवों के निर्वाह के लिए जगह की दृष्टि से कम पडा हो और उसका पुनरुद्धार आवश्यक समझा गया हो। इसीलिए उस मंटप का पुनरुद्धार और विस्तरीकरण कार्य संपन्न हुए थे। यह आरवीडु राजवंश के तिरुमलराय के हाथों हुआ था। (खंड V, क्र.सं. 168) यह 15 दिसंबर, 1561 में लिखित लेख से प्राप्त समाचार है। उन्हीं के समय में ''चंपक चुर्रु'' (संपंगि प्राकार) में ऊँजल - *मंटप* का निर्माण किया गया था। भगवान के लिए *''अतिरस पडि''* नैवेद्य का समर्पण भी हुआ था। यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के चौदह दिवसीय *ब्रह्मोत्सवों* के समय उत्सव मूर्तियों को हुआ। इसी प्रकार पाँच - दिवसीय *ऊँजल* उत्सवों के समय में भी किया गया था। यह सब सालुव नरसिंहराय के हाथों ही हुआ था। पाँच दिवसीय *''पवित्रोत्सव''* का आरंभ सालुव मल्लयदेव से जनवरी 1564 में किया गया मालूम होता है। पाँच दिवसीय *वसंतोत्सव* का आरंभ तिरुमल राय ने किया था (खंड V, पृ. 93)। यह समय जून 1547 था। उस समय तिरुमल पर अनेक उत्सवों की परिकल्पना भी की गयी थी। इस तरह कुल मिलाकर 25 उत्सव (10 *ब्रह्मोत्सव* सहित) मनाये जाते थे। इनके अलवा साल के 241 पवित्र दिन भी माने जाते थे। विशेष उत्सव मनाये जाते थे। ये सब *तिरुमल राय मंटप* में ही संपन्न होते हैं। पुनरुद्धरित या पुनर्निर्मित सालुव नरसिंह के *''ऊँजल - मंटप''* का कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ दिखाई देता है।

सालुव नरसिंह ने *''तिरुक्कोनेरु''* (पवित्र स्वामी पुष्करिणी) के पास ही ''वसंत - *मंटप*'' का निर्माण भी कराया। उन्होंने ही स्वामी - पुष्करिणी में ''तेप्पोत्सवम्'' *(तिरुपल्लिओड तिरुणाल)* का भी आरंभ कराया था। भगवान एक सुंदर रूप से निर्मित नाव में देविरियों के साथ विहार करते हैं। यही ''तेप्पोत्सवम्'' (प्लवोत्सव) नाम से प्रसिद्ध भी है। उन्होंने दस दिन का ''कोडै तिरुनाल'' उत्सव का भी इंतजाम किया था। उस समय प्रसाद का वितरण वसंत मंटप में संपन्न होता था (खंड II, क्र.सं. 31)। मूलमूर्ति के साथ-साथ उत्सव मूर्तियों के लिए भोग तथा 10 दिन पर्यन्त चलनेवाले *''अध्ययनोत्सवम्''* के लिए *''तनिकैनाडु''* (आजकल के तिरुत्तणि) प्रान्त का 'आगरम् मुरुक्कमपट्टु' गाँव दान में दिया गया

था। *''अर्द्धोदय''* (दिनांक 28-12-1467) के दिन पर और *मकर संक्रांति* के अवसर पर संपन्न किया गया। इससे संबन्धित रिजस्ट्रेषन कार्य सर्वजित संवत्सर के *मीन* मास में संपन्न हुआ। यह शक संवत्सर 1389 में यानी 16, मार्च, 1468 में घटित हुआ था।

कहा जाता है कि सालुव नरसिंह ने *'संपंगि प्राकार'* के चारों कोनों में चार - खंभों के *चार मंटपों* का निर्माण किया था और *''तीर्थवारि मंटप''* को मंदिर के परंपरित पुजारी वर्ग से खरीदा था। सभी संदर्भों में पूजादि कार्यक्रमों के निर्वहण के लिए आवश्यक व्यवस्थाएँ भी की। उदाहरण के लिए उस समय में संपन्न होनेवाले एकाधिक ब्रह्मोत्सव, *तिरुप्पलि ओडम* (नौका विहार उत्सव) आदि। ये उत्सव सालुव नरसिंह और उनके पुत्र कुमार नरसय्यन्, चिक्क संगमन् तथा पेरिय संगमन् के नामों पर चलते थे। हर *मंटप* के पास एक *''अप्पडि''* (प्रसाद का माप) निवेदित होता था (खंड II, क्र.सं. 51, अनुसंधायक क्र.सं. 50)। क्र.सं. 51 के अनुसार यह भी विदित होता है कि उन्होंने पवित्र पुष्करिणी के पास एक *'नंदनवनम्'* का निर्वाह किया था एवं एक और *'नंदनवनम्'* (बगीचा) *'नरसिंग राय कोनेरु'* के पास (कोनेरु = सरोवर)। एक धर्मशाला का भी निर्माण सरोवर तट पर किया जिस में *''पुरुट्टासि ब्रह्मोत्सवम्''* के समय 10 दिन पर्यन्त भक्तों को अन्नदान की व्यवस्था भी उनके समय में होती थी। उनके समय में जो ''नरसिंहराय कोनेरु'' था वही आगे चलकर *''अच्युतराय कोनेरु''* कहलाने लगा। उसी के पास 19 वीं सदी में एक नारियल का बगीचा भी लगाया गया था। इसी जगह पर देवस्थानम् की ओर से आजकल अतिथिगृह बने हैं।

खंड II, क्र.सं. 79 के अनुसार उसी समय में दो बाह्य *शिखरों* का भी निर्माण किया गया और पैदल चढनेवाले रास्ते में हर 100 गज की दूरी पर कुछ *गोपुर* भी निर्मित किये गये हैं।

सहस्र खंभो का मंटप

खंड II, क्र.सं. 18 लेख *सभानु (स्वभानु)* नामक संवत्सर के *मकर मास* (= शक संवत्सर 1385 = 18, जनवरी 1464) में सालुव मल्लदेव महाराजा से संबन्धित मिलता है। उसके अनुसार सालुव एर्रकम्पदेव महाराजा के पुत्र सालुव मल्लदेव महाराजा ने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की *मूल विराट मूर्ति* को प्रतिदिन नैवेद्य (*पायसम्* या खीर सहित) की व्यवस्था की थी। इतना ही नहीं मलयप्प स्वामी की *उत्सव मूर्तियों* (मलैकिनिय निन्र पेरुमाल तथा उनकी दो नाच्चिमार श्रीदेवी तथा भूदेवी सहित) के लिए *तिरुक्कार्तिकै* (कार्तिक नक्षत्र) के समय संपन्न होनेवाले 7 ब्रह्मोत्सवों के समय प्रसाद आदि के वितरण की व्यवस्था भी की थी। उत्सव मूर्तियों में श्रीवेङ्कटेश्वर और उनकी देवेरियाँ श्रीदेवी और भूदेवी की मूर्तियाँ हैं। वे मूर्तियाँ हर ब्रह्मोत्सव के समय तीसरे, चौथे, पाँचवें तथा सातवें दिनों में शोभायात्रा में भाग लेती हैं। पवित्रोत्सव के पांचों दिनों में भी इसी प्रकार चलता है। पवित्रोत्सव आवणी महीने में (श्रावण मास,

- आगस्त - सितंबर) धार्मिक अनुष्ठानों के साथ चलता है। इस क्रम में बीज वपन, प्राँगण का अलंकरण, *वेदमंत्र पाठ,* पुराण श्रवण, मंदिर की चारों ओर शोभायात्राएँ, आदर - सत्कार आदि संपन्न होते हैं। इस का व्यय पूरने के उद्देश्य से चंद्रगिरि राज्य का 'एलंबाक्कम्' गाँव को दान में दिया गया।

सालुव मल्लयदेव द्वारा निर्मित *मंटप* ही सहस्र - खंभों का मंटप है। यह भगवान के मंदिर के सामने है। मंदिर की पूर्व वीथि या *सन्निधि* वीथि में यह है। इस मंटप में एक हजार खंभे हैं। (आज इस मंटप को हटाया गया है। यात्रियों के आवागमन की सुविधा को दृष्टि में रखकर निकाल दिया गया है।)

श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर में अनेक उत्सवों की परिकल्पना समय समय पर राजाओं के द्वारा की गयी है। कुछ विशिष्ट व्यक्ति और आध्यात्मिक वेत्ता और सामंत राजाओं द्वारा भी इस प्रकार की योजनाएँ तिरुमल मंदिर के साथ बनी है। कहना चाहिए कि वर्ष के 365 दिन यहाँ उत्सव के दिन ही हैं। खंड V, क्रं.सं. 168 से इस संबन्ध में कुछ सूचनाएँ मिलती हैं। आरवीडि तिरुमाल के समय प्रचलित कुछ उत्सव इस प्रकार हैं - 15 दिसंबर 1561 में प्राप्त सूचना के अनुसार *''अतिरस-पडि''* 491 दिनों के लिए निवेदित हुआ था। इसमें 140 दिनों में संपन्न 10 *ब्रह्मोत्सव,* 110 दिनों के नित्योत्सव, 241 दिनों के उत्सव हुए। 241 दिनों के उत्सवों में 13 *अमावास्या* के दिन, 13 *पूणिमा के दिन,* 25 एकादशियाँ, विशिष्ट नक्षत्रों के दिन - *रोहिणी, पुनर्वसु* के 13 दिन आदि हैं। ये सब, कुल मिलाकर 439 उत्सव होते हैं। (इस सूचना में कुछ अतिशयोक्ति संभव है।) बहु संख्या में भक्तगण इन उत्सवों में भाग लेते ही होंगे। 3000 फुट की ऊँचाई पर स्थित तिरुमल एक शीतल प्रांत है। आस पास घने जंगल हैं। भारी वर्षाएँ भी होती रहती हैं। इस मौसम के अडचनों को झेलने के लिए सब प्रकार के भक्तों और कर्मचारियों के लिए आवश्यक सुविधाएँ भी चाहिए। इसके लिए कुछ खुले मंटपों का निर्माण भी हुआ है, जिस में वर्षा और धूप से भक्त अपने को सुरक्षित रख सकते हैं। इस प्रकार के निर्माणों में भक्त, सामंत, रईस आदि ने हाथ बटाया है।

कुछ समय के बाद ऐसे कुछ स्थल और *मंटप* दूसरों के अधीन हो गये हैं। उन्होंने वैयक्तिक आवासों के रूम में कमरों और घरों का निर्माण कर लिया।

पत्थर रथ (शिला रथ)

वाशलम एल्लप्पा नायकर नामक भक्त ने इसका निर्माण कराया है। यह *धर्मम्* (सेवा) *सर्वजित* नामक संवत्सर के चित्तिरै मास (चैत्रमास) में संपन्न किया गया है (= शक संवत्सर 1449 = 29, मार्च 1527)। इसकी सूचना खंड III क्र.सं. 168 में उल्लिखित लेख से प्राप्त होती है। यह विजयनगर साम्राज्य के सम्राट कृष्णदेवराय के समय में हुआ है। रिकार्ड में दाता का नाम मिलता है। संभव है कि शिला रथ

कृष्णदेव से कुछ पूर्व ही निर्मित हो गया हो। (यह शिला रथ आज वहाँ नहीं है जहाँ पहले स्थापित था।) पहले यह शिला रथ मंदिर की उत्तर - पूर्वी कोने में था। खंड V, क्र.सं. 16 वाले लेख में इस शिला रथ का निर्माण सेव्वराय वडमालै अप्पर के पुत्र नागप्पन द्वारा श्रद्धापूर्वक दिये दान से बनाया गया है। इस पत्र में कोई समय सूचित नहीं है। यह तो निश्चय है कि शिला रथ के साथ जो धर्मशाला का जिक्र किया गया है, उससे पहले ही शिला रथ का निर्माण हुआ है। वाशलम् एल्लप्प नायकर ने मार्च, 1527 में *सत्रम् (धर्मशाला)* का निर्माण किया होगा। शिलारथ पत्थर का बना और न हिलनेवाला रथ है (खंड V, क्र.सं. 32)। खंड V, क्र.सं. 2 में एक और सूचना मिलती है। उसके अनुसार वानमामलै जिय्यर और उनके शिष्य *कोयिल केल्वि जिय्यर* दोनों द्वारा *कुम्भ* मास (मासि महीने) (= *प्लव वर्ष,* शक संवत्सर 1463 = 27 जनवरी, 1542) के उत्सव के लिए 9 *'मनोहर पडि'* प्रदान की व्यवस्था है। यह नौ दिन पर्यन्त *जलक्रीडा* उत्सव (प्लवोत्सव) के समय उत्सव मूर्तियों के लिए प्रसाद वितरण की व्यवस्था है। इसी प्रकार शिला रथ में ऊँजल पर विराजमान भगवान की मूर्तियों के लिए नैवेद्य की व्यवस्था भी की गयी थी। *अळगिय - मनवाल मठम्* और अन्य प्रान्तों में भी भगवान को नैवेद्य अर्पित किये जाते थे। उत्सवों के समय मूल विराट मूर्ति को भी प्रसाद समर्पण की व्यवस्था में कोई कमी नहीं थी। इसी प्रकार मंदिर की नर्तकी तिरुवेङ्कटदासी की पुत्रियाँ लिंगसानी और तिरुवेङ्कटमाणिक्यम् ने 20 *मनोहर-पडियों* को मलैकुनिय - निन्र - पेरुमाल के अर्पण के लिए दान को भक्ति पूर्वक दिया है। यह *क्रोधि* नाम संवत्सर *मीन* (फल्गुणी) मास (= शक संवत्सर 1466 = 27-2-1545) में संपन्न किया गया है। यह *कोडै (ग्रीष्म कालीन) उत्सव* की शोभायात्रा में 20 वें दिन के लिए भी है। उत्सव विग्रहों के लिए गर्मियों की सेवाओं के लिए भी दान संपन्न किये गये हैं। ये उत्सव शिला रथ में मनाये जाने की बात है (ख. VI, सं.61)।

[[शिला रथ जो लगभग आधा भूमि में धस गया था, पीढियों पर्यन्त तिरुमल में था। इसका स्थान मंदिर की उत्तर - पूर्वी दिशा में था। कुछ वर्ष पहले वहाँ से निकाला गया था। चंद्रगिरि मार्ग के पास वेङ्कटाद्रि पर आज प्रतिष्ठित मिलता है। जैसे ही भक्त सीढियों से ऊपर पहुँचते है, सीढियाँ खतम होती हैं, वहाँ प्रतिष्ठित रथ दिखाई देता है।]]

उसी प्रकार तिरुपति में भी श्रीगोविंदराज मंदिर के पास एक शिला रथ के होने की सूचनाएँ मिलती हैं। आरवीटि वंश के प्रांतीय शासक पोट्लपाटि तिम्मराजय्या ने इसकी व्यवस्था की थी। (देवस्थानम् रिपोर्ट पृ. 253)। यह कर्काटक के अलिय रामराज और सदाशिव राय की ओर से है। यह *विश्वावसु* नाम नंवत्सर में आडि मास में (= शक संवत्सर 1467 = 15, जुलाई 1545) श्री गोविंदराज स्वामी उत्सव के लिए बनाया गया है। स्वामी अपनी देवेरियों के साथ शिला रथ के झूले में झूलते थे। यह अन्य प्रसाद समर्पणों सहित व्यवस्थित है। ऐसे पूजार्पण श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान, श्रीगोविंदराज स्वामी, श्रीअच्युत

पेरुमाल, और श्रीवरदराज स्वामी के लिए भी हैं। *तिरुवेङ्कट माहात्म्य* पठन के बाद नैवेद्य उन मंदिरों में सुबह प्रस्तुत किये जाते हैं। (खंड V, क्रं.सं. 53)।

[[श्रीगोविंदराज स्वामी का शिला रथ तिरुपति में उनके मंदिर के पास रखा गया था। लेकिन अब यहाँ नहीं है। उसका नामों - निशान नहीं मिलते]]

वाहन मंटप और घंटा मंटप

मंदिर के सामने मंदिर से अभिमुख होकर पूर्व वीथि में एक बडा *वाहन मंटप* है। मंदिर से जब भगवान उत्सवों के समय तिरुवीथियों में शोभा यात्राओं के लिए बाहर निकलते हैं, तो पहले वाहन मंटप में आते हैं। वहाँ अलंकृत होकर शोभायात्रा में भगवान पुरवीथियों में (माडा वीथियों में) निकलते हैं। यह बाद का ही निर्माण लगता है।

दक्षिण और पूर्व वीथि के मिलन स्थान पर और *सन्निधि वीथि* के सामने *घंटा मंटप* स्थित है। सुबह और शाम के समयों में जब पुरोहित मंदिर में प्रवेश करते हैं तब घंटा बजता है। यह महाद्वार के दरवाजों के खुलने का समय होता है। भक्तों के लिए भी यह सूचना देता है। उस मंटप को ''गोल्लवानि मंटपम्'' (ग्वाले का मंटप) भी कहते हैं। आजकल एक घडी भी वहाँ है। वाद्यकार बाजे भी बजाते हैं। मुखद्वार पर द्वार खुलने का ऐलान भी होता है।

* * *

अध्याय - 13

आनंद निलय के महोज्ज्वल विमान में श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी

भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर अपने *आनंद-निलय-दिव्य-विमान* में गर्भालय के बीच विराजमान हैं। उनकी मूल विराट मूर्ति आठ फुट ऊँची है। सुवर्ण मणिमय *किरीट मुकुट* धारण किये हुए हैं। मरकत मणि वक्षःस्थल पर शोभित है। तेलुगु नव वर्ष 'उगादि' के अवसर पर, *आणिवर आस्थानम्, ब्रह्मोत्सवम्* आदि विशेष अवसरों पर वे नवीन वज्र *किरीट* से शोभित होते हैं। कर्पूर *'नामम्'* (ऊर्ध्वपुण्ड्र) से अधिक आकर्षक दिखाई देते हैं। *कर्पूर तिलक* (कर्पूर नामम्) उनकी आखों को कुछ ढाँकता है। शुभ्र धवल कांतियों से भासित कर्पूर तिलक के बीच *कस्तूरि तिलक* उनके माथे पर अत्यंत शोभायमान होकर भक्तों को तन्मयता प्रदान करता है। त्रिपुड्रांकित पद्मनयन का दर्शन भक्तों के लिए मन मोहक ही है। प्रकाशमान *मकर कुण्डलों* की शोभा वर्णनातीत है। चिबुक (ठोडी) पर अंकित कर्पूर चूर्ण मुख की शोभा को दुगुना करता है। ऊँचे उठे दक्षिण हस्त में मणि जडित *चक्र* और उसके समानांतर में विलसित वाम हस्त में *शंख* विराजित हैं। उसी प्रकार पदकमलों की ओर संकेत करता एक और दक्षिण हस्त, ऐसा सूचित करता है कि मुक्ति पाने का एक मात्र सरल स्थान उनका पदयुगल ही है। भगवान का एक वाम हस्त कटि प्रान्त में विलसित होकर *भक्त* को यह संकेत देता है कि उनके चरणारविन्दों में पहुँचनेवाले भक्त को *संसार-सागर* कटि तक की गहराई का ही लगेगा। अर्थात् संसार रूपी सागर में प्रवेश करने पर सागर का जल (कष्टों का घेराव) मात्र उसकी कटि (कमर) तक ही (पार करने योग्य) होगा। चतुर्भुजी भगवान का सुंदर रूप भक्तजन रक्षक मुद्रा में आकर्षक और आनंददायक प्रतीत होता है। भगवान की मूर्ति के हाथ मणि खचित आभूषणों *(अभि-भूषण)* से जडित हैं। कंठ के अनेक कंठहार वज्र - मणि विराजित हैं। कंकण भी उतने ही अमूल्य रत्नों से लसित हैं। 108 लक्ष्मी मुद्राओं से युक्त *लक्ष्मीहार* अत्यंत पवित्र है। *'मकरकंठि'* नामक वज्राभरण घुटनों तक विराजमान है। मोतियों की लडियों से युक्त मोतीहार अपनी उज्ज्वल कांतियों से भक्तों के हृदय को प्रसन्न करता है। उर पर *वैजयंति* माला (पुष्पों की माला) और (तुलसी माला) *वनमाला* दोनों भगवान की शोभा को द्विगुणीकृत करती हैं। उनका वक्षःस्थल *कौस्तुभ मणि श्रीवत्सांकित* होकर प्रकाशित रहती है। सुवर्ण *यज्ञोपवीत (ब्रह्मसूत्र)* कंधे पर विराजमान है। वक्षःस्थल पर दाहिनी ओर श्री लक्ष्मी देवी और बाई ओर भूदेवी (श्री पद्मावती देवी) विलसित हैं। भगवान *पीतांबरधारी* हैं। छोटी-छोटी घंटिकाओं से लसित कटि में विराजमान सुवर्ण करधनी से शोभित मूर्ति हैं जिनके पास *नंदक* नामक *कठारी* (तलवार) लटकती है। भगवान के पदकमल सोने से मंडित हैं। चरणों में नूपुर शोभित हैं। दिव्य सुंदर मूर्ति अगणित शोभा से युक्त हैं।

भगवान की घुंघुराली *जटाएँ* लटकती रहती हैं। ये पीछे पीठ पर शोभायमान रहती हैं। सामने दिखाई नहीं देती हैं।

[अंगांग सौंदर्य का वर्णन भगवान के अवतरण के समय वहाँ उपस्थित ऋषि, *मुनि* और देवता समूह से किया गया था। उन सबको भगवान के दिव्य *दर्शन* का लाभ प्राप्त हुआ था। यह दर्शन उन्हें पहले स्वामी पुष्करिणी तट पर आविर्भूत होने के समय पर हुआ था। - पद्मपुराण, अ. 4, श्लोक 38-61; अ. 1, श्लो. 38-61; अष्टीतमोध्याय (अ.80), भविष्योत्तर पुराण; आदित्य पुराण, अ.1, श्लो. 12, 13, 14, 26, 27, और 29]

[[आदित्य पुराण; अ. 1, श्लोक 42 में स्पष्ट किया गया है -''आनंद ज्ञानदं विष्णुं आनंदमय नामकं, आनन्देन ददर्शायं आनन्दनिलयालये।'' यहाँ भगवान वेङ्कटेश्वर को 'आनन्दमय' और उनके मंदिर को 'आनन्द - निलय - आलय' कहा गया है। 'आनन्द जनकत्वात्तं' आनन्द निलयं विदुः' - *आनन्द* का जनक आनन्दलियम् है। - भविष्योत्तर पुराण, अ. 13, श्लो. 81]]

[[श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर के पारुपत्यदार श्री यस.वी. लक्ष्मीनरसिंह राव ने अपनी पुस्तक 'श्री तिरुमल - तिरुपति यात्रा' में पृ. 85 पर कहा है कि *विमान* के पूर्व भाग में मार्केण्डेय मुनि द्वारा आलिंगित शिवलिंग है तो उत्तरी भाग में ''विमान-श्रीनिवास'' की मूर्ति है। इन दोनों को अच्छी तरह देखा एवं पहचाना जा सकता है।]]

[[श्रीवेङ्कटेश्वर ने आरंभ में ही कहा था कि वे *शंख* और *चक्र* के बिना रहेंगे। कुछ काल बाद एक राजा होगा और वह उनके हाथों में शंख और चक्र धारण करवायेगा। आकाशराजा के बाद उनके छोटे भाई तोंडमान राजा हुए। आकाशराजा की मृत्यु के बाद जब उनके पुत्र वसुदास और छोटे भाई तोंडमान के बीच युद्ध चिढ़ा तब भगवान ने वसुदास के पक्ष में जाकर सहायता की थी। लेकिन तोंडमान के पक्ष से लडने के लिए हरि ने *शंख* और *चक्र* उनको दिये। इन आयुधों से उनको लाभ हुआ। (भविष्योत्तर पुराण, अ. 12, श्लो. 67)। बाद में जो समझौता हुआ उससे तोंडमान को भी राज्य मिला। परिणामस्वरूप तोंडमान ने भगवान के लिए मंदिर और विमान के निर्माण की प्रतिज्ञा की। ब्रह्मा और अन्य देवता समूह के समक्ष भगवान ने मंदिर प्रवेश किया। पद्मावती को वक्षःस्थल पर स्थान देकर भगवान मंदिर में गये। परन्तु हाथों में शंख और चक्र नहीं थे। (भविष्योत्तर पुराण, अ. 13, श्लो. 82)। कुर्वा गाँव के कुम्हार भीम को भगवान का सारूप्य मिला था। उस समय तोंडमान भी वहाँ थे। भीम के वैकुण्ठ में दिव्य विमान द्वारा पहुँचने के बाद ही तोंडमान ने शंख, चक्र आदि को वापस किया। तब तक श्री वेङ्कटेश्वर शंख, चक्र रहित ही रहे। तोंडमान राजा ने उनके हाथों में शंख - चक्र धारण कराये थे। एक और बात भी

प्रचार में है कि भगवान ने कुम्हार भीम को विमान में *शंख, चक्र, कौस्तुभ* तथा *पीतांबर* से अलंकृत कर वैकुण्ठ भेजा था। रिक्त हाथों के भगवान को मूल शंख और चक्र के स्थान पर बनाये गये शंख - चक्र आदि से तोंडमान ने अलंकृत किया।]]

शरीर प्रकृति और आभूषणों को परखने से स्पष्ट होता कि श्रीवेङ्कटेश्वर की मूल विराट मूर्ति विष्णु और शिव की समन्वित संश्लिष्ट मूर्ति है। पुराणों के कथनों से भी यह विदित होता है। *अहिभूषणम्* या *नागाभरणम्* तथा जटाएँ शिव के संकेत हैं तो *श्रीवत्सम्, कौस्तुभमणि* और *वैजयंतिमाला* विष्णु के सूचक हैं। वेङ्कटेश्वर इस प्रकार हरि - हर की युगल मूर्ति लगते हैं। *स्मार्तों-शैव* के आराध्य हैं तो विष्णु वैष्णवों के। श्रीवेङ्कटेश्वर के इस युगल स्वरूप को पहचाना गया है। पुराणों एवं *वैष्णव आळ्वारों* से भी सूचित हैं। (पोयगै आळ्वार, पद-5 तथा 74)। (डॉ. यस.के. अय्यंगार का 'ए हिस्टरी ऑफ तिरुपति' - खंड 1, पृ. 59-60)। पेय आळ्वार, पद संख्या 63) (डॉ. अय्यंगार, पृ. 79-80)। मार्कण्डेय के आलिंगन में बद्ध *शिव लिंग* का *विमान* पर होना, *कुमारधारा तीर्थ* तथा स्वामी पुष्करिणी नाम (कुमार स्वामी का स्मरण करना) इसके सूचक हैं। कुमार स्वामी तो शिव के पुत्र हैं। इनको *षण्मुख, सुब्रह्मण्य स्वामी* भी कहते हैं। अन्य बाह्य संकेत भी शैव प्रकृति के मिलते हैं जो श्रीवेङ्कटेश्वर के साथ सम रूप में जुडते हैं। वैष्णव संकेतों से वे विष्णु से भी जुडते हैं।

श्रीवेङ्कटेश्वर प्रकृतितः या मूल रूप से शैव मूर्ति हैं या वैष्णव मूर्ति - इस संबन्ध में वाद - विवाद शताब्दियों से प्रचलित रहे हैं। लेकिन 12 वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य जी ने इस विवाद को पूर्णतः निर्विवाद के रूप में परिवर्तित किया है। इस दिशा में वे अवश्य विजयी हुए हैं। इस संदर्भ में स्थानीय यादवराजा का सहयोग उन्हें अवश्य मिला ही होगा। शायद इसी समय श्रीवेङ्कटेश्वर के हाथों में *शंख* और *चक्र* भी लगे होंगे। वैखानस आगमानुसार पूजाविधान का निरूपण भी इसी समय हुआ होगा। इसी प्रकार सीता, राम और लक्ष्मण की भी पूजा आदि का आरंभ माना जा सकता है। ये *'तमिल-प्रबन्धम्'* की परंपरा के अनुसार नियोजित हुए होंगे। इस पर लंबी चर्चा डॉ. यस. कृष्णस्वामी अय्यंगार द्वारा लिखी गई पुस्तक ''ए हिस्टरी आफ् तिरुपति'' में हुई है (पृ. 265, 266, 279, 280, 288-290)। उन्होंने जी ने भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के विष्णु स्वरूप पर अधिक जोर देकर समर्थन किया है। भगवान को उन्होंने श्रीनिवास ही कहा है (पृ. 279-280)। इस संदर्भ में उनकी कट्टरवादिता की बू भी कुछ हद तक मिलती है। यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि नवीं शती की मूल विराट मूर्ति शंख - चक्र विलसित नहीं थी। ये विष्णु के संकेत हैं।

वैष्णव संकेत त्रिपुण्ड्र (तिरु *नामम्*), *शंख - चक्र* आदि के बावजूद भी कुछ लोग वेङ्कटेश्वर को शिव ही मानते हैं। वे मानते है कि जिन हाथों में आज *शंख* और *चक्र* है, वे कुछ समय पहले रिक्त

थे और उनमें पहले *त्रिशूल* और *डमरुक (डमरू)* रहें होंगे। शंख और चक्र श्रीरामानुजाचार्य के द्वारा रखवाये गये हैं। फर्गुसन ''इंडियन एण्ड ईस्ट्रन आर्किटेक्चर'' (खंड 1, पृ. 404, नोट-2) में जे. डी.बी. ग्रिबल की टिप्पणी का उल्लेख है। ग्रिबल का कथन या दृष्टिकोण 'कलकत्ता रिव्यू' (खंड LXI पृ. 142-156) में ''द टेंपुल आफ् विष्णु आन द हिल आफ तिरुपति'' शीर्षक लेख में मिलता है। यह 1875 में प्रकाशित है। उनके अनुसार - ''यह मंदिर द्राविड मंदिर निर्माण का अच्छा नमूना है। द्वितीय श्रेणी में यह नमूना आता है। खेद की बात है कि यह जीर्ण शीर्ण तथा जीर्णोद्धार की स्थिति से परे है। यह मूलतः शैव मंदिर है, लेकिन श्रीरामानुजाचार्य ने इसे वैष्णव मंदिर में परिवर्तित किया है। यह 12 वीं शती में हुआ है।''

उत्तर आर्काट जिले का 'मान्युवल' (1880) जो ए. एफ. कोक्स से संकलित किया गया और एच.ए. स्टुवर्ट द्वारा 1895 में संपादित किया गया है उसके 'खंड' II में 'तिरुमल' शीर्षक के अधीन पर्वत श्रेणियों और मंदिर पर एक विवरण है। उसमें कहा गया है कि 'इस में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि मूलतः मूल विराट मूर्ति पहले शिव के रूप पर आराधित थी। इसका विरोध भी किसी ने नहीं किया। इसकी कथा रामानुजाचार्य से जुडती है। उन्होंने ही भगवान के हाथों में शंख और चक्र रखे थे। इस संबन्ध में कहा जाता है कि उन्होंने शंख और चक्र मंदिर में भगवान के सामने रखे और मंदिर को बंद किया। दूसरे दिन वे शंख और चक्र भगवान के हाथ में विभूषित हो गये। इसीलिए ये विष्णु मूर्ति ही हैं। लेकिन इस कथा में सत्य का अंश बहुत कम दिखाई देता है। क्योंकि शंख और चक्र पत्थर में जडे नहीं हैं। वे सोने के बने हैं और मूर्ति में रखे गये हैं। सिर पर केशों की जटाओं के रूप में होना और शरीर पर नागों के चिह्नों का अंकित रहना तथा अन्य कुछ विशेष वास्तविकताएँ शिव के साथ ही जुडती हैं। कुछ पुजारी वर्ग कहता है कि वे शैव हैं, चाहे त्रिपुंड्र नामम् धारण कर रहे हो। शायद स्वामी की देवी नहीं है। स्वामी ब्रह्मचारी थे। ये सुब्रह्मण्य स्वामी ही हो सकते हैं।''

तेलुगु के दो युगल कवि थे। उनमें एक का नाम चेल्लपिल्ल वेङ्कट शास्त्री हैं। सन् 1936 के आसपास उन्होंने, (जब वे भगवान के दर्शनार्थ वेङ्कटाद्रि गये थे), कुछ पद्य भगवान की सेवा में अर्पित किये। उनमें भावनाओं की अभिव्यक्ति देते हुए उन्होंने कहा है - ''कुछ लोग कहते हैं कि रामानुजाचार्य ने आपको इस रूप में आविष्कृत किया है और 'हरि' कहा है जब कि यह स्थल ''शैवस्थल'' के रूप में विकास पाया था। शिव स्वरूप के पुराने चिह्न आज भी मौजूद हैं।''

दिनांक 9-12-1968 का समाचार पत्र 'द इंडियन एक्सप्रेस' के 'रीडर्स व्यूस' में अपनी बात कहने के लिए दिनांक 5-12-68 प्रचुरित एक शीर्षक के अंतर्गत किसी ने स्पष्ट किया है कि ''श्रीवेङ्कटेश्वर का मंदिर पहले एक जैन मंदिर था। बाद में वह शैव मंदिर बनाया गया। अंत में वह वैष्णव मंदिर में रूपाइत

हुआ। वह भी रामानुजाचार्य की तिरुपति यात्रा के पश्चात्। आदि शंकराचार्य ने अपनी यात्रा में 'श्री चक्र' की प्रतिष्ठा की है।''

यह विश्वजनीन विश्वास है कि आदि शंकराचार्य ने श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी के पादपीठ पर 'श्री चक्र' की स्थापना (रचना) की है। इससे मंदिर की उन्नति और आमदनी में बढौत्तरी की भावना निहित थी। आज हम मंदिर की आर्थिक उन्नति में इस बात की सच्चाई देख ही रहे हैं। पिछली दो दशाब्दियों में अभूतपूर्व प्रगति और उन्नति है। करोड़ों की आमदनी के पीछे ''धनाकर्षण यंत्र'' की महिमा देखी जा सकती है। इसका श्रेय श्रीशंकराचार्य जी को ही जाना (मिलना) चाहिए। उन्होंने जब यह कार्य किया था, उस समय यह शैव मंदिर ही हो सकता है, होने की ही संभावनाएँ अधिक हैं। उस समय वेङ्कटेश्वर को शिव के रूप में ही शायद मानते होंगे।''

सूक्ष्म और समुन्नत रूप में बनाया गया, आकर्षक, सुंदर और भव्य श्रीवेङ्कटेश्वर की *मूल विराट* मूर्ति *(मूल बेरम्)* स्वयंभू मूर्ति *(स्वयं व्यक्त)* मानी जाती है। विश्वास है कि किसी शिल्पी ने इसे बनाया नहीं। मानव मात्र में इतनी शक्ति का होना, इतनी कला को आविर्भूत करने की क्षमता का होना असंभव माना जाता है। श्रीवेङ्कटेश्वर तो अर्चामूर्ति हैं। वे भक्ति, कीर्तन, सेवा आदि भक्ति मार्गों से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। ब्रह्म, मुनि, ऋषि, भक्तों आदि के अनुनय - विनय से ही विष्णु भगवान इस प्रकार का अर्चा रूप ग्रहण कर यहाँ रह गये। अर्चा रूप में ही वे सब के लिए सुलभ प्राप्य रहेंगे। प्राचीन युगों में लोग धर्मवान, चरित्रवान और शीलावान होते थे। उनका नैतिक वर्तन और भगवान में विश्वास अधिक मान्य रूप में थे। वे भगवान में अनुरक्त और उनको समर्पित थे। पूजा, *जप,* ध्यान, *तप, योग* आदि के माध्यम से भगवान को जानने के मार्ग पर चलते थे। हृदय की उच्यतर संवेदनाओं से ओत-प्रोत थे। भगवान को *हृदय* में रखकर ध्यान रत होते थे। भगवान का *विभव* (संपत रूप, ज्ञान की संपन्नता, बौद्धिक संपत्ति, बौद्धिक प्रयास आदि से युक्त रूप) को, *व्यूह* रूप (अवधारणात्मक और संकल्पनात्मक रूप) को, *पर* रूप (निरपेक्ष, निर्गुण, दैवी) को समझने के प्रयत्नों में लीन रहते थे। लेकिन *कलियुग* के मानव इस दिशा में असमर्थ और ऐसे मार्गों में बढने में असमग्र हो गये हैं। नैतिक दृष्टि से भी बलहीन और पाप प्रवृत्ति से चालित रह गये हैं। पापी जीवन के प्रति आकर्षित होनेवाले हो गये हैं। ऐसे लोगों की आत्मओं को सुनिश्चित दिशा में ले जाने और परिष्कृत मार्गों में चलाने के लिए दैवी अनुकंपा की आवश्यकता है। भगवत्कृपा के बिना वे भक्त बन ही नहीं सकते। मुक्ति पथ की ओर जा नहीं सकते। इसीलिए ब्रह्मा आदि ने भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर से वेङ्कटाद्रि पर विलसने की प्रार्थना की। मानव भक्तों की रक्षा और उद्धार की भावना उस प्रार्थना में निहित थी। दूसरी ओर कलियुग के सामान्य मानवों की इच्छाओं को पूरना भी है।

श्रीवेङ्कटेश्वर के पांच रूप और उनके परिवार देवता

श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान अपने आनंदनिलय में अकेले नहीं हैं। राजा तोंडमान ने भगवान के आदेश से और उनकी इच्छा के अनुरूप अनेक अन्य भागों का निर्माण भी मंदिर के आवरण में किया है। यह सब ब्रह्मा, *देवता समूह, मुनियों* और *ऋषियों* की प्रार्थना के अनुरूप भगवान के वेङ्कटाद्रि पर वास के निर्णय के बाद हुआ है। राजा तोंडमान (पृ.स.80) ने मंदिर के प्रांगण में अनेक कमरों, शालाएँ, छप्पर, अश्वशालाएँ, गज शालाएँ आदि का निर्माण करवाया था। ब्रह्म ने विश्व की उन्नति और विकास के लिए दो अखण्ड दीपों को भी प्रज्वलित किया और *परमात्मा* की प्रार्थना की। ये अखण्ड ज्योतियाँ *कलियुगांत* तक जलती ही रहेंगी। श्रीवेङ्कटेश्वर ने ब्रह्म को आश्वासन दिया कि उनका यह अवतार *कलियुगांत* तक रहेगा। ऐसे समय तक रहेगा, जब अखण्ड ज्योतियाँ बुझेंगी और विमान ढहेगा। ब्रह्म ने भगवान के लिए उत्सवों का आरंभ *ध्वजारोहण* पर्व के साथ किया। ये उत्सव, रथ - यात्रा के साथ समाप्त हुए। उत्सवों के समय दिन में तीन बार नैवेद्य समर्पण और उत्सव यात्राएँ भी संपन्न हुई। भक्त जनों ने संपूर्ण भक्ति से इन उत्सवों में भाग लिया। ब्रह्म ने तोंडमान को बुलाकर आदेश भी दिया कि रमापति के उत्सवों के लिए आवश्यक रथों और अन्य व्यवस्थाओं का नियोजन किया जाय। विश्वकर्मा ने अद्‌भुत रथ का निर्माण किया। अन्य आवश्यक साधनों-छाते, पंखे, चामर आदि की योजना की।

भगवान श्रीनिवास ने *ब्रह्म* और तोंण्डमान को आदेश दिया कि वे समस्त देवता समूह, राजाओं और भक्तजनों को उस भव्य उत्सव में आमंत्रित करें। ब्रह्म ने उत्सव का आरंभ किया। *'अंकुरार्पण'* से उत्सव आरंभ हुए। *अंकुरार्पण* के दूसरे दिन पर *ध्वजारोण* संपन्न किया गया। *कन्या मास* (सितम्बर-अक्तूबर) में *वैखानस* आगम विधि के अनुसार प्रक्रिया चली। मणियों और मोतियों की लडियों से विभूषित पालकी में भगवान से चढने के लिए प्रार्थना की गयी। तिरुवीथियों में शोभा यात्रा चली। मार्ग में भगवान ने ब्रह्म से मजाक करते हुए कहा कि क्या तुम वेद मंत्र भूल गये हो। संकेत पाकर, ब्रह्म *वेद मंत्र* पाठ करने लगे। उसी संदर्भ में चार *वेदों* के अनुरूप चार रूपों में भगवान वेङ्कटेश्वर की परिकल्पना हुई। वे हैं *उत्सव श्रीनिवास* (चलमूर्ति), *उग्र श्रीनिवास, सर्वाधिक श्रीनिवास (भोगमूर्ति)* और *लेखक श्रीनिवास।* लेखक श्रीनिवास हर दिन लेखा - देखते हैं और अन्य आवश्यक कार्यों का निर्धारण भी करते हैं। इसीलिए इन्हें *''कोलुवु - मूर्ति''* भी कहा गया है। ये निर्धारित भी करते हैं कि कौन किस प्रकार का काम करेंगे। (भविष्योत्तर पुराण, अ. 14, श्लो. 24-33)

चार *मूर्तियों* की योजना के उपरांत ब्रह्म ने ही उनकी प्रतिष्ठा भी की। पाँचवी मूर्ति *मूल-विराट-मूर्ति* है। इस प्रकार की योजना के साथ ब्रह्म ने उत्सव प्रक्रिया को कार्य रूप दिया। उत्सव श्रीनिवास मूर्ति के रूप में भगवान के स्वरूप परिकल्पना के साथ ब्रह्मा ने अनेक वाहनों का निर्धारण किया। विविध प्रकार के नैवेद्यों का निर्देश किया।

ध्वजारोहण दिन से एक दिन पहले विष्णु के सेनानी विष्वक्सेन अन्य *देवताओं* सहित गाँव की सीमा में पहुँचते हैं। वहाँ *मंत्रों* के बीच मृत्तिका (मिट्टी) का चयन करते हैं। उसे एक हाथी पर रखकर शोभायात्रा में मंदिर में ले आते हैं। उस मृत्तिका से *अंकुरार्पण* का कार्य निर्वाह करते हैं। लायी गयी मिट्टी में नवधान्य का रोपण होता है। अंकुरार्पण के बाद के दिन से *अवभृथोत्सव* दिन और *पुष्पयाग* दिन पर्यन्त ब्रह्मा ने भगवान के उत्सव मनाये। (आजकल अंकुरार्पण के बाद ध्वजारोहण शाम को होता है जबकि पुराणों में सुबह संपन्न होने की बात है।)

ध्वजारोहण के दिन *आंदोलिका* में (पालकी जैसा वाहन) भगवान शोभा यात्रा के लिए निकलते हैं और तत्पाश्चात ही *ध्वजारोहण* होता है। उस दिन की रात को *महाशेष वाहन* पर भगवान की शोभायात्रा संपन्न होती है। दूसरे दिन सुबह *लघुशेष वाहन* और शाम को *हंसवाहन* की योजना है। तीसरे दिन सुबह को *सिंह वाहन* और शाम को *मौक्तिक मंटप वाहन* (मोतियों का वितान) पर भगवान विराजित होते हैं। इसी प्रकार चौथे दिन को *कल्पवृक्ष वाहन* और शाम में *सर्वभूपाल वाहन;* पाँचवें दिन पर *मोहिनी वेष* में *आंदोलिका वाहन* (पालकी सेवा); तथा शाम को *गरुडवाहन* पर भगवान शोभित होते हैं। छटे दिन सुबह को, *हनुमान* वाहन पर विलसित हो शोभायात्रा पर भगवान तिरुवीथियों में भ्रमण करते हैं। उसी दिन दोपहर के बाद *वसंतोत्सव* चलता है। वसंतोत्सव के बाद मंगल की सूचना के रूप में *मंगलगिरि* वाहन (तिरुच्चि वाहन) की व्यवस्था है। छटवें दिन रात को भगवान *ऐरावत* (हाथी) पर आसीन होकर पुरवीथियों की शोभा बढाते हैं। सातवें दिन प्रातः को ही *सूर्यप्रभा* (सूर्य भगवान) *वाहन* पर शोभित होते हैं और रात को *चन्द्रप्रभा वाहन* (चंद्रमा) पर विराजमान होते हैं। आठवें दिन पर सुबह विशिष्ट रूप से अलंकृत बडे रथ पर देवेरियों के साथ शोभायात्रा में भगवान तिरुवीथियों में निकलकर भक्त जनों को आनन्द प्रदान करते हैं। उस दिन रात को *उच्चैश्रव वाहन* (अश्ववाहन) सेवा संपन्न होती हैं। नौं वाँ दिन अति विशिष्ट दिन होता है। उस दिन पर *श्रवणा* नक्षत्र रहता है। श्रवणा नक्षत्र भगवान का जन्म नक्षत्र है। आंदोलिका (पालकी) में विराजमान हो *अवभृथ स्नान* के लिए निकलते हैं। अवभृथ स्नान उत्सवांत में संपन्न होनेवाला स्नान है। यह वराह स्वामी के मंदिरांतर्गत मंटप में संपन्न होता है। स्वामी पुष्करिणी में चक्रस्नान संपन्न किया जाता है। अंत में एक और शोभायात्रा निकलती है *मंगलगिरि वाहन* (पालकी) पर। तदुपरांत *गरुड ध्वज* को, जो आरंभ में फहराया गया था, अवनत कर देते हैं। इसे ध्वजावरोहण कहते हैं। उपयुक्त विधि से ध्वजा को अवरोहित करने की प्रक्रिया चलती है। दसवें दिन पर पुष्पयाग - महोत्सव चलता है। तरह तरह के पुष्पों से भगवान की आराधना ही *पुष्पयाग - महोत्सव* है। यह बहुत ही वैभवपूर्ण दंग से संपन्न होता है। इस सबका दर्शन भाग्य पाकर राजा, *देवता,* ऋषि- मुनि और भक्त समूह अपने अपने स्थानों पर वापस चले जाते हैं। अपने अपने नियमित कार्यों में लग जाते हैं। इस प्रकार के महोत्सव को संपन्न कराकर ही ब्रह्म, श्रीनिवास से आज्ञा लेकर *सत्यलोक* लौटे थे। तोंडमान

राजा ने भी भगवान से अशीर्वाद लेकर अपनी राजधानी लौटे थे। (भविष्योत्तर पुराण, अ. 14, श्लो. 39-68)।

भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर, आनंद निलय में पाँच रूपों में (पंच-बेरम्) विराजित हैं। ये *पाँच बेरम्* या रूप हैं - (1) *ध्रुव बेरम्,* जो स्थायी रूप से प्रतिष्ठित, अविचलित है। स्थानक मूर्ति रूप है - मूर्ति खडी मिलती है। यह *मूल-विराट मूर्ति* है। (2) उत्सव - बेरम्, जो शोभायात्राओं (उत्सवों) में पायी जाती है। तिरुवीथियों में जब भगवान उत्सव यात्रा या शोभा यात्रा में निकलते हैं, तब यही मूर्ति निकलती है। इस रूप में भगवान श्रीदेवी और भूदेवी सहित विराजमान मूर्ति हैं। यह मूर्ति *''कल्याणोत्सव''* में भी देखने को मिलती है। (3) *स्नपन बेरम्* : यह उग्र श्रीनिवास रूप है। यह क्रोध को व्यक्त करनेवाली छोटी मूर्ति है। यह *ध्रुव बेरम्* (मूल विराट मूर्ति) के साथ रहती है। उग्र श्रीनिवास मूर्ति (वेङ्कटत्तुरैवार) की शोभा यात्रा वर्ष में केवल एक बार संपन्न होती है। तिरुवीथियों में उनका दर्शन साल में एक बार ही मिलता है। *कैशिक- द्वादशी* (लगभग अक्तूबर महीने के बीच में) दिन प्रातः को ही उनकी शोभायात्रा होती है। मान्यता है कि उनकी तीव्र उग्र दृष्टि पडने पर सारे घर जल जाते है। अतः सूर्योदय से पहले ही यात्रा पूरी की जाती है। (4) *कौतुक - बेरम्* : इस मूर्ति को भोग मूर्ति, भोग श्रीनिवास और सर्वाधिक श्रीनिवास भी कहते हैं। यह मूर्ति चाँदी की मूर्ति है। यह मूर्ति विलास पूजा मूर्ति है। अभिषेकम्, शय्या पूजा आदि का निर्वाह इस मूर्ति के लिए विशेष रूप से संपन्न होते हैं। (5) *बलि - बेरम्* : ये *'कोलुवु - मूर्ति',* लेखक श्रीनिवास मूर्ति हैं (मंदिर का लेखा - जोखा निरीक्षण ये करते हैं।) इस मूर्ति को रोज *महामणि मंटप* में सुवर्ण सिंहासन पर आसीन कराया जाता है। सिंहासन सुवर्ण छाते के नीचे शोभित रहता है। इनके सामने लेखा समर्पित होता है। महामणि मंटप का दूसरा नाम *आस्थान मंटप* है। तोमाल सेवा और *अर्चना* के बीच लेखा समर्पण होता है। पूर्व दिन का लेखा यानी भगवान को समर्पित मनौतियाँ, धन, मनाये गये उत्सव, आर्जित *सेवाएँ, आर्जितम्* (आय), भोग आदि सबका विवरण बलि पीठम् (ध्वजस्तंभ के बगल में तथा मंदिर के चार कोनों में हैं) के सामने प्रस्तुत किया जाता है।

श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी की अनुकृति के रूप में चाँदी की मूर्ति की प्रतिष्ठा रानी सामवै द्वारा की गयी है। सामवै, शक्तिविटंकन की रानी थी। ये पल्लव राजाओं के सामंत थे। यह मूर्ति *''तिरुविलन कोयिल''* में प्रतिष्ठित है। मूर्ति को मूल्यवान आभरण, मणियाँ आदि भी समर्पित किये गये। *मकर कुंडल* (कानों के लिए मगर की आकृति में कुण्डल), चार लडियों की *कंठमाला, उदरबंधनम्,* तिरुवरै - पट्टिकै (कमरबन्ध), *बाहुबन्ध,* हाथ के लिए कंकण *(तिरुच्चंदम्)* सेट, *वलैयाल, कारै* (पायल), घंटिकाओं सहित पायल *(पाद चालयलम्),* प्रकाशमान उज्ज्वल *प्रभा* (सिरोभूषण) आदि अनेक अलंकरण सामाग्री की भेंट की गयी। इन आभरणों का वजन 47 *कलंजु* है।

उक्त चाँदी की मूर्ति (मनवालपेरुमाल) के लिए सामवै ने नित्य नैवेद्य और अखण्ड दीप (ज्योति) का भी नियमन किया है। *आयन संक्रांति (उत्तरायण संक्रांति* के समय) *मकर संक्रांति* तथा *दक्षिणायन* या *कटक संक्रांति* (क्रमश : जनवरी 15 और जुलाई 15) पर पवित्र स्नान, अभिषेक, का नियमन भी किया है। इसके अलावा *विष्णु संक्रांति (मेष संक्रांति), तुला* संक्रांति के समयों पर भी उत्सवों और पूजाओं की व्यवस्था उन्होंने की है। ये उत्सव और पूजाएँ दो दिनों के लिए चलती हैं। इस मूर्ति का आरंभिक उत्सव तमिल *पुरट्टाशि* महीने में (सितंबर - अक्तूबर) संपन्न होता है। यह दो दिन का उत्सव है। मुख्य उत्सव नौ दिन का होता है। यह *चित्तिरै* मास (चित्ता नक्षत्र) में संपन्न होता है। *अवभृथ* स्नान *श्रवणा* नक्षत्र में कराया जाता है। इन सब की सम्यक व्यवस्थाएँ सामवै के समय में ही हुई हैं। तदर्थ सामवै ने खेत खरीद कर भगवान को अर्पित किया है। उनसे मिलनेवाली आमदनी से सब कार्यक्रम अविघ्न चलते रहे हैं। इस प्रकार के समर्पण को *'वर्तना'* कहा गया है।

उक्त 'वर्तना' और व्यवस्था के साथ साथ सामवै ने चाँदी की मूर्ति के लिए *मार्गली* महीने में (दिसंबर - जनवरी) एक और उत्सव की भी व्यवस्था की है। यह उत्सव मार्गली महीने में *द्वादशी (मुक्कोटि द्वादशी)* का उत्सव है। इस दिन पर श्रीवेङ्कटेश्वर की चांदी की मूर्ति श्री वराह स्वामी के मंदिर तक लायी जाती है। मंदिर के सामनेवाले मंटप में मूर्ति को रखकर पवित्र अभिषेक कराया जाता है। वराह पुष्करिणी या स्वामी पुष्करिणी में सुदर्शन चक्र का स्नान कराया जाता है। विश्वास है कि उस समय *मुक्कोटि* (तीन करोड) *देवता* भी पुष्करिणी में डुबकी लेते हैं। इस अवसर पर पुष्करिणी स्नान अत्यंत महत्वपूर्ण और संपत्तिप्रदायक माना जाता है। इस उत्सव के लिए भी सामवै रानी ने उचित रूप से खेत आदि खरीद कर दान में दिया है।

लेख संख्या 8 और 9, रानी सामवै के समर्पणों का उल्लेख करते हैं। ये तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के अभिलेखों की पुस्तक ''एर्ली इन्स्क्रिप्शन्स'' में उल्लिखित हैं। ये उनके शासन के 14 वें वर्ष के हैं। उस समय के शासक कोप्पात्र महेन्द्र पेन्मार हैं। इनको को - पार्थवेन्द्रवर्मन भी माना गया है। इसके आधार मद्रास के रिपोर्ट हैं। उनके आधार पर माना गया है कि इन्होंने नार्थ आर्कट और चेंगल्पट्टु जिलों पर शासन किया है। (डेवलोप. एक्स. रिपोर्ट्स पृ.100-101)। लेकिन यह निर्धारण कुछ अनुचित ही लगता है।

''कोप्पात्र - महेन्द्र - पन्मार'' एक बडा समासिक नाम है। उनका संक्षिप्त नाम 'महेन्द्र पन्मार' हो सकता है। वही 'महेन्द्र वर्मार' भी हो सकता है। लेकिन इस नाम के साथ के 'को' और 'पत्र' में से 'को' का अर्थ 'राजा' हो सकता है लेकिन 'पत्र' अशोधनीय ही है। यह पहचान के परे की बात है। नाम को लेख में जोडने में कोई गलती हुई होगी।

5 वीं सदी और उसके पश्चात् के आरंभिक पल्लवराजाओं के नाम अभिलेखों में राजा सिंहवार्मा से लेकर मिलते हैं। नेल्लूर, नार्थ आर्काट (आजकल के चित्तूर और वेल्लूर जिले मिलकर), चेंगलपट्टु जिलों के शिला - लेखों द्वारा ये नाम मिलते हैं। अनुदानों में 'उरवपल्लि' गाँव का अनुदान सिंहवर्मा के शासन के 11 वें वर्ष में (सन् 486) कंदुकूरु के भगवान विष्णुहर को, चारुदेवी का अनुदान दालूरु मंदिर को (दोनों मंदिर नेल्लूरु जिले में हैं) दिये गये हैं। महेन्द्रवाडी और मंडगप्पट्टु शिला लेख नार्थ आर्काट जिले के और कांज़ीवरम् लेख चेंगलपट्टु जिले के हैं। इससे निष्कर्ष निकलता है कि लेख संख्या 8 और 9 (खण्ड I) महेन्द्रवर्मान - I के समय (सन् 600-630) के हैं। इसमें संदेह की बात नहीं रह जाती।

वैसे तो रानी सामवै पल्लव राजकुमारी हैं। उनका नाम *काडवन* (पल्लव) *पेरुंदेवी* भी है। ये शक्ति विकटन की सहधर्मचारिणी हैं। शक्ति विकटन का एक और नाम श्री कडपट्टिगै है। सामवै पल्लवप्पेरकडैयर की पुत्री हैं। ये पल्लवों के मंत्री और सामंत राजा थे। राजा महेन्द्रवर्मा भी पल्लव राजा थे। उनके समय में पल्लवों का राज्य उत्कर्ष पर था।

महेन्द्रवर्मा के 14 वें शासन वर्ष का उल्लेख होने के कारण लेख सं. 8 और 9 महेन्द्रवर्मा - I के ही माने जा सकते हैं। उन्होंने 30 वर्षों के लिए शासन किया था (सन् 600-630)। ये महेन्द्रवर्मा - II हो नहीं सकते। क्योंकि इन्होंने (महेन्द्रवर्मा II) केवल दो वर्षों के लिए शासन किया (सन् 668-670)। रानी सामवै से भगवान की चाँदी की मूर्ति (मनवाल पेरुमाल) सन् 614 में ही बनवायी गयी होगी। यही श्रीवेङ्कटेश्वर की विराट मूर्ति की प्रतिमूर्ति के रूप में बनी पहली छोटी मूर्ति कही जा सकती है। यह मूर्ति सिर से पैर तक (आकंठ) आभूषणों से मण्डित मूर्ति है। इनमें दो *बाहुवलयम्* (बाजूबंद), चार *तिरुच्चंदम्* (हाथ के आभूषण), *शंख, चक्र, श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि* और *वैजयंती* हैं। (ये आज अप्राप्य आभूषण हैं।) चाँदी की मूर्ति *मणवालप्पेरुमाल* मूल विराट मूर्ति *(मूल बेरम्)* की छाप ही है, समान आकृति की ही है। सामवै ने इसे *उत्सव बेरम्* के रूप में ही बनवाया होगा। उन्होंने इस मूर्ति में *शंख, चक्र* और अन्य चिह्नों को अवश्य रखवाया नहीं हो। इनके न होने से यही स्पष्ट होता है कि श्रीवेङ्कटेश्वर के हाथों में विष्णु के चिह्न पहले नहीं थे। उस समय वेङ्कटेश्वर को लोगों ने (भक्तों ने) विष्णु का अवतार नहीं माना होगा। यह भी एक कारण हो सकता है कि आगे के पुराणों में श्रीवेङ्कटेश्वर द्वारा तोंडमान को शंख और चक्र देने की बात उल्लिखित हुई है। तोंडमान को युद्ध के समय विष्णु के द्वारा *शंख* और *चक्र* देने और स्वयं वसुदास के पक्ष में जाने की गाथा है। बाद में कुम्हार भीम के सपत्नीक *विमान* में वैकुण्ठ गमन के पश्चात् (पृ. 93, 94) ये *शंख* और *चक्र* तोंडमान द्वारा वापस हुए है। (भविष्योत्तर पुराण)। सामवै ने चाँदी की मूर्ति और अखण्ड ज्योति का प्रावधान कराया है। इससे यह भी विदित होता है कि 7 वीं सदी तक भगवान वेङ्कटेश्वर के लिए उत्सव विधान नहीं था। जमीन आदि के अनुदान से ही उत्सवों का आरंभ हुआ है।

सन् 800 के पल्लव राजा विजय दंतिविक्रमवर्मा के 51 वीं शासन वर्ष में अखण्ड ज्योति के लिए 30 *कलंजु* सुवर्ण दान का भी उल्लेख मिलता है। यह लेख सं. 1, खण्ड I में है। यह दान शोलनूर के उलगप्पेरुमानार द्वारा समर्पित है। यह *''तिरुविलंकोयिल्* - पेरुमानडिगल्'' के सामने हुआ है। ये ''तिरुवेङ्कटत्तु - एमपेरुमानडिगलुक्कु - एलुंडरुलुविट्ट'' की प्रतिकृति (रेप्लिका) है। तिरुच्चोगिनूर की अनुशासन समिति (एडमिनिष्ट्रेशन असेंब्ली) ने इस अनुदान को स्वीकार किया है। उस अनुदान से जमीन खरीदकर उससे मिलनेवाली आमदनी से वेङ्कटेश्वर भगवान के आनंदनिलय में अखण्ड ज्योति की व्यवस्था हुई है। यही दाता (तिरुविलक्कु वैप्पित्तोम) की इच्छा थी और उसी प्रकार की व्यवस्था की गयी। प्राप्त लेख में उलगप्पेरुमानार की सेवा में ज्योति का नाम ही है। प्रतिकृति (रेप्लिका) कब स्थापित हुई है, इसका जिक्र नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय तक ज्योति की व्यवस्था नहीं थी। उलगप्पेरुमानार ने इस सेवा की व्यवस्था की है। सामवाय द्वारा अनुदान में प्रतिष्ठित मूर्ति के साथ अखण्ड ज्योति की व्यवस्था भी थी। इसलिए उस मूर्ति के लिए ज्योति प्रदान की आवश्यकता नहीं रही होगी। यह माना जा सकता है कि तिरुविलंकोयिल (सं.I) एक और नयी मूर्ति होगी। शायद सन् 830 से पहले उसे प्रतिष्ठित किया गया हो।

[[लेख सं. 1 और 4 (खण्ड-I) के शब्द तिरुच्चुगुनूर के तथ्यों से जुडकर इस प्रकार हैं -

''तिरुवेङ्कटक् - कोट्टत्तुक - कुडवूर - नाट्टुत् -
तिरुच्चोगिनूत् - तिरुवेङ्कटत्तु एमपेरुमान - ओडिगलुक्कु
एलुंदरुलुविट्ट तिरुविलंकोयिर पेरुमांनडिगलुक्कुच् -
चोल - नाट्टुच् - चोलनूर उलगप्पेरुमानार''

इसमें ''तिरुच्चोगिनूर'' और ''तिरुवेङ्कटत्तु एमपेरुमानडिगलुक्कु'' का सान्निध्य (सं. I)

और

''... कोयिर - पेरुमानडिगलुक्कुम् तिरुमंतिर
शाल प्पेरुमानडिगलुक्कुम तिरुवेङ्कटत्तुप् -
पेरुमानडिगलुक्कुम्...'' (सं.4)

इनसे कुछ लेखकों ने अनुमान लगाया है कि प्रतिकृतियाँ (रेप्लिकास्) अथवा प्रतिरूपात्मक मूर्तियाँ श्रीवेङ्कटेश्वर की हैं जो वेङ्कटाद्रि या तिरुवेंगडम् में रहते हैं। उन्हीं को समर्पित और उन्हीं के यहाँ प्रतिष्ठित हैं। ''तिरुवेलंकोयिल्'' में प्रतिष्टित ये मूर्तियाँ तिरुच्चोगिनूरु (तिरुचानूर) में निर्मित मंदिर की हैं।]]

उक्त बातें प्रधानत : श्री टी.के.टी. वीरराघवाचार्य की पुस्तक ''हिस्टरी ऑफ तिरुपति'' (खण्ड I) की हैं। डा.एम. रामाराव ने अपनी ''बुकलेट'' ''टेंपुल्स ऑफ तिरुमल, तिरुपति अण्ड तिरुचानूरु'' में अनेक मूर्तियों की शिल्पकला की विशेषताओं को रेखाचित्रित किया है। उनमें निहित प्रतिमा - विज्ञान के आधार पर मूर्तियों की विशिष्टताएँ भी रेखांकित की हैं। उनका निश्चित परिशीलन उसमें द्रष्टव्य है।

श्री वीरराघवाचार्य द्वारा तिरुचानूर की पुरालेखों पर व्याख्याएँ और निर्णय कुछ इस प्रकार हैं - ''यथार्थ में तिरुवेंगडम् मंदिर का इतिहास पहाड से आरंभ नहीं होता है। तिरुचानूर नामक गाँव से आरंभ होता है... यह पहाड से लगभग 10 मील की दूरी पर स्थित है।'' (पृ. 80-81).

''तिरुमल मंदिर पवित्र तो है, लेकिन मुख्य नहीं माना गया। इसी कारण से हो सकता है कि तिरुविलंकोयिल तिरुचानूर में या वेङ्कटेश्वर का मंदिर तिरुमुक्कुडल्। यह आरंभिक दिनों की बात है।'' (पृ. 53)

''यह इसलिए कि तिरुवेंगडम् उडयन जो पर्वत पर हैं, बहु संख्यक भक्तों के लिए सुलभ साध्य नहीं थे। इसीलिए शायद कुछ आलवारों के कहने पर एक तिरुविलंकोयिल की स्थापना तिरुचानूर में हुई होगी। यह पल्लव राजाओं के शासन के 51 वें वर्ष में हुआ होगा। पल्लव राजा विजयदंडि विक्रम वर्मा द्वारा एक अखण्ड ज्योति का भी दान प्रदान किया गया। इसका समय सन् 816 है।'' (पृ.97) ''वहाँ (तिरुचानूर) के मंदिर से संबन्धित आठ शिला लेख हैं, जो उस मंदिर की सूचनाएँ देते हैं। वह मंदिर है तिरुच्चोकिनूर तिरुवेङ्कटत्तुप्पेरुमानडिगल का। (सं. 1, 2, 4, 5... वाल्यूम I, पृ.107)।''

''तिरुच्चोकिनूर का प्राचीनतम शिलालेख तैयार हुआ है कोविजय डंटिविक्रमार के शासन के 51 वें वर्ष में। इसे हम सन् 826 का मानते हैं। यह शिलालेख हमें स्पष्टतः बताता है कि तिरुवेंगडत्तुप्पेरुमानडिगल का प्रतिरूप तिरुबिलंकोयिल में तिरुच्चोकिनूर में रहा है। ''तिरुच्चोकिनूर तिरुवेङ्कटत्तु एमपेरुमानडिगलुक्कु एलुंडरुलिविट्ट तिरुविलंकोयिल पेरुमानडिगलुक्कु...'' तमिल भाषा का यह दीर्घ पदबन्ध यह स्पष्ट करता है कि 'तिरुच्चोकिनूर तिरुवेंगडत्तु पेरुमानडिगल' वहाँ थे और तिरुविलनकोयिल - पेरुमान भी एक लघु *मूर्ति* (या उत्सव मूर्ति) के रूप में व्यवस्थित थे। ... यहाँ ध्यान देने की मुख्य बात है कि तिरुविलनकोयिल (या प्रतिकृति मंदिर - प्राक्सी टेंपुल) तिरुवेंगडम् मूर्ति के लिए बनाया गया है और प्रतिकृति देव की स्थापना (एलंदरुलि - विट्ट)... सामान्य भक्तों के लिए है।'' (यह शिला लेख पृ. 80 में स्पष्ट है।) ''तिरुच्चोकिनूर तिरुवेंगडत्तुप्पेरुमानाडिगल शब्द ही यह सूचित करता है कि वह मूर्ति मूल देवता की नहीं है जो वेंगडम् पर्वत पर है। वह उनकी प्रतिकृति मात्र है। तिरुवेंगडत्तुप्पेरुमान के मंदिर अन्यत्र भी है। तिरुच्चोकिनूर में पहले *मूल विराट* की प्रतिष्ठा हुई होगी और बाद में उत्सव मूर्ति जो कि शिलालेख में

बतायी गयी है। सोलानाट्टु उलगप्पेरुमानर ने सुवर्ण दान अखण्ड ज्योति के लिए किया होगा। यह अखण्ड ज्योति तिरुविलंकोयिल पेरुमानडिगल या *उत्सव मूर्ति* के लिए होगी। (पृ.109)

डॉ. एम. रामाराव ने अपनी पुस्तक ''टेंपुल्स ऑफ़ तिरुमल तिरुपति एण्ड तिरुचानूर'' में कहा है - ''दो लिखित प्रमाण हैं (I-1 और 2)। ये इस प्रान्त में प्रथम तीन पल्लव राजाओं से संबन्धित हैं। ये शिलालेख पल्लव राजाओं द्वारा वेंगडम् मंदिर को दिये गये उपहारों से संबन्धित नहीं है। बल्कि तिरुचानूर में स्थापित प्रतिकृति मंदिर को दत्त उपहार हैं।'' (पृ.5) ''प्राचीनतम शिलालेखों में उल्लिखित श्रीवेङ्कटेश्वर तिरुमल या वेङ्कडम् के वेङ्कटेश्वर नहीं, लेकिन तिरुचानूर के प्रतिकृति मंदिर के श्री वेङ्कटेश्वर (तिरुवेंगडमुडैयन) हैं (पृ.41)। ये चौथी सदी में प्रचार में आये हैं। 9 वीं सदी में ही तिरुचानूर में प्रतिकृति (प्राक्सी) मंदिर का निर्माण हुआ है। तिरुमल मंदिर का प्राचीनतम अभिलेख बाण राजकुमार विजयादित्य के जन्म का उल्लेख करता है। ये 9 वीं शती के पूर्व भाग में थे (I-3)। इस राजकुमार ने तिरुचानूर के श्रीवेङ्कटेश्वर को दान दिये थे (पृ.19)।

श्री विजयराघवाचार्य आगे स्पष्ट करते हैं कि ''इन दोनों *मूर्तियों (मूल मूर्ति और उत्सव मूर्ति)* के अलावा एक तीसरे का भी है तिरुमंत्रशालै पेरुमानडिगल् जिनको विजयादित्य ने उपहार दिये थे। ... इनमें प्रथम दो को स्थानीय देवता और तीसरे को तिरुवेंगडम् पर्वत पर विलसित देव कहा है'' (पृ.110)। ''वहाँ एक अतिरिक्त मंदिर का निर्माण हुआ है (तिरुचानूर में) और तिरुवेंगडमुडैयान की प्रतिकृति स्थापित की गयी। शैवों का वैष्णव धर्म में परिवर्तन (आंतरण) शायद इसी मूर्ति के सामने हुआ होगा। इसी उद्देश्य से प्रतिकृति रूपात्मक मूर्ति की स्थापना की गयी हो (पृ.106)।''

इसके समर्थन में डॉ. रामाराव ने आगे कहा है - ''यह (तिरुचानूर) प्रान्त वैष्णव धर्म के प्रभाव में आठवीं शती के प्रथम चरण में आया है। उस समय तक तिरुमल और श्रीवेङ्कटेश्वर के नाम प्रचार में थे। लेकिन सामान्य भक्तों की पहुँच से बाहर थे। तिरुचानूर के वैष्णवों ने *तिरुमंत्रशालै* की स्थापना की और नवदीक्षा प्रक्रिया (धर्मान्तरण क्रिया) जारी रखी। उन्होंने तिरुविलंकोयिल का निर्माण किया। श्रीवेङ्कटेश्वर का प्रतिकृति रूप प्रतिष्ठित किया। ये मूलविराट श्रीवेङ्कटेश्वर की प्रतिकृति ही है। तिरुचानूर समतल मैदान में रहनेवाला एक गाँव है। यहाँ श्रीवेङ्कटेश्वर की प्रतिकृत मूर्ति तीर्थयात्री भक्तों को आकर्षित करती रही। भक्तों ने इस मूर्ति के प्रति भक्ति - श्रद्धाएँ दिखाई। (पृ.67)। ''इस तिरुविलंकोयिल में प्रतिनिधि मूर्ति (प्रतिकृति मूर्ति) की स्थापना हुई। यह मूर्ति *तिरुवेङ्कटत्तुप्पेरुमानडिगल* या तिरुमल श्रीवेङ्कटेश्वर की प्रतिनिधि मूर्ति ही है। ...ख्याति प्राप्त बाण राजा विजयादित्य ने इसी भगवान को भूमि, कर, सुवर्ण, नैवेद्य आदि के लिए धन आदि उपहार दिये थे। ये ही *तिरुविलंकोयिल - पेरुमानडिगल, तिरुमंत्रशालै - पेरुमानडिगल* और *तिरुवेङ्कटत्तु - पेरुमानडिगल* हैं। (1-4)''

श्रीवेङ्कटराघवाचार्य अपनी अनुमानित अवधारणा को आगे बढते हुए कहते हैं - ''तिरुमंत्रशालै नाम यह सूचित करता है कि वह मंदिर या मूर्ति (जिसके सामने) यहाँ नया वैष्णव धर्म स्वीकृत या परिवर्तित व्यक्ति अष्टाक्षरी मंत्र या तिरुनाम जप में दीक्षित होता है। वह ऐसा स्थान भी है जहाँ नया दीक्षित व्यक्ति के लिए भोजन की व्यवस्था भी की गयी हो।'' (पृ.110) ''तिरुविलनकोयिल और तिरुमंत्रशालै का उल्लेख केवल आरंभिक काल में ही मिलता है, बाद में नहीं (पृ.111)।'' राजनैतिक परिस्थितियों में आये परिवर्तनों का प्रभाव अवश्य वेंगडम् पहाड पर मंदिर निर्माण पर पडा ही होगा। पल्लवों के समय में निर्मित मंदिर बाद के चोळ राजाओं द्वारा कुछ नष्ट भी किया गया होगा। क्योंकि बाद में कुछ समय तक शैव धर्म ने अपना सिक्का जमाया अवश्य है। ... वेंगडम् से दस मील की दूरी पर स्थित तिरुच्चुकनूर के मंदिर ने शिव मंदिर से कुछ संघर्ष अवश्य मोल लिया होगा और उसे तितर - बितर करने का प्रयास भी। इसी संदर्भ में एक चाँदी की छोटी मूर्ति या प्रतिकृति (रेप्लिका) मूल मूर्ति (*ध्रुवमूर्ति* या पेरिय पेरुमाल) की बनी होगी। बाद में परंपरा के अनुसार उसकी प्रतिष्ठा भी हो गयी हो। यह कार्य सन् 966 में एक महिला भक्तिन के हाथों संपन्न हुआ। वे ही सामवाय हैं। यह छोटी मूर्ति भक्तों की भावनाओं को पूरती रही होगी। इसीलिए इस मूर्ति को सर्व अलंकारों से विभूषित भी किया गया... (पृ.81)। ''पल्लवों के पतन और चोळ राजाओं के उत्थान से शैव धर्म पनपा था। वैष्णवों ने, जिनको तिरुवेंगडमुडैयन की आराधना मुख्य भी, स्थान को छोडकर उसके स्थान पर स्थानापन्न मूर्ति को तिरुच्चुगनूर तिरुविलनकोयिल से तिरुमल पर ले जाकर अर्चना की। चाहे कठिनाइयाँ क्यों न हो उन्होंने तिरुमल पर ही सांत्वना पायी। उनका लक्ष्य था कि किसी भी स्थिति में संघर्ष न हो। संघर्षों से दूर रहना उस समय उनका अभिमत था, विशेषकर तिरुच्चुकनूर के पराशरेश्वर मंदिर से संबंधित शैवमूर्तियों से। शायद यह भी एक प्रेरणा रही होगी सामवाय रानी के लिए। उन्होंने मणवालप्पेरुमाल *(भोगश्रीनिवास)* की मूर्ति की प्रतिष्ठा तिरुवेंगडम् मंदिर में की। यह सन् 966 में हुआ है। इसका एक और कारण भी संभवतः हो सकता है। तिरुविलन कोयिल पेरुमान, तिरुमंत्रशालै - पेरुमान और यहाँ तक कि तिरुवेंगडत्तुप्पेरुमानडिगल सब तिरुमल पेरुमाल (श्रीवेङ्कटेश्वर) की प्रतिकृतियाँ ही हो, लेकिन वैखानस आगम परंपरा के अनुसार बने न हो। लेकिन उसकी बहिन सदृश परंपरा पाँचरात्र परंपरा के अनुसार बनी और प्रतिष्ठित हों। ...इसलिए भय था कि तिरुमल और तिरुच्चुकनूर के मंदिरों के बीच आगे चलकर कभी वैमनस्य उभरें। इसीलिए निर्णय हुआ होगा कि श्रीवेङ्कटेश्वर के सभी कार्यों का निर्वाह केन्द्र तिरुमल ही रहे। एक समस्या अवश्य थी जो *ध्रुवमूर्ति* के नित्य *अभिषेकम्* को लेकर थी। *ध्रुव मूर्ति* विशाल है। इसीलिए चाँदी की प्रतिकृति बनी। भोग श्रीनिवास के रूप में तिरुमल पर विलसित हुए। संभावित कठिनाइयों को पार भी किया गया।'' (पृ.355-356) ''तीर्थयात्रियों को यात्रा संबन्धी कठिनाइयाँ अधिक हो गयीं। सन् 966 से पहले तीर्थयात्री तिरुच्चुकुनूर से दस मील की दूरी तय करने

के बाद वहाँ आस पास स्थित देवताओं की पूजाओं से ही संतुष्ट हो जाते थे। पर्वत पर चढते ही नहीं थे। *चाँदी* की मूर्ति की प्रतिष्ठा के बाद भक्त यात्रियों के लिए पर्वत पर चढना अनिवार्य ही हो गया (पृ. 357)'' ''पहली बार हम चमक उठते हैं, जब हमें यह समाचार मिलता कि वेंगडम् पर्वत पर सन् 935 में भी अखण्ड ज्योति जलती ही रही। (समाचार मिलता है शिलालेख सं 8 और 9 से, खण्ड I) तिरुच्चुकनूर के सभैयार ने इस सबका कर्तव्य निभाया है'' (पृ.116)।

उक्त दोनों विद्वानों की दृष्टियाँ और अनुमानों से लगायी गयीं बाते तथ्यों पर खरी नहीं उतरती हैं। ये दूरान्वय से जुडे अनुमान हैं। श्री राघवाचार्य जी ने यह निर्द्वंद्व रूप से स्पष्ट नहीं किया है कि चार प्रतिकृतियों में से दो ही श्रीवेङ्कटेश्वर के 'पंचबेरम' के अंतर्गत कैसे स्वीकृत हैं। वे ही श्रीवेङ्कटेश्वर के मंदिर में प्रवेश कैसे कर गयीं, स्थापित हो गयीं। उन्होंने सामवाय द्वारा प्रस्तुत मणवालप्पेरुमाल को, भोग - श्रीनिवास को, तो स्वीकार किया, लेकिन एक और मूर्ति को जो दोनों देवेरियों के साथ हैं, जो पहाड की एक घाटी में मिली थी, केवल उत्सव विग्रह मूर्ति मानी है। इतना ही नहीं तिरुचानूर में प्रतिष्ठित अन्य मूर्तियों की स्थिति के संदर्भ में एक प्रकार का मौन है। उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि वैष्णवों के कार्य-कलाप तिरुचानूर से तिरुमल पहुँचने के बाद बाकी प्रतिकृति मूर्तियों के बारे में क्यों कुछ भी पता नहीं है। इसके अलावा उनकी एक घोषणा है - 'प्रथम दो स्थानीय देवता मूर्तियाँ हैं और अंतिम तिरुवेंगडम् देव से संबन्धित है।' (पृ.110) यह उनके द्वारा दिये गये अन्य कथनों से मेल नहीं खाता। कथन है (पृ.355) - ''तिरुविलनकोयिल - पेरुमान, तिरुमंत्रशालै पेरुमान और यहाँ तक कि तिरुवेंगडत्तुप्पेरुमानडिगल जो तिरुच्चुकनूर में थे सब पहाड पर स्थित देव की प्रतिकृतियाँ ही हैं।''

यहाँ एक और सत्य है। उस समय आज की तरह यातायात की सुविधाएँ नहीं थीं। यात्रा के लिए बैलगाडी का उपयोग करना था। उसके लिए अपनी सामर्थ्य और शक्ति का अंदाजा भी लगाना है। क्योंकि उस समय मार्ग कठिन और घने जंगल का मार्ग था। प्राणों के लिए खतरा भी था। इन सबके बीच भक्त को, यात्री को, निर्णय लेना है। ऐसे यात्री भक्त प्रतिकृति मूर्ति के *दर्शन* मात्र से तृप्त नहीं हो सकते। तिरुचानूर में तो केवल प्रतिकृति मूर्तियों की बात ही है। समय, धन और कठिनाइयों को झेलना आदि के बाद भक्त सिर्फ प्रतिकृति मूर्ति दर्शन से संतुष्ट कैसे हो सकता है? वह तो पर्वत शिखर पर पहुँचकर मूल मूर्ति, *ध्रुव मूर्ति,* के दर्शन के लिए अवश्य लालाइत होगा। इसी से भक्त को तुष्टि और संतुष्टि मिलती है न। श्री वेङ्कटेश्वर तो भक्तों के हृदयेश्वर ही हैं। भोग - श्रीनिवास के दर्शन मात्र से वह आनंद भक्त को नहीं मिलेगा। इस की भूमिका में दो या तीन प्रतिकृतियाँ, अगर तिरुचानूर में रहीं भी हो, भक्तों के मन की तृप्ति उनके दर्शन मात्र से हुई होगी, यह समझना ठीक नहीं लगता। क्योंकि वे प्रतिकृतियाँ मात्र हैं, मूल विराट मूर्ति नहीं हैं। यात्रा मार्ग में अगर प्रतिकृतियाँ हो तो उनका दर्शन भी भक्त अवश्य करता है।

कुछ प्राचीन शिलालेख तिरुचानूर में अवश्य तैयार किये गये होंगे। तिरुचानूर का राजनैतिक कार्यक्रमों का केन्द्र होना इसका प्रधान कारण है। *स्थानीय सभा* या समिति द्वारा उस समय सभी कार्य - कलापों का निर्वाह होता रहा होगा। प्रधानतः तिरुमल वेङ्कटेश्वर मंदिर के कार्य यहाँ से निर्वहित होते होंगे। कोष और भण्डार यहाँ अवश्य रहे होंगे। यहाँ से नैवेद्य के लिए आवश्यक सामग्री, घी आदि समय - समय पर अधिकारियों के पर्यवेक्षण में रहे होंगे। शायद प्राँतीय क्षेत्र पालक ने यहाँ निर्मित सभा भवन में (तिरुचानूर में) आवश्यक सभा का निर्वाह किया होगा। यहाँ *देवदान* लिया जाता होगा। इसके संकेत मिलते हैं - ('देवार *देवदानम्* तिरुच्चुकनूर नाम विट्टविट्टिल मुंबु' खण्ड I, सं. 19 और 34)। सब लेखा - जोखा यहीं से होते भी होंगे। राजा स्वयं भी यहाँ दरबार चलाते होंगे। तिप्पलाडीश्वर मंदिर में एक दरबारी समावेश मंदिर है। यह मंदिर तिरुचानूर में है। (खण्ड I, सं. 36)। श्री वीरराघवाचार्य ने स्वीकार किया है कि ''तिरुच्चुकुनूर के सभायार का कर्तव्य था उसके (श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर के) व्यवहारों को देखना।'' (पृ.116)

डॉ. रामाराव कहते हैं - ''तिरुचानूर में तिरुविलनकोयिल के स्थान का पता लगाना अब संभव नहीं है। अधिकतर शिलालेख, जिनका उल्लेख पहले किया गया है, पद्मावती मंदिर के पडिकावलि गोपुर और वाहनमंटप में पाये गये हैं। अब केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है कि तिरुविलनकोयिल आज पद्मावती के मंदिर में स्थित तीन मंदिरों में एक हो। शायद उसे उपेक्षा और अनादर की भावना से देखने के कारण शिथिल हो गया हो। उस शिथिल मंदिर की सामग्री को आज स्थित तीन मंदिरों के निर्माण के लिए उपयोग में लाया गया होगा। ये मंदिर आज आलय प्रागण में हैं।'' (पृ.70)

शक संवत्सर 820 के एक टूटे शिलालेख में (खण्ड I, सं. 7) दर्ज है कि गाँव से प्राप्त आमदनी को ''तिरुवि...'' के लिए खर्च किया गया हो। इसमें मिला शब्दांश ''तिरुवि...'' *'तिरुविलनकोयिल'* ही हो सकता है। यही हो तो शक संवत 820 (सन् 898) में तिरुविलनकोयिल यहाँ रहा होगा। लेकिन उसमें किसी देवता की मूर्ति की प्रतिष्टा की बात उल्लिखित नहीं है अथवा आगे के शिलालेख या अन्य सूत्रों में भी, 13 वीं शती तक मिले सूत्रों में, कोई संकेत इस संबन्ध में नहीं मिलते (खण्ड I, सं. 40)। राजराज चोळ III के समय में, उनके 19 वें शासन वर्ष में, सन् 1235 में, अलगियपेरुमाल (सुंदर देव, सुंदरराजस्वामी) के मंदिर का उल्लेख मिलता है - सं. 34 में तारीख 5, या 15 या 25 (वर्ष 1221, 1231 या 1241 ई.) शासन वर्ष में भूमि अनुदान राजराज III द्वारा होने की बात है। यह पुरानी भूमि दान की सूचना है। खण्ड I के 97, 118, 119, 120, 137 और 144 शिलालेख सूचनाएँ भी मिलती हैं। उनमें तिरुविलनकोयिल, तिरुविलनकोयिल पेरुमानडिगल, अलगिय और पंगुनि के उल्लेख हैं जिनसे तिरुचानूर में अलगियपेरुमाल की मूर्ति होने की सूचना मिलती है। उनको प्रसाद और उत्सव के लिए कुछ कर समर्पित हुए हैं। यह उत्सव *पंगुनी* मास में होता था।''

फसली 1227 (सन् 1818) में तैयार किये गये 'पैमायिसी लेखा' के अनुसार अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी ने उक्त तीनों मंदिरों को अपने अधीन में लिया। उनकी देख - रेख और अनुशासन व्यवस्था तालूका *शिरस्तिदार* को सौंपी गयी। अलब्दु गोविंद राव को यह भार 14-8-1819 में सौंपा गया। श्री पद्मावती अम्मा की मूर्ति का विवरण भी उसमें मिलता है। उसमें चिरतानूरु (आज प्रसिद्ध प्राप्त नाम है तिरुचानूर तथा पूर्व नाम तिरुच्चुकनूर है।) नाम मिलता है। उस समय तक मंदिर में श्रीपद्मावती माता की मूर्ति की प्रतिष्ठा हो गयी थी। उनके चार हाथ हैं। पद्मासन मुद्रा में विलसित मूर्ति हैं। 10 उत्सव मूर्तियाँ थीं। उनमें तीन अलग - तिरुवेंगडनाथ स्वामी की प्रतिकृतियाँ हैं जिनमें दो नाच्यारु (देवियों) के भी हैं। एक गज की दूरी पर, पद्मावती देवी की मूर्ति की दक्षिण दिशा में, श्री कृष्णस्वामी की बैठी हुई मुद्रा में एक मूर्ति है। उनकी पूर्व दिशा में उनके बडे भाई बलभद्र स्वामी भी हैं। ये उत्तर दिशोन्मुख हैं। श्रीकृष्ण की मूर्ति की दक्षिण दिशा में अलग - तिरुवेंगडनाथस्वामी *पूजा* के बिना हैं। ये ही वेंगडम् (वेङ्कटाद्रि) के वेङ्कटेश्वर हैं। लगता है कि समय के गुजरते - गुजरते वे ही अलगिय - पेरुमाल तिरुवेंगलनाथस्वामी कहलाये गये। इसी मूर्ति को ही अलग - तिरुवेंगलनाथ स्वामी की *मूल - मूर्ति* और विशेषताओं से युक्त कहा गया है। बाद में एक नयी मूर्ति को बनाकर स्थापित किया गया। यह इस शती के आरंभ में हुआ है। इसके 'विचारणकर्ता' स्वर्गीय श्रीमहन्त प्रयागदास हैं। इसकी प्रतिष्ठा के बाद ही नित्यपूजा का आरंभ हुआ। इस भगवान को सुंदरराज स्वामी कहा गया है। तीन प्रतिकृति उत्सव मूर्तियाँ, इस भगवान की, भेंट की गयीं। वरदराज या अलग तिरुवेंगल की मूर्तियाँ श्रीपद्मावती के मंदिर से स्वीकृत हैं।

''पैमायिशी एकाउण्ट'', जो उस समय का है, स्पष्ट करता है कि उस समय ग्रानैट पत्थर का एक बडा मंदिर था। वह वरदराजस्वामी का मंदिर था। उस मंदिर में *पूजादि* कार्यकलाप नहीं होते थे। वह तिरुचानूर की पूर्व दिशा में था। पश्चिमाभिमुखी था। इसका निर्माण विजयनगर राजा अच्युतराय ने किया था। एक बडी या विशाल मूर्ति इसमें थी। शायद यह मूर्ति वरदराजस्वामी की देवेरी पेरुंदेवम्मा की मूर्ति होगी। इस मंदिर की प्राहर दीवारी की पूर्व और पश्चिम की नाप 327 फुट और उत्तर - दक्षिण की नाप 177 फुट की थी। प्रवेश द्वार पर *गोपुर पाँच मंजिलों* का था। उसकी पाकशाला के पत्थर ढहाये गये। उन पत्थरों से *गर्भालय, अंतरालम्,* तीसरी *मंजिल, स्नपनमंटप, आस्थानमंटप, रंगमंटप* आदि का निर्माण (पद्मावती के मंदिर के) संपन्न हुआ होगा।

इससे विदित होता है कि उस मंदिर से निकाले गये कुछ शिलालेख युक्त पत्थर आज के पद्मावती मंदिर के *वाहन मंटप* निर्माण के लिए और कुछ उत्तर - पूर्व दिशा में निर्मित मंच के लिए उपयोग में लाये गये हैं। ये सब वरदराज मंदिर के पत्थर ही हैं। यह मंदिर अब नहीं है। कुछ शिलालेख युक्त पत्थर पुरवासियों से अपने मकानों के निर्माण के लिए भी लिये गये हैं।

इतने पर भी *तिरुविलंकोयिल* के संबन्ध में किसी प्रकार की जानकारी नहीं मिली है। वह कहाँ था और उसके देवता कौन हैं - यह मालूम ही नहीं हो पाया है। शायद यह तिरुचानूर की पूर्व दिशा में रहा होगा। शायद उसी जगह पर वरदराज का मंदिर निर्मित हुआ हो। उसी जगह पर अच्युतराय ने मंदिर का निर्माण किया हो, उस समय के अधिकारियों या अन्यों से संकेत लेकर।

''*पैमायिशी* एकाउण्ट'' में यह स्पष्ट नहीं है कि कब आज के मंदिर में स्थित पद्मावती, कृष्ण और अलग - तिरुवेंगडनाथ की मूर्तियाँ स्थापित हुई हैं। स्पष्टतः यह स्वीकार किया जा सकता है कि कृष्ण की मूर्ति पहले स्थापित हुई है क्योंकि यह मूर्ति मंदिर के बीच हैं। प्राहरी गोपुर की स्थिति भी केन्द्रीय है। पद्मावती देवी की मूर्ति बाद में स्थापित (प्रतिष्ठित) हुई होगी। यह मूर्ति कृष्ण मूर्ति की कुछ उत्तर दिशा में है। ''पैमायिशी एकाउण्ट'' की सूचनाएँ बडों से पायी सूचनाएँ लगती हैं। ये बडों की स्मृतियों के आधार पर संगृहीत लगती हैं। कुछ परंपराओं का फुट भी इनमें मिलता है। संभव है कि श्रीपद्मावती की मूर्ति कुछ दशाब्दियों बाद प्रतिष्ठित हुई हो, शायद 18 वीं शती के पूर्वार्द्ध में स्थापित हुई होगी या उससे पहले 17 वीं शती के उत्तरार्द्ध में। कृष्ण और पद्मावती के बारे में 17 वीं शती के किसी शिलालेख में किसी प्रकार की सूचना नहीं है।

तिरुच्चुकनूर, शुकपुरी, शुकग्राम आदि नामों का संबन्ध महर्षि शुक से जोडा जाता है। कहा जाता है कि उन्होंने यहाँ श्रीकृष्ण की उपासना की है। यहाँ उन्होंने 108 शिष्यों को शिक्षा दी है, मार्गदर्शन किया। उन्हें योगी बनाया। इतना होने पर भी उनकी मूर्ति या शिला चित्र तिरुचानूर में कहीं नहीं है। उनकी मूर्ति पराशरेश्वर मंदिर में ही प्राप्त होती है। शुक महर्षि ने पराशर की आराधना की थी। उनके पितामह पराशर ने ही पराशरेश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा की है, मंदिर निर्माण के साथ। अतः यह युक्तियुक्त है कि योगिमल्लारम को ही शुकयोगि के नामपर शुकपुरि कहा गया हो। शुकग्राम या तिरुच्चुकनूर वही हो सकता है, न कि आज का तिरुचानूर।

विजयादित्य महावली बाणराय द्वारा ''तिरुविलंकोयिल - पेरुमानडगल'' ''तिरुमंत्रशालै - पेरुमानडिगल'' और ''तिरुवेङ्कटत्तुप्पेरुमानडिगल'' तीनों के लिए समान रूप से एक साथ कुछ कलंजु दान और क्षेत्र दान की सूचना खण्ड I सं. 4 से मिलती है। तीनों देवताओं में 'तिरुविलनकोयिल - पेरुमानडिगल' ही प्रधान मूर्ति लगते हैं जिनके लिए अखण्ड ज्योति का भी प्रवधान किया गया है, उलगप्पेरुमनार द्वारा (शिलालेख-1)। इसलिए बाण राजा ने नैवेद्य का प्रवधान किया है। दूसरी मूर्ति तिरुमंत्रशाल - पेरिमानडिगल की है। यह नयी है और कुछ धार्मिक क्रतुओं आदि के लिए रूपायित है विशेषकर उत्सवों आदि के लिए। तीसरी मूर्ति श्रीवेङ्कटेश्वर की है। इस मूर्ति के बारे में, मूर्ति स्थापन के बारे में शिलालेख 1 या 4 में किसी प्रकार के संकेत नहीं हैं। नैवेद्य आदि सबका प्रवधान समवेत रूप में बाण राजा विजयादित्य से किया गया है इसलिए यह माना जा सकता है कि तीनों मूर्तियाँ एक ही जगह

पर रही हो, श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में। प्रथम दोनों चल मूर्तियाँ है जबकि वेङ्कटेश्वर अचल (स्थिर रूप से स्थापित) हैं। इसलिए इन दोनों मूर्तियों को उपयुक्त अवसरों के लिए जगह जगह पर ले जाते थे। विजयादित्य पल्लव राजा, विजयदंडि, विक्रमवर्मा के सामंत थे। लेकिन इनके राज्य सत्ता का उल्लेख दो बाण राजा के शिलालेखों में (सं. 3 और 4) नहीं है। हो सकता है कि उन्होंने बाद में नैवेद्य संबन्धी अनुदान दिया हो।

उक्त विवरणों से विदित होता है कि 9 वीं शती के प्रथमार्द्ध तक श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के साथ आनंदनिलय में तीन और प्रतिकृति मूर्तियाँ थीं - यथा सामवाय द्वारा समर्पित मणवालप्पेरुमाल की चाँदी की मूर्ति सन् 614 की, तिरुविलनकोयिल - पेरुमानडिगल (सं.1) और तिरुमंतिरशाल पेरुमानडिगल (सं.4)। इनमें प्रथम पूर्णतः मूल विराट मूर्ति की हू-ब-हू प्रतिमूर्ति है। बाकी विष्णुमूर्ति की विशिष्टताओं की धीमी रेखाओं में अंकित हैं। सभी मूर्तियाँ देवेरियों से रहित हैं। अर्थात् श्रीदेवी और भूदेवी से युक्त नहीं हैं।

''तिरुविलनकोयिल'' जिसमें उक्त तीन मूर्तियों के रखे जाने की बात की गयी है, नया मंदिर नहीं मना जा सकता। हमारी दृष्टि में ऐसे मंदिर के होने के प्रमाण नहीं मिलते हैं। पहले का *अर्द्धमंटप* आज का *सयन मंटप* ही हो सकता है। नयी मूर्तियाँ, जिनका उल्लेख किया गया है, उनका एक छोटा स्थान है। इसलिए यही समझा जा सकता है कि नयी मूर्तियाँ आनंद मंडप में ही कहीं रखी गयीं हो। या माना जा सकता है कि पूरा आनंद मंटप ही ''तिरुविलनकोयिल'' नाम से अभिहित किया गया हो। यह इन नयी मूर्तियों के आने के कारण ही हुआ हो।

'पंचबेरम' या श्रीवेङ्कटेश्वर की पाँच प्रतिकृतियाँ हैं। इनके बारे में विश्वास है कि जब ब्रह्मा ने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए उत्सवों का आरंभ किया तभी स्वयं भगवान ने अपने चार और प्रतिरूपों का सृजन किया। परन्तु हैं ये सन् 9 वीं शती के बाद ही की। पंचमबेरम् मलैकिनियान्न - पेरुमाल या मलयप्पा ने अपने स्वरूप में मूर्तिमान होने के लिए कुछ अधिक समय लिया है। ईसा के बाद 14 वीं शती में ही स्वामी शंख, चक्र और देवेरियों के साथ विलसित हुए हैं। विष्णु रूप और वैष्णव परंपरा की आराधना, वैष्णव शिल्प आदि रामानुजाचार्य और उनके अनुयायियों द्वारा 12 वीं और 13 वीं शतियों में आरंभ हुए हैं।

मलयप्पा स्वामी और उनकी दोनों देवेरियों की ताम्र मूर्तियाँ उत्सव मूर्तियों के रूप में (खण्ड I, सं. 104) श्रीरंगनाथ यादव राजा के समय में (सन् 1339) आयी हैं। इसमें ''नाच्चियार उनके साथ बैठी...'' पंक्ति मिलती हैं (नाच्चियार सीटेड एलांग विथ...)। मलयप्पा का नाम शिथिल अंश में हो सकता है। लेकिन ''मलैकिनियनिन्न - पेरुमाल और नाच्चियार'' का स्पष्ट नाम रूप सं. 106 में मिलता है। यह

शायद 19 वीं सदी के आरंभ का शिलालेख है। यादवराजा के 20 वें शासन वर्ष (सन् 1356) का यह है। मलैकिनियान्न - पेरुमाल की नयी उत्सव मूर्ति का वेङ्कटाद्रि पर्वत की एक अथाह तराई से प्राप्त होना एक गाथा के रूप में प्रसिद्ध है। मलैक्कु - इनयनिन्न - पेरुमाल जो आगे के लेखो में मलयप्पा कहे गये हैं, श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान ही हैं। ये ही वेङ्कटाद्रि के स्वामी हैं।

मलयप्पा स्वामी और उनकी दोनों देवेरियों की मूर्तियों का प्रवेश जब तक उत्सवों में नहीं हुआ तब तक मणवालप्पेरुमाल की चाँदी की मूर्ति का ही उपयोग उत्सवों में हुआ होगा। यह मूर्ति सामवाय द्वारा पुरट्टासि और मार्गली महीनों के उत्सवों के लिए समर्पित मूर्ति ही है। उस समय तक भगवान की एक ही मूर्ति उत्सव मूर्ति थी। तीन उत्सव मूर्तियों के समय से भगवान की और मूर्तियों का आविष्कार हो गया हो - (1) कौतुक बेरम् (भोग मूर्ति) (2) तिरुविलनकोयिल - पेरुमानडिगल (बलिबेरम, कोलुवु मूर्ति, कोलुवु श्रीनिवास या लेखक श्रीनिवास) (3) तिरुमन्त्रशालै- पेरुमानडिगल - स्नपन बेरम् या उग्र - श्रीनिवास। (पृ.97)

भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के साथ आनंद निलय में तीन और मूर्तियाँ भी हैं - श्रीराम, लक्ष्मण और सीता की। इनका प्रवेश श्रीरामानुजाचार्य द्वारा ही हुआ है। माना जाता है कि श्रीराम की मूर्ति को दक्षिण के एक श्रीवैष्णव ने दक्षिण के मदुरै से लाकर श्रीरामानुज को दिया। तिरुमल नंबि से सप्तगिरिवास श्रीवेङ्कटेश्वर की गाथाएँ सुनी थी अपनी तिरुमल की यात्रा के संदर्भ में उस वैष्णव ने। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी देवी की मूर्तियाँ भी आनंद निलय में श्रीवेङ्कटेश्वर की वाम दिशा में हैं। सुदर्शन चक्र या चक्रवत्तालवार भी भगवान के वाम पक्ष में हैं। ये सभी मूर्तियाँ आनंद निलय में एक मंच पर रखी हुई हैं। ये वेङ्कटेश्वर के दोनों पार्श्वों में हैं। वेङ्कटेश्वर की *भोग मूर्ति* (कौतुक मूर्ति) मूल विराट मूर्ति के पादों के पास वाम दिशा में मिलती है। तीन उत्सव मूर्तियाँ उनकी दक्षिण दिशा में और *बलि बेरम्* या *कौतुक बेरम्* और *स्नपन बेरम्* या उग्रमूर्ति उनकी वाम (बाईं) दिशा में हैं।

उक्त मूर्तियों के अलावा विष्वक्सेन (सेना मुदलियार या विष्णु के सेनापति), सुग्रीव, अनन्त (आदिशेष), गरुड, अंगद और आंजनेय (हनुमान) भी आनंद निलय में हैं। (इनको 'परिवार देवता' भी कहते ह।)

विष्वक्सेन की एक और छोटी मूर्ति *गर्भालय* की उत्तर दिशा में *मुक्कोटि मंटपम्* में है। गरुड की भी एक छोटी मूर्ति *महामणि - मंटपम्* के पूर्वी कोने में है। वरदराज मूर्ति *महामणि - मंटपम्* के दक्षिण - पूर्व की दिशा में है।

* * *

अध्याय - 14

वैष्णव आळ्वारों द्वारा श्रीवेङ्कटेश्वर का गुण - कीर्तन

तमिल वैष्णव भक्त आळ्वारों की संख्या बारह है। उन भक्तों ने भगवान का कीर्तन किया है। उनके कीर्तनों (पदों) को तमिल में *'पाशुरम्'* कहते हैं। ये पाशुरम कुल संख्या में चार हजार हैं। इनमें विष्णु और उनके *अवतारों* की प्रशस्ति गायी गयी है। इनकी समष्टि को ''नालायिर दिव्य प्रबन्धम्'' कहते हैं। ये 108 *वैष्णव* केन्द्रों में गाये जाते हैं। आळ्वारों में प्रथम तीन आळ्वारों को *''मुदल - आळ्वार''* कहते हैं। वे निम्नलिखित हैं - (1) पोयगै आळ्वार (2) भूतम् या पूदत्त आळ्वार और (3) पेय आळ्वार। अन्य हैं - (4) तिरुमली आळ्वार (इन्हें प्रथम तीन आळ्वारों के समकालीन मानते हैं और इनको भी मिलाकार (चौथे आळ्वार) आळ्वार चतुष्टय कहते हैं - प्रथम आळ्वारों में गिनते हैं), (5) नम्माळ्वार (6) मधुरकवि आळ्वार (7) पेरियाळ्वार या विष्णुचित्त (8) विष्णुचित्त की पोषिता पुत्री आण्डाळ् या गोदादेवी (9) कुलशेखर आळ्वार (10) तोंडर - अडिप्पोडि - आळ्वार या भक्तांघ्रिरेणु (11) तिरुप्पन आळ्वार या योगिवाह और (12) तिरुमंगै आळ्वार।

आळ्वारों ने विष्णु के प्रति अडिग विश्वास, अविकल भक्ति और संपूर्ण आत्म समर्पण को स्वीकारा है। केवल विष्णु भगवान पर ही नहीं, उनके सभी अवतारों के प्रति भी उसी प्रकार की निष्ठा का प्रचार वैष्णवों में हैं। विष्णु भगवान और उनके अवतारों की मूर्तियों से विलसित मंदिरों पर उन्होंने भक्ति और श्रद्धा रखने पर अधिक बल दिया है। माना जाता है कि उनकी अवधारणा पद्धति, प्रचार शैली ने विष्णु भक्ति को और प्रचार को बल और दिशा दी है। उनके सिद्धान्त ही प्रचलित हैं। दीक्षा मार्ग भी उन्होंने प्रशस्त किया है। इन्होंने ही *वैष्णव* पूजा या आराधना पद्धतियों का आविष्कार किया। दक्षिण भारत में *वैष्णव धर्म* की स्थापना इन्हीं के द्वारा हुई है - यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी। वैष्णव धर्म का प्रचार और परिवर्तन क्रम आगे चलकर श्रीरामानुजाचार्य और उनके अनुयायियों द्वारा जोरों पर चला है।

मधुर कवि आळ्वार और तोंडर - अडिप्पोडि आळ्वार को छोडकर अन्य दस आळ्वारों ने श्रीवेङ्कटेश्वर पर भी कुछ पाशुरम् गाये हैं।

पोयगै आळ्वार

पोयगै आळ्वार का जन्म काँचीपुरी में हुआ माना जाता है। वहीं उनके व्यक्तित्व का विकास भी हुआ था। इन्होंने सौ *पाशुरम्* गाये हैं। ये प्रथम पाशुर शतक माने जाते हैं। चार सहस्र पाशुरम् के प्रथम सौ होने के नाते इन्हें ''मुदल तिरुवांडाडि'' कहते हैं। ''नालायिर दिव्य प्रबंन्धम्'' के प्रथम पाशुर शतक में एक दर्जन या उससे अधिक पाशुरम् भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर पर हैं। इनमें वेङ्कटाचल को ''वेंगडम्''

और श्री वेङ्कटेश्वर को ''वेंगडत्तै'' (सं.68) या ''वेंगडत्तुमेयन'' (सं.99) कहा गया है। ये वेङ्कटाद्रि को बडे बडे मस्त हाथियों और नागों का पहाड कहते हैं और उन पर्वत शिखरों तथा वनों में *''कुरवा''* जाति के लोगों के रहने की बात भी कही है। इसे श्रीलक्ष्मीपति का वास स्थान कहते हुए उन्होंने घोषित किया है कि ये *सुरों* (देवता) से पूजित और आराधित हैं। (सं.38)। जब भगवान विष्णु ने प्रलय के बाद पृथ्वी को सागर से उभारा था तभी उन्होंने इस शैल को अपना निवास बना लिया था। उन्होंने आगे कहा है कि गोवर्धन गिरिधारी भी ये ही हैं। गोवर्धन गिरिधारी बनकर इन्द्र के प्रकोप से पीडित गायों और व्रजवासियों की रक्षा इन्होंने ही की है। कंस को मारनेवाले और क्षीरसागर की लहरियों पर शयन करनेवाले भगवान भी ये ही हैं। (सं.39)। यह वेंगडम् श्रीकृष्ण का प्रिय स्थान है। भक्त चारों दिशाओं से श्रीशैलवास की पूजादि के लिए दीप, फूल आदि लाकर अर्चना करते हैं। श्रीकृष्ण धवल शंख बजाते हैं। (सं.37)। श्रीवेंगडम् पर रहनेवाले हाथियों का समूह ''कुरवा'' लोगों के मशालों की कांतियों और उनके हाथों में रहनेवाले धनुष - बाणों को देखकर तितर - भितर हो चारों दिशाओं में भागता है। उनको ऐसा लगता है कि आसमान से आग बरस रही है। यह वेंगडम् पहाड भगवान नृसिंह का भी वांछित वास है। (सं.40)। चार वैष्णव धामों में से भगवान वेंगडम् पर खडे मिलते है (ये *स्थानक* मूर्ति हैं); विन्नगर या परमेश्वरन्नगर काँची में बैठे मिलते हैं (*आसन* मूर्ति हैं); वेङ्का (यह भी कांची में) *शयन* मूर्ति हैं और फूल कोविल या तिरुक्कोवलूर (ख्यात नगर पोन्नागर में) *संचार* मूर्ति (चलते रूप में) हैं। अगर भक्त उनकी ध्यान से आराधना करता है तो उसकी सारी व्यथाएँ दूर हो जाती हैं (सं.77)। जो भगवान स्वर्ग या वैकुंठ में रहते है, वे ही पृथ्वी पर रहते हैं, वेंगडम् पर रहते हैं और *वेदों* में भी वास करते हैं। आळ्वार आगे प्रश्न करते हैं कि कौन भगवान की महत्ता को पूरी तरह समझ सकता है? सभी युगों में और क्षीर सागर में शयनित भगवान की विशिष्टताओं का वर्णन कौन कर सकता है? (सं.68)। हे भगवान! अगणित गुण संपन्न और समस्त पृथ्वी को नापनेवाले वामन! आपकी प्रार्थना करनेवाला भक्त *वेदों* से घोषित विशिष्ट पद को प्राप्त करेगा। वेंगडम् भी उसी पद को संप्राप्त करायेगा (सं.76)। वेंगडम् जहाँ पर नारियों से पुष्प मालाएँ *द्वादशी* के दिन पर प्रस्तुत होती हैं उनकी कामनाएँ भी संपन्न होती हैं। काली घटाओं से आच्छादित पर्वत शिखर और पूजा धूप से उमडनेवाली धुवाँ सबसे पूरित हो बहुत ही पवित्र लगता है। यह वही पर्वत स्थल है जहाँ पर श्रीराम ने मारीच का वध किया। (सं.82)। हे मेरा गुणी मस्तिष्क! तुम्हें मालूम है कि पुरुषोत्तम हमारे सत की रक्षा करते हैं। वे उसको अनवरत कायम रखने के प्रयास में व्यस्त रहते हैं। ये हमेशा *योगियों* के मनो में विहार करते रहते हैं। समझो कि ये भगवान, क्षीर सागर शयन, ही वेंगडम् पर निवास करनेवाले परमात्मा हैं। ये ही हमारे हृदयों में भी विलसे हैं। उनका ही ध्यान कर! (सं.99)। वेंगडम् शरणागत भक्तों के पापों को भस्मीभूत करता है। *कैवल्य* प्रदान करता है। *तुलसीमालाधारी* का स्मरण ही अंतिम शरण है। यह पर्वत भक्ति की ज्वाला को बढाता है। *नित्य सूरियों* की भक्ति स्रवंति को प्रवाहित करता है। (सं.26)

[[उक्त भावों से सिक्त दस *पाशुरम्* ''आलवार के मंगलाशासन हैं। उनका सार यहाँ प्रस्तुत है। ये पाशुरम् श्री टी.के.वी.यन. सुन्दराचार्य द्वारा संपादित और तिरुपति देवस्थानम् से प्रकाशित हैं। डॉ. यस.कृष्णस्वामी अय्यंगार अपनी पुस्तक ''हिस्टरी ऑफ तिरुपति, खण्ड I में कुछ अन्य पाशुरों का उल्लेख करते हैं यथा सं 98 और 28, पृष्ठ. 65-66 और सं. 5 और 74 पृ. 59-60

पाशुरम् सं. 98 और 28 का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि ''पोयगै आलवार पाशुरम् 98 में कहते हैं - 'स्वर्णाभ और काली जटाओं से विलसित शिव और विश्व को नापनेवाले त्रिविक्रम विष्णु अपने अपने स्थानों में चाहे रहे, चाहे दो रूपों में हो, वे दोनों एक दूसरे के हृदयों में रहते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि आलवार के विचार से दोनों में अभेद है। यह भावना पाशुरम् 28 में और स्पष्ट है। उसमें विष्णु से प्रार्थना है। उसमें कहा गया है - 'हे नीलवर्ण! आपके हाथों में शंख और चक्र हैं। आपके वक्षस्थल पर कमलोद्भवा लक्ष्मी हैं। आप की नाभि में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हैं। वे वेद सृजक हैं।' शरीर के एक पक्ष में तीनपुरों (त्रिपुरों) को दहित करनेवाले भी शोभित हैं (शिव)।''

ये संदर्भ यह स्पष्ट करते हैं कि शिव विष्णु शरीर के भाग हैं और विष्णु शिव के। शिवानंदलहरी में शिव की पत्नी के रूप में विष्णु को (मोहिनी) सूचित किया गया है। (गीत सं.15)]]

पाशुरम् 5 और 74 को पादटिप्पणी में रखते हुए डॉ. यस.के. अय्यंगार लिखते हैं कि ''पाशुरम् 5 और 74 प्रथम शतक पाशुर हैं। वे इस प्रकार कहते हैं अरन (हर) और नारायन (नारायण), उनके बाहन क्रमशः वृषभ और गरुड, उनके शब्द (तमिल में नुल और संस्कृत में *तंत्र, आगम), मरै* (वेद), आवास कैलाश और पानी (समुद्र), हाथ के आयुध त्रिशूल और चक्र, उनका रूप अग्नि और नीलघन श्याम हैं।'' यही पाशुरम् 74 में भी लगभग पुनरुक्त है। उसमें कहा गया है कि 'ये वृषभ और गरुड पर आरूढ़ होते हैं, उन्होंने तीनों पुरों का नाश किया, उन्होंने हिरण्य कश्यप का वक्षःस्थल चीरा है (नृसिंह), उन्होंने भस्म *(विभूति)* धारण किया है, ये नीलमणि सम भास्वर शरीर के हैं। इनका अर्द्ध शरीर स्त्री (पार्वती) का है और एक अन्य भाग में कमलोद्भवा लक्ष्मी है। उनकी लंबी जटाएँ हैं। वे बडे और लंबे मुकुट पहने हुए हैं। वे सिर पर गंगा को धारण करते हैं। ये त्रिविक्रम है। लंबे पदवाले हैं।'' यहाँ स्पष्ट है कि भगवान द्विरूपात्मक हैं - हर और हरि। दोनों के शरीरों की आकृतियों में प्राप्त विशेषताएँ इस द्वंद्व मूर्ति में हैं। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये हरि और हर है। (शिव और विष्णु)''।

पूदत्त आळ्वार

पूदत्त आळ्वार प्रथम आळ्वार चतुष्टय में द्वितीय हैं। कहा जाता है कि इनका जन्म महाबलिपुरम् में हुआ था। 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' का 25 वाँ पाशुरम् (प्रबन्धम्), जो प्रथम शतक में गिना जाता है, (द्वितीय तिरुवांडाडि में है), स्पष्ट करता है कि लंका में पैर धरकर जिस भगवान ने रावण का संहार

किया है वे ही वेंगडम् (वेङ्कटाद्रि) पर अधिवसित हैं। पाशुरम् 28 कहता है कि महान भक्तों और महर्षियों द्वारा कीर्तित भगवान, *देवताओं* के अधिदेव, क्षीरसागर शयनी, श्रीकृष्ण, *राक्षस* केशी के संहारक, श्रीरंगधामवासी और वेङ्कटनगाधिपति उनके हृदय में (पूदत्त आळ्वार के दिल में) रहते हैं। इसी प्रकार पाशुरम् 33, 45, 46, 53, 54, 72 और 75 में आळ्वार वेंगडम का उल्लेख और गायन करते हैं। उनमें स्पष्ट उद्घोषित है कि वेङ्कटाद्रि पर *तुलसी* मालाधारी सर्वेश्वर रहते हैं। उनका ध्यान और मनन वे करते हैं। अपने मन से उन्हें स्वीकार किया है और उनका अनवरत ध्यान करने का निर्णय लिया है। उनका शरीर उनके सामने प्रणमित होता है और जिह्वा उनके पवित्र गुणों को रटती रहती है। उनका विश्वास है कि जो उस भगवान के पदकमल पर विश्वास रखेगा और उनका नाम स्मरण करेगा उसे किसी प्रकार की कमी नहीं होगी। *तपस्वी समुदाय* वेंगडम् पर भगवान की अनवरत तपस्या में लीन रहता है। पाशुरम् 72 द्वारा आळ्वार अपने मस्तिष्क से अनुरोध करते हैं कि वेङ्कटाद्रिवास श्रीवेङ्कटेश पर लगकर ध्यान रत रहे। वे कहते हैं कि वहाँ पर रहनेवाला वानर समूह भी वेङ्कटाद्रि पर पुष्पित फूलों का चयन कर भगवान के चरणों पर अर्पित करना चाहता है। भगवान की सेवा में अनवरत रहने का प्रयत्न करता है। पाशुरम् 54 में पूदत्त आळ्वार भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वे तिरुमालिरुंशोलै और वेंगडम् को अपना स्थिर वास बनाने के बावजूद क्षीर सागर को न भूलें और उनके (आळ्वार के) हृदय में भी रहना न भूलें। क्योंकि उनका अधिवास स्थान क्षीर सागर और भक्तों के हृदय ही हैं।

[[इस *पाशुरम्* में आळ्वार जी अपने हृदय को 'उळन् - कोयिल' या *'उळन् - कोयिल'* और क्षीर सागर को ''वेळ्ळम् - इळन् - कोयिल''। उळन् - कोयिल उनके हृदय को सूचित करता है और वही आध्यात्मिक दृष्टि से भगवान का निवास भी है। (उळन् का अर्थ हृदय है) इळन् - कोयिल साधारणतः बालालयम् (= छोटा मंदिर = नया मंदिर) माना जाता है। सागर निस्संदेह उनका, महाप्रलय के समय का, वास स्थान है। यह भगवान का महाप्रलय के बाद का अस्थायी निवास है और पुनः सृष्टि के बाद भगवान के अनेक मंदिर बने (बनाये गये) हैं।]]

पूदत्ताळ्वार भगवान वेंगडत्तान (वेङ्कटेश्वर) के संबन्ध में स्पष्ट करते हैं कि उनके सामने *देवता समूह* प्रणमित होता है। देवताओं के मुकुट उनके पद तल पर झुके रहने से उनके मुकुटों की *नीलमणियों* का प्रकाश भगवान के शरीर पर पडकर उनकी शोभा और बढ़ाती है। वेंगडम् को बाँसों की झाडियों, सरसियों और झरियों से मंडित तथा हाथियों से भरा हुआ पहाड कहते हैं। बाँसों की मृदु कोंपलों को खानेवाले हाथियों का वर्णन करते हैं। हाथी बाँसों की कोमल पत्तियों को शहद में मिलाकर हथिनियों को खिलाते हुए भी दिखाया गया है।

आळ्वार जी वेङ्कटेश्वर को राम, कृष्ण, विष्णु बताते हैं और साथ साथ श्रीरंगम, तिरुकोट्टियूर, तिरुमलै और तिरुमालिरुंशोलै के भगवान भी बताते हैं।

डॉ. यस.के. अय्यंगार *पाशुरम्* 60 के बारे में अपनी पुस्तक ''हिस्टरी ऑफ तिरुपति'' (पृ.71) में कहते हैं कि इसमें भगवान को दो रूपों में दिखाया गया है। दोनों में से एक दूसरे का गौण रूप है। इनमें पहला शिव और ब्रह्मा मिलकर विष्णु का रूप माना जाता है। इसे पोगै और नम्माळ्वार प्रतिपादित करते हैं। व्याख्याताओं से यह पाशुरम् सामान्य रूप से विश्लेषित है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भूत आळ्वार पोगै आळ्वार से किसी भी मात्रा में भक्ति में कम नहीं है और मानते हैं कि तिरुपति के स्वामी विष्णु मूर्ति ही हैं, चाहे उनके कुछ संकेत शिव से संबन्धित ही क्यों न हो। प्रथम वीक्षण में चाहे वे इस प्रकार लगे, पर मूर्ति विष्णु की मूर्ति ही है।

पेय आळ्वार

प्रथम *(मुदल) आळ्वारों* में पेय आळ्वार तृतीय हैं। मान्यता है कि उनका जन्म मद्रास (चेन्नै) के मैलापूर इलाके में हुआ है। आपने 100 पाशुरों की रचना की है। ये 'दिव्य प्रबन्धम्' के तीसरे 'तिरुवंदादि' में हैं। अपने अनेक पाशुरों में तिरुवेंगडम् की प्रशंसा करते हैं। 14 वें पाशुरम् में वे कहते हैं कि भगवान के पद कमलों पर नत होने के कारण *देवताओं* के मुकुट भगवान के पैरों को छूते हैं। चारों *वेदों* से प्रशंसित भगवान पर मन को केंद्रित कर वेंगडम्वासी पर लगाने पर आध्यात्मिक भावनाओं का विकास होता है। पाशुरम् 93 द्वारा वे प्रकट करते हैं कि भगवान सर्वव्यापी हैं। समस्त विश्व में व्याप्त रहते हैं। उनकी व्याप्ति दसों दिशाओं में फैली है। वे *वेदों* के प्रतिरूप हैं। वेदों का सार है कि *'परमपदम्'* (स्वर्ग) की प्राप्ति। वे वेंगडम् पर वास करते हैं। प्रकाशमान सरिताओं और सुरम्य नादों से भक्तों और गिरिवासियों के मन भरे रहते हैं जिनसे उन्हें स्वर्गिक अनुभूति मिलती है। पाशुरम् 40 में वे मन को संबोधित करते हैं। उनका कहना है कि ''हे मेरा स्वस्थ मन! तुझे मालूम है कि सर्वोच्च शक्ति रहती है। वह सार्वकालिक शक्ति है। तुझे यह भी मालूम है कि वह शक्ति भक्तों के हृदयों में हमेशा रहती है। तू यह भी जानता है कि वह शक्ति तिरुवेंगडम् पर्वत शिखरों में रहकर शासित करती है। उस शक्ति ने ही इस पृथ्वी को अपने पैरों से नापा है (यह वामन अवतार से संबन्धित है)। पाशुरम् 63 घोषित करता है कि ''हे भगवान! हे तिरुमलवासी! आप *जटाधारी* हैं, आपके हाथों में परशु और चक्र हैं। कटि में सर्प और सुवर्ण मेखला हैं। इस प्रकार आप हर और हरि (शिव और विष्णु) की द्वंद्व मूर्ति हैं। आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली विशिष्ट मूर्ति हैं।''

[[इनके पाशुरों में ही सर्वप्रथम रूप से 'तिरुमल' शब्द पाते हैं। इस का संस्कृत रूप श्रीगिरि है। अपने *पाशुरम्* में पोगै आळ्वार के समान पेय - आळ्वार भी कहते हैं कि 'यह आश्चर्य की बात है कि भगवान वेङ्कटेश्वर शिव और विष्णु से संबन्धित संकेतों से युक्त हैं। ये हर - हरि स्वरूप हैं। दोनों का मिला - जुला द्वंद्व रूप उनमें मिलता है। पाशुरम् 69 में पेय - आळ्वार की प्रगाढ़ भक्ति और श्रद्धा

मिलती है। वे कहते हैं कि स्वयं अपने को अनुभव करते हुए तुलसीमाला धारण कर वेंगडम् का मनन करते हैं। हर दिन क्षीर सागर में पवित्र स्नान करना चाहते हैं। क्योंकि चाणूर आदि पहलवानों को मारनेवाले श्रीकृष्ण उसी पर शयन करते हैं। पाशुरम् 73 घोषित करता है कि उज्ज्वल दिव्य चरणों की स्मृति, विशेषतः जिन चरणों ने भगवान सूर्य रथ के गमन को निर्देशित किया है, गोपिकाओं के साथ नाचा है, वे ही उनका (आळ्वार का) चरम लक्ष्य है। ऐसे भगवान ही वेंगडम् पहाड पर वास करते हैं। पृथ्वी का उद्धार करनेवाले वराह स्वामी का क्षेत्र भी यही है। यही एक मात्र पाशुरम् है जिसमें वेङ्कटाचल पर वराह स्वामी और स्वामी पुष्करिणी का उल्लेख मिलता है।]]

पेय आळ्वार ने अपनी देवेरियों सहित वेङ्कटेश्वर के दक्षिण के प्रमुख मंदिरों *वैष्णव* में विलसने के बारे में भी कहा है। उनमें वेंका, वेलुक्कैपडि (दोनों कांची के पास), तिरुप्पाडगम्, तिरुविन्नगर, तिरुक्कुडनडै (कुंभकोणम्), श्रीरंगम्, तिरुक्कोत्तियूर आदि हैं। इन सब *देवताओं* को उन्होंने 'इळन् कुमरन्' (नित्य - युवा) कहा है। इनको गोपाल कृष्ण भी कहते हैं। गोपियों के साथ नृत्य - गान करनेवाले कृष्ण और त्रिविक्रम वामन मानते हैं। ये ही वेदों, शास्त्रों, *योगियों,* ऋषियों के मनों में भी रहते हैं। अपने मन में भी हैं। उनको वे छोड नहीं सकते। उनसे बिछुड नहीं सकते।

ये वेंगडम् को बाँसों की झाडियों से युक्त पहाड कहते हैं। यहाँ सुन्दर *कुरुवा* (एक जाति) युवतियाँ रहती हैं। ये अपने आमोद - प्रमोद के समयों में उछलती - कूदती हैं। उस समय उनके बाल उडकर मुँह की कांति को बढाते हैं। इससे चंद्रमा *राहु* के ग्रसने के डर से मुक्त होते हैं। वे कहते हैं कि वेंगडम् इतना ऊँचा पहाड है कि उसकी चोटियाँ आकाश को छूती हैं। इस पर हाथी, बंदर, बडे बडे जंगली सुअर, आदि रहते हैं। याळी/सिंहों से भी बली *शरभा* पशु रहते हैं। इनसे हाथी और सिंह भी डरते हैं। पर्वत अनेक सरिताओं, झरियों से मण्डित है। हाथी तो अपनी सूडों से लक्ष्मी पर मोतियों को गिराते रहते हैं। मादा बंदर तो नर बंदरों से कहती हैं कि उनके लिए चंद्रमा को धरती पर ला देना है।

पाशुरम् 70 में पेय - आळ्वार भी पूदत्त आळ्वार के समान वेंगडम् पर वास करनेवाले बंदरों की पवित्रता का वर्णन करते हैं। पाशुरम् 72 में हाथियों द्वारा मद जल से भगवान के अभिषेक की बात करते हैं। सूंडों से फूलों द्वारा भगवान की पूजा करने की बात भी करते हैं। वे भगवान के सामने प्रणमित भी होते हैं।

[[यहाँ गजेन्द्र - मोक्षम् गाथा का प्रभाव दिखाई देता है। मगर से ग्रसित हाथी (गजेन्द्र) की रक्षा विष्णु भगवान ने की है। लगता है वेंगडम् की हाथियों ने भक्ति को परंपरानुगत रूप से प्राप्त किया है।

इसी प्रकार पूदत्त आळ्वार कहते हैं कि वेंगडम् के बंदरों ने भगवान के प्रति भक्ति को हनुमान (वानर या बंदरों का मुखिया) से प्राप्त किया है। हनुमान की राम भक्ति अतुलनीय है।]]

डॉ. यस.के. अय्यंगार भी कहते हैं कि पेय-आळ्वार भी अपने *पाशुरों* में भगवान के अवतारों की विशेषताएँ रेखांकित करते हैं (हिस्टरी ऑफ तिरुपति, पृ.77)। वे कहते हैं कि ''ये नृसिंह अवतार में सिंह रूप धारण कर हिरण्यकश्यप का संहार करते हैं और शेष के रूप में अनदिखे कानों से वेद घोष सुनते हैं। क्षीर सागर पर भी रहते हैं। गंगा को सिर पर धारण करनेवाले शिव भी भगवान के शरीर के अंग हैं।''

तिरुमलिशै - आळ्वार

तिरुमलिशै आळ्वार का नाम तिरुमलिशै नामक गाँव के आधार पर रखा गया है। यह गाँव मद्रास (चेन्नै) के पूनमल्लि इलाके में है। इसी गाँव में आळ्वार का जन्म हुआ है। इन्हें *भक्तिसार* भी कहते हैं। आपने 'नानमुगन - तिरुवंदादि' नामित 100 *पाशुरों* की रचना की है और इसी प्रकार 'तिरुच्चंद विरुत्तम्' नामित 120 पाशुरों की रचना भी की है। कुल मिलाकार ये सब 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' में संगृहीत हैं।

पाशुरम् 34 (नानमुगन - तिरुवंदादि का) में आपने तिरुक्कोत्तियूर और तिरुवेंगडम् के भगवानों की महत्ताएँ वर्णित करने की ओर अधिक दृष्टि रखी हैं। वे कहते हैं कि ''क्या मैं ने कभी उस भगवान को विस्मृत किया है, जिन्होंने मेरी सभी शारीरिक और मानसिक व्यथाओं को दूर किया है?'' पाशुरम् 39 में वे कहते हैं कि ''मैं वेंगडत्तान को हमेशा स्मरण करता हूँ ताकि मैं उनकी पूजा - आराधना कर सकूँ। मैं उनसे पहाड की यात्रा की अभिलाषा निवेदित करता हूँ। यह ऐसा पहाड है जहाँ पर भारी वर्षा के कारण लुढकते पत्थरों और वज्रों से हाथी डरते हैं। वज्र यहाँ के अजगरों के मुँहों से गिरते हैं। इस जादू को मैं एक रेत के टीले पर खडे होकर देखता हूँ और उसकी तीव्रता को आश्चर्य चकित हो परखता हूँ।'' पाशुरम् 40 में स्पष्ट करते हैं कि ''जब जब मैं 'पर्वत' शब्द सुनता हूँ या उसके बारे में सोचता हूँ तब तब मैं वेंगडम् पर गाता हूँ। इससे मुझे शान्ति मिलती है। मैं स्थिर होकर प्रार्थना करता हूँ। मैं श्रीपति के चरणारविन्दों में अर्पित हो जाता हूँ। भक्तों द्वारा और ऋषियों द्वारा कथित और *वेदविदित* भगवान के सामने नत हो जाता हूँ।'' पाशुरम् 41 में उन्होंने घोषित किया है कि ''हे वेंगडम् के भगवान! जब से आपके स्थायी निवास को छोडकर (दर्शन के बाद) लौटा हूँ, *श्रवणा* नक्षत्र के संदर्भ में (भगवान का जन्म नक्षत्र) हुई प्रार्थनाओं की प्रतिध्वनियाँ मेरे हृदय में रह गयी हैं। मैं पुनः पुनः आप की आराधाना के लिए पवित्र पर्वत पर आना चाहता हूँ। इसकी उत्कट अभिलाषा मेरे हृदय में जग रही है।'' पाशुरम् 42 में भगवान की आराधाना की इच्छा से पर्वत पर जानेवाले भक्तों की प्रशंसा है। प्रकृतितः वेंगडम् में भक्तों के पापों को दूर करने की क्षमता अतुलनीय है। भगवान के पदकमलों की आराधना चतुर्मुख ब्रह्म और त्रिनेत्र शिव भी श्रद्धा से करते हैं। पाशुरम् 43 कहता है कि चंद्रशेखर शिव और

पद्मासनी ब्रह्म भी भगवान की आराधना में कर्पूर नीराजन अर्पित करने के लिए वेंगडम् पर प्रातः वेला और सायं संध्याओं में पधारते हैं। पाशुरम् 44 में आळ्वार भक्तों को सूचित करते हैं कि वे अपनी युवावस्था में ही वेंगडम् जाकर भगवान की आराधना करें। भगवान वहाँ पर नित्य युवा के रूप में ही रहते हैं। एक समय रावण (या ब्रह्म) ने भी उन्हें एक बच्चे के रूप में अपनी गोद में लिया है। उस समय भगवान ने अपने छोटे - छोटे चरणों से रावण के दस सिरों की गिनती की और गायब हो गये। पाशुरम 45 में आलवार ने वेंगडम् की ठंडी ठंडी सरिताओं की प्रशंसा की है। यहाँ पर भगवान रहते हैं और अनेक पवित्र स्थलों में विलसित हो कर भक्तों द्वारा फूलों से पूजे जाते हैं। देवता समूह और यहाँ तक वन्य जतुं समुदाय भी उनकी सेवा में पुनीत होते हैं। पाशुरम् 46 में आळ्वार स्पष्ट करते हैं कि वेंगडम् पर एक हाथी ने एक समय अपने ज्ञान से चंद्रमा को एक दीप समझकर उसे आसमान से लाकर भगवान को अर्पित करना चाहा। अपनी सूँड को इस प्रयत्न में ऊपर उठाया। तब कुछ आखेटकों ने उसे घेरा तथा हिलने नहीं दिया। पर्वतवासी 'कुरवा' लोगों ने उन पर बाणों की वर्षा की और उनको वहाँ से हटाया। आगे कहते हैं कि वेंगडम् की यात्रा विश्व - प्रदक्षिणा से कई - गुना अधिक महत्वपूर्ण है। पाशुरम् 47 कहता है कि वेंगडम् *आलिस (याळी शरभों),* सिंहों, वानरों और 'कुरवा' जाति के लोगों से भरा है। इस पर्वत के वनों में *सुवर्ण, मणियाँ, मोती* आदि झंझाओं से उडते रहते हैं। यही *नील मणि* श्याम भगवान का अधिवास है। पाशुरम् 48 वेंगडम् को देवताओं की तीर्थस्थली कहा गया है। यह मानवों के पापों का हरण करनेवाला पवित्र स्थल है। रोगों को नाश करनेवाला प्रान्त है। *दानवों* (राक्षस, असुर) को अपने चक्र से संहार करनेवाले भगवान का वास स्थान है। देवताओं (विण्णर) के रक्षक का निवास स्थल है। पाशुरम् 90 यह विश्वास दिलाता है कि जो धार्मिक भावना और भक्ति से ओतप्रोत होकर भी स्वर्ग पर अधिकार जमाना चाहते है, वे वेंगडत्तान के पदकमलों की सेवा करते हैं, आराधना करते है तो अवश्य स्वर्गीय आनन्द और शान्ति पाते हैं। वे अवश्य सर्वेश्वर के भक्त होकर उनकी महत्ता को समझकर उनके सेवक बन जाते हैं।

पाशुरम् 60 में आळ्वार का कहना है कि तिरुवेंगडम् के भगवान और तिरुक्कुंडनडै के भगवान दोनों एक ही हैं। पाशुरम् 80 में वे मानवों को तिरुवेंगडम् के भगवान के पवित्र चरणों में आश्रय पाने की भावना से बढने के लिए प्रेरित करते हैं। योग मुद्रा में क्षीरसागर शयनी भगवान, कालनेमी *राक्षस* के संहारक, सुग्रीव के रक्षक इसी वेंगडम् पर रहनेवाले भगवान ही हैं। राम और विष्णु एक ही हैं। वेङ्कटेश्वर ही सब हैं। तिरुमलिशै आळ्वार के संबन्ध में अपनी पुस्तक ''हिस्टरी ऑफ तिरुपति'' में डॉ. यस.के. अय्यंगार कहते हैं कि ''अन्य तीनों आळ्वारों, जिनके बारे में पहले कहा गया है, के समान ये भी विष्णु भगवान को ही एक मात्र रक्षक मानते हैं। ये मात्र माननेवाले ही नहीं बल्कि उनसे बढकर अधिक कट्टर भी हैं। प्रथम तीन आळ्वार तो कुछ सहनशील हैं। इतरों से अन्य देवताओं की आराधना

को सहन करते हैं। ब्रह्म, इन्द्र, शिव आदि की आराधना को (अन्यों द्वारा) मान सकते हैं। लेकिन यह इस आळ्वार के लिए सहनीय नहीं है। पाशुरम् 66 यह स्पष्ट रेखांकित करता है। इसमें वे कहते हैं - ''मेरा हृदय भगवान का अब शाश्वत निवास स्थान है। इससे पहले आदिशेष उनके शयन स्थान थे। मैं घोषित करता हूँ कि उनके स्थान पर चंद्रशेखर शिव को अथवा ब्रह्म को मैं रख नहीं सकता। न ही मैं उनकी प्रदक्षिणा कर पूजा - अर्चना कर सकता हूँ।'' यह स्पष्ट और शंका रहित वक्तव्य है। इससे स्पष्ट है कि विष्णु के अलावा किसी अन्य देवता के लिए उनके हृदय या मन में स्थान नहीं है।''

''तिरुच्चन्द्र - विरुत्तम'' के पाशुरम 90 को उद्धृत करते हुए डॉ. यस.के. अय्यंगार आळ्वार का जन्म और उनके द्वारा संप्राप्त आध्यात्मिक उन्नतियों को प्रस्तावित करते हैं। उस पाशुरम् में आळ्वार कहते हैं कि ''मेरा जन्म किसी *कुल* और जाति में नहीं हुआ है। *वेदों* द्वारा प्रतिपादित किसी विषय की मैं ने शिक्षा नहीं प्राप्त की। मैं ने पंचेद्रियों पर अनुशासन करने की शक्ति नहीं पायी। मैं वासनाओं की ओर अब भी आकर्षित होता हूँ। इन सबका मुकाबला नहीं कर पा रहा हूँ। मैं ने आप के पवित्र चरणों की ओर बढने में भी कोई योग्यता नहीं पायी है।'' (पृ.128)। इसके बाद अय्यंगार कहते हैं कि ''इतना कहने पर भी मानना ही होगा कि यह आळ्वार का आत्मनिवेदन मात्र है। वे यही कहना चाहते हैं कि भगवान की भक्ति में सच्चाई और संपूर्ण विश्वास आवश्यक है। भगवान के सामने आत्म समर्पण और प्रपत्ति की भावना ही भक्ति और मुक्ति की एक मात्र साधना है। भगवान की कृपा पर निर्भर रहना ही भक्त के लिए सरल मार्ग है। भगवान के प्रति अविकल भक्ति ही सही मार्ग है।'' यही आळ्वार का पवित्र भक्ति मार्ग है।

प्रथम आळ्वारों का एक अनुशीलन

प्रथम आळ्वार चतुष्टय ईसा के बाद तृतीय (तीसरी) शताब्दी में रहते थे। उनके वर्णनों से यहा पता चलता है कि उस समय पवित्र वेंगडम् घने जंगल का प्रान्त था। उस पर बाँस की झाडियाँ अधिक थीं। पवित्र सरिताओं और निर्झरों से भरा जंगली प्रान्त था। उन वनों में शेर, बाघ, याळी या *शरभ,* विषैले सर्प, भालू आदि वन्य प्रशु बडी संख्या में रहते थे। वन्य जाति के 'कुरवा' लोग वहाँ के निवासी थे। *तपस्वी* यहाँ तपोनिष्ठा में मग्न हो रहते थे। श्रीवेङ्कटेश्वर की पूजा और आराधना में लीन हो देवता समूह वहाँ रहता था। भक्त और ज्ञानी प्रतिदिन फूलों, दीपों, मशालों और यहाँ तक पानी को भी लेकर भगवान के पास पूजा के लिए पहुँचते थे। *द्वादशी* के दिन पर तो भक्तिन महिलाएँ फूल मालाओं को समर्पित कर भगवान की आराधना करती थीं। *श्रवणा नक्षत्र* (भगवान के आविर्भाव का नक्षत्र था, जन्म नक्षत्र) पर तथा अन्य विशेष पर्व दिनों पर विशिष्ट विधि से पूजाएँ संपन्न की जाती थीं। *'कुरवा'* जाति के लोग मस्त हाथियों को दूर भगाने के लिए झंझाओं से फेंक गये मूल्यवान पत्थरों की वर्षा कर, उनको भगाते रहते थे।

[पाशुरों द्वारा प्राप्त इन तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वेंगडम् पहाड घने जंगलों का पहाड है। उस पर अनेक वन्य मृग रहते थे। चारों दिशाओं से भक्त हर दिन पूजा सामग्री पहाड पर ले जाते थे। लेकिन पहाड पर *'कुरवा'* जाति के लोगों के अलावा कोई और निवास नहीं करते थे (पोयगै आळ्वार का पाशुरम् सं.37)। भगवान वेङ्कटेश्वर की पूजा व्यवस्थित रूप से नहीं चल रही थी। भक्त जन अपनी ओर से *पूजा* करते थे। हर एक की अपनी पद्धति होती थी। *द्वादशी* की पूजाएँ अवश्य अलग ढंग से मनायी जाती थीं (पोयगै आळ्वार, पाशुरम् सं.82)। पूजारियों और *वेद पंडितों* की दखल के बिना पूजाएँ संपन्न होती थीं। बहुत समय बाद ही *वैखानस आचार्य* मंदिर के साथ जुडे हैं। पूजा व्यवस्था उनकी देख-रेख में सुदृढ़ बनी। वेङ्कटाचल माहात्म्य के अनुसार रंगदास के साथ वैखानस आचार्य मंदिर में गये थे। उससे पहले तो भगवान एक वृक्ष के नीचे थे। श्रीदेवी उनके साथ थी। लेकिन मंदिर नहीं था। (वराह पुराण, भाग II, अ. 9, श्लो. 22-24)

आळ्वार का *श्रवणा* नक्षत्र के दिनों का उल्लेख भी यही स्पष्ट करता है कि उन दिनों आज की तरह नित्य पूजा विधान नहीं था। सामवाय रानी के द्वारा चाँदी की मूर्ति प्रदान करने के बाद ही उत्सव व्यवस्था चली - सन् 614 से]।

प्रथम आळ्वार श्रीवेङ्कटेश्वर को श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीनृसिंह, श्रीवामन - त्रिविक्रम और श्रीमन्नारायण के साथ जोडते हैं और उन्हें वैकुण्ठवासी ही बताते हैं। पद पद में वे सुरों और देवताओं से वंदित रहते हैं। क्षीराब्दशयनी हो आराम करते हैं। प्रलय से ग्रस्त होने पर वे क्षीराब्धि में वास करते हैं। वे श्रीवेङ्कटेश्वर को कंचीपुरी, घटिकाचलम् (शोलिंगर), कुंभकोणम्, श्रीरंगम्, तिरुक्कोत्तियूर, तिरुक्कोवलूर और तिरुनीरमल के देवों के साथ भी जोडते हैं। वे कहते हैं कि तिरुवेंगडम् में भगवान खडी मुद्रा में रहते हैं; कांची के विन्नगर में बैठी मुद्रा में रहते हैं; कांची के वेङ्का में शयनित मुद्रा में रहते हैं और तिरुक्कोवलूर में लंबे डग भरनेवाली मुद्रा में रहते हैं। सब आळ्वार विष्णु के भक्त है और सब ने श्रीवेङ्कटेश्वर को (वेंगदत्तन को) विष्णु मूर्ति ही माना है। मंदिरों में मिलनेवाली विग्रह - मूर्तियों को विभिन्न रूपों में विलसित मूर्तियाँ ही मानी हैं। 108 वैष्णव मूर्तियों में उनको माना है (108 वैष्णव क्षेत्र हैं)। पोयगै आळ्वार और पेय आळ्वार तो वेङ्कटेश्वर के साथ शिव और विष्णु के संकेतों को स्वीकार करते हुए उन्हें हर - हरि रूपा भी मानते हैं। इसी भावना को आगे तिरुमंगै आळ्वार ने भी स्वीकार किया है।

इन आरंभिक आळ्वारों ने श्रीवेङ्कटेश्वर को *देवाधिदेव* कहा है। उन्हें *तुलसीमालाधारी, वनमालाधारी* और नीलघन देहधारी कहा है। सभी *देवताओं* (वानोर, विन्नोर, विन्नवर, देवता, सुर, दिव्य देहधारी) से परिवेष्ठित और आराधित देव कहा है। उन्हें कमल नयन और पदकमल युक्त माना है। इतना ही नहीं,

भगवान आळ्वारों के हृदय में वास करनेवाले भी हैं। उनके मनों और उनकी चेतनाओं में बसे हैं। उन्हें वे *कुमारन्* (युवा) मानते हैं। कहते हैं कि वे इलन - कुमारन्, इलनकुमार - कोमन (युवकों के देव) हैं।

पेय आळ्वार के पाशुरम् 45 में ही श्री वराह स्वामी का उल्लेख है। तिरुमलै शब्द वेंगडम् का पर्यायवाची शब्द ही है (पाशुरम् 75)। पाशुरम् 40 में भगवान को 'उत्तमन' (सर्वश्रेष्ठ) कहा गया है। 'उत्तमन' माने *पुरुषोत्तम* है।

रानी सामवाय से संबन्धित अभिलेखों में चाहे विष्णु के हाथों में रहनेवाले *शंख* और *चक्र* का उल्लेख न हो फिर भी तीनों आळ्वारों ने भगवान को विष्णु माना है। इतना ही नहीं श्रीकृष्ण, श्रीराम और नृसिंह भी कहा है। एक मात्र पेय आळ्वार ने भगवान के एक हाथ में चक्र के स्थान पर शिव की परशु होने का उल्लेख किया है (पाशुरम् - 63)।

आळ्वारों नें अनेक पाशुरों में वेंगडम् को विभिन्न *अवतारों* में भगवान का आवास माना है। पोयगै आळ्वार ने इसे पापियों के समस्त पापों का नाशक भी कहा है और *वानोर* (आत्माओं) का उद्धारक भी (पाशुरम् 76)। भक्तों में बिना भेदभाव दर्शाये स्वर्ग प्रदान करनेवाला पवित्र पहाड भी माना है।

तिरुमलिशै आळ्वार तो 'नान्मुगन - तिरुवंदादि' के पाशुरम् 42 में कहते हैं कि पाप हरना वेंगडम् की प्रकृति ही है और भक्तों को श्रद्धा के साथ उसके सामने प्रणमित होना है। पाशुरम् 44 में वे युवा लोगों को प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं कि उनको पर्वत पर जाकर भगवान की आराधना करनी है। पाशुरम् 45 में वे स्पष्ट प्रबोधित करते हैं कि वेंगडम् देवताओं और मानवों के लिए अतुलनीय कोष है। भूलोक की संपत्तियों और सुखों के पीछे पडने के बदले वेंगडम् पहुँचकर भगवान की आराधना करना बेहतर सिद्ध होगा। पाशुरम् 46 और 48 इसी भावना को और पुष्ट करते हैं और स्पष्ट करते हैं कि भगवान का चक्र *दानवों* (असुर, राक्षस, दुष्टात्मा) का संहारक और वानवर (देवता) तथा भक्तों का रक्षक है। सभी के पापों का हारक भी है।

नम्माळ्वार

कहा जाता है कि नम्माळ्वार का जन्म ताम्रपर्णी नदी के किनारे पर स्थित तिरुकुरुकूर में हुआ है। द्वादश आळ्वारों में ये महत्वपूर्ण, पांडित्यपूर्ण और प्रज्ञावान माने जाते हैं। आपने चार प्रकार की रचनाएँ की हैं - *ऋग्वेद* की व्याख्यावत समझा जानेवाले *''तिरुविरुत्तम''* जिसमें 100 *पाशुरम्* हैं, यजुर्वेद से संबन्धित *''तिरुवासिरियम्''* के सिर्फ 7 *पाशुरम्, अथर्ववेदीय* सार से युक्त *''पेरिय - तिरुवनदादि''* के 87 *पाशुरम्* और *सामवेद* के प्रभाव से युक्त ''तिरुवायमोळि'' के 1102 पाशुरम् हैं। इनमें से 35 पाशुरम् भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर पर हैं।

सुदूर दक्षिण में रहते हुए ये वेंगडम् की पूरी पहचान नहीं रखते थे किन्तु उन्होंने वेंगडम् पर और उसके महत्व पर चाक्षुस ज्ञान से अधिक श्रुत ज्ञान प्राप्त किया है। भगवान की पवित्रता, महत्ता और विशिष्टता का ज्ञान प्राप्त कर ही बहुत कुछ लिखा है। (डॉ. यस.के. अय्यंगार, हिस्टरी ऑफ तिरुपति, खण्ड I, पृ.140)।

तीसरे *तिरुवायमोळि* के तीसरे दशक के 10 *पाशुरों* में नम्माळ्वार तिरुवेंगडत्तान (तिरुमल के श्रीवेङ्कटेश्वर) की महत्ता गाते हैं। भगवान के पदकमलों में नतमस्तक होकर आराधना करने के लिए भक्तों को प्रोत्साहित और प्रबोधित करते हैं। वे घोषित करते हैं कि तिरुवेंगडम् ही एसी महान शक्ति से संपन्न है। वह भक्तों को मुक्ति प्रदान कर सकता है। अपने पाशुरम् 8 में वेङ्कटेश्वर को *त्रिविक्रम* कहते हैं। पाशुरम् 8 और 9 में श्रीकृष्ण के रूप में भी वर्णित करते हैं। वे साथ साथ कहते हैं कि ये भगवान उम्र के साथ भक्तों को सतानेवाली पीडाओं, व्यथाओं, रोगों आदि से रक्षा प्रदान करते हैं। उनके पाद पद्मों पर झुकनेवालों को मुक्ति प्रदान करते हैं। उनको मानवीय धरातल से उन्नत दैवी धरातल पर ले जाते हैं। पाशुरम् 10 में वे समझाते हैं कि भक्त होकर जन वेङ्कटाचल जायें और वेङ्कटेश्वर की आराधना करें। भक्त अपने बुढापे तक इंतजार न करें। युवावस्था से ही भगवान की पूजा, अर्चना आदि से जुडे। वृद्धावास्था के आक्रमण से शरीर जर्जरित होता है। वेंगडम् जाना कठिन भी होगा। पाशुरम् 11 में वे कहते हैं कि इन 10 पाशुरों का गायन भक्तों को सुखी और आनन्द देता है।

10 पाशुरों की एक और इकाई में, छटवें इकाई में, (*तिरुवायमोळि* में) वे भगवान वेङ्कटेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें तिरुवेंगडम् पहुँचकर उनके सामने प्रणमित होने का रास्ता बतायें। इसमें आळ्वार भगवान को *श्रीवैकुण्ठवासी* कहते हैं। प्रलय के समय में विश्व के रक्षक मानते हैं। सुरों *(देवताओं)* के रक्षक और *असुरों* (दुष्ट राक्षस) के संहारक कहते हैं। नीलघन श्याम और सारंगपाणी कहते हैं। उनका अधर बिम्ब फ़ल समान लाल है, उन्हें श्रीलक्ष्मी पति और गरुडध्वज भी बताते हैं। भगवान को अपने मस्तिष्क में हमेशा स्थिर रहनेवाले भव्य स्वरूपा कहते हैं। पाशुरम् 5 में श्रीवेङ्कटेश्वर को श्रीराम मानते हुए उन्हें सात *साल* वृक्षों को गिरानेवाला कहते हैं। श्रीकृष्ण कहते हुए यमलर्जुन रक्षक कहते हैं (पेड के रूप शापवश यमल और अर्जुन पाये थे)। पाशुरम् 6 में वे भगवान को *वामन* कहते हैं। 5 एवं 6 पाशुरों में कहते हैं कि देवता समूह अनवरत उनकी आराधना में वेङ्कटाचल पर मग्न रहते हैं। पाशुरम् 7 में आळ्वार भगवान को *अमृतमय* बताते हुए कहते हैं कि उनके चरणकमलों के दर्शन के बिना वे रह नहीं पा रहे हैं। क्षण मात्र के लिए भी वे भगवान के चरणों से दूर होना नहीं चाहते हैं।

पाशुरम् 8 कहता है कि नीलकंठ शिव, ब्रह्मा और इन्द्र अपनी सहधर्मचारिणियों और अपने परिवार के साथ उनके पदकमलों के *दर्शन* के लिए लालाइत रहते हैं। उतनी शक्ति और उनकी महानता के न

रहने पर भी आळ्वार के मन में भी उसी प्रकार की आकांक्षा है। आळ्वार स्वयं पादपद्मों के दर्शन की अभिलाषा से ओतप्रोत होकर आये हैं।

[यहाँ पर नम्माळ्वार शिव और ब्रह्मा में कुछ अंतर बताते हुए ब्रह्मा को अधिक महत्ता देते दिखाई पडते हैं। शायद ब्रह्मा का विष्णु तनय होना इसका कारण हो सकता है]।

पाशुरम् 9 में आळ्वार कहते हैं कि वेङ्कटेश्वर अपने भक्तों के पास तुरन्त पहुँचते है और अन्यों की ओर धीमी गति से चलते हैं अथवा दूर रह जाते हैं। वे भगवान को पद्मनयन, लाल - लाल *बिम्बाधरवाले,* और चतुर्भुजी कहते हैं। वे *अमृत* मूर्ति हैं और *चिंतामणि* हारों से शोभित हैं। एक क्षण के लिए भी आळ्वार ऐसे भगवान के दर्शन से दूर होना नहीं चाहते।

पाशुरम् 10 में श्रीमहालक्ष्मी को वक्षःस्थल पर स्थान प्रदान करनेवाले भगवान का स्मरण करते हुए कहते हैं कि वे एक क्षण के लिए भी ऐसे भगवान के दर्शन से दूर हो नहीं सकते हैं। ये भगवान तीनों लोकों (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) के अधिनाथ हैं। तिरुवेंगडम् के वासी होकर वे *अमरों* (देवता, अमर्त्य लोग), ऋषि - *मुनियों* के द्वारा उपासित हैं।

पाशुरम् 11 में आळ्वार कहते हैं कि जो भक्त इन पाशुरों को गाता है उसे समस्त फल प्राप्त होंगे।

''तिरुविरुत्त - प्रबन्धम्'' के 8 पाशुरों में आळ्वार अपने को भगवान के संपूर्ण *भक्त* कहते हैं। विरहिणी नारी की मानसिकता में वे दुःख का अनुभव करते हैं। मूर्छित होते हैं। मेघों से अपनी विरह वेदना भगवान तक पहुँचाने की प्रार्थना करते हैं। पाशुरम् 50 में आळ्वार कहते हैं दिव्य प्रेमी भी अपनी प्रेमिका (भक्तिन) से मिलने के लिए आतुर हैं। वे अपने सारथी से रथ को तेजी से चलाने की प्रार्थना करते हैं। वे अपनी प्रेमिका (भक्तिन) से मिलने के लिए आतुर हैं। उनकी प्रेमिका (भक्तिन) वेङ्कटाद्रि पर भगवान की प्रतीक्षा में हैं और दुःख भी महसूस कर रही हैं। व्याथा और कातरता से प्रेमिका का वदन सौंदर्य घटता जा रहा है। पाशुरम् 18 में आळ्वार प्रतीक्षा करनेवाली (भक्तिन) प्रेमिका को मूर्छित अवस्था में पहुँची महिला - आळ्वार कहते हैं। उस महिला की उनकी माता द्वारा चिकित्सा हो रही है। माता नहीं जानती कि उस चिकित्सा द्वारा वह स्वस्थ हो नहीं सकती। वह नहीं जानती कि उनकी पुत्री मर भी सकती है। महिला आळ्वार की माता यह नहीं जानती है कि अपनी पुत्री किस ताप से पीडित है। बिना *तुलसी* तीर्थ दिये और बिना उन्हें वेंगडम् पहुँचाये वे स्वस्थ हो नहीं सकती।

पाशुरम् 68 (पेरिय - तिरुवंदादि का) में आळ्वार स्पष्ट कहते हैं कि नील घनश्याम भगवान की मूर्ति उनके उर में पैठ गयी है और उनके मन से दूर होना नहीं चाहती है। शायद भगवान ने उनके हृदय को वैगुंडल (वैकुंठम्) समझा है। उनके हृदय को *वानाडु* (परमपदम्) समझा है। उनको भगवान ने

तृणप्राय छोडा और भक्त के हृदय को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। (यहाँ आळ्वार *वैकुण्ठ* और *परमपद* दोनों को अलग अलग देखते मिलते हैं। यद्यपि दोनों विष्णुलोक के ही पर्याय हैं।)

13 अन्य मुक्तक रूपी *पाशुरों* में (*तिरुवायमोळि* के) नम्माळ्वार वेङ्कटाद्रीश को समुन्नत रूप से वर्णित करते हैं। इनमें से तीसरे और आठवें तिरुवायमोळि में वे स्पष्ट घोषित करते हैं कि *मन्नोर* (पृथ्वी पर रहनेवाले) और *विन्नोर* (स्वर्गवासी देवताओं) के लिए भगवान वेङ्कटेश आँख के लिए पलक के समान रक्षक हैं।

इसी के पाशुरम् 9 दूसरे दस के समुदाय के छटवें तिरुवायमोळि में भगवान को संबोधित करते हुए कहते हैं - ''हे तिरुवेंगडम् के भगवान! हे लंका के नाशक! हे सप्त साल वृक्ष भेदी! हे तुलसीमालाधारी! हे सब के लिए अमृत तुल्य! मेरे भगवान! मेरे मालिक! मुझे छोडो मत। तुम्हें छोडकर मैं कहाँ जा सकता हूँ।''

एक और पाशुरम् 10 में दूसरे दस के समुदाय के छटवें तिरुवायमोळि में वे भगवान को संबोधित कर पुनः कहते हैं - ''हे त्रिलोकाधिनाथ! हे *परमनाथ!* हे वेङ्कटाचालवासी! हे *तुलसीमालाधारी!* हे मेरे रक्षक और मार्गदर्शक! हे मेरे परमपिता! हे मातृवत्सल हृदयी! मेरे वर्तमान, भूत और भविष्य के रक्षक! मैं ने तुम्हें चाहा है, पाया है। मैं तुम्हे कैसे छोड सकता हूँ? कभी नहीं!''

''तिरुवायमोळि'' के द्वितीय दशक के संख्या 7 पाशुरम् में आळ्वार कहते हैं कि *पद्मनाभ* कल्पवृक्ष हैं। ये अद्वितीय हैं। उन्होंने आळ्वार को अपना बना लिया है। वे दिव्य *कल्पवृक्ष* सम भगवान से अमृत चाहते हैं। वेंगडम्वासी देवताओं के रक्षक हैं। अपने लिए वात्सल्य बरसानेवाले हैं। *दामोदर* से वे प्रार्थना करते हैं कि भगवान सब को प्रेम से देखें।

पाशुरम 8 (5 वें *तिरुवायमोळि* के तीसरे दशक का) में आळ्वार कहते हैं जो वेंगडम् के अधिदेव का नाम स्मरण करते हैं उनकी *अमर* (देवता) प्रशंसा करते हैं, पूजा करते हैं।

पाशुरम् 1 (9 वें *तिरुवायमोळि* के तीसरे दशक का) में आळ्वार घोषित करते हैं कि स्वामी भृंग नाद से ही संतुष्ट होते हैं। भगवान का हाथी, उनका दिव्य पितृत्व, आदि ही उनके पाशुरों के विषय बनते हैं। वे अपनी कविता का अर्पण कर नहीं पा रहे हैं क्योंकि भाव जिह्वाग्र तक आकर रुक जा रहे हैं (यह सब उनकी विशिष्टता का माहात्म्य है कि भगवान भक्त को सही रूप में समझते हैं)।

पाशुरम् 11 (*तिरुवायमोळि* के चौथे दशक का) में आळ्वार कहते हैं कि भगवान को अर्पित पाशुरम् दशक को गानेवाला भक्त वानवर *(देवताओं)* के समान आनंद पायेगा।

पाशुरम् 5 (दशक 6 का 9 वाँ *तिरुमोळि*) में आळ्वार भगवान से प्रार्थना करते हैं कि ''हे तिरुवेंगडम् के वासी! क्षीर सागर शयनी! हे पृथ्वी पर अवतरित देव! हे सबके अधिष्टाता! सर्वलोक

व्यापी! क्या आप अपने को मुझसे छिपाना चाहते हैं? मेरे शरीर में रहते हुए भी क्यों दूर हो रहे हैं? मुझ पर कृपा कीजिए!''

द्वितीय *तिरुवायमोळि* के आठवें दशक के प्रथम *पाशुरम्* में नम्माळ्वार अपनी व्यथा को व्यक्त करते हैं। अपने को वेङ्कटेश्वर की प्रेमिका (पत्नी) के रूप में मानकर सखियों को संबोधित कर कहते हैं - ''हे सखियों! मैं तुम लोगों के एक शब्द का उत्तर नहीं दे पा रही हूँ। मैं ने वेंगडम् के अधिदेव को चाहा। सोचा कि वे *गरुड* पर अवरोहित हो आयेंगे। मेरे हाथों की चूडियाँ गिरती जा रही हैं (विरह से हाथ क्षीण हो गये हैं)। मेरा शरीर कृशित हो रहा है। मैं चिंताग्रस्त हूँ।

तीसरे *तिरुवायमोळि* (9 वें दशक) के आठवें *पाशुरम्* में वे मानवों को बताते हैं कि ''श्रीवेङ्कटेश्वर की मूर्ति वेंगडम् पर विलसित है। वे मानवों के पाप और पुण्यों को जानते हैं। सबको दूर रखकर मानव को पवित्र बनाते हैं और पुनर्जन्म राहित्य प्रदान करते हैं। जो वेंगडम् पहुँचकर उनकी सेवा में रत हो जाते हैं, वे *देवता* ही बन जाते हैं। जन्म और मृत्यु के क्रम से मुक्त होते हैं। यह सब भगवान की महिमा ही है।''

5 वें *तिरुवायमोळि* के 10 वें दशक के *पाशुरम्* 6 में नम्माळ्वार कहते हैं कि नीलमेघश्याम माधव, श्रीलक्ष्मी पति, श्रीकृष्ण, पूतना संहारक भगवान सब एक ही हैं। श्रीवेङ्कटेश्वर के रूप में वेंगडम् पर वास कर रहे हैं।

7 वें *तिरुवायमोळि* के दसवें दशक के आठवें *पाशुरम्* में नम्माळ्वार जोर देकर कहते हैं कि जो जगत में एक मात्र भगवान हैं, अद्वितीय हैं, समस्त सृष्टि के अधिनायक हैं, तिरुमलिरुंशोलै पहाड पर रहते हैं, तिरुप्पारकडल नगर में रहते हैं, क्षीर सागरवासी हैं, श्रीलक्ष्मीपति हैं, वैकुण्ठवासी हैं वे ही तिरुवेंगडम् पहाड पर भी रहते हैं। आप के अधीन में *माया* है, समस्त प्रकृति है। शब्द, कार्य, मन, आत्मा सब उनको एक क्षण मात्र के लिए भी भूल नहीं सकते।''

पेरि आळ्वार

पेरि आळ्वार का जन्म श्रीविल्लिपुत्तूरु में हुआ। यह गाँव पांड्य देश की राजधानी मदुरा के पास है। ये श्रीआंडाल के पोषित पिता हैं। श्रीआंडाल को ही गोदादेवी और सूडिक्कोडुत्त नाच्चियार कहते हैं। गोदादेवी, भगवान के लिए बनी फूल माला को पहले पहनकर देखती थी और बाद को ही भगवान को माला अर्पित करती थी। पिता माला बनाते और गोदा उसे पहनकर देखती। पेरियाळ्वार अपने को यशोदा मानकर भगवान की सेवा करते थे। श्रीकृष्ण और वेङ्कटेश्वर को उन्होंने एक ही माना है। पेरियाळ्वार ने अपने सात *पाशुरों* में इसी दृष्टि से भगवान को संबोधित किया है। आळ्वार ने

''तिरुप्पल्लांडु'' और ''तिरुमोळि'' भगवान की प्रशस्ति में प्रस्तुत किया है। इनमें आपने *वामनावतार* की घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया है। बलि के पुत्र नमुचि ने वामन के शरीर को विस्तृत करने का आक्षेप किया था। इस पर रुष्ट होकर भगवान ने उसे उछाल फेंका था। इसी प्रकार रावण को मारने और विभीषण को राज्य देने पर भी आक्षेप हैं।

5 वें *तिरुमोळि* के प्रथम दशक के तीसरे पाशुरम् में वे यशोदा बन जाते हैं। यशोदा के रूप में चंद्रमा को संबोधित कर वे कहते हैं कि ''हे चन्द्रमा! तुम कितनी ही विस्तृत परिधि में अपनी चाँदनी को प्रसरित करो, फिर भी मेरे पुत्र कृष्ण के मुँह की कांति के सामने फीके ही रहोगे, ये आजकल वेंगडम् में रह रहे हैं। ये अपना हाथ उठाकर तुम्हें संकेत करते हैं। आओ! उनके पास त्वरित गति से आ जाओ।''

''तिरुमोळि'' 6 के द्वितीय दशक के पाशुरम् 9 में आळ्वार यशोदा बनकर कौए से एक लकडी लाने के लिए कहते हैं, क्योंकि उसे लेकर कृष्ण को पशुपालन के लिए जंगल में जाना है।

7 वें *''तिरुमोळि''* के द्वितीय दशक के तृतीय पाशुरम और 9 वें *''तिरुमोळि''* के द्वितीय दशक के नौवें पाशुरम् में पेरियाळ्वार की यशोदा श्रीकृष्ण के दुरागतों पर और उनकी नटखट चेष्टाओं पर नाराज होती हैं। गोपिकाओं के घरों में घुसना, उनके यहाँ के सामान को तोडना, वस्त्रो को फाडना आदि पर रुष्ट होकर यशोदा कहती है - ''हे तिरुवेंगडम् पर निवास करनेवाले! मेरे पास आ जाना! मैं तुम्हारे बालों को संवारूँगी, *''मरुवक''* फूलों से तुम्हारे जूडे को गूँथूँगी।''और कहती है कि ''हे नन्हें कृष्ण! हे सद्गुण संपन्न! गोवर्धनगिरिधारी! गोपालक कृष्ण! सिर पर पानी का घडा रखकर *गोपिकाओं* के साथ नाचनेवाले कन्हैया! *वेदों* की प्रतिमूर्ति, सुंदर विग्रह! जल्दी आ जा! नटखटबाजी को छोड शीघ्र आ जा! मैं दूसरों के द्वारा तुम पर की गयी शिकायतों को सहन नहीं कर सकती!''

तीसरे *''तिरुमोळि''* के तीसरे दशक के चौथे पाशुरम् में यशोदा कहती है - ''सुगंधित हवाओं से विराजित वेंगडम् के वासी! हे बलवान वृषभ के समान घूमनेवाले! मैं ने तुम्हारे लिए सुंदर छाता रखा है, चप्पल और मुरली तुम्हारे लिए हैं। उनके बिना तुम जंगल के कंटकीले रास्तों पर घूम रहे हो! गायों और बछडों को लेकर जा रहे हो! हे मेरे लाल! मुझे तुम्हारे मृदु पैरों को देखकर दुःख हो रहा है। पद कमलों में काँटे चुभते हैं न! आँखों में जलन होता है न! तुम्हारा शरीर थक जाता है न! आ जाना! सब ले लेना!''

चौथे *''तिरुमोळि''* के पाँचवें दशक के प्रथम *पाशुरम्* में *आळ्वार* भगवान को पुकारकर कहते हैं - ''हे दयालू दामोदर! मेरे स्वामी! लंबी-ऊँची चोटियों और शिखरों से घिरे वेंगडम् को वास बनाकर सबकी रक्षा में लीन भगवान कौन हैं? आप ही हैं न!'' वे कहते हैं कि उन्होंने *सुदर्शन चक्र* की मुद्रा

से अपने शरीर को चिह्नित कर लिया है। अब उनकी कृपा पाने की प्रतीक्षा मात्र है। अब वे बहुत समय तक रुक नहीं सकते। वे भगवान से प्रश्न करते हैं कि क्यों अब मैं प्रतीक्षा करूँ?''

श्रीआंडाल

श्रीआंडाल पेरियाळ्वार की पोषिता पुत्री हैं। आळ्वार ने उन्हें विल्लिपुत्तूर के तुलसी वन में प्राप्त किया था। आळ्वार और उनकी पत्नी दोनों ने मिलकर श्रीआंडाल का पालन - पोषण किया। श्रीआंडाल को गोदादेवी भी कहते हैं। बचपन से ही आंडाल के मन में भगवान के प्रति भक्ति और श्रद्धाएँ थीं। गोदादेवी ने ''तिरुप्पावै'' और ''नाच्चियार तिरुमोळि'' की रचना की है।

जैसे जैसे वे बढ़ती गयी हैं, वैसे वैसे उनके मन में स्थानीय मूर्ति के प्रति प्रेम बढ़ता ही गया।

आठवें *तिरुमोळि* में गोदादेवी मेघों को संबोधित कर अपनी विरह वेदना को वेंगडम् के भगवान से निवेदित करने के लिए प्रार्थना करती हैं। अपना असहनीय दुःख, अनवरत बहनेवाली आँसुओं की धाराओं की बात, अनुपम प्रेम, ठंडी - ठंडी हवाओं से तीव्र बननेवाला विरह, विरह ताप से तपित और शुष्कित शरीर, हाथों से फिसलकर गिरनेवाली चूडियाँ आदि के बारे में निवेदित करने के लिए प्रार्थना करती हैं। और कहती है कि भगवान के विरह में उनकी निद्रा दूर हो गयी है, धैर्य और शक्ति शिथिल हैं। अब जीवन केवल भगवान के अधीन ही है।

आंडाल, गोविंद के गुणों का कीर्तन करती हुई कहती हैं -

''श्रीलक्ष्मी को वक्षःस्थल पर स्थान देनेवाले हे श्रीपति! मेरी कामना है कि आप मुझे अपने सीने से लगाएँ!

हिरण्याक्ष के हृदय को चीरनेवाली उंगलियों के हाथों से मेरी हाथों से छूटी हुई चूडियाँ लाकर पहनाएँ!''

वे नारायण से कहना चाहती हैं कि महाबलि से पृथ्वी को उपहार के रूप में पानेवाले वामन और तिरुवेंगडम् के निवासी क्यों उनके दिल के चोर हैं? उनके मन में क्यों घुसे हैं? बडे मच्छर के समान क्यों उन्हें सता रहे हैं?

वे भगवान के पाद पद्मों के सामने निवेदन करना चाहती हैं कि एक बार ही तो सही उनके मस्तक पर, कुचों पर कुंकुम से राग रंजित करें। उन्हें जीवन को सहने की शक्ति प्रदान करें।

पाशुरम् 9 में वेंगडम् के मेघों से कहती हैं कि शेषशायी का नाम बदनाम हो रहा है (गोदा की रक्षा में न जाने के कारण)। वे सर्वकाल - सर्वावस्थाओं में एकमात्र रक्षक हैं। लगता है कि वे अपना कर्तव्य

भूले हुए हैं। इस लोक के भक्त भी शायद इस बात पर ध्यान नहीं दे रहे हैं कि भगवान ने पृथ्वी पर अपनी भूल (या तिरस्कार की भावना) से एक अबला को त्यागा है। (गोदा को स्वीकारा नहीं) 8 वें *''तिरुमोळि''* के दसवें *पाशुरम्* में आंडाल जी स्पष्ट कहती हैं कि पेरियाळ्वार की पुत्री गोदादेवी से प्रस्तुत गीतों को गानेवाले *भक्त* भगवान के होंगे। (भगवान उन्हें *अपना लेंगे*)।

गोदादेवी ने श्रीवेङ्कटेश्वर को अपनी आाराधना द्वारा आकर्षित करने का सतत प्रयत्न किया। अपनी नियमपूर्वक पूजा विधि द्वारा तीस दिन पर्यन्त पूजा व्रत रखा। तमिल *मार्गली* मास (= *धनुर्मास* = अंग्रेजी दिसंबर - जनवरी) में उन्होंने अखण्ड व्रत रखा। उस समय गाये गये (गाने के लिए रचे गये) पाशुरों में से प्रथम *पाशुरम्* में ही उन्होंने कामदेव को संबोधित किया (*तिरुमोळि* 1 और पाशुरम् 1)। उसमें उन्होंने कहा है कि *''तै''* (जनवरी-फ़रवरी) महीने में भगवान के द्वारा विहरित सभी प्रान्तों को अलंकृत किया है। उनके सामने वे प्रणमित हुई हैं। वे कामदेव से प्रार्थना कर रही है कि वे एक अवसर प्रदान कराये वेंगडम् के देव से मिलने का।

प्रथम *तिरुमोळि* के तृतीय पाशुरम द्वारा कामदेव को सूचना देती है कि वे दिन की त्रि - संध्याओं में तीन बार उनकी उपासना करती हैं। *''दत्तूरा''* और *''पलासा''* फूलों से पूजा करती हैं। गोदा की इस संदर्भ में एक मात्र इच्छा है कि ''गोविंद'' का नाम उनके मस्तिष्क में अंकित हो जाय! इस दिशा में कामदेव भी उनके मन में अतीव प्रेम उपजाने की दिशा में पुष्पबाण का प्रयोग करें ताकि भगवान वेंगडवन के प्रति उनका मन उन्मुख हो जाय। इससे वेंगडम् के नाथ पर झूठे प्रेमी होने का दोष भी न लगे। वे असत्य प्रेमी न कहलाये जाय। उनको अपयश न मिले कि उन्होंने गोदा देवी को अपनाया ही नहीं और उन्होंने गोदा के प्रति सही ढंग से व्यवहार भी नहीं किया।

चौथे *तिरुमोळि* के दूसरे पाशुरम् में कामदेव को नर - नारी के बीच संधि करानेवाले या उनको मिलानेवाले के रूप में वर्णित करती हैं। वे वामन को भी प्रेरित करने के लिए कहती हैं जो तिरुवेंगडम् पर आनंद से रह रहे हैं और तिरुक्कन्नपुरम् में भी रहते हैं। वे प्रेम भरे हृदय से उनकी ओर (गोदा की ओर) दौड आये, उनके हाथ अपने हाथों में लें और आलिंगन बद्ध करें।

पांचवें *तिरुमोळि* के द्वितीय *पाशुरम्* में गोदादेवी कोयल को आमंत्रित करती हैं। *चंपक* पुष्पों से मधु पीनेवाले कोयल से मधुर स्वर में कुहू-कुहू गाने के लिए कहती हैं। धवल *शंखधारी* वेंगडम् के अधिनायक ने उनके सामने प्रत्यक्ष होने से तो मुँह मोड लिया है, लेकिन गोदा के हृदय में स्थिर हुए हैं। उन्हें तंगकर रहे हैं। उनके जीवन को वे दुर्भर बना रहे हैं। विनोद भावना से उनके दुःख और कष्टों को देख रहे हैं। गोदादेवी कोयल को अपने पक्ष में रहने के लिए कहती हैं। गाकर तिरुवेंगडम् के नाथ को उनकी ओर आकृष्ट करायें, गोदा की कोयल से प्रार्थना है।

दसवीं *तिरुमोळि* के पोंचवें *पाशुरम्* में वे कोयलों को चेतावनी देती है। वे अपने कर्कश ध्वनियों से दूर रहें। वे गोदादेवी के पक्ष में आकर सुंदर गीत गये। जब वेंगडम् के नाथ गोदा की ओर सकारात्मक व्यवहार से आगे आये तब आनंद से नाचें। वे कोयलों को आश्वासन देती हैं कि उचित समय पर वे स्वयं उनको बुलायेंगी। तभी उनको वे मधुर संगीत सुनायें। जब *गरुडध्वज* उनकी ओर दया बरसायें तभी वे आयें और गायें।

दसवीं *तिरुमोळि* के आठवें *पाशुरम्* में गोदादेवी मेघों को संबोधित करती हैं। उनसे गोदाजी कहती हैं कि मृण्मय पात्र पर लगे मोम के समान है। गर्मी के लगते ही पिघलते हैं। वे जाकर वेंगडम् पर विलसे दामाद को पिघलाकर उनकी ओर आकृष्ट करायें। उनके मन और मस्तिष्क में गोदादेवी का प्रतिबिम्ब उत्पन्न करें।

कुलशेखर आळ्वार

कुलशेखर आळ्वार का जन्म केरल के तिरुवानजिक्कलम में हुआ था। ये दृढ़व्रत महाराज के पुत्र हैं। इन्होंने *''पेरुमाल तिरुमोळि''* की रचना की है। इसके 11 *पाशुरम्* वेंगडम् पर हैं। आपने *''मुकुंदमाला''* की रचना भी की है।

पाशुरम् 1 में कुलशेखर आळ्वार कहते हैं कि सप्त गिरियों पर विलसित उस देव की सेवा में वे लीन होना चाहते हैं जिन्होंने नीलादेवी से विवाह बन्धन में जुडना चाहा है। शरीर में माँस बढाने के लिए वे पुनःमानव जन्म पाना नहीं चाहते हैं। स्वामी की *''कोनेरु''* (पुष्करिणी) में बगुला बनना इससे बेहतर समझते हैं। वेंगडम् के *शंखधारी* अधिदेव की समुन्नत प्रकृति के बीच रहना पसंद करते हैं।

पाशुरम् 2 में वे स्पष्ट करते हैं कि वे स्वर्ग में रंभा और *अप्सराओं* के बीच रहकर आनंद प्राप्त करना नहीं चाहते हैं। पृथ्वी पर सम्राट बनकर शासन करना नहीं चाहते हैं। वे केवल तिरुवेंगडम् के सरोवरों में मछली बनकर तैरना पसंद करते हैं।

पाशुरम् 3 में वे भगवान के सुवर्ण पीकदान को अपने हाथों में लेने की लालसा व्यक्त करते हैं। तिरुवेंगडम् पर भगवान के उज्वल चक्र की चमक की आभा में उनके सामने रह जाना चाहते हैं। क्योंकि उनके सामने भगवान हैं और वे भगवान के अन्य सेवकों के बीच होंगे। शिव, ब्रह्म और इन्द्र भी *वैकुंठम्* के प्रधान द्वार पर प्रवेश के लिए एक दूसरे से होड रत रहते हैं। प्रधान आलय में घुसने के प्रयत्न में लगे रहते हैं।

पाशुरम् 4 में वे इच्छा प्रकट करते हैं कि उन्हें वेंगडम् पर *चंपक* वृक्ष के रूप में जन्म लेने का अवसर प्राप्त हो जिस पर बैठकर भृंगों के अमृत नाद आलाप को सुनते हुए *मायावी* वेंकटेश के दिव्य चरणों का दर्शन करना संभव हो जाय।

पाशुरम् 5 में कहते हैं कि मस्त हाथी पर चढकर वैभव यात्रा करना नहीं चाहते हैं। राजभोग और विलास में डूबे रहना नहीं चाहते हैं। उनकी एकमात्र कामना हैं कि वेंगडम् पर उनका जन्म हो और परमात्मा की सेवा में वे लीन रहें।

पाशुरम् 6 में वे घोषित करते हैं कि उनको ऊर्वशी, मेनका आदि अप्सराओं का नाच पसंद नहीं है। लेकिन वेंगडम् पर भौंरों के साथ मिलकर उडना और गाना बहुत पसंद है। उन्हें अत्यंत प्रिय है।

पाशुरम् 7 में वे एक कदम आगे बढाकर कहते हैं कि सामंतों के सम्राट बनकर उन पर शासन करना पसंद नहीं करते हैं। श्वेत छत्र छाया में मागदों को गानों के बीच प्रशंसात्मक गीत सुनते हुए उत्सव मनाना नहीं चाहते हैं। लेकिन वेंगडम् की स्रोतस्विनी (नदी) बनकर पुष्पित वनों में से गुजरती बहना उन्हें प्रिय लगता है।

पाशुरम् 8 में तो तिरुवेंगडम् पर्वत का पथ (रास्ता) बनने की इच्छा प्रकट करते हैं। यह पर्वत तो परम पवित्र धाम है। *वेदों* से प्रशंसित है। चंद्रशेखर शिव की इच्छाओं की पूर्ति करनेवाली स्थली है। ब्रह्म, इन्द्र आदियों की याग भूमि है। वे यहाँ *यज्ञ* करते हैं अपने अपने महत्व और अपनी श्रद्धा के अनुरूप।

पाशुरम् 9 में वे भगवान से प्रार्थना करते हैं कि ''हे लक्ष्मीपति! हे परात्पर! महावृक्षों के समान बढनेवाले मानवों के क्रूर कर्मों का नाश करनेवाले भगवान! हे वेंगडम्वासी! मुझे आप के मंदिर की प्रथम सीढी बनने का अवसर प्रदान कीजिए। उस पर आपके भक्त चरण रखकर चलते हैं तो मुझे आनंद मिलता है। आपके मृदु मधुर अधरों के दर्शन के लिए भक्त, देवता, अप्सराएँ आदि सब कदम रखकर चलें।''

पाशुरम् 10 में वे कहते हैं कि उनके मन में उच्यतम साम्राज्यों को अपने अधिकार में लाने की इच्छा लेशमात्र भी नहीं है। वे ऊर्वशी को पाना भी नहीं चाहते हैं। वे वेंगडम् के नाथ के अधरों पर रह जानेवाली कोई भी वस्तु बनना चाहते हैं। उस क्षण के लिए लालाइत हो तडप रहे हैं।

पाशुरम् 11 में कुलशेखर आळ्वार घोषित करते हैं कि ''शुद्ध और पवित्र मन से रचित इन तमिल पाशुरों का गान करनेवाले भक्तों की वेंगडम् के भगवान के दर्शन की इच्छा अवश्य पूरी होगी। भगवान के शत्रुओं और विरोधियों को भगवान अपने चक्र से संहार करते है और *भक्तों* को आश्वासन देकर अपनाते हैं।

''पेरुमाल तिरुमोळि'' के अलावा कुलशेखर आळ्वार की एक और ख्यात और प्रसिद्ध रचना ''मुकुंदमाला'' है। यह 42 *श्लोकों* की *संस्कृत* में रचित भक्ति रस सिक्त रचना है। ''मुकुन्द'' विष्णु ही हैं। इस के 19 वें छन्द में आळ्वार ने शिव, ब्रह्म और अन्य देवताओं को क्षुद्र देवता कहकर अपने स्तर

को कुछ नीचा गिराया है। उन्हें कीटक भी कहा है ''*क्षुद्र* रुद्र पितामह प्रभुत्याः कीटास्समस्तास्सुराः''। इनका एकमात्र लक्ष्य मुकुन्द को महान कहना और उसी रूप में चित्रित करना था। उन में अन्य देवताओं के प्रति अनुदार भावना के अतिरिक्त उन्हें कोसना और तिरस्कृत करना भक्तों को भी कुछ खटकता है। उनमें उदारता का लोप या कमी असामान्य लगता है।

परमात्मा एक ही हैं। त्रिमूर्तियों की एकता मान्य है। भगवान के विशिष्ट कार्यों के आधार पर त्रिमूर्तियों की परिकल्पना है - ब्रह्म, विष्णु और शिव। ये सृष्टि, स्थिति और लय की कारक शक्तियाँ हैं। पोयगै आळ्वार और पेयाळ्वार ने तो श्रीवेङ्कटेश्वर को शिव, विष्णु और ब्रह्म का स्वरूप ही माना है। इसके विपरीत कुलशेखर आळ्वार तो ''मुकुन्द'' (विष्णु) को एक मात्र भगवान या परमात्मा मानते हैं। उनको ही सृष्टिकर्ता, स्थितिकर्ता और संहारकर्ता (प्रलयकारक) स्वीकार करते हैं। ऐसी स्थिति में ब्रह्म और शिव की निंदा को विष्णु की निंदा ही स्वीकार करनी पडती है।

यह तो सामान्य ज्ञान है कि परमात्मा सृष्टिकर्ता, स्थितिकारक और लयकारक हैं। मानव, वस्तु समुदाय, क्रियाएँ, घटनाएँ और रहस्यमय विश्व के निर्देशक है। *''श्वेताश्वतर उपनिषद्''* (अ.1 खं. 5 श्लो. 10) कहता है - ''क्षरं प्रधानममृतक्षरं हरः खरात्मना विशते देव एकः'' परमात्मा की प्रकृति और उनके गुण प्रधानम् या प्रकृति (विश्व) *क्षरम्* है (नाशवान है)। हरः (परमेश्वर या परमात्मा जो प्रलय के समय अपने को और विश्व को बाद में रक्षित करते हैं) एक ही हैं। वे ही एकमात्र देव है। ये ही क्षर - आत्मान, विश्व और आत्म, के सृजक हैं। विश्व और आत्मा, जीव सबके नियोजक भी आप ही हैं।

10 वें *तिरुवायमोळि* के दशक 6 के प्रथम *पाशुरम्* में नम्माळ्वार भगवान को ''उलगम् - उण्ड - पेरुवाय'' (प्रलय के समय समस्त को अपने विशाल मुँह से निगलनेवाले) कहते हैं। *तिरुमंगैयाळ्वार* (8 वें *तिरुमोळि* के प्रथम दशक के तीसरे पाशुरम में) कहते हैं कि परमात्मा आठों दिशाओं और सातों लोकों के रक्षक हैं। पृथ्वी और सागर दोनों की एक साथ रक्षा करनेवाले हैं। उनमें रहनेवाले समस्त जीवों और वस्तुओं के रक्षक हैं। वे समस्त को अपनी *कुक्षि* (उदर) में रखकर रक्षा करते हैं। प्रलय चाहे कितना भी भयंकर क्यों न हो समस्त के रक्षक परमात्मा ही हैं।

ब्रह्म, विष्णु और शिव नाम तो मात्र व्यापारपरक या क्रियासूचक अभिधान हैं। इनकी निंदात्मक अभिव्यक्तियाँ अस्वीकार्य ही होनी चाहिए। अमान्य ही हैं। ''श्रीलक्ष्मी *स्तोत्रम्''* में उन्हें ''ब्रह्म - विष्णु - शिवात्मिका'' कहना ध्यान देने की बात है। एक और पंक्ति में श्रीलक्ष्मी को ब्रह्म, विष्णु और शिव के द्वारा आराधिता भी कहा गया है - *''हरि - हर - ब्रह्मादिभिस्सेविताम्''।* इसी प्रकार पार्वती अपने अनेक रूपों में और यहाँ तक सरस्वती भी त्रिमूर्तियों (ब्रह्म, विष्णु और शिव) की आराधिकाएँ कही गयी हैं। ऐसी स्थिति में कौन परमात्मा हैं? सोचने - विचारने की बात है क्या?

तिरुप्पान आळ्वार

तिरुप्पानाळ्वार चोल देश के श्रीरंगम् के पास के उरैपूर के थे। उनका पालन - पोषण एक बहिष्कृत परिवार में हुआ। बचपन से ही उनके हृदय में श्रीरंगनाथ स्वामी की भक्त के बीज पडे थे। उन्होंने स्वामी के प्रति अपने को अर्पित ही कर लिया। ये बाद में लोकसारंग मुनि से प्रेरित होकर श्रीरंगनाथ स्वामी के परिसर में पहुँचाये गये। जबसे उनको रंगनाथ स्वामी का दर्शन हुआ तब से वे पाशुर कहने लगे। उनके मुँह से वे उमड पडे। भगवान को उन्होंने ''अमलनाडिपिरान'' यानी विश्व के पवित्र आदि पुरुष कहा है। इसी शब्द से उन्होंने अपने प्रथम *पाशुरम्* में भगवान को पुकारा है। इसी पाशुरम् में उन्होंने श्रीवेङ्कटेश्वर और श्री रंगनाथ को एक माना है। उनमें अभेद स्वीकार किया है।

अपने प्रथम *पाशुरम्* में ही आळ्वार कहते हैं कि भगवान के पदकमल पवित्र हैं। वे ही विश्व के प्रथम कारक हैं। उन्होंने ही अपने को *भक्तों* के प्रथम सेवक बनाया है। स्वर्ग के देवताओं के देव हैं वे। ये फूलवनों और घने वृक्षों से भरे वेंगडम् पर निवास करते हैं। ऊँचे प्राकारों के बीच विलसित श्रीरंगम् के मंदिर में रहते हैं। इतना ही आळ्वार की आँखों में भी बसे हुए हैं। इस से दोनों की भलाई हो रही हैं। दोनों को लाभ मिल रहा है।

तीसरे *पाशुरम्* में वे पुनः श्रीरंगनाथ को वेंगडम् के अधिवासी के रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं कि भगवान खेलने में मस्त बंदरों के बीच रहते हैं। देवताओं से उचित रीति से अर्चित हैं। श्रीरंगम् में शेषशयनी, पीतांबरधारी भगवान हैं। उनका सुंदर नाभि कमल, ब्रह्म का जन्म स्थान, अति आकर्षक लगता है। उन्होंने स्वीकारा कि उनके मन में भक्ति उपजायी। वे ही उनकी आत्मा में भरे हैं।

तिरुमंगै आळ्वार

तिरुमंगै आळ्वार का जन्म चोळ देश में स्थित तिरुक्कुरैयालूर में हुआ है। यह गाँव बंगाल की खाडी और कावेरी नदी के संगम प्रांत में हैं। आपने अनेक शीर्षकों में अनेक *पाशुरों* की रचना की है। ये नालायर दिव्य *प्रबन्धम्* के *पेरिय - तिरुमोळि, तिरुक्कुरुन - दंडकम्, तिरुनेडनडांडकम्, सिरिय - तिरुमडल, पेरिय - तिरुमडल* और *तिरुवेलुक्कुत्तिरुक्कै* में संगृहीत हैं।

आपके ''पेरिय - तिरुमोळि'' के भिन्न भिन्न दशकों के 53 पाशुरों में वेंगडम् और श्री वेङ्कटेश्वर की महत्ता गायी गयी है।

आठवें *तिरुमोळि* के प्रथम दशक के पाशुरों में वे अपने मन को वेंगडम् के प्रभु श्रीवेङ्कटेश्वर की ओर मुडने के लिए प्रबोधित करते हैं। इनमें बालाजी को उन्होंने श्रीकृष्ण कहा है। साथ साथ क्षीर सागर में विलसनेवाले वटपत्रशायी कहते हुए भगवान को श्रीरंगम् के अधिनाथ भी मानते हैं। आगे कहते हैं

कि ये ही भगवान *कृतयुग* में श्वेतवर्ण के, *द्वापर युग* में पीले (हल्दी) रंग के और *कलि-युग* में काले रंग के होते हैं। ऐसे भगवान के सामने वे प्रणमित होते हैं जिनके पदकमलों पर देवता समूह झुकता है। ये भगवान *सुदर्शन चक्रधारी* हैं जिससे हमेशा शरणागतों की रक्षा होती है।

आळ्वार अपने पाशुरों में तिरुवेंगडम् के भगवान को त्रिविक्रम कहते हैं। गजेन्द्र रक्षक और गजेन्द्र मोक्षप्रदायक भी कहते हैं। हिमालय की पर्वत श्रेणियों के बदरिकाश्रमवासी को ही तिरुमालिरुमशोलै और तिरुविडवेंडै के वासी के रूप में वर्णित करते हैं। भगवान को वे अष्टभुजी और अष्टभुज क्षेत्रवासी कहते हैं। अष्टदिशों के रक्षक और सप्त *लोकाधिपति* मानते हुए कहते हैं कि प्रलय के समय वे उनकी रक्षा भी करते हैं। वे ही *सुदर्शन चक्रधारी* हैं और *सालवृक्ष* भंजक भी (रामावतार में सुग्रीव के संदर्भ में) हैं। *पांडवों* के सहायक भी वे ही हैं और *भारत* युद्ध में विजय संप्राप्त करानेवाले भी ये ही हैं। बलि चक्रवर्ती से पृथ्वी का दान स्वीकार करनेवाले श्रीपति वे ही हैं और हिरण्यकश्यप के हृदय को चीरनेवाले नृसिंह भी ये ही हैं। चन्द्रमा को रोग (क्षीण रोग) से मुक्त करनेवाले परंधाम ये ही हैं और *पंच भूतों* (विश्व के कारक पंचतत्त्वों) के अनुशासक भी ये ही हैं। सहस्रनामों से आराधित परब्रह्म ये ही हैं, देवताओं के अधिदेव ये ही हैं और श्रीलक्ष्मीनाथ भी ये ही। *पाशुरम्* 9 में ये अपने मन को तिरुवेङ्कटशैल नाथ के शरण में जाने के लिए उद्यत करते हैं। यह पहाड अन्य पहाडों के बीच *तिलकम्* के रूप में प्रकाशित है। इस पर्वत पर शोभित *अष्टोत्तर नाम* जप करने मात्र से भक्तों को *दर्शन* देते हैं - *''ओम नमो वेङ्कटेशाय''।* इस मंत्र जप से भक्त मुक्त होते हैं और उन्हें पुनर्जन्म राहित्य मिलता है।

पाशुरम् 10 में आळ्वार भगवान को ''कलियान'' कहते हैं और मानते हैं कि तिरुमंगै प्रान्त के लोगों (भक्तों) के मुखिया हैं। अपने नौ पाशुरों को वे नौ पुष्प मालाएँ कहते हुए भगवान को अर्पित करते हैं। ये नौ पाशुरम् तमिल में हैं। इनको गानेवाले भक्त श्रीवेङ्कटेश्वर के प्रिय होते हैं और अंततोगत्वा उनके पास पहुँच जाते हैं।

उनकी चतुष्पदी रचनाओं से हमें विदित होता है कि वेंगडम् पर्वतश्रेणियाँ जलधाराओं, पुष्करिणियों, पुष्प वनों आदि से मण्डित हैं। *''कुरवा''* जाति की युवतियों के लोकनृत्यों से प्रकाशित हैं।

9 वें *तिरुमोळि* के प्रथम दशक में आळ्वार जी ने वेंगडम् के अधिनाथ से शरणागति की माँग की है। सुन्दर बाँसों की झुरमुटों, फूल वनों, शहद बरसानेवाली मधुमक्खियों और वृक्षशाखाओं, झरियों और सरिताओं, कमलों से युक्त सरोवरों, मस्त हाथियों से विलसित वेंगडम् की भूरि प्रशंसा करते हैं। भगवान से निवेदन करते हैं कि वे कृपा भाव से क्लिष्ट और पापों से भरे जीवन से उन्हें संभालें। पार्थिव संबन्धों और अनुबन्धों से मातावत्, पितावत् रक्षा करें। वे पारिवारिक संबन्धों से त्रस्त और शिथिल हैं। उन्हें भगवान स्वीकार करें और उनकी रक्षा करें। मृगाक्षियों से वे आकर्षित होकर दुःखी हैं। कभी किसी

प्रकार का पुण्य कार्य किया नहीं है। इन सबके बावजूद वे भगवान की शरण में आये हैं। वे दया दिखाकर कृपा भाव से उध्दार अवश्य करें। दूसरे *पाशुरम्* में वे भगवान को हाथी कहते हैं।

10 वें *पाशुरम्* जो *कळियन* से सृजित हैं, में वे स्पष्ट घोषित करते हैं कि इन पाशुरों का गायन करनेवाले सप्त गिरियों के नाथ की कृपा के भागीदार बनेंगे। ये वेंगडम् के नाथ *देवताओं, वेदों* से स्तुत्य हैं।

10 वें *तिरुमोळि* के प्रथम दशक में 5 *पाशुरों* में भी तिरुवेंगडम् के अधिपति श्रीवेङ्कटेश्वर की स्तुति के साथ उनसे प्रार्थना है कि वे कृपा कर आळ्वार के कष्टों को दूर करें। रास्ते के अडचनों को दूर करें। दया बरसायें। आगे के चार पाशुरों में परमपिता परमेश्वर से मानवीय जीवन के दुःखो से मुक्त करने की प्रार्थना निहित है। वे कहते हैं कि भगवान अपने मन और मस्तिष्क में हैं। उन्होंने भक्त आळ्वार के जीवन के दुःखो को दूर किया है। उनको अपना भक्त बना लिया है। भगवान तो सामान्यों के लिए अप्राप्य और भक्तों तथा पवित्र जनों के लिए सुप्राप्य हैं। अनवरत प्रकाशवान हैं। वे भक्त *चिंतामणि* हैं। इच्छाओं के पूरक हैं। सबके अधिनाथ हैं। मन वासी हैं। उनके पास वे स्वयं आये है (आळ्वार के पास)। उनकी मनौतियाँ सुनते हैं। ऐसे भगवान को वे छोडेंगे नहीं। उनके पदकमलों के अलावा अन्यों को चाहेंगे नहीं। इस दिशा में सोचेंगें तक नहीं।

10 वी चतुष्पदी में तिरुमंगैयाळ्वार कहते हैं कि जो *कलियन* द्वारा रचित पाशुरों का गायन करेंगे, वे अवश्य देवता समूह में एक हो जायेंगे।

प्रथम पाशुरम् में वेङ्कटेश्वर को श्रीराम कहते हैं। पाशुरम् 2 में *गरुडवाहन* के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ये राक्षक संहारक प्रभु हैं। श्री वेङ्कटेश्वर तो प्रधानतः *तुलसीमाला* प्रिय हैं। पाशुरम् 3 में समस्त सागरों को अपने मुँह में संभालनेवाले भगवान हैं। प्रलयकाल में उनका यह रूप अत्यंत प्रभावकारी है। प्रलय के समय में ये ही वटपत्रशायी होकर शयन करते हैं। ये *अमृतमय* हैं। पाशुरम् 4 में श्रीकृष्ण को माखनचोर के रूप में चित्रित कर संतुष्ट होते हैं। साथ साथ यहाँ भगवान के वामन रूप का प्रस्तुतीकरण भी हुआ है। पाशुरम 5 में भगवान का नरसिंह रूप उभरता है। स्तंभ से फूटकर ही भगवान विष्णु ने हिरण्यकश्यप का संहार किया था। ये ही शेषशायी (*आदिशेष* पर शयन करने वाले) हैं। पाशुरम् 6 में भगवान को अपने जनक बताते हैं। पाशुरम् 7 में नीलादेवी से विवाह करनेवाले विष्णु का स्मरण करते हैं। वे कहते हैं कि उस समय भगवान ने सात वृषभों (राक्षस बैल के रूप में) का संहार भी किया था। पाशुरम् 8 में वे भगवान को *''आयन''* कहते हैं। वे ही गोपाल कृष्ण हैं।

प्रथम *तिरुमोळि* के द्वितीय दशक के नौ पाशुरों में अपने मन और मस्तिष्क की प्रशंसा करते हैं तथा आनंदित होते हैं क्योंकि उसी ने उनको भगवान की सेवा में प्रवृत्त होने की प्रार्थना की है। भगवान

वेंगडम् के नाथ श्रीवेङ्कटेश्वर की ओर उन्हें उन्मुख किया है। ये भगवान *भक्तों* के मनों में निवास करते हैं। जो मानव अपने रक्त संबन्धों से हटकर उनकी सेवा में लगता है उसे तारकर जीवागमन चक्र से मुक्त करते हैं। ये भक्तों द्वारा प्रेम से स्वीकृत हैं और अपने भक्तों को उनके संबन्धियों के साथ मुक्ति प्रदान करवाले भगवान हैं। वे आगे कहते हैं कि जो मन कल तक भौतिक इच्छाओं और कामनाओं की ओर आकृष्ट था, वही अब भगवान के प्रति आकर्षित हो गया है। वह किसी का अनुकरण और अनुकृति करना नहीं चाहता। अपने ही मार्ग पर भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर (वेंगडम् वासी) की सेवा में लीन होना चाहते है। अनेक भक्त लोग भगवान की प्राप्ति के लिए मस्त होकर नाचते गाते हैं। कुछ दानव भी इसी प्रकार तरसते हैं, पर उन्हें प्राप्त नहीं हुए। ब्रह्म, ईश्वर (महेश्वर, शिव) और इन्द्र भी इनके सामने खडे रहते हैं। ऐसे भगवान हैं श्रीवेङ्कटेश्वर!

पाशुरम् 10 में वे उद्घाटित करते हैं कि जो भक्त विनम्रता से इन पाशुरों का गान करेगा वह परमपद प्राप्त करेगा, क्योंकि ये पद वेंगडम् के नाथ की विशिष्टताओं का गायन करते हैं। ये *अमरों* (देवता) के अधिपति कलिकर्नी हैं, परमहंस हैं एवं मंगैयार नगर वासियों के भगवान हैं।

उक्त पाशुरों में आळ्वार जी भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को वामन, कृष्ण आदि अवतार स्वरूप बताते हैं और कहते हैं कि ये सूर्य मण्डल में रहते हैं। यहाँ वे *कानवर* (जंगल की एक जाति) को पर्वत निवासी भी कहते हैं। कुहरे से ग्रसे पहाडों को सुगन्धित धुएँ से आच्छादित करते हैं। सुरगायों (चमरी मृगों) से और भौंरों के नाद से भरे जंगल को महान बताते हैं। बासों की झुरमुटों से गिरते बीजों को मोती कहते हैं।

पाशुरम् 9 तो भगवान के विभिन्न करतूतों का वर्णन करता है। आळ्वार इस भगवान को बाणासुर के एक हजार हाथों को काटनेवाले *सुदर्शन* चक्रधारी कहते हैं। ये *वेद* विदित वेंगडम् पर वास करते हैं। ये ''नान् - कै - शेम् - पोन् - शेय्'' के रव्यात मंदिर दक्षिण में प्रसिद्ध प्राप्त मंदिर है जहाँ विद्वान, ज्ञानी रहते हैं (तीसरा *तिरुमोळि,* चौथा दशक, 8 वाँ *पाशुरम्*)। ये भगवान को अपनी सोच के प्रेरक, मार्गदर्शी, श्रीलक्ष्मी नाथ और वेंगडम् के अधिनाथ कहते हैं। इन्हें अपने मन के वासी भी बताते हैं एवं त्रिविक्रम घोषित करते हैं। परमात्मा और श्रीरंगधामवासी भी बताते हैं। (6 *तिरुमोळि* के 5 वें दशक के 7 वाँ पाशुरम्)। ये भगवान को तिरुवेंगडम् पर रहनेवालों के लिए दिव्य ज्योति हैं। तिरुनानगूर वासियों के लिए वेदिक मूर्ति हैं। तिरुवेल्लककुल वासियों के लिए पाप नाशक हैं। (7 वें *तिरुमोळि* के चौथे दशक का 5 वाँ *पाशुरम्*)। तीसरे *तिरुमोळि* के पाँचवें दशक के चौथे *पाशुरम्* में तिरुवेल्लारै के निवासी के रूप में भगवान का वर्णन करते हैं जो आपके बगीचों और कटहल के वनों के बीच हैं। महाभारत युद्ध में शत्रुओं के संहारक भगवान भी ये ही हैं जिन्होंने पाँचों *पाँडवों* की सहायता की है। ये ही कृष्ण तिरुवेंगडम् पहाडों पर रहते हैं। भक्तों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। 1-6-8 में वे स्वीकार करते

हैं कि उन्होंने भगवान की खोज की और पाया भी। वे एक *ब्रह्मचारी* के रूप में मृगचर्म पहने हुए मिले। ये ही बली से पृथ्वी को दान में पानेवाले वामन थे। ये ही तिरुवेंगडम् वासी भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर हैं। 5-7-3 *तिरुमोळि* में वे घोषित करते हैं कि तिरुनारैयूर के भगवान के अलावा और कोई देव उनके मस्तिष्क में स्थान नहीं पा सकता। ये अपनी शरण में आये भक्तों को निर्भय होने का आश्वासन देते हैं। रक्षा करते हैं और उन्हें स्वर्ग का आभरण बनाते हैं। बाल कृष्ण के रूप में आपने *हयासुर* का वध किया। ये गन्ने के रस समान मीठे और शहद समान मधुर हैं। *तिरुमोळि* के 3-7-10 में वे बताते हैं कि उन्होंने ढूँढकर उन्हें पहचाना और उसी भगवान की आराधना की, क्षीराभिषेकम् भी किया। ये उस *परमेश्वर* से ऐक्य होना चाहते हैं, जो हिमवंत की पुत्री पार्वती के पति हैं। ये सूर्य भगवान की आत्मा हैं। वेंगडम् के अमूल्य मणि हैं। दिन और रात के सृजक भी हैं। *तिरुमोळि* के 2-10-1 में आळ्वार कहते हैं कि वे और उनके सहयोगी सबने वेंगडम् के भगवान को देखा और उनकी ओर आकर्षित भी हुए। ये महान और महत्वपूर्ण हैं। सुवर्ण के समान आकर्षक हैं। सुअंग और सुनिश्चित संकेतों से युक्त देव हैं, तथा बिजली से अधिक प्रकाश फैलाने वाले हैं। ऐसे भगवान ने आळ्वार को अपने सेवक के रूप में स्वीकार किया है। तिरुत्तनकोविल में आराधना करने का अवसर प्रदान किया। *तिरुमोळि* के 4-9-7 में वे अपने मन को संबोधित करते हुए कहते हैं कि ''हे मन! तुम अगर सुंदर देव वनिताओं की सोच से मुक्त होकर सही ढंग से रहना और सही मार्ग पर चलना चाहते हो तो *परमात्मा* का नामस्मरण करो। ये वेंगडम् पर वास करते हैं। सागर समान विशाल हृदयी हैं। साथ साथ तिरुवेल्लवाल का भी नामस्मरण करो।''

तीन और *पाशुरों* में आळ्वार स्त्री बन जाते हैं। उस नारी की माता बनकर (स्त्री बने आळ्वार से) कहती है - ''मेरी पुत्री! बिना किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव किये 'वेंगडम् वेंगडम्' नामस्मरण करती है। वह मेरी गोद में लेटती नहीं है। हमेशा आँखें खोलकर रखती हैं। नींद को भूल ही गयी है। मैं अपनी पुत्री की व्यथा कैसे व्यक्त कर सकती हूँ? यह व्यथा तो भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर से विरह की व्यथा है। *तिरुमोळि* के 1-5-5 में तो भगवान के विरह में विरहिणी नारी (आळ्वार) भगवान का कुशल - क्षेम समाचार पूछती है। विरह में पसीना - पसीना हो जाती है। बेहोश होती है। मूर्छित स्थिति में उसका मस्तिष्क चकरा जाता है, पागल होती है। क्या वह ऐसी स्थिति से मुक्त हो सक्ती है? (यह माता की मानसिक वेदना है।) *तिरुमोळि* 3-8-2 में वे शंका व्यक्त करती हैं कि क्या मेरी सुंदर पुत्री नारायण को पा सकेगी? दिव्य गुण संपन्न *शंख चक्रधारी* अपनी बली भुजाओं से उन्हें तारेंगे? पवित्र *यज्ञोपवीतधारी* वेंगडम् के अधिदेव जो *शिलंबु* पायल से सुअलंकृत हैं, और जो *तिरुमालिरुंशोलै* पहाड़ पर विराजमान हैं, और *वेद* वर्णित भगवान स्वीकार करेंगे?

तिरुप्पान आळ्वार अपनी भक्ति भावना से ओतप्रोत होकर श्री वेङ्कटेश्वर के सामने कामिनी के रूप में प्रस्तुत होते हैं और अपनी हरे वर्ण की तोती से भगवान से कुछ बताने के लिए कहती है। वह जाकर उनसे कहे कि भयंकर *सुदर्शन* चक्रधारी तुरंत उनके पास आयें (तिरुमोळि 5-10-10)। वे आगे कहते हैं (नारी प्रेमिका के रूप में मानकर) कि ''कृष्ण तो मेरे मन में रहते हैं, परन्तु किसी वजह से मेरे हाथ की चूडियाँ हाथों से गिरती जा रही हैं। (विरह से हाथ सूख गये हैं)। स्त्रियों का जन्म पाने के साथ - साथ हम उनके कुछ महत्वपूर्ण गुणों और विशिष्टताओं को भी प्राप्त करती हैं। उन्हें वैसे ही रहने दीजिए। हम कुछ निरोधकों को भी उसके साथ - साथ उत्तराधिकारवत पाती हैं। प्रसिध्द वेंगडम् पहाड के सर्वोन्नत भगवान की प्रशंसा गाना भी इसी का परिणाम है। उसी प्रकार श्रीरंगम के अधिनाथ का गायन भी।'' *तिरुमोळि* 7-11-3 में अपने ऊपर इच्छा से लिए महिला - आळ्वार के भाव से संपन्न होकर अपनी सखी द्वारा छोडे वचनों के प्रत्युत्तर में आळ्वार कहते हैं - ''वे कहती हैं कि उन्होंने महाबलि से तीन फुट जमीन माँगी है, लेकिन उन तीन फुट से तीनों लोकों को नचाया है। वे क्षीरसागर पर सोते हैं और वेंगडम् पर रहते हैं।'' बाद में कहते हैं ''हे सखी! वे क्षीरसागर पर शयन करते हैं और वेंगडम् पर भी रहते हैं लेकिन हृदय में तो स्थाथी रूप से रहते हैं, ये ही कलिकंड्र हैं (कलियन तिरुमंगैयाळ्वार हैं''10-11-5 तिरुमोळि)।

अपने तिरुक्कुरुंडानडकम् के 7 वें *पाशुरम्* में तिरुमांगैयाळ्वार कहते हैं कि जो पवित्र मन से भगवान की महानता को पहचानने का प्रयत्न करते हैं वे समझते हैं कि भौतिक और स्वार्गिक विभूतियों को भक्तों को प्रदान करनेवाले भगवान श्रीरंगम् और *तिरुमलै* दोनों स्थानों में लाल और नीले वर्ण के फूलों के उद्यानों में (जो युगानुरूप) रहते हैं।

(इसी संदर्भ में हम दूसरी बार *तिरुमलै* शब्द का प्रयोग पाते हैं। वैसे वेंगडम् शब्द ही अधिक प्रयुक्त है आळ्वारों से। पहली बार हम पूदत्त आळ्वार के 63 *पाशुरम्* में इस शब्द का प्रयोग पाते हैं।)

'तिरुनेडुनडानडकम्' के 8 वें *पाशुरम्* में आळ्वार सूचित करते हैं कि ''मैं *पेरुमान* के पाद युगल की आराधना में लीन रहना चाहता हूँ जो तिरुनूरकम् में रहते हैं, जो वेंगडम् पर रहते हैं, जो तिरुनीलाट्टिंगल्तुंडम् (कांची) में रहते हैं, जो वेंका में भी रहते हैं, जो भक्तों के मनों में रहते हैं, जो तिरुक्कारकम् में रहते हैं, जो तिरुक्कारवानम् में रहते हैं और तिरुप्पेर शहर में रहते हैं। वे भगवान जो माखन चोर हैं मेरे मन में बसते हैं। पाशुरम् 9 में वे आगे बढ़कर कहते हैं कि ''मेरे भगवान तिरुक्कडलमलै में रहते हैं। वहाँ के सागर के तट पर जहाज़ अनेक मणि - मानिक ला देते हैं। वे तिरुवेङ्का (कांची) में उच्च *प्राकारों* के बीच रहते हैं। तिरुप्पेर नगर में रहते हैं। उनके दक्षिण पार्श्व में शिव पार्वती रहते हैं। ये वही भागवान हैं जो क्षीरसागर पर सोते हैं। ये वे ही हैं जो विभिन्न *अवतार* लेकर

पृथ्वी पर आये हैं। ये वे ही हैं जो वेंगडम् पर खडे हैं। हे भगवान! आप कहाँ है? आपके गरीब भक्त और सेवक आपको ढूँढ रहा है। ढूँढते ढूँढते थक गया है। जल्दी मिलो!'' पाशुरम् 10 में मन की विकलता को जोडकर आळ्वार कहते हैं कि ''मैं आपका सेवक हूँ, मैं नादान हूँ। मुझे सही ढ़ंग से समझाया नहीं गया है। मैं जानता भी कुछ नहीं। मैं आपको कैसे पुकारूँ, यह भी नहीं जानता। आप तो मस्त हाथी सम ख्यात तिरुमालिरुनशोलै पर्वत पर दक्षिण में रह रहे हैं, आप बली हाथी के समान उत्तर के वेंगडम् पर हैं, पश्चिम के श्रीरंगम् में दृढ़ हाथी के समान सो रहे हैं, उन्मत्त गज सम तिरुक्कन्नपुरम् में (पूर्व में) स्थित हैं। आप देवतागण बीच राजकुमार हैं। अपने समस्त *अवतारों* के बाद प्रधान देव बनकर रह रहे हैं। आपने ही सातों लोकों की रक्षा की है।'' पाशुरम् 16 में तिरुमंगैयाळ्वार अपने को प्रेम में पागल एक युवती मानते हैं। लेकिन भगवान ने स्वीकारा नहीं। इसी कारण वे अपनी माता द्वारा कहला हैं कि ''हे गोपाल गायों को चरानेवाले युवक हैं आप! रासलीला से आनंद लेते हैं, वेंगडम् पर रहते हैं। मेरी लाडली आपके लिए रोती है, आँसू बहाती रहती है, बेहोश होती है। उसे स्वीकार कीजिए।''

श्री वेदान्तदेशिक

आळ्वार भक्तों के साथ साथ वैष्णव आचार्य श्रीमत् वेङ्कटनाथ ने भी *संस्कृत* में पद लिखे हैं। इन्ही को वेदान्तदेशिक भी कहते हैं। इन की कृति है - ''दया शतकम्''। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की भक्ति से युक्त रचना है यह। आपने कुछ और धार्मिक ग्रंथों की भी रचना की है। उनमें ''अधिकार संग्रहम्'' एक है। इसके 43 *पाशुरों* में आप वेंगडम् की प्रशंसा करते हैं। इनका जन्म सन् 1268 में कांचीपुरम् में हुआ था। ये शतवर्ष जीवी हैं। एक सौ साल जिये हैं। वे कहते हैं कि वेंगडम् पहाड श्रीकृष्ण के पदयुग्म को दर्शाता है। भगवान के पदकमल भक्तों के अच्छे और बुरे कर्मों पर ध्यान नहीं देते। बस उनके पापों को धो देते हैं। *पुण्यों* के अनुसार फल प्रदान करते हैं। अन्त में स्वर्ग भी प्रदान करते हैं। यही तो सब चाहते हैं। वेंगडम् तो वेदों का मूर्त संकेत है। *वेदों* की प्रतिमूर्ति ही है।

''दया शतकम्'' की भावनाएँ 108 *श्लोकों* में व्यक्त की गयी हैं। सब भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर की स्तुति में प्रस्तुत हैं। इनमें एक स्वर है - ''भक्तों पर *दया* बरसाइए! उन पर कृपा कीजिए। सब को परम पवित्र बनाइए! हे कलियुग देव श्रीवेङ्कटेश्वर''।

* * *

अध्याय - 15

श्रीवेङ्कटेश्वर को राजवंशीय और अन्य भक्त जनों से प्रस्तुत सेवाएँ

प्राचीनतम अभिलेखाओं में, जिनको तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने संगृहीत किया है, उस में जिल्द I की संख्या 8 और 9 शामिल हैं। ये राजा महेन्द्र वर्मा के राज्यकाल से संबन्धित हैं। इनका समय सन् 600 से सन् 630 के बीच का माना जाता है। इन अभिलेखों में बताया गया है कि ये पल्लव राजकुमारी सामवाय द्वारा प्रदत्त एक चाँदी की मूर्ति से संबन्धित विषय हैं। यह मूर्ति सन् 614 में आवश्यक सांप्रदायिक परंपराओं के अनुपालन के पश्चात् सामवाय द्वारा मंदिर को अर्पित की गयी है। उसे स्थापित भी किया गया। यह सिर से चरणों तक की पूर्ण मूर्ति है। साथ ही इस मूर्ति के लिए ज्योति जलाने का प्रावधान और नैवेद्य समर्पण की सुविधाएँ भी हैं। इसके साथ यह भी बताया गया है कि उन्होंने दो उत्सव भी मनाये हैं जो तमिल मासों के अनुसार पुरट्टासि और मार्गळी उत्सव हैं। (पृ० 99 से 101 तक)

जिल्द I की संख्या 1 से पता चलता है कि सन् 830 में पल्लव राजा विजयदंति विक्रम वर्मा के दरबार के एक अधिकारी उलगप्पेरुमानार ने, जो शोळनाडु के शोलनूर के अधिकारी थे, राजा के शासकीय वर्ष 51 में एक दीपस्तंभ अर्पित किया था। हो सकता है कि यह भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर की नयी मूर्ति *(तिरुविलनकोइल - पेरुमानडिगल)* की प्रतिष्ठा के संदर्भ में हुआ हो।

संख्या 2 में एक और दीप का उल्लेख है। इसे शीयगंगा ने अर्पित किया था। संभव है कि यह व्यक्ति भी विजय-दंति-विक्रम-वर्मा के सामंत ही हो।

संख्या 3 में उल्लिखित है बाण का जन्म। ये विजयादित्य महावलि बाणराय भी विजय-दंति-विक्रम-वर्मा के सामन्त ही थे। संख्या 4 बताता है कि उन्होंने तीन अन्न-प्रसादों के लिए व्यवस्था की जो हर दिन तीन समयों में अर्पित होते हैं यथा डेवलोप. ई.पी. रेप. अण्ड जिल्द I ये तीन हैं तिरुविलनकोइल-पेरुमानडिगल, तिरुमंतिरशालै - पेरुमानडिगल और तिरुवेङ्कटत्तु - पेरुमानडिगल। अर्थात् (1) संख्या (1) में उल्लिखित और नये रूप से प्रतिष्ठित श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की मूर्ति (2) नयी उत्सव मूर्ति जो विशेष उत्सवों में और पारंपरिक शोभायात्राओं में *मंत्रों* और वेदमंत्रों से अराधित होती हैं और (3) मूल विराट यानी मूलबेरम् श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की। सामंत राजा (पूर्वोक्त) ने कुछ *''कळंजु''* सोना (सुवर्ण) और कुछ उपजाऊ भूमि का भी दान दिया। कृषि भूमि को सामंत ने कृषिकों से खरीद कर ही दिया। उस भूमि को कृषकों को ही सौंपकर उसमें फसलें उगाकर उन्हें भगवान को अर्पित होनेवाले अन्नप्रदासों (नैवेद्यों) के लिए देने के लिए कहा गया था। यह दान स्थाई है। स्थाई रूप से नैवेद्य अर्पण के लिए

प्रावधान के रूप में है। इन निवेदित समर्पणों में एक है - *नन्दि - एरि - तिरु - अमुदु।* यह समर्पण निवेदित भूमि से प्राप्त आमदनी से संपन्न होता है और यह आमदनी ''नंदि - एरि'' नामक तालब के पानी से सिंचित भूमि से होने के कारण यह निवेदन के लिए स्थिर हुआ है।

संख्या 5 में सूचित है गंगै - गंगन - रणसिंगन का नाम। संभवतः ये उत्तर गंगा के राजकुमार हैं। यह नैवेद्य समर्पण राजकुमार द्वारा समर्पित सुवर्ण राशि से प्राप्त सूद से संपन्न होता है। यह भी स्थायी निधि है।

संख्या 6 हमारा ध्यान इरुंगोलक्कोन की ओर संकेत करता है। ये इरुंगोल के राजा है। इनका नाम गुणवान अपराजितन है। आपने एक निधि का प्रावधान कराया है। इसके अनुसार कुछ सुवर्ण राशि जमा की गयी है। इसकी सूद से हर दिन दो *ब्राह्मणों* को भोजन की व्यवस्था होनी है। उनके नाम से यही विदित होता है कि ये एक जागीरदार थे। ये पल्लव महाराज के अधीन थे। राजा का नाम है अपराजिता। ये पल्लव राजा चोळ राजा आदित्य-I से सन् 898 में पराजित हुए थे।

संख्या 7 में शक संवत 820 (सन् 898) का एक खण्ड मिलता है। इस जीर्ण खंड से यह विवरण मिलता है कि *तिरुविलनकोइल* के लिए एक गाँव की आय का उपयोग करना चाहिए। न तो पल्लव राजा का उल्लेख इस में है और न ही चोळ राजा का। इस क्षेत्र पर अधिकार के अंतरण का यह समय था। पल्लव वंश से अधिकार चोळ वंशीय राजाओं के हाथ में जा रहा था। सुचारु शासन व्यवस्था अभी तक नहीं हो पायी थी। हो सकता है कि एक स्थानीय अधिकारी ने यह घोषणा की हो और आवश्यक अधिकार पत्र वितरित किया हो।

इस प्रकार पाया जाता है कि सन् सातवीं शती से यहाँ पल्लवों का राज था। इसी समय में स्थानीय राजवंशीय परिवारों द्वारा, कुछ जागीरदारों से, कुछ अधिराजाओं से और मंदिर के भक्तों से श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर के लिए भगवान की कुछ मूर्तियों, उत्सव मूर्तियों, विशेष यज्ञ-यागादियों के लिए, सांप्रदायिक उत्सवों के लिए और दीपाराधना सामग्री के लिए तथा भोजनादि की व्यवस्था के लिए स्थायी प्रावधान स्थापित किये गये हैं। ये प्रावधान, सुवर्ण दान और भू-दानों द्वारा किये गये हैं। सुवर्ण के मूल्य पर सूद और कृषि कार्य से प्राप्त फसलों के द्वारा भगवान के उत्सव, सेवाएँ और अन्य कार्यक्रम संपन्न होते रहे हैं। यह एक प्रकार से भविष्य-निधि व्यवस्था थी। पल्लवों के समय में तो भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर की तीन मूर्तियाँ बनवाकर प्रतिष्ठित की गयी थीं।

चोळ राजाओं का समय दसवीं शताब्दि से आरंभ होता है। उनके समय में 40 *कळंजु* सुवर्ण दान का उल्लेख मिलता है। यह ज्योति समर्पण के लिए व्यवस्थित दान था। यह दान मलैनाडु के कोडुंगोलूरान द्वारा उनके 29 वें शसन वर्ष में स्थापित है (परांतक I) (सन् 936) (वही संख्या 12)। एक और ज्योति

स्तंभ शासन वर्ष 20 में उसी राजा के काल में अर्पित हुआ था (सन् 927) जो अन्य किसी के द्वारा हुआ था। अभिलेख खंडित होने के कारण असली व्यक्ति का नाम स्पष्ट नहीं है (एपिग्राफ संख्या 13)।

उक्त समर्पणों के बाद प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है *''पट्टम''* की व्यवस्था। ''पट्टम्'' एक सोने का आभरण है। उसका भार 52 *कळंजु* है। इसमें 6 पद्मराग, 4 हीरे और 28 मोतियाँ जडे हैं। यह भगवान के मस्तक को शोभित करनेवाला अभूषण है। इसे परांतक II सुंदर चोळ राजा की पटरानी ने भगवान को सभक्ति समर्पित किया है। सुंदर चोळ महाराज राजराज चोळ - I के पुत्र (पटरानी का सौतेला पुत्र) हैं। सुंदर चोळ की पटरानी ने चेर राजा राजराज चोळ I के 16 वें राज्यकाल वर्ष में तिरुवेङ्कटदेवर को यह (श्रीवेङ्कटेश्वर को) प्रदत्त किया है। (वही, संख्या 14)

संख्या 16 एक खंडित शिलालेख है। इसमें *''नन्द''*, ''उलगमा'', ''मुडैयानुक्कु'' और ''इरुपत्तोंबदु'' शब्द हैं। शायद ये शब्द 29 गायों को दान में देने की ओर संकेत करते हों। (*कळंजु* के स्थान पर इनको प्रदान किया गया हो)। राजराज चोळ - I की रानी उलगमादेवी ने तिरुवेङ्कटम् - उडैयान के मंदिर में एक स्थायी ज्योति (कलश) की स्थापना के लिए यह निवेदन प्रदान किया हो।

संख्या 15 और 17 में राजराज - I के एक अधिकारी का उल्लेख पाते हैं। उनका समय सन् 985 - 1016 है। अधिकारी का नाम अरुलाक्कि (राजराज मूवेंदवेलान) था। ये कावेरी नदी के दक्षिणी तटवासी थे। आपने 40 *कळंजु* स्वर्ण ज्योति के लिए अर्पित किया था। यह भी राजराज - I के ऐतिहासिक अधिवेष्ठन के संदर्भ में (संख्या 15) किया।

राजेन्द्र चोळ - I के शासन काल में (सन् 1011 - 1044) उनके पुत्र और उत्तराधिकारी राजराज - I ने श्रीकपिलेश्वर स्वामी के मंदिर के संबन्ध में सूचना दी है (संख्या 20)। उसके अनुसार रायन राजेन्द्र चोळन, (बनाम ब्रह्ममारायन् - मनैयदरयन) जो कोत्तूर के मुखिया थे, श्रीकपिलेश्वर मंदिर का निर्माण करवाया। यह मंदिर तिरुमल पहाडी श्रेणी के पदतल में है। तिरुपति के पास स्थित है।

संख्या 19 वाला शिलालेख राजेन्द्र चोळ - के शासन के प्रथम वर्ष का है। इसमें राजेन्द्र चोळ के द्वारा नियुक्त एक *अधिकारी* (गवर्नर) कोर्रमंगलमुडैयान के जाँच रिपोर्ट का विवरण है। यह जांच तिरुमुंडियम् के *सभैयार* द्वारा 24 दीप (ज्योतियाँ) प्रज्जवलित करने के लिए जो दान दिया गया था और तदर्थ उपयुक्त धनराशि भी प्राप्त की गयी थी परन्तु उसके अनुसार 24 ज्योतियों के स्थान पर 22 ही रखी जा रही थीं। इसी संदर्भ में यह जांच हुई थी। इस कार्य के लिए 23 *पोण* (सुवर्ण मुद्रएँ) तिरुचानूर के श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के कोष भांडागार में रखे गये। उस अनुदान के अनुसार ज्योतियों के लिए घी भेजना था। इतना ही नहीं भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर (तिरुमल पर स्थित) में आराधना के लिए

आवश्यक सामग्री भी भेजनी थी। इसकी प्राप्ति से मंदिर के अधिकारी वर्ग और सेवक वर्ग को 24 ज्योतियाँ रखनी थी। कर्पूर नीराजन की व्यवस्था भी इसमें थी।

उक्त विवरण से यह पता चलता है कि तिरुमल पर विलसित भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के मंदिर के समस्त कार्यकलापों का निर्वहण तिरुचानूर की *सभा* या समिति ने किया है। इसने ही सभी दानों को स्वीकार किया, अनुदानों का स्थापन करवाया, दैनिक व्यवहारों के लिए आवश्यक सामग्री और वस्तुसमुदायों का समायोजन करना तथा उचित रीति से उनको तिरुमल भेजना आदि भी संपन्न किया। तदर्थ तिरुचानूर में एक भंडार था तथा उस पर निगरानी की व्यवस्था भी थी। इससे विदित होता है कि ज्योति कलश दान, अन्नदान, प्रसाद की व्यवस्था के लिए अनुदान, भूदान आदि की जो व्यवस्थाएँ पल्लव और चोळ राजाओं के समय में की गयी थीं उन सब का अभिलेखन (रिकार्ड करने) का काम तिरुचानूर में ही संपन्न हुआ था। ईसा के बाद बारहवीं शताब्दी तक तिरुपति अथवा तिरुचानूर में किसी मंदिर या देवी - देवता के होने की सूचना नहीं मिलती है। लेकिन यह स्पष्ट होता है कि तिरुचानूर सभी प्रकार के कार्य कलापों का केन्द्र था। तदर्थ यह सुविधाजनक भी माना गया था। यहाँ मंदिर के शासक और अधिकारीगण आकर कार्य संपन्न करने की व्यवस्थाएँ भी यहाँ से ही करते थे - यथा यात्रा काल में वास स्थान, कचहरी भवन, आदि का निर्माण भी इसी जगह पर हुआ। उस समय तिरुचानूर ऐसी व्यवस्थाओं के लिए अनुकूल भी माना गया था। एक शिलालेख में तिरुचानूर ग्राम को *देवदान* ग्राम भी कहा गया है। यह दान भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को ही संपन्न हुआ है। इसके साथ तिरुमुंडियम् का भी उल्लेख है। संख्या 21 का समय कुलोत्तुंग चोळ - I का समय था - (सन् 1070 - 1120)। इस शिलालेख से पता चलता है कि सवा मील की दूरी पर स्थित योगिमल्लवरम् गाँव भी तिरुचानूर का ही एक अंगभूत प्रांत था। योगिमल्लवरम् के मंदिर में प्रतिष्ठित देवता तिप्पलादीश्वर मुडय्य महादेव स्वामी हैं। यहाँ लिंग रूप में शिवजी हैं। उन्हीं को 'मुण्णैप्पूंडि' गाँव को दान में दिया गया था। आजकल उस गाँव का नाम 'मुंड्लपूडि' है। यह एक *देवदान* है। इस महादेव को आजकल पराशरेश्वर के नाम से पूजा जाता है। इसका कारण भी है। पराशर महर्षि ने इस *महादेव* की आराधना की थी। पराशर महर्षि की मूर्ति भी इस मंदिर में है।

संख्या 34 शिलालेख एक और है। इसका समय राजराजदेव चोळ III के पाँचवाँ शासन वर्ष माना जाता है (सन् 1221 ई)। इससे पता चलता है कि भगवान अळगिय पेरुमाल तिरुचानूर के अधिष्टान देव हैं। आजकल इस देव का व्यवहार नाम सुन्दरराजस्वामी हैं। पोक्कारन पाण्ड्यदरैयन नामक एक भक्त ने कुछ भूमि को समतल और कृषियोग्य बनाकर उस गाँव के *कैक्कोल* लोगों को (बुनकरों को) दिया। उन लोगों ने भगवान के उत्सव संपन्न कराने का वादा किया था। ये उत्सव *पंगुणि* तमिल मास में (मार्च - अप्रैल का समय) मनाये जाते हैं। यह भगवान को प्रदत्त देवदान भूमि बहुत पुरानी है।

संख्या 36 के अनुसार तिरुचानूर के सभैय्यार ही तिप्पलादीश्वर मंदिर से संबन्धित सभी व्यवहार संपन्न करते थे और *स्थानत्तार* मंदिर से संबन्धित धार्मिक एवं सांप्रायिक कार्यक्रम निभाते थे।

संख्या 40 श्री गोविंदराजस्वामी मंदिर से संबद्ध है। इसका समय राजराज चोळ III का समय (सन् 1235 ई.) था। राजराज चोळ के 19 वें शासन वर्ष में इसको लिखवाया गया था। इससे यह समाचार मिलता है कि उस समय से कुछ पहले *पेरिय - नाट्टवर* ने जो *नाडु* की समिति के सदस्य या कुछ गाँवों के समूह के सदस्य थे और कुडऊरु - नाडु के निवसी थे, तिरुपति के श्रीगोविन्दपेरुमाल के मंदिर में श्रीतिरुमंगैयाळवार की मूर्ति की स्थापना की। उससे संबन्धित आदेश में *अमुदु-पडि* (अन्न प्रसाद) और *शात्तु-पडि* (फूल, सुगंध द्रव्य आदि से अलंकरण) से संबन्धित सभी पक्षों पर समिति - कक्ष में *तिरुविलंकोइल* (नये मंदिर) जो तिरुचानूर में स्थापित किया गया है। उसके लिए विचार किया गया तथा उसी संदर्भ में *कुडवूरार* के निवासियों के द्वारा अर्पित भूदान को स्वीकृत किया गया। इस से यह विदित होता है कि *''नाडु''* में *'नाडु'* के सदस्यों द्वारा अनुदानों को स्वीकृति आवश्यक है। (इसी संदर्भ में सूचित किया गया है कि गोविंदराजस्वामी की मूर्ति प्लास्टिक मूर्ति है)। *श्रीभंडारम्* के पर्यवेक्षकों को अनुदत्त भूमि से उत्पत्तियों को इकट्ठा करना है। उक्त समय तक अर्थात् सन् 13 वीं सदी के द्वितीय तिमाही (तीन महीनों का समय) में तिरुचानूर *स्थानत्तार* और तिरुमल वेङ्कटेश्वर मंदिर के *श्रीभंडारम्* दोनों अलग हो गये हैं और दोनों का निरीक्षण अलग अलग अधिकारी समूहों से होने लगा। वैसे श्रीगोविंदपेरुमाल मंदिर के लिए अतिरिक्त कार्यालयी व्यवस्था न होने के कारण उससे संबन्धित कार्यवाही तिरुचानूर की संस्था से ही चलती रही। लेकिन पूर्व अभिलेखों में यह स्पष्टतः विदित नहीं किया गया है कि श्रीगोविन्दराज स्वामी का मंदिर कब संपन्न हुआ और मूर्ति की प्रतिष्ठा कब की गयी। सर्वसाधारण का विश्वास है कि श्रीगोविंदराज स्वामी का मंदिर निर्माण और मूर्ति की प्रतिष्ठा आचार्य रामानुज द्वारा संपन्न हुआ था (समय सन् 1017 - 1137)। (वे 120 वर्ष जीवित रहे उस समय तक)। एक और मत भी मिलता है। उसके अनुसार ईसा की ग्यारहवीं या बारहवीं शती में कुलोत्तुंग चोळ के मरणोपरांत (सन् 1120 में) एक चोळ राजा के द्वारा श्रीगोविंदस्वामी की मूर्ति को चिदंबरम् के पास समुद्र में फेंकवाया गया था। उस राजा के डर से, आचार्य रामानुज श्रीरंगम से भागकर मैसूर के पास स्थित मेलकोटै में आत्मरक्षा के लिए पहुँच गये। चिंदबरम् से गोविंदराज स्वामी की मूर्ति को ढूँढकर रामानुज साथ ले गये। परन्तु वह मूर्ति बहुत छोटी थी, लगभग दो फुट की थी। इसीलिए स्वामी की आज की मूर्ति को पुनः तैयार करानी पडी। आज की गोविंद स्वामी की मूर्ति 5 से 6 फुट की है। मूर्ति एक ओर मुडी लंबी शयन मूर्ति है। उस मूर्ति के अनुरूप शारीरिक नापों को संतुलित भी रखा गया है। इतना ही नहीं, भगवान के साथ लक्ष्मी, ब्रह्म तथा कुछ ऋषि समुदाय भी हैं।

संख्या 40 और 41 में तिरुचानूर के तिरुविलंकोइल का उल्लेख है। परन्तु उसके निर्माण और उसमें मूर्ति की प्रतिष्ठा के संबन्ध में कुछ भी उल्लेख नहीं है। यह भी उल्लिखित नहीं है कि किसके द्वारा कार्य संपन्न हुआ है। (संख्या 43, 118, 119, 120 (129), 137, 144 सें भी यह स्पष्ट नहीं है)। शायद उसका संबन्ध अळगिय - पेरुमाल (संख्या 34) की स्थापना से हो। एक खंडित अभिलेख संख्या 42 में उल्लिखित है कि श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को एक *नायक* (शायद सेनाधिकारी हो सकता है) से भू अनुदान दिया गया है। यह भूदान तेलुगु चोळ राजा मधुरांतक पोट्टपि चोळ के पाँचवे राज्य शासन वर्ष में किया गया है। मधुरांतक पोट्टपि चोळ अल्लुन तिरुक्कालत्तिदेव नेल्लूरु के राजा थे। उनका राज्य विस्तार उस समय काँची तक था। उनका पाँचवा राज्य वर्ष सन् 1255 ई. था।

संख्या 43 के अनुसार *स्थानत्तार* द्वारा एक भूखण्ड के संदर्भ में प्रस्तुत किये गये आवेदन पत्र (अर्जी) से संबन्धित है। वह भूमि तोंडपाडिप्पर्रु और कुडवूर्नाडु और वारियविमानट्टान (अरगप्पर्रु का) के निवासियों द्वारा भूदान में दिया गया क्षेत्र है। इसको वीरनरसिंह देव यादवराय ने पृष्ठांकित किया है और नायनार जटावर्मन सुंदर पाण्ड्य - I (सन् 1251 - 1275 ई.) ने अनुमोदित भी किया था। यह उनके *''तिरुमुखम्''* में है। यादवराय ने इसे अपने *''ओलै''* (राजाज्ञा पत्र) द्वारा संप्रेषित किया है स्थानत्तार को। यह पाँड्य राजा के राज्यकाल के तृतीय वर्ष (सन् 1254 ई.) से तिरुवेङ्कटमुडैयान मंदिर के सेवार्थ लागू हुआ है। इस भूमि को तिरुविलनकोइल के द्वारा निर्धारित और मापों के लिए उपयोग में लायी जानेवाली रस्सी अथवा लकडी से नापी गयी।

संख्या 44 वीर नरसिंहदेव यादवराय के द्वारा दिये गये निर्देश की सूचना देता है। इसके अनुसार उक्त आदेश सुंदर पांड्य (सन् 1263 ई) से कार्यान्वित हुआ है। इसमें पादिरिवेडु गाँव की दान विषयक सूचना है। यह दान तिरुवेङ्कटमुडैयान के दैनिक प्रसाद समर्पण निमित्त है जो गाँव की आमदनी से संपन्न हो सकता है।

संख्या 45 और 46 में जटावर्मन सुंदर पाण्ड्य I की *प्रशस्ति* का गान है (प्रधानतः प्रशंसा, प्रशस्ति, युद्ध विजय आदि)। ये चंद्रवंशी राजाभरण हैं, ये महादेव है, मधुरापति हैं, केरल राजवंशों के विनाशकर्ता हैं, दूसरे राम हैं, लंका विध्वंसक राम सम हैं, पर्वतों के लिए बिजली (वज्र) सम हैं, गज समूह के लिए सिंह सम हैं, काडव और पल्लवों के विनाश्क हैं, अनेक शत्रुओं के किलों के नाशक हैं, शत्रु वनों के लिए दावाग्नि सम हैं, कांची नगर के अधिपति हैं, शत्रु हिरणों के लिए बाघ सम हैं, (काकतीय) गणपति हैं, सामंत राजाओं के स्थापक हैं, महाराजाधिराज *परमेश्वर* हैं, त्रिलोक पति हैं, वीर गंडगोपाल को स्वर्ग में स्थापित करनेवाले हैं, राजसमुदाय के परिशुद्धक हैं आदि आदि। (ये प्रशस्ति गान के कुछ अंश हैं।)

संख्या 45 के विवरण के अंत में राजा के राज्य अधिकार वर्ष* 14 (सन् 1266 ई) की एक और सूचना भी है। इसमें पूर्व अनुदान के रूप में दिये दो गाँवों का उल्लेख भी है जो कावेरी नदी के दक्षिणी तट पर थे। ये संख्या 55 में भी उल्लिखित हैं।

[[*व्यतिरेकी वर्ष (opposite year) *एदिर - आण्डु,* राजाओं के शासन में राज्य के खोने और राज्याधिकार) खोने का उल्लेख है। उससे पहले और बाद में राज्याधिकार प्राप्त करने का वही वर्ष है। यह एक आश्चर्य की बात है कि राजा जटावर्मन सुन्दर पाण्ड्य - I जैसे वीर सम्राट ने, जिन्होंने पहले केरल राज्य को; अर्थात् ट्रावेन्कूर, चोळ साम्राज्य का कावेरी परिसर; और पल्लव राज्य का प्रान्त काँची से नेल्लूर तक अधीन में रखकर चौदह वर्ष पर्यन्त राज्य किया था, स्वयं हारकर अपना राज्य खो दिया। यह उनके राज्य शासन वर्ष 14 और वर्ष 15 के बीच घटित हुआ था। इसी को व्यतिरेकी वर्ष कहा गया है। उनको पराजित करनेवाले राजाओं में कोई भी उन समान वीर और पराक्रमी नहीं था। हो सकता है कि यह उनके सह-शासक नहीं था। हो सकता है कि यह उनके सह - शासक (Co-ruler) विक्रम पाण्ड्य के हाथों ही घटित हुआ होगा। चाहे जो भी हो राजा ने पुनः राज्य सिंहासन ग्रहण किया और राज्य की स्थापना व्यतिरेकी वर्ष में पुनः की। यह उनके राज्य का 15 वाँ वर्ष था, अर्थात् सन् 1266]]

संख्या 47 से संख्या 56 तक सब खंडित हैं। उनमें सुन्दर पाण्ड्य की *प्रशस्ति* के कुछ अंश और अंग हैं।

संख्या 49 के अनुसार सुंदर पाण्ड्यदेव ने श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी के मंदिर के लिए एक *हेम - कलश* प्रदान किया। (यह स्वर्ण कलश भगवान के वास के ऊपर स्थित विमान का कलश है।)

संख्या 50 और संख्या 52 में राजा के अभिषिक्त होने का उल्लेख है। यह उनका वीराभिषेक है। यह काँची में संपन्न हुआ। संख्या 51 में तो उनका वहाँ के अभिषेक की ही सूचना है।

संख्या 57 में *कपिलतीर्थम्* में मंदिर निर्माण की बात है। तिरुमल पर्वत शिखरों की तल भूमि में कपिलतीर्थम् है। इस तल प्रांत में नम्माळवार का वानेडुट्टकैयलगियार बनाम पल्लवरायर ने लगभग 13 वीं शताब्दी के अंत में (पृ.- 69 जिल्द.I) यह निर्माण करवाया है। संख्या 58 के अनुसार नम्माळ्वार की मूर्ति को *मुनि* बताया गया। वे *तातायकुंट* (तातैय तालाब) के पास रहनेवाले थे। उन्होंने दिव्य ज्ञान को प्राप्त किया था। *ब्रह्मविद्या* प्राप्त की थी। संख्या 165 तो इनको *पेरुमक्कल* (गौरवनीय महात्मा) कहकर *श्रीवैष्णवों* में एक श्रेष्ठ व्यक्ति घोषित करता है और सूचित करता है कि वे तिरुमल पर्वत के पाद क्षेत्र प्रांत में रहते थे।

संख्या 59 द्वारा हमें ज्ञात होता है कि 33 गायें, एक साँड और शाश्वत तौर पर दीप जलाकर रखने के लिए उपयुक्त दीपस्तंभ के अनुदान संपन्न हुए हैं। यह तिरुवेङ्कटमुडैयान के मंदिर में गायों के दूध से

मिलनेवाले घी से दीप प्रज्जवलन के लिए प्रदत्त अनुदान है। यह नया अनुदान क्रम उससे पूर्व चलनेवाली पद्धति के स्थान पर है। उस पद्धति में 30 या 40 *कळंजु* सोना दीप ज्वलन के लिए जमा किया जाता रहा है। उपर्युक्त भेंट अन्नन पेरुमालप्रियन द्वारा उनके राज्याभिषेक के नौवें वर्ष में प्रदान की गयी। यह समय सन् 1250 ई - 1285 ई का है। उस समय तेलुगु पल्लव राजा विजयगंडगोपालदेव राज कर रहे थे। यह गोदान भगवान के लिए अत्यंत उपयोगी था। गायों से प्राप्त दूध से अन्नप्रसाद समर्पण में अच्छा सहयोग मिलने लगा।

संख्या 61 श्री गोविंदराज स्वामी के *तिरुमोळि-पडि* समर्पण के लिए सहयोगी दानों का उल्लेख है। यह समर्पण नित्य पूजा समर्पण है। प्रधानतः *तिरुमोळि* पाठ के संदर्भ में होता है। इसके अतिरिक्त *वैकाशी* मास के अन्न प्रसाद के लिए भी इसका उपयोग होता है। ये दो समयों में आते हैं -

(1) विशाख के महीने में (मई - जून) श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के दैनिक नैवेद्यों के लिए और (2) चित्तिरै उत्सव (अप्रैल - मई) के लिए तिरुमल पर। यह विजयगंड गोपाल के शासन वर्ष 4 में संपन्न हुआ (सन् 1264 या 1274 या 1284 ई.)।

[[हमें श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिर का निर्माण संबन्धी समाचार ठीक नहीं मिलता है - यानी स्वामी का मंदिर कब निर्मित हुआ, किससे निर्मित करवाया गया था, किसने मूर्ति की स्थापना की आदि आदि। इतनी मात्र सूचना है कि श्रीरामानुज के जीवन काल में, 11 वीं और 12वीं सदी के बीच या उनके देहावसान समय (सन् 1137 ई) में यह काम संपन्न हुआ है। यह भी चालुक्य चोळ राजा कुलोत्तुंग - I की मृत्यु समय के बाद ही है। पता चला है कि कुलोत्तुंग चोळ की मृत्यु सन् 1120 ई. में हुई। कुलोत्तुंग चोळ ने उत्सव मूर्ति को ही चिदंबरम् के पास समुद्र में फेंकवाया था। उनके डर से श्रीरामानुज ने मैसूर के मेलकोटै में जाकर अपने प्राणों को बचाया (दे.पृ. 145 और 146)। इसी तरह श्रीगोविंदराज स्वामी के *वैकाशी* उत्सवों का आरंभ किसने किया है, इसका भी कोई समाचार प्राप्त नहीं होता है। गोविंदराज स्वामी से संबन्धित प्राचीनतम उल्लेख संख्या 40 में ही मिलता है। यह राजराज चोळ III का समय था, अर्थात् सन् 1235 ई. का समय था। उसमें भी श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिर में तिरुमंगैयाळ्वार की मूर्ति के संबन्ध में मात्र उल्लेख है। *पेरिय नाट्टवर* के द्वारा उस मूर्ति के लिए अन्न - प्रसाद आदि के लिए भूदान का उल्लेख है। इस सब के आधार पर इतना सोचा जा सकता है कि गोविंदराज स्वामी का मंदिर निर्माण और मूर्ति की स्थापना सन् 1235 ई. से पहले 13 वीं शताब्दि में हुआ होगा। अर्थात् गोविंदराज स्वामी का मंदिर निर्माण और मूर्ति स्थापन तिरुमंगै आळ्वार की मूर्ति स्थापना से पहले कम से कम 4 या 5 साल पहले हुआ होगा। संक्षेप में कहें तो लग भग सन् 1230 ई. में हो सकता है। संख्या 61, जिसमें *वैकाशी* उत्सव का उल्लेख है, का समय विजय - गंडगोपाल के राज्य काल का 14 वाँ, 24

वाँ अथवा 34 वाँ वर्ष हो सकता है (3 या 4 अक्षरों के 4 के सामने मिट जाने के कारण)। शायद 14 वाँ या 24 वाँ वर्ष ही होगा। यह सन् 1264 या 1274 ई. है। संख्या 86 से हमें ज्ञात होता है कि राजा वीरनरसिंह देव यादवराय की रानी ने राजा के राज्यकाल के तीसवें वर्ष में (सन् 1235 ई. में) श्री गोविंदराज स्वामी के उत्सव के लिए व्यवस्था की। यह उत्सव आणिमास (जुलाई) में संपन्न किया जाता है। यह उत्सव और *वैकाशी* (जून) का उत्सव दोनों विजयनगर राज्य के शासन काल तक संपन्न होते रहे हैं। इस के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन आरंभ होता है। इस शासन के दो या तीन दशाब्दियों के अंदर ही *आणिमास* उत्सव को समाप्त किया गया। *वैकाशी* उत्सव ही चलता रहा जो आजकल भी चालू है। इस संदर्भ में जो दारु रथोत्सव का प्रावधान भी था एक दशक के बाद रुक गया। रथोत्सव के बिना उत्सव चलने लगा। एक नया रथ सन् 1972 में निर्मित होकर उत्सव व्यवस्था से जुड गया। उत्सवों के आठवें दिन को रथ पर आरूढ़ हो भगवान गोविंदराज स्वामी भक्तों को अपना दिव्य दर्शन देते हैं।

श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिर में *मुख-द्वार* और अन्य तीन गोपुरों के मध्य स्थित मूर्ति पार्थसारथी की है (पार्थसारथी कृष्ण ही हैं जो महा भारत युद्ध में अर्जुन के रथसारथी थे)। यह मूर्ति शायद बहुत पुरानी ही होगी। उसके पास ही उत्तर दिशा में गोविंदराज स्वामी की मूर्ति है। इस मूर्ति की 12 वीं अथवा 13 वीं शताब्दी के आरंभ में स्थापना की गयी होगी। सारी सांदर्भिक सूचनाएँ शिलालेखों और अभिलेखों से प्राप्त होती हैं वे श्रीगोविंदराज स्वामी से संबन्धित हैं। उनमें एक में भी पार्थसारथी का उल्लेख नहीं हैं। ये सब 13 वीं शताब्दी की ही हैं। वर्तमान समय में पार्थसारथी की मूर्ति ढ़की हुई है। मंदिर बंद है और कोई *पूजा* आदि कार्यक्रम नहीं चल रहे हैं। इसका कारण यही बताया जाता है कि मूर्ति अपांग हो गयी है। अतः ऐसी मूर्ति की पूजाएँ नहीं होती। ऐसा कब पता चला और कब हुआ, इसका कोई समाचार नहीं मिलता है। अगर ऐसा श्रीगोविंदराज स्वामी की प्रतिष्ठा से पहले हुआ होता तो उसी वक्त उस मूर्ति को निकाल कर उसके स्थान पर श्रीगोविंदराज स्वामी की मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई होगी।

तिरुपति की पश्चिमी दिशा में नरसिंह तीर्थम् है। यह पेय जल तटाकम् है। उसके पास एक बडा नील वर्ण मूर्ति है। यह गोविंदराज की ही मानी जाती है। सिर पर ताज सहित यह मूर्ति लगभग आठ फुट की है। विश्वास किया जाता है कि पहले गोविंदराज स्वामी मंदिर में इसी मूर्ति की आराधना होती रही होगी। क्षति पहुँचने के बाद उस मूर्ति को इस तटाक पर रख छोडा गया। यह मूर्ति कब मंदिर में रखी गयी और कब टूटी तथा कब उसे यहाँ रखा गया, इसकी कोई सूचना नहीं मिलती। आज की मूर्ति उस मूर्ति के स्थान पर प्रतिष्ठित मूर्ति होगी। शायद चिदंबरम् के पास समुद्र में फेंकी गयी मूर्ति के स्थान पर प्रतिष्ठित मूर्ति ही आज की मूर्ति हो। चोळ राजा के हाथों पूर्व मूर्ति समुद्र में फेंक दी गयी थी। लेकिन इस संबन्ध में किसी प्रकार की उल्लिखित सूचनाएँ प्राप्त नहीं हैं। केवल संख्या 40 में उक्त मूर्ति के

प्लास्टिक मूर्ति होने की बात सूचित है - ''तिरुप्पतियिल चित्रमेळि - विण्णगरान श्रीगोविंदप्पेरुमाल कोइलिल्''। विस्थापित मूर्ति को हानि शायद दक्षण के मुसलमानी आक्रमणों के समय में पहुँचायी गयी हो। ये आक्रमण सन् 1310 ई. में मालिक कफूर के समय में अथवा 17 वीं शती के औरंगजेब के शासन काल में हुए हों। मालिक कफूर दक्खन के गवर्नर थे। ये शाहजहान द्वारा नियुक्त थे अथवा गोलकोंडा के सुलतान अब्दुल्ला से, यह स्पष्ट नहीं है। गोविंदराज स्वामी मंदिर में आजकल की उत्सव मूर्ति जो है उसके बारे में समझा जाता है कि यह मूर्ति पार्थसारथी स्वामी की मूर्ति है[1] जो पहले बिना पूजा पाठ के रही है।

पल्लव राजकुमारी सामवाय ने एक चाँदी की मूर्ति बनवायी। मनवालप्पेरुमाल की यह मूर्ति तिरुमल श्रीवेङ्कटेश्वर मूर्ति के समान थी। उसका पवित्री करण करवाकर पूर्णरूप से स्वर्ण भूषणों से सुसज्जित करवाकर एक दीप कलश के साथ सामवाय ने अर्पित किया। दैनिक नैवेद्य आदि की व्यवस्था भी करवायी। साथ साथ *पुरट्टासि* महीने (सितंबर) में 11 दिनों के लिए, *मार्गळि* (दिसंबर) के उत्सव के लिए आवश्यक देवदानों की व्यवस्था भी उन्होंने की है (संख्या 8 और संख्या 9)। संख्या 61 में *तमिल* मास *चित्तिरै* (मई) में एक और नये उत्सव की सूचना पाते है। यह विजयगंड गोपाल के राज्य वर्ष 14 वें या 24 वें वर्ष से संबन्धित है (अर्थात् सन् 1264 या 1274 ई से)। ये उत्सव श्रीवेंकटेश्वर स्वामी से संबन्धित हैं। इनकी संख्या विजयनगर शासन काल में 7 थी। लेकिन आगे 10 की गयीं। ये उत्सव हर महीने एक उत्सव के रूप में मनाये जाने लगे हैं। केवल *वैकाशी* और *आणि* मासों में उत्सव तिरुपति के गोविंदराज स्वामी के मंदिर में संपन्न होते रहे हैं। ऐसा लगता है कि *पुरट्टासि* और *पंगुनि* मासों में संपन्न होनेवाले उत्सवों में ही सात या दस उत्सव श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मनाये जाते हैं और उस समय उत्सवों के आठवें दिन पर रथोत्सव संपन्न होता है (संख्या 96 तथा संख्या 133, जिल्द II)। श्रीगोविंदराज स्वामी के संदर्भ में जिस प्रकार 19 वीं शताब्दी में समस्त उत्सव रोक दिये गये हैं उसी प्रकार श्रीवेङ्कटेश्वर भगवन के मंदिर के भी रोक दिये गये। केवल *पुरट्टासि* मास का उत्सव ही बिना रोक के मनवाया जाता रहा है।]]

संख्या 62 में एक ज्योति कलश और *अप्प-पडि* (एक प्रकार की मीठी पकवान जो चावल के आटे और गुड के मिश्रण से तैयार कर घी में पकाया जाता है) के प्रावधान की बात सूचित है। यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए अर्पित है। तदर्थ 3 *गंडगोपालन - माडै* (राजा के नाम पर मुद्रित स्वर्ण मुद्राएँ जिनपर उनके विस्तार श्रेत्र और शक्ति की सूचना है) प्रदान किये गये हैं।

---

1. जो पहले बिना पूजा पाठ के रही है।

- गोपी कृष्ण

संख्या 63 तथा 64 में गोदान (गायों की भेंट) का उल्लेख है। यह तिरुवेङ्कटमुडैयान के मंदिर में ज्योति - प्रज्जवल निमित्त है। यह ज्योति दान राजा विजयगंडगोपाल की रानी देवरसियार द्वारा किया गया है।

संख्या 67 में 32 गायों और एक साँड (वृषभ) के दान का उल्लेख है। यह *पुरट्टासि* मास में संपन्न होनेवाले उत्सव में ज्योति प्रज्जवलन के लिए है। (घी से ज्योति प्रज्जवलन होता है।)। इसके साथ साथ 15 *माडै* का भी दान है जो कर्पूर ज्योति के लिए स्थाई दान है।

संख्या 68 और संख्या 69, *''वराहन्-पणम्''* 450 की प्रतिभूति धनराशि का उल्लेख करता है। *'वराह-पणम्'* तांबा या चाँदी का सिक्का है जिसपर वराह स्वामी की मूर्ति अंकित है। यह नैवेद्य अर्पण के लिए है। यह नैवेद्य *संधि* (प्रातः काल) के दो सांप्रदायिक अनुष्ठानों या पूजाओं के बीच संपन्न किया जाता है। संख्या 68 ''उच्चियिलेनिंड्र - नारायणन्'' को चावल आदि मापने का एक माप बताता है जो श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के अर्पण के लिए चावल आदि को माप कर प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग में रहता है। इस अभिव्यक्ति का अर्थ है ''भगवान विष्णु , नारायण, जो पर्वत पर अधिष्ठित रहते हैं। यह नाम संख्या 74 में केवल *''निन्रान्''* के रूप में उल्लिखत है। आगे इस नाम को ''मलैकिनिय - निन्रान्'' के रूप में परिवर्तित किया गया अर्थात् *'मरक्कल'* या *'तूंबु'।* यह तभी हुआ जब उत्सव मूर्ति ''मलैकिनिय - निन्र - पेरुमाल'' उनकी दो देवेरियों (नाच्चिमार) के साथ जोडे गये हैं। यह 13 वीं शताब्दी के प्रथम अर्द्ध पक्ष में हुआ है। श्री गोविंदराज स्वामी के मंदिर में उपयोग का जो माप था उसका नाम ''चालुक्य - नारायनन् - काल'' था।

संख्या 70 भी 450 *'वराहन्-पणम्'* का उल्लेख करता है। यह *श्री भंडारम्* को एक *'तिरुप्पोनकम'* (मूँग की दाल और चावल को नमक डालकर घी में पकाकर प्रस्तुत किया जानेवाला एक अन्ननिवेदन) के लिए आवश्यक सामग्री कालीमिर्च के साथ खरीदने के लिए दिया गया देवदान है। यह दान विक्रमदेविपुरम के एक *'सालिया'* (बुनकर) ने अर्पित किया है।

संख्या 71 और संख्या 72 में अंकित है एक *'नंदाविलक्कु'* (स्थायी ज्योति) के लिए आधा और एक ज्योति के लिए आठवाँ अंशदान एक *'सालिया'* (बुनकर) द्वारा प्रदत्त हुआ है। हो सकता है कि दोनों अंशों को मिलाकर एक ज्योति के लिए हो। संख्या 164 में उल्लिखत तीन बटे आठ अनुदान सहित यह पूरा होता होगा।

संख्या 73 में अन्न - प्रसाद से संबन्धित एक और उल्लेख मिलता है। यह तिरुवेङ्कटम्-उडैयान के लिए है। यह उत्सव समयों में *मंटपम्* में विराजमान होनेवाले भगवान के लिए हो सकता है। तदर्थ 3 -

माडै (स्वर्ण मुद्राएँ) पूँजी के रूप में विक्रमदेविपुरम् के *सालिया* (बुनकरों) के मुखिया के नाम पर प्रस्तुत हुआ है। यह *मंटपम्* का (मंडप का) प्रथम उल्लेख है। उत्सव मूर्तियों को दिये जानेवाले निवेदनों की, (मंदिर से बाहर होते हैं,) पहली बार मिलनेवाली सूचना है।

संख्या 74 *सित्तिरै* और *पुरट्टासि* मासों में श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान से संबन्धित उत्सव में अर्पित *''तिरुप्पावै - पडि''* के लिए अन्न प्रसाद के लिए प्रदत्त देवदान से संबन्धित समाचार प्रस्तुत करता है। यह उत्सव श्रीआंडाल् द्वारा रचित *'तिरुप्पावै'* गीत गान संदर्भ से संबद्ध है। (विजयगंडगोपाल राजा के 14 वें या 24 वें राज्य वर्ष में (सन् 1264 या 1274 ई.में) संख्या 61 में हम पाते हैं कि *''तिरुमोळि-पडि''* के लिए दैनिक और वैकासी उत्सव के लिए श्रीगोविन्दराज स्वामी के लिए प्रावधान है। संख्या 74 में *''तिरुप्पावै-पडि''* का प्रावधान *गंडगोपालन-माडै* की प्रतिभूति धनराशि से व्यवस्थित है। इससे एक और सूचना भी मिलती है कि इस समय के दर्मियान *''तमिळ् प्रबन्धम्''* की प्रथम प्रस्तुति का भी आरंभ हुआ है। यह *''प्रबन्धम्''* चार हजार दैव स्तुतिपरक गीतों का संग्रह है। इसकी रचना 12 *वैष्णव आळ्वारों* के द्वारा हुई है। इनमें प्रधानतः *''नाच्चियार - तिरुमोळि''*, कुलशेखर आळ्वार *तिरुमोळि* और तिरुमंगै आळ्वार तथा आंडाल् के *तिरुप्पावै* प्रथम स्थान में हैं। ये विशेषतः श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी और श्रीगोविंदराज स्वामी दोनों के मंदिरों से संबद्ध होकर हैं)।

संख्या 75 दो और उत्सवों को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान से संबद्ध ये दो उत्सव हैं - *पुरट्टासि* और *चित्तिरै* मासों के उत्सव।

संख्या 77 से लगता है कि प्राचीन स्वर्ण मुद्राएँ और *''माडै''* जिन पर पुराने चिह्न थे, दोनों को एक मानता है जो संभवतः साढे सात *''वराह-पणम्''* हैं।

संख्या 78 *''पू-मंटपम्''* के निर्माण का समाचार हमें प्राप्त कराता है। पुष्प वाटिका में एक मंटप और फुलवारी है। यह तिरुमल पर है। तदर्थ एक *''अप्प - पडि''* के लिए देवदान है। यह उत्सवों के समय उत्सव मूर्ति को अर्पित होता है। उस के लिए 3 *माडाओं* की पूँजी दी गयी है। यह विजय गंडगोपाल राजा के राज्य काल के पाँचवें वर्ष में व्यवस्थित किया गया है (सन् 1255)।

संख्या 79 के 6 खण्डों में D खण्ड में एक *सौम्य* वर्ष, रामानुज और एमपेरुमानार का उल्लेख है। सभी 6 खण्ड विजय - गंडगोपाल के समय से संबद्ध हैं। प्रधानतः यह 13 वीं शताब्दी के तृतीय और चतुर्थ त्रैमासों से संबद्ध हैं। हो सकता है कि उक्त बातें श्रीरामानुजाचार्य द्वारा तिरुमल मंदिर में आवर्ती (चक्रीय) वर्ष *सौम्य वर्ष* में नियोजित कुछ समर्पणों से संबन्धित हो (सन् 1248 - 49 ई.)। यह तारीख रामानुजाचार्य के देहावसान (सन् 1137 - 38 ई.) यानी 110 वर्ष के बाद का है।

संख्या 81 तिरुक्कालत्तिदेव यादवराय के 19 वें शासन वर्ष (सन् 1209 - 10 ई.) से संबन्धित है (पृ. 103, जिल्द I)। इसमें एक आदेश की सूचना है जिसके अनुसार तिरुवेङ्कटमुडैयान भगवान को 'कुडवूर' गाँव पूर्ण रूप से अर्पित किया गया है। यह तिरुमल *स्थानत्तार* की प्रार्थना पर संपन्न हुआ है। स्थानत्तार को इस संबन्ध में अविलालि सभा का अनुमोदन भी मिला है। यह पूर्वदान को परिपूर्ण करने की दिशा में ही हुआ है। प्रमुखतः यह स्थायी अनुकूल *देवदान* ही है। यह भी सूचित किया गया था की भूमि की परिधि में विष्णु के *सुदर्शन* चक्रों से अंकित पत्थरों को लगाया जाये ताकि सभी को यह मालूम हो कि वह मंदिर की जायदाद है। यह भूदान पाण्ड्य राजा के द्वारा सन् 1254 ई. में दिया गया (संख्या 43) और बाद का ही है।

संख्या 82 में तिरुक्कालत्तिदेव के पुत्र वीर राक्षस यादवदेव के द्वारा कडवूर - नाडु की भूमि का देवदान संपन्न हुआ है। यह काम चोळ राजा के 15 वें शासन वर्ष में किया गया। शायद इसका समय कुलोत्तुंग चोळ - III का समय है (सन् 1193 ई.)। इसी प्रकार का एक और अनुदान श्रीकालहस्तीश्वर के लिए भी कुलोत्तुंग चोळ III के शासन वर्ष 15 में हुआ है (पृ. 104, जिल्द I)। यह *''तिरुमंतिर - तिरुप्पोनकम्''* के लिए है।

संख्या 84 में 64 गायें और एक सांड (वृषभ) का उल्लेख है। यह देवदान वीर नारसिंहदेव यादवराय की रानी यादवराय - नाच्चियार द्वारा राजा के 12 वें राज्यकाल वर्ष में (सन् 1217 ई.) दिया गया है (पृ. 105, जिल्द I)। यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवन के सामने रखी गयी दो दीप ज्योतियों के लिए घी से संबन्धित है। उसी रानी के एक और देवदान का उल्लेख संख्या 85 में है। इसके अनुसार 32 बडी गायें और एक बैल (वृषभ) का अनुदान गोविंदराज स्वामी के मंदिर के लिए भी संपन्न किया गया है। इसका समय राजा के राज्यकाल वर्ष 15 है (सन् 1220 ई.)।

[[यादवराय वंश के तीन राजाओं की परंपरा में - तिरुक्कालत्तिदेव, उनके पुत्र वीर - राक्षस और वीर नारसिंह देव - हम उनके राज्य वर्षों में एक प्रकार का अतिक्रमण पाते हैं (यथा पृ. 103 - 105, जिल्द I)। शायद वीर राक्षस की मृत्यु उनके यौवन काल में ही हुई होगी। इसका आधार एक ही है कि बाद के समय में इनका उल्लेख किसी आदेश में नहीं मिला है। तिरुक्कालत्तिदेव, घट्टिदेव और राजमल्ल ने नेल्लूर और अन्य प्रांतों पर शासन किया हो। इसके परिणाम में वीर नारसिंह देव ने प्राचीन तोंडममंडल के दक्षिणी प्रान्त पर राज किया होगा।]]

संख्या 86 में हम पाते हैं कि रानी यादवराय-नाच्चि ने श्रीगोविंद पेरुमाल को पइंडप्पल्लि नामक गाँव का आधा भाग देवदान में दिया है। यह उस रानी के द्वारा स्थापित *आणि* मास में संपन्न होनेवाले उत्सव के लिए है। वह भी *''कूटम''* (*शिखरम्* - एक अलंकरण के लिए उपयोग में आनेवाला कलश) के लिए

है जो चतुर्मुखी रथ के ऊपर रखा जाता है। इसके साथ अन्य उपयोगी सामाग्री के लिए भी इसका उपयोग होता रहा है। बाकी बचा हुआ गाँव श्रीवेङ्कटमुडैयान के *श्रीभण्डारम्* के लिए था। यह रानी द्वारा अर्पित दान वीर नारसिंह यादवराय के 30 वें राज्य वर्ष में (सन् 1235 ई.) दिया गया (पृ.106 और 118, जिल्द I)।

संख्या 87 में 32 गायों के दान की सूचना है। यह दान एक ज्योति के लिए तिरुवेंकटमुडैयान भगवान के लिए मलैकिनियनिन्र्रार बनाम तिरुवेंकटनाथन् द्वारा प्रदत्त है। यह वीर नारसिंहदेव यादवराय के 34 वें राज्य वर्ष में (सन् 1239 ई.) प्रदान किया गया है।

संख्या 88 में उल्लिखित है वीर नारसिंहदेवराय का उनके अपने शासन काल के 40 वें वर्ष में (सन् 1245 ई.) श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर के *''स्थानत्तार''* को मंदिर के निमित्त दान। उसे सीधे *''देशान्तरी''* (एक नया व्यक्ति जो दूसरे प्रांत से आया हो) तिरुप्पुल्लाणिदासर को देने का आदेश है। क्योंकि उसने केन्द्रीय मूर्ति का पुनरुद्धरण कार्य आरंभ करने से पहले बाहरी दीवारों पर लिखे गये शिलालेखों को पुनः लिखने के कार्य का दायित्व लिया है। यह उत्तरी दीवार से संबन्धित कार्य है। राजा का आदेश *अर्पशी* मास *(तमिल मास)* में दिया गया। यह कार्य राजा के राज्यकाल वर्ष 40 में संपन्न किया गया। पुनरुद्धरण का कार्य और पुनर्लेखन कार्य दोनों पूर्ण हो गये हैं। यह पूरा कार्य छः महीनों में ही हुआ है। राजा के आदेश के अनुसार चार शिलालेखों का पुनर्लेखन हुआ है। वे क्रमशः संख्या 8, 9, 14 और 19 हैं। इनका उल्लेख पूर्व पृष्ठों में हुआ है (पृ.142 से 144 तक)।

संख्या 89 श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिर का है। यह वीर नारसिंहदेवराय यादवराय के 50 वें राज्य वर्ष का है (सन् 1255 ई.)। इसमें उल्लिखित है कि उस वर्ष से *श्रीवैष्णव आचार्य* एमपेरुमानार रामानुज की मूर्ति के लिए *श्रीवैष्णवों* ने ज्योति कलश और पुष्प मालाएँ अर्पित करना आरंभ किया है। लेकिन संख्या 79 - D में सूचित है कि आचार्य रामानुज की मूर्ति की प्रतिष्ठा *सौम्य वर्ष* में हुई है (अर्थात् सन् 1248 - 49 ई.)। उक्त ज्योति और पुष्पमाला कैंकर्य योजना उससे छः वर्ष बाद की गयी।

संख्या 90 में तिरुपति के *श्रीवैष्णवों* के एक दस्तावेज का उल्लेख है। वीर नारसिंह यादवराय के 51 वें राज्य वर्ष में यह दस्तावेज प्रस्तुत किया गया (सन् 1256 ई.)। उसके अनुसार उस वर्ष के *आडि* मास में एक फूल वन (पुष्पवाटिका) की योजना आरंभ की गयी। उसका नाम है - ''यादव नारायणन्''। उसमें एक तालब का निर्माण भी है जिसके पानी से वाटिका की सिंचाई होगी। उसमें लाल कमलों को विकसित करने की बात भी है। यह कार्य पेरिय - मांबट्टु गाँव से संबद्ध है। उस गाँव का वेङ्कटेश्वर भगवान के लिए यह दान है और साथ साथ गोविंदराज के लिए भी और तिरुपति में स्थित गोविंदराज पुष्करिणी के लिए भी है।

संख्या 91 में एक *संस्कृत-श्लोक* है। उसके अनुसार राजा वीर नारसिंहदेव (यादवराय) ने एक युद्ध में शत्रुओं पर विजय पायी थी। उस संदर्भ में उन्होंने पुष्पमाला, हाथी, धवल छत्र और अन्य प्रतीक बनवाये। अपना *''तुलारोहण''* (सुवर्ण से तोलना - तुलाभारम्) भी करवाया। उन्हें भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को अर्पित किया। इस समर्पण में वेङ्कटगिरि को (तिरुमल) *सुरगिरि* (मेरु पर्वत) सम बतलाया गया।

संख्या 93, कुछ गायों और एक बैल के सपर्षण का उल्लेख करता है। यह भी ज्योति कलश के लिए ही है। यह समर्पण तेवप्पेरुमाल नामक व्यक्ति से वीर - नारसिंहदेवराय के राज्यकाल में ही हुआ है। दाता नेल्लूर के थे।

संख्या 94 तो वीर नारसिंह देवराय द्वारा समर्पित भूदान से संबद्ध है।

संख्या 98 श्रीगोविंदराज स्वामी मंदिर से है। इसका समय *कीलक* नाम संवत्सर (शक संवत्सर 1230 और सन् 1308 ई.) है। इसमें श्रीगोविंदराज स्वामी के लिए दैनिक और विशेष समयों (जैसे *कैशिक द्वादशी - कार्तिक* मास में आदि) के लिए आवश्यक सेवाएँ और अपमार्जकों के लिए अनुदान है। इनमें *मार्गलि - द्वादशी, (मुक्कोटि द्वादशी* - दिसम्बर मास में), *मकर संक्रमणम्* (14 व 15 जनवरी) और *चित्तिरै - विषु (तमिल* नववर्ष - अप्रैल) भी हैं। यह समय दक्षिण में मालिक काफूर के आक्रमण का समय था। राजनैतिक उथल - पुथल का समय था। परिणाम स्वरूप इसमें किसी राजा का या अन्य भक्त के नाम का उल्लेख नहीं मिलता है। इस पुरालेख में मात्र शकवर्ष का ही उल्लेख है। यह अभिलेख मात्र विशेष पूजा को ही सूचित करता है। वह वर्ष के विशेष पर्व दिनों से संबन्धित एवं हिन्दू 'क्यालेंडर' के अनुसार ही है।

संख्या 99 श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर से संबन्धित राजादेश की सूचना देता है। यह तिरुवेङ्कटनाथ यादवराय द्वारा *''आडि''* मास में उनके आठवें शासन वर्ष में आदेशित था। इसका वास्तविक अनुप्रवर्तन उनके शासन के नौ वें वर्ष में हुआ है (लगभग सन् 1330 - 31 ई.)। इसमें पोंगलूर गाँव के 10 भागों में से 5 भागों का आयिक अंश *'सर्वमान्य'* के रूप में समर्पित किया गया है। ये अंश पूर्ण रूप से कर मुक्त थे। यह देवदान तिरुवेङ्कटमुडैयान को *'आडि'* मास में संपन्न होनेवाले उत्सव और अन्नप्रसाद की व्यवस्थाओं के लिए है। इसका नियोजन सिंगय दण्डनायक द्वारा रेचय दंडनायक के नाम पर किया गया है। उक्त अनुदान में निर्देशित अन्य 5 भाग इस निर्देशात्मक आदेश से पहले ही सपर्मित हैं। इसमें करों की मुक्ति से (लगभग 40) संबन्धित एक लंबी सूची भी है जो अंत में निर्देशित है।

[[जटावर्मन सुंदरपाण्ड्य - I के संदर्भ में उनके 14 वें राज्य वर्ष में जो घटित हुआ है उसकी सूचना संख्या 45 (P.147) में जिस प्रकार मिलती है उसी प्रकार तिरुवेङ्कटनाथ यादवराय के संबन्ध में

भी सूचना मिलती है कि उनके 8 वें शासन वर्ष में उन्होंने अपना राज्य खोया और 8 वें तथा 9 वें वर्ष के बीच ही फिर उन्होंने अपना राज्य वापस पा लिया। चाहे उन्होंने 8 वें और 9 वें वर्षों के बीच राज्याधिकार खोया हो फिर भी पुनः प्राप्ति के कारण 9 वें वर्ष को उनके राज्याधिकार वर्ष के रूप में भी स्वीकारा गया है। इसीलिए उस अभिलेख में 9 वाँ वर्ष कहा गया है और उसी वर्ष से समर्पण माना गया है। जैसे ही प्राचीन चोळ और पाण्ड्य राजवंशों के शासन की समाप्ति हो गयी वैसे ही उनके समंतों में राज्य के लिए झगडे आरंभ हो गये। इसी बीच होयसल वीर वल्लाल III ने द्वारसमुद्र पर अधिकार जमाया और अपने को तिरुवण्णामलै में राजा घोषित कर शासनाधिकार अपना लिया। तत्पश्चात् सन् 1342 - 43 तक अधिकार में रहे। हो सकता है कि तिरुवेङ्कटनाथ यादवराय ने वीर वल्लाल का विरोध किया हो। लेकिन उनके पराजित होने के कारण वीर वल्लाल राजा बने हों।]]

संख्या 100 और संख्या 101 (दोनों एक दूसरे की प्रतिलिपि ही हैं) गोविंदराज स्वामी के मंदिर से संबद्ध हैं। ये *सर्वमान्य* (करमुक्त) अनुदान हैं। ये अनुदान श्रीवेङ्कटेश्वर को समर्पित हैं। इनसे यह सिद्ध है कि चाहे ये पूर्व समर्पण ही क्यों न हो, फिर इन अभिलेखों से कर मुक्ति की बात स्पष्ट होती है। संख्या 100 के अंत में कर मुक्ति की सूची भी है। इस का समय तिरुवेङ्कटराय का 12 वाँ राज्य वर्ष है (सन् 1333 - 1334 ई.)।

संख्या 102 पोंगलूरु को देवदान के रूप में प्रस्तुत करने के उल्लेख से संबन्धित है। इसमें वह ग्राम *सर्वमान्य* देवदान के रूप में है। उससे संबन्धित सभी कर भी अदा किये गये है। यह तिरुवेङ्कटनाथ यादवराय द्वारा उनके 12 वें शासन वर्ष में संख्या 99 के रूप में समर्पित है जिसके अनुसार *आडितिरुणाल* और *संधि* के लिए सिंगय - दण्णायक्कर द्वारा रेचय - दण्णायक्कर के नाम पर श्रीवेङ्कटेश्वर को प्रदत्त समर्णण है। इस की सूचना श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान मंदिर के *स्थानत्तार* को दी गयी। इस पर सिंगय - दन्नायक ने प्रार्थना भी की है कि स्थानत्तार उक्त ग्राम से फसल पर आगत आय को *आडि*-उत्सव और *सितकरगंडन - संधि* के लिए ही नहीं, बल्कि इस आय से वीर नारसिंग पेरुमाल और तिरुमंगै आळ्वार को *तिरुप्पोनकम्* अर्पण भी संपन्न करें। ये तिरुपति की मूर्तियाँ हैं। इतना ही नहीं इसके बचे भाग से 32 *श्रीवैष्णवों* को *सीता - करगंडं - मठम्* में खाने का प्रबन्ध (प्रसाद पाने की सुविधा) करें। अगर इस पर भी पैसा बचेगा तो उसे फुलवारी की सिंचाई तथा उसके लिए बनाई गई तालाब और अन्य परोपकारी कार्यक्रमों में खर्च करें। तिरुमल के *स्थानत्तार* से लगता है कि इन सब सूचनाओं और मुद्दों को मान लिया और उन सब को शिलालेख में सम्मिलित करने और ताम्र पत्र पर लिखने के लिए भी आपने सहमति दी।

संख्या 103 श्रीरंगनाथ यादवराय के आदेश का उल्लेख करता है। यह उनके तीसरे राज्य वर्ष में (सन् 1339 - 40 ई.) (संख्या 111 जिल्द I) संपन्न किया गया है। इस आदेश के अनुसार तिरुपति के

बडे तालाब से एमपेरुमानार - रामानुज के खेतों को पानी देने की बात स्पष्ट की गयी है। यह तिरुवेङ्कटमुडैयान के लिए अधिकारदान है। यह भी तिरुवेङ्कटमुडैयान को 200 *पणम् तिरुमुन्-कानिक्कै* के (भेंट या मूल्य के रूप में) अर्पण के बाद निर्धारित हुआ है।

संख्या 104 *दो मठों* (धार्मिक संस्थाओं) की स्थापना की सूचना प्रस्तुत करता है। ये तिरुपति और तिरुमल से संबन्धित मठ हैं। यह महाप्रधानी इम्मडि राहुत्तरायन् मादप्पन सिंगय - दण्णायक्कर से संपन्न हुआ है। उन मठों को भी ब्रह्मचारियों की अधिरक्षा में रखकर उस *जीयर* से 1000 *पणम्* वसूल कर उसे *मठों* के निर्माण में तथा दो *नंदवन* (पुष्पवनों) को लगाने में रवर्च करने के लिए कहा गया है। तदनंतर सिंगय - दण्णायक्कर के निवास और अन्य कार्यों की खर्चा के लिए देना है।

[[इन दो *मठों* और पुष्प वाटिकाओं (नंदनवनम्) के सिंगय-दण्डनायक द्वारा संपन्न कराये जाने और उनको *देशांतरि-जीयर* के हाथों में संदाणार्थ अर्पित करने एवं उनको व्यवस्थित रूप में चलाने के मार्ग रूपायित करने में (सन् 1339 - 40 ई. में) चाहे आरंभ में मंदिर की सेवा की भावना ही क्यों न हो, धीरे धीरे तिरुमल पर *जीयरों* या जीयंगारों के अधीन आगे मंदिरों के उत्सव आदि से संबन्धित मान्य व्यवहार की, विचार - धारा की नींव दिखाई देती हैं। विशेषकर मंदिर के कार्यक्रमों के चालन में जीयरों की वाणी (प्रमुखतः प्रबन्धन में) जोर पाती दिखाई देती है (पृ.113, जिल्द I) और अन्ततोगत्वा वे ''धर्मकर्ता'' के पद पर भी शोभित हुए। इस स्थिति पर पहुँचते ही दो एकांतवासी स्थिर हुए - पेद्द जीयर स्वामी और चिन्नजीयर स्वामी - एक बडे और दूसरे छोटे। ये दोनों *तेंगल वैष्णव ब्राह्मण* परिवारों से चुने जाते हैं। पहले चिन्न जियर स्वामी का (छोटे जीयर को) चयन होता है और बाद में उन्हीं को समय आने पर पेद्द जीयर (प्रधान जीयर) बनाया जाता है। दोनों जीयर स्वामियों के लिए दो *मठ* हैं। यह व्यवस्था तिरुमल और तिरुपति दोनों नगरों में की गयी है। दोनों दो मंदिरों से *'प्रसादम्'* के साथ-साथ और आर्थिक अनुदान भी पाते हैं। दोनों के लिए अलग अलग सहायकों की व्यवस्था भी है। इनको ''एकांगी'' कहते हैं। *''एकांगी''* सहायकों की सहायता से अपने प्रकार्यों और मंदिर के उत्सवों से संबन्धित कार्यों का निर्वहण करते हैं।]]

संख्या 104 के कुछ अनुबन्ध भी हैं। उसमें एक शर्त यह है कि जो प्रावधान *जीयर* की आजीविका के लिए किया गया है उससे संबन्धित सभी जायदाद जीयर के *देहावसान* के बाद दण्डनायक के पास वापस हो जायेगी और वे बाद में देशान्तरी की नियुक्ति करेंगे। ये स्वामी की सेवा (वेङ्कटेश्वर की) में रहेंगे। लेकिन इससे पहले उसको *श्री-भण्डारम्* में 400 *पणम्* अदा करने हैं। भगवान की उत्सव मूर्तियों के लिए आवश्यक व्यवस्थाएँ करने का दायित्व भी। होता है भगवान की उत्सव मूर्तियों के लिए आवश्यक व्यवस्थाए करना। ये उत्सव सामन्यतः उत्सव के चौथे दिन पर होते हैं। आखेट उत्सव के

संदर्भ में भी विशेष व्यवस्थाएँ होनी चाहिए। उक्त पद्धति में नियुक्त अधिकारी अरिशाणालयन - नंदवनम् और वण - शठकोपोपन - नंदवनम् में रहते हैं और वहाँ से ही कार्य निर्वहण करते हैं। इस कार्यनिर्वहण के लिए निवेशित 100 *पणम्* पर, (*श्री-भंडारम्* में पूँजी के रूप में समर्पित) आने वाली ब्याज से ही उक्त नियुक्त अधिकारियों को चलाना है। यह अभिलेखित (लिखा) रूप श्रीरंगनाथ यादवराय के 3 वें राज्य वर्ष का है (सन् 1339 - 40 ई.)।

संख्या 105 श्रीरंगनाथ के 9 वें वर्ष का है। इस में *''पाडियवेट्टै''* दिन के लिए दिये गये देवदान सूचित हैं (सन् 1345 - 46 ई.)।

संख्या 106 श्रीरंगनाथ यादवराय के 19 वें राज्य वर्ष (सन् 1355-56 ई.) का है। इसमें श्रीवेङ्कटेश्वर की उत्सव मूर्ति को मलैकिनियनिन्र - पेरुमाल कहा गया है। इस संदर्भ में श्रीवेङ्कटेश्वर अपनी दो देवेरियों, नाच्चिमारों, के साथ विराजमान होते हैं। ये भगवान के साथ चेदियराय - मंटपम् में पहले विराजते हैं। यह हर उत्सव के चौथे दिन पर घटित होता है। उस समय मंदिर भण्डार से उपयुक्त वस्तुओं से प्रसाद समर्पण भी होता है। ये सारे कार्यक्रम 400 *पणम्* के धरोहर से अर्जित सूद से संपन्न होते हैं। यह तलुवक्कुल बनाम पल्लवरायर द्वारा श्री भण्डारम् में धरोहर जमा करने पर ही हुआ है।

[[यही पहला अवसर है जब हम 'मलैकिनियनिन्र' पेरुमाल और उनकी दो देवेरियों - यथा श्रीदेवी और भूदेवी का उल्लेख पाते है। इस से पहले 'नाच्चियार' का उल्लेख संख्या 104 में है। लेकिन वहाँ ''मलैकिनियनिन्र - पेरुमाल का उल्लेख मिलता नहीं है। हो सकता है कि उसका कारण उस अभिलेख का खण्डित या जीर्ण होना ही हो। इससे यह भी सिद्ध होता है कि ये तीनों मूर्तियाँ नये रूप से तैयार करवाई गयीं हो और व्यवहार में लायी गयीं हो। इसका समय भी लगभग 14 वीं सदी (ईसा के बाद) के मध्य का होगा। इस पुनः स्थापन का एक कारण यह भी हो सकता है कि मनवाल - पेरुमाल की चाँदी की मूर्ति जो रानी सामवाय द्वारा पहले समर्पित हुई है वह बहुत छोटी है। सामवाय ने इस मूर्ति को 7 वीं शती में समर्पित किया और शायद भगवन की देवियाँ उस समय नहीं थीं। इस कारण से उस मूर्ति को अगल रखा गया। इसके द्वारा कुछ अन्य उत्सव चलते होंगे। नये सिरे से तीन नयी मूर्तियों को आगे किया गया। इसमें आगे यह भी निर्देशित है कि अन्न - *प्रसादम्* के लिए देवदान करनेवाले को भगवान को समर्पित भोग का चौथा अंश मिलेगा। यह एक नया प्रावधान है। पूर्व समर्पणों में कहीं भी इस प्रकार के प्रावधान की गुंजाइश नहीं रही है। भगवान के लिए पूर्व समर्पण सभी में इस प्रकार के अंश देय की बात नहीं है।

संख्या 74 और संख्या 75 में दो और उत्सवों का उल्लेख मिलता है - ये पुरट्टासि और चित्तिरै मासों में मनाये जाते हैं। संख्या 73 और 78 में अन्न - प्रसादों के प्रावधानों का उल्लेख है। ये कुछ मंटपों में वितरित होते थे। हो सकता है कि ये मंदिर से बाहर की व्यवस्थाएँ हैं। ये चारों पुरालेख (शिलालेख या ताम्रपत्र) तेलुगु पल्लव राजाओं के समय से संबन्धित हैं। प्रधानतः विजयगंड गोपाल और उनके बाद के। इनमें गंडगोपालन माडै या केवल माडै शब्द का प्रयोग है। इस समय के कुछ खांडित पुरालेख हैं और उनका समय संभवतः सन् 1255 और 1260 के बीच का माना जा सकता है। लेकिन ये किस मूर्ति (एक या द्वय या त्रय) की ओर संकेत करते हैं, स्पष्ट नहीं है। किनका माडवीथियों में उत्सव मूर्तिवत उपयोग होता है स्पष्ट नहीं है। मंटपों और पुष्पवाटिकाओं के संदर्भ में इसी प्रकार की बात उठती है। हो सकता है कि उस समय के रथों पर प्राप्त स्थल या उनकी स्थिति के अनुसार दी गई देवदान हो!]]

संख्या 107 श्रीरंगनाथ, यादवराय के राज्य काल का है। इसमें तिरुमल मंदिर के मुखद्वार पर संपन्न होनेवाले प्रसादों के संबन्ध में उल्लेख है। इन्हें ''तिरुप्पोनकम्'' कहते हैं। यह समर्पण तिरुमल की उत्सव मूर्तियों के लिए और ''तिरुवायमोळि'' (तमिल प्रबन्धम् के गीतों) के गायन के लिए हैं।

[[संख्या 61 में ''तिरुमोळि'' के वाचन का उल्लेख मिलता है। यह सन् 1264 ई. - का है। संख्या 74 में आंडाल द्वारा रचित तिरुप्पावै वाचन का उल्लेख है जो श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में संपन्न होता है। इसका समय सन् 13 वीं सदी के उत्तरार्द्ध का है। संख्या 107 में भी ''तिरुवायमोळि'' का उल्लेख है जो श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी के मंदिर में संपन्न होता है। यह सन् 14 वीं सदी के तृतीय त्रिमास भाग का है। इस प्रकार यह विदित होता है कि चौदहवीं सदी तक ये दोनों मंदिर वैष्णव संप्रदाय के धार्मिक अनुष्ठानों की परंपरा से अनुबद्ध हो गये हैं।]]

संख्या 109 में एक तमिल पद्य है। उसके अनुसार राजा श्रीरंगनाथ यादवराय ने अपने शत्रुओं को हराकर उनको पहाडों पर वास करने के लिए विवश किया है। अपनी विजय के उपलक्ष्य में उन्होंने एक महल का निर्माण वेङ्कटाद्रि पर करवाया। इतना ही नहीं, विजय सूचक के रूप में अपने घायल वक्षःस्थल पर एक पुष्पहार भी डाल लिया है। यह राजा के 16 वें राज्य वर्ष में (सन् 1352 - 53 ई.) घटित हुआ था। शायद यही भवन आजकल का श्रीहथीरामजी महाराज का मठ है। तिरुमल पर यह मठ महंतों का मठ है।

संख्या 110, चालुक्य नारायण की विभिन्न बिरुद *(उपाधियों)* की गणना करता है। इस संबन्ध में सूर्यवंशी राम के रावण से युद्ध का उल्लेख भी है (सम कहने में)। इस में *विकारी* नाम संवत्सर की सूचना है जो शक संवत् 1281 में आता है। यह वर्ष राजा श्रीरंगनाथ यादवराय के शासन वर्ष के 24 वाँ वर्ष है (सन् 1360 ई.)। इस तरह यह सूचित होता है कि वे दो राजाओं - हरिहर I और बुक्का - I के

समकालीन थे। हरिहर राय और बुक्कराय संगम वंश के राजा थे और उन्होंने सन् 1336 में विजयनगर साम्राज्य की नींव डाली थी। हो सकता है कि चालुक्य नारायण ने इनके अधीन होकर कार्य किया हो (पृ.111, जिल्द I)।

संख्या 113 में 32 गायों और एक बैल के दान का उल्लेख है। यह दान, ज्योति प्रज्वलन के लिए चिरस्थायी देवदान है। यह भी यादवराय के समय में ही संपन्न किया गया है। इसके दात्ता एर्रमंचि पेरिय - पेम्मा नायक्कर हैं जो श्री महानायक्कर उपाधि से विभूषित हैं। इन्हें ''भाषैक्कुत्तप्पुव - रायरन गंड'' भी कहा गया है। तिरुमल पर *वसंत ऋतु* के संदर्भ में मनाये जानेवाले वसंत उत्सव में उन्होंने भाग लिया। उसी संदर्भ में उक्त उपाधियों का उल्लेख है।

संख्या 114 भी उक्त प्रकार के 32 गायों और एक वृषभ (बैल) के दान का उल्लेख करता है। यह *नंदाविलक्कु* एक शाश्वत दीप ज्योति के लिए है। तिरुवेङ्कटम् उडैयान के लिए यह दान पाप्पुनायक्कर - पेम्मु-नायक्कर द्वारा प्रदान किया गया है। इनकी दो उपाधियाँ भी हैं - महा नायनकाचार्य और भाषैकुट्टप्पुव रायरगंडन। यह अभिलेख *शारवरी* वर्ष (सन् 1361 ई) का है। यह दाता संख्या 113 के दाता के छोटे भाई थे। दोनों पाप्पु - नायक्कर के पुत्र थे। लगता है कि दोनों भाई श्रीरंगनाथ यादवराय (पृ.112 जिल्द I) की सेवा में रहे होंगे। श्रीरंगनाथ यादवराय की मृत्यु एक वर्ष पहले ही घटित होने के कारण (*विकारी* संवत्सर में) संख्या 114 शारवरी वर्ष का होने के कारण, राजा के नाम का उल्लेख नहीं हुआ हो।

संख्या 116 में एक *संस्कृत* श्लोक है। इसमें शौरि भगवान (विष्णु भगवान) को होबल राजा द्वारा एक आभूषण दान में देने का उल्लेख मिलता है। यह आभरण भक्तों के मनों को आह्लाद पहुँचानेवाला भी बताया गया है। यह भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के *वरद* हस्त पर अवस्थित होकर *वैकुंठत्व* के गुण और शांति का स्फुरण कराता है। विपुलता, अनंतता, उज्जवलता तथा परमानंद प्रदान करता है जो केवल वैकुण्ठ में ही मिल सकता है। यह पुनः वेङ्कटाद्रि पर ही संभव है (पृ.142 जिल्द I)।

संख्या 117 में *तमिल* का एक पद्य है। यह एक आभरण के दान की सूचना देता है। यह *'तिरुक्कैमलर'* आभरण है। यह उत्तर वेङ्कट पर्वत पर अधिवसित भगवान के लिए है जो सुगन्ध पुष्पों की वाटिका में रहते हैं। यह दान तंजाय (तंजाऊर) के यादव राजा द्वारा संपन्न किया गया है। यह राजा होबल अथवा ओबलनाथन् अपने को तंजाऊर राज्य के अधिपति मानता है। उसका समय और अन्य वंशीय विवरण नहीं मिलते हैं। हो सकता है कि उसका संबन्ध स्थानीय यादव शासकों से हो अथवा मैसूर के देवगिरि यादव राजाओं से। संख्या 148 इस पर्वत को श्रीशैल पर्वत बताता है।

लगभग 60 पुरालेख 13 वीं और 14 वीं सदियों के और विजयनगर साम्राज्य की स्थापना से पूर्व के हैं। ये खण्डित हैं और इनसे असंबद्ध सूचनाएँ ही मिलती हैं (जो विश्वनीय भी कम लगती)। उनमें

संख्या 162 और संख्या 163 हैं। ये *मठों* से और *नंदवनम्* से संबन्धित हैं। संख्या 104 में उल्लिखत श्रीरंगनाथ यादवराय के तीसरे शासन वर्ष में जीयर को सौंपी गयी उत्सव मूर्तियों से संबन्धित बातों का ही पुनरुल्लेख इनमें हैं। वे हैं अरिशाणलयन और वन - शठकोपन पुष्पवाटिकाएँ। संख्या 162 से *मठ* की आमदनी से कुछ आभरण और मणियों की बात सूचित होती है। ये कुछ मूर्तियों के लिए हैं। संख्या 163 जिसका समय श्रीरंगनाथ के 5 वें राज्य वर्ष (सन् 1341 - 42 ई.) का है, यह पुष्ट करता है कि *जीयर* के देहावसान के उपरांत उनके उत्तराधिकारी को पूर्व सम्मत नियम के अनुसार स्वीकृत राशि को (मठ को प्रदत्त दान राशि को) अदा करना है और *मठ* से संबन्धित करों की वसूली से खर्च उठाना है। यह खर्च, पुष्पवाटिकाओं में विलसनेवाली देवता मूर्तियों के दो दिनों के उत्सवों से संबन्धित है। संख्या 111 और 112 बताते हैं कि यही श्रीमान महाप्रधानी इम्मडि राहुत्तरायन सिंगय दण्णायक्कन का *मठ* है। हकदार सितकरगंडन है।

संख्या 160 में ''विजय प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा को लेकर'' और ''विजय स्तंभ स्थापन'' शब्दों से इस पुरालेख का संबन्ध जटावर्मन सुंदर पाण्ड्य - I से शायद जोडा जा सकता है।

खंडित पुरालेख संख्या 161 एक विलक्षण पुरालेख है। इसमें उल्लिखत है - ''- - - - श्रेष्ठ राजा के दिवंगत होने से - - - सही मार्ग के अनुसरण से - - -''। इस सूचना मात्र से यह अवगत होता है कि इस में दिवंगत राजा श्रीरंगनाथ यादवराय हैं जिनका उल्लेख संख्या 109 में है। उसके अनुसार उन्होंने अपने 16 वें राज्य वर्ष में एक महल का निर्माण करवाया। अपने शत्रु राजाओं पर विजय पाने के बाद उसमें वे रहे होंगे। उसी में उन्होंने अपनी अंतिम साँस ली होगी। वेङ्कट पर्वत पर उनके 24 वें शासन वर्ष में (सन् 1359 - 60 ई.) यह घटित हुआ होगा। (संख्या 110) उसी संदर्भ में उनके उत्तराधिकारी का भी चुनाव हुआ होगा।

संख्या 123 में 6 दीप स्तंभों के देवदान का उल्लेख है। शायद यह मंदिर में रखने के लिए ही होगा।

संख्या 125 और संख्या 126 में एक आळ्वार का उल्लेख दिखता है जिनका नाम मिट गया है। उनको हर दिन दूध के लिए गायों का दान मिला है। इस सेवा का कर्तव्य *सभैयार* ने लिया है। सभैयार ने ही इस का मूल्य भी पाया है। गायों का दान भी। वास्तव में उस समय श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में कोई आळ्वार नहीं थे।

संख्या 127 कुलोत्तुंग चोळ राजा के समय का है। उलगमुडैयाल उनकी राणी हैं। उस समय के मंदिर के आळ्वार को भगवान के लिए क्षीर समर्पण का दायित्व देते हुए रानी ने देवदान की व्यवस्था की है (पंक्ति 3)। पंक्ति 2 में ''निन्र आळ्वार'' कहा गया है। इस आधार से यह स्पष्ट विदित होता है कि संख्या 125 और संख्या 126 में उद्धृत समर्पण श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए ही है।

संख्या 130 और संख्या 131 तिरुवेङ्कटमुडैयान को निरंतर ज्योति प्रज्वलन के लिए गायों और बैल का देवदान, मूल्य 310 *पणम्,* दिया गया। यह दाताओं से प्रदत्त है।

संख्या 132 में भगवान के लिए चार ज्योतियों का देवदान प्रस्तावित है। संख्या 133, 135 और 135 भी ज्योति प्रज्जवलन के लिए ही प्रावधानों की सूचनाएँ देते हैं। संख्या 142 और संख्या 143 दो दीपों की सूचना देते हैं। साथ साथ दीप स्तंभ भी हैं। यह किसी राजा के 22 वें राज्य वर्ष में संपन्न किया गया है। संख्या 169 तो 32 गायों, एक बैल और एक दीप स्तंभ (कलश) की सूचना देता है।

संख्या 150 चेरनैवेन्नान द्वारा एक *मंटप* के निर्माण की सूचना देता है। ये तंबिरान्मार में एक को यह सेवा कर्तव्य दिया गया है। ये *''विण्णप्पम्''* सेवा अर्पित करने के लिए है। (तदर्थ अनुमति पाने की बात भी इसमें है)।

संख्या 151, 152, 153 और 154 में 400 *पणम्* देवदान से अन्न - प्रसादों के समर्पण की व्यवस्था सूचित होती है (संख्या 152) और (संख्या 154 में) 2000 *''कुली''* भूमि दान भी तदर्थ है। (संख्या 155) *''मुदल-संधि'',* प्रथम अन्नप्रसाद की बात सूचित करता है। यह *अविट्टम (धनिष्ठा)* नक्षत्र के दिन पर अन्न - प्रसाद के लिए और नंदाविलक्कु (अनवरत ज्योति) के लिए भी है। संख्या 166 तो *तिरुप्पोनकम् (पोंगलि)* प्रसादम् के लिए प्रावधान की सूचना देता है। संख्या 167 और संख्या 168 तो पुष्पवनों और अन्न - प्रसाद को सूचित करते हैं। संख्या 168 तो *कोदै - तिरुणाल्* (ग्रीष्मकालीन उत्सव) के लिए प्रावधानों की सूचना देता है।

तिरुचानूर मंदिर से हमें 16 खंडित अंश (परिलेख) मिलते हैं। उन में संख्या 118, 119, 120 और 137 में नयी मूर्ति के रूप में स्थापित *''तिरुविलन्कोइल-पेरुमान-अड़िगल''* से संबन्धित प्रावधानों की सूचना हैं। इनमें अन्न प्रसाद से संबन्धित कुछ *''कळंजु''* (स्वर्ण मुद्रा) का भी उल्लेख है (संख्या 118)। शोलनाडु से प्राप्त कुछ भूदान का उल्लेख भी (संख्या 119) है। संख्या 120 में ब्राह्मणों के लिए अन्नदानार्थ 10 पोण हैं। यह *''तिरुवुण्णालिकैपुरम्''* से संबद्ध भूदान है (संख्या 137)। यह मूलविराट के भोग के लिए।

संख्या 121 के अनुसार एक प्रावधान की सूचना मिलती है। उसके अनुसार यह प्रावधान अन्न-प्रसाद समर्पण के लिए है। किन्तु ये किसी कारण से तब तक निश्चित प्रावधानों से संपूर्ति नहीं होने पर उपयोग के लिए हैं। तदर्थ कुछ सोना और करों से प्राप्त धन को निक्षेपित किया गया है। इसकी आपूर्ति भी कर से की जानी चाहिए। संख्या 127, 128 और 129 एम्पेरुमान - अडियार जो 18 *नाडु* से थे, *वैष्णवों* के संरक्षण के लिए निर्देशित हैं। दाताओं ने 40 *कळंजु* स्वर्ण हर एक के लिए दान में दिया है। यह तिरुवेङ्कटेश्वर के लिए है। संख्या 139 *निशादप्पडि,* दैनिक समर्पण, के लिए है। स्वर्ण निक्षेपण की

आमदनी से होना चाहिए। संख्या 140 में 100 *कळंजु* सुवर्ण के समर्पण की सूचना मिलती है। इससे तिरुच्चोकुनूर के सभैय्यार ने धान की खेत खरीद रखी है जिसकी आमदनी से सूचित कार्य संपन्न करना होता है। संख्या 141 एक ज्योति की सूचना देता है। संख्या 170 तिरुवेङ्कटम् उडैयान के अन्न-प्रसाद समर्पण के लिए है। 10 *तूंबु* (80 सेर माप) चावल और अन्य वस्तुओं (घी, तरकारी, दाल, नमक, दही, सुपारी, पान, चंदन, और दीप के लिए तेल आदि) के लिए हैं जो भगवान के लिए होती हैं। संख्या 146 में 80 *वट्टि (पुट्टि)* धान के भगवान के लिए प्रावधान की सूचना है। यह भी सुपारी, पान आदि के साथ मूर्ति के शरीर पर मलने के लिए सुगंधित तेल के लिए भी निवेदित है। संख्या 144 तो गोविंदपेरुमाल और नारायण, *तिरुविलनकोइल* और अळगिय पेरुमाल आदि का नाम लेता है और *श्रीभंडारम्* के लिए कुछ धन समर्पण का भी उल्लेख करता है। यहाँ उल्लिखित नारायण तिरुपति में स्थापित यादव नारायण मूर्ति हो सकता है। इस भगवान के लिए ही तिरुवेङ्कटनाथ यादवराय (सं.100, 101 जिल्द I और पृ. 102-103) ने अन्न प्रसादार्थ देवदान दिया है। अळगिय - पेरुमाल तिरुचानूर के भगवान हैं (संख्या 34 और पृ. 54-55, जिलद I)। वे ही सुंदरराजस्वामी हैं।

संख्या 171, 172, 173 और 175 खंडित अवस्था में प्राप्त हैं। उनमें उडैयवर, रामानुज, आनंदाळ्वान, वेङ्कटत्तुरैवार (आनंदाळ्वान के पौत्र), आनंदाळ्वानपिल्लै वेङ्कटत्तुरैवार के नाम हैं। ये तिरुपति के *आचार्यपुरुषों* में हैं। इसमें समर्पण और पुष्प वाटिका का भी उल्लेख है। आनंदाळ्वान तो श्रीरामानुजाचार्य के प्रिय शिष्य माने जाते हैं। उन्होंने अपने को श्री वेङ्कटेश्वर की सेवा के लिए अर्पित कर लिया है और वे तिरुमल पर स्थिर निवासी बनकर रह रहे थे। इन्होंने ही आळ्वार सरोवर (आळ्वार तालाब) को खुदवाया है। यह तिरुमल पर उत्तर की दिशा में है। इनके पौत्र वेङ्कटत्तुरैवार ने ही (संख्या 171) उस देवदान को स्वीकार किया है। इस के अंतर्गत अन्न - प्रसाद, फूल - मालाओं से अलंकरण और सुगंध लेपन आदि है और श्रीरामानुज या अन्य से स्थापित अनुदान हैं (संख्या 171 और संख्या 172)। इसी के अंतर्गत *रामानुजन तिरुनंदवनम्* वाटिका का संरक्षण भी शामिल है (संख्या 175)। आनंदाळ्वान तिरुपति के *आचार्य पुरुषों* में एक हैं। रामानुज की मृत्यु के समय (सन् 1137-38 ई.) वेङ्कटत्तुरैवार शायद युवावस्था के होंगे। उन्होंने रामानुज की मूर्ति की स्थापना तिरुमल पर की हो तो वह सन् 12 वीं सदी के तृतीय चतुर्थांश में ही हुआ होगा। फिर संख्या - 79 - डी. में रामानुज का उल्लेख, एमपेरुमानार एवं *सौम्य* वर्ष (1248-49 ई.) के अनुदान का उनको समर्पण और अन्य सेवाओं के लिए, आदि का उल्लेख है।

संख्या 176 एक छोटा और संपूर्ण परिलेख है। इसमें तिरुपति और अवुलालि (अविलाल गाँव) के बीच की सीमाओं का निर्धारण है। अविलाल गाँव, तिरुपति नगर के दक्षण में है। इसकी सीमा तिरुपति

की नैऋति दिशा में स्थित *पेरिय - एरि* से निर्धारित है। वहाँ एक सीमा की स्थिति से संबन्धित पत्थर का स्थापन भी किया गया है। यह *''जीयर - कुळि''* तिरुपति की पश्चिम दिशा में हैं।

संख्या 177 *अलिपिरि* (अड़िपड़ि) के पेरियाळ्वार मूर्ति से संबन्धित है। यह तिरुमल जाने के लिए सीढियाँ जहाँ से आरंभ होती है, वहाँ पर स्थित है। उस परिलेख से ज्ञात होता है कि कामविल्ली ने एक तालाब खुदवाकर *सर्पगिरि अप्पन* (शेषाद्रीश्वर) को अर्पित किया है। शेषाद्रीश्वर शेषशैल पर वास करनेवाले श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान ही हैं। उसे कामविल्ली ने अपनी माता के नाम पर बनवाया है। कामविल्ली को उनकी माता ने ही इस प्रकार के अनुदान के 32 लाभों को बताया था (पृ.166 जिल्द I)।

संख्या 10 और संख्या 11 (जिल्द I के) यह सूचित करते हैं कि पल्लव राजा कुमार सर्वज्ञ - खड्ग - मल्ल, कोप्पेरुंजिंगा या महाराजसिंह को, जिन्होंने शेन्दमंगलम् (दक्षिण आर्काट जिला) पर राज किया है, राजराज चोळ - III के आह्वान पर आये (सन् 1216 ई.) माना जाता है। इनमें उनको *काटक-कुल-तिलक, कांची नायक, कविसार्वभौम, सहोदर-सुंदर* (जतावर्मन सुंदर पाण्ड्य - I के भाई), *कर्नाट - लक्ष्मी - लुंटाक* (कर्नाटक या होयसल राज्य, मैसूर में द्वारसमुद्र की संपत्ति और यश को लूटनेवाला), *गणपति - अट्ट - वीर - पद - मुद्र* (वरंगल के काकतीयगणपति देव के पैरों के आभरण पहननेवाला) और अन्य *उपाधियों* से लसित बताया गया है। मंदिर की किसी सेवा से इनके संबन्ध का उल्लेख नहीं मिलता है। ये एक अत्याशी और शक्तिशाली सामंत थे। चोळ सम्राट के विरुद्ध विद्रोह किया भी था। उनको हटाकर बन्दी बनाया। कर्नाटक के राजा, जो चोळ राजा के साले थे, ने चोळ सम्राट की रक्षाकर, स्वतंत्र बनाकर उन्हें पुनः सिंहासन पर अधिष्ठित कराया है। वे तंजाऊर से राज्य करने लगे। (पृ.17-19 जिल्द I और पृ.101-103 और 115-116 देवस्थानम् परिलेख रिपोर्ट)। उनसे संबन्धित सूचना श्रीशैलम् से प्राप्त अभिलेख, जो *संस्कृत* श्लोक में है, से मिलती है। ये राजा लगभग सन् 1225 ई. से 1272 - 73 ई. तक शासन करते रहे हैं।

* * *

अध्याय - 16

मंदिर की आवश्यकताओं की आपूर्ति

श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर से संबन्धित कार्यवाही सम्प्रादनों का पुनरीक्षण 7 वीं शताब्दी से पहले किया गया था। उसके अनुसार सामवाय ने सन् 614 ई. में अपनी ओर से चाँदी की मूर्ति उत्सवों के लिए प्रदान किया। 'मनवालमूर्ति' नाम से व्यवहृत यह मूर्ति 'तिरुविलन्कोइल' के लिए प्रदान की गयी थी (संख्या 8 और 9)। फिर इसके बाद दूसरी मूर्ति, तिरुविलन्कोइल में ''पेरुमान - अड़िगल'', की स्थापना हुई है। इस द्वितीय मूर्ति के लिए शोलनाडु के शोलनूर उलगप्पेरुमानार ने अनुदान दिया है। यह दान 30 *कळंजु* (स्वर्ण मुद्रा) का है। इस राशि को मूलधन के रूप में प्रस्तुत किया। यह 51 वें वर्ष में पल्लव राजा विजय - दन्तिविक्रमदेव (सन् 830 ई. संख्या 1) ने व्यवस्थित किया है। उसी पल्लव राजा दंतिविक्रम के जमाने में या कुछ समय बाद बाण युवराज विजयादित्य महाबलि बाणराय ने प्रायश्चित्त दान के रूप में दो अन्न प्रसादार्थ देवदान प्रस्तुत किये हैं। ये संयुक्त रूप में तीन देवताओं के लिए हैं - तिरुविलन्कोइल पेरुमानडिगल, तिरुमन्तिरसाल - पेरुमानडिगल और तिरुवेंकटत्तु - पेरुमानडिगल *(मूलबेरम)।* अंतिम भगवान वेङ्कटाद्रि पर विराजमान तिरुवेङ्कटेश्वर (श्रीवेङ्कटेश्वर) ही हैं। दो अन्न प्रसाद व्यवस्थाएँ तीन देवताओं को दृष्टि में रखकर की गयी होने के कारण समवेत रूप से यह समझा जा सकता है कि ये तीनों मूर्तियाँ एक ही स्थान पर अगल - बगल में स्थित हैं। युवराज बाण की व्यवस्था इन्हीं के लिए की गयी हो सकती हैं। इस पुराने समय में आराधना के लिए जो छोटी मूर्ति थी वही हो सकती है (विमानम् की मूर्ति)। पूर्व समयों में (पहले की शताब्दियों में) गर्भगृह साधारणतया छोटे ही होते थे। उनके संवर्तियों के रूप में *अर्द्ध मंटपम्* भी होते थे। ये भी बहुत छोटे *गर्भगृह* के समान ही (विशालता में) होते थे। उनकी *प्रदक्षिणा* लेनी होती थी और वह भी खुले में। ऐसी स्थितियों में 'तिरुविलनकोइल' छोटे गर्भ मंदिर में कहाँ थे, इसका अनुमान लगाना कठिन ही होगा। हो सकता है *गर्भगृह* में ही एक छोटे स्थान पर प्रतिष्ठित किये गये हों। जब तक नया मंदिर बाहर निर्मित नहीं हुआ हो तब तक यही स्थिति हो सकती थी। ऐसा कोई स्थान हो इसका भी कोई संकेत नहीं मिलता अथवा ऐसा नया मंदिर निर्मित होगा, इसकी भी सूचना नहीं है। इस कारण से यही माना जा सकता है कि तीनों मूर्तियाँ श्रीवेङ्कटेश्वर की ही प्रतिमूर्तियाँ हो यथा चाँदी की मूर्ति मनवालप्पेरुमाल (संख्या 8 और 9), तिरुविलंकोइल - पेरुमानडिगल (संख्या 1-4), तिरुमंतिरशालै - पेरुमानडिगल (सं. 4) ये तीनों मूर्तियाँ मूलविराट श्रीवेङ्कटेश्वर के पास ही *गर्भगृह* में एक मंच पर रखी गयीं हो। तीनों प्रतिमूर्तियाँ श्रीवेङ्कटेश्वर के मूल विराट के समान ही अर्चित हुई हैं। ये तीनों मूर्तियाँ *ध्रुवबेरम्* (मूल मूर्ति) के प्रति रूप में विलसित

मानी जा सकती हैं, अन्य मूर्तियाँ नहीं। क्योंकि ये राम, कृष्ण, शिव, गणेश, स्कंध या अन्य से संबन्धित नहीं हैं।

''तिरुविलनकोइल'' पद संख्या 8, जो 7 वीं सदी की सन् 614 ई. के परिलेख में तथा 9 वीं शती के संख्या 1 और 4 में (सन् 830 ई.) मिलती हैं। बाद में 13 वीं शती तक भी इसके उल्लेख मिलते रहे हैं। इनको हम शासन काल के तीसरे वर्ष नायनार जटावर्मन सुंदर पाण्ड्य I के समय के परिलेख में भी पाते हैं (संन् 1254 ई.)। इस परिलेख में भूमि माप की छडी का उल्लेख है और इस का उपयोग ''तिरुविलन्कोइल'' में होता रहा है। इतना ही नहीं संख्या 137 (खंडित परिलेख) में, जो सन् 13 वीं सदी का है, भी ''तिरुविलन्कोइल - पेरुमानडिगल'' का उल्लेख है। इसकी दोनों पक्तियों में भी यह उल्लेख मिलता है - (1) नंबि अमुदन तिरुविलनकोइल-पेरुमानडिगलुक्कु तिरुवुन्नाळिगै... (2) ''कोइल पेरुमानडिगलुक्कु तिरुवुण्णालिगैपुरम तिरुवमिर्दु...

इसका तात्पर्य यह है कि नंबि अमुदन ने पवित्र अन्न-प्रसाद का समर्पण किया था। यह तिरुविलनकोइल की मूल विराट मूर्ति के लिए था। ये गर्भ मंदिर में ही विराजमान रहते हैं। एक प्रकार से यह ''तिरुविलनकोइल'' शब्द को अर्थ और महत्व प्रदान करता है और ''तिरुवुण्णलिगैपुरम्'' की पवित्रता से तुलनीय भी बनाता है।

7 वीं सदी के संख्या 8 अभिलेख में उल्लिखित अभिव्यक्ति चाहे छोटे गर्भगृह की सूचना दें, इसमें 'मनवालप्पेरुमाल' की नयी चाँदी की मूर्ति है। यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के छोटे गर्भगृह की ओर ही संकेत देता है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि वेङ्कटेश्वर मूर्ति की स्थापना या पूर्व मंदिर का पुनर्निर्माण भी हुआ हो। इस अभिलेख का समय 6 वीं सदी के पूर्व का ही होगा।

14 वीं सदी में (P. No. 110 - 111) चौथी ताँबे की मूर्ति का आरंभिक रूपायन हुआ है। इस प्रतिमूर्ति को *शंख* और *चक्र* युक्त हाथों से रूपायित किया गया। इसके साथ साथ भगवान वेङ्कटेश्वर की दोनों देवेरियों - श्रीदेवी और भूदेवी - को भी उनके साथ जोडा गया। इससे एक पारिवारिक गठन रूपाइत हुआ। इस त्रयी के साथ *आगमशास्त्र* के अनुरूप *''पंचबेरम्''* की आवश्यकता की पूर्ति हुई। इससे पूर्व रूपाइत तीन (ऊपर उल्लिखित) मूर्तियों के लिए विशेष प्रकार्य निर्देशित हुए हैं। वेङ्कटेश्वर और श्रीनिवास नाम प्रचार में आये। इस रूप में तात्कालिक व्यवस्था की कल्पना हो गयी थी (P. 99)।

'ध्रुवबेरम्' मूल विराट की मूर्ति अर्थात् श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की असली मूर्ति, अपने दिव्य अलंकरणों के साथ विभिन्न प्रकार की सेवाओं के समय अपना दिव्य दर्शन देता है। इसी विराट मूर्ति की सेवाएँ नित्य प्रति आगम शास्त्रोक्त रीति से संपन्न होती हैं। गुरुवार के दिन फूलों से सज्जित और

शुक्रवार के दिन *अभिषेकम्* विशिष्ट सेवाएँ हैं। भगवान को नित्यप्रति विविध प्रकार का पण्यारम् (अन्न प्रसाद भोग) चढाया जाता है। प्रसन्न मुद्रा में भगवान सभी सेवाओं को ग्रहण करते हैं।

भगवान की चाँदी की मूर्ति, मनवालप्पेरुमाल, जिसे पल्लव रानी सामवाय ने समर्पित किया था, वह उत्सव मूर्ति थी। इस मूर्ति को उत्सव के दिनों में मंदिर से बाहर, अन्य प्राँतों में विशिष्ट प्रकार के अन्न - प्रसाद भोग अर्पित होते हैं। इस मूर्ति को *''कौतुकबेरम्''* या *''भोगमूर्ति''* कहते हैं। इस मूर्ति की भी नित्य आराधना और रात में पलंग सेवा (निद्रा सेवा - एकांत सेवा) भी होती है। यह रात के समय भगवान को सुलाने की सेवा है।

तिरुविलनकोइल - पेरुमानडिगल (संख्या 1 और 4) ''बलिबेरम्'' के रूप में स्वीकृत किये गये होंगे। *''बलिबेरम्''* के रूप में *परिवार - देवताओं* के साथ सम्मिलित रूप से *महामणिमंटपम्* में पूजाएँ, *पंचांग* श्रवण, और पूर्व दिन का लेखा - जोखा (आय से संबन्धित) विवरण पाते हैं।

तिरुमनतिरशालै - पेरुमानडिगल (संख्या 4) शायद *''स्नपनबेरम्''* हो गये हैं। इस रूप में वे *वेद* मंत्रों और पूजा मंत्रों तथा प्रार्थनाओं, धार्मिक अनुष्ठानों और तत्संबन्धी विधियों आदि को स्वीकार करते हैं। इस रूप में ''स्नपनबेरम्'' का संबन्ध *ध्रुवबेरम्* के साथ स्थापित होता है।

'मलैकिनियनिन्र पेरुमाल' या मलयप्पस्वामी (श्रीवेङ्कटेश्वर) अपनी दोनों *नाच्चिमार* (देवेरियों) के साथ *''उत्सवबेरम्''* के रूप में उभरते हैं। इस प्रकार की उत्सव मूर्तियों की सूचना सन् 14 वीं सदी में मिलती हैं।

जब किसी भी मंदिर में मूर्ति की प्रतिष्ठा होती है तो तुरन्त उसमें ज्योति की आवश्यकता सबसे पहले हो जाती है। ज्योति प्रकाश में ही भक्त भगवान का दर्शन ले सकते हैं। इतना ही नहीं, भगवान के लिए अन्न प्रसाद समर्पण, फूल मालाओं का अर्पण और दैनिक *पूजाएँ* भी ज्योति प्रकाश में ही समर्पित होती हैं। सर्वप्रथम अभिलेख उळगप्पेरुमानर का है। उसी में उनका समर्पण उल्लेख है। उस समर्पण में तिरुविलनकोइल - पेरुमानडिगल के लिए उन्होंने ज्योति प्रज्ज्वलनार्थ 30 *कळंजु* सुवर्ण का देवदान दिया है। दूसरे अभिलेख में शियकन या शियगंगन द्वारा ज्योति के लिए देवदान का उल्लेख मिलता है। पल्लव राजा विजयदंति विक्रमवर्मा के राज्यकाल में शियगंगन ने ज्योति प्रज्ज्वलन हेतु देवदान दिया है। पल्लव युवरानी सामवाय ने तो शाश्वत रूप से दीप कलश दान दिया है जो मनवालप्पेरुमाल की चांदी की मूर्ति के सामने ज्वलित रहे। कोडुंगोलुरान द्वारा भी (संख्या 12 में एक और संख्या 13 में एक) ज्योति दान की सूचना है। यह भगवान वेङ्कटेश्वर के लिए ही अनुदानित है। 14 वीं शती तक व्याप्त समय में (कालावधि में) लगभग 40 दीपदान अनुदानों का उल्लेख मिलता है। संख्या 19 से यह

सूचना भी मिलती है कि श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए तिरुमुंडियम् गाँव के *सभैयार* द्वारा 24 ज्योति अनुदानों की सूचना मिलती है। इनमें एक कर्पूर ज्योति भी है। लेकिन 22 दीप प्रज्ज्वलन बन्द हो गये थे। इस पर *अधिकारी* या गवर्नर ने विचार - विमर्श के लिए एक समिति का गठन किया। तत्पश्चात् तिरुमुंडियम् *सभा* के पास रखी गयी कुछ धन राशि से 24 ज्योतियों के प्रज्ज्वलन का आदेश भी दिया गया था। संख्या 123 से प्रस्तुत मंदिर में 6 दीप - ज्योतियों के प्रस्तुतीकरण की सूचना मिलती है और संख्या 132 से चार की। ये शाश्वत रूप से भगवान के मंदिर को प्रकाशित करती रही हैं। इस प्रकार उक्त समय तक ही मंदिर को प्रकाशित करने के लिए आवश्यक ज्योति दीपदान की व्यवस्था संतोषदायक रूप में हो गयी थी।

अन्न प्रसाद व्यवस्था से संबन्धित देवदान की पहली सूचनाएँ *बाण* राजा विजयादित्य (संख्या 4) के समय में और गंगै गंगान रणसिंगन (संख्या 5) के समय में मिलती हैं। इसी क्रम में सामवाय (संख्या 8 और 9) द्वारा दूध और दही के लिए देवदान की सूचना मिलती है। कुलोत्तुंग - I की रानी की भी (संख्या 27) दूध और *मुदल संधि* (प्रथम प्रसाद अर्पण) असल में *धनिष्ठा* के दिन के लिए भी अनुदान की बात स्पष्ट होती है (संख्या 155)। इसमें *सितकरगंडन - संधि* (संख्या 102 में) और *तिरुमंतिर - तिरुप्पोनकम्* (संख्या 82 में) भी कहा गया है। चाहे कुछ हो, 13 वीं शताब्दी में इन देवदानों से आवश्यकताओं की संपूर्ति में कमी दिखने लगी। इसलिए स्थानत्तार ने आवश्यक सामग्री के लिए भूदान के प्रावधान की माँग रखी। तिरुक्कालत्तिदेव यादवराय ने *स्थानत्तार* की माँग को सहेतुक समझकर पूरे कुडवूर गाँव को दान में दे दिया। यह राजा के 19 वें राज्य वर्ष में (सन् 1209 - 1210 ई.) संपन्न किया गया था (संख्या 81)। यह एक प्रकार से हमेशा के लिए पूर्ण प्रावधान था। कुछ खेत सन् 1254 ई., नं.43 में लिखवाये गये परिलेख में सूचित हैं और *स्थानत्तार* को सौंपे गये हैं। इन परिलेखों द्वारा ही गाँवों के *देवदान* हमारे सामने आये हैं। कुछ पुराने गाँवदान की सूचनाएँ भी मिलती हैं। ये कावेरी नदी के दक्षिण प्रांत में हैं और ये जटावर्मन सुंदरपाण्ड्य - I के समय के हैं। इनको सन् 13 वीं शताब्दी में और पुष्ठ किया गया है। तिरुपति के पास के लगभग आधे दर्जन गाँव, तिरुपति सहित, यादवराय के समय में भगवान के मंदिर को समर्पित किये गये थे। ये समर्पण उस समय के विभिन्न शासकों द्वारा हुआ था।

सघन पर्वत श्रेणियों से युक्त वेङ्कटाचल में जंगली पुष्पों का होना सहज है। लेकिन जंगली फूल आराधना के लिए उपयुक्त नहीं माने जाते हैं। इसी कारण से कुछ भक्तों ने तिरुमल पर पुष्पवनों की व्यवस्था भी की। उन पुष्पवाटिकाओं से फूल चुनकर भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर की नित्य *पूजा* कैंकर्यों के लिए अर्पित किये जाते रहे हैं। नित्य पूजाओं, विशेष पूजाओं और उत्सव संदर्भों के लिए इन वनों के

फूलों का यथावश्यक चयन होता रहा है। संभव है बगीचों के कुछ मालिकों ने उन बगीचों में कुछ *मंटपों* का भी निर्माण किया होगा और बाकी निर्माण अपने आवसों के लिए होंगे। जैसे जैसे उत्सवों की बात उनको आकर्षित करती गयी वैसे वैसे उत्सव मूर्तियों की बात भी विकास पाती गयी। मंटपों में उत्सव मूर्तियों की आराधना भी आरंभ हुई। उत्सव मूर्तियों को अपने *मंटपों* में आमंत्रित करने के कारण उनकी आराधना के अंग के रूप में *''तिरुप्पोनकम्''* (चावल और मूँग दाल को मिलाकर पकाया गया प्रसाद। स्वाद के लिए इसमें नमक और काली मिर्च भी डाला जाता है) का अन्न प्रसाद के रूप में समर्पण भी एक अंग बन गया, *अप्पम* (चावल और गुड मिलाकर घी में तली मिठाई), ये प्रसाद भक्तों में भी वितरित होते रहे हैं। लेकिन इस प्रसाद का अधिकांश भाग मंदिर की व्यवस्था से संबन्धित अधिकारियों तथा कर्मचारियों में ही वितरित होता रहा था। इस वितरण प्रक्रिया को *''तिरुवोलक्कम''* कहा गया है। (*'ओलगम्'* तेलुगु में और *'आस्थानम्' संस्कृत* में प्रचलित शब्द रहे हैं)।

सामवाय के द्वारा आरंभ किये गये दो उत्सवों में *''पुरट्टासि''* उत्सव आज भी मनाया जाता है। *''मार्गळी''* उत्सव अब नहीं चलता है। 13 वीं शती के तृतीय चतुर्थ समय के संख्या 67 परिलेख में भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए *''पुरट्टासि''* उत्सव का उल्लेख है। संख्या 74 एवं संख्या 75 *'पुरट्टासि'* और *''चित्तिरै''* दोनों का उल्लेख मिलता हैं। तिरुवेङ्कटनाथ यादवराय द्वारा एक और नये उत्सव को *''आड़ि''* महीने में संपन्न करवाने की बात भी मिलती है। यह उनके 9 वें राज्य वर्ष में (सन् 1330 ई.) आरंभ किया गया। तदर्थ 'पोंगलूरु' नामक गाँव को *सर्वमान्य* अनुदान के रूप में अर्पित किया गया है। इस सर्वमान्य शब्द का अर्थ यही कि उस गाँव से अर्जित होनेवाले 40 करों (नं.99) का उपयोग भगवान की सेवाओं के लिए ही किया जायेगा। 14 वीं शती के पूर्वार्द्ध तक तीन मुख्य उत्सवों के आयोजन की सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

उक्त तीनों उत्सवों के साथ साथ *''तिरुक्कोडि तिरुनाल''* भी मनाया जाता रहा है। इस अवसर पर *गरुड़* ध्वज फ़हराया जाता है। *वसंतोत्सव* का उल्लेख संख्या 113 में मिलता है। इसका समय सन् 1360 ई. है। यह उत्सव मार्च - अप्रैल में मनाया जाता है (यह वसंत ऋतु का समय भी होता है।) संख्या 168 *''कोदै - तिरुणाल्''* उत्सव की सूचना देता है। यह उत्सव ग्रीष्म ऋतु में (मई-जून) मनाया जाता है।

तिरुपति में विराजमान श्रीगोविंदराज स्वामी का *वैकाशी* उत्सव का उल्लेख संख्या 61 में मिलता है। यह, परिलेख 13 वीं शती के उत्तरार्द्ध से संबन्धित है। वीर नरसिंह यादवराय की रानी से इस उत्सव की व्यवस्था की गयी है। यह *''आणि''* मास में मनाया जाता है। इस उत्सव के लिए एक रथ के

प्रावधान का उल्लेख है। इस कार्यक्रम के निर्वहण के लिए 'पइंडपल्लि' नामक गाँव की आय का आधा हिस्सा देवदान के रूप में प्रस्तुत किया गया। इसी अनुदान के अंतर्गत कूटम् अर्थात् *शिखरम्,* रथ के ऊपर रखने के लिए तथा मंदिर एवं रथ की मरम्मतों के लिए भी प्रावधान हैं। यह, राजा के राज्य वर्ष 30 में (सन् 1235 ई.) संपन्न किया गया है (नं. 86)। ये दोनों उत्सव सन् 17 वीं शती तक चलते रहे हैं। आजकल तो केवल *''वैकाशी''* उत्सव मात्र चलता है।

तिरुपति शहर से एक मील की दूरी पर जल प्रपात है। यह पर्वत से निकलनेवाले प्रवाह का जल प्रपात है। इस जलपात के पास ही श्री कपिलेश्वर स्वामी का मंदिर है। इस मंदिर का निर्माण रायन राजेन्द्र चोळन (ब्रह्ममारायन मुनैयदरैयन् - दूसरा नाम), कोत्तूरु के प्रमुख ने करवाया है। यह गाँव उन दिनों में तिरुपति की उत्तर दिशा में पर्वत तल के पास और तिरुचानूरु की दक्षिण दिशा में था। रायन राजेन्द्र चोळन नाम से यह विदित होता है कि यह व्यक्ति राजेन्द्र चोळ - I के अधीन कार्यरत एक अधिकारी है। ये राजेन्द्र चोळ राजराज - I के पुत्र ही हैं। आपने चोळ साम्राज्य का शासन सन् 1011 से 1044 ई तक किया है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि श्रीकपिलेश्वर स्वामी का मंदिर 11 वीं सदी के उत्तरार्ध में निर्मित हुआ होगा। श्रीकपिलेश्वर स्वामी का लिंग पश्चिमाभिमुखी है। उनकी देवेरी (श्री कामाक्षी देवी) उनके बगल में दक्षिण अभिमुखी हैं। दोनों एक गोल शिलाखण्ड के नीचे विलसित हैं। यह शिलाखण्ड सप्तगिरियों में एक गिरि के पास शोभित है। उसी के पास जंगल के बीच जल प्रपात भी है। (संख्या 20, जिल्द I)।

तिरुचानूर की मुख्य अधिदेवता श्रीपद्मावती देवी है। वे तो स्वयं लक्ष्मी ही हैं। वे अलरमेल-मंगा के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। लेकिन उनका नाम किसी भी परिलेख या अभिलेख में नहीं मिलता। इसी तरह पद्मावती के मंदिर के मुख्य द्वार के सामने उपस्थित श्रीकृष्ण भगवान की मूर्ति का भी उल्लेख नहीं मिलता है। इनका उल्लेख *पद्म - पुराण* में होने की सूचना श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यम् में है। इनकी उपसाना श्रीशुक महर्षि ने की है। इन्ही शुक महर्षि के नाम पर तिरुचानूर के अन्य नाम हुए - शुकपुरी, शुकनूरु, तिरुच्चिकनूरु। अळगिय पेरुमाल का उल्लेख संख्या 34 में है। यह राजराज चोळ - III के 5 वें राज्य वर्ष (सन् 1221 ई.) का है। अळगिय पेरुमाल के लिए प्राचीनतम देवदान है भूमि या गाँव का। उस गाँव के पास की भूमि को समतल कर कृषि योग्य बनाने के लिए पोक्कारन पांडियदरैयन् द्वारा कैक्कोलों (बुनकरों) को दान के रूप में दिया गया है। ये तिरुचानूर के पास रहनेवाले बुनकर हैं। उन्होंने यह कार्यभार स्वीकारा और अळगिय - पेरुमाल के लिए *पंगुणि* उत्सव मनाने का कार्य भार भी स्वीकार किया (पृ.54, 55 और 106 जिल्द I)। संख्या 144 अळगिय-पेरुमाल को अर्पित प्रावधान का उल्लेख करता है। यह प्रावधान गोविंद पेरुमाल और नारायण (शायद यादव नारायण के लिए जो गोविंदराज

स्वामी मंदिर में स्थापित हुए थे) के लिए हुआ होगा। ''तिरुविलन्कोइल'' नाम भी उसमें मिलता है। शायद यह अळगिय - पेरुमाल के लिए बनाया गया हो सकता है।

कुछ आळ्वारों की मूर्तियों की स्थापना भी उस कालावधि में होने की सूचना मिलती है। तिरुमंगौयाळ्वार का उल्लेख सबसे पहले मिलता है। यह संख्या 40 में है जो राजराजचोळ - III के समय का (सन् 1235 ई.) है। उसके अनुसार कुछ ग्रामीण भक्तों द्वारा इस मूर्ति की स्थापना श्रीगोविंदराज स्वामी मंदिर में हुई। ये ग्राम *कुडऊर* ग्राम समूह के हैं। *कुडऊर* गाँव के निवासियों ने कुछ भूमि (खेत) का भी दान दिया है। यह आळ्वार की पूजा तथा निवेदनों के लिए ही था। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए सन् 1333-34 ई. में तिरुवेङ्कटनाथ यादवराय ने पोंगलूरु गाँव को दान में दिया है। सिंगय दण्डनायक ने *स्थानत्तार* (श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर के) को आदेश दिया था कि उक्त अनुदान से प्राप्त वार्षिक राशि का उपयोग स्थानत्तार मात्र आडि मास का उत्सव और *सितकारगंडन्* के लिए तिरुपोनक्कम् (निवेदन) ही नहीं बल्कि वीर - नरसिंग पेरुमाल और तिरुमंगैयाळ्वार के लिए भी हो। *स्थानत्तार* ने उस आदेश का अनुपालन किया (संख्या 102, पृ.105, 108 और 109 जिल्द I)।

उक्त आळवार के बाद हम नम्माळ्वार की ओर दृष्टि दौडाते हैं। नम्माळवार की मूर्ति *कपिलतीर्थम्,* जो जल प्रपात के साथ शोभित होता है, के पास है। यह मूर्ति वानेडुत्तकैयळगियार बनाम पल्लवरायर से स्थापित कराई गयी है। समय सन् 1285-1290 ई. है। (संख्या 57, 58 और 165, पृ.69, जिल्द I)।

कपिलतीर्थम् से पश्चिम दिशा में पर्वत पद तल में तिरुमल पहाड पर चढने के लिए सीढियों का रास्ता आरंभ होता है। वहाँ पेरियाळ्वार की मूर्ति स्थापित है। ये ही आंडाल (गोदादेवी) के पोषक पिता हैं। इनकी मूर्ति की प्रतिष्ठा कब हुई और इसके दाता कौन हैं, इस सबंन्ध में कोई जानकारी नहीं है। इस मंदिर के दीवारों पर दो परिलेख मिलते हैं जिनमें पीने के पानी के लिए खुदवाए गये दो कुओं का उल्लेख मिलता है। ये यात्रियों की सुविधा के लिए ही है। इनमें एक कामवल्लि (संख्या 177, जिल्द I) और दूसरा करवेट्टि - पुलि - आळ्वार मन्नरपिल्लै (उत्तरमेरुर के) द्वारा खुदवाये गये हैं। सीढियाँ भी कुँए में उतरने के लिए बनवाई गयीं हैं। यह *सौम्य* वर्ष 1411, शक संवत में (25, जनवरी, 1490 ई.) हुआ है। यह सालुव नरसिंह के राज्य काल का उपान्त समय है। सालुव नरसिंहराय ने श्रीलक्ष्मीनरसिंह स्वामी के मंदिर के *गोपुरम्* का निर्माण करावाया है। यह गोपुरम् दिसंबर, 1930 में बिजली गिरने के कारण ढह गया है (संख्या 90, जिलद II)। दूसरा कुआँ नये रूप में सन् 1490 ई. में खुदवाया गया हो, वह भी कामवल्लि द्वारा ही खुदवाया गया कुँआ है। यह भी बिजली गिरने से धराशायी गोपुरम् से खराब होने के बाद ही हुआ होगा। लगभग एक शताब्दी के बाद यह कार्य हुआ होगा, शायद 14 वीं शताब्दी के

अंतिम समय में। इन आधारों से यह विदित होता है कि पेरियाळ्वार के मंदिर की दीवारों पर मिलनेवाले परिलेख 14 वीं शताब्दि के मध्यकाल के हों।

उक्त आळ्वारों के साथ साथ वैष्णवाचार्य श्रीरामानुज से संबन्धित कुछ परिलेख उक्त समय के पाप्त होते हैं। संख्या 79-D और 171, 172, 173 तथा 175 के परिलेखों से कुछ सूचनाएँ मात्र मिलती है क्यों कि ये परिलेख कुछ अंशों में खण्डित भी हैं। इनके अनुसार (संख्या 79-D) श्रीरामानुजाचार्य ने *सौम्य* वर्ष में (सन् 1248-49 ई. के) श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में भगवान की पुनः प्रतिष्ठा की। इससे पहले से ही पूजा-पाठ, अन्न प्रसादों आदि से संबन्धित प्रावधान थे। आनन्दाळवान के पौत्र वेङ्कटत्तुरैवार ने भी पुष्पवन की व्यवस्था रामानुज के नाम पर की है। संख्या 89 में हम पाते हैं कि तिरुपति के *श्रीवैष्णवों* ने ज्योति प्रज्ज्वलन और पुष्पमालार्पण के लिए गोविंदराज स्वामी मंदिर के लिए प्रावधान किया है। यह वीर नरसिंह यादवदेवराय के समय 50 वें शासन काल में (सन् 1255 ई.) सपन्न किया गया है। तिरुपति में स्थापित मूर्ति के लिए भूमि के दान की सूचना भी है। श्रीरंगनाथ यादवराय के तीसरे राज्य वर्ष में (सन् 1339-40) सिंचाई की व्यवस्था के लिए एक बडे तालाब खुदवाने 200 *पणम्* श्रीवेङ्कटेश्वर के धनागार को देने की सूचना है।

13 वीं सदी ने तो कुछ वैष्णव आळ्वारों की मूर्तियों की स्थापना देखी और साथ साथ दिव्य *प्रबन्धम्* के कुछ गीतों के आलाप का आरंभ भी। श्रीगोविन्दराज स्वामी के मंदिर में *'तिरुमोळि' प्रबन्धम्* का गान नित्य आराधना के साथ आरंभ हुआ। भगवान के अन्न-प्रसाद के साथ प्रबन्धम् गान का विधान आरंभ किया गया था, 14 वीं और 24 वीं विजय गंडगोपाल के राज्य वर्षें में। समय था सन् 1264 ई. या सन् 1274 ई. (संख्या 61) का। यह *'तिरुमोळि'* आंडाल द्वारा रचित *नाच्चियार तिरुमोळी* ही हो सकता है न कि कुलशेखर आळ्वार, पेरियाळ्वार या तिरुमंगै आळ्वार से। लगभग उसी समय पर आंडाल रचित *''तिरुप्पावै''* गीतों का प्रस्तुतीकरण भी आरंभ हुआ होगा। तिरुप्पावै प्रस्तुतीकरण तिरुमल श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की सन्निधि में होता है। यह *चित्तिरै* और *पुरट्टासि* महीनों में संपन्न किये जानेवाले दो उत्सवों के समय में निर्धारित रूप से संपन्न होता है। श्रीगोविंदराज स्वामी को जो भोग चढ़ता है, उसी प्रकार के भोग की व्यवस्था भी हुई। यह गीतों के गान के साथ होता है (संख्या 74)। तदुपरांत कुछ समय के बाद 14 वीं शती में श्रीरंगरानाथ यादवराय ने *'तिरुवायमोळि'* का भी आरंभ करवाया। 'तिरुवायमोळि' प्रार्थना गीत नम्माळ्वार द्वारा विरचित है। यह गीत-समर्पण (नं.107) भी श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर में होना निश्चित था। इसके साथ साथ विशेष निवेदन का भी प्रावधान किया गया।

इस सबके बाद विशेष ज्योतियों की व्यवस्था, प्रधानतः प्रकाश के लिए, पूजा के लिए फूलों की व्यवस्था तथा अन्न-प्रसादों की व्यवस्था सब मूल विराट की स्थापना के साथ होती रहीं। एक प्रकार से वैभव का आविष्कार भी किया गया। विविध प्रकार के आभरणों और अलंकारों के साथ साथ सौंदर्य तथा मनोहरता में शालीनता उभरने लगी। तत्पश्चात् विविध प्रकार के प्रार्थना मंदिर कक्ष तथा *प्राकार* भी व्यवस्थित हुए। उत्सव मूर्तियों के साथ विविध प्रकार के उत्सवों की व्यवस्याएँ भी शोभा युक्त हुईं। विविध और अनेक प्रकार के वाहनों और रथों का नियमन हो गया। वाद्य यंत्रों के साथ उत्सवों की शोभा बढ़ी। धीरे धीरे बैल, घोडे, हाथी, ऊँट आदि भी उत्सवों के साथ जुडे। इससे तिरुमल पर विराजमान भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर की प्रभावशाली शोभा उद्दीप्त हो गयी। श्रीवेङ्कटेश्वर के उत्सवों का आरंभ लगभग 13 वीं शती में हुआ तो 15 वीं शती से उनमें विस्तार और उनकी शालीनता में बढोत्तरी दिन-प्रतिदिन होती रही। वैभव की दिशा में प्रगति 15 वीं शती तक स्पष्टतः उभर कर दिव्य शोभा से मंडित हो गयी।

मूलविराट स्वामी के अलंकरणों का जहाँ तक संबन्ध है राजकुमारी सामवाय ने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए आभरणों का प्रावधान किया है। मनवालप्पेरुमाल (श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी) को एक *''पट्टम्''* सोने का प्रस्तुत किया है जिसमें 6 लाल रत्न, 4 वज्र और 28 मोती जडे हैं। इसे परान्तकदेवी अम्मण, सुंदर चोळ परांतक II की रानी, ने राजराज चोळ- I के 16 वीं शासन वर्ष में प्रदान किया था (संन् 1001 ई.)। दूसरा आभरण हाथ से संबन्धित है। शायद श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की हथेली को शोभित करनेवाला आभरण ही हो सकता है। इस हथेली को *वैकुंठ हस्त* और *वरदहस्त* भी मानते हैं। यह आगे का दायाँ हाथ है। हाथ नीचे की ओर चरणों की दिशा में संकेत करता विराजित है। इसे होबल यादव, तंजै के राजा, ने 13 वीं या 14 वीं सदी में अर्पित किया है - (संख्या 116 और 117, जिल्द I)।

जब जटावर्मन सुंदर पाण्ड्य - I ने भगवान के *विमान* के लिए सुवर्ण कलश प्रदान किया था तब वह भगवान के अलंकरण का एक दूसरा अंग बना। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए यह ''हेमकलशो-स्थापि'' समर्पण राजा से सन् 1256 ई. में हुआ होगा। राजा ने उस वक्त उत्तर की ओर विजय यात्रा की थी। उन विजयों से राजा के राज्य का विस्तार कृष्णा नदी तक हुआ। शायद यह विजय यात्रा उनके 5 वें और 10 वें राज्य वर्षों के बाद हुई होगी। (संख्या 49 और पृ.67-69, जिल्द I)। लगभग उसी समयान्तराल में वीर नरसिंह यादवराय ने *विमान* को सोने के चद्दर पत्र से मढवाया होगा। इस कार्य के लिए राजा ने अपने ही वजन को तोलकर, उस भार सम सोना मंदिर को अर्पित किया (संख्या 91 और पृ. 104, 105 जिल्द I)।

14 वीं सदी के परिलेखों में कुछ *मठों* के निर्मित होने की बात सामने आती है। ये मठ *सन्यासियों* और एकांतवासियों के लिए थे। तिरुवेङ्कटनाथ यादवराय ने अपने 9 वें राज्य वर्ष में पोंगलूरु गाँव का आधा भाग (करों का भाग) श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को समर्पित किया (सन् 1330-31 ई.)। यस दान *आड़ि* मास में संपन्न होनेवाले उत्सव के लिए और दैनिक संधि (अन्न-प्रसाद, *सितकरगंडन-संधि*) के लिए था। इसे रेचय-दंडनायक के नाम पर सिंगय-दंडनायक ने (सं. 99) प्रारंभ किया तथा पोंगलूर गाँव के स्थानत्तार से उस गाँव की उपज को *आडि* उत्सव में *संधि* (नैवेद्य) के नाम पर श्री वेङ्कटेश्वर को समर्पित करने के लिए प्रार्थना की। यह प्रस्तुति वीर नरसिंह पेरुमाल और तिरुमंगैयाळ्वार की मूर्तियों की आराधाना के लिए भी लक्षित था। ये दोनों मूर्तियाँ तिरुपति में प्रतिष्ठित हैं। इसके साथ साथ *सितकरगंडन्-संधि मठ* में रहनेवाले 32 *श्रीवैष्णवों* के भोजन के लिए व्यवस्था की सूचना उसमें मिलती है। अगर उससे कुछ बचे तो उसका उपयोग पुष्प-वाटिका की सिंचाई और अन्य धार्मिक वितरणों के लिए खर्च करने की दिशा सूचित है (संख्या 102)। संख्या 104 श्रीरंगनाथ यादवराय (सन्. 1339-40) के तीसरे शासन वर्ष से संबन्धित है। इससे हमें विदित होता है कि दो *सितकरगंडन मठ थे* - एक तिरुपति में और दूसरा तिरुमल पर। दो पुष्पवाटिकाएँ भी तिरुमल के मठ के साथ थे - यथा *अरिशाणालयन नंदनवनम्* और *वंशठकोपन नंदवनम्।* ये मठ सिंगय द्वारा कुछ सन्यासियों के अधीन रखे गये। इन *सन्यासियों* में एक प्रमुख एकांतवासी को सौंपा गया जिसने 1000 *पणम्* दिये। उनके निधन के बाद संपत्तियाँ पुनः सिंगराय के पास चली गयीं। उसके बाद सिंगराय की अनुमति से एक और *एकांतवासी* को 400 *पणम्* मंदिर के खजाने में अदा करने पर अंतरित हुई हैं। इन परिदानों को स्वीकार कर एकांतवासी को (*शियर* या *जियर*) उत्सव मूर्तियों के लिए आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था करनी है। उत्सव दिनों में चौथे दिन की व्यवस्था (अन्न प्रसाद आदि) तथा आखेट उत्सव की व्यवस्था करनी है। दो पुष्प वाटिकाओं में रहते हुए उन्हें निभाना भी है। साथ साथ यह भी सूचना मिलती है कि उन *मठों* की आमदनी से कुछ आभूषण भी बनाकर भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को अलंकृत किया गया (संख्या 162)। इस मठ में रहनेवाले *सन्यासी* (जीयर स्वामी) को मंदिर की कुछ सेवाएँ भी संपन्न कराना है। इस प्रकार सिंगय दंडनायक द्वारा स्थापित *सितकरगंडन मठ* का संबन्ध भी जीयर (या) जीयंगार स्वामी से जुडता है। इस स्वामी का श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान और श्रीगोविंदराज स्वामी मंदिर से संबन्धित सेवाओं के संबन्ध की परंपरा भी जुडती मिलती है।

* * *

अध्याय - 17
विजयनगर साम्राज्य का आरंभिक काल

यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर के अनेक पक्षों और क्रिया-कलापों का एक स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करनेवाला समय है। विजय राज्य की पहली छवि ईसा के बाद की चौदहवीं सदी के मध्य से मिलती है। 7 वीं सदी से संगम वंश के प्रथम राजाओं का पक्ष मिलता है। धीरे धीरे *संगम* वंश के राजाओं का प्रभाव विस्तृत होता हुआ मिलता है।

संगम राजवंशियों का प्रथम परिलेख हमें बुक्क राय-I (सन् 1355-1377 ई.) के समय का प्राप्त होता है। इसमें तिरुवेङ्कटमुडैयान को एक गाँव के देवदान का उल्लेख मिलता है। हर दिन 2 *तिरुप्पोनकम्* भगवान को अर्पित करने के लिए यह प्रदान किया गया। इस परिलेख के खंडित रूप में होने के फलस्वरूप उसका काल और उस गाँव का नाम मिल नहीं पा रहे हैं (संख्या 178 जिल्द - I)। शायद यह चढाव *''बुक्करायन संधि''* (नं.219 और 225) ही हो।

18 जनवरी, 1388 ई. के *प्रभव* नाम संवत्सर में *अरिशानालैयम्* पुष्पवाटिका और *मठम्* के अधिकारी मुल्लै तिरुवेङ्कट जीयर ने 100 *पणम्* से प्राप्त आमदनी से, जो पुंगोडु गाँव से प्राप्त हुआ था, एक उत्सव का आरंभ किया। यह *मासि* महीने में विजयनगर साम्राज्य के सम्राट हरिहर - II के नाम पर संपन्न किया गया था (सन् 1377 - 1404 ई.)। इस राशि को समुन्नत बनाने का प्रयास सन् 1390 के जून मास में किया गया है। यह एक और 100 *पणों* की राशि है। इससे आवश्यक सामग्री और वस्तुएँ प्राप्त की गयी हैं (संख्या 185 और संख्या 186 जिल्द - I तथा संख्या 83 जिल्द - II)।

देवराय - II ने (सन् 1423-1446) पहली बार भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर का दर्शन किया है। यह 5 दिसंबर 1429 ई. में हुआ। उन्होंने भगवन को तीन गाँवो का दान दिया - इनमें विक्रमादित्य मंगलम्, एलमंडिय (चिरुकूरकालु सहित) - ये दोनों गाँव *राज - भंडार* से संबन्धित हैं और चन्द्रगिरि राज्यकोष से जुडे हैं तथा कलरु विड्डाले गाँव, पहले अन्यत्र दिया गया ग्राम है। इस देवदान के साथ साथ 2200 स्वर्ण *वराह* मुद्राएँ भी प्रदान की है। यह दान 30 थालियों का पका अन्न प्रसाद तथा एक थाली भर *पायसम्* (पका चावल, दूध, शक्कर और इलायची आदि से युक्त) एवं एक थाली भर *अप्पम्* (मीठा पदार्थ) के लिए था। कुल मिलाकर 33 थालियाँ (गंध बिलाव - पुनुगु सुगंध से युक्त दो कटोरियाँ) युक्त अर्पण के लिए। गंध - पुनुगु (बिलाव) तैल भगवन श्रीवेङ्कटेश्वर की मूर्ति पर लेपन के लिए था। *आश्वयुज* मास में संपन्न होनेवाले 9 दिन पर्यन्त उत्सव के लिए भी प्रावधान राजा ने किया था। यह उत्सव सितंबर - अक्तूबर महीनों में चलता है। उस समय *पुनर्वसु* नक्षत्र से लेकर स्वाति नक्षत्र के बीच तक उत्सव संपन्न होता है। अंतिम दिन *तीर्थवारि* (पवित्र) स्नान की व्यवस्था भी थी। उक्त तीनों देवदान

देवराय द्वारा पवित्र जल तर्पण तथा सुवर्ण दान के साथ हरि (विष्णु) को उत्थान द्वादशी पर दिये गये हैं। मान्यता है कि उत्थान द्वादशी के दिन पर भगवान विष्णु सृष्टि संरक्षण कार्य संपन्न करने जागते हैं। भगवान का शयन काल चार महीनों का होता है - आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया से *आषाढ* कृष्ण पक्ष (जून-जुलाई) तथा *कार्तिक* के शुक्ल पक्ष तक (अक्तूबर - नवंबर तक) का समय है। परिलेख के अनुसार यह 8 नवंबर, 1429 ई. ठहरता है (संख्या 192)।

देवराय - II के एक सैनिक पदाधिकारी तेप्पड़ नागेय नायक, मुद्देय नायक के पुत्र, ने भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर का दर्शन किया। यह दुंधुभि नाम संवत्सर (शक संवत्सर 1364) में हुआ था। यह वर्ष 12, जनवरी सन् 1443 ई. में संपन्न हुआ था। उन्होंने 3000 *होन्नु* (*पोन्नु* = स्वर्ण मुद्राएँ) भगवान के लिए अर्पण *(कानिके)* किया था, तथा 100 स्वर्ण मुद्राएँ *'अमृतपडि'* (पवित्र प्रसादम्) अर्पण के लिए था। इस अर्पण से चार फूल मालाएँ तथा आठ विविध प्रकार के वस्तु का भगवान के लिए समर्पण का प्रावधान था। 3000 सुवर्ण मुद्राओं के समर्पण में तीन छोटी थालियों को बनाकर भगवान को अर्पित करने का प्रावधान भी सूचित है (संख्या 209)।

अमात्यशेखर (मुख्य मंत्री) मल्लना (मल्लंडैयार - अन्य नाम माधवदास) उस समय चन्द्रगिरि राज्य के गवर्नर थे। ये देवरसर के पुत्र और गोपीनाथय्या के शिष्य थे। उन्होंने अविलाला ग्राम के तालाब की नाली का पुनरुद्धार कराया। इससे 5000 *कुली* की भूमि की सिंचाई होती रही। ऊबड - खाबड जमीन को समतल भी बनाया था। इससे भूमि उपजाऊ बनी। इन आमदनियों से हर दिन एक *तिरुप्पोनकम* का निवेदन भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को सुलभतर हो गया। इतना ही नहीं उन्होंने अन्न प्रसाद समर्पण के लिए 82 गायों का देवदान भी दिया। उन्होंने गर्भालय में ज्योति प्रज्ज्वलन की व्यवस्था भी की। यह शकसंवत्सर 1330 (सन् 13-3-1409 ई.) में घटित हुआ था (संख्या 194)। एक छोटे *संस्कृत श्लोक* (संख्या 195) में उक्त दोनों मल्लना के समर्पण - *नैवेद्यम्* और *नित्यदीपम्* - उल्लिखित हैं। मल्लना ने चार विजयनगर राजाओं के यहाँ अपनी सेवाएँ संपन्न की - बुक्क देवराय - I से देवराय II तक (Dev. Epi रिपोर्ट, पृ.134-135) फिर शक संवत्सर 1366 में (सन् 2-10-1444 ई.) उन्होंने पाडि गाँव के एक तालाब से संबद्ध नाली का पुनरुद्धार कराया था। इस से पुनः फसल की वृद्धि हुई। उससे दो *संधि* प्रसादों की उन्होंने अतिरिक्त व्यवस्था करायी। इसी बीच उन्होंने शक संवत्सर 1339 में *तिरु-महामणि-मंटपम्* का निर्माण कराया (यह गर्भगृह के सामने स्थित खुला मंडप है)। इनका समग्र समर्पण भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को 25, आगस्त 1417 ई. में हुआ था (संख्या 196)। एक खण्डित परिलेख (संख्या 198) में असमग्र (खंडित) शब्दों से सूचनाएँ मिलती हैं - 'शिष्य होते हुए', 'श्री माधवदासर' *'आनंद विमानम्'* 'संपन्न किया' *'पणम्'।* इनसे यही सूचित होता है कि मल्लना ने *'आनंद विमान'* से संबन्धित कुछ कार्य

संपन्न कराया है। आनंद विमानम् से संबन्धित कुछ समुद्धरण कार्य और सोने का आलेपन हुआ होगा। पहली बार इसी समय में हम *'विमानम्'* को ''आनंद-विमानम्'' नाम से संबोधित पाते हैं।

पेरि मल्लयदेव महाराज ने 1000 *पणम्* का देवदान दिया है जिससे एक *तिरुप्पोनकम्* समर्पण का प्रवाधान हो सका है। पेरिमल्लयदेव महाराज एर्रकंपय देव महाराज के सुपुत्र थे। उनको सालुव वंशीय राजाओं के लिए प्राप्त *विरुदाली* भी मिली है - जैसे श्रीमान महामंडलेश्वर, मेदिनी मीसरगंड और कठारि सालुव। उनके द्वारा समर्पण शक संवत्सर 1368 (10 अक्तूबर 1446 ई., सं. 210) में हुआ है। (पृ.137-138 Dev. Epi रिपोर्ट)।

शक संवत्सर 1372 में (31, अगस्त 1450 ई.) एक और चालुक्य प्रधान मलगंगयदेव महाराज के पुत्र सिरुमल्लैयदेव महाराज ने 1200 *नर्पणम्* समर्पित किया था। यह भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए एक *'तिरुप्पोनकम्' प्रसाद* समर्पण के लिए था जो उस रकम की ब्याज से संपन्न होता था। इन सब दानों के दाता हर रोज अपना ¼ भाग प्रसाद ले जा नहीं पाते थे। *रायर-संधि* प्रसाद सहित सब *प्रसाद* मंदिर के अधिकारियों और सेवकों में वितरित होते रहे थो रायर-संधि प्रसाद बुक्कराय - I से (संख्या 178) प्रदान किया गया था। उस समय से दाता के निमित्त अंश प्रसाद मंदिर के अधिकारियों एवं सेवकों में ही बाँटा जाता रहा है, कुछ अंश भक्त यात्रियों को भी (संख्या 128)। मिलता था।

एमपेरुमानार जीयर जो मंदिर के ''कोइल केळ्विव'' (मंदिर के प्रबंधक) हैं *पंकयचेल्लि - तिरुनंदवनम्* और *मठ* दोनों के स्वामी और प्रबंधक थे। ये तिरुमल में ही थे। उन्होंने शक संवत्सर 1367 में 2000 *नर्पणम्* मंदिर के भंडार के लिए अर्पित किये। यह समर्णण शक संवत्सर 1367 में (13 दिसंबर, 1445 ई.) 2 *तिरुप्पोनकम्* प्रसाद के लिए था जो भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को हर दिन समर्पित होता है। यह *''बुक्करायन - संधि''* कहलाता है। यहीं पर हम पहली बार *''कोइल केळ्विव''* का उल्लेख पाते हैं और साथ साथ फुलवारी के मालिक और *मठ* के मुखिया होने की सूचना भी (संख्या 129)। ये *स्थानत्तार* सदस्यों में भी एक थे।

उक्त एमपेरुमानार जीयर ने आगे भी कुछ धन निक्षेपों की व्यवस्था *श्रीभंडारम्* के लिए की है। ये कुछ प्रायश्चित्तार्थ हैं तो अधिक उत्सव मूर्तियों के लिए और *पुष्पयागम्* के लिए थे। (उत्सवों के 10 वें दिन पर मूल विराट भी फूलों से सजाये और पूजे जाते हैं)। पुष्पयागम् जीयर की पुष्पवाटिका में संपन्न होता है - सात दिनों की उत्सव मूर्तियों को भी फूलों से सजाया जाता है। *गरुड* ध्वज की स्थापना भी होती है। उत्सव *पंगुणि* मास में श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए मनाया जाता है और गोविंदराज स्वामी का तिरुपति में *''विडायर्रि''* (विश्राम - उत्सवों के बाद 9 वें दिन से); *वैकाशी* और *आणि* उत्सव भी। तदर्थ 1000 *पणम्* की देय राशि अनुदानित है (17 फरवरी 1446 ई. में) (संख्या 220)। अंकुरार्पण उत्सव

(उत्सव के आरंभिक दिन पर) प्रधानतः तिरुमल के सात उत्सव दिनों तथा तिरुपति के 2 उत्सव 1000 *नर्पणम्* के देवदान से होते हैं (यह 27 जून 1446 ई. में प्रदान किया गया) (संख्या 221)। एक तीसरी धनराशि 1000 *पणम्* की भी समर्पण की सूचना मिलती है। यह *कैयारचक्रम्*[1] (सुदर्शन चक्र) के संदर्भ में विशेष रूप से पवित्र मिट्टी और बीज लाकर बोने के उत्सव के लिए (बीजारोपण) धन राशि का दान है। (17 जुलाई 1447 ई.) (संख्या 222)। उन्होंने अंतिम भुगतान 5000 *पणम्* शक संवत्सर 1378 में किया है (21 फरवरी 1457 ई.)। यह *तिरुक्कनामाडै* दान रात्रि समय में हर दिन गोविंदराज स्वामी के लिए प्रसाद समर्पण के लिए था (संख्या 223)। इस राशि के साथ अविलाला तालाब को खुदवाने के लिए एक गाँव का दान भी मंदिर को प्रस्तुत किया गया।

संख्या 220 में निवेदित प्रसाद की पद्धति का विवरण सूचित है। पूर्व परिलेखों में आदेश है कि दाता को ¼ अंश मिलना है, लेकिन निवेदित *प्रसाद* का ¾ अंश किस प्रकार वितरित हो, इसका कोई निर्देश नहीं है। लेकिन इस परिलेख में एक निर्देश अवश्य मिलता है। उसके अनुसार 24 *नाळि* (एक माप) के प्रसाद में से 4 *नाळि प्रसाद* को *एकाकी - श्रीवैष्णवों* में वितरित होना है। ये एकाकी वैष्णव *पंकयसच्चेल्लि* उद्यान का निर्वहण भार वहन करते हुए उसी में निर्मित *मठ* में रहते हैं। 12 *नाळि* निर्वाहम् (भाग) *स्थानत्तार* (मंदिर के कार्यक्रमों के निर्वाहक) को मिलना भी निर्देशित है। बाकी चार नाळि प्रसादम्, एक नाळि *अक्कालि प्रसादम्* और 7 *अप्प - प्रसादम् 'तिरुवायमोळि'* पाठ करनेवाले *श्रीवैष्णवों* में वितरित होना है। यह *तिरुवायमोळि* पाठ *मंटपम्* में संपन्न होता है। इस तरह 4 + 12 + 8 = 24 *नाळि* प्रसादम (का विवरण) होता है। दाताओं के लिए निर्देशित प्रसादम् के भाग, अक्कालि - प्रसादम्, एक छोटा सा हिस्सा एमपेरुमानडियार (देवदासियों) को और एक और हिस्सा तिरुवकम्पडि - कैक्कोलरों (बुनकरों) को, जो मंदिर की सेवा करते थे, दिया जाता है। इस सब के बाद दाता के लिए 4 *नाळि* और 7 *अप्पम* का थोडा अंश बचता है। उसे दाता स्वीकार करता है।

दाता का *अप्प-प्रसादम्* का चौथा भाग जो बचता है उसे 14 बताया गया है। लेकिन वास्तव में वह 13 ही है। क्योंकि *अप्पम्* और अन्य *'पण्यारम्'* (प्रसाद के अन्य प्रकार) कुल मिलाकर 52 हैं। ये श्रीगोविंदराज स्वामी मंदिर में सबमें बाँटे जाते हैं। इसमें दाता का भागांशा 24 नाळि हैं। 8 नाळि और *मठशेष - प्रसादम्* और 2 *नाळि अक्कालि प्रसादम्* और 13 *अप्प-प्रसादम्* है।

कोइल - केळ्विव एमपेरुमानार जीयर तिरुमल पर 7 उत्सवों और तिरुपति के दो उत्सवों की व्यवस्थाएँ देखते हैं। इसके साथ साथ ये प्रायच्चित्तिक मंदिरों के रूप में निर्देशित *पेरियपेरुमाल* प्रसाद

---

1. यह और उपर्युक्त बीजारोपण, एक ही संदर्भ से संबद्ध हैं, लेकिन यहाँ इन्हें अलग-अलग संदर्भ के रूप में व्यक्त किया गया है। एक भोग पहले और दूसरा चढ़ाव उसी दिन को बाद में समर्पित होते हैं।

और *तिरुवीर्रिरुंड-पेरुमाल* को *'मात्रै'* प्रसाद (नमक रहित दही - भात) अर्पित करते हैं। ये दूसरे भगवान मूल विराट भगवान है जो गर्भगृह में रहते हैं। यह स्पष्ट निर्देशित नहीं हैं कौन देवता कम महत्व के (प्रायश्चित्त देवता) (नं. 220 और 221) हैं। संख्या 184 में अळगप्पिरानार तिरुक्कालिकन्निदासर, जो *स्थानत्तार* भी थे, ने एक *पेरुमाल* को (नाम मिट गया) दान दिया था। उन्होंने श्रीवराह नायनार (श्री वराह स्वामी को) को भी दान दिया था। श्रीवराह स्वामी स्वामिपुष्करिणी तट पर विलसित भगवान हैं जो पेरिय पेरुमाल (वेङ्कटेश्वर स्वामी की मूलमूर्त्ति) के बगल में स्थित हैं। (तिरुमल पर विलसे वराह स्वामी का उल्लेख मिलनेवाला प्रप्रथम परिलेख यही है।) यह परिलेख शक संवत 1301 (13 जनवरी 1380 ई.) का है।

संख्या 187 में ऊपर स्पष्ट किये गये 12 *निर्वाहम्* का वैय्यक्तिक धरातल पर श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर के *स्थानत्तारों* में विभाजन की सूचना मिलती है। उसमें उल्लिखित है कि 11 *नाळि* का *प्रसादम्* मुल्लै तिरुवेङ्कट जीयर को मिलता है जो *अरिशानालैयन् - तिरुनंदनवनम्* और *मठम्* के अधिपति और *प्रसादम* के दाता हैं। यह उनके द्वारा आदेशित है और *स्थानत्तार* की हैसियत से वे उसे स्वीकारते हैं। 4 *निर्वाहम्* तिरुपति के श्रीवैष्णवों के लिए हैं। 3 *निर्वाहम्* तिरुच्चुकनूर के सभैयार को दिये जाते हैं। एक *निर्वाहम्* नंबिमार (अर्चकों को) को, 2 *निर्वाहम् कोइल - केळ्कुम् जीयरों* को, 2 *निर्वाहम् कोइल - कणक्कु - तिरुनिन्रयूर - उडैयार* को मिलते हैं। ये संख्याएँ तिरुपति श्रीवैष्णवों से संबन्धित 4 व्यक्तियों के सूचक है। 3 व्यक्ति तिरुचानूर के सभैयार के सदस्य, एक मंदिर के अर्चक, शायद अर्चकों का मुखिया, 2 कोइलकेळ्कुम् जीयर (बडे जीयर और छोटे जीयर) और 2 मंदिर के लेखापाल, तिरुनिन्र - ऊर के (जहाँ लक्ष्मी देवी रहती है) हैं। यह गाँव आधुनिक समय का तिन्ननूर है जो तिरुवल्लूर के पास है। तिरुवल्लूर भी अरक्कोणम् और मद्रास रेल्वे लाइन के बीच ठहरता है। चिन्न जीयर, जो मंदिर के *धर्मकर्ता* (प्रबंधक) भी हैं, ने श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर के स्थानत्तार (मेनेजमेंट कमिटी) की स्थापना की है।

तिरुमल पर पापनाशनम् जलप्रपात के पास रहनेवाले एक श्रीरामदास नामक भक्त ने 1000 *पणम्* का दान दिया। यह शक संवत्सर 1376 में (7 जुलाई 1454 ई.) हुआ है। श्रीरामदास के नाम पर एक *तिरुप्पोनकम्* प्रसाद रोज समर्पित होने के लिए यह देवदान प्रस्तुत किया गया है (संख्या 225 और संख्या 226)। इतना ही उन्होंने अच्छी गायें और आभरण भी दिये (संख्या 227)। संख्या 221 में एक करुणाकरदास का उल्लेख है। ये तिरुपति के शत्ताड - श्रीवैष्णवों में एक है। साधारणतया *शत्ताड श्रीवैष्णवों* को *सातानी* या *दास नंबी* कहते हैं। ये मंदिर में भगवान के लिए फूल मालाएँ बनाते हैं। इन्होंने 100 *पोन* (सुवर्ण मुद्राएँ, शायद *वरहा*) दान में दिये हैं। यह शक संवत्सर 1364 में (29 जून 1442 ई.) संपन्न किया गया। इसके अनुसार एक *तिरुप्पोनकम्* प्रसाद रोज श्रीगोविंदराज स्वामी को अर्पित होना है। इसी प्रकार तेप्पड नागेय नायक ने भी 100 *होन्नु* या पोन का समर्पण किया है। यह भी शक संवत्सर

1364 में (12 जनवरी 1443 ई.) दिया गया है। यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए देवदान है (संख्या 209)। 100 स्वर्ण मुद्राएँ लगभग 1000 *पणम्* या *नर्पणम्* के सम होंगे। यह देवदान कुछ अन्य भक्तों द्वारा *तिरुप्पोनकम्* के लिए समर्पित किया गया है। यह भी श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए ही है।

पेरुमाल बनाम *कोल्लिकावलिदासर* ने 1000 पणम् का देवदान शक संवत्सर 1308 में (24 फरवरी 1387 ई.) दिया था। यह एक *तिरुप्पोनकम्* प्रतिदिन गोविंदराज को समर्पण के लिए निवेदित है (संख्या 228)।

इस काल के बीच इस प्रकार श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज स्वामी के लिए प्रसाद प्रावधानों की संख्या अनुदिन बढती मिलती है।

तिरुक्कोड़ि - तिरुनाल तो वर्ष में तीन या चार बार मनाये जाते थे। इस संदर्भ में गरुड ध्वज का फ़हराना भी होता था। ये उत्सव *पुरट्टासि, चित्तिरै, आड़ि* और *मार्गळि महीनों* में मनाये जाने की सूचनाएँ मिलती हैं। इनमें मार्गळि उत्सव का प्रावधान तो राजकुमारी सामवाय ने ही किया था। विजयनगर राजवंश के स्थापित होने के साथ साथ दो और नये उत्सव भी इनसे जुडे हैं। उनमें एक मासी महीने में हरिहर राय II के नाम पर मुल्लै तिरुवेङ्कट जीयर द्वारा जनवरी 1388 ई. में (संख्या 185 एवं संख्या 186) और एक *आश्वयुज* महीने में देवराय - II स्वयं भगवान के दर्शनार्थ 5 दिसंबर 1429 ई. को आये और 2200 वरहों का मूल धन निक्षेपति किया है। उनके आदेश के अनुसार यह उत्सव पुनर्वसु नक्षत्र से आरंभ होकर स्वाति नक्षत्र तक मनाना निर्धारित है (संख्या 192)। *आश्वयुज* (आश्वीज या अगहन) महीना *तमिल* मास पुरट्टासि से मिलता है। वास्तविक रूप में उत्सव का आरंभ श्रवणा नक्षत्र में होता है, *आश्वयुज* मास शुक्ल पक्ष में। इससे यह स्पष्ट होता है कि देवराय - II के द्वारा आरंभ किया गया उत्सव पुनर्वसु नक्षत्र का है, अतः वह आश्वयुज मास के कृष्ण पक्ष में चलाया गया है। इस प्रकार उत्सवों की संख्या 5 या 6 हो गयी। कुछ परिलेखों से 7 उत्सवों को मनाने का उल्लेख भी मिलता है। ये सात उत्सव श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान से संबन्धित हैं। वैकाशी और आणि उत्सव तो श्री गोविंदराज स्वामी से संबन्धित हैं। कुल मिलाकर 9 उत्सवों का उल्लेख हमें मिलता है (संख्या 213, 215 और 220)। संख्या 215 तो 7 उत्सवों की गिनती देता है। ये *आड़ि* मास से आरंभ होकर *चित्तिरै* मास तक चलनेवाले 7 उत्सवों का उल्लेख करता है। लेकिन दाताओं द्वारा संपन्न होनेवाले उत्सवों का आरंभ *पंगुणि* उत्सव से होने की बात हमारे सामने उठाता है। लेकिन किसी भी परिलेख (अभिलेख) में वास्तविक धरातल पर ये उत्सव कब मनाये जाते हैं, इस का कोई सही संकेत नहीं है। संभवतः *आड़ि, पुरट्टासि* 2 उत्सव *मार्गळि* में, मासि, *पंगुणि* और *चित्तिरै* महीनों में 5 उत्सव - कुल मिलाकर 7 उत्सव श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान से संबन्धित हैं। वैकाशी और *आणि* महीनों में संपन्न किये जानेवाले उत्सव श्रीगोविंदराज स्वामी से संबन्धित उत्सव हैं।

इन उत्सवों के लिए दाताओं ने, जिन्होंने इनका आरंभ किया था, मूल विराट के लिए भी प्रसाद संमर्पण के लिए प्रावधान अवश्य किया था। ये प्रावधान उत्सव मूर्तियों को मिलाकर थे। उत्सव मूर्तियों के लिए *मंटपों* की व्यवस्था पुष्पवाटिकाओं में हुई। यह व्यवस्था उत्सव दिनों, 9 या 10 दिनों के लिए विशेष रूप से थी।

मूलविराट *(मूल मूर्ति)* तथा ऊपर उल्लिखित सात उत्सवों के अलवा कुछ अन्य संदर्भों के लिए भी कुछ दाताओं ने देवदान प्रस्तुत किये। तिरुपति के *श्रीवैष्णवों* में एक मुदलियार तिरुक्कलि-कन्निदासर अळगप्पिरानार ने जो तिरुमल के *स्थानत्तार* भी थे, 4000 नार्पणम् का दान तिरुवेङ्कटम् - उडैयान के लिए शक संवत्सर 1356 में (सन् जुलाई 1434 ई.) में दिया था। यह समर्पण भगवान को *संधि* समर्पण के रूप में था। इससे मिलनेवाली आमदनी से (सूद से) *दक्षिणायन* काल में निवेदन प्रस्तुत करते हैं। ये *आड़ि* मास के आरंभ से लेकर *मार्गळि* मास के अंत तक संपन्न किये जाते हैं। ये समर्पण 6 महीने पर्यन्त चलते हैं (15 जुलाई से लेकर 15 जनवरी तक)। यह प्रातःकाल संधि के रूप में मनाया जाता है। इसमें गंधबिलाव से प्राप्त सुगंध पदार्थ का भगवान की मूर्ति पर लेपन और कर्पूर नीराजन आदि उदयकालिक सेवाएँ संपन्न होती हैं (सं. 207)।

चार अन्य दाताओं ने भी 400 *चक्र - पणम्* का देवदान समर्पण किया है। यह शक संवत्सर 1367 में (13 दिसंबर 1445 ई. में) हुआ है। यह देवदान उत्तर-पडि सेवा श्रीगोविंदराजप्पेरुमाल के लिए तथा *रोहिणी पडि* श्रीकृष्ण के लिए था। उत्तरा और रोहिणी दो नक्षत्र हैं और हर महीने के संदर्भ में यह समर्पण होता है। इसके साथ साथ एक *तिरुक्कणामडै* गोविंदराज के लिए था, जो *तिरुप्पल्लि - एळुच्चि* के रूप में मार्गळि मास में 30 दिनों की सेवा होती है (संख्या 212)।

मुल्लै तिरुवेङ्कट जीयर ने शक संवत्सर 1312 में (8 दिसंबर, 1390) 1200 *पणम्* का एक निवेश समर्पित किया है। यह *तिरुवोलक्कम्* निवेदन के लिए था। यह *तिरुप्पावै* गान के लिए था। यह *मार्गळि मास* में 10 दिनों के समय में हर रोज निवेदन के लिए उत्सव मूर्तियों के लिए हैं - मलै-किनियनिन्र-पेरुमाल और नाच्चिमारों के लिए है जो तिरुमल उत्सवों में उत्सव मूर्तियाँ हैं। यह एक *अप्प-पड़ि* और एक *तिरुक्कनामडै* सात्तुमुरै (अंतिम) दिन के लिए समर्पित हैं। इतना ही नहीं इस अनुदान का उपयोग *तिरुप्पावै* गान के दस दिनों में गोविंदराज स्वामी के लिए भी है। यह *मार्गळि* मास में *अध्ययनोत्सव* के संदर्भ में संपन्न होता है (संख्या 187)। इससे यह भी सूचित होता है कि दोनों मंदिरों में *अध्ययनोत्सवम्* मात्र दस दिन का उत्सव है।

आत्रेय गोत्रज सायन्नगल के पुत्र और शांतप्प नागप्पनन् के छोटे भाई गिरिदेवप्पगल ने तिरुमल के लक्ष्मी-नारसिंहन्-मंटपम् और नंदनवनम् के लिए 600 पणम् मंदिर में अर्पित किये। यह शक संवत्

1326 (18 दिसंबर 1404 ई. में) हुआ था। इसके अनुसार एक अप्प-पड़ि का निवेदन हर उत्सव के सातवें दिन में निवेदित करना था। इतना हीं नहीं एक तिरुवोलक्कच्चिरपु को कोडै-तिरुणाल् में उत्सव मूर्तियों को मंटपम् (सं. 191) के पास अर्पित भी करना था।

श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर में पता नहीं कुछ कारणों से वेदपारायणम् कुछ दिन (वेदों का गान = नडवादिरुंडपडि-आले) रुक गया था। वैसे तो अन्य तिरुवेङ्कटमुडैयान की अन्य पूजा विधियों का चलना बराबर रहा है। मुदलियार तिरुक्कलिकन्रि दासर अळगप्पिरानार को यह ठीक नहीं लगा। वे तिरुमल के स्थानत्तार भी थे। इस दिशा में उन्होंने सक्रिय कदम उठाया। उन्होंने इस संबन्ध में उडैयार देवन्न-उडैयार से प्रार्थना की किवेवेद-पाठ का आरंभ करवायें। वे चन्द्रगिरि प्रान्त के अधिकारी (गवर्नर) थे। उस समय देवराय महाराय (देवराय II) विजयनगर के राजा थे। उन्होंने सिद्धकुट्टै गाँव (बनाम श्रीनिवास पुरम्) का आधा हिस्सा तदर्थ देवदान में देने की मंजूरी दी। यह श्रीनिवासपुरम् कोट्टाल स्थलम् चंद्रगिरि के पास वैकुंठ-वलनाडु में है। यह देवदानम् *राजभंडारम्* का था और यह *श्रोत्रियम् (वेदविदों* और *वेद पंडितों)* के लिए दिया गया। ये मंदिर के 24 *'महाजनम्'* हैं, वेदपाठ करनेवाले पंडित हैं। इस तरह वेदपारायणम् का पुनः आरंभ हो गया। 24 *वेदपारायण* विद्वानों ने इस अर्द्ध गाँव की आमदनी को अपने लिए अपूर्ण समझा और पूरे गाँव की आमदनी की प्रार्थना रखी। उस अर्द्ध गाँव की आमदनी 200 पणम् थी। यह आधा गाँव भगवान के मंदिर को प्रदत्त था। वैदिकों का निवेदन इस लिए मंदिर के *स्थानत्तार* से था। मंदिर भी इस आमदनी को खोने की स्थिति में नहीं था। परिणामस्वरूप इस कमी को और तरीखों से पूरना था। कलिकन्ड्रिदासर ने श्रीभंडारम् से संबंधित आधे गाँव को तो ले लिया, पर एक शर्त पर। भगवान के लिए उन्हें 200 *पणम्* देने थे। इसके लिए उन्होंने पुनः गाँववालों से कुछ पणम् दान के लिए प्रार्थना की। आसपास के गाँववालों की सहायता से 200 *पणम्* वार्षिक अनुदान देने का निर्णय हो गया। हर गाँव से 5 से लेकर 21 वार्षिक *पणम्* तक देवदान का निश्चय हो गया। *तिरुविडैयाट्टम्* के निवासियों ने, लगभग 16 परिवारवालों ने, गाँव के अधिकारियों तथा और दो *नाडु* (समूह) के अधिकारियों के बीच एक सहमति भी हो गयी। *तिरुक्कुडऊर*-नाडु और वैकुंड-वलनाडु वासियों की यह सहमति रजिस्टर की गयी। उन गाँवों के नामों के साथ रकम भी दर्ज हो गयी। तदुपरान्त स्थानत्तार ने सिद्धकुट्टै गाँव, जो *श्रीभंडारम्* के अधीन था, उसके अर्द्ध भागांश के 24 *महाजनम्* के लिए निर्देशित कर दिया। इस प्रकार *वेद पारायण* की श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर में व्यवस्था हो गयी। इससे हर महीने दो वेद पंडित मंदिर में *वेदपारायणम्* संपन्न करेंगे, अर्थात् 12 महीनों के लिए 24 की व्यवस्था हो गयी। तिरुकलिकन्ड्रिदासर के अविश्रांत प्रयत्नों के फलस्वरूप श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर में वेदपारायण की भी व्यवस्था पुनः स्थापित हो गयी। अनेक प्रकार के आदान - प्रदानों की सूचना संख्या 199 से संख्या 203 के परिलेखों से प्राप्त होती है। ये सारी बातें शक संवत्सर 1355 में (संख्या

201 में 22 नवंबर 1433 ई. में) संपन्न हुई। संख्या 201 *शिलालेख* में गाँव के अधिकारियों का शपथ भी उल्लिखित है। *उत्थान - एकादशी* के दिन पर (सन् 25 अक्तूबर 1433 ई. में) यह कार्य संपन्न किया गया। संख्या 202 में हर गाँव का देव पणम् निर्धारण भी मिलता है (23 नवंबर 1433 ई.)। संख्या 200 और 203 में अर्द्ध गाँव, जो *श्रीभंडारम्* का था, का भी स्थानत्तार द्वारा 24 महाजनम् को अर्पित करने की बात उल्लिखित है, लेकिन तारीख स्पष्ट नहीं है।

इतना सब कुछ होने के बावजूद स्थानत्तर और अन्य लोगों ने *वेदपारायणम्* की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। वेद पाठ करनेवाले पंडित भक्तों को प्रसाद वितरित करने की दिशा में ध्यान नहीं दिया। जो आदर सत्कार *तिरुवायमोळि* गीत गायकों में *प्रसाद* वितरण से दिखाया गया है (कोइल केल्वि एमपेरुमानार जीयर द्वारा - सं. 220), वह वेदविदों को नहीं प्राप्त था।

दो परिलेखों में गृह-निर्माण निमित्त स्थलों को बेचने से संबन्धित सूचनाएँ मिलती हैं। ये परिलेख खंडित और चार खण्डों में प्राप्त हैं। इनका समय शक संवत्सर 1355 (सन् 1433 ई.) है। एक परिलेख में देवराय महाराय - II का नामोल्लेख कुछ विरुदों *(उपनामों)* के साथ मिलता है। एक पेरुमाल देवियार के पास कुछ गृह निर्माण के लिए उपयोगी भूमि तिरुमल पर थी। उनकी कोई संतन भी नहीं थी। उन्होंने अपनी भूमि को मंदिर को बेचना चाहा। शायद महिला द्वारा भूमि का बेचना सही नहीं था। *राजभंडारम्* के अधिकारी (गवर्नर) देवन्न उडैयार ने सिद्धकुट्टै गाँव को चंद्रगिरि राज्य के अधिकारी की हैसियत से मंदिर में वेदपारायणम् के लिए एक धर्मदान के रूप में देवराय - II की ओर से दिया था। यह शक संवत्सर 1355 (संख्या 199) में हुआ। श्रीशठकोपनंबि अळगप्पिरानार गोविंदन को उपर्युक्त महिला से गृह - स्थलों को खरीदकर पुनः श्रीभंडारम् को बेचने के लिए कहा था। (यह इन दो निर्देशों से विदित होता है - ''जब मैं ने उपर्युक्त संपत्तियों के अपने स्वाधीन में लिया ---'') ''देवन्न उडैयर द्वारा मेरे ऊपर कर्तव्य निर्देश के अनुसार'' -- ''जब मैं ने मिलनेवाली संपत्ति को अपने अधीन लिया---'')। उन्होंने तत्कालीन मूल्य के अनुसार भूमि खरीदने का प्रयास किया। संख्या 204 चार गृह - स्थलों को, जो तिरुमल पर घर सहित थे, 700, 1000, 1000 -- पणम् देकर लिया। संख्या 205 सूचित करता है कि तिरुपति में स्थित चर गृह स्थलों को, घरों के साथ, 2000, 450, 1500 और 4200 पणम् देकर लिया। इस सब में रजिस्ट्री का शुल्क भी सम्मिलित है। ये सारे गृह स्थलों की रजिस्ट्री *''आवणक्कलरी''* कार्यालय में हो गयी थी। आधुनिक काल में जो नियम-पाबंदियाँ सूचित किये जाते हैं ऐसे नियमों को उन पत्रों में भी अनुपालित किया गया। यह 15 वीं सदी में ही संभव हो गया था। नियम पाबंदियों में निम्नलिखित अंश स्पष्ट थे - ''इस संपत्ति पर किसी भी प्रकार का ऋण भार नहीं है, मैं ने अपनी पूरी सहमति से इस पर हस्ताक्षर किया है, इस संपत्ति के संपूर्ण अधिकार आपको प्रदत्त हैं, यह संपत्ति आज से आपके अधीन ही रहेगी; द्वितीय और तृतीय बार मैं यह घोषित करता हूँ, इस पर कोई ऋण भार

या अन्य रुकावटें जो भी बाद में निकलेंगी, मैं उन्हें स्वीकार कर मुक्त करूँगा;'' सीमा पत्थर, स्थायी प्राकृतिक संपत्तियाँ, आगे इससे बढने वाली सभी संपत्तियाँ आप की ही रहेंगी, इस पर विकास आप अपनी इच्छा से कर सकते हैं, मालिक के रूप में आपको इस पर पूरे अधिकार होंगे; अगर आप चाहें तो इसे बेच सकते हैं; इसे बेचने, अदला - बदली करने, विभाजित करने, वंशक्रमानुसार भोग करने, भेंट करने आदि सबका अधिकार आपको ही होगा; उन कार्यक्रमों में आप से कुछ भी मैं नहीं माँगूँगा, उक्त सूची में कोई भूल-चूक हो गयी हों तो मैं पुनः उन्हें दूर करने के लिए लिखित रूप से नयी रिजस्ट्री अवश्य कराऊँगा।'' संख्या 205 में स्पष्ट किया गया है कि यह *''कानिक्कै''* (देवदान) *श्रीभंडारम्* के लिए देवन्न उडैयर द्वारा हुआ है। गोविंदन ने इस दस्तावेज पर हस्ताक्षर किया है। कुछ व्यक्ति इसके साक्षी भी थे।

संख्या 206 भी खंडित और खण्डों में मिलने वाला परिलेख है। यह देवराय के समय का है। इसमें एक लडकी को दत्तिका के रूप में स्वीकार करने की बात है। इस अनुमोदन के लिए दत्तिका को स्वीकार करनेवाली माता को काली-मिर्च का पानी और वास्तविक माता को हल्दी का पानी पिलाने की बात भी प्रस्तुत है।

संख्या 230 डी. में एक घर से संबन्धित जगह को बेचने की सूचना है। इसमें *चित्तिरै* मास और *अन्न-ऊँजल* (*हंस* के आकार की डोली) की सूचना भी है। संभव है कि यह ऊँजल उत्सव *चित्तिरै* मास में मनाया गया हो। यह उत्सव शायद दूसरी बार सालुव नरसिंह राय द्वारा आरंभ कराया गया होगा। यह शक संवत्सर 1395 में (15 जून 1473 ई.) *मिथुन* नक्षत्र शुक्ल पक्ष में 5 दिन पर्यन्त मनाया जा रहा होगा (संख्या 50 जिल्द II) यह *चित्तिरै* मास में कदापि नहीं (यानी अप्रैल-मई में नहीं)। ये शायद दो अलग-अलग भिन्न उत्सव ही हो सकते हैं।

सालुव नरसिंह के एक ख्यात पूर्वज रहा करते थे। ये गुण्ड़ - I के पुत्र सालुव मंगिदेव महाराज, बुक्क - I के महत्वपूर्ण सेन्याध्यक्ष थे। इन्होंने बाद में कुमार कंपन के यहाँ भी अपना कार्य संपन्न किया था। कुमार कंपन बुक्कराय के पुत्र थे। कंपन राय की सेना में उन्होंने दक्षिण के दुर्दम्य शासकों से युद्ध किया था। प्रधानतः उन्होंने संपराय या शंभुवराय के कांची के मध्य भाग में पालार नदी की सीमा में लडाइयाँ लडी थी। कुछ छोटे राजाओं के साथ साथ उन्होंने मदुरै के महम्मदीय सुलतान से भी युद्ध किया। इनके हाथों सभी पराजित तथा सभी लुप्त भी हो गये। संपराय इनके सामने झुके तो कंपन ने उनको पुनः स्थापित भी किया था। मदुरै के सुलतान और उसकी सेना पूर्ण रूप से हार कर धराशायी हो गयी। *पाण्ड्य* राज्य छेड - छाडों से मुक्त हुआ। इसीलिए कुमार कंपन को ''सांपराय स्थापनाचार्य'' की उपाधि भी मिली थी। इस सांपराय या शंभुवराय ही तेलुंग सांपराय हैं और शंभुकुल - चक्रवर्ति

तिरुमल्लिनाथ शंभुवरायप्पेरुमाल हैं जिनका उल्लेख संख्या 183 में हुआ है। इन्होंने कुछ समर्पण तिरुवेङ्कटमुडैयान को किया है या यह भी हो सकता है कि यह देवदान इनके पुत्र ने किया हो। मदुरा के सुलतान को पराजित करने के उपरांत मंगिदेव को ''परापक्षि सालुव'' नामक सम्मान मिला था। इसी का संक्षिप्त रूप सालुव राजवंशी परंपरा को मिली है; यह मान्यता प्रबल है। इसके बाद वह वंश का नाम ही बन गया है। दो परिलेखों में प्राप्त समाचार के आधार पर इसकी पुष्टि मिलती है (संख्या 179, *तेलुगु* में और संख्या 180 *तमिल* में)। उन्हीं से यह भी समाचार प्राप्त होता है कि उन्होंने *विमान* (मंदिर के) पर स्वर्णकलश की प्रतिष्ठा करवायी है। इतना ही नहीं शिखर को सुवर्ण लेपन से प्रभायुक्त बनाया है। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान से संबन्धित यह कार्य शक संवत् 1281 में (6 जुलाई 1359 ई. में) संपन्न हुआ है। मंगिदेव को ''श्रीमान महामंडलेश्वर'' और ''मेदिनी-मीसरगंड'' भी कहा गया है। इन विरुदों के साथ ''सालुव'' विरुद नहीं है। कहा जाता है कि इन्होंने श्रीरंगनाथ स्वामी की पुनः स्थापना भी करायी है और 60,000 *माडाओं* (सुवर्ण मुद्राओं) का देवदान भी उन्हें समर्पित किया।

सालुव मंगिदेव के सामंत कुमार कंपन है। इनके पिता बुक्क - I हैं। कुमार कंपन को ''महामंडलेश्वर'' ''अरिराय विभाल'' और ''भाषैक्कुट्टप्पुव रायरगंड'' बिरुदावलियाँ हैं। यह संख्या 181 में उल्लिखित है। उसी से यह सूचना भी मिलती है कि उन्होंने कुछ गायों का दान किया है। यह भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के मंदिर में ज्योति प्रज्वलन हेतु देवदान था। यह शक संवत्सर 1290 (सन् 1368 ई.) में आरंभ हुआ है। यह *पेक्कडै* या *प्रेग्गड* द्वारा दिया गया देवदान था। ये प्रेग्गड शायद ब्राह्मण मंत्री गोप्पन रहे होंगे (यथा Dev. Epi, Rep पृ. 131-132)।

संख्या 193 में वज्रों से अलंकृत *पद्मम* के समर्पण का उल्लेख मिलता है। यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए है। यह विस्सन्न-देवराय के पुत्र श्रीगिरीश्वर द्वारा शक संवत् 1352 में समर्पित किया गया है। यह एक क्रोनोग्राम है। यह श्रीगिरी देवराय - II या प्रौढ़-देवराय के पुत्र नहीं लगते। देवराय II के एक भाई थे। उनका नाम वीर-पर्वतराय था। उनका ''श्रीगिरि'' नाम शायद *संस्कृतीकृत* नाम हो सकता है। शायद असली नाम तेलुगु भाषा में पर्वतराजा ही हो। विस्सन्न देवराय कौन थे? इसका पता नहीं मिल रहा है (Vide Dev. Epi, Rep पृ.136)।

संख्या 224 शक संवत् 1372 (सन् 1450-51 ई.) का है। इससे पता चलता है कि चेन्नकेशवदासर नामक एक व्यक्ति ने 1000 *पणम्* दो व्यक्तियों को दिया था। यह पेइंडिपल्लि गाँव से एक नहर खोदने के लिए था। यह पेइंडिपल्लि गाँव के बीच से बहेगा और तिरुपति के पास के कुछ गाँवों से गुजर कर अविलाल तालाब तक पहुँचेगा। गाँव के खोतों के मालिक किसानों ने इसका विरोध किया। क्योंकि पेइंडिपल्लि गाँव के किसानों को अपने खेतों के बीच से जाने के कारण नुकसान पहुँचेगा। इस संदर्भ में *स्थानत्तार* और *अधिकारी* यज्ञरासर ने नहर का निरीक्षण किया। नुकसान का अंदाज लगाया। अन्य खेतों

को भी होनेवाले नुकसान को परखकर उन्होंने रास्ता निकाला। तब उन्होंने उक्त दो व्यक्तियों से 1000 *पणम्* का पैसा वसूल किया। फिर कार्य के लिए आवश्यक कार्यवाही भी करवायी। उनकी सूचना को अमल करने के कारण नयी नहर दूसरे मार्ग से खोदने का निश्चय किया गया। इस सबको ध्यान में रखकर *स्थानत्तार* ने एक *तिरुप्पोनकम्* हर दिन वीरनारसिंह पेरुमाल को अर्पित करने का प्रावधान उन गाँव वासियों से करवाया। उक्त वीरनारसिंह पेरुमाल तिरुपति के पास के श्रीनिवासपुरम् में प्रतिष्ठित देव हैं। इस संदर्भ में दाता को मिलनेवाला एक चौथाई *प्रसादम्* को *रामानुजकूटम्* के निवासियों को देने की व्यवस्था भी करायी। यह *रामानुज कूटम* भी उक्त स्थानत्तार द्वारा स्थापित ही है। इस परिलेख में यह भी सूचित है कि भगवान को प्रसाद समर्पित होने के लिए आवश्यक सामग्री ''अप्पन श्रीभंडारम् से ही मिलेगी। यह श्रीभंडारम् शायद श्रीगोविंदराज स्वामी मंदिर में स्थापित नया भंडार ही हो सकता है। इसीलिए इस भंडारम् को ''श्रीभंडारम्'' नहीं कहा गया, (पहले जैसे सूचित होता रहा है)।

संख्या 217 हमें *''राचमालीकम्''* की सूचना देता है। ये राज महलों के व्यक्तियों को फूल मालाएँ बनाकर देनेवाला व्यक्ति है। इनका नाम चेन्नप्प उडैयार है। ये एक नियोगी ब्राह्मण थे। चंद्रगिरि के रहनेवाले थे। इन्होंने तिरुपति के दो *वैष्णवों* से एक निवास गृह-स्थल (घर के लिए जगह) खरीदा। उसका पंजीकरण शक संवत् 1371 (4 मार्च 1450 ई.) में हुआ। यह समय विजयनगर सम्राट मल्लिकार्जुनदेव महाराय का समय था। उसी समय पर विजयनगर साम्राज्य की एक राजधानी चंद्रगिरि बनी। चंद्रगिरि मुख्य नगरी हो जाने के कारण उसके गवर्नर का वहाँ के संचालक अधिकारी होना भी स्वाभाविक ही था। महल से संबन्धित सभी सुविधाएँ उनकी देख-रेख में संपन्न होती थीं। यह भी स्वाभाविक है कि सभी प्रकार की वस्तुओं को पहुँचानेवालों ने भी चंद्रगिरि में रहना आरंभ किया। इनमें एक व्यापारी थे ''पडैइल-इरुक्कुम-व्यापारी'' (सेना से संबद्ध व्यापारी)। मंदिर की आवश्यक सेवाओं के लिए भी इनको नियुक्त किया गया। इनमें से कुछेकों को मैनेजर्स (प्रबंधक) भी बनाया गया (संख्या 236 - का एक खण्ड)।

यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर से संबन्धित व्यवहारों का एक समग्र अनुशीलनात्मक रूप है। यह चौदहवीं शती के मध्यकाल तक का चित्र है। यह *संगम* वंश के आरंभिक राजाओं का समय था। संगम वंश के राजा बुक्क - I इस क्षेत्र पर अधिकार पा चुके थे। संख्या 178 में उनकी *बिरुदावली* और नाम अंकित है। पारंपरिक विजयनगर या विद्यानगर की स्थापना उनसे दो दशाब्दियों से पहले ही, अर्थात् सन् 1336 ई. को हो चुकी थी। उनके समय में भगवान की सेवा के लिए देवदान के रूप में प्रदत्त गाँव से श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए दैनिक रूप से प्रसाद की व्यवस्था चल रही थी। बुक्कराय के कदमों पर चलते हुए सालुव राज्य के सेनाधिपतियों और अधिकारियों ने भी देवदान समर्पण किये जिनसे भगवान की दैनिक पूजाएँ और प्रसाद समर्पण चल रहे थे। उत्सव और ध्वजावरोहण आदि उत्सवानुरूप कार्यक्रमों

की भी वृद्धि हुई। उनकी संख्या में भी बढोत्तरी हुई। संख्या 7 से 10 तक पहुँची। ये उत्सव हर महीने में 10 दिन पर्यंत मनाये जाते रहे हैं। तीन प्रकार के अन्न प्रसाद समर्पण, उबला चावल, तला चावल आदि की सभक्ति आराधना प्रविधि आविष्कृत हो गयी थी। प्रमुख रूप से 7 उत्सवों के अलावा अन्य उत्सव भी चलते थे यथा *कोदै तिरुणाल* वैशाख मास में और *अध्ययनोत्सवम् मार्गळि* मास में। शीतकाल में *प्रबन्धम्* का गान, पूजा विधियों के साथ चलता रहा है। इनमें कुछ भक्तों की ओर से भी वैयक्तिक धरातल पर प्रसाद समर्पण का विधान चलने लगा। *वेदपारायणम्* को द्वितीय बनाकर *तिरुवायमोळि* का गान आगे बढा। बाद में यह स्थायी रूप से स्थापित हो गया। कुछ भक्तों की ओर से गायें भगवान को समर्पित हुईं। उनसे दूध और घी की व्यवस्था हो गयी। मणि, वज्र, मानिक आदि के साथ साथ भगवान के लिए अलंकरण की व्यवस्थाएँ भी हो गयी। भगवान के लिए आवश्यक जल व्यवस्था भी अपनी दिशा पकडने लगी। सिंचाई के लिए नहरों की खुदाई, खासकर भगवान के लिए समर्पित गाँवों में, संपन्न होने लगीं। कुछ भक्तों ने इसका खर्च भी वहन किया। पुराने नहरों और कुँओं के संवर्द्धनार्थ कार्य भी चले। उन खेतों से उत्पन्न धान आदि से भगवान के लिए अन्न प्रसाद आदि का सुव्यवस्थित रूप से संचालन भी होने लगा। पत्थरों से मंटपों का निर्माण किया गया। गोविंदराज स्वामी के मंदिर के पास *देवस्थानम्*[2] का कार्यालय स्थापित हुआ। यह मंदिर के पीछे स्थित था (पुराना कार्यालय)। इस स्थान को *''कनिजम् तोटा''* कहते थे (धान्यगार का बगीचा)। आजकल यह विविध कार्यालयों का स्थान बन गया है। इस समय में मंदिर ने सभी दृष्टियों से वैभव प्राप्त किया। मंदिर की शालीनता बढी और संपत्ति की श्रीवृद्धि हुई। प्रधानतः दक्षिण भारत में ख्यात मंदिर का गौरव भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के मंदिर को मिल गया।

* * *

---

2. देवस्थानम् का कार्यालय कपिल तीर्थम् रोड में निर्मित तीन मंजिलों के नये भवन को स्थानापन्न कर दिया गया था। उपर्युक्त पुराने भवन को सब-कलक्टर कार्यालय, चंद्रगिरि को सौंपा गया था।

(*) साधारण सूचनार्थ

(1) इस में प्रयुक्त कुछ शब्द मूल परिलेख के अनुसार हैं। ये शब्द 7 वीं शती से लेकर 20 वीं शती के समय तक प्रचलित रहे हैं। इन्हें समझने का प्रयास पाठक को करना होगा।

(2) व्यक्तियों, स्थानों और समय संकेतों में भी इस प्रकार की सावधानी की आवश्यकता है।

- गोपी कृष्ण

(3) अग्रेंजी से अनुवाद में अनुवादक ने कुछ स्वतंत्रता की है ताकि संप्रेषण कुछ सरल हो।

अध्याय - 18
राजा सालुव नरसिंह का राज्यकाल
(विजयनगरकाल - II)

15 वीं शताब्दी के अंत तक की लगभग पाँच-छः दशाब्दियाँ विजयनगर साम्राज्य के शासन के अमूल्य समय से संबद्ध थीं। इस समय के प्रमुख सम्राटों में मल्लिकार्जुन और विरूपाक्ष तो राजमौलि ही थे। सालुव नरसिंह तो अत्यंत प्रमुख और प्रभावशाली सैन्याध्यक्ष थे। इन्होंने समस्त साम्राज्य को सुरक्षित रखते हुए एक रक्षातंत्र को ही व्याप्त कर रखा था। आपने स्वयं दो गाँवों को भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के पदतल में समर्पित किया। ये गाँव हैं - मागोंडुवेलड और मूपडुवेट्ट। ये पडैविट्टु राज्य के हैं। यह देवदान शक संवत्सर 1389 में (27 दिसंबर 1467 में) संपन्न किया गया था (जिल्द II, संख्या 30)। दोम्मरपट्टि गाँव को जो पडैविट्टु राज्य में ही था शक संवत्सर 1395 में (15 जून 1473 ई. में) अर्पित किया गया था। यह उस समय संपन्न हुआ जब श्रीमान महामंडलेश्वर तिम्मयदेव चोळ महाराज ने तेप्पट्टिनागणचावड़ि गाँव को, जो पडैविट्टु राज्य में था, देवदान के रूप में मंदिर को समर्पित किया था। यह शक संवत्सर 1386 में (5, मई 1464 ई. में) हुआ (वही, संख्या 21)। अंटेम्बर गण्ड़ वल्लभयदेव महाराज ने पराण्डलूरु को, जो पोट्टपिनाडु में था, (आधुनिक कडपा जिला में) दान में दिया। यह प्रान्त उदयगिरि राज्य के अधीन था। कोन्नेरि राजा ने मरुट्टुवक्कुडि और वालायकुलच्चेरि गाँवों को, जो शोलमंडलम् में थे, शक संवत्सर 1415 में (19, आगस्त 1493 में) देवदान के रूप में समर्पित किया था (वही संख्या 106)। इनका प्रप्रथम श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान का सान्निध्य दर्शन और संपर्क उसी समय हुआ जब उन्होंने ग्राम को दान दिया। वह दान आलिपुरम का है जो चन्द्रगिरि राज्यांतर्गत था। यह शक संवत्सर 1378 में हुआ था। वह *धातु* नाम संवत्सर था, (12, सितंबर 1456 ई.)। यह उनके मैसूर राज्य के राज्यपाल (गवर्नर) के रूप में आठवाँ वर्ष था। उनका कार्य केन्द्र कल्याणपुरा था। उनकी वंशपरंपरा का उल्लेख *''सालुवाभ्युदयम्''* में प्रस्तुत है। उन्होंने भी चंद्रगिरि को अपना कार्य क्षेत्र बना लिया (भगवान की सन्निधि में रहने की इच्छा से)। (Dev. Epi, Rep P 144-145)।

18 जनवरी 1464 ई. में सालुव वंशीय मल्लयदेव ने एलमबाक्कम् गाँव को दान में दिया। यह गाँव चन्द्रगिरि राज्य में था और देवदान श्रीवेङ्कटेश्वर को था। जब सालुव नरसिंह चन्द्रगिरि राज्य के गवर्नर थे तब मल्लयदेव उस गाँव को दान में कैसे दे सकते थे? इस संदर्भ में प्रश्न उभरते हैं कि उस समय गवर्नर कौन थे? सालुव नरसिंह कहाँ थे? इसकी कुछ स्पष्ट सूचना नहीं मिलती है। इसी क्रम में तिम्मयदेव चोळ महाराज ने दो गाँवों का एक और दान दिया था। ये पडवीडु राज्यांतर्गत गाँव थे। यह देवदान सन् 1464 ई. में किया गया है। वर्ष 1467 और 1488 ई. में सालुव नरसिंह ने एक दान प्रदान

किया। यह दो गाँवों से संबन्धित दान था। ये गाँव भी पडवीडु राज्य और चन्द्रगिरि राज्य के हैं। (संख्या 30, 31 और 34)। 30 मई 1482 अक्तूबर 1472 ई. में इनका एक और समर्पण संबद्ध परिलेख प्रकाशित किया जिसमें पूर्व देवदानों से संबन्धित अनुमति थी। यह दान उनके द्वारा पहले ही किया गया दान था और उस गाँव का नाम दुर्गसमुद्रम् था जो तिरुपति के पास है। यह 13 अक्तूबर 1472 ई. में हुआ (संख्या 79)। शायद उस समय विजयनगर शासन का पूर्ण सरकारी दायित्व इनके हाथ में आ गया हो। अर्थात् सभी गवर्नरों (प्रधान अधिकारियों) के ऊपर तथा समस्त राज्य के शासन चक्र को चलाने का अधिकार इनको सौंपा गया हो। इसी कारण से उन्होंने इस प्रकार के दान विभिन्न प्रान्तों में किया था। अपने सफल सैन्याध्यक्ष तुलुव नरस नायक ने दक्षिण के अनेक शत्रुओं को और क्रांतिकारी प्रमुखों को अपने अधीन में तो कर लिया था। परन्तु उत्तर, पश्चिम और दक्षिण के सुदूर प्रांतों को अधीन में ला नहीं पाये। उनमें ओरिस्सा के गजपति राजा भी थे। उन्होंने अपने आदेश *(नियोगम्)* में श्रीवेङ्कटेश्वर के मंदिर में स्पष्ट किया है कि भगवान के लिए सुगंध द्रव्य और अन्य आवश्यक सामग्री का प्रावधान अवश्य करें। उस आदेश में श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के साथ साथ श्रीगोविंदराज स्वामी और श्रीकुलशेखर आळ्वार की आराधना से संबन्धित दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति की बात भी रेखांकित है। यह आदेश तिरुमल और तिरुपति के रामानुजकूटम व्यवस्थाओं को दिये गये हैं। इसका आदेश समय 11 आगस्त 1484 ई. है (संख्या 22)। इसके अनुसार गुण्डिप्पुण्डि की आमदनी का उपयोग इस दिशा में हो। यहाँ के अनुपालन से विदित होता है कि अभिषेकम् के लिए श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज के लिए सुगंध पदार्थों तथा अन्य सामग्री के पुस्तुतीकरण की परंपरा की सूचना है। किन्तु कुलशेखर आलवार को छोड दिया गया। (संख्या 81)। सालुव नरसिंह के आदेशों से संबन्धित आगे का परिलेख 20, अप्रैल 1485 ई. का है (संख्या 82)। इसमें लक्ष्मी-नरसिंह स्वामी की (अलिपिरि) समीपवर्ति मार्ग के पास मूर्ति की स्थापना की सूचना मिलती है।

मुखप्पालम् नागम नायक सालुव नरसिंह के अधीन में कार्यरत एक सैनिक अधिकारी थे। अपने अधिपति श्रीमान् महामंडलेश्वर सालुव नरसिंहराय महाराज उडैयार की उन्नति के लिए आगस्त 1487 में नागम नायक ने तिरुमल पर एक पुष्पवन लगवाया। उससे प्राप्त होनेवाले फूलों का उपयोग भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर की पूजा के लिए ही होना आदेशित है। इतना ही नहीं, भगवान के सामने दो ज्योतियों को नित्य प्रज्जवलित करने के लिए भी व्यवस्था की। इस सब के लिए कच्चिप्पेट्टु शिरमै के एक गाँव तिरडंपाड़ि को एक जागीर के रूप में नरसिंहराय उडैयार ने उनको दिया था (संख्या 87)।

नरसिंह का नाम संख्या 90 में पहले मिलता है। यह 25 जनवरी 1490 ई. का है। इसमें सीढियों से युक्त एक कुएँ की उपस्थिति का उल्लेख है। यह कुआँ उत्तर मेरुरु के करवेट्टि पुलियालवार मन्नारपिल्लै द्वारा बनवाया गया था। इसमें कुएँ की उपस्थिति के संबन्ध में कहा गया है कि वह *गोपुरम्*

(शिखर) की दक्षिण दिशा में स्थित है। लक्ष्मीनरसिंह स्वामी का ही वह मंदिर है जो पर्वत के तल के पास है (संख्या 82)। इसमें श्रीमान महामंडलेश्वर सालुव नरसिंहराय महारायर नाम भी है, उनकी सेवा में रहने की सूचना भी।

नरसिंह की सेवा दो और वर्ष पर्यन्त जारी रही थी। अर्थात् सन् 1492 ई. तक। लगता है कि उसी वर्ष उनकी मृत्यु हुई। सालुव नरसिंह के पुत्र इम्मडि नरसिंह सिंहासन पर आसीन हुए। विजयनगर साम्राज्य के अधिपति के रूप में आप सन् 1505 ई. तक शोभित रहे। उनको तुलुव नरस नायक का सहारा मिला। ये तुलुव नरस नायक ही श्री कृष्णदेवराय के पिता हैं। इम्मडि नरसिंह को तुलुव नरस नायक के भाइयों का भी सहारा मिला था।

44 वर्षों के सुदीर्घ सैनिक शासन काल में सालुव नरसिंह ने अपनी सैनिक - सेवा समर्पित की है - अर्थात् सन् 1448 से 1492 ई. तक। इसके दौरान आपने कल्याणपुरा, चन्द्रगिरि और पडवीडु राज्यों पर आरंभिक समय में शासन चलाया। फिर धीरे धीरे संपूर्ण विजय नगर सामाज्य पर एकछत्र शासन किया।

सालुव नरसिंह[1] ने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की उल्लेखनीय सेवा की है। उन्होंने 18 गाँवों को दान में दिया। (संख्या 30 यह सूचित करता है कि उनके प्रमुख आराध्यदेव श्री रामचन्द्र हैं)। सालुव नरसिंह ने ही *''डोला महोत्सव - अन्ना ऊँजल तिरुणाल''* को आरंभ किया है। यह पाँच दिवसीय उत्सव है और *आणि* मास में (जुलाई) *मिथुन* लग्न में संपन्न किया जाता है। इसे शुक्ल पक्ष में मनाया जाता था। उस समय उत्सव संबन्धी अनेक कार्यक्रम संपन्न होते थे और रात-दिन समग्र रूप से प्रसाद समर्पण की व्यवस्था भी की जाती थी (संख्या 50)। इसके साथ साथ *ब्रह्मोत्सव* सहित अनेक उत्सवों और अनेक दैनिक प्रसादों के संपर्पण की व्यवस्था भी उन्होंने की थी। उन्होंने स्वामी पुष्करिणी के मध्य *वसंत मंटप* का निर्माण करवाया। *''तिरुप्पल्लि - ओडत्तिरुणाल''* (तेप्पोत्सवम्) का आरंभ किया। श्रीवारि पुष्करिणी के पास चार *मंटपों* का निर्माण, पुष्करिणी तट पर, करवाया। *संपंगि प्रदक्षिणम्* (स्वामी मंदिर के प्राकार के अंदर) में चार मंटपों का निर्माण भी कराया। इसी संपगि प्रकारम् में *चंपक* (संपंगि) वृक्ष भी थे। *मंटपों* में जब उत्सव मूर्तियाँ विराजमान होती थीं तब उनके लिए आवश्यक पूजाओं की व्यवस्थाएँ भी उन्होंने करवायीं। ये सारी व्यवस्थाएँ उन्होंने अपने नाम पर और उनके ज्येष्ठ पुत्र कुमार नरसय्यन् के नाम पर करवायी थी। ये कुमार नरसय्यन् ही आगे चलकर इम्मड़ि नरसिंह के नाम से विजय नगर साम्राज्य की गद्दी पर विलसित हुए। इनके साथ साथ उनके द्वितीय पुत्र पेरिय तंगमान और तृतीय पुत्र

1. सालुव नरसिंह ने श्रीवेंकटेश्वर स्वामी की अनेक सेवायें की। वे वास्तव में श्रीरामचंद्र जी के अनन्य भक्त थे। सं.30 इसकी। पुष्टि करती है (अतिरिक्त समाचार के लिए देखिए दे.ए.रि. पृ.137 से 147)।

चिक्क तंगमान नाम भी इस समर्पण व्यवस्था में अंकित हैं (संख्या - 51)। डोलोत्सव (ऊँजल उत्सव) का निवेदन सालुव नरसिंह ने अपनी माता मल्लायम्मन के नाम पर करवाया था। यह उत्सव के प्रथम दिन की रात से संबन्धित है (संख्या 50)। उन्होंने मंदिर के प्रधान (आगे स्थित) *गोपुरम्* (शिखर) और कुछ अन्य गोपुरों का भी निर्मण श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर के लिए करवाया था। तिरुमल पर प्रवेश द्वार पर असंपूर्ण *गोपुर* का भी उन्होंने निर्माण कराया था। तिरुपति में गोविंदराज स्वामी के मंदिर के पास *गोपुरों* का निर्माण भी कराया। तिरुमल चढने से पहले, उसके पद तल में जो एक *गोपुरम्* है उसका जीणोद्धार भी आपने करवाया। (संख्या 79 और संख्या 34)।

लगता है कि कंदाल रामानुज अय्यंगार उनके आध्यात्मिक *गुरु* हैं। इसी कारण से उन्होंने गुरु को अन्नदान भवनों का मैनेजर बनाया, तब से इन अन्नदान भवनों को *रामानुजकूट्टम* कहा गया है। (ये रामानुज अय्यंगार के नाम पर ही स्थापित किये गये हैं।) इनकी स्थापना तिरुमल पर उत्तर माडवीथि में और तिरुपति में गोविंदराज स्वामी के मंदिर में की गयी है। इनमें दाता के नाम पर निर्दिष्ट भाग के प्रसादम् *श्रीवैष्णवों* में बाँटने का निर्देश भी दिया गया है। क्योंकि जो दाता भवन या कूटम् का निर्माण करता है, उसे अंश भाग मिलता है। बाद में उन्होंने धर्मशाला का निर्माण भी किया। यह मुफ्त अन्न वितरण का केन्द्र (सत्रम्) बना और तिरुमल मंदिर में मुख द्वार पर (*गोपुर* के पास) स्थित था। इसके अधिकारी के रूप में हस्तिगिरि अय्यन को नियुक्त किया गया था। मंदिर के लिए पांच गाँवों का धर्मदान भी दिया गया। यह 16 मार्च 1468 ई. में संपन्न किया गया। यह धर्मदान 30 संधि *प्रसादों* के लिए था जो हर दिन प्रस्तुत किये जाते थे। इन प्रसादों में मीठे *प्रसाद* भी सम्मिलित थे। एक आदेश भी है कि दाता का अंश भाग हस्तिगिरि अय्यन को दिया जाय जिसे वे धर्मशाला से संबद्ध भक्तों में *वितरण* करेंगे और प्रसाद बनानेवाले ब्राह्मणों को भी वेतन दंगे। इतना ही नहीं प्रसादम् बनाने के लिए आवश्यक तरकारियाँ भी खरीदेंगे। (संख्या 34)। गंगिरेड्डिपल्लि गाँव किसी व्यक्ति के द्वारा दान में दिया गया था। यह दान भी *धर्मशाला* में रोज अन्नदान करने के लिए था। यह सालुव नरसिंहराय उडैयार के नाम पर था (संख्या 125)। उक्त दोनों अन्नदान भवनों *(धर्मशालाओं)* के साथ साथ तीसरी *धर्मशाला* के निर्माण का उल्लेख भी मिलता है। यह स्वामी पुष्करिणी की उत्तर दिशा में पुष्करिणी तट के पास है। इस धर्मशाला का निर्माण नरसिंगराय कोनेरु (तालाब) के पास हुआ है जिसे नरसिंगराय उडैयार ने खुदवाया था। इस *धर्मशाला* में *ब्रह्मोत्सव* के दस दिन पर्यन्त अन्नदान की व्यवस्था होती है। यह पुरट्टासि महीने में संपन्न होता है।

सालुव नरसिंह के अलावा उनके नजदीक संबन्धी सालुव मल्लयदेव, तिम्मयदेव चोळ महाराज, वल्लभदेव महाराज और कोनेटिराय ने भी श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के नाम पर गाँवों को दान में दिया। ये दान, जैसे ऊपर कहा गया है, श्रीमान महामंडलेश्वर गंडभेरुण्ड पेरिय तिम्मराज उडैयार ने, (जो

कोम्मराज उडैयार के पुत्र हैं) मंदिर को पुदुच्चेरि के वेट्टुवक्कलत्तूर गाँव के भाग को दान में दिया। इसका एक भाग पहले ही दान के रूप में दिया गया था। यह *सिरिमाय* प्रान्त में है। यह वंश गत आधिपत्य में रह गया है। यह 5 जून 1494 ई. में संपन्न किया गया था। (संख्या 126)। यह उसी प्रकार रहा जिस प्रकार का तिरडम्पाडि के मुखप्पालेम नागम नायक का जागीर रहा। यह सन् 1487 ई. के आगस्त महीने में संपन्न हुआ था (संख्या 87)।

इस तरह 15 वीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध में श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर के लिए विभिन्न राज्यों से 30 गाँव देवदान में प्राप्त हुए। ये उनसे पहले संप्राप्त 20 गाँवों के अतिरिक्त थे जो तिरुपति के आस-पास ही थे। मंदिर के पास इन सब गाँवों से मिलनेवाली उत्पत्तियों, विविध कर तथा अन्य शुल्कों को वसूल करने के लिए आवश्यक अधिकारी और नौकर रहे ही होंगे। इनमें स्थानेदारों की सहमति प्राप्त या मैनेजरों से स्वीकृत अंशदानों को भी ये वसूल करते थे। इसमें स्वर्ण दान भी शामिल थे। इन सबमें मंदिर के स्थानेदार की स्वीकृति और अनुमति की जरूरत भी होती थी। इनमें उल्लेखनीय है सालुव नरसिंह के द्वारा मंजूर किया गया दुर्गसमुद्रम् गाँव, जो तिरुपति की दक्षिण दिशा में दो मील की दूरी पर है। यह दान निर्दिष्ट रूप में मंटपों, *गोपुरों* (शिखरों) और अन्य निर्माणों के लिए था जो तिरुपति और तिरुमल में थे। इसी के निर्देशानुसार कुछ *गोपुरम्* तिरुपति और तिरुमल में निर्मित किये गये होंगे। इनमें नरसिंहराय आस्थान *मंटपम्,* जो *ध्वजस्तंभ* के सामने हैं, और अन्य चार खभों के *मंटप,* जो *संपंगि प्रदक्षिणम्* में हैं होंगे। इनके अलावा तिरुमल पर पुष्करिणी तट के दो *गोपुर* और श्रीगोविंदराज स्वामी मंदिर के *मंटप* भी हैं। (संख्या 79 और संख्या 34 की 9 वीं पंक्ति)। श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिर के मुख द्वार पर स्थित *वसंतमंटपम्* का निर्माण, असंपूर्ण रूप में था, श्रीमान शठकोप जीयर ने करवाया। यह पुंगोडु गाँव की आमदनी से हुआ है। यह मंदिर के लिए पुराना था। इसे पूरा किया गया था, मंदिर के एक लेखापाल नल्लार अंगंडै के द्वारा (संख्या 83)।

दैनिक प्रसाद समर्पण के संदर्भ में एक सौ से अधिक समर्पण या संधि प्रसाद अनगिनत भक्तों की ओर से देवदान प्रस्तुत हुए। इनमें 57 *संधियाँ* भी सम्मिलित हैं जिनमें हर दिन 68 मापों का चावल प्रसाद और कुछ मिठाइयाँ बनाने की बात है। ये सालुव नरसिंह के द्वारा निर्धारित भी हैं। इनमें 4 समर्पण तो उनकी रानी श्रीरंगांबादेवी की ओर से समर्पित हैं। (संख्या 4, 30, 34 और 25)। उनके बडे भाई सालुव तिम्मराजदेव महाराज की ओर से 4 समर्पण (संख्या 17) तथा उनके संबन्धी मल्लयदेव महाराज की ओर से एक समर्पण *अप्पडि* के साथ एवं एक *तिरुक्कणामाडै* तथा एक *पायस - हरिवाणम्* हैं (संख्या 18)। उन्हीं के एक और संबन्धी सालुव रामचन्द्र का एक (संख्या 19), सालुव पर्वतराज के चार (संख्या 23) तथा सालुव तिम्मराजु के चार श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए तथा दो आदिवराह स्वामी, (जो स्वामी पुष्करिणी

तट पर स्थित है), को हैं (संख्या 76)। सालुव गोपय्यन का एक बडी कटोरी भर *'पानकम्'* निवेदन के लिए है जिसे पूरे वर्ष भर समर्पित होना था। (संख्या 41 और संख्या 42)। असंख्याक महामंडलेश्वर, महाराजाओं ने, प्रांतीय अधिकारियों (गवर्नरों) ने, सेनापतियों ने एक या दो समर्पण अर्पित किये हैं। वल्लभराय देव महाराज ने 8 *संधि* समर्पण की व्यवस्था की थी (संख्या 35)। कंदाडै रामानुज अय्यंगार ने तो एक *अप्पडि* और एक *तिरुक्कणामडै* रोज अर्पण की व्यवस्था की। यह रोज नरसिंग राज उडैयार की *संधि* के साथ अर्पित होता है (संख्या 38)। दो राजान - तिरुप्पोनकम् हर दिन रात को अर्पित होते हैं भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को तथा दो तो श्रीगोविंदराज स्वामी को (संख्या 40)। इसी क्रम में 4 तिरुप्पोनकम् वेङ्कटेश्वर को और 4 गोविंदराज को तथा 8 संधि कुलशेखराल्वार को भी अर्पित हैं (संख्या 128)। कुलशेखर आळ्वार की स्थापना उनके द्वारा तिरुपति मंदिर के उत्तरी मार्ग पर होने की सूचना तो है परन्तु आजकल उसका पता नहीं मिलता है (संख्या 36)। कोयिल - केल्वि एमपेरुमानार जीयर ने शोलमंडलम् में दो गाँवों को श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए प्राप्त किया। ये कोनेटिराजा के नाम पर *तिरुप्पोनकम्* के लिए अर्पित गाँव हैं (संख्या 106)। कुमार - तातय्यंगार तिरुपति के *आचार्यपुरुषों* में एक हैं। आपने एक *राजान - तिरुप्पोनकम्* का निवेदन अर्पित किया है। तदर्थ दो मापों का चावल प्रतिदिन रायर संधि के साथ अर्पित होना निर्धारित किया गया (संख्या 109)। चन्द्रगिरि के एक *नियोगि ब्राह्मण* ने प्रतिदिन निमित्त एक प्रसाद का आयोजन किया था (संख्या 2)। इसको श्रीनरसिंह देव ने मंदिर में नियुक्त किया था नित्य सेवा के लिए (संख्या 5 और 6)। *तिरुवेङ्कटनाथन* पुष्पवाटिका और *मठम्* के मैनेजर पेरियपेरुमाल जीयर ने प्रतिदिन दो प्रसादम् समर्पण का निवेदन किया है जो *बुक्करायन - संधि* के साथ अर्पित होता है (संख्या - 7)। मलैकिनियनिन्नपेरुमाल कुप्पर ने प्रतिदिन एक के लिए समर्पण दिया है जो *बुक्करायन्* - संधि के साथ नित्यप्रति प्रस्तुत होता है (संख्या 9)। पेरियपेरुमालदासर ने *''अलैमेलुमंगै - नाच्चियार - संधि* की स्थापना की है जो प्रतिदिन समर्पित होता है (संख्या 69)।

'तिरुक्कोडि-तिरुणाल्' मदिर में *ध्वजस्तंभ* पर गरुड ध्वज को फ़हराने के साथ आरंभ होता है। इस उत्सव को *ब्रह्मोत्सव* कहते हैं। यह सात दिन का उत्सव रहा है। यह पूर्वकालिक परंपरा के अनुसार ही रहा है। लेकिन उत्सवों में समर्पणों के दिन 10 या 12 रहते हैं। उत्सव समर्पण हर दिन बढते ही गये हैं। *'तिरुक्कोडि - तिरुणाल'* मनाये जाने के छः मासों की कालावधि कुछ परिलेखों में उल्लिखित है। ये पुरट्टासि और *पंगुणि* मास हैं, (जिल्द I संख्या 96, 68, 110, 105, 108)। *अर्पशी* और *मासि* (संख्या 112) और *आडि* और *सित्तिरै* (संख्या 38, 50 और 142) हैं। इन उत्सवों के संदर्भ में सातवें मास का उल्लेख किसी परिलेख में नहीं है। उत्सव के दिनों की संख्या अलग अलग रूप में गिनी गयी है। इन उत्सवों में दैनिक समर्पणों के लिए दाताओं के द्वारा प्रदत्त सामग्री के अनुसार का उपयोग किया जाता है। ये समर्पण उत्सव मूर्तियों के लिए ही निर्धारित हैं। जिल्द II संख्या 1 में नौ दिन उल्लिखित हैं। ये नौ

दिन *गरुड़ध्वज* के फ़हरानेवाले दिन से गिने जाते हैं और तीर्थवारि *अधिवासम्* तक दिन गिने जाते हैं (जिल्द I, संख्या 213)। इसे *अवभृथ स्नान* भी कहते हैं। इस दिन तक उत्सव के दिन गिने जाने की बात भी है (संख्या 83, 127 और 138, जिल्द II)। ये बारह दिन के होते हैं और *'कैकार - चक्रम'* से *'विडायार्रि'* तक गिने जाते हैं। अर्थात् ध्वजावरोहण के पहले के दूसरे दिन से, सुदर्शन चक्र उत्सव के दिन तक गिने जाते हैं। *सुदर्शन चक्र* उत्सव के दिन, बांबी की मिट्टी मंदिर में लायी जाती है - यह चार बर्तनों में *याग शाला* तक लायी जाती है। इस मिट्टी में नव धान्य के बीज बोये जाते हैं। यह *बीजवपन - अंकुरार्पणम्* उत्सव कहा जाता है। यह *ध्वजारोहण* के पहले दिन पर संपन्न होता है। *ध्वजारोहण* के बाद उत्सव (ब्रह्मोत्सव) का आरंभ होता है। उस उत्सव में मलैकिनियनिन्र पेरुमाल की मूर्ति मात्र का उत्सव कुछ दिन चलता है। कुछ दिनों पर *मलयप्पस्वामी अपनी देवेरियों* के साथ उत्सव में भाग लेते हैं। भगवान की देवेरियाँ हैं - श्रीदेवी और भूदेवी। वाहनों पर मिलनेवाली जगह के आधार पर मूर्तियों को अलंकृत कर उत्सव मनाया जाता है। ध्वाजारोहण के आठवें दिन पर रथ यात्रा चलती है जिसमें तीनों मूर्तियों को (स्वामी, श्रीदेवी और भूदेवी) अलंकृत कर उचित आसन पर बिठाया जाता है। ये उत्सव मंदिर की चारों माड़ा वीथियों की यात्रा से संपन्न होते हैं। 8 वें दिन की रात को केवल मलयप्पस्वामी (श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान) अश्ववाहन पर शोभित होते हैं (जिल्द II संख्या 96)। नौवें दिन पर तीर्थवारि उत्सव मनाया जाता है (आजकल इस उत्सव को चक्र स्नानम् कहते हैं।)। यह आराधना श्रीवराह स्वामी मंदिर के सामने स्थित मंडप में संपन्न होती है। यह मंटप स्वामी - पुष्करिणी के पास है और *चक्रस्नानम्* वहीं संपन्न किया जाता है। नौवें दिन की रात को *ध्वजावरोहण* (गरुड़ ध्वज को नीचे उतारने का) उत्सव संपन्न होता है। इसी से ब्रह्मोत्सव समाप्त होते हैं। दसवें दिन की रात को *पुष्प यागम्* चलता है। तरह तरह के पुष्पों से भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर आकण्ठ अर्चित किये जाते हैं (जिल्द II, संख्या 135)। ग्यारहवें दिन को *''विडायार्रि''* (विश्रांति) है। संख्या 109 और 134 (जिल्द II) में उल्लिखित है कि *पुष्पयागम्* और *विडायार्रि* दो अलग दिनों में संपन्न किये जाते हैं, एक के बाद एक। इस प्रकार *कैयार-चक्रम्* के दिन से *'विडावार्रि'* दिन तक 13 दिन होते हैं। 'विडावार्रि' 13 वें दिन पर मनाया जाता है। लेकिन यह संख्या 83, 127 और 138 में जो सूचित किया गया है उसके विपरीत ठहरता है जिसमें दिन संख्या 12 बतायी गयी है। *कैयार - चक्रम्* और *तिरुमलै - तिरुणाल्* (*अंकुरार्पण* उत्सव) दोनों दो अलग अलग दिनों में मनाये जाहे थे, एक के बाद एक। इसका स्पष्ट उल्लेख संख्या 221 और 222 (जिल्द I) में मिलता है। इसमें श्रीवेङ्कटेश्वर और गोविंदराज के उत्सवों के संदर्भ में इसी प्रकार दो भिन्न दिनों में संपन्न होने का उल्लेख है। इसी प्रकार दाता से प्रदात्त समर्पणों के बारे में भी संख्या 123 (जिल्द I) में उल्लेख है कि *तिरुमलै - तिरुणाल्* (अंकुरारोपण पर्व) और *तीर्थवारि नाल* (चक्र स्नानम्) के लिए दिये गये समर्पण हैं। ये समर्पण भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के सात *ब्रह्मोत्सवों* तथा श्रीगोविंदराज के लिए दो *ब्रह्मोत्सवों* से संबन्ध रखते है। इनका उल्लेख संख्या 214 में है। इन *नैवेद्यों* के बारे में बहुत अच्छा कहा गया है।

प्रधानतः प्रथम और अंतिम दिनों के उत्सव महा उत्सव कहे गये हैं। अंकुरार्पण उत्सव प्राथमिक उत्सव है जो असली उत्सव के आरंभ से पहले (पूर्व) दिन को मनाया जाता है। बाद में ध्वजारोहण से *तीर्थवारि* तक उत्सव चलता है।

ब्रह्मोत्सवों में जहाँ तक वाहनों की बात है, आठवें दिन पर रथ (संख्या 12) और उस दिन रात को अश्ववाहन चलता है (संख्या 96)। ये श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज के लिए किये जाते हैं। *तिरुवनंतल, शेषवाहनम्* गोविंदराज के लिए नौवें दिन पर है। अन्य दिनों के वाहनों का विशेष रूप से उल्लेख नहीं हैं। लेकिन भगवान के लिए (मूर्तियों के लिए) *ध्वजारोहण* के दिन पर होनेवाले नैवेद्य समर्पणों का उल्लेख है (संख्या 69, जिल्द I)। तृतीय, चतुर्भ, पंचम और सप्तम दिनों का उल्लेख संख्या 134 में प्रस्तुत है। षष्ठ और सप्तम् दिनों का उल्लेख संख्या 103 में है। चित्तरै उत्सव के प्रथम सात दिन, *ध्वजस्तंभ* की दक्षिण दिशा में स्थित सालुव नरसिंह *मंटप* में *अन्ना - ऊँजल* सेवा मनायी जाती है (संख्या 50)। ये बारह दिनों के उत्सव (संख्या 83, 127 तथा 138, जिल्द II) हैं। बहुत से दाताओं ने *तिरुणाल* (उत्सव) के सातवें दिन को ही देवता मूर्तियों को नैवेद्य समर्पण आदि को प्राधान्यता दी है।

आजकल के उत्सवों में वाहन विधान और सेवा विधान इस प्रकार हैं: *ध्वजारोहणम्* उत्सव के पहले दिन (पूर्व दिन) को सेनापति उत्सव (सेनै मुदलियार) होता है। इसके बाद *अंकुरार्पण* उत्सव है। तिरुच्चि उत्सव (उत्सव मूर्तियों को सुवर्ण तिरुच्चि में रखकर) के बाद *ध्वजारोहण* होता है। सुवर्ण *तिरुच्चि* मानी सुवर्ण पालकी है। रात को महाशेष वाहन पर भगवान तिरुवीथियों में दर्शन देते हैं।

द्वितीय दिवस	-	सुबह :	लघुशेष वाहन
		रात :	हंस वाहन
तृतीय दिवस	-	सुबह :	सिंह वाहन
		रात :	मुत्यपु - पंदिरि (मोती वितान)
चतुर्थ दिवस	-	सुबह :	कल्पवृक्ष वाहन
		रात :	सर्वभूपाल वाहन
पंचम दिवस	-	सुबह :	पालकी वाहन (भगवान का मोहिनी अवतार उत्सव)
		रात :	गरुड वाहन
षष्ठम् दिवस	-	सुबह :	हनुमंत वाहन
		शाम :	तिरुच्चि वाहन (तीनों मूर्तियाँ वसंतम् से मंडित होकर) इसे वसंतोत्सव भी कहते हैं।
		रात :	गज वाहन

सप्तम् दिवस - सुबह : सूर्यप्रभा वाहन
रात : चन्द्रप्रभा वाहन
अष्टम् दिवस - सुबह : रथोत्सवम्
रात : अश्व वाहन
नवम् दिवस - सुबह : पल्लकी उत्सव (श्रवणा नक्षत्र का दिन-भगवान वेङ्कटेश्वर का जन्म दिन)
द्वितीय उत्सव : अवभृथ उत्सव (चक्र स्नानम्) स्वामी पुष्करिणी में श्रीवराह स्वामी मंदिर के मंटप में।
रात : तिरुच्चि वाहन और बाद में ध्वजावरोहणम् (गरुड ध्वज को उतारना)।

आजकल की कार्यरत विधियाँ श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यम् में, भविष्य पुराण में निर्धारित विधियों का अनुपालन ही है। एकाध में थोडा अंतर मिल सकता है। पुरालेखों में सूचित है कि *कैयार - चक्रम् (सुदर्शन चक्रम्)* का उत्सव जिसमें बांबी की मिट्टी का घडों में लना और उस मिट्टी में अंकुरार्पण के लिए बीज (नवधान्य) बोना दोनों को गरुड ध्वजारोहण उत्सव के पहले दिनों में अलग अलग संपन्न होने की बात सूचित है। पुराण में इन दोनों प्रक्रियाओं का एक ही दिन में चलने की बात वर्णित है, वह भी ध्वजारोहण के पूर्व दिन पर। आजकल इस उत्सव को *सेनापति* उत्सव या *सेनै मुदलियार* उत्सव कहते हैं, न कि *सुदर्शन* उत्सव। पुराण में कहा गया है कि *ध्वजारोहण* उत्सव *उषःकाल* (सुबह - सुबह) संपन्न किया जाता है। लेकिन प्रस्तुत समय में यह उत्सव शाम को होता है। विभिन्न दिनों में चलनेवाली वाहन सेवाएँ तो समान ही हैं। सातवें दिन की रात का वाहन *'मंगलगिरि'* बताया गया है लेकिन आजकल यह नहीं है। शायद तिरुच्चि वाहन ही वह हो सकता है। इसी प्रकार *पुष्पयागम्* को पुराण में दसवें दिन संपन्न होनेवाला बताया गया है। लेकिन इसका आयोजन कुछ रुक गया सा लगता। किन्तु आजकल इसकी पुनर्व्यवस्था हो गयी है। यह 14-11-1980 से चल रहा है। परन्तु पूर्व निश्चित रूप से निर्दिष्ट दिन पर नहीं। ''वेङ्कटाचल माहात्म्यम्'' का संपादन और प्रस्तुतीकरण पसिंडि वेङ्कटत्तुरैवार (अन्य नाम जीयर रामानुजय्यन) के द्वारा शक संवत्सर 1413 में, 27 जून 1491 ई. में, हुआ था। शायद उन्होंने ही पुराण सम्मत रूप में पुष्पयागम् का आरंभ कराया हो (संख्या 95, जिल्द II)। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए पुष्पयागम् इस प्रकार से पुराण सम्मत रूप में स्थापित हुआ है।

संख्या 83 (जिल्द II) स्पष्ट करता है कि श्रीगोविंदराज स्वामी और नाच्चियारों (दो देवियों) का कल्याणोत्सव (विवाह महोत्सव) और तत्पश्चात् डोलोत्सव *वसंत मंटप* में उत्सव के पाँचवें दिन को संपन्न होता है। इसका उल्लेख संख्या 127 (जिल्द II) में प्रस्तुत है। किन्तु पाँचवें दिन को श्रीकृष्ण भगवान उत्सव मूर्ति बनते हैं। सातवाँ दिन वसंतोत्सव का है *(वसंतम् है)।*

हर उत्सव के छठवें दिन को तिरुमल में तीनों उत्सव मूर्तियों को रामानुजय्यन पुष्पवाटिका के मंडप में ले जाया जाता है। वहाँ *ज्ञानप्पिरान* यानी ज्ञान-प्रधान वराह स्वामी रहते। स्वामी पुष्करिणी के पश्चिमी तट पर विराजमान भगवान को *सुगिय - पडि* अर्पित किया जाता है। (सुगिय एक मीठा पदार्थ है)। वहाँ उनको झूले पर शोभित करा कर झुलाते भी हैं। तत्पश्चात् श्रीवराह स्वामी की तीन परिक्रमाएँ भी कराते हैं (संख्या - 68)।

तिरुवेङ्कटच्चिरुक्कन तिरुप्पनिपिल्लै एमपेरुमानार वेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर के एक अधिकारी थे। उन्होंने मलैकिनियनिन्नार पेरुमाल के लिए बारहवें दिन के उत्सव के संदर्भ में मनाये जानेवाले सात उत्सवों में हर एक के लिए एक समर्पण का विधान किया है। सातवें दिन पर एक और का। ये सालुव *नरसिंह मंटपम्* में संपन्न किये जाते हैं। यह मंटप *संपंगि - प्रदक्षिणम्* में है। इस मंटपम् की व्यवस्था सालुव नरसिंह राय के पुत्र इम्मडि नरसिंहराय महाराज ने शक संवत् 1426 में, 20 सितंबर 150 ई. में, किया था (संख्या 138)।

तिरुपति में श्रीगोविंदराज स्वामी की उत्सव मूर्ति को तिरुमंगै-आल्वार की मूर्ति तक ले जाया जाता है। ये कपिलतीर्थतम् जानेवाली सडक की एक ओर है। यह उत्सव के सातवें दिन पर होता है। ये *वैकाशी* और *आणि* मासों में संपन्न होनेवाले दोनों उत्सवों में घटित होता है। बाद में *तिरुवनंतल* (शेषवाहन) के दिन, नौवें दिन को भी मनाया जाता है। उन दिनों में *''अप्पडि''* चार दिन समर्पित होता है (संख्या 122)। कंदाडै रामानुजय्यंगार ने तिरुपति मंदिर की उत्तर दिशा में एक मंदिर का निर्माण करा कर उसमें कुलशेखर आल्वार की मूर्ति को प्रतिष्ठित कराया है। यह कार्य नवंबर, 1468 ई. से कुछ पहले संपन्न हुआ है (संख्या 36)। साथ साथ प्रायश्चित्तिक प्रसाद समर्पण की व्यवस्था भी की है। यह गोविंदराज स्वामी के लिए है। यह स्वामी के *तिरुवनंताल* तक पहुँचने के समय के 9 दिनों के लिए तथा *'विडायार्रि'* के समय में होता है। यह दोनों उत्सवों में चार दिन के लिए है (संख्या 134)। गोविंदराज स्वामी को रघुनाथ मंदिर (श्रीराम मंदिर) तक उत्सव में ले जाया जाता था। यह *तिरुवनंताल* उत्सव के 9 दिनों में होता है (संख्या 118)। वहाँ *मंटप* में उनकी दोनों नाच्चियारों के साथ अर्चित होते हैं। यह फिर *''विडायार्रि''* के दिन पर भी होता है। *''विडायार्रि'' वैकाशी* उत्सव के संदर्भ में संपन्न होता है और उसमें अनेक प्रकार के समर्पण भी निश्चित हैं (संख्या 110)।

श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के सभी सातों ब्रह्मोत्सव ध्वजारोहण से ही आरंभ होते थे। उनमें दो ब्रह्मोत्सवों में ही रथ यात्रा होती थी। ये महीने तमिल हैं *पुरट्टासि* में और *पंगुणि।* (जिल्द II संख्या 68, 96, 100, 105, 108, 110 और 111)। गोविंदराज स्वामी के लिए रथ यात्रा की व्यवस्था आठवें दिन पर है। यह दो *ब्रह्मोत्सवों* में, *वैकाशी* और *आणि* में, होता है।

सभी उत्सवों में लेखा प्रस्तुत करने की व्यवस्था है। श्रीवेङ्कटेश्वर से संबन्धित सात उत्सवों में और गोविंदराज स्वामी के दो उत्सवों में लेखा समर्पण होता है। शायद यह उत्सव मूर्तियों के सामने मंदिर के लेखपालों द्वारा संपन्न होता है। इस लेखा - समर्पण में शायद भक्तों से उत्सवों में समर्पित धन का लेखा ही हो सकता है। यह मंदिर के भाण्डागार में होता है। यह सामग्री भाण्डागार (अमुदुपडि-वासलिल) में प्रस्तुत होने से यह भी समझा जा सकता है कि चावल और अन्य प्रसाद के लिए उपयोग में आनेवाली सामग्री का भी लेखा-जोखा लिया जाता हो। यह *प्रसादों* और *पण्यारमों* से संबन्धित लेखा हो सकता है जो भक्तों के सामने प्रस्तुत होता है (जिल्द II) संख्या 115)।

चाहे स्पष्टतः कहीं भी उल्लिखित न हो रथ यात्रा के समय बडे रथ के सामने एक छोटे अलंकृत शून्य रथ का भी प्रचलन है। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के *ब्रह्मोत्सवों* को आरंभ करनेवाले भगवान ब्रह्म ही माने जाते हैं। ब्रह्म सृष्टि कर्ता हैं। वे ही भगवान के उत्सवों को संपन्न करते हैं। इसी को सूचित करने के लिए शून्य रथ या *ब्रह्मरथ* की व्यवस्था है। यह ब्रह्मरथ शून्य रथ इसलिए है कि ब्रह्मा निराकार रूप में उत्सवों के समय रहते हैं और उत्सवों का कार्य भार सम्हालते हैं।

घरों के सामने और पुष्पवाटिकाओं में अनेकों *मंटपों* का निर्माण हुआ है। ये तिरुमल और तिरुपति दोनों स्थानों में हैं। इनको भक्तों ने और देवदान प्रस्तुत करनेवालों ने बनवाया है। *ब्रह्मोत्सवों* और अन्य कुछ उत्सवों में तथा पवित्र दिनों में उत्सव मूर्तियों की आराधना यहाँ संपन्न की जाती है।

ब्रह्मोत्सवों के साथ साथ दोनों मंदिरों में अन्य उत्सव भी संपन्न होते रहे हैं। ब्रह्मोत्सव को तिरुक्कोड़ि - तिरुणाल भी कहते हैं। *कोदै - तिरुणाल* चित्तिरै महीने में (अप्रैल - मई) *चित्तिरै* नक्षत्र में आरंभ होता था और बीस दिन पर्यन्त चलता था। (जिल्द II संख्या 126)। इस उत्सव के प्रथम तीन दिनों में *''वसंतोत्सव तिरुणाल''* मनाया जाता था (संख्या 127)। भक्तों द्वारा प्रथम दिन, दसवें दिन और बीसवें दिन को नैवेद्य समर्पण होते थे। कंदाडै रामानुजय्यंगार ने, जो अपने ही द्वारा स्थापित रामानुजकूटम और सालुव नरसिंह के द्वारा स्थापित कूटम के मेनेजर थे, दोनों भगवानों को (श्रीवेङ्कटेश्वर और श्री गोविंदराज) उक्त उत्सवों के संदर्भ में 20 *अप्प - पडि* और 20 घडों के *पानकम्* (गुड मिला हुआ पानी) के समर्पण की व्यवस्थाएँ की। ये *पोन भंडारम्* (सुवर्ण को सुरक्षित रखनेवाला भण्डारम्) के भी अधिकारी थे। कोडै उत्सवों में *''ऊला''* गान भी साथ साथ चलता था। लेकिन उत्सव में उसका गमन धीरे धीरे होता था (संख्या 134)। कुमार तातय्यंगार ने भी कुछ समर्पणों की व्यवस्थाएँ की है। उनमें 20 *अप्प-पडि* समर्पण श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए दिनों पर्यन्त हैं (संख्या 109)। *महामण्डलेश्वर* उत्तमगण्ड गंडभेरुण्ड नरसराज उडैयार ने गोविंदराज स्वामी के लिए 20 *अप्प-पड़ि* की व्यवस्था की है जो उनके द्वारा निर्मित मंटपम् के पास भगवान को उत्सव के बीसों दिनों में अर्पित होता है। ये बीस दिन *कोदै*

- *तिरुणाल* से संबन्धित दिन हैं (संख्या 127)। ब्रह्मोत्सवों के समान *कोदै - तिरुणाल* भी प्राचीन काल से निर्धारित ही है, प्रधानतः वीर नरसिंहदेव यादव राज के सत्रहवें राज्य शासन वर्ष से - अर्थात् सन् 1222 से। लेकिन लगता है कि यह उत्सव सन् 1404 ई. से संपन्न होता आ रहा है (जिल्द I, संख्या 168 और 191)।

इसी प्रकार मुल्लै तिरुवेङ्कट जीयर ने *अध्ययनोत्सवम्* (*वैष्णव आळ्वारों* के पाशुरों का गायन) की व्यवस्था की है। ये तिरुमल की *अरिशानालैयन* पुष्पवाटिका के मैनेजर भी थे। यह व्यवस्था शक संवत्सर 1312, अर्थात् 8 दिसंबर 1390 ई., में हुई है। इसके लिए 1200 *पणम्* समर्पित किये गये हैं। यह *तिरुप्पावै* पाशुर गायन उत्सव के समय बीच के दस दिनों के लिए है। (*तिरुप्पावै* पाशुरम् *आण्डाल* रचित हैं)। *आण्डाल* को शूडिकोडुत्त - नाच्चियार भी कहते हैं। पाशुर गायन *मार्गळि* मास *(धनुर्मास)* में होता है। *मलैकिनियनिन्न - पेरुमाल* और उनकी दोनों नाच्चियारों के सामने उत्सव के समय पाशुर (गीत) गाये जाते हैं। इन उसव समयों में तिरु - विथियों में भी पाशुर गायन होता है। श्रीगोविंदराज स्वामी के उत्सवों में भी इस समय पाशुरों का गायन होता है (संख्या 187, जिल्द I)। शक संवत्सर 1367 में, 13 दिसंबर 1445 में, तिरुपति के दो श्रीवैष्णवों ने मंदिर के दो लेखामुद्दों में गोविंदराज स्वामी के समर्पणों के लिए, खासकर 30 दिनों के समर्पणों के लिए, हर दिन के सेवार्थ देवदान दिया था। यह *मार्गळि* मास के *तिरुप्पल्लि - एळुच्चि* के लिए था जो *मार्गळि* मास में ही संपन्न होता है (15 दिसंबर से 15 जनवरी के बीच) (संख्या 212 जिल्द I)। इस प्रकार अध्ययनोत्सव और *तिरुप्पल्लि - एलुच्चि* एक ही महीने में संपन्न होने पर भी दो अलग - अलग उत्सव ही माने जाते हैं। भगवान की इन मूर्तियों के लिए अलग - अलग समर्पण निर्देशों से ही यह विदित होता है। लेकिन ये समानांतर में मनाये जानेवाले उत्सव हैं। *अध्ययनोत्सव* के दिन 22 निर्देशित हैं और बाद में दो और दिन इसके साथ जोडे गये हैं। कुल *अध्ययनोत्सव* के 24 दिन हैं (संख्या 134, जिल्द II)। लेकिन यह संख्या 23 है (संख्या 83, 109 में)। संख्या 138 के अनुसार तो पूरे ये 24 दिन बनते हैं। *तिरुप्पल्लि - एलुच्चि* तो *मार्गळि* मास में पूरे 30 दिन तक मनाया जाता है। *इयलपा* (*प्रबन्धम्* का एक अंश) तुवक्कम् (आरंभ) भी प्रथम दिवस पर होने की सूचना है और *तिरुवाध्ययनम्* 24 दिन चलने की बात है। यह *तण्णीर - अमुदु* (वल्लि) - *तिरुत्तु*-नाल (जलस्रोत के मार्ग को साफ करने के दिन तक) चलता है (जिल्द II, संख्या 138)। इस प्रकार यह जल मार्ग का साफ करना *आकागंगा* जल प्रपात से संबन्धित होता है। आज भी दैनिक पूजाओं के लिए *आकाशगंगा* जल प्रपात से पवित्र जल लाया जाता है। इसका उल्लेख संख्या 95 में है। यह भी स्पष्ट उल्लिखित है कि यह कार्य कडैकोलि - नाच्चियार के *तिरुअध्ययनम्* के बाद के दिन को घटित किया जाता है। इस संदर्भ में बहुत बडे परिमाण में *प्रसाद* को जल प्रपात तक पहुँचाया जाता है। इस कार्यक्रम

में मंदिर के *स्थानत्तार* और अन्य सेवक समूह भाग लेता है। उस समय भक्त समुदाय भी इसका अंग बनता है।

तिरुपति में भी उसी प्रकार जल प्रवाह को साफ करने की पवित्र प्रक्रिया संपन्न हुई है। इसके निरीक्षण के लिए गोविंदराज स्वामी चले थे (संख्या 85)। इस संबन्ध में जो परिलेख है उसके जीर्ण रूप में होने के कारण उसका समय और जल स्रोत की सूचना नहीं मिल पायी है। लेकिन एक और परिलेख संख्या 29 में गोविंदराज स्वामी के *स्नान* और प्रक्षालन की सूचना मिलती है। इस संदर्भ में यह भी सूचित है कि ये स्नान श्रीदेवी और भूदेवी के साथ होते हैं और विश्वकल्याण की भावना से संपन्न हैं। रामानुजाचार्य द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार यह किया गया है। ये रामानुजार्य शायद *वैष्णवाचार्य* श्रीरामानुज ही होंगे। यह कार्य एक विशिष्ट जल स्रोत से प्राप्त जल से हुआ बताया गया है। इस जल को *देवताओं* ने पवित्र किया है। इसमें पवित्र नदियों का पानी आकर मिला है, यह सूचना भी है। लेकिन इस स्नपन प्रक्रिया का और स्नपन प्रक्रिया का संदर्भ सूचित नहीं है। साधारणतः गोविंदराज स्वामी को *अवभृथ* स्नान के लिए *कपिलतीर्थम्* तक ले जाते होंगे। यह अवभृथ दिन उनके *ब्रह्मोत्सव* के नौवें दिन में *वैकाशी* उत्सवों के समय होता था। यह *चक्र-स्नान* पवित्र स्नान के रूप में भगवान के *सुदर्शन-चक्र* को कराया जाता है। *यजुर्वेद उपाकर्म* के दिन *श्रावण* मास में *यज्ञोपवीत* का धारण भी कराया जाता है, विशिष्ट धार्मिक अनुष्ठानों के साथ। यह साधारणतः *श्रावण - पूर्णिमा* के दिन को ही होता है। यही संख्या 29 में उल्लिखित है। लेकिन लगता है कि यह गोविंदराज स्वामी का *अध्ययनोत्सव* है और जिस रूप में श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान का होता है वैसा ही चलता है। आजकल गोविंदराज स्वामी का *अध्ययनोत्सव 'तै' (तमिल)* महीने में संपन्न किया जाता है। लेकिन परिलेखों में *मार्गळि* महीने का उल्लेख है, *''तै''* का नहीं। अर्थात् 15 जनवरी को नहीं किया जा रहा है।

एर्रकंपयदेव महाराज के पुत्र तथा सालुव नरसिंह के संबन्धी सालुव मल्लयदेव महाराज ने शक संवत्सर 1385, 18 जनवरी 1464 ई, में *तिरु-पवित्र-तिरुणाल (पवित्रोत्सवम्)* की व्यवस्था श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए की है। यह पवित्रोत्सव *आवणि* मास में 5 दिन पर्यन्त चलता है। इसमें भी *अंकुरार्पण* उत्सव होता है। यह शुक्ल पक्ष दशमी को संपन्न किया जाता है। *तिरुमामणि - मंटपम्* को ग्यारहवें दिन पर सजाया जाता है और तीन उत्सव मूर्तियों को बारहवें दिन पर (शुक्ल पक्ष द्वादशी को) *'पवित्रं'* किया जाता है। इसमें *दर्भ-दूर्वा* द्वारा या रेशमी धागे के साथ भगवान को बाँधते हैं। तत्पश्चात् तिरुवीथियों में उनकी उत्सव यात्रा होती है। परिलेख में मुख्य उत्सव दिन के रूप में शुक्ल पक्ष द्वादशी का उल्लेख है, फिर भी उसके बाद के कुछ अतिरिक्त दिन पर भी उत्सव को चलाना ही पडेगा। क्योंकि इस उत्सव के दिनों की संख्या 5 बतायी गयी है। उत्सव समय के अंतराल में अनेक प्रकार के प्रसादों का बहुत बडी

मात्रा में प्रस्तुत होने का भी उल्लेख है (संख्या 18)। शक संवत्सर 1415 में, 17 फरवरी 1494 ई० में, चन्द्रगिरि के एक ब्राह्मण दण्डनायक ने (सैनिक अधिकारी) उत्सव मूर्तियों के लिए एक *अप्पड़ि* का समर्णण स्थापित किया था। यह पवित्र - तिरुणाल के आरंभिक दिन पर अर्पित *''तुवक्कम्''* है। शक संवत्सर 1417 में, 31 आगस्त 1495 ई में, कंदाड रामानुजय्यंगार ने एक *अप्पडि* हर दिन के रूप में 5 दिनों के लिए समर्पणों की व्यवस्था की थी (संख्या 134)। शक संवत्सर 1426 में; 20 सितंबर 1504 में, तिरुवेङ्कटच्चिरुक्कन तिरुप्पनिप्पिल्लै एमपेरुमानार ने *अतिरस-पडि* की व्यवस्था की। यह पवित्रोत्सवम् के पाँचों दिनों में अर्पित होता है (संख्या 138)। यह पवित्रोत्सवम् बहुत वर्ष पहले ही रुक गया था। लेकिन यह आजकल चालू है।

शक संवत्सर 1395 *विजय* नाम संवत्सर में, 15 जून 1473 ई० में, सालुव नरसिंह ने *डोला - महोत्सव - अन्ना-ऊँजल तिरुणाल* का आरंभ कराया था। इस उत्सव पर हंस के आकार में निर्मित डोले पर भगवान झूलते हैं। यह बहुत धूमधाम से तथा चावल, दूध, घी, दही, सुगंध पदार्थ, तेल, नये कपडे, चंदन, हल्दी आदि के समर्पणों से युक्त उत्सव होता है। यह 5 दिनों का उत्सव है। यह *मिथुन* मास के शुक्ल पक्ष में संपन्न किया जाता है। इसमें नवधान्य और बडी मात्रा में अन्न *प्रसादों* सहित अर्चनाएँ तथा छः प्रकार के *पण्यारम्* अर्पित होते हैं। (खाद्य प्रसाद जो घी में तले, पकाये या सेंके जाते हैं उन्हें *''पडि''* कहते हैं। ये साधारणतः चावल या दानों से पकाये जाते हैं।)। ये दिन और रात दोनों समयों में अर्पित होते हैं। ये सालुव नरसिंह की माताजी के नाम पर समर्पित हैं। उनका नाम मल्लयम्मान है (संख्या 50)। यह उत्सव ऊँजल (झूले) पर उनके द्वारा निर्मित *मंटपम्* में मनाया जाता है। यह मंटपम् ध्वजस्तंभ की दक्षिण दिशा में *संपंगि - प्राकारम्* में है। आजकल इसे तिरुमलराय मंटपम् कहते हैं। बाद में कुछ अन्य भक्तों ने भी उत्सव मूर्तियों के लिए उस *मंटपम्* में कुछ अन्य *प्रसादों* की भी व्यवस्था की है। किसी ने एक दिन की और किसी ने दो दिनों की व्यवस्था की है। यह उस उत्सव के लिए ही नहीं कुछ अन्य उत्सवों के लिए भी है।

ऊँजल उत्सव की स्थापना के साथ साथ सालुव नरसिंह ने उत्सव - मूर्तियों को (श्रीवेङ्कटेश्वर, श्रीदेवी और भूदेवी) *ऊँजल* पर शोभित कराने की भी व्यवस्था की है। यह उत्सव *चित्तिरै तिरुणाल्* के सात दिनों पर्यन्त चलता है। (यह *चित्तिरै* मास का *ब्रह्मोत्सवम्* है)। कोदै तिरुणाल उत्सव के दसवें दिन को और *मकर संक्रमण* के दिन पर छः प्रकार के निवेदनों की व्यवस्था भी उन्होंने की है (संख्या 50)। तिम्मन दण्डनायक, चन्द्रगिरि के एक सेनाधिकारी, ने फरवरी 1494 ई० में ऊँजलि उत्सव के संदर्भ में पहले दिन के समर्पणों की व्यवस्था की है। यह उनके द्वारा *पवित्रोत्सवम्* में जिस प्रकार की व्यवस्था हुई है उसी प्रकार की व्यवस्था यह भी है (संख्या 113)। कंदाडै रामानुजय्यंगार ने उत्सव मूर्तियों के लिए

पाँचों दिनों के समर्पणों की व्यवस्था की है। यह *पवित्र - तिरुणाल* के संदर्भ में है (संख्या 134)। तिरुवेङ्कटच्चिरुक्कन तिरुप्पणिपिल्लै एमपेरुमानार ने भी उक्त पाँचों दिनों के लिए समर्पणों की व्यवस्था की है। यह भी उनके द्वारा पवित्र - तिरुणाल के दिनों के लिए उन्होंने जैसा किया था, वैसा ही चालू है (संख्या 138)।

उक्त उत्सवों के अलवा *तोप्पु - तिरुणाल्* (बाग में संपन्न होनेवाला उत्सव) का उल्लेख मिलता है जो 20 दिन पर्यन्त चलता था (संख्या 113)। तिम्मन - दण्डनायक ने भी एक समर्पण उत्सव के आरंभिक दिन (प्रथम दिवस) के लिए और एक समर्पण प्रथम दस दिनों के बाद के दिवस के लिए अर्पित किया। यह आरंभिक सेवा मानी जाती है (तुवक्कम्)।

उत्सवों के दिनों के लिए ही नहीं, कुछ विशिष्ट पवित्र दिनों के लिए, यथा श्रीराम नवमी, नृसिंह जयंती और कृष्णाष्टमी (कृष्ण जयंति) आदि के लिए भी विशेष पूजाओं, समर्पणों और उत्सवों की व्यवस्थाएँ की गयी हैं। श्रीराम नवमी चैत्र शुद्ध नवमी को संपन्न होता है। भक्त अपने अपने घरों में भी पर्व मनाते हैं। यह भगवान श्रीरामचन्द्र का जन्म दिन है। रघुवंश में उस दिन को रघुनाथ का (राम का) जन्म हुआ है। यह उत्सव तिरुपति के श्रीराम मंदिर में होता है। एक और उत्सव उनके हनुमान (आंजनेय) की मूर्ति के पास भी श्रीराम के आगमन के साथ जुडकर संपन्न किया जाता है। माडा वीथियों में शोभा यात्रा भी निकलती है (संख्या 118)। तिरुपति के पास नरसिंगरायपुरम् में भी दाता शरणु सेट्टि के द्वारा निर्मित मंटपम् में भी समर्पण होते हैं (संख्या 130)। इन मंदिरों में उस संदर्भ में 'आस्थानम्' भी चलता है।

इसी प्रकार नरसिंह जयंती भी मानायी जाती है। श्री महाविष्णु के नृसिंह के रूप में अवतरित होने के दिन को ही नृसिंह जयंती के रूप में मनाया जाता है। नृसिंह ने राक्षस हिरण्यकश्यप का संहार किया था और हिरण्य कश्यप के पुत्र प्रह्लाद की रक्षा की थी। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष चतुर्दशी के दिन को ही नृसिंह के अवतार का दिन माना जाता है। इस दिन के अगले दिन ही वैशाखपूर्णिमा है। इस अवसार पर उत्सव मनाने के लिए तिम्मयन ने कुछ प्रावधान कराये हैं। ये अलगिय - सिंगार, योग - नरसिंह के मंदिर में विशेष पूजाएँ आदि के लिए है। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर में विमान - प्रदक्षिणम् भी उस वक्त संपन्न होता है (संख्या 101)। कंदाडै रामानुजय्यंगार ने अलगिय सिंगार के लिए ''वेङ्कटत्तारि'' नाम से कुछ समर्पण प्रस्तुत किये हैं। ''वेङ्कटत्तारि'' का अर्थ है वेङ्कटाद्रि का सिंह। भगवान के सिंगार के लिए तिल का तेल, श्रीगंध लेपन आदि के समर्पणों की व्यवस्था और साथ साथ प्रसादम्, पण्यारम् आदि की भी व्यवस्था है। वसंतपंचमी और पंगुणि अमावस्या के लिए भी कुछ समर्पणों की व्यवस्था की गयी है (संख्या 38)। तिरुप्पाणिपिल्लै एमपेरुमानार ने वसंत - पूर्णिमा के दिन के लिए आराधना की व्यवस्था की

है (संख्या 138)। वसंत पौर्णमी को चित्र - पौर्णमी भी कहते हैं। चित्तिरै (चैत्र) मास में वसंत पौर्णिमा आती है।

श्रावण कृष्ण पक्ष अष्टमी को श्रीजयंती मनायी जाती है। यही श्रीकृष्ण जन्माष्टमी भी कही जाती है। घर घर में कृष्णाष्टमी पर्व मनाया जाता है। अर्जुन के रथ सारथी, श्रीकृष्ण का यह जन्म दिन है। महाभारत युद्ध के आरंभ में श्रीकृष्ण ने भगवत्गीता का उपदेश अर्जुन को किया था। श्रीकृष्ण के इस जन्म दिन को गोकुलाष्टमी भी कहते हैं। गोकुल में श्रीकृष्ण पला-बढ़ा था। इसीलिए श्रीजयंती को ही गोकुलाष्टमी है। इतना ही नहीं रोहिणी नक्षत्र भी इस दिन से जुडता है। इस दिन को अच्छी तरह मनाने के लिए अनेक भक्तों ने श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज मंदिरों के लिए कुछ देवदान की व्यवस्थाएँ की हैं, तथा समर्पण अर्पित किये हैं। श्रीकृष्ण ने जब बच्चा था तब गोकुल के घरों में माखन चोरी की थी। इसीलिए उस दिन पर दो बाम्बी की लकडियों को समानांतर में गाढ़ कर उनको एक रस्सी से मिलाकर एक ''चरखी'' द्वारा मटकी टंगा कर खींचते हुए खेलते हैं। मटकी को ऊपर तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं तो कुछ युवा लोग फोडने का प्रयास करते हैं। जब चरखी की रस्सी ऊपर की और खींची जाती है तो वह युवकों की पहुँच से दूर ऊपर जाती है। सैकडों लोग इस पर्व - खेल को देखने के लिए इकट्ठे हो जाते हैं। इस पर्व - खेल के बाद भक्त भगवान को कुछ विशेष प्रसाद अर्पित करते हैं। इस उत्सव को तमिल में ''उरि - अडि'' और तेलुगु में ''उट्ल पंडग'' कहते हैं।

श्रीजयंति या कृष्णाष्टमी के दिन, श्रीकृष्ण के अवतरण का दिन होने के कारण, श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को विविध प्रकार के समर्पण अर्पित होते हैं। ''शिडाय - पडि'' श्रीगोविंद राज को अर्पित करते हैं (संख्या 88, 91, 96, 101)। श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में और श्रीगोविंदराज मंदिर में श्रीकृष्ण को अर्पित होने के संबन्ध में लेखा भी (संख्या - 138) है।

''उरि - अडि'' को श्रीजयंति के दिन पर ही मनाते हैं, आवणि मास में (संख्या 83)। यह अनेक स्थानों पर और प्रमुखतः दाताओं के घरों के सामने भी उत्सव मनाया जाता है। साथ साथ मंटपों और मठों में भी भक्ति और श्रद्धओं से यह उत्सव मनाया जाता है। तरह तरह के प्रसाद पिल्लै (बाल कृष्ण) को अर्पित किये जाते हैं (संख्या 146)।

उक्त दिनों के अलावा अन्य पवित्र दिन भी हैं जो सूर्य के संक्रमणों के संदर्भ में उत्सवों के लिए निर्धारित हैं। संक्रमण के दिनों में तिलार्पण भी होता है। यह वंश के मृत बन्धु के नाम पर होता है। स्त्री और पुरुष दोनों को तिलांजलियाँ अर्पित करने की एक पुरातन भारतीय परंपरा है। यह अमावस्या के दिनों में भी करते हैं।

अमावास्याओं में *तमिल 'तै'* अमावास्या प्रमुख दिन है। उस दिन को श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिर में पवित्र समर्पण भगवान को होते हैं। उस दिन को हनुमान को शान्त किया जाता है (संख्या 96) तथा शोभा यात्रा भी चलती है। दाताओं के *मंटपों* के पास भी (संख्या 105 और 111) और बारह *अमावस्या* के दिनों में भी इस प्रकार की व्यवस्थाएँ चलती हैं (संख्या 127)।

मकर संक्रमण के अवसर पर सालुव नरसिंह ने उत्सव मूर्तियों की अन्न ऊँजल (झुलाने का) उत्सव की व्यवस्था भी की है। *मंटप* में यह व्यवस्था है और उस समय अनेक प्रकार के प्रसादों के अर्पण भी संपन्न होते हैं (संख्या 50)। तिम्मणन् नामक एक तिरुचानूर के *सभैयार* ने उस दिन पर श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज दोनों को प्रसाद समर्पण की व्यवस्था की है (संख्या 100)। दोनों मंदिरों की लेखाओं में तदर्थ देवदान अर्पित किये हैं। ये देवदान, दोनों भगवानों को अलग अलग रूप से प्रस्तुत हैं (संख्या 115)। दो अन्य दाताओं ने गोविंदराज स्वामी को ही देवदान अर्पित किये है (संख्या 117, 127)।

आडि - अयनम् या *कटक - संक्रमणम्* (कर्काटक *संक्रमण*) अर्थात् दक्षिणायन का आरंभ 15 जुलाई से होता है जैसा कि मकर - संक्रमण अर्थात् उत्तरायण 15 जानवरी से। ये भारतीयों के लिए विशेष महत्व के हैं। मंदिर के कार्यक्रमों में भी ये दिन विशेष रूप से महत्व रखनेवाले हैं। *तिरुमहामणिमंटपम्* में उत्सव मूर्तियाँ अलंकृत करके रखी जाती हैं। उस संदर्भ में विविध प्रकार के *प्रसाद* और *पण्यारम्* निवेदित होते हैं और तत्पश्चात् उन प्रसादों को भक्तों में वितरित किया जाता। इतना ही नहीं *अर्चकों, जीयरों, जीयंगार, आचार्य पुरुषों* के बीच ये प्रसादम् पहले वितरित होते हैं। *मिरासीदार* और मैनेजमेन्ट के सदस्य भी प्रसाद वितरण समूह में गिने जाते हैं। *आस्थानम्* के अधिकारी भी इसमें सम्मिलित हैं। मंदिर में होने वाले तीन आस्थानों में यह वर्ष में प्रप्रथम *आस्थानम्* है। आजकल इसे *आणि - वर - आस्थानम्* कहते हैं। आणि मास के अंत तक का लेखा - इस में होता है। लेकिन यह आगे के मास, *आडि* मास, के प्रथम दिन पर यह संपन्न होता है। इसी कारण से परिलेखाओं में इसे *''आड़ि-अयनम्''* कहा गया है। इस मास से मंदिर का वर्ष आरंभ होने के कारण इसे ''फसली वर्ष'' भी कहते हैं। इसकी विशेषता यह है कि मंदिर की चाबियों के बडे गुच्छे को एक के बाद एक के पास रखने के सिलसिले का आरंभ इसी दिन से होता है। अधिकार पानेवाले हैं - *अर्चक, जीयंगार,* मंदिर के कार्यनिर्वाहक अध्यक्ष, एवं कार्यनिर्वाहक अधिकारी हैं। यह एक प्रकार से मंदिर की सेवा में अपने अधिकारों का निर्वाह करनेवालों की पंक्ति का परिचय देता है।

यह मंदिर के वर्ष के आरंभ का दिन होने के कारण आय - व्यय लेखा का रूपायन भी होता है। इसी दिन से सब गिना जाता है। इस पक्ष पर गौर किया जाता है। यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान और श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिरों से संबन्धित होता है। इस लेखा के आरंभ से पहले या आरंभ के तुरंत

बाद कुछ समर्पणों की बात भी उल्लिखित है। संख्या 116 में तिरुवेङ्कटमुडैयान और गोविंद पेरुमाल को ही *''आड़ि - अयनम्''* के दिन प्रसाद समर्पणार्थ सामग्री देने की बात का उल्लेख ही नहीं बल्कि गोविंदराज के मंदिर में विलसित तिरुविरुंड - पेरुमाल, प्रसन्न-तिरुमलैयान, यादव नारायणप्पेरुमाल और उडैयवर के लिए भी है। इससे यह सूचित होता है कि श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज मंदिरों के अलग अलग लेखा रखे जाते थे, चाहे गोविंदराज मंदिर भी तिरुमल के भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर के *स्थानत्तार* के पर्यवेक्षण में ही क्यों न हो। (संख्या 95, 115, 116, 118 और 132)। आजकल तो उक्त दोनों मंदिर ही नहीं, उनके साथ साथ अन्य छोटे - बडे मंदिरों की भी तिरुमल - तिरुपति देवस्थानम् बोर्ड के निरीक्षण में ही पूरी कार्यवाही चल रही है। इसके लिए तिरुपति में एक मुख्य कार्यालय भी है। यहीं पर सारा लेखा रखा जाता है। इस संदर्भ में आजकल 1 जुलाई वर्षारंभ की तारीख निश्चित है। यही आजकल फसली वर्ष है। यह *आडि-अयनम्* या *आनिवार आस्थानम्* के स्थान पर नियत है। आनिवार आस्थानम् का दिन 15 जुलाई का होता है।

''आडि अयनम्'' को *कटक-संक्रमणम्* और *मकर-संक्रमणम्* भी कहा जाता है। लेकिन सामान्यतः *''संक्रमणम्''* अथवा *''संक्रांति''* तो *''अयन-संक्रांति''* के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यह क्रमशः सूर्य के कर्कटक और मकर रेखाओं में चलने के (संक्रमण के) आधार पर निर्धारित है। उत्तरायण में मेष राशि की ओर और दक्षिणायन में तुला की ओर यह गमन होता है। इन संक्रमणों को *विशु - संक्रमणम्* भी कहा जाता है। ये वसंत और हेमंत विषु (सायन) हैं। ये *चित्तिरै* (चैत्र) या *मेष* मास में तथा *अर्पशि* या *अल्पिशि* मास के आरंभ में क्रमशः आते हैं। ये विष्णु - पुण्यकाल तर्पण के लिए मुख्य माने जाते हैं। *चित्तिरै-विषु* दिन भक्तों द्वारा रघुनाय या श्रीराम को प्रसाद अर्पित होते हैं। इस प्रकार अन्य दिनों में भी (संख्या 88)। श्रीगोविंदराज और नाच्चियार की उत्सव मूर्तियों को *चित्रकूट-मंटपम्* में अर्पित होते हैं। यह चित्रकूट-मंटपम् बहुत बडा मंटप है जो गोविंदराज स्वामी के सामने मुख द्वार पर है। यहाँ के समर्पण तिरुचानूर *सभा* (प्रबंधक समिति) के सदस्यों के द्वारा होते हैं (संख्या 105)। श्रीकरण मंटपम् में उत्सव मूर्ति के सामने समर्पण होते हैं। *श्रीकरण मंटप* में ही लेखा-समर्पण भी होता है। यहाँ परमेश्वर मंगलम् के तीन निवासियों द्वारा यह कार्य संपन्न होता है (संख्या 132)। *अर्पशि-विशु (तुला संक्रमण)* के संदर्भ में विघ्नेश्वर श्रीमान, मंदिर के लेखपाल, रघुनाथ को भक्ति समर्पण प्रस्तुत करते हैं (संख्या 88)। *एकांगी श्रीवैष्णवों* से एक पेरियपेरुमाल दासार *तिरुमंजनम्* और *तिरुवोलक्कम्* सेवाएँ गोविंदराज को अर्पित करते हैं (संख्या 137)। ये तिरुमल में रहते हैं।

मकर संक्रमण के पूर्व दिन ''भोगी'' त्यौहार है और बाद का दिन *पाडिय-वेट्टय (पारुवेट)* है। संक्रमण के बाद के दिन पर *''कनुम त्यौहार''* मनाया जाता है। उस दिन को *पारुवेट* (आखेट) उत्सव

मनाया जाता है। पारुवेट उत्सव के लिए तिरुपति में श्रीगोविंदराज स्वामी को नाच्चियार सहित तिरुपति से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित मंटपम् तक ले जाया जाता है। यह मंटपम् तिरुपति-रेणिगुंटा रोड पर है। उस उत्सव में कुछ भक्तों द्वारा प्रदत्त प्रसादों को भगवान को अर्पित किया जाता है। कुछ दाताओं ने उस मंटप का निर्माण भी कराया है। उन्हीं से प्रसाद समर्पण व्यवस्था भी की गयी है। अन्टेवरगण्ड उरगोल-सुरत्राण बैचराज तिम्मराजा, जो महामण्डलेश्वर कोम्मराज शिरु-तिम्मराज के सेकरेटरी थे, ने अपने स्वामी (मालिक) के नाम पर एक *मंटप* का निर्माण कराया है। यह गोविंदराज स्वामी को *''तिरुवोलक्कम्''* समर्पण के लिए निर्मित किया गया है। इसी मंटप में सेनानी - मुदलियार का भी समर्पण होता है। यह उनके तिरुच्चि वाहन पर आने के संदर्भ में संपन्न होता है (संख्या 97)। कोयिल - सेल्वि रामानुज जियर ने जो पंकयच्चेल्लि पुष्प-वाटिका और उसमें स्थित मंटपम् के मैनेजर है, गोविंदराज स्वामी को पाडिय-वेट्ट्ल से लौटते समय (मंदिर में पहुँचने) मंटपम् के प्रवेश स्थान पर एक अप्प-पडि प्रसादम् का प्रवाधान कराया है (संख्या 122)।

''कनुमा'' उत्सव का दिन होने के कारण शठकोपदासर नरसिंहराय मुदलियार ने नाच्चियार को, *सूडिकुडुत्त-नाच्चियार* यानी आंडाल को, ''कनुप्पडि'' निवेदन की व्यवस्था की है (संख्या 68)। उस दिन पर रघुनाथ को स्नपन (स्नान) की व्यवस्था है और उसके बाद प्रसाद समर्पण। (संख्या 88)। सीता देवियार को भी स्नपन कार्यक्रम के बाद प्रसाद समर्पण है (संख्या - 188)।

महानवमी, शरन्नवरात्री उत्सव का नौवाँ दिन और *वैकाशि-विशाखम्, विशाख* मास में विशाखा नक्षत्र के दिन रघुनाथ की पूजा और प्रसाद समर्पण होते हैं (संख्या 88)।

दीपावली के दिन साधारणतः घरों के सामने दीप मालाएँ रखकर गृहालंकरण किया जाता है। यह एक आनन्दोत्सव है। सामान्यतः बच्चे पटाके जलाकर इस संदर्भ को और आनंददायक रूप में मनाये हैं। मंदिर में उस दिन को मुख्य *आस्थानम्* संपन्न करते हैं। आजकल भी यह प्रथा है। 15 वीं शताब्दी में, शक संवत्सर 1413 अर्थात् 27 जून 1491 ई में, महामंडलेश्वर बैच्चराज तिम्मयदेव महाराज ने इस अवसर पर श्रीवेंकटेश्वर भगवान की उत्सव मूर्ति के लिए स्नपनोत्सव का प्रवधान कराया है। इस संदर्भ में चन्द्रवलय के समान फूल मालाओं से अलंकरण भी भगवान के लिए होता है। दीपावली के दिन तिरु-वीथियों में भगवान की शोभायात्रा भी संपन्न होती है। इसी प्रकार का उत्सव *''उगादि''* के दिन संपन्न किया जाता है। इसी प्रकार श्रीगोविंदराज स्वामी के लिए भी उक्त दोनों के संदर्भ में उत्सव होते हैं। जब *तिरुवोलक्कम्* या *आस्थानम्* दोनों मंदिरों में चलता है तब चन्दन, पान-सुपारी, *प्रसादम्* और *पण्यारम्* भी अर्पित होते हैं। इतना ही नहीं उस समय *मात्रा* (दही-चावल) का अर्पण *मूलविराट मूर्ति* के लिए होता है। यह श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज स्वामी के लिए होता है (संख्या 94)। महामंडलेश्वर नरसराज,

कोम्मराज सिरु-तिम्मराज के पुत्र, की ओर से एक अप्पपडि प्रसाद भी उस वक्त के लिए प्रावधानित है। भगवान के लिए 115 *अप्प-पड़ि* अर्पण का कुल-मिलाकर प्रावधान है। यह अनेक संदर्भों के समर्पणों की सम्मिलित संख्या है (संख्या 127)। परमेश्वरमंगलम् के निवासियों ने श्रीगोविंद पेरुमाल को, श्रीकर्ण मंटपम् में अर्पित करने के लिए एक *सुगिय-पडि* का प्रावधान कराया है। यहाँ दीपावली के संदर्भ में लेखा भी प्रस्तुत होता है। यहाँ *दीपावली* के साथ साथ *उगादि* (नया वर्ष) और चित्तरै विषु के दिनों में भी यह संपन्न होता है। एक *अप्प-पडि* का अर्पण मंटपम् में *आड़ि-आयनम्, तिरुक्कार्तिकै, ऊरि-अडि* और *'तै' अमावस्या* के अवसरों पर भी प्रसाद समर्पण होता है। इन सभी दिनों में तिरुपति की तिरु-वीथियों में उत्सव मूर्तियों की शोभा यात्राएँ संपन्न की जाती हैं (संख्या 132)।

दीपावली त्यौहार के समान ही तिरुकार्तिकै त्यौहार भी प्रमुख है। यह त्यौहार *कार्तिक-पूर्णिमा* के दिन को मनाया जाता है। घरों के अलावा शिव और विष्णु के मंदिरों में भी यह त्यौहार मनाया जाता है। उस दिन को कंदाडै रामानुजय्यंगार *तिरुप्पु-मंटपम्* में श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को एक समर्पण अर्पित किया जाता है (संख्या 56)। इससे यह भी विदित होता है कि उस वक्त एक मूर्ति की शोभा यात्रा भी निकलती है (संख्या 138)। संख्या 123 से सूचित होता है कि *कूटम* या उत्सवाग्नि प्रज्जवलित की जाती है। शायद ये मंदिर के सामनेवाली सडक पर प्रज्जवलित होती होगी। उसके दर्शनार्थ उत्सव मूर्ति को वहाँ ले जाया जाता है। वहाँ से मंदिर में वापस लौटते समय भगवान को *यमुनत्तुरैवान मंटपम्* में ले जाते हैं। यह मंटपम् मंदिर की ईशान्य दिशा में पुष्पवाटिकाओं के पास हैं। यहाँ नित्य पूजा के लिए फूल इकट्ठे किये जाते हैं। वहाँ भगवान को नैवेद्य समर्पण होता है। तिरुपति में गोविंदराज स्वामी को भी इसी प्रकार शोभा यात्रा में ले जाते हैं और नैवेद्य समर्पण भी करते हैं। यह *श्री-करण मंटपम्* में संपन्न होता है (संख्या 132)। रघुनाथ (श्रीराम) को भी इसी तरह शोभा यात्रा और नैवेद्य समर्पण किया जाता है (संख्या 88)। इसे पंगुणि-उत्तिराम पर भी फिर किया जाता है।

हर महीने में दो *एकादशी* तिथियाँ आती हैं। एकादशी हर पक्ष का ग्यारहवाँ दिन होता है। ये उपवास के लिए नियत दिन (तिथियाँ) हैं। *द्वादशी* उपवास तोडने के दिन हैं। सुभोजन स्वीकारने के दिन हैं। वर्षा ऋतु के चार मासों को *''चातुर्मास्य''* कहते हैं। इन चार महीनों में आनेवाले एकादशी के दिन अति पवित्र माने जाते हैं। प्रमुखतः *सन्यासियों* के लिए तो अत्यंत पवित्र दिन हैं। चातुर्मास्य दीक्षा लेकर सन्यासी एक विशेष स्थान पर ठहर जाते हैं। ये चार मास जुलाई से अक्तूबर के बीच आते हैं। मान्यता है कि इन चारों महीनों में श्रीविष्णु योग निद्रा में जाते हैं। योग निद्रा में श्रीमहाविष्णु शयन-एकादशी में पहुँचते हैं और उत्थान *एकादशी* या *प्रबोधन एकादशी* को जागते हैं। चातुमास्य के प्रथम, मध्य और अंतिम *एकादशी* और *द्वादशी* तिथियों को भक्त समूह शोभायात्राएँ और प्रसाद समर्पण श्रीवेङ्कटेश्वर

भगवान और श्रीगोविंदराज स्वामी के लिए व्यवस्थित करते हैं। तदर्थ श्रीमान महामण्डलेश्वर कोम्मराज शिरु-तिम्मराज उडैयार ने शक संवत्सर 1412 में, अर्थात् जून 1490 ई. में, 1600 *नर्पणम्* के निवेश से आयायनार्थ व्यवस्था की है। ये *तिरुवोलक्कम् (आस्थानम्)* के समय भगवान के समर्पणों के लिए हैं। ये प्रधानतः प्रथम *द्वादशी,* मध्य *एकादशी* तथा *उत्थान-द्वादशी* के दिनों (मुख्यतः) श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए और दो तिरुवोक्कम् दो द्वादशी के दिनों के लिए हैं। इनका निवेदन शोभा यात्राओं के बाद होता है। ये तिरुवीथियों में प्रथम *एकादशी,* मध्य *एकादशी* और *तिरुवोलक्कम् उत्थान* के दिन पर होते हैं। उत्थान को *प्रबोधन* क्षीराब्धि या *कैसिक-द्वादशी* या अंतिम द्वादशी भी कहते हैं। यह *चातुर्मास्य* का अंतिम दिन भी है। शोभायात्रा गोविंदराज स्वामी की जो संपन्न की जाती है, उसे महामंडलेश्वर नरसिंह उडैयार ने शक संवत्सर 1416 में, अर्थात् 5 जून 1494 ई में और सामग्री का प्रावधान कर एक *अप्पडि* समर्पण का प्रावधान कराया है। तदर्थ 2300 पणम् का देवदान भी किया है (संख्या 127)। यह दोनों मंदिरों की लेखा में जमा किया गया है। यह शक संवत्सर 1415 अर्थात् 9 मार्च 1494 ई में हुआ है। यह देवदान *कैशिक-तिरुवोलक्कम* श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए हैं और वह भी *उत्थान एकादशी* के तुरन्त बाद और भगवान के सामने *कैशिक पुराणम* के पठन के बाद समर्पित होता है। यह मलैकिनियनिन्र पेरुमाल की उत्सव मूर्ति के सामने ही नहीं बल्कि *मूल मूर्ति* वेङ्कटेश्वर भागवान को भी निवेदन किया जाता है। मूल विराट को पेरिय-पेरुमाल, पोन-मेयुड़-पेरुमाल (शायद विमान वेङ्कटेश्वर या श्रीनिवास ही हो, विमान पर वेङ्कटेश्वर की चित्रित मूर्ति हो), श्रीनरसिंह पेरुमाल (योग नरसिंह) और *अलगिय शिंगार* (संख्या 38, 138, 139, 101), आदि वराह पेरुमाल (वराह स्वामी जो स्वामी पुष्करिणी के उत्तरी तट पर विराजमान है) (संख्या 115) सभी के लिए उक्त कार्यक्रम होते हैं। इस परिलेख में *कैशिक पुराण* पठन *एकादशी* के दिन पर होने की बात भी उल्लिखित है। यह एकादशी के दिन पर होता है। *द्वादशी* के दिन पर छोटा *आस्थानम्* भी संपन्न किया जाता है। यह दिन *मुक्कोटि चक्रतीर्थम्* का दिन है। यह जलाश्य, जो जल प्रपात से बना है, तिरुमल पर मंदिर से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित है। मान्यता है कि उस दिन पर तीन करोड देवता इस जलाशय में पवित्र स्नान करते हैं। इस संदर्भ में *उग्रमूर्ति* अर्थात् *उग्र श्रीनिवास* की शोभा यात्रा भी प्रातः काल ही संपन्न होती है। यह सूर्योदय से पूर्व ही होता है क्योंकि सूर्योदय के बाद उग्रमूर्ति अपनी दृष्टि में पडनेवाले सब कुछ को निगल लेते हैं।

स्वर्गीय श्री टी.के.टी. वीरराघवाचार्य ने अपनी पुस्तक ''हिस्टरी आफ् तिरुपति'' वाल्यूम : I, पृष्ठ 50-51 में ''कैशिक पुराण'' के बारे में संक्षिप्त परिचय दिया है। सधन्यवाद उसको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

''एक विद्वान ब्राह्मण था। मुक्ति प्राप्ति को लक्ष्य बनाकर उन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड आरंभ किया। उसमें एक गलती हो गयी, खासकर निर्वहण प्रक्रिया में। इस कारण से वे ब्रह्मराक्षस बन गये। लेकिन

ब्राह्मण को एक वरदान भी उस समय मिला कि अनेक वर्षों के बाद एक भक्त आयेगा (होगा) और उसके हाथों उनको शाप - मुक्ति मिलेगी तथा मोक्ष प्राप्ति भी।

एक चण्डाल कुल में एक भक्त का जन्म हुआ। उसका नाम था नमपादुवन। वह अप्रतिहत भक्ति साधना पथ पर चल रहा था। उसने एकादशी व्रत नियमित रूप से 12 वर्षों के लिए रखा। 12 वें वर्ष में उस भक्त चंडाल को ब्रह्मराक्षस (ब्राह्मण जो राक्षस बना था) ने रास्ते पर चलते समय रोका। उसको खा लेना चाहा। चंडाल ने उस राक्षस के लिए आहार बनने के लिए तैयार हुआ, लेकिन उसने एक इच्छा उसके सामने रखी। उसके अनुसार वह मंदिर जायेगा और वहाँ अपने नियमित प्रार्थनाएँ संपन्न कर वापस आयेगा। इसके बाद ब्रह्मराक्षस उसे अपना आहार बनाये, ब्रह्मराक्षस ने इसकी कल्पना नहीं की थी। उसने सोचा कि वह व्यक्ति फिर वापस नहीं आयेगा। क्योंकि उसको इस भक्त पर विश्वास नहीं था। लेकिन उस चण्डाल भक्त के द्वारा बार बार विनती करने और विश्वास दिलाने के बाद ब्रह्मराक्षस ने विनती स्वीकार की। चण्डाल ने एक और ब्राह्मण के सामने घटी घटना बताई। उस ब्रह्मण ने उसे उस रास्ते पर वापस लौटने से रोका। लेकिन अपने दिये वचन को निभाते हुए चंडाल फिर ब्रह्मराक्षस के पास गया। इससे ब्रह्मराक्षस के मन में सोच उभरी कि अब मोक्ष-प्राप्ति का समय आ गया है। उसने चंडाल को एक शर्त पर छोड देने का वादा किया। उसके अनुसार उस समय तक वह अपनी कमाई पुण्य को उसे दान में दे दें। चण्डाल ने कहा कि ऐसा करने की शक्ति अपने में नहीं। वह तो केवल निष्काम कर्म कर रहा है और उसने स्वयं अपने कर्मों का फल भगवान को अर्पित किया है। तब ब्रह्मराक्षस ने चण्डाल को पुसलाने वाले शब्दों से कहा कि कम से कम वह अपने अंतिम गीत जिसे उसने कैशिक राग में गाया था, उसका फल ही सहीं वह उसे दें। लेकिन उसका कोई अच्छा जवाब नहीं मिल पाया क्योंकि चण्डाल ने सब कुछ भगवान को समर्पित कर दिया था। तब ब्रह्मराक्षस चण्डाल के पैरों पर गिरा और साष्टागं दन्ण्डवत प्रमाण किया। क्योंकि उससे ही ब्रह्मराक्षस को मुक्ति मिलनी थी। उस वक्त ब्रह्मराक्षस ने अपनी पूरी कहानी उसे सुनायी। तब चण्डाल ने नम्रता पूर्वक कहा कि वह निम्न जाति का है। अगर उससे किसी अन्य व्यक्ति का उद्धार हो सकता है तो अवश्य भगवान से ही वह प्रार्थना कर सकता है। यही उसकी एक मात्र इच्छा है। बस इतना ही चण्डाल ने कहा तो तुरंत उसी समय ब्रह्मराक्षस का शाप विमोचन हो गया और उसे मोक्ष की प्राप्ति हो गयी।

यही पुराण गाथा हर वर्ष सुनाई जाती है। श्रीआलवन्दार की वंश परंपरा का कोई न कोई व्यक्ति इस गाथा को सुनाता आ रहा है। हर वैष्णव मंदिर में, खासकर तमिलनाडु में, यह गाथा भक्तों को अवश्य सुनायी जाती है।''

मार्गलि-तिरु-द्वादशी या *मुक्कोटि द्वादशी* का दिन भी अत्यंत महत्वपूर्ण और पवित्र दिन है। इस दिन को मंदिर में उत्सव संपन्न किया जाता है। यह मुक्कोटि द्वादशी, *मुक्कोटि एकादशी* या *वैकुण्ठ*

एकादशी का अगला दिन ही है। वैसे वैकुण्ठ एकादशी का दिन उपवास का दिन है। इस दिन पर वैकुण्ठ द्वार खुलता है श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर में। भक्त वैकुण्ठ द्वार के मार्ग से *प्रदक्षिणा* करते हैं। इस द्वार का रास्ता संकरा होता है। यह द्वार खुलता है शुक्ल पक्ष दशमी की रात को और भक्तों के लिए खुला रहता है *मुक्कोटि द्वादशी* की रात तक। फिर वह द्वार एक वर्ष पर्यन्त बंद ही रहता है। मुक्कोटि द्वादशी के दिन उत्सव मूर्तियों की शोभा यात्रा निकलती है। यह यात्रा स्वामी पुष्करिणी तक चलती है। इस यात्रा में उत्सव मूर्तियाँ श्रीवराह स्वामी मंदिर में स्वामी के सामने आसीन करायी जाती हैं। पूजादि के बाद पुष्करिणी में *सुदर्शन चक्र* को स्नान कराया जाता है। मान्यता है कि इस दिन पर *मुक्कोटि देवता* समूह सुदर्शन *चक्र* के साथ पुष्करिणी में स्नान करते हैं। भगवान के आशीर्वाद पाते हैं। यह भी मान्यता है कि चक्र स्नान से पुष्करिणी का पानी पवित्रता से मंडित हो जाता है। इसी कारण हजारों भक्त पुष्करिणी में उस समय स्नान करते हैं। पुष्करिणी जल में कम से कम तीन डुबकियाँ लेते हैं। इसी मार्गली-तिरु-द्वादशी के लिए सालुव नरसिंहराज उडैयार ने *पेरिय पेरुमाल* श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए बहुत बडे पैमाने में समर्पण अर्पित किये हैं। इससे मलैकिनियनिन्र पेरुमाल के लिए *तिरुमहामणि-मंटपम्* में भी प्रसाद समर्पित होते हैं। यह समर्पण शक संवत्सर 1389 में, 16 मार्च 1468 ई. में, पहली बार हुआ है। इस समस्त को समग्र रूप में आयोजित करने के लिए उन्होंने एक अग्रहारम् को भी अर्पित किया है। उस अग्रहारम् का नाम है मुरुक्कम्पट्टु। इस अग्रहारम् का समर्पण सुवर्ण दान के साथ तर्पण सहित श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को अर्पित किया गया है। यह भी *अर्धोदय* पवित्र दिन से तीन महीने पूर्व प्रदत्त है। यह अर्धोदय 28 दिसंबर 1467 ई. में आया *मकर - संक्रांति* का दिन है। यह दिन श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए *मार्गलि* मास में संपन्न होनेवाले *अध्ययनोत्सव* से समाविष्ट होकर आया है (संख्या 31)। इस दिन के लिए तिरुचानूर के एक *सभैयार* अप्पयन ने भी शक संवत्सर 1413, अर्थात् 28 दिसंबर, 1491 ई. में; मलयप्प भगवान को एक समर्पण प्रस्तुत किया है। उस वक्त मलयप्प स्वामी उक्त दाता के घर के सामनेवाले *मंटप* में विराजमान हुए थे। यह उस दिन समर्पित होनेवाले अन्य अर्पणों के साथ है (संख्या 96)। यह एक उत्सव की सूचना देता है। शरणागति नामक एक मंदिर के लेखापाल और एक अन्य व्यक्ति के साथ शक संवत्सर 1415 में, अर्थात् 9 मार्च 1494 ई. में, श्रीगोविंदराज स्वामी के लिए किया है (संख्या 116)। कंदाडै रामानुजय्यंगार ने तिरु-द्वादशी के पर्व पर एक *अप्प-पड़ि* और *कोडै-तिरुणाल* के उत्सवों के लिए 20 *अप्प-पडि* बीस दिनों के लिए प्रावधान किया है। यह वेङ्कटत्तुरैवार या उग्र-श्रीनिवास भगवान के लिए समर्पण है। यह आगस्त 1495 ई. में हुआ है जो कुल मिलाकर 97 अप्प-पडि प्रावधान है। यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान और श्रीगोविंदराज स्वामी के लिए है। इस प्रावधान का उपयोग उत्सवों और अन्य दिनों में संपन्न किये जानेवाले विशेष पर्वों के लिए है। तदर्थ प्रावधान के लिए 6500 *पणम्* अर्पित किये गये हैं (संख्या 134)। तिरुप्पनिप्पल्लै एमपेरुमानार ने सितंबर 1504 ई. में एक

अतिरस-पडि का समर्पण श्रीवेङ्कटत्तुरैवार, *उग्र-बेरम्,* को अर्पित किया है। यह भी *तिरुद्वादशी* के लिए है। इसके सथ अतिरस-पडि की संख्या 153 हुई है। यह मलैकिनियनिन्न पेरुमाल के लिए है। यह प्रावधान नरसिंहराय महाराज के पुत्र इम्मडि नरसिंहराय महाराज के नाम पर है। इसके लिए 3825 *पणम्* का प्रावधान किया गया है (संख्या 138)।

''उगादि'', नव संवत्सर का प्रथम दिन है। यह एक घर-घर का पर्व दिन है। इस संदर्भ में घर घर में मिष्ठान्न भोजन के साथ आनंद की लहर उफनती है। ''उगादि'' मार्च और अप्रैल के बीच आनेवाले प्रथम पक्ष में आता है। उस दिन के पर्व के लिए बैच्चराज तिम्मयदेव महाराज ने शक संवत्सर 1413 में, 27 जून 1491 ई. में, *तिरुवोलक्कम्* के लिए मलैकिनियनिन्न पेरुमाल के लिए एक बहुत बडा प्रावधान किया है। पेरुमाल के स्नपन (स्नान) के पश्चात् चंदन लेप के प्रावधान के साथ फूल मालाओं से अलंकरण होता है। तत्पश्चात् भगवान की शोभा यात्रा भी संपन्न होती है। इसी प्रकार *दीवाली* पर्व दिन पर भी किया जाता है। ये उत्सव तिरुमल पर श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए और तिरुपति में गोविंदराज के लिए संपन्न होते हैं (संख्या 94)। परमेश्वर - मंगलम् के तीन निवासियों ने शक संवत्सर 1416 में, 10 जनवरी 1495 ई. में, *उगादि* पर्व दिन के लिए एक *सुगिय-पडि* का प्रावधान कराया है और इसी प्रकार एक *सुगिय-पडि* दीपावली पर्व दिन के लिए भी। ये समर्पण श्रीगोविंदराज स्वामी के लिए हुए हैं। यह तिरुपति में *श्रीकरण - मंटपम्* में होता है (संख्या 132)।

आजकल प्रधान *आस्थानम् उगादि* पर्व दिन पर ही चलाया जाता है *(आडि-अयनम्, आनिवार आस्थानम्)।* यह *दक्षिणायन* के आरंभिक दिन में संपन्न होता है। यह *दीपावली* के दिन पर भी संपन्न होता है। उस समय उत्सव मूर्तियों को *तिरुमणि-मंटपम्* में अलंकरण के साथ अर्चना-पूजाएँ संपन्न करते हैं। तत्पश्चात् पाँच प्रकार के *प्रसादम* समर्पित होते हैं - यथा (नमकीन) पोंगलि, *चक्कैर-पोंगलि* (मीठा); *पुलि-ओगिरम् (पुलिहोरा), दध्योदनम्* और *मोलगु-ओगिरम्।* इनके साथ साथ चार प्रकार के *पण्यारम्* भी प्रस्तुत होते हैं - *लड्डू, वडा, अप्पम* और *दोसे।* इन सब को भगवत् प्रसाद *(स्थान-बहुमानम्)* के रूप में वंश-पारंपरिक सेवकों, प्रशासन संबन्धी अधिकारियों, मंदिर के नौकरों, आदि में बाँटा जाता है। तत्पश्चात् *गोष्ठि-विनियोगम्,* उपस्थित भक्तों में वितरण, किया जाता है। *उगादि* के *आस्थानम्* में तो कुछ विशेष विषय पढकर सुनाते हैं - ये नव वर्ष से संबन्धित विशिष्टि विशेषताएँ होती हैं। ये एक मिरासीदार (वंश पारंपरिक सेवक) नैवेद्य समर्पण से पहले होती हैं।

इसी प्रकार तीन अन्य *आस्थानम्* भी मंदिर में चलते हैं। ये *श्रीजयंती* या *गोकुलाष्टमी* के दिन, *कैशिक* या *उत्थान-द्वादशी* और *श्रीराम नवमी* के दिन पर होते हैं। छोटे परिमाण में *प्रसादम्* और *पण्यारम्* वितरित होते हैं। इस संदर्भ *(कैशिक-द्वादशी)* में *कैशिक पुराणम्* का पठन भी होता है।

15 वीं शताब्दी के अंत तक मंदिर के अधीन में 50 गाँव आये हैं। ये सब देवदान के रूप में अर्पित गाँव हैं। इनमें लगभग 20 गाँव तिरुपति के पास के ही हैं। तिरुमल मंदिर से संबन्धित *स्थानत्तार* (प्रबंधक) इन गाँवों से खेतों की उपज वसूल करते थे। इसके लिए कुछ उपयुक्त अधिकारियों को भी नियुक्त किया गया है। गाँवों की खेतों से वसूल किया गया धान्य तिरुपति के भंडागार में लाया जाता है। उस वक्त *सेनै-मुदलियार* को नव धान्य के स्वागत के लिए शोभा यात्रा द्वारा लाया जाता है तथा उस समय कुछ समर्पण (नैवेद्य निवेदन) भी होता है। यह *श्रीकरण मंटपम्* में होता है (सं. 121)।

तिरुपति की उत्तरी दिशा में शठकोपदासर नरसिंहराय मुदलियार ने एक मंदिर का निर्माण कर उसमें रघुनाथ (श्रीराम) की मूर्ति की स्थापना की है। यह सालुव नरसिंह के नाम पर हुआ है। उनके लिए कुछ समर्पणों का प्रावधान भी कराया है। यह शक संवत्सर 1402 में शावरी वर्ष में हुआ है (सन् 1480 ई. में) (संख्या 73 और 74)। इसके बाद उस मंदिर में उडैयार की प्रतिष्ठा भी हुई है। तदनंतर नित्य नैवेद्य समर्पण रघुनाथ को पहले और बाद में उडैयार को होने लगा (संख्या 75)। आज भी उडैयार एक छोटे कमरे में रघुनाथ की मूर्ति की उत्तर दिशा में हैं। रघुनाथ सीतादेवी और लक्ष्मण समेत हैं। गोविंदराज स्वामी शोभा यात्रा में कुछ प्रमुख या विशेष संदर्भों में इस मंदिर तक आ पहुँचते हैं। इस मंदिर के सामनेवाले *मंटपम्* में पूजा नैवेद्यों को स्वीकार करते हैं। श्रीराम नवमी के दिन भगवान रामचन्द्र को विशेष पूजाएँ अर्पित होती हैं और तत्पश्चात् शोभा यात्रा भी। उस यात्रा में भगवान उस मंदिर के 100 गज की पूरी पर स्थापित महान राम *भक्त* हनुमान की मूर्ति तक पहुँचते हैं (संख्या 118)। शरणु-शेट्टि का एक और समर्पण उस *मंटप* में संपन्न होता है (संख्या 130)।

तिरुचानूर में अलगिय-पेरुमाल की स्थापना 15 वीं शताब्दी में हुई थी। उनके साथ किसी और के होने की सूचना किसी भी परिलेख में नहीं मिलती। उस समय के ''तिरुचानूर'' गाँव का उल्लेख मिलता है परिलेखों में। आज तो उस गाँव का यह नाम बहु प्रचलित हो गया है। अपने आदेश पत्र के अन्त में सालुव नरसिंह ने गोविंदराज स्वामी के प्रसादम् के वितरण के संबन्ध में उसके *स्थानिकों* को (प्रबंधकों को) स्पष्ट सूचित किया है, उनके प्रतिवेदन के आधार पर, कि परंपरा के अनुसार वे आगे बढें। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर की परंपरा का अनुसरण करें। यह आदेश सालुव नरसिंह का है और *प्रसाद* वितरण की परंपरा से संबन्धित है। उन्होंने तिरुमल के *स्थानत्तार* को दो थालियों भर मक्खन तिरुवेंगलनाथ के श्री भंडारम् से तिरुचानूर के अलगप्प - पेरुमालदेवरु को देने का ही आदेश था (संख्या 30)। यह आदेश शक संवत्सर 1389 में, अर्थात् 27 दिसंबर 1467 ई. में, दिया गया है। उसी शक संवत्सर में कंदाडै रामानुजय्यंगार ने नरसिंहराज उडैयार को पुण्य फल मिलने की कामना से अलगियपेरुमाल को एक चढावा अर्पित किया है (संख्या 33)। तिरुचानूर मंदिर के एक परिलेख के खण्ड में अलगप्प पेरुमाल के लिए अन्न प्रसाद अर्पण के लिए चढावा की सूचना है। उसके अनुसार हर

दिन चावल का प्रावधान और उसे प्रसाद बनाने के लिए आवश्यक सामग्री के लिए यथा घी, मूँगदाल, नामक आदि - अलगप्प पेरुमाल के श्री भण्डारम से देने के संबन्ध में आदेश हैं। इससे उनके लिए एक अलग भण्डारम् और लेखा केन्द्र होने की सूचना भी मिलती है। एक और परिलेख से तो तिरुचानूर के अलगियपेरुमाल का उल्लेख मात्र मिलता है (संख्या 154)।

विभिन्न त्यौहारों तथा उत्सवों के संदर्भ में भक्तों द्वारा व्यवस्थार्थ दी गयी देवदानों के अतिरिक्त बहुत से भक्तों ने अपने अपने जन्म-दिनों और अपने अपने संबन्धियों के जन्म दिनों के संदर्भ में भी अर्पण समर्पित किये (संख्या 88)। कुछ समर्पण तो अपने गुरुओं और अन्यों के नाम पर भी हैं जो उनके संदर्भ में शुभ की कामना से युक्त हैं। मंदिर के लेखपाल विट्टलेश्वर श्रीरामन तो *पूर्व-फल्गुणी* के दिन पर रघुनाथ को एक समर्पण प्रस्तुत किया है। यह समर्पण उनके *आचार्य* शोट्टय तिरुवेंकट तातय्यंगार के पुत्र कुमार तातय्यंगार के नाम पर है। यह *धनिष्ठा, पुनर्वसु* और *स्वाति* नक्षत्रों पर उनके तीन संबन्धियों के नाम पर हैं (संख्या 18)। जीयर ने अपने *गुरु* पट्टर्पिरान जीयर के नाम पर *पुनर्वसु* नक्षत्र के दिन, अपने गुरु के जन्म-नक्षत्र होने के कारण, पहले श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को और बाद में उडैयवर को समर्पण प्रस्तुत किया है (संख्या 102)। एक और मंदिर लेखपाल अनंतप्पर नारायणन ने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को अपने वार्षिक जन्म नक्षत्र के दिन पर एक समर्पण प्रस्तुत किया है। वह नक्षत्र है *पूर्व-फल्गुणि* (संख्या 114)। एक और लेखपाल ने तीन अन्यों के साथ गोविंदराज स्वामी को एक समर्पण प्रस्तुत किया। वह भी *पूर्व-फल्गुणि* नक्षत्र पर ही है लेकिन वह कुमार तातय्यंगार के नाम पर है (संख्या 117)। कोयिल सेल्वि रामानुज जियर ने, जो *पंकयच्चेल्लि* फूल-वन के मैनेजर थे, अपने शिष्य अरुविल्लि अनंतय्यन अभयन की ओर से उसके जन्म दिन के अवसर के लिए पेरयि-पेरुमाल को एक समर्पण अर्पित किया है। *पेरिय पेरुमाल* मानी मूलविराट श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान ही हैं। इसके अनुसार प्रथमतः श्रीवेङ्कटेश्वर को और बाद में उडैयार को समर्पण होते हैं। यह *मखा* नक्षत्र के 13 दिनों के लिए समर्पण है। यह उनके *आचार्य* कंदाड अप्पन का जन्म नक्षत्र है (संख्या 122)।

इसी प्रकार कुछ दाताओं द्वारा अपने *गुरुओं,* अध्यापकों और अन्यों को *प्रसाद* वितरण के लिए प्रावधान पूर्वक देवदान भी किये गये हैं। इस प्रकार के *प्रसाद-दान* की व्यवस्था कुछ मंदिर के लेखपालों द्वारा भी की गयी। कुछ उनके बन्धु वर्गीय लोगों द्वारा भी। यह कुमार तातय्यंगार को उनके घर तक पहुँचाने के लिए और पल्लि भट्टार शिंगप्पेरुमाल और अनंतालवार दोनों को व्यवस्थित किया गया है (संख्या 114, 115)। इनमें बाद का व्यक्ति प्रथम के गुरु हैं जिन्होंने दाता को तीन ''R'' सिखाये हैं (संख्या 116)। उन्हीं दोनों व्यक्तियों को दाताओं ने जल अर्पण भी दिये हैं (संख्या 118)। उनमें एक दाता के गुरु ही हैं। उनमें अंतिम को और एक और व्यक्ति माडपूसि अय्यप्पिल्लै अनंतय्यन को *प्रसादम्* के भागांश जल अर्पण के साथ प्रस्तुत किये गये हैं (संख्या 121)।

भक्तों के लिए सीढियों के मार्ग से चढते उतरते समय की सुविधा को ध्यान में रखकर महामण्डलेश्वर सालुव पर्वतराज ने (सालुवराज के पुत्र) एक *मंटपम्* का निर्माण करवाया है। यह *मुलंकालमुरिप्पान* सीढियों के पास हैं। यह छोटे शिखर के पास है जो प्रथम पहाड के शिखर के सामने हैं। इसे *''गालि गोपुरम्''* कहते हैं (हवा का गोपुरम्)। इसके पास एक पानी वितरण केन्द्र की स्थापना भी की गई है। यह यात्री भक्तों की प्यास बुझाने के लिए है (संख्या 23)। विघ्नेश्वर श्रीरामन नामक एक और मंदिर के लेखपाल ने एक और पीने के पानी के केन्द्र की व्यवस्था की है। यह एक बडे ऊँचे पर्वत के पास है जिसे *''पेरिय-एर्र-तलैप्पु''* कहते हैं। यहाँ पानी का वितरण एक व्यक्ति के द्वारा कराया जाता था। उस व्यक्ति को 3 *पणम्* मासिक वेतन दिया जाता था। *पुरट्टासि* त्यौहार के समय एक और व्यक्ति भी इस काम के लिए नियुक्त होता था। (यह दस दिन के लिए होता था)। उनको उन दिनों के लिए 40 *पणम्* मिलते थे। दोनों को यह राशि *श्री भंडारम्* से प्राप्त होती थी (संख्या 88)।

आज हम सभी 12 *वैष्णव आळ्वारों* को तिरुपति के गोविंदराज स्वामी के मंदिर में प्रतिष्ठत पाते हैं। तिरुमल पर श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी के मंदिर में एक भी *आळ्वार* की मूर्ति नहीं है। रामानुजाचार्य यानी उडैयवर ही प्रतिष्ठित मिलते हैं। नम्माळ्वार *कपिलतीर्थम्* मंदिर के पास प्रतिष्ठित मिलते हैं। उनकी प्रतिष्ठा पहले ही, सन् 1285 ई. में, वहाँ हुई है (संख्या 57, 58, पृष्ट 69 और 70)। गोविंदराज स्वामी के मंदिर के पास आळ्वारों की स्थापना में सर्व प्रथम तिरुमंगै आळ्वार की स्थापना है। उनके दैनिक प्रसादों की व्यवस्था से संबन्धित सामग्री का भी प्रावधान किया गया है। यह राजराज चोळ III के 19 वें राज्य वर्ष काल में हुआ है (अर्थात् सन् 1234 ई. में)। (जिल्द : संख्या 40 और पृष्ठ 53-54)। 15 वीं शताब्दि के तृतीय भाग में, शक संवत्सर 1390 यानी सन् 1468 ई. में, कंदाडै रामानुजय्यंगार ने मंदिर का निर्माण कर *मूल बेरम् (मूल मूर्ति)* की स्थापना की है। यह कुलशेखर आलवार की है। यह तिरुपति से बाहर उत्तर की दिशा में चलनेवाली सडक पर है। तदर्थ *स्थानत्तार* ने कर-मुक्त भूमि ऐलमांडियम् गाँव में दी है और उससे उत्पन्न फसल के भाग को वसूल करने का दायित्व भी लिया है। उससे प्रति दिन अन्न प्रसाद की आवश्यकताओं की आपूर्ति होती है। यह प्रावाधान *शात्तुमुरै* (जो *माशि* मास में *पुनर्वसु* नक्षत्र पर संपन्न किया जाता है) और *तिरुपल्लि-एलुच्चि* (जो *मार्गळी* मास में मनाते हैं) के लिए है (संख्या 36)। इसके बाद 30 वर्ष के अनंतर *पोर-भण्डारम्* के मैनेजर होने के बाद रामानुजय्यंगार ने जुलाई 1495 में कुलशेखर की *मूल मूर्ति* को *पुनर्वसु* नक्षत्र के 13 दिनों के लिए प्रसाद समर्पण की व्यवस्था की है। यह उनका जन्म नक्षत्र भी है। यह मूर्ति गोविंदराज स्वामी के मंदिर में प्रतिष्ठित है। नाच्चियार को रामानुजय्यंगार के वार्षिक जन्म दिवस पर, चित्तिरै नक्षत्र में *माशि* मास में, *परिवट्टम* के साथ समर्पण दिया है। इसके लिए और अन्य विशेषों के लिए 5000 *पणम्* मंदिर के कोष में प्रस्तुत भी किये है (संख्या 140)। कुलशेखर पेरुमाल को दैनिक नैवेद्य अर्पण आदि के लिए उन्होंने

अगस्त 1495 ई. में ही देवदान अर्पित किया है। उस दान के साथ 13 *तिरुवोलक्कम्* का भी इंतजाम किया है। यह 13 दिन पर्यंत *चित्तिरै* नक्षत्र में उडैयवर, जो श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में है, उनके लिए है। लेकिन भक्ति समर्पण प्रथमतः श्रीवेङ्कटेश्वर को अपवर्तन के साथ संपन्न होना है। इसके लिए मंदिर को 6500 *पणम्* राशि समर्पित हुई है (संख्या 140)।

तीरमडक्किपट्टि के पल्लिकोंडपेरुमाल कार्पुरम मूवरायर नामक व्यक्ति ने शोलमण्डलम् के वेण्णैवाशल गाँव को तिरुमंगैयालुवार के *मठप्पुरम्* के रूप में दान में दिया है। यह भवन निर्माण के लिए है। जल तर्पण सहित सुवर्ण दान के साथ पेरुमाल एन्नैयालुण-कन्नर (कृष्ण) के लिए दिया है। यह 15 नवंबर 1472 ई. में चन्द्र ग्रहण के दिन हुआ है। 27 नवंबर 1472 ई. में उन्होंने दुगुना दैनिक समर्णण के लिए श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को अर्पित किया है। यह *पल्लिकोण्ड्न-संधि* के लिए है। दाता के भाग *प्रसादम्* देने के लिए तिरुमंगैयालवार मंदिर के मैनेजर एमपेरुमानार जीयर को प्रदान करने का भी आदेश है। इसी प्रकार गाँव दान के दोनों भाग और *प्रसादम्* के अंश *पल्लिकोंण्डन्-मंटपम्* के निर्माण के लिए और *प्राकार* की दीवारों के निर्माण के लिए उपयोग में लाया जायेगा। यह आळ्वार मंदिर से संबन्धित है (संख्या 49)। इससे यह स्पष्ट होता है कि एख छोटा मंदिर तो पहले ही निर्मित हो चुका है आळ्वार के लिए तिरुपति से बाहर *कपिलतीर्थम्* रोड पर। शठकोपदासर नरसिंहराय मुदलियार ने शक संवत्सर 1397 में, 20 अक्तूबर 1475 ई. में 200 *पणम्* को तिरुमंगैयालवार के श्री *भंडारम्* में जमा किया है। जिससे गोविंदराज मंदिर के आळ्वार की मूर्ति की आराधना हो। यह भी *कार्तिक* नक्षत्र युक्त कार्तिक मास में संपन्न हो। क्योंकि यह आळ्वार का जन्म नक्षत्र है। यह समर्पण श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर की ओर से हो, इसी उद्देश्य से *पणम्* वहाँ समर्पित हुआ है। इस समर्पण के द्वारा एक *अप्प-पडि,* पान-सुपारी, चंदन का एक गोला आदि प्रस्तुत किये जाते हैं। यह भी रामानुज अय्यंगार के नाम पर हो और कार्तिक नक्षत्र के हर दिन यह समर्पण हो (संख्या 62)।

कब तिरुमंगै आळ्वार को छोडकर अन्य आळ्वारों की मूर्तियों की स्थापना श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिर में हुई है, इसकी निश्चित सूचना नहीं मिलती है। परिलेखों में इसका उल्लेख नहीं है। लेकिन पेरियत्ताळ्वार, नम्माळ्वार, तिरुमंगैयाळ्वार और कुलशेखर आळ्वार के सांदर्भिक सूचनाएँ मिलती हैं। उनके समर्पणों के संदर्भ में उडैयवर की भी सूचना मिलती है। ये समर्पण *वसंतमंटपम्* में, जो मंदिर के सामने है, समर्पित होते हैं। ये भी उनसे संबन्धित *सात्तुमुरै* तिरुवध्ययनम् के संदर्भ में हैं। हर आळ्वार के प्रबन्धम् गीत सात्तुमुरै में उनके सामने गाये जाते हैं। (संख्या 83)। इसी प्रकार नम्माळ्वार, कुलशेखर आळ्वार और तिरुमंगैयालवार के संदर्भ में भी उनके *सात्तुमुरै* गाये जाते हैं (संख्या 130)।

शठकोपदासर नरसिंहराय मुदलियार ने तो बारहों आलवारों के *सात्तुमुरै* गाने के लिए 5200 *पणम्* की राशि मंदिर के कोष-भंडार में समर्पित की है। इन में सूडिकुडुत्त-नाच्चियार (आण्डाल) भी सम्मिलित हैं। यह भी क्रमशः उनके जन्मदिनों के संदर्भ में आयोजित होता है। जन्म दिन भी जन्म-नक्षत्र के योग के साथ गिने जाते हैं। उडैवर (रामानुज) की मूर्ति को भी समर्पण होते हैं। रामानुज मूर्ति श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर में हैं। इन समर्पणों के साथ उन्होंने रघुनाथ (श्रीराम) के लिए 12 दिनों के अध्ययन की व्यवस्था की है। यह चित्तिरै मास (चैत्र मास) में होता है। मलैकिनियनिन्र पेरुमाल के लिए *तिरुक्कोडि तिरुणाल* के लिए विविध मंटपों में समर्पणों की व्यवस्था की है। ये कंदाडै रामानुजय्यंगार के नाम पर ही किये गये हैं (संख्या 68)।

हर *आळ्वार* के *सात्तुमुरै* का महीना और नक्षत्र की नियमन-विधि मास क्रम में इस प्रकार है -

(1) नम्माळ्वार : जन्म नक्षत्र *विशाखा, वैकासि* मास, *तिरुवायमोळि* पाठ।

(2) पेरियाळ्वार : जन्म नक्षत्र स्वाति, आणि मास, *तिरुप्पल्लांडु* एवं *तिरुमोळि* पाठ।

(3) सूडिक्कोडुत्त नाच्चियार : *पूरम (पूर्वा-फलगुणि) नक्षत्र, आडि* मास, *तिरुप्पावै* और *तिरुमोळि* माठ।

(4) पूगैयाळ्वार : *तिरुवेनम् (श्रवणा)* नक्षत्र; *अर्पशि* मास; *तिरुवंताड़ि वैयनतकलि।*

(5) पूदत्ताळ्वार : *धनिष्ठा* नक्षत्र, *अर्पशि* मास; *तिरुवन्तादि*-अनपेतकलि पाठ।

(6) पेयाळ्वार : *शतयम्-शतभिषम्,* अर्पशि मास; *तिरुवनतादि-तिरुक्कंडेन* (पाठ)।

(7) तिरुमंगैयाळ्वार : *कृत्तिका* नक्षत्र, *कार्तिक* मास, *पेरियतिरुमोळि* पाठ।

(8) तिरुप्पानाळ्वार : *रोहिणी नक्षत्र, कार्तिक मास, अमलनादरपिरान-तिरुमायमोळि।*

(9) तोंडरडिप्पोडियाळ्वार : *केट्टै* (जेष्ठ नक्षत्र); *मार्गळि* मास, *तिरुमालै* और *तिरुप्पल्लि-एळुच्चि* (पाठ)।

(10) तिरुमलेशेयप्पिरानाळ्वारः *मखा* नक्षत्र, तै मास, *तिरुच्चनड-विरुत्तम्* और नान मुकन-तिरुवान्तड़ि (पाठ)।

(11) कुलशेखर आळ्वार : पुनर्वसु नक्षत्र, मासि मास, पेरुमाल-तिरुमोळि।

(12) मधुरकवि आळ्वार : चित्तिरा (चित्रा), चित्तिरै मास, कण्णिनुण - शिरत्तांबु।

कंदाडै रामानुजय्यंगार के द्वारा स्थापित किया गया है। इसके लिए उन्होंने 5000 *पणम्* श्रीवेङ्कटेश्वर के भंडारम् में जमा किया है। ये भगवान के दैनिक प्रसाद समर्पण के लिए और कंदाडै रामानुजय्यंगार के जन्म दिन पर समर्पित आराधना के लिए हैं। उनका जन्म दिन *चित्तिरै (चित्ता)* नक्षत्र में, *माशि* मास में, आता है। इसे तिरुपति भेजा जाता है। शूडिकोडुत्त-नाच्चियार इसका स्वागत करती है। इसमें उस दिन के लिए अर्पित होनेवाला अप्प प्रसाद भी सम्मिलित रहता है। उससे सम समर्पण गोविंदराज स्वामी को भी उस दिन किया जाता है। यह समर्पण उस दिन तिरुमंजनम्, 50 सुपाडी, 100 पान पत्ते, एक पलम् कर्पूर, एक *परिवट्टम्* और एक *अप्प-पडि* प्रदान किये जाते हैं। यह भगवान की नाच्चियार और शूडिकोडुत्त-नाच्चियार को भी समर्पित होता है (संख्या 140)।

कंदाडै रामानुजय्यंगार बहुत ही प्रभावशाली व्यक्तित्व के हैं। आपने पूरे दक्षिण के धार्मिक स्थालों की यात्रा की है। इतना ही नही 108 *वैष्णव* क्षेत्रों का भी दर्शन किया है। इन 108 वैष्णव क्षेत्रों में *कोयिल* श्रीरंगम् और कांची का *पेरुमाल कोयिल* भी है। 108 वैष्णव क्षेत्रों को यानी हर एक को तिरुपति भी कहते हैं। आपने तिरुमल और तिरुपति में दोनों स्थानों पर *रामानुजकूटम* भी स्थापित किये हैं। जलाशयों का निर्माण कराया है। सालुव नरसिंह के प्रतिनिधि के रूप में आपने एक गाँव को भी दान में पाया है। यह ग्रामदान *रामानुजकूटम* चलाने के लिए ही है। माना जाता है कि आपने *वैकुण्ठ* द्वारम् के लिए भी कुछ किया है। यह प्रधान (मुख्य) द्वार से संबन्धित है (संख्या 13, 14)। स्वयं सालुव नरसिंह ने भी तिरुमल पर उत्तर-माडा वीथी में *रामानुजकूटम्* की स्थापना की है। तिरुपति में भी उन्होंने गोविंदराज मंदिर में स्थापित किया है। दोनों को रामानुजय्यंगार की देख-रेख में रखा है। ये अय्यंगार अलगिय मनवाल जीयर है जो कांची के हैं। कांची अय्यंगार ने आलिपुरम् गाँव को दैनिक *संधि* के लिए 12 *तिरुप्पोनकम्* (चावल और मूँग की दाल को उबाल कर कालीमिर्चि, घी और नमक डाला *प्रसादम्* है) का आयोजन किया है। इस प्रसाद में दाता के भाग के रूप में ¼ अंश *रामानुजकूटम्* को देने का नियम भी बनाया है। इससे श्रीवैष्णवों को दैनिक ग्रासम् मिलता है। (संख्या 4)। *अलगप्पिनार* की *तिरुमंजन* सेवा (स्नपन सेवा) के लिए भी व्यवस्था की गयी है। यह सेवा चाँदी की मूर्ति *(भोग मूर्ति)* को अर्पित होती है। यह मूर्ति मणवालप्पेरुमाल की है। इसकी स्थापना सामवाय ने की है। ये *पल्लव* रानी है। पल्लवों के समय में इनकी ओर से मूर्ति की स्थापना हुई है। शायद मुदलियार तिरुक्कलिकन्रिदासर अलगप्पिरानर द्वारा स्थापित हो सकता है। ये तिरुमल के एक *स्थानत्तार* थे। इन्होंने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के सामने *वेदपारायणम्* की भी व्यवस्था शक संवत्सर 1355 में, नवंबर 1433 ई. में, जो रामानुजय्यंगार की थी, उस सेवा को सुदृढ़ बनाने का प्रयास भी किया है। उन्होंने *चंदन* लेप, हलदी का लेप, उशीरी का लेप का इंतजाम किया है। ये लेप एक के बाद एक स्नपन सेवा में उपयोग में लाये जाते हैं। फिर भगवान को नये वस्त्र से पोंछ कर संस्कार के अंत में 25 सुपाडी और 25 पान के पत्ते समर्पित करते

हैं। समापन उत्सव के संदर्भ में चार पान के पत्ते और चार सुपाडी अर्पित होते हैं। इसे *प्रसादम्* के रूप में गुरु को शिष्यों द्वारा पहुँचाया जाता है। ये शिष्य *सत्ताड-एकाकी-श्रीवैष्णव* हैं जिनको। साधारण तौर घर सातानी कहा जाता है। ये एकाकी होते हैं और रामानुजय्यंगार के *रामानुजकूटम* में रहते हैं। इनका मुख्य काम रामानुजय्यंगार के द्वारा निर्धारित रूप में हर दिन मंदिर को आवश्यक सामाग्री पहुँचाना होता है। यह शक संवत्सर 1386, जनवरी 1465 ई., से कायम रहा है (संख्या 22)। उन्होंने (गुरु ने) अनेक कृषि संबन्धी नहरों को भी खुदवाया था। इससे मंदिर को अर्पित खेतों को पानी मिलता है। इससे अधिक आमदनी मिलती है, अधिक उपज के सहारे पर रामानुजय्यंगार ने अनेकों देवताओं के लिए अन्यान्य आराधनाओं की व्यवस्था की है।

डोला-महोत्सव-अन्ना ऊँजल तिरुणाल की व्यवस्था सालुव नरसिंह के द्वारा शक संवत्सर 1395 में, जून 1473 ई. में, की गयी थी। अनेक प्रकार के समर्पणों को भी निश्चित किया गया था। उक्त उत्सव के पाँचों दिनों की व्यवस्थाएँ रामानुजय्यंगार के द्वारा ही की गयी थी (संख्या 50)।

उक्त विवरण से यह विदित होता है कि सालुव नरसिंहराय द्वारा कुलशेखर आलवार की आराधना और दाता को मिलनेवाले *प्रसादम्* के भाग जो *रामानुजकूटम* को प्रदान किये जाते हैं, इन सबका नरसिंहराय और रामानुजय्यंगार से निर्देशित समर्पण वास्तविक अवश्यकताओं की पूर्ति से कई गुना अधिक दिखाई देते हैं। अधिक परिमाण में बननेवाले प्रसाद को कुछ निर्धारित मूल्य पर बेचा जाता है और उस प्रकार प्राप्त पैसों को पुनः मूल धन से जोडा जाता है। इस प्रकार से हुई बचत राशि 3000 *पणम्* शक संवत्सर 1417 तक हो गयी। इस धन से श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज के आभूषणों की मरम्मत के लिए खर्च किया गया। शायद इसके लिए *स्थानत्तार* ने अपनी ओर से ही प्रार्थना पत्र ऊपर के अधिकारों को भेजी हो। 1 जुलाई 1495 ई. को एक रायसम् (एक हम्मनामा) तिरुमल *स्थानत्तार* को मिली 1 इसे श्रीमान् महामंडलेश्वर इम्मडि नरसिंहराय महाराज द्वारा जारी किया गया। इसमें महाराज की *बिरुदावली* (उपनाम) भी है यथा - *मेदिनी-मीसरगंड, कठारि सालुव* आदि। उसमें रामानुजय्यंगार को मंदिर के आभूषणों के लिए आवश्यकतानुसार मरम्मत करने की अनुमति दी गयी थी। साथ साथ सुवर्ण तथा चाँदी के पात्तों की भी मरम्मत हो तथा यह *स्थानत्तार* की निगरानी में संपन्न हो। तत्पश्चात् उस संबन्ध में लेखा-जोखा के साथ *श्रीभंडारम्* को पहुँचाया जाय। इसके लिए रामानुजय्यंगार को मंदिर के *पोर-भंडारम्* (पोन-सुवर्ण भंडारम्) का अधिकारी भी बनाया गया। राजाज्ञा के अनुसार *स्थानत्तार* ने एक परिलेख (पत्थर पर खुदवाकर) दिया है। उनको 1000 *पणम्* तीनों स्रोतों से बनाना भी था जो 3000 *पणम्* बनेगा। आदेश यह था कि इस राशि से आभरणों की मरम्मतें हो। अगर कुछ पणम् बचेंगे तो उन्हें सुवर्ण-कोष में जमा करना होगा। इस प्रकार के कार्य के लिए (संख्या 133)। आवश्यकता पडने पर इसे आगे उपयोग में लाया जायेगा।

एक महीने के उपरांत ही रामानुजय्यंगार को सुवर्ण कोष के अधिकारी नियुक्त किया गया। यह आगस्त 1495 ई. में हुआ था। आपने अनेक प्रकार के प्रसादों और समर्पणों की व्यवस्था भी बाद में की थी। यह समर्पण श्रीवेङ्कटेश्वर, गोविंदराज और कुलशेखर पेरुमाल के लिए हुआ था। उन्होंने *'उला'* सेवा (प्रशंसागीत) गाने की व्यवस्था भी की थी। चार मंदिरों की देवियों की सेवाएँ भी निर्धारित हुई थी। *'परिवट्टम्'* (सर पर बाँधने का कपडा) प्रदान किया गया। यह मलैकिनियनिन्र पेरुमाल और गोविंदराज स्वामी, *कोडै-तिरुणाल* उत्सव के लिए बाहर निकलते हैं (शोभा यात्रा में) उनके सिर पर कपडा बाँधा जाता है। इस पारिवट्टम के लिए 20 *पणम्* चाहिए। इसे मंदिर के कोष से देने की व्यवस्था हुई (संख्या 134)। अगले वर्ष में, 21 दिसंबर 1496 ई. में, कंदाडै अप्पच्चियार ने 1500 *पणम्* से कुछ भूमि खरीदा और गृह निर्माण स्थल को भी खरीदकर दिया। इतना ही नहीं, भगवान वेङ्कटेश्वर को हर दूसरे शुक्रवार के दिन दो *अतिरस-पड़ि* निवेदन की व्यवस्था भी की गई। भगवान को *पुनुगु* या *पुलुगु* (गन्ध बिलाव) तेल के लेपन से मंडित किया जाता है। *''ऊला''* भी रामानुजय्यंगार के नाम पर गया जाता है (संख्या 136)। यह एक प्रकार का *अभिषेकम्* है जो भगवान को हर दूसरे शुक्रवार के दिन अर्पित होता है। कुछ संदर्भों में हर शुक्रवार को यह समर्णण होता है। यह कंदाडै रामानुजय्यंगार की सेवाओं की पराकाष्ठा ही कही जा सकती है।

उक्त समय की सीमा में मंदिर की सेवा के लिए 29 स्तरों के सेवक सेवारत थे। उनकी सेवाओं के लिए वेतन *श्रीभंडारम्* से दिया जाता था। इसकी व्यवस्था भी कंदाडै रामानुजय्यंगार ने ही की थी। इस सेवक-वर्ग में *स्थानत्तार* से लेकर द्वार रक्षक, वाद्यवादक आदि रहते हैं (संख्या 135)। उन्होंने एक और सूत्र भी स्थापित किया था *प्रसाद* वितरण के लिए। पकाने के लिए लकडियाँ उपलब्ध करनेवाले, लोक-सेवा विभाग के कर्मचारी, प्रसाद वितरण के सेवक, भगवान के मंदिर को स्वच्छ रखनेवाले सेवक, हाथियों को चलानेवाले महावत आदि आते हैं (संख्या 85)। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उनके समय से ही मंदिर में हाथी थे जो उत्सवों में आलय मर्यादा के रूप में भाग लेते थे।

* * *

अध्याय - 19

सम्राट कृष्णदेवराय काल (विजयनगर काल - III)

कृष्णदेवराय विजय नगर राज्य के प्रसिद्ध राजाओं में झिलमिलाने वाले तारा थे। प्रकाशवान उज्जवल नक्षत्र थे। उनकी धार्मिक भावना और भगवान के प्रति अकुण्ठित भक्ति का परिचय उनके द्वारा दक्षिण भारत के विभिन्न मंदिरों का दर्शन करना और मंदिरों को दिये गये ग्रामों के दान आदि स्पष्ट करते हैं। उन्होंने मंदिरों को आभरण, धन राशियाँ आदि प्रदान किये थे। वे जहाँ भी गये, वहाँ के अधिदेव को देवदान दिये थे। तिरुवेङ्कटनाथ के प्रति उनकी अकुंठित भक्ति थी। उन्होंने तिरुवेंगलनाथ (श्रीवेङ्कटेश्वर) को प्रकट रूप से बहुमूल्य दान समर्पित किये थे। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान तो कृष्णदेवराय के इष्टदेव थे। भगवान के पास उन्होंने अपनी सात उपस्थितियाँ सभक्ति दी हैं। अपने आक्रमणों के अंतरालों में उन्होंने भगवान के सामने विनम्रता से सिर नवाया था। विशेषतया, उम्मत्तूर और इक्केरी के सैनिक अधिकारियों से भिडने के लिए वे दक्षिण में आये थे तब और इसी प्रकार ओडिस्सा के गणपति राजा से लडने पूरब की यात्रा के समय। साथ साथ उत्तर की ओर भी वे गये थे। कुछ संदर्भों में वे अपनी दोनों राणियों के साथ भी भक्ति संबन्धी यात्राएँ की। उनकी राणियाँ थीं - तिरुमल देवी और चिन्नादेवी। उन्होंने अपने तेलुगु *प्रबन्ध काव्य को* (आमुक्त-माल्यदा को) भी भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को ही अर्पित किया। यह तेलुगु के पंच महाकाव्यों में उल्लेखनीय है। वे एक महान योद्धा थे, उल्लेखनीय विजयों को प्राप्त करनेवाले राजा, सठीक पूर्वानुमानों के प्रवीण, युद्ध नीतिज्ञ, योग्य सेनापति और निपुण युद्धवीर तथा बलवान राजा थे। उनसे अन्य राजा डरते थे, विशेषकर उनकी युद्ध निपुणता और सम्यक् स्फूर्ति को देखकर झुक ही जाते थे।

संगम वंश के अंतिम राजा विरूपाक्ष के समय से विजय नगर साम्राज्य, पतन की दिशा में शीघ्र गति पकड़ली थी। यह समय था सन् 1464-1485 ई. का। ऐसे समय में कृष्णदेवराय राजगद्दी पर विराजमान हुए। उस समय तक ओडिस्सा के गजपति राजा बहमनी सुलतानों के साथ जुडकर विजय नगर साम्राज्य के पूर्वी भाग पर विजय पा चुके थे। उस समय, विजय नगर साम्राज्य कृष्णा नदी प्रान्त से नेल्लूर तक व्याप्त था। वह गजपति राजाओं के हाथों में चला गया था। फिर उनकी विजय यात्रा का विस्तार सुदूर दक्षिण में मदुरै तक भी हो गया। यह और विस्तार पाकर मैसूर राज्य की सीमा तक व्याप्त हो गया। यह विजय कपिलेश्वर गजपति ने प्राप्त की थी (सन् 1435-1470 ई.)। कपिलेश्वर गजपति प्रतापरुद्र गजपति के पितामह थे और कृष्णदेवराय के समकालीन। महम्मदीय सेना की सहायता से वे सेतु - रामेश्वरम् की तीर्थ यात्रा पर गये थे। (Dev. Epi, Rep Note on P 161)। सालुव नरसिंह उस समय शक्तिशाली सेनापति थे। उन्होंने अपने एक और सेनाधिकारी तुलुव ईश्वर नायक की सहायता से

कपिलेश्वर का सामना किया और उनको हरा दिया। तुलुव ईश्वर नायक, श्रीकृष्णदेवराय के पितामह थे। उन्होंने कपिलेश्वर को बंदी बनाया। इतना होने पर भी दक्षिणी प्रान्त, गजपतियों के अधीन में ही थे। मैसूर राज्य के उम्मत्तूर के सेनापतियों ने पेनुगोंडा किले पर अधिकार जमाया था। शिवसमुद्रम्, उनकी राजधानी थी। पेनुगोंडा पर अधिकार पाने के कारण उनको ''पेनुगोंड चक्रेश्वर'' उपाधि भी मिली थी। वह वीरनरसिंह राय के अधीन में आ गया। वीरनरसिंह राय कृष्णदेवराय के बडे भाई थे। श्रीरंगपट्टणम के मुखियों ने स्वतंत्रता घोषित की (वही, पृ.170 और नोट-I, पृ.158)।

विजयनगर साम्राज्य की सीमाओं का घटना श्रीकृष्णदेवराय के समय के पूर्व तक चलता रहा। श्रीकृष्णदेवराय ने पहले इसे रोका और राज्य के पूर्व वैभव की दिशा में कदम बढाये। यह उनके सिंहासनारूढ होने के साथ साथ आरंभ हुआ। वे जुलाई 1509 ई. में गद्दी पर विलसे (वही, पृ.167, पृ. 184; नोट-3 पृ. 219, नोट-1)। कृष्णदेवराय ने गद्दी पर बैठते ही अपनी सेना को शक्ति सपन्न बनाने की दिशा में कठिन अनुशासन से तैयारियाँ की। उनकी दृष्टि हठपूर्वक दक्षिण के विरोधी राजाओं को अपने अधीन में लाने की ओर ही रही। दक्षिण और पूर्व की दिशाओं में उन्होंने कदम उठाये। वे पहले पतापरुद्र गजपति को हराना चाहते थे। योजनाबद्ध रूप में और सूक्ष्म बुद्धि से कृष्णदेवराय ने अपनी विजय यात्रा आरंभ की। यह सन् 1511 ई. में हुआ। गजपतियों पर संपूर्ण रूप से आधिपत्य जमाने के बाद कृष्णदेवराय ने कोंगु-मंडलम् पर पूरा अधिकार जमाया। इसमें उनके पिता की ओर से निकट संबन्धी पर्वत-रघुत्तराय की सहायता मिली। उन्ही को कोंगुमंडलम् के अधिपति (गवर्नर) बनाया। उनका एक परिलेख शक संवत्सर 1432 (सन् 1510-11 ई.) का मिलता है जो इस सबकी सूचना देता है। यह ईरोड में प्राप्त हुआ है (ईरोड आजकल तल्लिनाडु में है।)। इससे स्पष्ट है कि अपने देश की सीमाओं से बहुत दूर में रहनेवाले प्रान्तों को, यानी ओरिस्सा प्रान्त से दूर में रहनेवाले प्रान्तों को, वे सुरक्षित नहीं रख सके। सुरक्षित रखना कठिन कार्य भी है (वही, पृ 160 नोट-2)। श्रीकृष्णदेवराय ने यह सब समझकर पहले कोंगु राजा को अपने अधीन करना चाहा। इस क्रम में पहले उन्होंने उम्मत्तूर और शिवसमुद्रम् के अधिपति गंगराज पर आक्रमण किया। उसे अपने अधीन कर लिया (वही, पृ.158, नोट-1)। यह 22 सितंबर 1512 ई. में घटित हुआ। इसी समय में इक्केरि के अधिपति शंकुल नायक भी उनके अधीन हुए। शंकुल नायक श्रीरंगपट्टणम के अधिपति थे। उन्होंने कृष्णदेवराय से माफी माँगकर क्षमा पायी। इस विजय के बाद ही श्रीकृष्णदेवराय ने पर्वत-रघुत्तराय पर विजय पाने की दिशा में आगे बढने का निर्णय लिया। पर्वत रकुत्तराय मेलनाडु या मेल-करै-नाडु में थे। यह कोंगु मंडलम में है। रघुत्तराय नेल्लूर जिले के उदयगिरि से भाग निकले थे (वही, पृ 160, नोट-2)।

दक्षिण की अपनी विजय यात्राओं के पश्चात् श्रीकृष्णदेवराय ने विजयनगर की ओर लौटते समय पहली बार श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान का सभक्ति दर्शन किया था। यह उनकी पहली बार किया गया दर्शन

था। मंदिर में वे पहली बार गये। उस समय उनके साथ उनकी दो रानियाँ भी थीं। यह 10 फरवरी, 1513 ई. में घटित हुआ था। उस समय कृष्णदेव राय ने एक सुवर्ण किरीट (मुकुट) का अर्पण किया था। यह मुकुट नव रत्नों से जडित था। इसके साथ-साथ मोतियों का एक हार भी समर्पित किया। इसके तीन भागों में मोती गुंथे गये थे। एक अमूल्य *पदक* के साथ बन्धे 15 ''नेक्लेट्स'' भी दिये। इनमें 5 प्रकार के वज्र जडे थे। इस समर्पण में 25 चाँदी की थालियाँ भी थीं। ये भगवान को कर्पूर ज्योति प्रदान करने के लिए थीं। उनकी छोटी रानी चिन्नाजम्मा ने भगवान को दूध अर्पित करने के लिए एक सोने का गिलास अर्पित किया तो बडी रानी तिरुमलदेवम्मा ने भी उसी प्रकार सोने का गिलास और उसे रखने के लिए एक सुवर्ण थाली भी अर्पित किया। यह थाली सुगंध द्रव्य रखने के लिए भी उपयोग में लाया जा सकता था। यही बडी रानी का उद्देश्य भी रहा था (वही, पृ.151 और संख्या 32 से 39, 40 से 49 तथा 50 से 59, जिल्द III)। इसके बाद तीन महीनों के अंदर ही श्रीकृष्णदेवराय ने भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर की दूसरी यात्रा भी की। समय 2, मई 1513 ई. था। इस बार उनके साथ उनकी रानियाँ नहीं थीं। उस समय उन्होंने अनेक आभूषण भगवान को अर्पित किये। उनमें वज्र जडित तीन छोटे मुकुट थे। ये मणियों और वज्रों से लसित थे। (Dev. Epi, Rep P151 और संख्या 60 से 63 तक में सूचना है, जिल्द III)। ये छोटे *किरीट* (मुकुट) उत्सव मूर्तियों के लिए समर्पित किये गये थे।

श्रीकृष्णदेवराय की तीसरी यात्रा भगवान के दर्शनार्थ द्वितीय यात्रा के डेढ़ महीने के बाद ही हुई। इस बार भी उनकी दोनों देवियाँ उनके साथ नहीं थीं। यह यात्रा 13 जून, 1513 ई. में हुई और उनके माता-पिता नरस नायक ओडया तथा नागाजम्मा के नाम पर भगवान को कुछ चढाने के लिए थी। कृष्णदेवराय ने नवरत्नों से लसित एक आभारण की भेंट भगवान को दी। इसके साथ-साथ एक केसरिया टोपी, 300 पान, 600 सुपाडी की भेंट भी दी। इतना ही नहीं, गोंडगरनाडु के चत्रावाडी, तूरूरु तथा करिकंबाडु गाँव अर्पित कर *'तै'* महीने में (जनवरी-फ़रवरी में आनेवाला महीना) उन गाँवों से आनेवाली आमदनी से एक *ब्रह्मोत्सव* का भी नियमन किया (संख्या 64 और 65, जिल्द III)। तमिल 'तै' मास में श्रीकृष्णदेवराय के *ब्रह्मोत्सव* के आरंभ तक श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के सात उत्सव संपन्न होते थे। इसके साथ भगवान के उत्सवों की संख्या आठ हो गयी।

उक्त समय के बाद लिखित परिलेख *संस्कृत* श्लोकों और गद्य में बना है। ये श्रीहरि और गणेश की प्रार्थनाओं से आरंभ किये गये थे। इन में कृष्णदेवराय ने अपने वंश को चन्द्रवंश घोषित किया। इस वंश क्रम को पौराणिक पात्रों से जोडकर ''तूर्वसु'' वंश (श्रीकृष्णदेवराय का वंश) तक गिनाया गया है। इसी वंश परंपरा में तुलुव वंश के प्रसिद्ध तिम्मराजु को जोडा गया है। तुलुव तिम्मराजु ने देवकी से विवाह किया। उनकी संतान है राजा ईश्वर जिन्होंने बुक्कमा से विवाह किया। नरसराज इसी दंपति का

पुत्र है। इसी राजा नरस ने कावेरी नदी पर पुल बनवाकर पार करके अपने शत्रु राजा को युद्ध में हराकर उनके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। उन्होंने श्रीरंगपट्टणम् को अपने कब्जे में लेकर वहाँ एक कीर्तिस्तंभ का निर्माण भी करवाया था। उन्होंने चेर, चोळ और पांड्य राजाओं को तथा तुर्किश सुल्तान को भी जीता है। गजपति राजा पर भी विजय पायी थी। इन्हीं नरसराय को उनकी रानी तिप्पाजी से वीर नरसिंह तथा एक और रानी नागलदेवी से श्रीकृष्णदेवराय हुए (Dev. Epi. पृ.152-155)।

अपनी दोनों रानियों के संग, श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के दर्शन की यात्राओं में शायद कृष्णदेवराय उदयगिरि किले पर आक्रमण के संदर्भ विचार ही करते रहे होंगे और आवश्यक पूर्व योजनाएँ भी बनाते रहे होंगे। 9 जून 1514 ई. में उन्होंने उदयगिरि पर अपना अधिकार जमाया था। इसके साथ प्रतापरुद्र गजपति पर भी विजय की योजनाएँ बनायी होगीं। प्रतापरुद्र गजपति कोंडवीडु के अधिपति थे (वही, पृ.168-171)।

उदयगिरि किले पर विजय प्राप्त करने के बाद कृष्णदेवराय ने एक ही महीने के अंदर अपनी चौथी तीर्थ यात्रा संपन्न की (6-7-1514 ई. में)। उस समय उन्होंने भगवान का *कनकाभिषेक* भी किया, साथ-साथ उस समय उन्होंने तीन लडियों के मोतियों का हार प्रस्तुत किये। उन हारों में लाल, पद्मराग, नीलमणि आदि भी गुंथे हुए थे। *पोट्टपिनाडु* (आधुनिक कडपा जिला) के ताल्लपाक गाँव को भी श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को समर्पित किया। यह समर्पण भगवान के नित्य नैवेद्य के लिए आवश्यक चावल आदि सामग्री के समुपार्जन के लिए था (Dev. Epi. पृ.157-159) और संख्या 66 से 69 तक, जिल्द III)। इस संदर्भ में श्रीकृष्णदेवराय की दोनों रानियाँ उनके साथ आयी थीं। रानी चिन्नदेवम्मा ने *कण्ठमाला* (सुवर्ण) अर्पित की जिसमें मोतियों, लाल पत्थर (माणिक), वज्र आदि से बना एक पदकम् (पदक) भी था। साथ ही 'मुडियार' गाँव को जो 'तोंडमंडलम्' में था, भी दान में दिया जिसकी आमदनी से नित्य नैवेद्य भगवान को समर्पित हों (संख्या 70-72, जिल्द III)। तिरुमलदेवम्मा ने *''सर-पदक''* से युक्त एक हार दिया जिसमें मणि-माणिक्य जडे भी थे। साथ-साथ उन्होंने शोलिंगपुरम् के पास स्थित 'पिराट्टि-कूलत्तूर' गाँव का भी दान नित्य नैवेद्य समर्पण के लिए किया। उस गाँव की आय से यह कार्य संपन्न होता था (संख्या 73-75, जिल्द III)। इन तीनों परिलेखों से एक और बात भी स्पष्ट होती है। इनमें उल्लिखित *''सत्रम्''* (भोजन शाला) जिनमें मुफ़त अन्न-प्रसाद वितरण होता है, वे सभी अलग व्यवस्था के अंतर्गत थे और वे सब कृष्णदेवराय और उनकी दोनों रानियों के नाम पर चलते थे। तदर्थ एक *तिप्पणिपिल्लै* (मंदिर के सूपरवैज़र निरीक्षक) नियुक्त थे। उस व्यपस्थापक कर्मचारी को निर्धारित *प्रसाद* का भाग देय था। इसके साथ-साथ प्रसादम् के अंश को दो पुजारियों को निर्धारित रूप में दिये जाते थे (Dev. Epi, पृ.159 और 206)। यह कार्य तिरुप्पणिपिल्लै ही करता था।

उक्त कार्यक्रम और राज्य विस्तरण कार्यों के सवा साल बाद, उदयगिरि विजय के बाद, श्रीकृष्णदेवराय ने पर्वतराय अर्थात् तिरुमल राउतराय को, उदयगिरि में थे, बन्दी बनाया। अद्दंकि, विनुकोण्ड और अन्य किलों पर विजय पायी। कोंडवीडु किले की दीवारों को तोडकर गिराया। उसमें जो सजीव राजा रहे थे उनको बंदी बनाया। उन लोगों में प्रतापरुद्र गजपति के पुत्र वीरभद्रराय, कुमार हमवीपात्रा के पुत्र नरहरिदेव, राचूरि मल्लूखान, उद्दंडखान और अन्य गजपति के सामंत राजा, अधिकारी आदि थे। उनको दिये जीवन दान का वचन भी कृष्णदेव राय ने निभाया। उसके बाद वे धरणिकोट-अमरावति की ओर बढे। उस समय कृष्णदेवराय की दोनों रानियाँ उनके साथ थीं। उस संदर्भ में कृष्णदेवराय ने *''तुला-पुरुष महादान''* दिया। इस दान के अंतर्गत उन्होंने अपने को सोने से तोला और उस तुल्य सुवर्ण का दान कुछ योग्य व्यक्तियों और मंदिरों को समर्पित किया। इसके साथ आपने अपनी रानियों को ''महादान'' के लिए प्रेरित किया। इस *'महादान'* में रानियों ने भी उपयुक्त रूप से लोगों और मंदिरों को समर्पण दिया। तत्पश्चात् सब विजय नगर की राजधानी पहुँचे। सिंहासन पर आरूढ़ होकर उस वक्त श्रीकृष्णदेवराय ने एक आदेश पत्र भी निकाला। वह 25 अक्तूबर, 1515 ई. का था। इसके द्वारा उन्होंने तिरुवेंगलनाथ को *नवरत्न-प्रभावली (मकर तोरण)* का अर्पण किया। इसमें उपयोग किया गया सुवर्ण 31, 124 वरहों की वजन का था और नवरत्नों से जडित भी था (संख्या 76-79, जिल्द III और पृ.159-163 - Dev. Epi Report)।

श्रीकृष्णदेवराय ने *''मकर तोरण''* के समर्पण के लगभग दो महीनों के बाद ही, अर्थात् 25 अक्तूबर, 1515 ई. को, कलिंग राज्य पर आक्रमण किया। यह राज्य प्रतापरुद्र गजपति का था। वहाँ की विजय के साथ उन्होंने अहोबल क्षेत्र का दर्शन किया। यह 21 दिसंबर, 1515 ई. में घटित हुआ। वहाँ से आगे अपनी वापसी यात्रा में राजा कृष्णदेव राय जनवरी, 1516 ई. में विजयवाडा पहुँचे। वहाँ उन्होंने कोण्डपल्लि किले पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन में कर लिया। उस समय उन्होंने प्रहरराज शिरच्चंद्र महापात्रा, बोडजन महापात्रा, बिजिलीखान और कुछ अन्यों को बंदी बना लिया। किन्तु अवश्य उनको प्राणदान का वचन दिया। तदुपरांत एक ही आक्रमण द्वारा अनंतगिरि, उण्ड्रकोण्डा, उर्लगोण्डा और किलों को भी अपने स्वाधीन में लिया। ये तेलुगु राज्य तेलंगाणा (आधुनिक तेलंगाणा में) में थे। फिर आगे बढकर सिंहाद्रि-पोट्नूरु को अपना बनाकर वहाँ एक विजय-स्तंभ की स्थापना भी की। वहाँ कुछ *महादान* भी किये। तदुपरांत वे राजमहेन्द्रवरम् (राजमंड्री) पहुँचे। वहाँ उनकी रानियों ने, चिन्नादेवम्मा और तिरुमल देवम्मा ने, *महादान* किये। अन्त में वे विजयनगर पहुँचे।

विजय नगर पहुँचने के बाद 2 जनवरी, 1517 ई. को पुनः तिरुमल पहुँचे। वहाँ उन्होंने तिरुवेंगलनाथ को *कंठमाला* एक *पदक* के साथ अर्पित की। 30,000 वरहों का सुवर्ण दान भी दिया। यह सुवर्णदान मंदिर *विमान* को सोने से तापित करने के लिए अर्पित किया गया। यह *विमान गर्भ गृह* के

ऊपर का शिखर भाग है। विमान पर सुवर्ण तापन के लिए आठ दिन में एक बार वसूल किया गया कर समर्पण का आदेश भी दिया गया। यह कर तिरुपति के पास के गोड़गरनाडु (कुडवूर-नाडु-पुराना नाम) के आस पास के गाँवों से वसूल होता था। लगभग यह 1000 *वरहों* का होता था। सुबह के प्रसाद समर्पणों के लिए भी कृष्णदेवराय ने कुछ व्यवस्था की थी। उससे 500 *वरहों* की धन राशि मिलती थी। इस सब की व्यवस्था के उपरांत श्रीकृष्णदेवराय विजयनगर लौटकर आये। इस बार उनके साथ उनकी रानियाँ नहीं थीं। (Dev. Epi Rep पृ.163-164)। यह उनके द्वारा किये गये कुंभकोणम् की यात्रा के दर्मियान हुआ। यह यात्रा *महामखा* त्यौहार के संदर्भ में हुई थी (Dev. Epi Rep पृ.180)।

परिलेख संख्या 80 आगे यह भी सूचित करता है कि श्रीकृष्णदेव राय ने अपने पाँचवें दर्शन के बाद एक और यात्रा श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के दर्शनार्थ की है। इस वक्त उनकी रानी तिरुमलदेवम्मा उनके साथ थी। यह दर्शन यात्रा 17 फरवरी, 1521 ई. में की गयी। इस वक्त उन्होंने भगवान को *पीतांबरम* भेंट स्वरूप प्रस्तुत किया। इसमें भी नवरत्न सिले हुए थे। इसके साथ *''कुल्लाय''* (एक टोपी) भी सम्मर्पित की गयी। वह भी मोतियों, वज्रों, आदि नवरत्नों से सिली हुई थी। इतना ही नहीं उन्होंने दो *चामरों* को भी अर्पित किया जो रत्नों, मोतियों आदि से अलंकृत थे। रानी तिरुमलदेवम्मा ने एक *''पदक''* का अर्पण किया। सभी हीरों से वह सज्जित था। इतना करने पर भी वे संतुष्ट नहीं हुए। 1000 सुवर्ण *वरहों* तथा एक पदक को भी सभक्ति अर्पित किया। इस दान से संबन्धित भगवान के दर्शन की यह सातवीं यात्रा है। इस समय वे अपनी बडी रानी के साथ दर्शनार्थ आये थे। संख्या 81 भी श्रीकृष्णदेवराय के गजपति राजा से हुए युद्धों का विवरण देता है। इस विवरण में सिंहाद्रि-पोट्नूरु में उनके द्वारा स्थापित कीर्तिस्तंभ का भी उल्लेख मिलता है। राजमहेन्द्रवरम् में उनका ठहरना और विजयनगर में वापस आना भी अंकित है। दिव्य विमान को (भगवान के मंदिर पर विमान गोपुर को) सोने से पोतने की सूचना भी अंत में है। यह कार्य 9 सितंबर 1518 ई. में संपन्न पीतांबर, कुल्लाय और दो *चामरों* का समर्पण, 1000 सुवर्ण मुद्राओं की कानुक *(भेंट)* के साथ प्रस्तुत करने की भी सूचना उल्लिखित है। एक पदकम् का उल्लेख भी इनमें है। ये सब 17 फरवरी, 1521 ई. को प्रस्तुत हुए थे। तिरुमल देवी के द्वारा नवरत्न पदक को अर्पित करने की बात-वहाँ मिलती है। संख्या 82 *तेलुगु* में है। यह संक्षेप में तमिल में उल्लिखित सूचनाओं को पुनरुक्त करता है यथा तिरुवेंगलनाथ के *दिव्य विमान* को सुवर्ण से पोतने की क्रिया आदि।

दिव्य विमान के सुवर्ण तापन के बाद, पाँच हफ़्तों की अवधि में ही श्रीकृष्णदेवराय तिरुमल आये थे। दिव्य विमान का कार्य 9-9-1518 ई. में पूरा हुआ था। उस समय अपनी बडी रानी तिरुमलदेवी उनके साथ थी। छोटी रानी का स्वर्गवास हो युका था। इसमें कोई संदेह की बात नहीं थी कि उस समय उनके सुपुत्र तिरुमलराय महाराय उनके साथ थे। उस वक्त बच्चा कुछ महीनों की उम्र का था। इस

समय कृष्णदेव राय ने छटवीं बार अपनी भेंट समर्पण किया था। यह अक्तूबर 1518 ई. में हुआ। कुछ भूमि दान भी उन्होंने मंदिर के लिए किया। यह अपने पुत्र की उन्नति की आकांक्षा को लेकर हुआ। पर दुःख की बात है कि सम्राट का पुत्र अपनी छःवर्ष की आयु में ही दिवंगत हो गया (Dev. Epi, Rep. PP 165-166)।

अब तक मिली परिलेखाधारित सूचनाओं से पता चलता है कि श्रीकृष्णदेवराय ने अपनी प्रथम तीन भगवद्-दर्शन यात्राएँ क्रमशः 10-2-1513, 2-5-1513 और 13-6-1513 में की थीं। इनके बीच, यानी इन तारीखों के मध्य काल में उनके युद्ध या संघर्ष उम्मत्तूर के गंगराज पर, श्रीरंगपट्टणम् के संकुल नायक पर और मैसूर तथा कोडगु मंडलम् के अन्य हठी सामंतों पर हुए थे। हो सकता है कि इनमें पर्वत राहुत्तराय भी हो जो प्रतापरुद्र गजपति के संबन्धी थे। इन्होंने अपना प्रभाव उस क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से फैलाया था। कृष्णदेव राय की चौथी दर्शन यात्रा 6-7-1514 ई. को हुई। यह उनके द्वारा उदयगिरि किले पर विजय प्राप्ति के बाद 6-7-1514 ई. के दिन से कुछ ही पहले हुआ था। उनका पाँचवाँ आगमन 2-1-1517 ई. में तिरुमल पर हुआ। अपनी इस यात्रा *महामखा त्यौहार* में उन्होंने भाग लिया था। यह त्यौहार 6-2-1517 ई. में संपन्न हुआ था। यह पतापरुद्र गजपति को हराने और विजय-स्तंभ स्थापन के बाद हुआ। विजय-स्तंभ निर्माण सिंहाद्रि-पोट्नूरु में मार्च 1516 ई. में हुआ था। श्रीकृष्णराय की छटवीं दर्शन यात्रा 16-10-1518 ई. में संपन्न हुई। यह उनके पुत्र जन्म के कुछ ही समय बाद था। सम्राट कृष्णदेवराय की सातवीं यात्रा भगवान की सन्नधि के लिए 17-2-1521 ई. में हुई। यह रायचूर युद्ध में विजय प्राप्ति के बाद की यात्रा है। रायचूर युद्ध (नैरमणम्) (आधुनिक नैरमणूरु) के पास हुआ था जो रायचूरु के पास था। इस युद्ध में बीजपूर, अहमद् नगर और गोलगोंडा के सुलतानों ने एक साथ जुटकर श्रीकृष्णदेवराय से युद्ध किया। यह युद्ध 19 मई 1520 ई. में हुआ था। श्रीकृष्णदेवराय अपनी भगवद् दर्शन यात्राओं में कुछ में दोनों रानियों के साथ थे और एक में बडी रानी ही थी। हर यात्रा में भगवान वेङ्कटेश्वर को उन्होंने मूल्यवान भेंट समर्पित की हैं। इनमें अमूल्य आभूषण, किरीट, टोपियाँ, *पीतांबर,* नवरत्न-प्रभावली (मकर-तोरणम्), 31124 *वरहों* के तोल का सुवर्ण, 7500 *वरहों* की घन राशि, छोटे सुवर्ण और चाँदी के ''कप'', गाँव के दान आदि थे। कुल मिलाकर यह आज के मूल्य की गिनती के अनुसार करोडों रुपयों की संपत्ति ठहरती है। आजकल उन समर्पणों में कम से कम एक को भी हम देख नहीं पा रहे हैं, प्रधानतः स्वामी के अलंकरण में।

वैसे समझने पर विदित होता है कि श्रीकृष्णदेवराय के अपने शत्रु राज्यों पर विजय से संबद्ध युद्ध राजचूर युद्ध से परिसमाप्त हो जाते हैं। लेकिन नूनिज़ ने एक और युद्ध की सूचना दी है - 'चतुइर-युद्ध'।

[[कुछ विद्वानों ने उस जगह को वेल्लूरु के साथ जोडकर देखा है - कयत्तूर हो या अन्य कोई शहर हो। श्री यस.के. ईश्वर दत्त ने अपने एक आलेख में कहा है वह स्थान मंगलूरु का ''काटूरसीमा'' है।

यह तरिकेन तालूक और कदूर जिले में है। यह मैसूर प्रान्त से संबद्ध है - (आलेखः ''क्याँमपेइन्स आफ श्रीकृष्णदेवराय'' - पत्रिका 'जर्नल ऑफ द आंध्रा हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी' - जिल्द IX, भाग 4, अप्रैल 1935, राजमहेन्द्रि, पृ.59-60)। वे कहते हैं कि भैरस ओडियार राजा बहुत ही महत्वपूर्ण और शक्तिशाली जैन राजा थे। वे तुलु देश के राजा थे। उन्होंने श्रीकृष्णदेवराय के महत्व और अधिकार को स्वीकार नहीं किया। श्रीकृष्णदेव राय से संधि भी नहीं कर सके।'' इसीलिए सम्राट ने भैरस ओडयार पर 13-7-1516 ई. को आक्रमण किया। वहाँ अपनी सेना को किले के बाहर रखा। फलस्वरूप तुलु राजा अपनी राजधानी से भाग निकले।

श्री ईश्वर दत्त और कहते हैं कि श्रीकृष्णदेवराय ने एक और सैनिक आक्रमण का भी अभयान आरंभ किया। वह है प्रतापरुद्र गजपति पर और वह भी सिंहाद्रि-पोट्नूरु के पास विजय स्तंभ गाढ़ने के बाद, मार्च 1516 ई. में। वे मानते हैं कि यह 1518-19 ई. में घटित हुआ। (वही, पृ.6D - 61)।]]

कठिनतर सैनिक जीवन के एक दशक के बाद अर्थात् 1520 ई. के बाद, श्रीकृष्णदेवराय ने विजय नगर साम्राज्य की खोई भूमि को अपने अधिकार में लिया। गजपति राजा को पूरी तरह से हरा दिया तथा सुल्तानों को मृत प्राय बना दिया। इससे आगे वे कभी भी कृष्णदेवराय पर हमला कर ही नहीं सके। इसका साहस भी बटोर नहीं सके। अब कृष्णदेव ने पूरी तरह राहत पायी। उनका राज्य काल सुख और शांति का रहा। वह समय सन् 1530 ई. तक था। यह राज्य का द्वितीय दशक भी था। इस समय में उन्होंने शाँति पायी, कलाओं को प्रश्रय दिया, अपने साहित्यिक कार्यक्रमों और काव्य रचनाओं के लिए समय दिया और महाकाव्य-कवि के रूप में प्रसिद्धि रखनेवाले साहित्य सृजन को समय दे पाये। उनके दरबार में *''अष्ट दिग्गज कवि''* (आठ प्रमुख कवि) शोभित रहे। उनमें अल्लसानि पेद्दन, मुक्कु तिम्मन, धूर्जटी, मादय्यगारि मल्लन, आदि थे। उनकी मंत्रणा के लिए विद्वान मंत्री तथा सेनापति थे। आप के प्रधान मंत्री सालुव तिम्मय-दंडनाथ (अप्पाजी) थे। आपने अगस्त्य के चम्पू-भारत की व्याख्या रची है। अप्पाजी की बहिन के पुत्र नादिण्ड्ल गोपामान्य (जिन्होंने प्रबोध चन्द्रोदय की व्याख्या प्रस्तुत की है और कृष्णार्जुन द्विपद काव्य तेलुगु में रची है), बण्डारु लक्ष्मीनारायण (संगीत सूर्योदय के लेखक), भानुकवि (पंचतंत्र के तेलुगु अनुवादक) और कन्नड कवि तिम्मन (तिक्कन के महाभारत के कन्नड में अनुवादक कवि) आदि भी उनके समय में उनके साथ रहे हैं। ये सारी सूचनाएँ श्री के. ईश्वर दत्त के ''जीर्ण विजय नगर चरत्रमु'' में हैं। यह *तेलुगु* रचना है (पृ.148-150, 154-155 और 170-171; Dev. Epi, Rep. पृ. 184-185 और पृ.155 नोट-3)। कवियों को प्रोत्साहन देना और आश्रय प्रदान करने के साथ साथ अपने अनेकों कवियों की कृतियों का भी समर्पण प्राप्त किया। अल्लसानि पेद्दन, मुक्कु तिम्मकवि आदि ने अनेकों काव्य लिखे तो हैं, लेकिन स्वयं श्रीकृष्णदेव राय भी कवि थे। उन्होंने 'आमुक्तमाल्यदा' नामक

महाकाव्य लिखा। इस काव्य का उपशीर्षक है - ''विष्णु चित्तीयमु''। इस काव्य में आपने अपूर्व काव्य शैली और विशिष्ट विद्वत्ता का प्रदर्शन किया। एक विशेषता यह भी है कि *विशिष्टाद्वैत* सिद्धांत का बहुत सुंदर प्रतिपादन इस काव्य में हुआ है। यह वैष्णव धर्म सिद्धान्त है। ''जाम्बवती-कल्याणम्'' नामक *संस्कृत नाटक* की रचना भी आपने की है। अपने शासन काल में वसंत ऋतु के समय में कवि-सम्मेलन के आयोजन भी वे कराते रहे। इसमें भाग लेने के लिए अपने साम्राज्य के सभी प्रांतों के पंडित कवि आते थे और समुचित रूप से आदर सत्कार भी पाते थे। श्रीकृष्णदेवराय ने साहित्य को ही नहीं अन्य कलाओं को भी समुचित आदर दिया था। उनमें नाटक, संगीत, नृत्य, शिल्पकला, वास्तुकला, ज्योतिष, खगोल शास्त्र, वैद्यशास्त्र, पुराणों की व्याख्याएँ आदि आदि हैं। श्रीकृष्णदेव राय अनेक मंदिरों के निर्माता भी थे। *मंटपों, गोपुरों* (शिखरों), और *प्राकारों* का भी उन्होंने निर्माण करवाया। समस्त कलाओं के विकास के लिए आपने बहुत से अनुदान प्रदान किये थे। वे *''रायलु''* नाम से प्रजा द्वारा गौरवान्वित हुए थे। आपने गाँवों और धन राशियों को दान में मुक्त रूप से दिया था। इसी कारण से उनका राज्य काल इतिहास में ''स्वर्ण युग'' माना गया है।

श्रीकृष्णदेवराय के साथ विद्वान, संवेग शील, सुयोग्य तथा वीर मंत्रियों का समुदाय था। उद्दण्ड सेनापति थे। विशिष्ट शासक-अधिकारी भी थे। इन सबमें प्रथम गण्य प्रधान मंत्री (मुख्य मंत्री) सालुव तिम्मरसु थे। आप श्रीकृष्णदेवराय के बडे भाई के भी प्रधान मंत्री रहे थे। रायलु के बडे भाई थे वीर नरसिंहराय जिनका देहावसान सन् 1509 ई. में हुआ था। महामंत्री तिम्मरसु ने ही कृष्णदेव राय को सिंहासन पर आसीन कराया। कृष्णदेवराय उस समय बीस वर्ष से कुछ अधिक उम्र वाले थे। इसीलिए महामंत्री ने उनको राज गद्दी पर बैठने के लिए उपयुक्त समझा था। यह इसलिए सोचा गया था कि वीर नरसिंहराय का पुत्र बहुत छोटा था। वीर नरसिंहराय ने श्रीकृष्णदेवराय की आँखें फोड कर उन्हें शासन के लिए अनुपयुक्त बनाने की आज्ञा भी महामंत्री तिम्मरसु को दी थी। लेकिन उसका अनुपालन उन्होंने नहीं किया। यह आज्ञा श्रीकृष्णदेवराय को शासन के अधिकार से दूर रखने तथा अपने पुत्र के प्रतिद्वंद्वी न होने देने के लिए ही थी (नूनिज़ स्वेल के ''फरगाटन अम्पैर'' पृ.314)। इस अनुपम कार्य के लिए तथा तिम्मरसु की उम्र, बडप्पन, प्रशासन का अनुभव, समुचित सलाहों आदि को दृष्टि में रखकर ही कृष्णदेवराय समुचित गौरव के साथ उनको ''अप्पाजी'' कहकर पुकारते थे। (''अप्पा का सामान्य अर्थ 'पिता' है)। महामंत्री तिम्मरसु महान प्रज्ञाशाली मंत्री ही नहीं बल्कि विशिष्ट सेना नायक भी थे। यह कहा गया है कि सालुव तिम्मा ने कोंडवीडु दुर्ग को अपने अधीन कर लिया था और इसलिए उनको प्रादेशिक अधिकारी (गवर्नर) नियुक्त किया गया। सालुव तिम्मा ने आगे भी रायलु के साथ रहने की इच्छा प्रकट करने के कारण उनके निकटतम संबन्धी और अपने दामाद नाडिण्ड्ल गोपा को उनके स्थान पर नियुक्त किया। सालुव तिम्मा के पिताजी भी राजा के साथ ही रहे थे। गजपति को पूर्ण रूप से हराने

के बाद तथा सिंहाद्रि-पोट्नूरु में मार्च 1516 ई. में विजय स्तंभ निर्मित होने के बाद कृष्णदेव राय ने पुनः अपनी तीर्थ यात्रा आरंभ की। यह एक प्रकार से उनकी *भू-प्रदक्षिणा* थी। इसमें उन्होंने अनेक पुण्य - तीर्थों तथा मंदिरों का दर्शन किया। 6-2-1517 ई. में संपन्न किये गये कुंभकोणम् के महा-मखा उत्सव में भाग लेना इस *भू-प्रदक्षिणा* का प्रधान लक्ष्य था। अपनी इस यात्रा की परिसमाप्ति के बाद कृष्णदेवराय विजयनगर वापस लौटे। विट्ठलनाथ और विरूपाक्ष देव की आराधना की। तत्पश्चात् शुभ लग्न और शुभ दिन पर सम्राट कृष्णदेवराय ने अपनी दरबार बुलायी। उस *दरबार* में अप्पाजी को एक अमूल्य रत्न जडित कंबल पर बिठाकर रत्नाभिषेक और स्वर्णाभिषेक संपन्न किया। अमूल्य वस्त्रों, आभरणों और रत्नों से अप्पाजी उस समय पुरस्कृत भी हुए। उनको रथ पर बिठाकर घर तक वापस शोभा यात्रा द्वारा भिजवाया गया। (Dev. Epi, Rep. P 178, नोट -1)।

अप्पाजी के एक छोटे भाई थे। उनका नाम सालुव गोविंदराज था। ये विभिन्न प्राँतों के गवर्नर भी रहे थे। रायचूर युद्ध के समय में, अर्थात् 1520-1521 ई. में ये विजयनगर के गवर्नर भी रहे थे ('ए फरगाटन् एमपैर', स्वेल, पृ 284)।

सालुव तिम्म-मंत्रीन्द्र की एक बहिन थी। उनका नाम कृष्णांबा था। उनका विवाह नारिदिंड्ल (नादिंड्ल) तिम्मरस से हुआ। उनके तीन पुत्र थे - कोना, अप्पा और गोप। सालुव तिम्मरसु की दो पुत्रियाँ थीं। इनको उन्होंने अपनी बहिन के पुत्रों से विवाह संबन्ध द्वारा जोडा। यह अप्पा और गोप से हुआ। उन दोनों को भी विजयनगर साम्राज्य के दो प्रातों के गवर्नर बनाया गया (Dev. Epi, Rep.PP 191-193)।

इस प्रधान मंत्री तिम्मरसय्या ने कडपा जिले के परानतलूर गाँव को भगवान वेङ्कटेश्वर को दान में शक संवत्सर 1433, अर्थात् 13-1-1512 ई में, अर्पित किया। इसमें आदेश भी था कि भगवान को हर दिन आठ *तिरुपोणकम्, विशाखा* नक्षत्र के 13 दिनों में, प्रमुखतः यह उनका जन्म नक्षत्र होने के कारण, 13 *अतिरस-पडि* अर्पित हों। इसी प्रकार अपनी पत्नी लक्ष्मीअम्मा के जन्म नक्षत्र *अश्विनी* के 13 दिनों में भी संपन्न हो। *तिरुक्कोडि-तिरुणाल* के सात दिनों में सात *अतिरस-पडि मंटपम्* में और *नावलूर्रु (पुन्नागा-कुल्योत्सवम्)* और श्रीगोविंदराज स्वामी के गर्मियों में चलनेवाले उत्सव में आठ प्रकार के *पण्यारम्* प्रस्तुत करने का भी नियमन किया है। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को अर्पित करनेवाले *प्रसाद* में से कुछ भाग सिंगय्यन को भी देना निर्देशित था। ये *सात्ताद-श्रीवैष्णव* थे जो मंत्री द्वारा बनवाये गये फूल-वन के संरक्षक थे (जिल्द III, संख्या 21)।

प्रधानी (प्रधान मंत्री) द्वारा गाँव दान देने के 20 दिन पहले और प्राधान के मंदिर आने से पहले (दर्शनार्थ) उनकी पत्नी लक्ष्मी अम्मनगार ने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को 1200 नर्पणम् अर्पित किया था।

यह 25-12-1511 ई. में घटित हुआ था। यह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को *तिरुप्पोनकम्* प्रतिदिन अर्पित करने के लिए था। दाता *अप्पयन* को दिये जानेवाले ¼ *प्रसाद* को अपने दामाद और नारिदिंड्ल (नादिन्ड्ल) तिम्मराज को देने का निर्देश भी है। (वही, संख्या 19)।

वह परिलेख जिसमें सालुव भाईयों का उल्लेख है, जो श्रीकृष्णदेव राय के समय का भी था, वह 27-8-1522 ई. का था। इसमें सालुव भाई युग्म तिम्मरसय्या और गोविंदराज के नाम हैं। ''पीस'' (एक इतिहास लेखक) स्पष्ट करते हैं - ''श्रीकृष्णदेवराय के अत्यंत प्रीतिभाजक व्यक्ति एक वयोवृद्ध तिम्मरस हैं। ये समस्त परिवार पर अधिकार रखते हैं। समस्त प्रमुख अधिकारी जिस प्रकार राजाज्ञा का पालन करते हैं, उसी प्रकार इस व्यक्ति की आज्ञा का पालन करते हैं (सीवेल का इतिहास ग्रंथ ''ए फरगाटन एमपैर, पृ 250)'' और आगे कहते हैं कि ''सालुव तिम्मरस ही एक सर्वप्रथम व्यक्ति हैं जो राजभवन में आसानी ही प्रवेश पाते हैं और समस्त कार्यक्रमों और कार्यों पर निगरानी रखते हैं। ऐसी सुविधा इसलिए क्योंकि इन्होंने राजा को पाला-पोसा है और इससे अधिक उनकी रक्षा भी की है। राजा भी इनको अपने पिताजी के समान मानते हैं (अप्पाजी कहते हैं)। साम्राज्य के सभी अधिकारी, सामंत, सेनापति सब इनको देखकर सलाम करते हैं (वही, पृ.268)।'' ''जैसे ही हम विजयनगर में पहुँचे वैसे ही उस नगर के गवर्नर गोविंदराज (सालुव तिम्मरस के भाई) ने हम सब लोगों का सादर स्वागत किया और विजयनगर राजाओं का महल दिखाया (वही, पृ.284)''। सेवेल कहते हैं कि ''डोमिंग पीस का कथन शायद 1520-22 ई. में अक्षर बद्ध किया हुआ होगा।'' प्रधानमंत्री तिम्मरसय्यंगार का नाम शक संवत् 1446 (1524 ई.) पाते है। उस समय एक दाता ने श्रीगोविंदराज स्वामी के *ब्रह्मोत्सव* के समय पर प्रदान किये जानेवाले पाँचवे दिन पर श्रीकृष्ण को अर्पित प्रसाद के संदर्भ में यह सूचित किया है कि यह समर्पण *प्रधानी* के सौभाग्य के लिए है (जिल्द III संख्या 166)। यह तिम्मरस के उल्लेख का अंतिम संदर्भ भी माना जा सकता है। नूनिज़ कहते हैं कि एक महा संकट उस समय उन पर और उनके भाई तथा उनके अन्य संबन्धियों पर गुजरा है।

श्रीकृष्णदेवराय को तिरुमलांबा से एक पुत्र हुआ है। ये बडी राणी भी थी। श्रीकृष्णदेवराय ने उस पुत्र का नाम तिरुमलराय रखा था। पुत्र और अपनी रानी के साथ रायलु तिरुमल पहुँचे। उस समय वे अपने पुत्र की भलाई के लिए प्रार्थना करना चाहते थे। यह 16 नवंबर, 1518 ई. में संपन्न हुआ था (Dev. Epi. Rep. P.165)। यह राजा का छटवाँ भगवत् दर्शन भ्रमण था। राजा राजकुमार को सिंहासनारूढ़ होने का सपना देख रहे थे। विजयनगर साम्राज्य के सम्राट के रूप में अपने पुत्र को प्रतिष्ठित करने की आशा उनके हृदय में थी। इसी कारण से रायलु ने अपने पुत्र को सम्राट घोषित कर सिंहासन पर बिठाया और स्वयं साम्राज्य के महामंत्री बने। परिणामतः सालुव तिम्म को अपने सलाहकार

बनाया। ''इन परिवर्तनों के फलस्वरूप कृष्णदेवराय ने बडे बडे उत्सव मनवाये। ये उत्सव आठ महीने पर्यन्त चलते ही रहे। इसी बीच राजा का पुत्र बीमार पडा और बीमारी के कारण उनकी मृत्यु हो गयी।'' अपने पुत्र की मृत्यु के बाद कृष्णदेवराय को लगा कि उनका पुत्र विष पिलाये जाने की वजह से मर गया। समझा कि सालुव तिम्मरसु के पुत्र ने विषपान करवाया है। क्रोध में आकर सालुव तिम्मरसु, उनके पुत्र और उनके भाई और कुछ अन्य उनके संबन्धियों को बुलवाया। सलामी लेने के बाद अपने भाषण में सभी अन्य राज्य के प्रमुखों के सामने इस प्रकार घोषित किया - ''मैं तुमको हमेशा मेरा श्रेष्ठ दोस्त समझता था। गत 40 वर्षों से तुम इस साम्राज्य के (गवर्नर) प्रमुख अधिकारी रहे हो। इसे भी तुम्हीं ने मुझे दिया है। इसके लिए मैं तुम्हारा कृतज्ञ बन नहीं सकता। क्योंकि तुमने इस हैसियत पर रहते हुए भी दूसरे ही प्रकार से काम किया है। सही मार्ग के विपरीत काम किया है। ऐसा तुमने अपने राजा और मेरे भाई के कहने पर ही किया है। आँखों में धूल झोंकने के लिए तुमने न तो उनकी आज्ञा का पालन किया है और न ही उनके प्रति विनीत रहा। उल्टे तुमने उसको धोखा दिया है। मेरी आँखों के स्थान पर उनको बकरी की आँखें दिखाई है। इस प्रकार तुम राजद्रोही हो। मैं ने तुम्हारी और तुम्हारे तीनों पुत्रों के लिए सीमा से अधिक उपकार किया है। बदले में तुम लोगों ने मुझे क्या दिया है। मुझे पता चला है कि मेरे पुत्र की मृत्यु विष देने के कारण हुई है। यह काम तुमने और तुम्हारे तीनों पुत्रों ने मिलकर किया है। इसीलिए आप सब अब मेरे बंदी हो और आप कारावास में ही रहेंगे।''

इतना कहकर राजा उठे तथा उन पर हाथ रखकर बंदी बनाया। इतने करने के बाद कृष्णदेवराय ने घुडसवार पुर्तगाली सैनिकों को अपनी रक्षा के लिए बुलाया। सहायता उनकी माँगी। तिम्मरसु के लोगों, पुत्रों तथा अन्य बन्धुओं को पकडने के बाद उनको तीन वर्ष पर्यन्त कैद में रखा। तत्पश्चात् कृष्णदेवराय ने कोडेमेराडो के पुत्र को मंत्री बनाया। वही व्यक्ति था जिसने नरसिंह को पेनुगोंडा के एक बगीचे में मारा था। तदर्थ उसे राजा की अनुमति भी मिली थी।''

नूनिज़ आगे कहते हैं - ''जैसे ही सबको बंदी बनाया गया उसके कुछ ही समय बाद सालुव तिम्मरसु के एक पुत्र 'कोना' कैद से भाग निकला और एक घने जंगल में चला गया। वहाँ पहाडी चोर ही रहते थे। लेकिन वहाँ एक पुराना किला था। उसमें तिम्मरसु का एक दूर का रिश्तेदार रहता था। उसने इस लडके की सहायता की। वहाँ से उसने कृष्णदेवराय पर दावा बोल दिया। उन्होंने अपनी सेना भेजी। ''अजबोइस्सा'' नामक एक मंत्री की देख-रेख में कृष्णदेव राय ने सेना भेजी। सेना ने किले को चारों ओर से घेर लिया और तिम्मरसु के पुत्र को बंदी बनाकर कृष्णदेवराय के सामने प्रस्तुत किया। राजा ने तिम्मरसु को पकड कर लाने का आदेश दिया। तिम्मरसु और उसके एक और भाई, दोनों को लाने का राजा का आदेश था। सब को बंदी बनाने के बाद उनको फाँसी चढाने की जगह पर पहुँचाया गया। वहाँ

उनकी आँखें फोड दी गयीं। क्योंकि उनके साम्राज्य में ब्राह्मणों को फाँसी नहीं दी जा सकती। लेकिन कुछ न कुछ सजा मिलनी ही चाहिए थी। इसलिए मात्र आँखें फोड दी गयीं। आँखें फोडकर फिर उनको कारागार में डाल दिया गया। तिम्मरसु कारागार में ही मर गये और उनके पुत्र जेल में ही रह गये'' (सेवेल - ''ए फरगाटन एमपैर, पृ.359-369)।

इसमें संदेह नहीं कि नूनिज़ ने उक्त रूप से दर्दनाक घटना का पूरा विवरण दिया है फिर भी इसमें शंका की बात है कि सालुव तिम्मरसु का एक पुत्र था क्या? क्योंकि उनकी दो पुत्रियाँ होने की ही सूचना है और उनका अपनी बहिन के पुत्रों के साथ विवाह करवाया है। वे थे अप्पा और गोपा। उस संदर्भ में किसी प्रकार का संकेत भी नहीं है कि तिम्मरसु के पुत्र होने का। शायद उनके द्वारा जो ''Son'' शब्द का प्रयोग हुआ है उसे हमको ''Son-in-law'' (दामाद) के अर्थ में लेना ही होगा (Dev. Epi. Rep. P 191)। चाहे पुत्र हो या दामाद क्या वे राजा के पुत्र को विष देने के खतरनाक कार्य की योजना बना सकते हैं? क्या वे इस कार्य के परिणाम समझ नहीं सकते? क्या सालुव तिम्मरसु जिसने कृष्णदेवराय की रक्षा की और उनकी आँखें बचायी थी ऐसा निकृष्ट कार्य कर सकते हैं? उन्होंने श्रीकृष्णदेवराय को साम्राट भी बना दिया था न! ऐसा व्यक्ति क्या उनके ही पुत्र की हत्या करवा सकते हैं? ऐसे महान व्यक्ति पर राजा कृष्णदेवराय उनको विश्वासघाती और देशद्रोही ठहरा सकते हैं क्या? इस भूमिका में यही लगता है कि इसमें कहीं न कहीं कुछ असत्य छिपा है। क्योंकि सालुव तिम्मरसु से संबन्धित भाइयों के संबन्ध में कहीं किसी भी परिलेख में सूचना ही नहीं है। खासकर श्रीकृष्णदेव राय के शासन के अंतिम छः वर्षों के परिलेखों में इनका किसी प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता। उन्होंने 1530 ई. तक राज्य पर शासन किया था। तिम्मरसु और उनके दामादों (अथवा पुत्रों) की आँखों फोडने की भी सूचना कहीं से नहीं मिलती हैं। उनमें कृष्णदेवराय के सौतेले भाई अच्युतराय के गद्दी पर बैठने के समाचार ही मिलते हैं।

श्रीकृष्णदेवराय के पुत्र तिरुमलराय को विष देने का अभियोग सालुव तिम्मरसु पर कृष्णदेवराय के ही एक नायक ने डाला था। उसका नाम है मुखप्पालम् नागमनायक। यह मदुरा के मुख्य अधिकारी (गवर्नर) था। उसने रायलु पर विद्रोह किया था। उसके ही पुत्र विश्वनाथ नायक ने अपने पिता को ही बन्दी बनाकर कृष्णदेव राय के सामने प्रस्तुत किया। बाद को रायलु ने उसको क्षमाभिक्षा दी। यदि तिरुमल राय को विष दिया ही गया हो तो यह काम अच्युतराय के पुत्रों में से किसी ने किया होगा या दोनों मिलकर। ये अच्युतराय के साले थे सलकराज पेरिय तिरुमल राय और सलकराज चिन तिरुमलराय। ये कृष्णदेवराय (उन के चाचा) के बाद गद्दी पर बैठने की आकांक्षा रखते थे। वैसे तो उनके मन में यह बात पनपती रही होगी कि ऐसे विशाल साम्राज्य के वे सम्राट बने। (Dev. Epi. Rep. P. 230)।

अगर कृष्णदेव राय ने वास्तविक रूप से सालुव तिम्मरसु और उनके भाई गोविंदराज तथा उसके संबन्धियों नादिंड्ल अप्पा और गोपा को मात्र बन्दी बनाकर कारागार में डालते तो ऐसा लगता कि बिना सोचे-समझे यह काम जल्दबाजी में किया गया है।

शक संवत्सर 1445 में (12-1-1524 ई. में) श्रीकृष्णदेवराय ने मध्वाचार्य श्रीमत् व्यासतीर्थ-श्रीपाद-उडैयार को, जो श्रीमत् ब्राह्मण्य तीर्थ श्रीपाद उडैयार के शिष्य थे, तिरुमल पर तीन निवास योग्य घर बनाने के लिए जगहें दी है। ये स्वामी पुष्करिणी की उत्तरी दिशा में हैं। एक और निवास बनाने योग्य स्थल गोविंदराज स्वामी की उत्तर माडा वीथि में (तिरुपति में) *मठों* को बनवाने के लिए दिये। गोविंदराज स्वामी को जो *प्रसाद* समर्पण का देवदान किया था उसके दाता भाग प्रसाद जो मिलता है उसे भी उक्त व्यासतीर्थ स्वामी को ही दे दिया गया (जिल्द III, संख्या 157, 158 और 159)। व्यासतीर्थ स्वयं ने भी भगवान वेङ्कटेश्वर को कुछ समर्पण किये जो स्वामी के आठ *ब्रह्मोत्सवों* के संदर्भ में अर्पित होते हैं और अन्य उत्सवों, धार्मिक कार्यों आदि के लिए भी ये समर्णण हैं। व्यासतीर्थ के ये सब समर्पण कुल मिलाकर 354 *अप्प-पडि* हैं। तदर्थ 14,000 *नर्पणम्* जमा किये गये हैं। शियालपंडूर नामक गाँव का देवदान उनके अर्पण द्वारा हो सका है। यह 8-11-1524 ई. में हुआ है (वही, संख्या 165)। बाद में उन्होंने 2-4-1528 ई. में गोविंदराज स्वामी के समर्पणों के लिए, विषेशकर पूर्णिमा के दिनों में, ओड्डपैट्टु गाँव का दान दिया (संख्या 175)। ये माध्व गुरु व्यासतीर्थ एक महान संस्कृत विद्वान थे। उन्होंने बहु संख्या में धार्मिक रचनाएँ संपन्न की हैं। उपनिषदों की व्याख्याएँ रची हैं (वही, पृ 328)। कहा जाता है कि श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी के मंदिर में अनेक अनहोनी कार्य होते रहने के कारण उनको *(आचार्य)* बहुत वर्षों तक वहीं रहना पडा है। यह समय 12 वर्षों का बताया गया है। वे वहाँ रहते हुए सालुव नरसिंह के दरबार में गये। उस समय राजा चन्द्रगिरि किले में थे। हमारे पास मंदिर से संबन्धित ऐसे कार्यों की कोई लिखित सूचना नहीं है। एक बात अवश्य मिलती है कि भगवान के कुछ आभरणों की चोरी हुई है। यह तत्कालीन मंदिर के पुजारी सिर्रप्पायन ने किया है। इसके लिए नंबी (पूजारी) के उनके निवासित घरों को जप्त करके भगवान को समर्पित करने का आदेश राजा से दिया गया। श्रीकृष्णदेव राय ने उन गृहों को व्यासतीर्थ को देने का आदेश दिया था। उन घरों के स्थान पर *मठों* के निर्माण का आदेश भी था (जिल्द III संख्या 157-159)। शायद उस समय कुछ काल के लिए व्यासतीर्थ ने मंदिर के मुख्य पुजारी का कार्य भी किया हो। यह सालुव नरसिंह के चन्द्रगिरि के अधिकारी के रूप में रहते समय की बात है। तत्पश्चात् कुछ समय के लिए सालुव नरसिंहराय ने विजयनगर सिंहासन भी ग्रहण किया। कहा जाता है कि *''कुहू-योग''* काल में वे सिंहासन पर बैठे। यह बहुत ही बुरा समय है। कुछ बुरे ग्रहों के योग के समय को ही ''कुहू-योग'' काल कहते हैं। यह राजाओं के लिए बहुत ही बुरा समय है। यह रायचूर युद्ध के बाद पडने वाली अमावास्या के दिन पर कुहू योग हुआ था। यह वह समय था

जब श्रीकृष्णदेवराय ने सिंहासन खाली किया, कुछ समय के लिए। उस काल में ही आचार्य ने व्यास-राय का नाम पाया। (राय का अर्थ है राजा) (Dev. Epi. Rep. P 166-167 और 207-211)।

श्रीकृष्णदेवराय के शासन के आरंभिक काल में तिम्मरसु ने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को परंतलूर गाँव का समर्पण दिनांक 13-1-1512 ई. को किया था। उसके साथ-साथ उन्होंने *'पीतांबरम्'* (एक रेशमी वस्त्र) को भी अर्पित किया। तिम्मरसु के भाई गोविंदराज ने भी भगवान गोविंदराज को नित्य नैवेद्य निवेदन के लिए गंडिकोट-सीमा के अंतरर्गत स्थित ''मोलपाडि'' गाँव का दान किया। ये दान कृष्णदेवराय महाराज के कल्याणार्थ ही हुए थे। समर्पण का समय 27 आगस्त, 1522 ई. है (संख्या 154 जिल्द III)। उनके दामाद पेंडिलिकोडुकु चेन्नायन के द्वारा वेङ्कटेश्वर और गोविंदराज स्वामी दोनों भगवानों को उरवकोण्ड-सीमा के हनुमानिगुण्ट गाँव का समर्पण हुआ है दिनांक 20-11-1524 ई को (वही, संख्या 163)।

राजा अच्युतराय के काल में तिम्मरसु ने अपने छोटे भाई सालुव गोविंदराज से संबन्धित *प्रसाद* अर्पण का सवा भाग था, जो दाता का भागांश है, उसे 4600 *पणम्* पर दिनांक 26-2-1536 ई. में अन्नमय्यंगार (अन्नमाचार्य) के पुत्र ताल्लपाक तिरुमलय्यंगार को बेचा है। उक्त समर्पण तिरुमल से संबन्धित था (जिल्द IV, संख्या 72)। दोनों सालुव भाइयों ने संयुक्त रूप से श्रीगोविंदराज स्वामी को समर्पित *प्रसादम्* के दाता भाग, जो चौथा अंश होता है, ताल्लपाक तिरुमलय्यंगार को 5203 *पणम्* पाकर बेचा है (वही, संख्या 4)। यह बाकयदा ''रिजिस्टर्ड'' है। फिर दिनांक 28-12-1536 ई. में राचिराज के पुत्र सालुव तिम्मरसु ने एक बिक्री-पत्र के द्वारा ताल्लपाक तिरुमलय्यंगार को अपने *प्रसादम्* का चौथा भाग, जिस प्रसादम् को श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को हर दिन समर्पित करते थे उसका ¼ भाग, बेचा है 1900 *पणम्* लेकर। इसमें खरीददार इस हक को स्वयं प्राप्त कर सकता है, बेच सकता है, दान दे सकता है - ऐसा नियम भी बिक्री पत्र में जोड दिया गया है। इसके साथ एक ही शर्त है कि प्राप्त करनेवाले को (खरीदनेवाले को) तिरुमल में रहना है और अन्नमाचार्य के *संकीर्तनों* का गान रोज करना है भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर की सन्निधि में (वही, संख्या 93)। इन लेन-देन में तिम्मरसु एक सामान्य व्यक्ति ही लगता है और वह राचिराज का पुत्र है। उसके साथ कोई पद या उपाधि या सरनामा नहीं है। तिम्मरसु का छोटा भाई गोविंदराज ने शक संवत्सर 1463 में, 5 नवंबर 1541 ई. में, श्रीगोविंदराज स्वामी को नित्य नैवेद्य और विशेष संदर्भीय समर्पणों के लिए एक गाँव का दान प्रदान किया है। यह विशेष संदर्भ हर वर्ष मृगशिरा नक्षत्र में आनेवाले 13 दिनों का है। (वही, संख्या 166)। यह राजा अच्युतराय का जन्म नक्षत्र है। इसके साथ साथ अन्य दाताओं के जन्म नक्षत्रों पर भी इस प्रकार की व्यवस्था की गयी है यथा ताल्लपाक तिरुमलय्यंगार (वही, संख्या 6) और भण्डारम् शिरु तिम्मय्यार (वही संख्या 36)। ये

श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को इस प्रकार के समर्पणों के लिए आभारी है राजा के। इसी प्रकार सालुव गोविंदराज तो अच्युदराय के आभारी हैं। क्योंकि, प्रमुखतः इसलिए कि उन्होंने सालुव गोविंदराज और उनके बडे भाई को कारागार से मुक्त किया है। ये श्रीकृष्णदेवराय से बंदी बनकर कारागार में रखे गये थे। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने शासन में सालुव गोविंद राज को एक उच्च अधिकारी के रूप में भी नियुक्त किया है। सालुव गोविंदराज के द्वारा गाँव का दान अच्युतराय के शासन काल के अंत के एक वर्ष पहले ही हुआ है। इसका समय 5-11-1541 ई. है। उस समय सालुव गोविंदराज *'महाप्रधानी'* और *'शिरःप्रधानी'* बने हैं (Dev. Epi. Rep. P.195)। इसी प्रकार उनके बडे भाई सालुव तिम्मरसु ने मल्लापरम् गाँव का देवदान भगवान को अर्पित किया है। यह अच्युतराय की सलाह या उनके आदेश के अनुसार था। यह मलैकिनिन्र पेरुमाल की उत्सव मूर्ति के लिए समर्पित था। वह भी आठ *ब्रह्मोत्सवों* के सातवें दिन के प्रसाद समर्पणों के लिए। यह देवदान 12 जनवरी 1537 ई. में हुआ है। इसमें यह आदेश भी है कि नियमित रूप से कुछ पारिश्रमिक धन हर महीने *श्रीवैष्णवों* को भगवान के पुष्प वन की देख-रेख के लिए देना है और दाता का चौथा भागांश *अप्पै प्रसादम्* और *चंदनम्* अप्पय्यन को ही देना है (जिल्द III, संख्या 89)। इससे संबन्धित पत्र की रजस्ट्री भी की गयी। अर्थात् प्राचीन पद्धति में यह एक प्रलेख रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस में श्रीमान् महाराजाधिराज राजपरमेश्वर श्री वीरप्रताप अच्युतराय महाराज का ऐतिहासिक विवरण भी है आर्थत् उनके राज्य शासन की विशेषताओं से युक्त परिचय है। *अप्प प्रसादम्* के दाता शायद नाडिण्ड्ल अप्प (अप्पन्) ही हो सकते हैं। ये सालुव तिम्मरसु के दामाद और विशेष संबन्धी भी है (भानजा हैं)। इन्हीं को पहले तिम्मरसु की सह धर्मचारिणी लक्ष्मी-अम्मा ने *प्रसादम्* का दाता भाग अर्पित किया है। यह श्रीकृष्णदेव राय के समय में श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को अर्पित हुआ था। समय 25 दिसंबर, 1511 ई. (संख्या 19, जिल्द III)। इस समर्पण के दाता सालुव तिम्मरसु ही होने की पूरी संभावना है। इतना ही नहीं अप्पन नामक और कोई दूसरे व्यक्ति की सूचना नहीं मिलती है। एक और अप्पपिल्लै का नाम मिलता है। इसने भी श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज दोनों को श्रीकृष्णदेवराय के समय में, शक संवत्सर 1437 मे (4-8-1515 ई), प्रसाद समर्पण की व्यवस्था में दान दिया था (जिल्द III, संख्या 104)।

ताल्लपाक तिरुमलय्यंगार अन्नमय्यंगार के दूसरे पुत्र हैं। अन्नमय्या के प्रथम पुत्र नरसिंगय्या तो कवि और संकीर्तनकार रहे हैं। वे अल्प आयु में ही परिवार को छोड गये। अन्नमय्यंगार (अन्नमाचार्य) ने संकीर्तन परंपरा का आरंभ, विशेष रूप से भगवान वेङ्कटेश्वर की सन्निधि में, अपने 16 वर्ष की आयु में तेलुगु में ही किया था। यह शक संवत्सर 1346 का *क्रोधि* नाम संवत्सर था (सन् 1424 ई.)। इसी समय भगवान तिरुवेंगलनाथ उनके सामने प्रकट हुए हैं (प्रत्यक्ष हुए हैं)। तब से शक संवत्सर 1424 (*दुंदुभि* नाम संवत्सर) के *फ़ालगुण* मास के कृष्ण पक्ष द्वादशी तक (फरवरी 1503 ई.) अनवरत

संकीर्तन रचना और गान में अपने जीवन को अर्पित किया भगवान के सामने। अन्नमय्या के अंतिम समय में उनके पुत्र पेद्द तिरुमलय्या पास ही रहे हैं। उसके बाद अन्नमय्या के पुत्र पेद्द तिरुमलय्यंगार ने *संकीर्तन* सेवा को आगे बढाया है। अन्नमाचार्य ने अपने पुत्र को संकीर्तन परंपरा को आगे बढाने के लिए प्रोत्साहित ही नहीं किया, उपदेश भी दिया। उन्होंने भी अपने पिताजी का अनुगमन करते हुए भगवान के सामने नित्य संकीर्तन गान किया (Dev. Epi. पृ.280, 283)। अन्नमाचार्य के चौथे पौत्र चिन्नन्न (चिन्न तिरुवेंगलनाथ) ने अन्नमाचार्य का चरित लिखा है -''अन्नमाचार्य चरित्रमु''। उसमें लेखक ने बताया है कि अन्नमाचार्य ने 32,000 *संकीर्तनों* की रचना की है। इन संकीर्तनों को ताडपत्रों पर और ताम्र पत्रों पर लिखवाया है। कुल मिलाकर *संकीर्तनों* के लगभग 3000 ताड पत्र और ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं। इनमें अन्नमय्या, उनके पुत्र पेद्द तिरुमलाचार्य, अन्नमय्या, के पुत्र पेद्द तिरुमलाचार्य, अन्नमय्या के पौत्र चिन्न तिरुमलाचार्य के संकीर्तन हैं। इन में लगभग 10,000 से 12,000 संकीर्तन अन्नमाचार्य के ही हैं। सालुव नरसिंह ने अन्नमय्या को प्रश्रय दिया। इसी कारण से अन्नमय्या को भगवान के मंदिर में श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के संकीर्तनकार के रूप में स्थान मिला हो। मंदिर में वे संगीतकार थे और संकीर्तनकार के रूप में उन्होंने अपना पूरा जीवन व्यतीत किया है। उनके बाद उनके पुत्र पेद्द तिरुमलय्यंगार ने उनके स्थान को शोभित किया और भगवान की सेवा की। इस तिरुमलय्यंगार के बाद उनके पुत्र चिन्न तिरुमलाचार्य ने स्थान ग्रहण किया। पिता और पुत्र (अन्नमाचार्य के पुत्र और पौत्र) ने *संकीर्तनों* की रचना की। इतना ही नहीं उनको ताम्र पत्रों पर लिखवाया भी है।

अन्नमाचार्य ने सन् 1503 ई. में परमपद प्राप्त किया। इनके पुत्र पेद्द तिरुमलाचार्य श्रीकृष्णदेवराय, अच्युतराय और सदाशिवराय तीनों के शासन काल में रहे हैं। लगता है कि चाहे कृष्णदेवराय सात बार तिरुमल भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के दर्शन के लिए तिरुमल की यात्रा की हो, फिर भी उन्होंने संकीतनाचार्य पेद्द तिरुमलय्या को पहचाना ही नहीं, अथवा उनकी ओर गौर नहीं किया हो। इसके विपरीत अच्युतराय और सदाशिव राय दोनों ने पेद्द तिरुमलय्या को गाँव दान देकर भी सम्मानित किया है। श्रीकृष्णदेवराय तो स्वयं कवि हैं ही, साथ साथ अपने कवि सम्मेलनार्थ *''भुवनविजयम्''* नामक एक विशेष भवन का भी निर्माण कराकर उस में कवि-सम्मेलनों और सदस्यों का निर्वाह किया है। यह आश्चर्य की बात लगती है कि श्रीकृष्णदेवराय ने संगीतज्ञ और संकीर्तनकार पेद्द तिरुमलय्या की ओर ध्यान ही नहीं दिया था। शायद वे अपने पिताजी अन्नमाचार्य के सामने अपने को गौण ही रखना चाहा हो। कृष्णदेव राय के समय में पेद्द तिरुमलाचार्य हमारी दृष्टि में एक ही बार आते हैं। वह उनके द्वारा भगवान के मंदिर को 1500 *नर्पणम* अर्पित करने का संदर्भ ही है। इसे मंदिर के खजाने में उन्होंने अर्पित किया। इससे वेङ्कटेश भगवान को एक *तिरुप्पोनकम्* रोज समर्पित होता है। यह शक संवत्सर 1439 (यानी 30-11-1517 ई.) में हुआ है (जिल्द III, संख्या 122)।

श्रीकृष्णदेवराय के दरबार में और अन्य दफ़्तरों में काम करनेवाले अनेकों अधिकारियों के भी नाम हमारे सामने आते हैं। उन्होंने भी श्रीवेङ्कटेश्वर, गोविंदराज स्वामी, अन्य देवताओं तथा आलवारों के लिए उपयुक्त समर्पण प्रस्तुत किये हैं।

महानायंकाचार्य पेरिय ओबळ नायक्कर रामानायक्कर ने कडलूर गाँव को दान में दिनांक 4-9-1504 ई. में दिया है। यह कृष्णदेवराय के बडे भाई वीर नरसिंहराय के समय में हुआ है। उन्होंने खेतों को पानी के लिए एक नहर खुदवाया है। ये खेत भगवान वेङ्कटेश्वर के प्रसाद अर्पणार्थ समर्पित खेत ही हैं (जिल्द III, संख्या 1)। फिर दिनांक 14-7-1512 ई. में उन्होंने भगवान के वाहन *गरुड़देव* को नित्य निवेदनार्थ एक दीप ज्योति (घी से जलाने के लिए) का समर्पण किया है। यह *प्रसादम्* समर्पण सहित है। संदर्भानुरूप भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के *प्रसाद* निवेदनों के लिए घी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए 50 गायों का भी समर्पण किया है (वही, संख्या 25)। आगे चलकर दिनांक 8-1-1514 ई. में फिर 200 गायों को अर्पित किया है, प्रधानतः मक्खन के लिए। इस का निवेदन रात के समय हर दिन किया जाता था। इस देवदान के साथ एक और आदेश भी मिलता है कि दाता को प्रदान किये जानेवाले *प्रसाद* का अंश *रामानुजकूटम* को दिया जाना चाहिए। वह कूटम में रहनेवालों के लिए अन्न स्वरूप उपयोग में आता है (संख्या 88)।

आपस्तंभ सूत्र और कौंडिन्यस गोत्र के करवट्टूप्पिलियाल्वार के पुत्र अप्पापिल्लै ने अपने खर्च से एक मंदिर को दान में दिये गये ग्राम में एक नहर खुदवाया है। ये महिपालकुलकालच्चेरि के रहने वाले थे। उसके गाँव का एक और नाम है उत्तिरन्मेरूर। यह 19-5-1506 ई. में घटित हुआ है। इसकी आमदनी से भगवान के नित्य-निवेदन होते हैं (वही संख्या 6)। इसके अलावा उन्होंने 3,180 *नर्पणम्* भी दिनांक 30-12-1506 ई. में गोविंदराज स्वामी के लिए दो *ब्रह्मोत्सवों* में हर एक में 12 दिनों में होनेवाले समर्पणों के लिए भी अर्पित किया है। ये उत्सव *वैकाशी* और *आणि* मासों में संपन्न होते हैं (संख्या 9)। फिर आगे उन्होंने 7800 *नर्पणम्* दिनांक 18-7-1506 ई. में अर्पित किया था। यह *अन्न-ऊँजल-तिरुणाल* (ऊँजल उत्सव) के लिए था। यह 8 दिन पर्यन्त निर्वहित होनेवाला उत्सव था। इसमें अनेक प्रकार के समर्पण भगवान को निवेदित होते हैं। यह वीर नरसिंहराय महाराज के कल्याणार्थ गोविंदराज स्वामी को अर्पित था (संख्या 13)। उन्होंने एक मंदिर का भी निर्माण कर उसमें हनुमान की मूर्ति की प्रतिष्ठा भी सन् 1509 ई. में की है। इस संदर्भ में भगवान हनुमान के निवेदनार्थ दैनिक प्रसादों की व्यवस्था भी उन्होंने की है (संख्या 17)। 7-4-1511 ई. में अंतिम देवदान व्यवस्था के रूप में वीर कृष्णराय महाराज के शुभ की आकांक्षा लेकर उन्होंने वीरकंपनल्लूर नामक गाँव को दान में दिया। यह पडैवीडु राज्य का गाँव है। ये भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए मनाये जानेवाले 7 *ब्रह्मोत्सवों* में 12 दिनों के नैवेद्य और अन्य समर्पणों के लिए था। विशेष दिनों के लिए तो विशिष्ट समर्पणों के लिए भी इसमें प्रावधान है। इतना

ही नहीं उनके जन्म नक्षत्र के 12 दिनों और 12 मासों में कुछ समर्पणों का प्रावधान इस देवदान के साथ हैं। उनके *मंटपम्* पर भी 7 दिनों के लिए विशेष अर्पणों की बात भी है। इस प्रकार कुल समर्पण 207 *अतिरस-पडि* होते हैं (संख्या 18)। अप्पापिल्लै के भाई मन्नारपिल्लै ने 1000 *नर्पणम्* दिनांक 27-6-1512 ई. को अर्पित किया है। यह तिरुपति में तिरुमंगैयालवार के नित्य निवेदनों और गोविंदराज स्वामी को अपने जन्म नक्षत्र के दिन पर अर्पण के लिए था। फिर उन्होंने तिरुमल पर उत्सव मूर्तियों को प्रसाद समर्पण के लिए 1200 *नर्पणम्* दिनांक 20-12-1512 ई. को अर्पित किया हैं। यह समर्पण भगवान वेङ्कटेश्वर की उत्सव मूर्तियों के लिए (तिरुमल में) था। यह अध्ययनोत्सवम् के संदर्भ में निवेदनार्थ था (संख्या 29)। कुछ अन्य समर्पणों के लिए भी उन्होंने 360 *पणम्* दिये हैं (संख्या 30)। एल्लप्पनायक्कर के पुत्र तिरुमलै नायक्कर ने सन् 1512 ई. में गोविंदराज स्वामी की कृपाप्राप्ति के लिए खेती के लिए उपयोगी एक नहर खुदवाया है (संख्या 27)। तम्मू नायक्कर ने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के समर्पण में 1200 *नर्पणम्* प्रस्तुत किये हैं। ये तम्मू नायक्कर जिल्लेल्ल बसव नायक्कर के पुत्र और गट्टिकै दलवाय दाडि नायक्कर के पौत्र हैं। यह दिनांक 30-12-1513 ई. में संपन्न हुआ है (संख्या 87)।

गौतमगोत्रज, आपस्तंभ सूत्र तथा कंपसमुद्रम् के निवासी तत्ववादी तिम्मण्यन के पुत्र नायणय्यन् को एक सैनिक जागीरदार ने *श्रोत्रियम्* गाँव दिये थे। उन गावों को उन्होंने मंदिर को दिनांक 26-7-1514 ई. में समर्पित किया। यह समर्पण तीन प्रकार के अर्पणों के लिए था जो प्रतिदिन श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को अर्पित किये जाते हैं (संख्या 90)। गंगलपुंडी नामक एक और गाँव को उसी दिन तीन ''हरिवाण'' (थाली भर अन्न प्रसाद) भगवान को अर्पित करने के लिए भी दिया गया है (संख्या 91)।

करणिक्क (लेखापाल) बसवरस, सोमरस के पुत्र थे। वे *गौतम गोत्र* और *अश्वलायन सूत्र* के थे और तिरुप्पेरूर के निवासी थे। उन्होंने एक नई नहर खुदावायी। यह नहर मंदिर के दान में दिये गये गाँव में खेतों की सिंचाई के लिए खुदवाई है। उन खेतों की फसलों से प्राप्त आमदनी को मंदिर की तिजोरी में भेजा जाता था। यह श्रीकृष्णराय महाराज की भलाई के लिए किया गया है। समय 12-09-1515 ई. था। इस दान से उत्सव मूर्तियों को सेनै मुदलियार सहित *मंटप* पर, जो उनकी फुलवारी में है, *वसंतोत्सव* के समय प्रसाद अर्पित होता है, विशेष कर उत्सव के 12 वें दिन पर। (संख्या 105)। *कौंडिण्य गोत्र* तथा *अश्वलायन सूत्र* तथा ऋक् शाखा के चंडिकै होबलदेव (ओबलदेव) के पुत्र बसवरस ने जो *करणिक* और *अट्टवणै* (रिवेन्यू अधिकारी) थे, 6100 *नर्पणम्* का दान दिया है। यह एक अनोखी अनुदान था जो *भेटकणिकै* (उडद, गेहूँ, जीरा और घी से बनाया जानेवाला प्रसाद) प्रसाद श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को अर्पित करने के लिए था। यह हर दिन अर्पित होता है। यह समर्पण शकसंवत्सर 1443 (सन् 1521 ई.) में विषु नाम संवत्सर में हुआ है (संख्या 148)। फिर उन्होंने दिनांक 21-09-1528 ई. में 6640 *नर्पणम्*

का समर्पण किया है। यह *तिरुमामणि मंटपम्* में वेङ्कटेश्वर भगवान की उत्सवमूर्ति को अर्पित होनेवाले प्रसादों के लिए था (संख्या 177)।

ओडियम एल्लप्प नायक्कर ने दैनिक प्रसादों के लिए 4600 *नर्पणम्* गोविंदराज स्वामी के लिए दिया है। यह समर्पण एक दैनिक अर्पण के लिए और विशेष दिनों में 24 *अतिरस-पडि* अर्पण के लिए है (संख्या 106)। उन्होंने कर्रालैपट्टु, नेलवाय और कोल्लिडूँबै नामक तीन गाँवों का भी दान दिनांक 02-06-1516 ई. को किया है। यह श्रीकृष्णराय महाराज के कल्याण की भावना से किया गया दान है। यह वेङ्कटेश्वर के दैनिक आठ नैवेद्यों के लिए अर्पित था (संख्या 109)। 29-03-1527 ई में उन्होंने एक शिला-रथ *सत्रम्* का निर्माण कराया है। यह उत्सवों में भगवान के लिए ठहरने का स्थान होता था। उस समय वे वाशलम् (द्वार रक्षक) थे (संख्या-168)।

वशिष्ठ गोत्र और *अश्वलायन सूत्र* के तिप्परस के पुत्र त्रयंबकदेव ने 12-10-1517 ई. में मोरण्डै नामक गाँव को दान में दिया है। ये शिवसमुद्रम् के निवासी थे। यह भगवान वेङ्कटेश्वर के लिए एक दैनिक अर्पण के लिए था। इसके द्वारा मार्गलि मास में संपन्न होनेवाले *तिरुप्पल्लि एलुच्चि* में 30 दिन पर्यन्त 30 *नायक-तलिगै* अर्पित होते हैं। *नायक-तलिगै* एक विशिष्ट प्रसाद है। इसी प्रकार आठ नायक तलिगै आठ ब्रह्मोत्सव दिनों में (यानी पाँचवें दिनों में) अर्पित होते हैं। ये आठ *ब्रह्मोत्सवों* के दिनों में संपन्न होते हैं। आठ और सातवें दिन पर अर्पित होते हैं। आठ *अतिरस पडि* आठवें दिन पर अर्पित होते हैं। 3 *अतिरस पडि* रथोत्सव के समय के तीन दिनों में अर्पित होते हैं। एक *नायक-तलिगै, श्रीजयंती* के संदर्भ में और एक अतिरस पडि *कार्तिकै* उत्सव दिन पर तथा एक *अतिरस-पडि पादियवेट्टै* उत्सव के दिन पर (आखेट उत्सव पर) अर्पित होते हैं (संख्या 116)।

नागरस के पुत्र बाहुर ने 14-10-1518 ई. में एक विशेष *पण्यारम्* के लिए (सीदै) उत्सव मूर्तियों के समर्पण के लिए 360 नर्पणम् अर्पित किये हैं। ये मलैकिनिय-निन्र-पेरुमाल को दाता के द्वारा निर्मित *मंटपम्* में, जो फूलवन में है, *ब्रह्मोत्सव* के सातवें दिन पर आठों *ब्रह्मोत्सवों* में अर्पण के लिए हैं। गोविंदराज स्वामी के दो ब्रह्मोत्सवों में भी सातवें दिन के लिए भी इस समर्पण के आधार पर निवेदन प्रस्तुत होते है। इनके साथ साथ दो अन्य दिनों के लिए भी इस समर्पण का उपयोग होता है (संख्या 127, 128 और 129)।

भारद्वाज गोत्र, अश्वलायन सूत्र तथा *ऋक् शाखा* के तिम्मरसय्यंगार के पुत्र रायसन् कोंडनरसय्या ने नेल्लूर जिले के मूलुमबुंडि गाँव को भगवान के लिए अर्पित किया है। यह गाँव उदयगिरि प्राँत में है और दान का दिनांक 17-04-1519 ई. है। यह दान भगवान वेङ्कटेश्वर को हर दिन 18 भोग के लिए

हैं। इससे प्राप्त होनेवाला दाता भाग प्रसाद दाता के *सत्रम्* (धर्मशाला) में (जो तिरुमल पर है) रहनेवाले लोगों को जायेगा। (संख्या 130 और 131)।

काश्यप गोत्र के तिम्मप्प नायकर के पुत्र अडैप्पम (सुपाडी पैकेट अर्पित करनेवाला) अर्पित करनेवाले भैय्यप्पनायकर ने 16-04-1519 ई. में भगवान वेङ्कटेश्वर को हर रोज 6(छः) अर्पण के लिए प्रावधान किया है। यह कृष्णराय महाराज के कल्याण की इच्छा से समर्पित है। शायद उनके पिता तिम्मप्प नायकर के शुभ के लिए भी हो (संख्या 135)।

भारद्वाज गोत्र और *अम्बिकामूडु (अमृत)* - शिला के शंकरदास के पुत्र सुबुद्धि रामदास ने (ये दोनों प्रताप रुद्र गजपति के पास काम करनेवाले थे और उनकी हार के पश्चात् वे दोनों भी कृष्णदेवराय की सेवा में जागीरदार भी बने थे) तंडलम् और अंबिकामुडु शिला के तडपालम् गाँव को वेङ्कटेश्वर भगवान को तीन दैनिक समर्पणों के लिए दान में दिया है। इन दैनिक समर्पणों में 2 ज्योति प्रज्ज्वलन और 2 फूल मालाएँ भी हैं। इसमें दाता के भाग का *प्रसाद* रामानुजकूटम के मैनेजरों को जाता है जो वहाँ की फुलवारी की सिंचाई करने है और देख-रेख भी (संख्या 147)।

सूरप्प रेड्डि तम्मुरेड्डि के पुत्र चिन्नप्परेड्डि और कुछ अन्यों ने मिलकर *पिल्लै तिरुप्पणि* भण्डात्तार से एक अनुबन्ध पत्र के द्वारा 17-01-1527 ई. में एक दान समर्पण किया है। उसके अनुसार उन्होंने सूखा खेत और तरी खेत का समर्णण श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए किया। यह श्रीकृष्णदेव राय महाराज के शुभार्थ था। इस अनुदान से 8 *अतिरस-पडि* मलैकिनियनिन्र पेरुमाल को सातवें उत्सव के दिन पर प्रस्तुत करने के लिए हैं। भगवान के 8 *ब्रह्मोत्सवों* में इसी प्रकार संपन्न होना है। यह अर्पण कार्यक्रम भी उनके *मंटपम्* पर चलता है। इतना ही नहीं इसी प्रकार के समर्पण दो और संदर्भों में होने हैं। दाता को मिलनेवाला प्रसादांश इस व्यवस्था की देख-रेख करनेवाली समिति को, जो पुष्पवाटिका की देख रेख करती है, मिलना है। यह फुलवारी तिरुमल पर है (संख्या 167)।

बागिल (द्वार पालक - - - पति आडियप्प और - - - अच्चदेव दोनों ने *सर्वधारि* नाम संवत्सर में शक संवत 1449 में (सन् 1527 ई. में) एक मठम् और मंटपम् का निर्माण किया है। इसकी सूचना मिलती है। (संख्या 169)।

बागिल अवसरद नरसय्या और उसका भाई अवसरद तिम्मय्या एवं एक और भाई नरसय्या तथा उनकी माता बसवम्मा-सबने मिलकर 07-08-1512 ई. में तिरुवेंगलनाद देवर के मंदिर में श्रद्धा युक्त समर्पण किया है (संख्या 26)। ये राज महल के पास सौंपे जानेवाले काम के लिए तैनात सेवक थे।

ओबुलय्यन ने 1860 नर्पणम् दिनांक 31-10-1517 ई. में वेङ्कटेश्वर भगवान के लिए अर्पित किये थे। ये कंडनवोलुक्कराज ओबय्यन् के पुत्र थे। यह समर्णण आठ *ब्रह्मोत्सवों* में 8 *अप्पडि* प्रसाद समर्पण के लिए है। यह अर्पण भी शेष वाहन सेवा के समय अर्पित होने के लिए ही है (संख्या 120)।

नेडुंगुण्ड्रम के पेरुमाल ने 1500 नर्पणम का अर्पण किया है श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को। वह श्रीकृष्णदेव का राज्य काल था। यह शक संवत्सर 1450 में *सर्वधारी* नाम संवत्सर में (सन् 1528 ई. में) घटित हुआ है (संख्या 180)।

रांजकम् तिरुमलनाथ के पुत्र रांजकम् श्रीरंगराज राजमहल की *नाट्यशाला* से संबन्धित थे। उन्होंने मंदिर को 29-12-1514 ई. में एर्लपूँडि गाँव का दान दिया है। यह भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के मंदिर में एक नित्य नैवेद्य निमित्त था। इतना ही नहीं उन्होंने 545 *तुलाओं* की (तोल माप का सूचक है) चाँदी की थाली भी निवेदन में दी है। यह प्रसाद समर्पण के लिए था (संख्या 99 और 100)। इन्हीं की पुत्री रांजकम् कुप्पयानी ने 1000 *नर्पणम्* का समर्पण 27-6-1512 ई. में किया है। यह एक नित्य *प्रसाद* समर्पण से संबन्धित है और वेङ्कटेश्वर भगवान को अर्पित है। इसमें दाता भाग का प्रसादांश भगवान मंदिर भंण्डार से संबन्धित एक बाग की निगरानी करनेवाले सेवक को मिलना भी सूचित है (संख्या 24)। दिनांक 12-10-1517 ई. का कुप्पयानी की पुत्री तिरुमल-अम्मान से संबन्धित सूचना मिलती है। उसके अनुसार उन्होंने 3000 *पणम्* श्रीवेङ्कटेश्वर को *दोसै* (दोसा) प्रसाद अर्पण के लिए दिये हैं। (संख्या 117)। (Dev. Epi. Rep PP 185 and 205)। नल्ल गंगम्मा की पुत्री एक्कडि तिम्मम्मा ने 04-10-1518 ई. में 1500 *पणम्* भगवान वेङ्कटेश्वर को अर्पित किये हैं। यह कृष्णराय की वृद्धि की आकांक्षा से अर्पित है (संख्या 124)। शायद यह महल की नृत्यांगनाओं में से एक हो सकती है।

राजा से संबन्धित अधिकारियों और सेवकों के साथ साथ कुछ धार्मिक व्यक्तियों *(पुरोहित),* व्यापारियों और अन्यों ने भी देवता मूर्तियों और आळ्वरों की मूर्तियों के लिए प्रसादों की उपलब्धि के लिए समर्पण किये हैं।

श्रीकृष्णदेवराय के पुरोहित रंगदीक्षित के पुत्र यज्ञनारायण भट्ट ने 1000 *नर्पणम्* का समर्पण दिनांक 10-07-1514 ई. को किया है। यह समर्पण भगवान के लिए उस समय हुआ है जब सम्राट श्रीकृष्णदेवराय ने अपनी चतुर्थ यात्रा तिरुमल की की है- अर्थात् 06-07-1514 ई. में। यह भगवान के नित्य समर्पणों के लिए है। उस वक्त यज्ञनारायण भट्ट सम्राट के साथ तिरुमल गये थे (संख्या 89)। फिर दिनांक 09-03-1522 ई. में उन्होंने 1850 *नर्पणम्* का समर्पण भगवान को किया है। यह *पुनर्वसु* नक्षत्र के 13 दिनों में अपने पिताजी के नाम पर (रंगनाथ दीक्षितर के नाम पर) अर्पित समर्पण है। पुनर्वसु उनके पिताजी

का जन्म नक्षत्र ही है। उसके साथ-साथ हर *तमिल* मास के प्रथम दिन और अमावस्या के दिन पर भी समर्पण का प्रावधान इसमें है (संख्या 152)।

तिरुचानूर के 108 विभिन्न *गोत्रों* से संबन्धित व्यक्तियों ने अपने अपने परिवारों समेत एक ग्राम-*सभा* बनाकर उसके सदस्य बने थे। उन सबने मिलकर एक व्यवस्था बनायी। शायद वे सब मिलकर उस व्यवस्था के अध्यक्ष का भी चयन करते हो। वह उन्हीं में से एक होता ही होगा। उन सब ने मिलकर ही श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान और श्रीगोविंदराज स्वामी के लिए प्रसाद समर्पणार्थ एक अर्पण किया है। यह सभा का अर्पण 06-11-1494 ई. में हुआ है (जिल्द II संख्या 129)। इस सेवा ''उभयम्'' को *नूर्रेण्मार* उभयम् कहा गया है। अर्थात् 108 पुरुष समूह *नूर्रेण्मार-तिरुवोल्क्कम्* के रूप में 108 व्यक्तियों में प्रसाद वितरण भी होता था। इन लोगों ने *नूर्रेण्मार-मठम्* का भी निर्माण किया है। इस मठम् में उनके धार्मिक नेता रहते थे। उस समय के नेता थे तुप्पिल वेंर्नि अण्णन वरदराजर। जिल्द III संख्या 144 यह बताता है कि शुक ऋषि की कृपा से 108 वर्चस्वी और विज्ञ *ब्राह्मणों* का उद्भव एक कमल से हुआ और वे शुक-ग्राम के निवासी हुए। यही शुकग्राम (शुकनूरु, तिरुशुकनूरु और तिरुच्-चुकनूरु) होकर अंततः तिरुचानूरु हुआ है। ये 108 ब्राह्मण भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के परम भक्त थे। माना जाता है कि ये *गरुड*-सम भक्त थे। श्रीनिवास नामक एक व्यक्ति एक बार उस गाँव में आया। उन्होंने वेङ्कटेश्वर भगवान के लिए एक उत्सव का निर्वाह किया। *पद्मतीर्थ* (पद्म पुष्करिणी) की चारों ओर सीढियाँ बनवायी। चल *विमानों* की व्यवस्था की। इससे नारायण भगवान प्रसन्न हुए और उन विमानों में आसीन होकर उत्सवों में भाग लिया था।

आरंभिक दिनों में तिरुचानूरु के *सभैयार* ही तिरुमल पर विराजमान भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर से संबन्धित व्यवहारों को सम्भालते थे। उनकी ओर से ही अनेक कार्यनिर्वाहक समितियाँ बनती थीं। इन समितियों में लगभग 12 सदस्य रहते थे। *स्थानत्तार* की ओर से उस सभा के सदस्यों में तीन निर्वाचित सदस्य रहते थे। इनके साथ तिरुपति से तीन व्यक्ति *(श्रीवैष्णव),* दो *जीयर* या *मठाधिपति,* एक *नंबी* या *अर्चक* या मंदिर का पुजारी और दो लेखापाल जो तिरुनिन्रऊरु (आधुनिक तिन्नूर जो मद्रास के पास है) के मूल निवासी होते हैं तथा अन्य सदस्य होते हैं। इनको *स्थानत्तार* ही सदस्य बनाते (चुनते) हैं (संख्या 187, जिल्द I)। *स्थानत्तार* ही वेङ्कटेश्वर मंदिर और गोविंदराय स्वामी मंदिर के व्यवहारों का निरीक्षण और पर्यवेक्षण करते हैं।

सब सदस्य गौरव सदस्य ही होते थे। लेकिन सब *प्रसादम्* का अपना भागांश पाते थे। यह प्रसाद दोनों मंदिरों की मूर्तियों को अर्पित होकर *प्रासादांश* ही इनको दिया जाता था। यह उनकी आजीविका का आधार भी था। 13 वीं शती तक उनका जीवन कष्टप्रद ही था, सरल नहीं था, क्योंकि *प्रसाद* की

बिक्री आदि से उनको कम पैसे ही मिलते थे। *प्रसाद* वितरणार्थ समर्पणों की बढ़ौतरी से इन सदस्यों को भी अच्छा अंश मिलने लगा। समर्पणों से प्राप्त धनराशि (फसल आदि की बिक्री से प्राप्त) से उनकी आजीविका कुछ कुछ सरल होने लगी। प्रसादम् का परिमाण भी बढने लगा तो उसको बेचकर धन राशि प्राप्त करने लगे। प्रसादांश भाग के साथ साथ धीरे धीरे उनको कुछ वेतन भी देने के प्रावधान होने लगे। ये वेतन उत्सवों और मंदिरों के पुजारी होने के कारण भी मिलने लगे थे। कुछ भेंट भी, प्रधानतः उत्सवों के समयों में उनको मिलने लगीं।

उक्त प्रकार से प्राप्त होनेवाली सारी आमदनी को तिरुच्चुकनूरु *सभैयार* ने 23-01-1512 ई. में गोविंदराज स्वामी के मंदिर को समर्पित कर दिया। इस आमदनी से गोविंदराज को सभैयार की ओर से 40 समर्पणों का प्रावधान और हो गया। इससे करुणाकर पल्लिकोंड पेरुमाल, श्रीकष्ण और श्रीराम को दैनिक प्रसाद समर्पण के लिए और हनुमान जिनको *सभैयारों* ने स्थापित किया है, हर शनिवार के दिन और अन्य कुछ दिनों के लिए और श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को प्रसादों के समर्पण की व्यवस्था में वृद्धि हुई। साथ साथ मंदिर के कर्मचारी-वर्ग को वेतन देने में और *प्रसाद* के अंश को बढाने में सुविधा मिल गयी (जिल्द III, संख्या 20)।

एक *सभैय्यार* देवत्तन अरसु ने दिनांक 20-11-1516 ई. को 310 *नर्पणम्* का दान दिया था। इससे मलय्यप स्वामी को उनके द्वारा लगायी गयी फुलवारी में स्थापित *मंटपम्* में विशेष समर्पण का प्रावधान हो गया। यह प्रावधान *पुरट्टासि, तै, पंगुनि ब्रह्मोत्सवों* के सात दिनों के उत्सवों और आठवें दिन पर रथोत्सव के लिए समर्पणों की व्यवस्था हो गयी (संख्या - 113)।

तिरुचानूर सभा के सदस्य श्रीरामय्यन् ने 300 *नर्पणम्* का समर्पण 20-09-1527 ई. में किया है। इससे उनके *मंटपम्* के पास 8 *दोशै-पडि* मलयप्पस्वामी को शेषवाहन सेवा के दिन 8 *ब्रह्मोत्सवों* में, 8 पडि श्रीकष्ण को पाँचवें दिन पर अर्पण की सुविधा हुई। 3 *पडि*[1] रथ पर आरूढ़ तीनों मूर्तियों का तीन उत्सवों में एक *पडि मुक्कोटि-द्वादशी* को, एक डोलोत्सव के दिन पर, एक आखेट उत्सव पर, एक *कार्तिकै* उत्सव के दिन दीपोत्सव पर, एक *उगादि* (नव वर्ष) के दिन पर और एक *दीपावली* उत्सव के दिन पर अर्पण की व्यवस्था हो गयी। इस प्रकार कुल 25 *दोशै-पडि* संपन्न होते हैं (संख्या - 172)।

अनुसंधानम् तिरुवेङ्कट जीयर ने 19-09-1504 ई. में 2000 *पणम्* श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज दोनों के लिए समर्पित किये (संख्या 2)।

---

1. पूर्व समय में केवल दो ही रथोत्सव थे। ये ब्रह्मोत्सव पुरट्टासि और पंगुनि मासों में संपन्न होते थे। तीसरा नहीं। तै महीने में श्रीकृष्णदेवराय द्वारा एक और नये ब्रह्मोत्सवम् के आरंभ से ब्रह्मोत्सवम् के आरंभ से ब्रह्मोत्सवों की संख्या आठ हो गयी और रथोत्सव तीन।

श्रीमान शठकोप जीयर के शिष्य श्रीमान नारायण जीयर जो *अहोबिल-मठम्* के अध्यक्ष थे, ने एक विशेष दिन पर श्रीवेङ्कटेश्वर और गोविंदराज दोनों को समर्पणों के लिए प्रावधान किया है। यह प्रावधान भगवानों के दो *ब्रह्मोत्सवों* के लिए और अन्य दिनों में नम्माळ्वार, तिरुमंगै आळ्वार और कुलशेखर आळ्वार के लिए और उडैयवर (रामानुज) के लिए था। आलवारों की सेवाएँ उनके *अध्ययनोत्सव* दिनों में होती है। इस सब के लिए जीयर ने 1860 *नर्पणम्* अर्पित किये हैं। समय 20-08-1516 ई (सं.110); में उन्होंने और 3800 *नर्पणम्* अर्पित किये। यह अर्पण गोविंदराज को *दोशै - पडि* के लिए और विशेष समर्पण श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए हैं जो विशेष दिनों में अर्पित होते हैं (संख्या 114)। उन्हें इस 'रेकार्ड' में ''वेदांताचार्य'' नाम से संबोधित मिलता है।

वेन्नमालैयिट्ट पेरुमाल के पुत्र कंदाडै दोड्ड अय्यंगार, जिनकी उपाधि वेदान्ताचार्य है, ने दिनांक 13-04-1519 ई. में 2520 *नर्पणम्* समर्पित किये थे। ये मलैकुनियनिन्न पेरुमाल के लिए थे। श्रीवराह स्वामी की मूर्ति के पास आठ *ब्रह्मोत्सवों* में 5 दिनों पर 5 समर्पण इस राशि से संपन्न होते हैं। इनके साथ रथोत्सव के तीन दिनों में, अन्य दिनों में मूलविराट स्वामी को (*पेरिय पेरुमाल* को), छठवें दिन ऊँजल-सेवा उत्सव में जिसे श्रीकष्णदेवराय ने आरंभ किया था, अर्पित होते हैं। राय का उत्सव 'तै' मास में संपन्न होता है। इसमें सातवें दिन को रथोत्सव[2], *तीर्थवारि* के संदर्भ में नौवें दिन पर, दसवें पर भी, *विडैयार्रि* दिन पर और अन्य दिनों में अर्पण होते हैं। गोविंदराज स्वामी को उनके *आणि* उत्सव के रथोत्सव में, *तन्नीर-अमुदु* के दिन आळ्वार मूर्ति के पास *मंटपम्* में और अन्य संदर्भों में अर्पण होते हैं (संख्या 142)। कंदाड रामानुजय्यंगार के बाद *रामानुजकूटम* के अधिपति बने (मैनेजर बने) माधवय्यंगार ने 02-04-1522 ई. में एक रजीमंदी (अग्रिमन्ट में), *कूरु सेव्यारगल्* के सामने संपन्न की थी। उसके अनुसार उनसे पूर्व *रामानुजकूटम* के अधिकारियों ने जो खेत कूटम के सदस्यों को अन्न प्रसादों के लिए अर्पित किये थे उनसे प्राप्त फसलों को इन संस्थाओं के निवासियों को अन्न-प्रसाद के लिए और तीन *अप्प-पडि* हर वर्ष देवताओं को अर्पित करने के लिए नियमित किया (संख्या 153)।

नरसिंहराय मुदलियार रामय्यन और तिम्मय्यन दोनों ने मिलकर 1900 *नर्पणम्* दिनांक 19-09-1508 ई. में अर्पित किये थे। इससे प्राप्त ब्याज से *तिरुमामणि मंटपम्* में भगवान मलयप्प स्वामी की मूर्ति के लिए प्रसाद समर्पण होते हैं। इसमें 7 *अतिरस-पडि* प्रसाद भगवान की शोभा यात्रा से लौटने के बाद अर्पित होते हैं। यह *तिरुवनंतल (शेष वाहन)* के दिन होता है। इतना ही नहीं उत्सव के नौवें दिन

---

2. इसके अनुसार रथ-यात्रा ब्रह्मोत्सव के सातवें दिन को कराया जाता था। लेकिन वास्तव में वह आठवें दिन को कराया जाता था। उसी प्रकार 'उडैयार्रि' उत्सव भी आठवें दिन को मनाया जा रहा है। यहाँ शायद इसे लिखवाते समय गलती हुई होगी।

को सात तिरुक्कोडि-*तिरुणाल (ब्रह्मोत्सवम्)* में हर वर्ष, सात *अतिरस पडि तिरुवालि*-आळ्वन (*सुदर्शन* चक्र) और मलयप्पा स्वामी को *मंटपम्* पर जो उनके द्वारा पुष्करिणी (तिरुक्कोनेरि) तट पर निर्मित हुआ है, *तीर्थवारिमंटपम्* में उक्त उत्सवों के नौवें दिन पर समर्पण होते हैं। मंदिर भण्डार के सामने 7 *अतिरस-पडि* समर्पण 7 उत्सवों में अर्पित करना भी है। पवित्रोत्सवम् के संदर्भ में 4 *अतिरस पडि* प्रथम चार दिनों में भगवान को अर्पित करते हैं। एक *अतिरस-पडि, मार्गळि* मास में श्रीवेङ्कटेश्वर को *मुक्कोटि द्वादशी* के दिन पर वेङ्कटत्तुरैवार (उग्र श्रीनिवास) को और एक *तिरुवोलक्कम्* सेनै मुदलियार को उनके जन्म नक्षत्र *पूराडम्* पर (अर्पशि मास में) प्रस्तुत करना है। एक *अप्पडि* पहले वेङ्कटेश भगवान को और तिरुपति में लाकर सेनै-मुदलियार को अर्पित करना है। तिरुपति में *गरुड* ध्वज के आरोहण के समय तथा अन्य दिनों में गोविंदराज और रघुनाथ (श्रीराम) को भी अर्पण होते हैं। (संख्या - 15)।

उद्दाण्डरायर उलगप्पा ने एक अतिरस पडि प्रसाद समर्पण की व्यवस्था की है। ये तिरुपति के *श्रीवैष्णवों* में एक हैं। इस समर्पण के अनुसार तिरुमल पर मलयप्पस्वामी को अपने मंटप में, 7 *ब्रह्मोत्सवों* में सातवें दिन पर एक *अतिरस-पडि* का अर्पण होना निर्देशित है। उगादि और *दीपावली* के दिनों में सेनै-मुदलियार (विष्वकसेन) को अतिरस पडि समर्पण होता है। तदर्थ उन्होंने 680 *नर्पणम्* का दान 12-10-1506 ई. में किया था। इससे तिरुपति में गोविंदराज को भी कुछ निर्दिष्ट दिनों में प्रसाद समर्पण होना था (संख्या 8)। इतना ही नहीं वेङ्कटेश्वर भगवान को संपन्न होनेवाले सातों *ब्रह्मोत्सवों* में नौवें दिन के समर्पण भी होने थे। गोविंदराज और श्रीराम को तिरुपति में विशेष दिनों में प्रसाद समर्पण भी इसमें निर्देशित हैं। तदर्थ उन्होंने 2075 *नर्पणम्* दिनांक 19-09-1508 ई. में अर्पित किये (संख्या - 14)। इसी बीच उन्होंने 1320 *नर्पणम्* का दान भी 02-06-1507 में किया। इससे श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीराम तथा श्री सुदर्शन को तिरुपति में विशेष दिनों में समर्पणों का भी निर्देश है (संख्या 10)।

तिरुपति के वणिक् वर्ग के सदस्यों ने भी बडी द्रव्य राशि का समर्पण किया था। इससे अनेक देवता मूर्तियों को विशेष संदर्भों में प्रसाद समर्पण होते रहे हैं। धर्मपुरम् सिट्टम् सेट्टि ने 3500 *नर्पणम्* राशि दिनांक 01-03-1506 ई. को अर्पित की। यह एक *नायक-तलिगै* और एक *अप्प-पडि* श्रीवेङ्कटेश्वर *पुलुगु कप्पु* (*सुगंधबिल्ली* का तेल) के लेपन के पश्चात् त्रिपुंड्र *नामम्* लगाने के बाद अर्पित होता है। अलरमेलमंगा नाच्चियार (वक्षःस्थल लक्ष्मी जो वक्ष के दाहिने ओर विराजमान है) को भी इसी प्रकार का समर्पण इस दान से होता है (संख्या 4)। बाद में उन्होंने खेतों की सिंचाई के लिए एक बडी बावडी का निर्माण भी कराया है। यह मंदिर को प्राप्त तिम्मनेरि गाँव में संपन्न हुआ है। 14,590 *नर्पणम्* श्रीवेङ्कटेश्वर की नित्य सेवाओं के लिए अर्पित किये हैं उन्होंने। इससे गोविंदराज, श्रीकृष्ण, सुदर्शन और श्रीराम की सेवाएँ भी होती हैं (संख्या 118)।

तिप्पु सेट्टि ने 04-10-1507 ई. में मलयप्प स्वामी, गोविंदराज और रघुनाथ (श्रीराम), कुलशेखर आळवार, नम्माळवार, तिरुमंगैयाळवार तथा उडैयवार (रामानुज) तथा नरसिंह स्वामी की सेवाओं के लिए, निर्धारित दिनों में सेवा-अर्पणार्थ, 8305 *पणम्* का दान किया है (संख्या 11)।

पच्चै लिंगु सेट्टि और अन्य लोगों ने, जो कोमटि (वैश्य) वर्ण के थे, 5030 *नर्पणम्* का दान 31-10-1508 ई. में दिया था। यह भगवान वेङ्कटेश्वर की नित्य सेवाओं के लिए और 7 उत्सवों के सातवें दिन के प्रसादादि समर्पणों के लिए तथा *कोमटि-मठम्* (वैश्यों का मठ) के पास *अध्ययनोत्सवम्* के लिए था। इससे सेनै मुदलियार को विशेष दिनों में और तिरुपति में श्रीराम को *अध्ययनोत्सव* के सातवें दिन के लिए सेवार्थ दान का उपयोग भी होता है (संख्या 16)।

पाप्पुसेट्टि अय्यन् ने 15-09-1512 ई. में 2500 *नर्पणम्* का अनुदान दिया। इससे उनके अपने जन्म नक्षत्र के 13 दिन, उनके पिताजी के जन्म नक्षत्र के 13 दिन और उनकी माताजी के जन्म नक्षत्र पर 13 दिनों पर भगवान वेङ्कटेश्वर को 13 निवेदन अर्पित करने थे। साथ साथ गोविंदराज स्वामी के वैकासी और *आणि* उत्सवों तथा श्रीकष्ण को नरसिंह स्वामी की मूर्ति के पास, जो श्रीनिवासपुरम में विराजमान है, दो *ब्रह्मोत्सवों* में अर्पण होने हैं। गोविंदराज स्वामी के ब्रह्मोत्सवों में 6 दिनों के लिए और गर्मियों में मनाये जानेवाले उत्सवों में सातवें दिन पर तथा शेषवाहन पर नौवें दिन पर अर्पित होने हैं। भगवान के दो ब्रह्मोत्सव *वैकाशी* और *आणि* मासों में संपन्न होते हैं। 'तिरुवध्ययनम्' के विशेष दिनों में नम्माळ्वार और (तिरुमंगै आळ्वार), रघुनाथ और उडैयवर के संदर्भ में निर्देशित दिनों पर समर्पणों के लिए भी यह दान है (संख्या 28)।

चिंतयपल्लि गाँव के कोंडु सेट्टि ने आधा गाँव का दान दिया था। यह *अंबालिका* के रूप में है। श्रीकृष्णदेवराय के नाम पर है। बाकी आधा गाँव श्रीकालहस्तीश्वर को दान में पहले ही समर्पित था। यह दिनांक 27-11-1517 ई. को हुआ था। इसके आधार पर भगवान वेङ्कटेश्वर को दो *दध्योदन* प्रसाद और गोविंदराज को एक प्रतिदन समर्पित होना है। कुछ अन्य विशेष संदर्भों में भी गोविंदराज को प्रसाद समर्पण होने थे (संख्या 119)।

सरणु सेट्टी ने 3700 *नर्पणम्* दिनांक 16-08-1527 ई. को अर्पित किये। इससे कूटे तिल से बना प्रसाद भगवान वेङ्कटेश्वर को नित्य कैंकर्य के रूप में प्रस्तुत करना है। इतना ही नहीं, भगवान के आठों *ब्रह्मोत्सवों* में सातवें दिन पर 8 *सीदै-पडि* भी समर्पित होने थे। *तिरुपल्लि एलुच्चि* जो *मार्गलि* मास में संपन्न होता है उसके लिए 30 दिनों के लिए 30 समर्पण भी इस दान के अंतर्गत हैं। गोविंदराज स्वामी के सातवें उत्सव दिनों पर और आठवें उत्सव दिनों पर *ब्रह्मोत्सवों* में भी समर्पण का निर्देश इसके

अन्तर्गत है। ये *वैकाशी* और *आणि* मासों में संपन्न होनेवाले उत्सव थे। एक *सीदै-पडि* श्रीराम को भी विशेष दिन के लिए समर्पित है (संख्या 171)।

कुछ मंदिर के लेखापालों ने भी कुछ अर्पणों के लिए दान दिये थे। ये असल में छोटे-मोटे कामों के लिए हुए समर्पण हैं।

इनमें विल्लयार ने 700 *नर्पणम्* दिनांक 02-01-1530 ई. में प्रस्तुत किये थे। इससे *मार्गळि-नीराटट्टोत्सव* का प्रावधान है जो सूडिक्कोडुत्त-नाच्चियार (श्रीआण्डाल, श्रीगोदादेवी) के लिए है। श्री आंडाल 12 *वैष्णव आळ्वारों* में एक मात्र स्त्री आळ्वार हैं। ये पेरियाळ्वार से पली-बढी हुई थी। इस दान से *मार्गळि* मास के 24 वें दिन से लेकर *मकर संक्रमण* के दिन तक के 7 दिनों में (लगभग जनवरी 15 को) संपन्न होनेवाले उत्सव के समर्पण संपन्न होते हैं। इनमें *अंकुरार्पण* 23 वें दिन पर होता है। इस संदर्भ में *अधिवास-तिरुमंजन* होता है। दूसरा तिरुमंजन अंतिम दिन पर, *कनुमा* त्यौहार के दिन, होता है। कनुमा त्यौहार मकर संक्रमण के बाद के दिन पर होता है। यह समर्पण गोविंद पुष्करिणी (कृष्णराय पुष्करिणी जैसे संख्या 194 में उल्लिखित है) पर होता है (संख्या 181)। गोविंदराज स्वामी मंदिर के मुख द्वार पर आग्नेय दिशा में *मुखमंटपम्* में एक छोटे कमरे में मूर्ति की स्थापना भी की गयी। *गोविंद पुष्करिणी* (कृष्णराय पुष्करिणी) गोविंदराज स्वामी के मंदिर के सामने वाली आज की पुष्करिणी ही है। *देवस्थानम्* की *धर्मशालाओं* की पश्चिम दिशा में यह है। इसका मंदिर के विचारणकर्ता श्री महंत प्रयागदास जी ने पुनर्निर्माण भी कराया है। इससे पहले एक गहरी खाई सी थी वह। उसके लिए एक ही पत्थर से बनी सीढी थी। आण्डाल उत्सव उसी पुष्करिणी के पास पहले मनाया गया होगा। बाद में यह उत्सव नये सिरे से बनाये गये *मंटपम्* में मनाया जा रहा है जो रामचन्द्र पुष्करिणी के तट पर है जो तिरुपति की उत्तरी दिशा में हैं। आजकल आण्डाल को प्रभात काल में ही शोभा यात्रा में पहुँचाया जाता है। इसके बाद पश्चात्ताप प्रार्थना की जाती है। भगवान रंगनाथ स्वामी ने अंडाल को स्वीकार किया था। रंगनाथ स्वामी श्रीरंगम में रहते हैं। लेकिन तिरुपति में गोविंदराज स्वामी आण्डाल को स्वीकारते हैं। यह शाम के समय होता है, *भोगी* त्यौहार के दिन (संक्रांति का पूर्वदिन)। आण्डाल पुरवीथियों में शोभा यात्रा द्वारा मंदिर में पहुँचाई जाती है। श्रीराम मंदिर और गोविंदराज स्वामी मंदिर दोनों में आण्डाल की पूजा *मंटपों* में संपन्न होती है। *कनुमा* त्यौहार के दिन (*संक्रांति* के बाद के दिन) पर गोदादेवी का विवाह उत्सव गोविंदराज के साथ संपन्न होता है।

इस प्रकार यह विदित होता है कि कृष्णदेवराय के समय में श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी के सात *ब्रह्मोत्सव* संपन्न होते थे। स्वयं सम्राट ने एक और ब्रह्मोत्सव को जोडकर उनकी संख्या 8 बनायी। इस तरह एक वर्ष में कृष्णदेवराय के राज्यकाल में आठ *ब्रह्मोत्सवों* का निर्वाह होता था। अन्य उत्सव तो ज्यों के त्यों

रहे हैं। लेकिन नित्य नैवेद्यादि समर्पणों में, विविध त्यौहारों के समयों में विशेष उत्सवों और अन्य पवित्र दिनों में विशेष उत्सवों के प्रावधानों में बढोत्तरी दिखाई देती है। असंख्य भक्तों ने भी भगवान के लिए विशेष समर्पण प्रस्तुत किये। *सूडिक्कोडुत्त नाच्चियार* (आण्डाल) का उत्सव नये सिरे से उनके समय में आरंभ किया गया था। आण्डाल श्रीविल्लिपुत्तूर में रहती थी। वे भगवान के लिए हर दिन पुष्पमाला गूँथती थी। लेकिन पहले उसे स्वयं पहन कर आईने में देखकर स्वयं संतुष्ट होने के बाद भगवान को समर्पित करती थी। श्रीकृष्णदेवराय के समय में भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर की भू संपत्ति गाँव दान से बढी है। यह स्वयं समाट द्वारा और अन्यों से हुआ है। पहले श्रीवेङ्कटेश्वर और गोविंदराज के मंदिरों में *तिरुप्पोनकम्* के लिए 1000 *नर्पणम्* का प्रावधान था। लेकिन कृष्णदेवराय के समय में यह 1500 *नर्पणम्* हुआ है।

* * *

अध्याय - 20

सम्राट अच्युताराय काल (विजयनगर काल - III)

वीर नरसिंहराय और कृष्णदेवराय के सौतेले भाई अच्युतराय ने विजयनगर साम्राज्य का सिंहासन पाया। अच्युतराय के पिता तुलुव नरसनायक थे। उनके चार पुत्र थे - तिप्पाजी (तिम्मांबा) से वीर नरसिंह; नागांबा से कृष्णदेवराय और ओबाम्ब (ओबच्चियम्मा) से अच्युतराय तथा रंगराय। रंगराय की मृत्यु जल्दी ही हो गयी थी। इनके पुत्र सदाशिवराय अच्युतराय के बाद सिंहासनारुढ हुए।

नूनिज़ ने रिकाई किया है कि ''जैसे ही श्रीकृष्णदेवराय विजयनगर सिंहासन पर आसीन हुए वैसे ही सालुव तिम्मा ने, जो कृष्णदेवराय के महामंत्री थे, जिन्होंने कृष्णदेवराय के भाई भुजबलराय (वीर नरसिंहराय) के भी महामंत्री थे, तुरंत ही अपने भतीजे भुजबलराव के पुत्र को उनके तीनों भाइयों सहित तिरुपति के पास स्थित चन्द्रगिरि भेज दिया। भतीजा तो अपने जीवन के अंत समय तक वहीं रहा'' (सेवेल, ''ए फरगाटन एमपैर'' पृ. 315-316)।

[नूनिज़ कहते हैं कि राजा नरसय्या (तुलुव नरस नायक) अपनी मृत्यु के समय पर पाँच पुत्रों को छोड गये - भुजबलराव, कृष्णराव, तेताराव, रमैगुपा और औमैस्युड्य'' (वही पृ. 314)। नरस नायक के चार पुत्रों के होने का समाचार ही मिलता है। नूनिज के अनुसार पाँच नहीं। इनमें अंतिम तीन नामों की पहचान ही नहीं है। नूनिज़ फिर कहते हैं कि कृष्णाराव की मृत्यु बीमारी से हुई थी। उन्होंने एक अपनी इच्छा व्यक्त की है कि उनके तीनों भाइयों में से अच्युतराय को ही राजा बनाये। क्योंकि वही इसके लिए उपयुक्त था। ये चन्द्रगिरि में रहते थे। उन तीनों की सहायता से ही वे स्वयं उसको सम्राट बनाते हैं। ये ही अच्युतराय आज गद्दी पर हैं ..... उनकी मृत्यु के सालवनै (सालुव तिम्म नहीं) साम्राज्य के मंत्री बने हैं और उन्होंने राजा अच्युतराय की गद्दी पर बैठने तक मंत्री के पद का निर्वाह किया। चन्द्रगिरि किले से ही शासन चला रहे थे। इसी किले में वे बंदी भी थे पहले अच्युतराय के साथ। जब से वे गद्दी पर बैठे तब से उन्होंने बुरी चालें और निरंकुशता छोडीं। ..... उन्होंने कोई बुरा काम नहीं किया और अपने सालों की सलाहें लेकर ही शासन किया। ये वे ही लोग थे जिन पर ''ज्यूस'' (यहूदियों) से बुरे व्यवहार हुए थे (वही, पृ. 367)।)

इस सबसे यह विदित होता है कि अच्युतराय को, जो चन्द्रगिरि किले में बन्दी बनाकर रखे गये थे, कृष्णदेवराय की मृत्यु से कुछ समय पहले मुक्त किया गया। इसी कारण वे राज्य पर शासनाधिकार पा सके। अच्युतराय तीन बार सिंहासन पर बैठे थे। पहली बार कारागार से मुक्त होने पर, वह भी तिरुमल पर्वत पर भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर की सन्निधि में। उस समय श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के शंख से अभिषेक जल से संप्रोक्षित होकर ही वे गद्दी पर बैठे थे। दूसरी बार श्रीकालहस्तीश्वर की सन्निधि में

दिनांक 21 अक्तूबर 1529 ई. को और अंततोगत्वा विजयनगर राज्य की राजधानी में विधिवत सिंहासनासीन कराने के बाद दिनांक 20 नवंबर 1529 ई. में (Dev. EPI. Rep. P 220)।

अच्युतराय की प्रप्रथम धार्मिक सेवा *कपिलतीर्थम्* से संबन्धित पुनरुद्धार कार्य से संबद्ध है। कपिलतीर्थम् में भगवान शिव जी हैं। उनके मंदिर के पास जलप्रपात है। उसका पानी वहाँ पहले एक पुष्करिणी का रूप लेता है। राजा ने उस पानी तक पहुँचने का रास्ता सरल बनाया है। वहाँ पत्थर बिछवाकर पहुँच के रास्ते को सरल बनाकर पुष्करणी जल तक पहुँचने के लिए सीढियाँ उन्होंने ही बनावायी थी। इसके साथ-साथ दो पंक्तियों के *''संध्यावंदन मंटपों''* का भी सीढियों के पास निर्माण कराया था। तिरुवेंगलनाथ तीर्थ को उन्होंने ही *''चक्रतीर्थ''* नाम रखा। इस चक्रतीर्थ को *आळ्वारतीर्थ* भी कहते हैं। वहाँ *सुदर्शनचक्र* (विष्णुचक्र) से युक्त पत्थरों को भी लगवाया तथा उन्होंने ये पत्थर *मंटपों* के चारों कोनों में स्थापित करवाया है (जिल्द IV संख्या 8, 9 और 10)।

अच्युतराय ने भगवान वेङ्कटेश्वर मंदिर की तीन पवित्र यात्राएँ की हैं। उनका प्रथम आगमन 31 जनवरी, 1533 ई. में तिरुमल पर हुआ थ। वहाँ पर उन्होंने कपिल पशु (कपिल-गाय) की पूजा की थी। उन्होंने सुवर्ण कपिल गाय की मूर्तियाँ अर्पित कर *सुवर्ण वर्षम्* (सोने के सिक्कों की वर्षा) करवाया था। अर्थात् सोने के सिक्कों से अभिषेक भगवान का किया था। वेङ्कटेश्वर भगवान को मूल्यवान मणि - माणिक्यों का समर्पण किया। इनमें मणियों से युक्त एक *''कफ़ा''* (गाउन) भी भगवान को अर्पित किया था। एक *''कुट्टम्''* (किरीट/मुकुट) का भी सभक्ति अर्पण उसी समय हुआ। इतना ही नहीं, *बाहुवलयम्* (भुजकीर्तियाँ), नेक्लेस (कंठहार) और अन्य प्रकार के शिरोभूषण, हार आदि भी उन्होंने भगवान को समर्पित किया। इससे बढकर जो *अर्चना* (प्रार्थना) साधारणतः पुजारी करते थे उसी को स्वयं राजा ने समर्पित की थी। उस वक्त अर्चक 1008 नामों का *(सहस्रनाम)* उच्चारण कर रहे थे, अच्युतराय की पत्नी वरदाजीअम्मा और उनका छोटा पुत्र कुमारवेङ्कटाद्रि दोनों ने इसको श्रद्धापूर्वक देखा था (वही, संख्या 16 और 17)।

राजा की दूसरी यात्रा 26 दिसंबर, 1535 ई. को संपन्न हुई। उस समय उन्होंने वेङ्कटेश्वर भगवान का *लक्ष्मीदेवी - महोत्सवम्* संपन्न कराया था। यह उत्सव अलिमेलुमंगै-नाच्चियार (पद्मावति) के साथ संपन्न कराया गया पंचदिवसीय उत्सव था। इस उत्सव को मनाने के लिए 300 *रेखै-पण (उत्तरायम)* की आमदनी देनेवाले गाँवों का भी दान किया। ये गाँव *कोंडवीडु - सीमा* में हैं। (संख्या 54)। इससे संबन्धित परिलेख में किस महीने में और किन निर्धारित दिनों में यह उत्सव मनाया गया, इसकी सूचना छूट गयी है। शायद यह बिना सोचे ही छूट गयी हो। यह एक परिशिष्टोत्सव ही हो। इस उत्सव की परिसीमा भी सात दिन पर्यन्त बढाई गयी थी। (संख्या 55) *अंकुरार्पणम् उत्तिरट्टादि* (बीजवपन) से आरंभ होकर उत्सव की परिसमाप्ति *रोहिणी* तक होने की सूचना है। इस तरह यह छः दिन का उत्सव ठहरता है, न

कि सात दिवसीय। इस उत्सव में 40 अन्न प्रसाद और पाँच प्रकार के *पण्यारम्* मलयप्पा को अर्पित करने की व्यवस्था है। ये भी सात मंटपों के पास संपन्न हुए हैं। इन सात *मंटपों* का भी निर्माण अच्युतदेवराय ने कराया है। वे इस प्रकार हैं - *अच्युतरायस्वामी मंटपम्, वरदराजस्वामी, अम्मण मंटपम्, अच्युतराय-अंकण-मंटपम्, वरदाजी -अम्मण्-अंकण-मंटपम्, कुमार-चिक्क-वेङ्कटाद्रि-उडैयार-अंकण-मंटपम्, नरसनायक्कर-अंकण-मंटपम् और ओबलाद्धि-अम्मण्-अंकण-मंटपम्।* इन में अंतिम दो मंटपम् राजा के पिताजी नरस नायक और उनकी माताजी ओबलद्धि (ओबद्धि अम्मण् या ओबांबिका) से संबंधित हैं।

दिनांक 26 दिसंबर, 1535 ई. अच्युतराय ने जो *लक्ष्मीदेवी महोत्सव* का आरंभ किया था उसी प्रकार के उत्सव की भी रघुनाथ के लिए व्यवस्था की। श्रीराम, नाच्चियार (सीतादेवी) और इलयपेरुमाल (लक्ष्मण) की मूर्तियों को भी श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर में गौरवप्रद स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया है। *पुनर्वसु* नक्षत्र के 13 दिन पर्यन्त, श्रीरामचन्द्र स्वामी का जन्म नक्षत्र होने के कारण, वैभवपूर्ण आराधना संपन्न होती है। उसके लिए 60 *रेखै-पोन उत्तरायम* के रूप में अर्पित हैं। *कोंडवीडु सीमा* के गाँवों की आमदनी से *अभिषेकम्,* अन्न प्रसाद और *पण्यारम्* समर्पण भी संपन्न होते हैं। साथ साथ 13 दिन शोभायात्राएँ भी आयोजित होती हैं (संख्या 58)। परिलेख के एक अनुबन्ध में (संख्या 58-A) में 2 प्रकार के *पण्यारम्, चंदनम्, परिशुद्ध* किया गया *कर्पूर* आदि से विशेष आराधना की भी सूचना मिलती है। इसके लिए आवश्यक सामग्री का आयोजन *स्थानत्तार* करते हैं।

ऊपर उल्लिखित तारीख पर, जो अच्युतराय की दूसरी दर्शन यात्रा की तारीख है, उनके कुछ अधिकारी भी साथ थे। उनमें उल्लेखनीय हैं- राम भट्टरय्यन, रायसम् रामचन्द्र दीक्षित और मनैय्यप्परायन तथा उनके दो तांबूल - वाहक अडैय्यप्पन रुक्मिणी - अम्मन और अडैय्यप्पन परमादम्मन् थे। सब ने वेङ्कटेश भगवान को अपने अपने श्रद्धार्पण समर्पित किये हैं। इनमें रामभट्ट ने एक *अग्रहार* की व्यवस्था की और वहाँ रामचन्द्र की मूर्ति भी स्थापित की है (संख्या 61, 59, 60, 57 और 56)।

अच्युतराय की तीसरी यात्रा तिरुमल के लिए 12-01-1537 ई. में संपन्न हुई। उस समय आपके साथ आपके लगभग छः अधिकारी भी थे। हर एक ने 15,000 *नर्पणम्* भगवान की सेवाओं के लिए अर्पित किया है। इसके द्वारा मलयप्प स्वामी को 300 *अप्प-पडि* प्रति वर्ष अर्पित करने की सुविधा संपन्न हुई। ये अधिकारी थे - अडौयप्पम् विश्वनाथ नायक (संख्या 81), कृष्णप्प नायक (संख्या 82), भद्यरसय्य या रामय भास्कर (संख्या 83), रामाभट्टार अय्यन् (संख्या 84), इम्मडि एल्लप्प उडैयार (संख्या 86) और शलकराज संगारराज (अच्युतराय के सालों में, तीन भाइयों में सब से छोटा) (संख्या 88)। आगे संख्या 89 सूचित करता है कि इस से संबन्धित दस्तावेज़ 12-01-1537 ई. को ही तैयार की गयी है और वह भी अच्युतराय महाराज की सूचना (अप्पणैप्पडिक्कु) के अनुरूप ही। इसमें (संख्या 89) यह भी सूचित है कि राजा की इच्छा के अनुरूप दाता ने मल्लापुरम गाँव को दान दिया। इस दान की ओर

से भगवान के आठ *ब्रह्मोत्सवों* में सातवें दिनों पर एक *अप्प-पडि* प्रसाद वितरण होगा। इतना ही नहीं दाता का भागांश एक अप्पय्यन नामक व्यक्ति को मिलेगा। इस दान के दाता सालुव तिम्मरसु ही हैं और दाता का भागांश उन्हीं के संबन्धी और दामाद नादिण्ड्ला अप्प को मिलना है।

लगभग इसी समय में अच्यतुराय की रानी वरदाजीदेवम्मा ने दिनांक 5 अप्रैल, 1534 ई. में भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को अपनी श्रद्धा-भेंट दी। इस संदर्भ में आपने भगवान को छः गाँव अर्पित किये। इन से 920 *रेखै - पोन* (स्वर्ण मुद्राएँ, शायद *वरहा* ही हों) प्राप्त होंगे। इस से भगवान को 20 अन्न प्रसाद रोज समर्पित हो सकते हैं और साथ - साथ 5 प्रकार के *पण्यारम्* भी। ये रानी के नाम पर ही अर्पित होंगे। पहले यह अर्पण 'कृष्णराय *अवसरम्*' और 'अच्युतराय *अवसरम्*' नाम से अर्पित होते थे (संख्या 29)। इसके कुछ समय बाद रानी ने गोविंदराज स्वामी को भी उनके *ब्रह्मोत्सवों* के संदर्भ में और अन्य विशेष संदभों में अर्पित होनेवाले प्रसादों के लिए भी प्रावधान कराया है। यह तिरुपति में मंटपम् पर ठहरनेवाली अलिमेलमंगै नाच्चियार को उनके जन्म नक्षत्र उत्तिराडम् (उत्तराषाढा) (*कार्तिक* मास में आनेवाला नक्षत्र) नक्षत्र के दिन अर्पित होनेवाले प्रसाद के लिए भी इस दान में प्रावधान है। कुछ प्रसाद समर्पण *पद्मसरोवर* के पास सुंदरराज स्वामी और तिरुमंगैयालवार तथा शूडिकोडुत्तु नाच्चियार (आंडाल) को भी (तिरुपति में) अर्पित होने हैं (संख्या 97)।

अच्युतराय ने मंदिर का बाह्य शिखर और पत्थरों की सीढियों के पास कुँए का निर्माण करवाया था। यह *कपिलतीर्थम्* और कपिलेश्वर स्वामी की मूर्ति की दक्षिण दिशा में निर्मित है। यह कोत्तूर गाँव में उन्हीं के नाम पर स्थापित अच्युत-पेरुमाल का मंदिर है। उस मंदिर के आसपास 120 घरों का भी निर्माण उन्होंने करवाया है। इस कार्य को साधने के लिए उन्होंने स्थल प्राप्ति के लिए श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के कोषागार को 2400 *नर्पणम्* क्षतिपूर्ति 'कर' भी अदा किया है। इस प्रकार निर्मित घरों को *ब्राह्मणों* को दिया था। उनका कर्तव्य है कि वे ब्राह्मण लोग भगवान की नित्य सेवाएँ करें। उन घरों में रहकर ही वे नये मंदिर (अच्युत पेरुमाल मंदिर) की सेवाएँ संपन्न करेंगे। 120 घरों में से 100 घरों के निवासियों को उन्हें अपनी इच्छा से (स्वतंत्रता से) अनुभव करने का हक भी दिया गया। इसके आधार पर वे पुननिर्मित कर सकते हैं, बेच सकते हैं, गिरवी रख सकते हैं अथवा दूसरों को भेंट स्वरूप दे सकते हैं। बाकी 20 घर इस सुविधा से अलग और मुक्त हैं। पूजा, अर्चना आदि कार्य सुसंपन्न रूप से चलाने के लिए इस नये मंदिर के लिए परित्तिपुत्तूर नामक गाँव को (जो पुत्तूर के पास रेल-लाइन के नजदीक है) दान में दिया गया। इस गाँव की आमदनी को 20 भागों में विभाजित कर उन बीस घरों में रहनेवाले विधि - निर्वहणार्थ नियोजित ब्राह्मणों को अपनी आजीविका के निर्वाह के लिए प्रदान किया गया (संख्या 123)। यह 8 फरवरी 1539 ई. में संपन्न हुआ था। इससे दो वर्ष पूर्व अर्थात् 17 जनवरी, 1537 ई. में ही चन्द्रगिरिवासी नामि शेट्टि ने एक उत्सव मनाने के लिए और *मंटपम्* में प्रसाद अर्पण के लिए

कुछ देवदान अर्पित किया था। यह तिरुपति में अच्युत पेरुमाल के लिए समर्पण है और साथ - साथ गोविंदराज स्वामी को भी (संख्या 92)। इससे यह विदित होता है कि जनवरी 1537 ई. से पहले ही अच्युत - पेरुमाल की स्थापना हो चुकी। अच्युतराय ने अपने परिलेख में जो भी पहले संपन्न किया, वह पूर्व निश्चित ही होगा। उनका परिलेख संख्या 123 मात्र सूचना देता है। इसके कुछ समय बाद ही यह उल्लिखित हुआ है। संख्या 108 यह बताता है कि अच्युतराय *सत्रम* (मुफ्त खाना वितरण केन्द्र (या) धर्मशाला) को सामग्री सप्लाई करने की व्यवस्था हुई है (दि. 15-08-1538)। इससे अच्युत - पेरुमाल के लिए *प्रसाद*-समर्पण हेतु अच्युत पेरुमाल के *श्री भंडारम्* से सामग्री लेने की सूचना भी है जो किसी एक व्यक्ति के द्वारा संपन्न होता है। इससे यह भी विदित होता है कि मंदिर का भण्डार और *सत्रम्* दोनों *अच्युतरायपुरम्* में ही स्थापित हैं। आजकल की स्थिति में अच्युतराय पेरुमाल का मंदिर, आवास - घर समुदाय किसी का नामोनिशान नहीं है। वहाँ मात्र मलबा है। केवल एक मीनार (स्तंभ) तथा एक बडा कुँआ तिरस्कृत स्थिति और अवस्था में हैं। 16 वीं तथा 17 वीं शताब्दियों में मंदिर, मूर्तियों और घरों का नाश मुसलमान शासकों के हमलों के कारण हुआ था। विजयनगर साम्राज्य की सेनाओं की पराजय *तल्लिकोट* युद्ध में सन् 1565 ई. में हो गयी थी। यह पराजय मुसलमान शासकों के सम्मिलित युद्ध के कारण ही हुई थी।

तिरुमल और तिरुपति में उत्सवों को आकर्षक बनाने के लिए, भक्तों और सामान्य जनों को आकर्षित करने के लिए तथा भक्तों को अधिक आनंद पहुँचाने के लिए अच्युतराय ने महल की कुछ नाट्यांगनाओं को मंदिरों में भेजा था। वे अपनी कला और कौशल से भगवान के उत्सवों में भाग लेकर श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की सेवाओं में तत्पर रहती थीं। इन नृत्य समूहों में मुद्दुकुप्पाइ का नृत्य समूह एक था। मुद्दुकुप्पाइ कुप्पसानि की छोटी पुत्री थी। अपने पिता श्रीरंगराज के साथ कृष्णराय के दरबार में कार्य करती थी। उनको ''विद्वत् सभा राय रंजकम्'' की उपाधि भी मिली थी। ये सभासदों और राजा को अनुरंजित करती थीं। वैसे श्रीकृष्णदेवराय स्वयं उस सभा के अध्यक्ष थे। श्रीकृष्णदेवराय स्वयं विद्वान और महाकवि थे। उनकी कृति ''आमुक्त माल्यदा'' ख्याति प्राप्त महाकाव्य है। ऐसे राजा का विद्वत् सभा का अध्यक्ष होना गौरवदायक ही था। उस सभा में उनको आनंद और नेत्रोत्सव प्रदान करनेवाले थे श्रीरंगराज और उनकी पुत्री कुप्पसानि। ये नृत्य विद्या में विद्वान कलाकार थे और इसीलिए उनको ''रंजकम्'' कहा गया है (Dev. Epi. Rev. pp 185-205)। मुद्दुकुप्पाइ को विजयनगर से श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर भेजा गया। वे आलय की नृत्यांगना बनी। उनको तिरुपति गोविंदराज मंदिर से भृति देने का आदेश भी दिया गया था। *स्थानत्तार* ने राजा के आदेश को समुचित आदर के साथ अमल किया (दिनांक 06-06-1531 ई. संख्या 11)। एक और नृत्यांगना अच्युतराय द्वारा वेङ्कटेश्वर मंदिर को भिजवायी गयी थी। उसका नाम हनुमसानि था और वह उड्डिद तिम्मय्या की पुत्री थी। वह सुसंपन्न थी।

अपने पैसों से उसने तिरुमल पर एक फुलवारी लगवायी और उसमें एक *मंटपम्* का भी निर्माण करवाया। मंदिर के भण्डार के लिए 820 *नर्पणम्* का अनुदान भी दिया (दिनांक 30-01-1540 ई.)। इस अनुदान से प्राप्त ब्याज से मलयप्पस्वामी को 10 *ब्रह्मोत्सवों* के 7 वें दिनों पर प्रसाद समर्पणों की व्यवस्था हो गयी थी। इतना ही नहीं, *विजयदशमी* के दिन तथा अन्य दो दिनों पर भी प्रसाद अर्पण की व्यवस्था हुई। श्रीगोविंदराज स्वामी के मंदिर में प्रवेश द्वार के पास विलसित *श्रीसुदर्शन* को *कृत्तिका* नक्षत्र (*चित्तिरै* मास में) पर प्रसाद निवेदन का भी इसमें प्रावधान है (संख्या 142)।

तिरुमल और तिरुपति मंदिरों के लिए नियुक्त कुछ अन्य नृत्यांगनाएँ भी थीं। उन्होंने केवल नृत्य समर्पण ही नहीं, बल्कि भगवान के लिए प्रसाद समर्पण की व्यवस्थाएँ भी की हैं। उनमें तिप्पसानि की पुत्रियाँ लिंगसानि और तिरुवेङ्कट मानिक्कम् हैं। उन्होंने 1650 *नर्पणम्* दिनांक 30-04-1540 ई. में अर्पित किये। इससे एक पात्र भरा गुलाब-जल और परिशुभ्र कर्पूर 20 दिन पर्यन्त हर दिन चलनेवाले ग्रीष्म उत्सव में भगवान को समर्पित करने का प्रावधान किया गया है। साथ-साथ श्रीसुदर्शन को एक *दोशै-पडि* अर्पित करना था। यह सुदर्शन, भगवान गोविंदराज मंदिर में है। यह अर्पण *आणि* मास के *कृत्तिका* नक्षत्र के दिन पर होता है (संख्या 146)। कुछ समयोपरांत उन्होंने अतिरिक्त रूप से 900 *नर्पणम्* अर्पित किया। यह पाँच कलशों में गुलाब जल और कुछ अन्य प्रसाद समर्पण के लिए है (संख्या 233)। इसी प्रकार एक्क की पुत्री नाच्चि ने तिरुमल और तिरुपति में कुछ समर्पणों के लिए देवदान दिया है। यह *क्रोधन* नाम संवत्सर में हुआ था (संख्या 185)।

दिनांक 26-12-1535 ई. में अच्युतराय भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के दर्शनार्थ तिरुपति आये थे। उस समय आपने वेङ्कटेश्वर के लिए *लक्ष्मीदेवी - महोत्सवम्* चलाने का प्रावधान किया (संख्या 54)। इसके साथ साथ *पुनर्वसु* नक्षत्र में 13 दिनों के एक उत्सव का भी श्रीगणेश उन्होंने श्रीराम के लिए करवाया था (संख्या 58)। उस समय उनके साथ पान और सुपाडी की दस्तरियाँ ढोने के लिए दो स्त्रियाँ भी थीं - अडैयप्पम् पर्मादम्मा और अडैयप्पम् रुक्मिणम्मा (संख्या 56 और 57)। उन दोनों की ओर से *स्थानत्तार* ने 132 *रेखै - पोन* खर्च करने का दायित्व स्वीकार किया था। इस धन से 11 *अप्प-पडि* और 11 *अतिरस-पडि* प्रसाद मलयप्पस्वामी को 9 *ब्रह्मोत्सवों* के 7 वें दिनों पर अर्पित करना निर्देशित हुआ था। इतना ही नहीं और दो दिनों के लिए भी निर्दिष्ट थे। साथ-साथ 20 *रेखै - पोन* पुष्पवाटिका के लिए जगह खरीदने, 18 *रेखै - पोन* पत्थर की प्रहरी के निर्मण के लिए, 18 *रेखै-पोन* बाग के तीन मालियों को वेतन देने के लिए, एक *रेखै* और 5 पणम् महीने के हिसाब से, 180 *रेखै - पोन* विभिन्न प्रकार के पौधे खरीदने के लिए तथा 150 *रेखै-पोन मंटपम्* निर्माण के लिए दिये गये हैं। कुल मिलाकर 518 *रेखै-पोन* दोनों महिलाओं की ओर से हर एक के द्वारा समर्पित हुए थे। लगता है कि उन महिलाओं ने इतना पैसा दिया

नहीं, लेकिन 1036 *रेखै-पोन* मंदिर की ओर से (मंदिर भण्डार से) प्रस्तुत हुए थे। यह उनकी सेवाओं के लिए प्रस्तुत हुआ था।

इसी तरह *स्थानत्तार* ने एक और दान भी अरवीडु लक्ष्मीअम्मन की ओर से किया है। ये अच्युतराय के साथ आयी एक महल की महिला थी तब वे तिरुमल मंदिर की यात्रा में आयी थी। इसमें 25 *रेखै-पोन* फुलवारी की स्थापना के लिए, जमीन खरीदने के लिए और 500 *रेखै-पोन* बाग में मंटपम् निर्माण के लिए और 6 *रेखै-पोन* वाटिका निर्वहण के लिए हैं। मलयप्पस्वामी के 10 *ब्रह्मोत्सवों* में तथा अन्य दिनों में समर्पणों के लिए भी यह दान अर्पित है (संख्या 125)।

नूनिज़ ने कहा था कि ''कृष्णदेवराय की मृत्यु के बाद सालवनय राज्य के मंत्री हुए थे और राजा अच्युतराय के गद्दी पर बैठने तक चन्द्रगिरि किले से शासन चलाते थे। इसी चन्द्रगिरि किले में ही वे पहले बन्दी भी रहे थे (सेवेल, पृ.367)। फिर भी, एक संदेह नूनिज़ ने व्यक्त किया था कि उस समय पर शासनाधिकार पानेवाले सालुव तिम्मरसु नहीं भी हो सकते हैं। क्योंकि नूनिज़ ने ही बताया है कि कृष्णदेवराय ने तिम्मरसु और उनके परिवारवालों की आँखें फोडकर अंधे बनाया था। उस समय कृष्णदेवराय ने एक अपराधी व्यक्ति के पुत्र को मंत्री बनाया था। यह उसी व्यक्ति का पुत्र था जिसने सालुव नरसिंहराय के पुत्र को पेनुगोंडा के बाग में छलपूर्वक मारा था।'' यह भी सालुव नरसनायक की आज्ञा से ही हुआ था (वही पृ.360)। इस अपराधी व्यक्ति और उनके पुत्र को ऐतिहासिक व्यक्तियों से जोडकर देखा नहीं जा सकता। इतना ही नहीं, सालुव नायक शायद वह विद्रोही नहीं जो तिरुवानकूर भाग गया था और जिसे अच्युतराय ने अपने साले की सहायता से अधीन में कर लिया था।

चाहे सालुव तिम्मय्या को अच्युतराय ने मंत्री बनाया ही हो, जैसे उनके छोटे भाई सालुव गोविंदराज ने किया था। ऐसा लगता है कि संख्या 166 के अनुसार वह समय 5 नवंबर, 1541 ई. था। इस परिलेख में गोविंदराज स्वामी को एक *अप्प-पडि* प्रसाद निवेदन की बात है। यह *मृगशिरा* नक्षत्र के 13 दिनों में हर दिन एक *अप्प-पडि* अर्पित करने के प्रावधान से संबन्धित था। यह अच्युतराय का जन्म नक्षत्र है। इससे अच्युतराय की अधीनता ग्रहण करने की बात सूचित होती है। ऐसी स्थिति में ये *प्रधानी* नहीं हो सकते (प्रधानमंत्री)। उतने प्रभावशाली भी नहीं जितने कृष्णदेवराय के शासनकाल से पहले रहे थे। उतना गौरव भी उन्हें प्राप्त नहीं था। अच्युतराय के लिए तो उनके दो साले सलकराज पेरिय (पेद्द - तिरुमलराय) और शिरु (चिन्न तिरुमलराय) थे। उन लोगों ने अधिकार चलाया और प्रभाव डाला। राजा के बडे साले को ''प्रधान तिरुमलराज'' भी कहा गया है। इसकी सूचना 1922 के संख्या 681 से मिलती है (Mad. Epi. Rep)। साधारणतः यह विदित होता है कि इन्हीं दोनों की मिली - जुली कार्यवाही

से ही कृष्णदेवराय के पुत्र को (युवराज तिरुमल राय महाराज को) विष देने का कार्य हुआ हो। नूनुज़ ने आगे और कहा है कि अच्युतराय ने कुछ अधिक और नहीं किया। उन्होंने वही किया है जिसे उनके सालों ने करने के लिए कहा था। उनके साले तो दुष्ट नीयत से चलते थे और यहूदियों की कुछ मनोभावनाओं के समतुल्य थे। अच्युतराय के संबन्ध में इस प्रकार के विचारों के बावजूद भी अच्युतराय जन सामान्य में ख्यात और गौरव प्राप्त राजा थे। यह उनके कुछ अधिकारियों और अन्य व्यक्तियों द्वारा उनकी भलाई और शुभ की इच्छा से प्रेरित होकर भगवान को अर्पित समर्पणों से विदित होता है। उनके *धर्मम्* के लिए समर्पण हुए हैं (संख्या 1)। उनके *पुण्य* के लिए अर्पण हुए हैं भगवान को (संख्या 77, 79 और 101)। उनके जन्म नक्षत्र *मृगशिरा* पर उनके कुशल - लाभ के लिए समर्पण हुए हैं (संख्य 6 और 36)। सम्राट, उनकी रानी और राजकुमार वेङ्कटाद्रि उडैयार की भलाई के लिए भी समर्पण हुए हैं (संख्य 79)। यह सूचित हैं कि सभी परिलेखों का आरंभ अच्युतराय के राज्यकाल के ही हैं।

उक्त विवेचन में उल्लिखित दोनों सलकराज तिरुमलराजा अपने एक और छोटे भाई को (सलकराज सिंगराज) मिलाकर तीनों अच्युतराज की रानी वरदाजीअम्मा के भाई और तिम्मराज सलकराज के पुत्र थे। ये चारों सलकराज परिवार के लोग (तीन पुत्र और पिता) अच्युतराय के राज्यकाल में जीवित रहे थे। पिता महामंडलेश्वर तिम्मराज सलकराज ने *शिर्रेट्टम्* (चिट्टेक्कुडु, छोटे चढने के रास्ते के पास) पर एक *मंटपम्* का निर्माण करवाया था और 600 *नर्पणम्* भी 21-08-1533 ई. को अर्पित किया। इस रकम से *मंटपम्* में पीने के पानी की व्यवस्था होनी थी (संख्या 25)। सलकराज पेरिय तिरुमलय्यदेव महाराज की रानी पेरिय कोम्ममन् ने दिनांक 03-07-1534 ई. को 1300 *नर्पणम* का अर्पण *''उभयम्''* के रूप में अपने *आचार्य* कोयिल कंदाडै अण्णन् की सेवा के रूप में अर्पित किया। यह 9 *अतिरसपडि* मलयप्पा को उनके 9 *ब्रह्मोत्सवों* के 7 वें उत्सव के दिन पर अर्पित करने के लिए प्रदात्त था। यह समर्पण रानी द्वारा निर्मित वरद नारायण पुष्पवाटिका के *मंटपम्* में और अन्य *मंटपों* में उत्सवों के संदर्भ में प्रसाद समर्पण हेतु था। गोविंदराज स्वामी के तीर्थवारी उत्सवों के लिए भी था। ये *वैकाशी* और आणि *ब्रह्मोत्सवों* और *तण्णीर-अमुदु* उत्सव के दिनों के लिए भी थे। इनमें तीन *मुदल - आळ्वारों* की मूर्तियों के लिए भी समर्पण था। मुदल आल्वारों में पोइगै अल्वार को उनके वार्षिक जन्म नक्षत्र *श्रवणम्* पर, पूदत्तै आल्वार को उनके जन्म नक्षत्र *धनिष्ठा* पर और *पेयाळ्वार* को *शतभिषम्* नक्षत्र पर *अर्पशी* मास (सं. 31) में अर्पण होने थे। पेरियतिरुमलराय की रानी तथुक्कोणम्मा[1] ने वेङ्कटेश भगवान की दैनिक सेवाओं के लिए दिनांक 17-02-1536 ई. में 150 *वरहों* का समर्पण किया है (संख्या 66)।

---

1. यह रानी का एक अलग ही नाम है। संख्या 31 और 66 में उल्लिखित नाम से भिन्न है। उनका असली नाम ''कोनम्मा'' हो सकता है। परिलेखों में अंकित करने में कुछ गलती हुई होगी।

अच्युतराय के छोटे भाई सिंगराज ने दिनांक 12-01-1537 ई. में भगवान वेङ्कटेश्वर को 15,000 *नर्पणम्* अर्पित किये थे। इससे 300 *अप्प-पडि* हर वर्ष वेङ्कटेश्वर को समर्पित होने का आदेश है। इस समर्पण में 13 पडि भगवान के *ब्रह्मोत्सवों* के हर दिन यानी अंकुरार्पण से वैडायार्रि तक, 13 दिनों में अर्पित होने थे। भगवान के उस समय 10 ब्रह्मोत्सव होते थे। 20 *पडि कोदै तिरुणाल* (गर्मियों के उत्सवों में) के 20 दिन पर्यन्त, 9 पडि 9 दिनों के प्लवोत्सव के दिनों पर और उनके अलावा अन्य उत्सवों और पवित्र दिनों में भी अर्पण की बात इसमें है (संख्या 88)। पुनः उन्होंने दिनांक 10-02-1542 ई. में 15,000 *नर्पणम्* अर्पित किये हैं भगवान वेङ्कटेश्वर को। इस राशि से 300 अतिरिक्त *अप्पपडि* भगवान को समर्पित होने थे। यह समर्पण हर वर्ष होते रहने का भी आदेश है (संख्या 170)।

संख्या 168 तिरुमल पर वरदराजि - अम्मन् के नाम पर निर्मित विशाल सडकों का उल्लेख करता है। इनके लिए जगह श्रीवेङ्कटेश्वर के *श्रीभण्डारम्* के मैनेजरों से 21 दिसंबर 1541 ई. में श्री सलकराज चिरु तिरुमलराज के *धर्म* के रूप में अच्युतराय की *पट्टमहादेवियार* (पट्टमहिषि) वरदाजि - अम्मा द्वारा 21 दिसंबर 1541 ई. को खरीदी गयी थी।

अच्युतराय के शासन काल में 35 गाँव और कुछ खेत भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को समर्पित हुए हैं। रानी वरदाजी अम्मन ने 6 गाँव दान में समर्पित किये थे। इनसे 920 *रेखै-पोन* (शायद सुवर्ण *वरहा*) श्रीवेङ्कटेश्वर को आमदनी के रूप में प्राप्त होते थे। इस राशि से 20 प्रसाद समर्पण और 5 प्रकार के पडि (*पण्यारम्,* मिठाई, नमकीन, *अप्पम्, अतिरसम्, सुगिया, वड़ा, दोशे, सीदै* आदि) हर दिन अर्पित होते थे। एक दर्जन (12) गाँवों के दाता तो अन्नमाचार्य के पुत्र ताल्लपाक पेद्द-तिरुमलय्यंगार थे। इन्होंने सबसे बडा दान दिया था। अन्नमाचार्य तो सर्व प्रथम संकीर्तनाचार्य थे। आप सालुव नरसिंह के समय के थे। उक्त सभी दान लगभग 50 अन्न प्रसादों के समर्पण के लिए थे। ये समर्पण नित्य नैवेद्यों के रूप में और कुछ विशेष उत्सवों के संदर्भों में होते थे। इनके अलावा ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंगार ने *तमिल* मास *आणि* में संपन्न होनेवाले भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के *ब्रह्मोत्सवों* के लिए 2000 *वरहों* का समर्पण भी किया था (संख्या 129)।

अच्युतराय के सचिव रायसम् तिम्मरसय्या ने तीन गाँवें को दान में दिया, भगवान बालाजी को इनकी आमदनी से 16 प्रकार के समर्पण होते थे और एक *पडि* हर रोज गोविंदराज स्वामी को भी था (संख्या III) । चन्द्रगिरि के भूतनाथ रामा-भट्ट ने दिनांक 25-01-1541 ई. में आलम्बाक्कम् गाँव को देवदान में प्रस्तुत किया। इससे 150 *रेखै-पोन* की आमदनी होती थी। इसके साथ साथ उन्होंने 3600 *नर्पणम्* भी दो दैनिक निवेदनों के लिए और एक *दोशै-पडि* के लिए अर्पित किया था (संख्या 154)। एक श्रोत्रिय ब्राह्मण ने पहले रामा भट्ट से एक गाँव प्राप्त किया था। उसे उसने मंदिर को दिनांक 17-06-

1534 को अर्पित किया। उस गाँव का नाम है वलितिरिट्टि। यह दान श्रीवेङ्कटेश्वर को रोज़ 14 समर्पणों के लिए है। रामा भट्ट के एक संबन्धी भूतनाथ एल्लप्पय्या ने दिनांक 08-12-1541 ई. में दो गाँव 18 दैनिक प्रसाद निवेदनों के लिए अर्पित किये हैं (संख्या 167)। दलवाइ तिम्मरसय्या ने दिनांक 31-12-1540 ई. में सामपुरम् गाँव के दान के साथ साथ 15,000 *नर्पणम्* के अर्पण की व्यवस्था की है। इससे 28 दैनिक निवेदन और अन्य सांदर्भिक निवेदन संपन्न होते थे (संख्या 153)। पेनुगोंडा वीरप्पन्ना ने पासिगलपाडु नामक गाँव का दान दिया और साथ-साथ 200 *रेखै-पोन।* यह अच्युतराय के शुभ के लिए था। इससे 8 दैनिक समर्पण भगवान को होने हैं। यह दिनांक 15-12-1536 ई. में संपन्न हुआ है (संख्या 77)। फिर उन्होंने 6000 *नर्पणम्* चार अन्य समर्पणों के लिए दिनांक 22-01-1538 ई. को दिये हैं (संख्या 101)। तदनंतर 2000 *रेखै-पोन* 04-01-1539 ई. को अर्पित किये (संख्या 119)। इतना ही नहीं एक बडी चाँदी की थाली भी भगवान को दी है। भगवान के अन्न प्रसाद को इसमें रखकर अर्पित करने के लिए यह थाली थी। इसके साथ एक बडा चाँदी का ''कप'' (कटोरा) भी अर्पित है। यह दिनांक 27-01-1541 ई. को संपन्न हुआ था (संख्या 141)। उसी समय (उसी तारीख को) 15,000 *नर्पणम्* भी दिये। ये वर्ष भर में 300 *अप्प-पडि* समर्पण के लिए थे (संख्या 158)। अंततोगत्वा उन्होंने 600 रेखै - पोन दिनांक 23-02-1542 ई. को भगवान को अर्पित किये। ये भगवान वेङ्कटेश्वर को 5 अन्य अतिरिक्त निवेदनों के लिए थे (संख्या 172)। रायसम् रामचन्द्र दीक्षितार ने तामरपक्कम् गाँव का दान दिनांक 01-07-1533 ई. में किया। यह हर दिन 8 निवेदनों और *पण्यारम्* समर्पण विशेष उत्सवों के संदर्भ में अर्पित करने के लिए था (संख्या 23)।

अच्युतराय के महल के एक कर्मचारी मल्लय्या ने एक गाँव को भगवान की सेवा के लिए दान में दिया था, दिनांक 24-07-1541 ई. में (संख्या 164)। इसी प्रकार शालै पाक्कम् नागय्या ने भी एक गाँव दिनांक 29-12-1530 को दान में दिया (संख्या 7)। मलैयप्परायन नामक एक और भक्त ने पंचवन्नमादेवी गाँव को दिनांक 26-12-1535 ई. में देवदान के रूप में अर्पित किया था (संख्या 60)। गोपालसेट्टि कुल के (गाय पालक वर्ग के) पिलैपोरुत्तार पिल्लै ने पडैवीडु सीमा के पाँच गाँवों को भगवान के नाम पर अंकित किया है। समय 1535 ई. है (संख्या 48)। गोविंद पंडित नामक भक्त ने गंडिकोट सीमा के अच्युतरायपुरम् गाँव को दिनांक 06-01-1536 ई. में भगवान को समर्पित किया है (संख्या 62)। वेङ्कटाद्रि अय्यन ने 700 *रेखै-पोन* आमदानी देनेवाले एक गाँव को दिनांक 24-11-1538 ई. में दान किया (संख्या 115)। वेङ्कटाद्रि अय्यन् ने दिनांक 01-05-1540 ई. को गोल्लपल्लि गाँव दान में भगवान को अर्पित किया है। अवुलालि के (तिरुपति के पास के अविलाल नामक गाँव के) निवासियों ने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के सामने फसल देनेवाले खेतों को दान में अर्पित किया है।

अच्युतराय *धर्मम्* के नाम पर कुमार रामानुजय्यंगार ने एक काष्ठ रथ का निर्माण कराकर दिनांक 14-01-1530 ई. में श्रीरघुनाथ (श्रीराम) स्वामी को समर्पित किया (संख्या 1)।

नेरत्तूर के निवासी और पेरियपेरुमाल के पुत्र नारायणन् नामक भक्त ने एक बडे पत्थर का 'टब' (कटौत) बनवाकर भगवान गोविंदराज स्वामी के मंदिर को दिया था। यह पाकशाला में पानी संजोकर रखने के लिए ही था (संख्या 2)।

संकीर्तन भण्डारम् से संबन्धित 3000 ताम्र पत्र संरक्षित मिले हैं। इन ताम्र पत्रों पर ताल्लपाक वंश के संकीर्तनकारों के *संकीर्तन* (भक्तिगीत) अंकित थे। ये गीत ताल्लपाक वंश के तीन वंशजों के थे यथा - अन्नमाचार्य, अन्नमाचार्य के पुत्र पेद्द तिरुमलाचार्य, पेद्द तिरुमलाचार्य के पुत्र चिन्न तिरुमलाचार्य के थे। ये लगभग 4 शताब्दों तक एक स्थान पर संग्रहीत और सुरक्षित रखे गये थे। 16 वीं शताब्दी से लेकर उस समय तक एक जगह पर रहे हैं जिन्हें मैं ने तिरुपति - तिरुमल देवस्थानम् कार्यलय में प्रकाशनार्थ पहुँचाया है। इनकी सूचना ताल्लपाक पेद्द तिरुमलाचार्य द्वारा लिखवाये गये एक परिलेख में प्राप्त हुई है। इस परिलेख का समय 31-10-1530 ई है (संख्या 6)। 4 शताब्दियों तक सुरक्षित रखनेवाला कमरा भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में *''हुंडी''* के ठीक सामनेवाला कमरा है। *विमान प्रदक्षिणम्* करते समय दिखनेवाला *तिरुमामणि मंटपम्* से यह कमरा जुडा हुआ है परिलेख (संख्या 6) सूचित करता है कि *संकीर्तन भण्डारम्* के सामने एक अतिरस - पडि समर्पण होता है। इसकी व्यवस्था अच्युतराय द्वारा ही की गयी है। वैसे तो *लक्ष्मीदेवी महोत्सवम्* के संदर्भ में यह अर्पण है। इसका आरंभ दिनांक 26-12-1535 ई. को किया गया है (संख्या 54)। यह इसकी सूचना के पाँच वर्ष बाद घटित हुआ था (संख्या 6)। बाद में पेद्द तिरुमलाचार्य और उनके पुत्र दोनों ने इस कमरे के सामने अन्य समर्पणों की भी व्यवस्था की थी (संख्या 155)।

अच्युतराय के समय में ही दो भगवान की मूर्तियों की स्थापना हुई थी (प्रतिष्ठा हुई)। इसे भूतनाथ रामा भट्ट ने संपन्न कराया है। इनमें एक मूर्ति श्रीरघुनाथ (श्रीराम) की है। इस मूर्ति की प्रतिष्ठा तिरुवेङ्कटापुरम् में हुई है। तिरुवेङ्कटापुरम्, नामक एक गाँव, तिरुपति के पश्चिम में स्थित है। नित्यप्रति प्रसाद समर्पण की व्यवस्था भी की गयी है। मूर्ति की प्रतिष्ठा 26-12-1535 ई. में हुई थी (संख्या 61)। एक और मूर्ति श्रीगोपाल कृष्ण की है। यह तिरुपति के पास स्थित विदिराजपुरम् के एक बाग में प्रतिष्ठित हुई है। इतना ही नहीं, भगवान के लिए नित्य नैवेद्य की भी व्यवस्था और ज्योति प्रज्वलन की सुविधा भी की गयी है। यह 07-01-1537 ई. में संपन्न हुआ है (संख्या 94)। *पंगुनि* - उत्तिरम् (*उत्तर-फलगुणी* नक्षत्र पर, फाल्गुण मास में) पर विस्तृत रूप से प्रसाद समर्पणों और रात में उत्सवों की भी

व्यवस्था की गयी है। इतना ही नहीं अनेक नैवेद्य समर्पणों तथा श्रीरामचंद्र के प्लवोत्सव के लिए प्रावधान भी किया गया है (संख्या 18)।

इस समय के बीच कुछ नये उत्सवों का भी श्रीगणेश किया गया। अच्युतराय ने भगवान वेङ्कटेश्वर का *लक्ष्मीदेवी - महोत्सवम्* का आरंभ कराया है। इस उत्सव में अलमेलमंगा - नाच्चियार भी भगवान के साथ शोभित होती हैं। इस व्यवस्था का रूपायन दिनांक 26-12-1535 ई. में हुआ है। यह उत्सव पाँच दिन पर्यन्त चलनेवाला उत्सव है (संख्या 54)। लेकिन वास्तविक रूप से किस महीने में यह उत्सव मनाया जाता है, इसका सठीक उल्लेख नहीं है। इसके संबन्ध में एक परिशिष्ट में (संख्या 55) कहा गया है कि यह उत्सव पाँच दिनों से बढकर सात दिन तक चलनेवाला घोषित हुआ है। वास्तव में दिनों की संख्या बढाई गयी है। यह भी *उत्तराभाद्रा* नक्षत्र से आरंभ होकर सात दिन तक चलता है। उत्तराभाद्रा के दिन *अंकुरार्पण* होता है और *रोहिणी* नक्षत्र के दिन पर *शात्तुमुरै* से समाप्त होता है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि इन दो नक्षत्रों के बीच का समय केवल 6 दिनों का होता है, 7 दिनों का नहीं। मूलतः कही गयी सूचना के अनुरूप 5 दिनों में 5 प्रकार के *पण्यारम्* (प्रसादों) का समर्पण होता है - यथा - एक *अप्पडि,* एक *अतिरस पडि,* एक *वडा पडि,* एक *गोधि पडि* और एक *सुगीया पडि।* यह अर्पण उत्सव मूर्तियों के सामने ही होता है। वह भी सात *मंटपों* में भगवान जब ठहरते है तब। ये मंटप भी अच्युतराय द्वारा ही निर्मित मंटप हैं यथा - *अच्युतराय स्वामी मंटपम्, वरदाजी अम्मन्स्वामी मंटपम्, अच्युतराय अंकन-मंटपम्, वरदाजी अम्मन अंकन मंटपम्, कुमार चिक्क वेङ्कटाद्रि उडय अंकन मंटपम्, नरस नायक अंकन मंटपम् और ओबलच्चि अम्मन अंकन मंटपम्।* इनमें प्रथम चार राजा अच्युतराय और उनकी रानी के नामों पर हैं। पाँचवाँ राजकुमार के नाम पर है। छटवा उनके पिताजी के नाम पर और सातवाँ उनकी माताजी के नाम पर है - ओबलांम्बा/ओबाम्बा ।

इसी प्रकार का एक महाउत्सव और एक *ब्रह्मोत्सव* का श्रीगणेश श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए ताल्लपाक पेरिय (पेद्द) तिरुमलय्यंगार द्वारा आणि मास में (जून के पश्चमार्द्ध में) 13 दिन का आरंभ किया गया है। इस उत्सव का आरंभ *श्रवणा* नक्षत्र के दिन से (वेङ्कटेश्वर भगवान के जन्म नक्षत्र दिन से) होता है। उस दिन को उत्सव का *अंकुरार्पण* होता है, *शतभिषा* नक्षत्र पर (*सतायम्* पर) तिरुमुलै (*तिरुक्कोडि* के स्थान पर यह गलती से अंकित है) और *मृगशिरा* नक्षत्र पर तीर्थवारि (यह नक्षत्र दाता का जन्म नक्षत्र है) संपन्न होता है। इस प्रकार यह *विडयार्रि* तक (विश्रांति) 13 दिन का उत्सव होता है। फिर श्रवणा नक्षत्र से मृगशिरा नक्षत्र तक के दिनों की गिनती करेंगे तो स्पष्ट होता है कि वे केवल 11 दिन ही हैं और 13 नहीं। विडायार्रि दिन को अगर मिलायें तो ये दिन 12 होते हैं। किसी भी स्थिति में दिनों की संख्या 13 नहीं हो सकती। इस नये उत्सव से संबन्धित खर्चा देखा जाय तो तमिल आणि मास

तक के समर्पणों के लिए, जो 10 ब्रह्मोत्सवों का निर्वाह किया जाता है, कुल मिलाकर 2000 *वरहों* का निवेश पूँजी के रूप में जमा किया गया है। यह निवेश दिनांक 17-03-1539 ई. को संपन्न किया गया। परिलेख की आठवीं पंक्ति में बताया गया है कि 10 *ब्रह्मोत्सवों* में खासकर प्रथम दिवस *ध्वजारोहण* पर्व दिन से लेकर *पुष्पयागम्* के दिन तक 10 दिन ठहरते हैं। लेकिन कार्यकर्मियों को और अन्य सेवकों आदि को जो मजदूरी देनी होती है वह 12 दिन की ठहरती है। यह *आणि ब्रह्मोत्सव* और 3 रथोत्सवों में होता है। तीन रथोत्सव है - *पुरट्टासि, कार्तिकै* और *तै। पंगुणि ब्रह्मोत्सव* भी है। इसमें एक रथ उत्सव मूर्तियों के लिए - मलयप्पा और उनके नाच्चियारों के लिए, एक रथ ब्रह्म के लिए और तीसरा रथ विष्वक्सेन *(सेनै-मुदलियार)* के लिए है। इन रथों पर विलसित देवताओं के लिए हर एक को 3 *सुगिया - पडि* और 3 थालियों में मक्खन (शक्कर मिलाकर) अर्पित करना है। 30 *तिरुप्पोनकम् तिरुप्पल्लि एलुच्चि* उत्सवों में *मार्गलि (धनुर्मास)* मास में 30 दिन पर्यन्त अर्पित करना है। दाता ने पुष्करिणी के तट पर स्थापित दीपस्तंभ पर दीप जलाने के लिए भी व्यवस्था की है। यह हर गुरुवार को तथा *मुक्कोटि द्वादशी* के दिन 32 ज्योति जलाने के लिए समर्पण दाता से किया गया है।

ताल्लपाक अन्नमाचार्य के पुत्र पेद्दतिरुमलय्या ने तिरुवेंगलनाथ की प्रशंसा में *शृंगार संकीर्तन* प्रस्तुत किये। इन्हींने पवित्र कोनेरु *(पुष्करिणी)* का पुनरुद्धार किया। नये पत्थरों से पुष्करिणी की सीढियों आदि को बनवाया है। पुष्करिणी के पास *अंकन - मंटपम्* बनाया है। पुष्करिणी की परिक्रमा करने के लिए उपयुक्त रीति से पत्थर बिछवाये हैं। *महाप्राकारों* का भी निर्माण कराया है। ... *मंटप* का भी निर्माण करवाया है। अन्य अनेक प्रकार के समर्पण भी भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को अर्पित किये हैं। यह शक संवत्सर 1454 (सन् 1532 ई.) में हुआ है (संख्या 20)। संख्या 41 में ताल्लपाक अन्नमय्या के पुत्र तिम्मय्या ने भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर पर एक *सीसमालिका* ('सीस' नामक छंद में रचना) की रचना की है। ये पुनः दिखाई भी देते हैं शक संवत्सर 1454 के *नंदन नाम संवत्सर* में। इन छंदों में उनके द्वारा किये गये अर्पणों का कुछ विवरण भी मिलता है। इस के अनुसार *वैशाख पूर्णिमा* के दिन *पुष्करिणी* का नवीकरण संपन्न किया गया। भूदेवी और वराह स्वामी के लिए *अंकण-गोपुर-द्वारों* का पुनर्निर्माण भी किया गया। जब तक चंद्रमा और नक्षत्र रहेंगे तब तक रहने के उद्धेश्य से उन्होंने इनका निर्माण कराया है। शक संवत्सर 1457 के मन्मथ नाम संवत्सर के एक *तमिल* कविता में (संख्या 40 में लिखित) कुछ और देवदानों की चर्चा मिलती है। यह दिनांक 17-05-1535 ई. का परिलेख है। इसमें ताल्लपाक अन्नमाचार्य के पुत्र तिरुमलय्यंगार द्वारा संपन्न कुछ देवदानों का उल्लेख मिलता है। इसमें भगवान की उत्तर की दिशा में रहनेवाले पुरातन तालाब की सीढियों के निर्माण की बात है। *नीराली मंटपम्* (पुष्करिणी के मध्य स्थित मंटपम्) और पक्कवि - अंकणमम् (पुष्करिणी की चारों ओर बना हुआ

चबूतरा, श्रीवराहस्वामी *मंटपम्* के पास चारों ओर बना चबूतरा तथा पूर्व दिशा में *गोपुरम्, यानकणमुम्, ज्ञानप्पिरान मदिलि गोपुरम्*) आपके ही निर्माण हैं। 3 और 4 पंक्तियों में बताया गया है कि दाता तथा उनके पुत्रों ने विद्वानों तथा साधारण भक्तों को मधु समान प्रीति पहुँचानेवाले *संकीर्तनों* की रचना की है।

उक्त तीनों परिलेख द्वार के बगल में तथा प्रवेश *गोपुरम्* के नीचे की जगह में श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर के पास अंकित हैं (संख्या 20, 40 और 41)। इनको बडी सीमा तक क्षति पहुँची है। शायद यह क्षति प्रवेश द्वार और शिखर के पुनरुद्धार के कारण हो सकती है। इस कारण से पूरा विवरण प्राप्त नहीं हो पा रहा है। संख्या 40 में शक संवत्सर 1457 के *मन्मथ नाम* संवत्सर में *वैशाख पूर्णिमा* के दिन इसका लेखन हुआ है। संख्या 20 और 41 में जो सूचना उल्लिखित है, वही सं. 40 में भी पुनरुक्त है। वह भी शक संवत्सर 1454 *वैशाख पूर्णिमा* के दिन तथा शक संवत्सर *नंदन* नाम संवत्सर के स्थान पर शक संवत्सर गलत है। इसी प्रकार शक संवत्सर 1457 गलत है शक संवत्सर 1454 के स्थान पर।

[[संख्या 41 का *तेलुगु* छन्द अपने पूरे रूप में ''अन्नमाचार्य चरित्र'' के पृ 98 पर मिलता है। उसके अनुसार कोनेरु *(पुष्करिणी)* का चबूतरा, शिखर और उसके नीचे का रास्ता तथा *मंटपम्* सभी भू-वराहस्वामी के पास हैं, न कि *नीरालि मंटपम्* के पास जैसे संख्या 40 में लिखा गया है।]]

पेद्द तिरुमलय्यंगार ने दिनांक 27-03-1532 ई. में अपने देवदान से 3 *यज्ञोपवीतम्* (जनेउ) श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को नित्य निवेदन के समय पर अर्पित करने की व्यवस्था की है। यह सालुव नरसिंह के समय पर हुआ है। इस कारण यह व्यवस्था उन्हीं के नाम पर हो गयी है। इसी पर एक *पन्नीर - चेम्बु* (गुलाब जल) को भी अर्पित करने की व्यवस्था की है। यह हर शुक्रवार के दिन पर *पुनुगु - कप्पु* (विशेष बिलार से प्राप्त सुगंध लेपन) के समय अर्पित होता है। उस संदर्भ में दाता के भाग के रूप में प्रसादम् का अंश और एक *यज्ञोपवीतम्,* 10 *सुपाडी* और 10 *पान* दिये जाते हैं। साथ साथ खाली गुलाब जल पात्र भी दाता को मिलता है। यह भगवान की मूर्ति के सामने *संकीर्तन* गान करने के बाद प्रदान किया जाता है (संख्या 14)।

उक्त समय पर ही (शुक्रवार के दिन ही) भण्डारम् अप्परसर के पुत्र भण्डारम् चिरु तिम्मय्यर ने एक *वडा-पडि* के समर्पण की व्यवस्था की है। इतना ही नहीं, उन्होंने अच्युतराय के जन्म नक्षत्र के 13 दिनों (*मार्गशीर्ष* में) के लिए *वडा-पडि* समर्पण की भी व्यवस्था की है (संख्या 36)।

पेद्द तिरुमलय्यंगार के पाँच पुत्र थे, थथा - (1) चन्नि तिरुमलय्यंगार, (2) अन्नमाचार्य, (3) पेद्द तरिवेंगलनाथ (तिरुवेंगलनाथ, तिरुवेंगल और तिरुवेङ्कटप्प अन्य नाम) (4) चिन्न तरिवेंगलनाथ (चिन्नन्न,

तिरुवेङ्कटनाथ, तिरुवेंगलनाथ, तिरुवेनादर, तिरुवेणादय्यर, वेंगलार्य और वेङ्कटेश-दीक्षित अन्य नाम) और (5) कोनेटि तिरुवेंगलनाथ (कोनेटि तिरुवेंगलनाथय्यर, कोनेटि वेंगलनाथ और कोनेटि वेङ्कटनाथ अन्य नाम)। ये पाँचों पुत्र और चिन्न तिरुमलय्यंगार के पुत्र तिरुवेंगलप्पा और अन्य सभी पंडित और विद्वान थे। पेद्द तिरुमलय्यंगार और अन्नमय्यंगार तो *शास्त्रों, वेदान्त* और *तमिल दिव्य प्रबन्धम्,* कलाएँ, काव्य, साहित्य, संगीत, योग और *प्राकृत* (मागधी जैसी) के महान पंडित थे।

ज्येष्ठ पुत्र चिन्न तिरुमलाचार्य अपने पिता और पितामह के समान अपने पूरे समय को भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर की सेवा में ही जीवन अर्पित किया है। भगवान के सन्निध्य में *संकीर्तन* गायन में ही जीवन बिताया था। इनके पुत्र तिरुवेङ्कटय्या ने *तेलुगु* में ''बाल प्रबोधिका'' (गुरुबाल प्रबोधिका) के नाम से अमरसिंह के ''नामलिंगानुशासनम्'' पर व्याख्या लिखी है। नामलिंगानुशासनम् को ''अमरम्'' भी कहते हैं। इतना ही नहीं, ''सुधानिधि'' नामक एक और उत्कृष्ट रचना भी आपने की है।

चौथे पुत्र चिन्न तिरुवेंगलनाथ (चिन्नन्ना) ने *तेलुगु* में (1) अन्नमाचार्य चरित्र (2) परमयोगि विलासम् (3) अष्ट - महिषी कल्याणम् और (4) उषा परिणयम् ग्रंथ लिखे हैं। इनके पुत्र तिरुवेंगलप्पा ने ''आन्ध्र अमरुक शतकम्'' नाम से संस्कृत ''श्रृंगार अमरु काव्यम्'' को प्रस्तुत किया है।

ज्येष्ठ पुत्र चिन्न तिरुमलाचार्य (चिन्न तिरुमलय्यंगार) ने कल्याण वेङ्कटेश्वर के शिथिल मंदिर का पुनर्निर्माण कराया है। यह मंदिर उनके ही गाँव *सर्वमान्य अग्रहारम्* में है। इसका एक और नाम मंगापुरम् भी है। यह लगभग तिरुपति से 6 मील की दूरी पर है और चन्द्रगिरि से उत्तर की दिशा में है तथा *विकल्या* नदी के किनारे पर है। उस मंदिर में श्रीवेङ्कटेश्वर और उनकी दो नाच्चियारों (श्रीदेवी और भूदेवी) की मूर्तियों की स्थापना कराई है। साथ साथ *अनंत, गरुड, विष्वकसेन* और अन्य परिवार देवताओं, आळ्वारों तथा उडैयार (रामानुज), *पूर्वाचार्यों* तथा अपने *आचार्यों,* अन्नमाचार्य आदि की मूर्तियाँ भी स्थापित करायी हैं। यह दिनांक 22 मार्च 1540 ई. तक संपन्न हो गया है। आळ्वारों के पाशुरों के गायन की व्यवस्था इन्होंने की है। उनके लिए प्रसाद निवेदन की व्यवस्था भी करायी है। उस प्रसाद को *जीयर, आचार्य पुरुष* तथा अन्य *श्रीवैष्णवों* में वितरित होने का नियमन भी आपने किया है। उद्देश्य था कि यह आराधना पीढी - दर - पीढी अनवरत चलती ही रहे। इससे संबन्धित परिलेख यतिराजय्यंगार ने लिखकर प्रस्तुत किया है (संख्या 144)। इसके एक अनुबन्ध में (संख्या 145) *वैष्णव आळ्वारों* और *आचार्यों* के जन्म नक्षत्र नाम अंकित किये गये हैं। पेरुमाल्लु के उत्सवों का भी उल्लेख है। ये उत्सव दो *दशमी* के दिनों, दो *एकादशी* के दिनों तथा एक *पूर्णिमा* एवं एक *अमावास्या* के दिनों में ही महीने में मनाये गये हैं। ये उत्सव बडी वीथियों में *रोहिणी, मृगशिरा, आरुद्रा, पुब्बा,* (पूर्वफल्गुणी, उत्तरफल्गुणी),

हस्ता नक्षत्रों में संपन्न होते हैं। अन्य दिनों के उत्सव छोटी वीथियों में होते हैं। यह एक प्रकार से निर्देशित ही है।

भाग्यवश उक्त मंदिर स्वर्णमुखी नदी की उत्तर की दिशा में होने के कारण मुख्य सडक से दूर है। इसी कारण मुसलमानों के हाथों ध्वस्त होने से बच गया है। सन् 1565 ई. के तल्लिकोट युद्ध के परिणाम भयंकर रहे हैं परन्तु यह मंदिर बच ही गया। जो विनाश अच्युत पेरुमाल के मंदिर को पहुँचा है उस प्रकार के नाश से यह मंदिर बच गया। फिर भी कुछ समय के लिए इस मंदिर में *पूजा* - पाठ स्थगित रहा है और मंदिर किसी प्रकार के विकास से दूर रहा है। पचास साल पहले (लेखक के रचना काल से) एक महिला ने बहुत ही साधारण तैर पर फूलों से और दीप प्रज्वलन से सामान्य पूजा आरंभ की। यह पूजा कुछ वर्ष तक चलती रही। इसके बाद एक ब्राह्मण भक्त ने, (नाम श्री सुंदरराज स्वामी) नित्य *पूजा* का भार अपने कंधों पर लिया। इसने सामान्य भक्तों को मंदिर की ओर आकर्षित किया। तदनंतर कुछ समय के बाद तिरुपति देवस्थानम् अधिकारियों ने कुछ धन लगाकर मंदिर में कुछ बडे पैमाने पर *पूजा* कार्यक्रमों का निर्वाह आरंभ किया। वहाँ तिरुमल वेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर में जिस प्रकार व्यवस्थित रूप से पूजा कार्यक्रम चलते हैं उसी प्रकार यहाँ भी एक नियमित रूप से पूजाएँ चलने लगीं। इस मंदिर की और उसकी पूर्व दिशा के *गोपुरम्* की मरम्मत की गयी। उसके बाद सब को ठीक - ठाक रखने की व्यवस्था भी हो गयी। ताल्लपाक चिन्नन्ना के वंश की चौथी पीढी के सूर्यनारायणय्या यहाँ आकर यहाँ के स्थिर निवासी बन गये। यह 25 वर्ष पहले हुआ है (मूल अंग्रेजी लेखक के समय से)। सूर्यनारायणय्या इससे पहले कडपा जिले के रायचोटी नामक गाँव में रहते थे। उनके पास श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की ताम्र-मूर्ति थी। इस छोटी सी मूर्ति की आराधना - पूजा श्रीअन्नमाचार्य ने अपने जीवन काल में की थी। उस मूर्ति को सूर्यनारायणय्या ने मंगापुरम् मंदिर को अर्पित किया। वह मूर्ति आज भी वहाँ है। सूर्यनारायणय्या ने एक हस्तलिखित पत्र भी सन् 1940 ई. में दिया है। यह पत्र पुरातन ताडपत्र की प्रतिलिपि ही था। इसमें चिन्नन्ना द्वारा लिखित अन्नमाचार्य का जीवन वृत्त, *पद्मशालियों* से दिये गये अनुदान से संबन्धित ताम्र पत्र इसके आधार थे। ये श्रीवेङ्कटेश्वर प्राच्य लिखित भाण्डाकार को पहले अर्पित थे। ताम्र पत्र चिन्नन्ना द्वारा श्री वेङ्कटेश्वर मंदिर के निर्माण की सूचना देता है। यह ताम्रपत्र तिरुपति देवस्थानम् की पत्रिका जिल्द I, भाग I में प्रकाशित है। इसका प्रकाशन प्रसिद्ध शोधार्थी मानवल्लि रामकृष्ण कवि ने अगस्त 1932 ई. में किया। (इससे संबन्धित अतिरिक्त समाचार इस अध्याय के अंत में पादटिप्पणी में प्रस्तुत है।)

उक्त ताम्र पत्र *पद्मशालियों* और *जाण्ड्र* लोगों के बीच उपजे विवाद की सूचना देता है। ये बुनकर जाति की दो शाखाएँ हैं। दोनों अपने को श्रीअलिमेलुमंगा के वंशज मानते हैं। ये दोनों समस्या के हल

के लिए ताल्लपाक चिन्नन्ना के पास पहुँचे। उन्होंने कुछ समय के लिए देवी का ध्यान किया और कहा कि यह देवी की ही बात है। उसके अनुसार *पद्मशाली* समुदाय ही देवी के वंशज हैं। *पद्मशाली* वर्ग के लोग इस निर्णय से बहुत संतुष्ट हुए। उस आनंद में उन्होंने 2,000 *वरहा* धन चिन्नन्ना के पैरों पर रख दिया। इससे उन्होंने आल्लगड्डु पत्थर खरीदा। यह एक प्रकार का मुलायम पत्थर है। यह चन्द्रगिरि की पूर्व दिशा में मिलता था। इसे *''बलपपुगनि रायि''* भी कहते हैं। इस पत्थर से उक्त पैसों के सहारे एक मंदिर का निर्माण चिन्नन्ना ने कराया। इसमें से कुछ अंश से भगवान की नित्य पूजा और अन्य कैंकर्यों की व्यवस्था भी की।

पद्मशालियों (बुनकर वर्ग) से हर करघे पर एक सुवर्ण रूका (छोटा सिक्का) हर वर्ष लेने और इसी प्रकार स्वामी के कल्याणोत्सव के लिए एक और *रूका* लेने को भी स्वीकार किया। उसे अपने धार्मिक गुरु भगवान तिरुवेंगलनाथ स्वामी के लिए खर्च करने का भी निर्णय लिया। *गुरु* और *शिष्य* दोनों ने मिलकर वंश पारंपर्य पद्धति में आचंद्रतारार्क भगवान की सेवा का भार भी लिया। इससे संबन्धित दस्तावेज शक संवत्सर 1463 (1465 के स्थान पर अंकित संवत्सर) *सुभकृत* नाम संवत्सर में *कार्तिक* पूर्णिमा के दिन लिखा गया (नवंबर 1543 ई.)। इस मंदिर को भी वही अनुभव प्राप्त हुआ जो तिरुपति के उत्तर में स्थित अच्युतपेरुमाल को प्राप्त हुआ। खुली सडक के पास होने के कारण कालांतर में मुसलमान सेनाओं के हाथों विनाश होना पडा है। यह तल्लिकोट युद्ध के समय घटित हुआ। समय था 1565 ई.। आजकल उस स्थान पर मलबा मात्र है।

तिप्पु शेट्टि के पुत्र नामि शेट्टि ने दिनांक 31-01-1537 ई. में गोविंदराज स्वामी के लिए एक उत्सव की व्यवस्था की है। ये चन्द्रगिरि के पास के कृष्णराय पट्टणम् के निवासी हैं। यह उत्सव *विजयदशमी* के दिन का उत्सव है। *अंकुरार्पणम्,* प्रसाद समर्पणम् और अन्य पूजाओं के साथ संपन्न होनेवाला उत्सव है। सारे समर्पण दाता के वाटिका - *मंटपम्* में तिरुपति में संपन्न होते हैं। यह शमी वृक्षोत्सवम् (यानी शामी वृक्ष के पास जाकर भगवान का धनुष-बाण संधान करना) के रूप में होता है। यह उत्सव परिलेख के अनुसार श्रीलक्ष्मीदेवी उत्सव के बाद के दिन को संपन्न होता है। इसमें भगवान को *शात्तुमुरै* तथा छः प्रकार के पण्यारम् अर्पित होते हैं - दाता के *मंटपम्* में। गोविंदराज भगवान उस समय अश्ववाहन पर आरूढ़ होकर चलते हैं तो उनकी दोनों देवेरियों पालकी में निकलती है। *विष्कवसेन* (सेनै-मुदलियार) भी अश्ववाहन पर चलते हैं (संख्या 95)।

एक मंदिर के लेखापाल पेरियशोलै ने *वसंतोत्सव* का आरंभ किया है। यह *उत्तराभाद्रा* नक्षत्र के दिन (तमिल पंगुनी मास के *कृत्तिका* के दिन) मंदिर में *अंकुरार्पण* से आरंभ होता है। तत्पश्चात् दाता *मंटपम्* में तीन दिन पर्यन्त प्रसाद समर्पण और आठ वीथियों में शोभायात्राएँ संपन्न होती हैं। मंदिर से *मंटपम्*

तक वाहनों को ले जाने के लिए अलग से पैसे देने की व्यवस्था भी है। कैक्कलों (मंदिर सेवकों) को गोविंदराज स्वामी की उत्सव मूर्तियों तथा उनकी देवेरियों को ले जाने और वापस पहुँचाने के लिए तथा *मंटपम्* को अलंकृत करने के लिए भी पैसे दिये जाते हैं। *वैकुण्ठ विमान* को शोभायात्रा में ले जाने के लिए 5 *पणम्* दिये जाते थे। इस उत्सव के संदर्भ में पूरे खर्चे के लिए दाता ने 3000 *नर्पणम्* मूल धन के रूप में आदा किया है। इस मूल धन से प्राप्त होनेवाली आमदनी से तालाबों का संवर्धन, नहरों आदि को खुदवाने के लिए भी खर्च निकाला जाता था। ये खेत भी मंदिर को प्रदात्त समर्पण ही हैं। यह अनुदान 17 मार्च 1539 ई. में हुआ है (संख्या 127)।

सालुव तिम्मरस के छोटे भाई सालुव गोविंदराज ने गोविंदराज स्वामी के प्लवोत्सव का आरंभ किया है। इस अवसर पर एक अन्य दाता ने प्रसाद समर्पणों को व्यवस्थित किया है। इनके अतिरिक्त अन्य दिनों के लिए भी कुछ व्यवस्थाएँ की हैं (संख्या 133)।

एक और मंदिर के लेखापाल अनन्ताल्वार कुप्पय्यन (शिट्टयन) ने (9-6-1539 ई.) तिरुपति के गोविंदराज स्वामी के मंदिर में *गजेन्द्र मोक्षम्* उत्सव का आयोजन *आडि-अय्यन* के दिन पर (*कटक संक्रमणम्, दक्षिणायन पुण्यकाल* में) करवाया है। यह जुलाई महीने में आता है। मंदिर में *अंकुरार्पण* और *तिरुमंजनम्* के समर्पणों के साथ गोविंदराज स्वामी, उनके नाच्चियार, सेना मुदलियार और सुदर्शन को समर्पणों से संपन्न होते है। इस संदर्भ में गोविंदराज, गरुडाळ्वार और गजेन्द्राळ्वार को फूलों से अलंकृत किया जाता है। बाद में *गजेन्द्र मोक्षम्* की गाथा दाता *मंटपम्* में गायी जाती है। गजेन्द्रमोक्षम् गाथा *भागवत पुराणांतर्गत* है। उस संदर्भ में आठों वीथियों में शोभा यात्रा भी निकलती है। उस उत्सव के संदर्भ में एक छोटी खाई खोदी जाती है। उसे पानी से भरते हैं। उसमें मगर का एक बडा खिलौना सम आकार में बनाकर पानी में छोडते हैं। पटाके जलाते हैं। वैभव के साथ उत्सव मनाया जाता है। जैसे ही उत्सव मूर्ति मंदिर के पास पहुँचती है, *गरुड* (वाहन) को *नंबिमार* (मंदिर पुजारी) अलंकृत कर तैयार रखते हैं। भगवान गोविंदराज उस पर सवार होते हैं। उसी समय मंदिर का हाथी पानी में पैर रखता है। मगर (खिलौना) उसे ग्रसित करता है। *गरुड* पर सवार गोविंदराज *सुदर्शन* चक्र छोडते हैं। सुदर्शन चक्र मगर का सिर काट देता है। गजेन्द्र का पैर मगर के पंजे से छूटता है। तदुपरांत भगवान हाथी को आशीर्वाद सहित *मोक्ष* प्रदान करते हैं (संख्या 135)। यह सुंदर अवधारण *गजेन्द्र मोक्षम्* (*पुराण* गाथा) की भावना को साक्षात्करित करती है। भक्तों में आनंद और भक्ति की भावना का संचार होता है। दर्शक भक्त भक्तिविभोर होते हैं।

गोपाल शेट्टि (गोपालक) वर्ग का एल्लप्प पिल्लै नामक भक्त ने दिनांक 03-08-1541 ई. में श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के मंदिर में *मुक्कोटि एकादशी* पर्व मनाने के लिए विशेष व्यवस्था की थी। यह पर्व

दशमी से लेकर *द्वादशी* तक *मार्गळी* मास में मनाया जाता है। *दशमी* के दिन *अंकुरार्पण* और अन्य समर्पणों से आरंभ होकर तीर्थवारि तक प्रसाद आदि अर्पित होते हैं। *तीर्थवारि* स्वामि-पुष्करिणी तट पर *मुक्कोटि द्वादशी* के दिन संपन्न होती है। उस वक्त मलयप्प, नाच्चियार तथा सुदर्शन को पूजाएँ अर्पित होती हैं। रात में भी इस प्रकार के पूजा - अर्पण संपन्न होते हैं (संख्या 165)।

संख्या 3 कंदाडै (कुमार) रामानुजय्यंगार से संबन्धित है। ये तिरुमल - तिरुपति में रामानुजकूटमों के मैनेजर थे। साथ-साथ सुवर्ण भण्डारम् की भी देखे-रेख करते थे। यह उनके पूर्वज कंदाडै रामानुजय्यंगार की वंश - परंपरा से इनको प्राप्त था। संख्या 6 ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंगार से संबन्धित है। ये ताल्लपाक अन्नमाचार्य के पुत्र ही हैं। इस परिलेख में उत्सवों की बडी तालिका मिलती है। साथ साथ बहुत पवित्र दिनों और एक ही दिन के दाताओं के समर्पणों की भी सूचना है। ये समर्पण देवता मूर्तियों, आळ्वारों तथा *आचार्यों* के लिए हैं जिन की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गयी हैं।

उत्सवों में *तिरुक्कोडि - तिरुणाल (ब्रह्मोत्सव), कोदै तिरुणाल* (ग्रीष्म उत्सव), *ऊँजल-तिरुणाल* (*झूलोत्सव* या डोलोत्सव), पवित्रोत्सवम्, महालक्ष्मी देवी उत्सव, *अध्ययनोत्सवम्, वसंतोत्सवम्* तथा मार्गळि - नीर- उत्सव हैं। मार्गळि नीर उत्सव तो शूडि - क्कोडुत्त नाच्चियार (आण्डाल या गोदादेवी) का उत्सव है।

एक दिन के पवित्र उत्सव हैं - कुछ देवी देवताओं के जन्म नक्षत्रों पर मनाये जाने वाले उत्सव जैसे *श्रीराम नवमी।* श्रीराम का जन्म नक्षत्र *पुनर्वसु* है। इसी प्रकार *श्रीजयंती* (श्री कृष्ण भगवान का जन्म दिन), *वैशाख* का *वसंत पूर्णिमा* या *चित्र-पूर्णिमा* का उत्सव अळगिय शिंगार (नरसिंह स्वामी) का जन्म दिन, वेङ्कटेश्वर भगवान का जन्म दिन श्रवणा नक्षत्र के दिन पर, (*उत्तिरम्* या *उत्तर फल्गुणी* - यह उत्तराषाढा नक्षत्र होना चाहिए (संख्या 97 के अनुसार), अलमेलु मंगै या पद्मावती देवी (*पूर्वाषाढा* नक्षत्र) का जन्म दिन, सेनै मुदलियार का जन्म नक्षत्र, *अनूराधा* नक्षत्र (*वैकाशी* में) भगवान गोविंदराज का जन्म नक्षत्र और *हनुमान जयंती वैशाख* कृष्ण दशमी को मानाये जाते हैं।

उक्त परंपरा के अनुसरण में *वैष्णव आळ्वारों,* रामानुजाचार्य तथा अन्य *आचार्यों* के जन्म नक्षत्रों के अवसर पर प्रसाद आदि का समर्पण होता है। *आडि अयनम्* (ग्रीष्म संक्रमण), *मकर संक्रमणम्* (शरद् ऋतु), हर *तमिल* मास का प्रथम दिन तथा *अमावस्या* के दिनों पर, *तै अमावस्या* को तो विशेष रूप में, मनाते हैं। इन सब दिनों के लिए पूजादि के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं।

उगादि (*तेलुगु* नव वर्ष का प्रथम दिन चैत्र का पहला दिन), *दीपावली* - ये दो दिन, 25 *दशमी* के दिन और 25 *एकादशी* के दिन, 25 *द्वादशी* के दिन तथा 13 पूर्णिमाएँ, *कार्तिक* मास में *कृत्तिका* नक्षत्र

का दिन, *उत्थान एकादशी* और *उत्थान द्वादशी* (क्षीराब्धि द्वादशी) प्रमुख दिन हैं। *क्षीराब्धि द्वादशी* के दिन को तो माना जाता है कि उस दिनको विष्णु भगवान अपनी *योग-निद्रा* से जगते हैं। इसे *'कैशिक द्वादशी'* भी कहते हैं। इन दिनों, उत्थान एकादशी और द्वादशी के दिनों, पर *कैशिक पुराण* का पठन मंदिरों में होता है। *मुक्कोटि* या *वैकुण्ठ एकादशी* और *मुक्कोटि द्वादशी* तो *पुष्य* मास में आते हैं। मुक्कोटि *द्वादशी* के दिन पर वेङ्कत्तुरैवार, भगवान वेङ्कटेश्वर की *उग्र-मूर्ति* की शोभायात्रा होती है। यह शोभायात्रा उत्सव वर्ष में एक ही दिन संपन्न होता है। सुबह सुबह शोभा यात्रा आरंभ होती है और सूर्योदय से पहले ही मूर्ति मंदिर वापस लौटती है। भगवान को *उत्थान एकादशी* पर विशेष समर्पण होते तो हैं, लेकिन *द्वादशी* के दिन और अधिक समर्पण होते हैं। यह अच्युतराय के अधिकारियों से व्यवस्थित है।

इन विशेष दिनों के अलावा कुछ दाताओं के और उनके परिवारवालों के जन्म दिनों पर भी विशेष पूजाएँ होती हैं। सम्राट अच्युतराय ने *पादियवेट्टै* (आखेट उत्सव), *कनुवु* उत्सव (*मकर संक्रमण* के बाद के दिन पर) और *सहस्र कलषाभिषेकम्* का आयोजन भी कराया है।

अच्युतराय के राज्यकाल से पहले तो 9 *ब्रह्मोत्सव* तमिल महीनों के अनुसार मनाये जाते थे- खास कर *आडि, आवनि, पुरट्टासि, अर्पशि, कार्तिकै, तै, माशि, पंगुणि* और *चित्रि* मासों में (संख्या 87 और 110)। लगभग सभी 12 या 13 उत्सव दिनों में, प्रमुखतः 5 वाँ, 6 वाँ, 7 वाँ और 8 वें दिन पर, उन उत्सवों में विशेष प्रसाद समर्पण उत्सव मूर्तियों को अर्पित होते थे। रथ का उपयोग 8 वें दिन पर उक्त 9 ब्रह्मोत्सवों में नहीं किया जाता था। लेकिन प्रमुख रूप से चार उत्सवों में रथ का उपयोग होता था - यथा *पुरट्टासि, कार्तिकै,* तै और *पंगुणि* मासों के उत्सवों में। (संख्या 82, 83, 84 और 87)। संख्या 3 सूचित करता है कि रथोत्सव तो आडि, आवनि, अर्पसी, माशी, चित्तिरै और पुरट्टाशि मासों के उत्सवों में संपन्न होते थे। इसकी व्यवस्था बाद में की गयी है (संख्या 54 व 55 दिनंक 26-12-1535 ई. लेकिन इस संख्या में इसका उल्लेख मिलता है - दिनांक 31 मार्च 1530 ई.)। इसका नियोजन अच्युतराय ने ही किया है। यह भी एक मान्यता प्राप्त ब्रह्मोत्सव है। कुल मिलाकर रथोत्सव से युक्त 8 ब्रह्मोत्सव थे, कार्तिकै और *पंगुणि* उत्सवों सहित 10 रथोत्सव होते थे। संख्या 3 में तो केवल 9 *ब्रह्मोत्सवों* का उल्लेख है। दिनांक 17-03-1539 ई. में ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंगार ने एक और *ब्रह्मोत्सव* का आरंभ - आणि मास में किया है (सं.129)। इसके साथ कुल 10 ब्रह्मोत्सव हुए हैं। आणि उत्सवों के समय उत्सव मूर्तियों के लिए नागरपंडित ने अपने *मंटपम्* में समर्पण का प्रवधान किया है। यह दिनांक 06-12-1539 ई. में हुआ है (संख्या 140)। संख्या 153 दिनांक 31-12-1540 ई. का यह सूचित करता है कि उस समय तक *ब्रह्मोत्सवों* की संख्या 10 हो गयी है।

ब्रह्मोत्सव विवाह महोत्सव माने जाते रहे हैं, खास कर 5 वें दिन जब श्रीकृष्ण *मोहिनी* अवतार में अतिलोक सौंदर्य से युक्त हो पुर वीथियों में शोभायात्रा में निकलते हैं। उस दिन के समर्पण विवाह उत्सव की शोभा से अर्पित होते हैं (संख्या 87 और 69)। अश्ववाहन सेवा 8 वें दिन को संपन्न होती है (संख्या 69) और शेषवाहन सेवा 9 वें दिन रात को (संख्या 12, 26, 114, 133 और 149)।

साधारणतः *ऊँजल* सेवा उत्सव, *पवित्रोत्सवम्* और *वसंतोत्सवम् (दमनारोहण-वसंतोत्सवम्)* पूरे अलंकरण के साथ चलते हैं। उस संदर्भ में उत्सव - मूर्तियों का अलंकरण भव्य रूप से किया जाता है। सुगंध *दमण* शाखाओं से मालाएँ गूँथकर भगवान की मूर्तियों को शोभित किया जाता है। ये उत्सव पाँच दिन पर्यन्त चलते हैं (संख्या 3, 6, 84, 152 और 153)। प्लवोत्सव (नाँव पर पुष्करिणी में भगवान का विहरणोत्सव) 9 दिन का होता है (संख्या 23, 24, 59 और 140)। महालक्ष्मी देवी उत्सव तो 16 दिन का उत्सव बताया गया है (संख्या 3)।

संख्या 235 के उत्सव को भगवान *वैकुण्ठनादन (वैकुण्ठनाथ)* के उत्सव माने गये हैं। वैकासी के दिन के उत्सव में उनको 9 वें दिन पर विशेष अर्पण होता है। गोविंदराज स्वामी को *वैकाशी ब्रह्मोत्सवम्* मनाया जाता है। इसीलिए गोविंदराज और विष्णु में अभेद माना गया है।

श्रीवराह स्वामी को तो *'ज्ञानप्पिरान' (ज्ञानप्रदाता, ज्ञानदायक,* ज्ञान प्रदान करनेवाले भगवान) माना गया है। उनको 30 दिन पर्यन्त अन्न प्रसाद समर्पण चलते हैं। यह मार्गळी मास में तिरुप्पल्लि *एळुच्चि* उत्सव के दिनों में होता है (संख्या 138)।

देवत्वप्राप्त यादवराजा के एक वंशीय यादव नारायणन् ने, जो 13 वीं और 14 वीं शताब्दियों के बीच प्रांतीय मुखिया थे, गोविंदराज के मंदिर की स्थापना की थी। संख्या 114 इस स्थापना की सूचना देता है जिसके अनुसार मुखद्वार पर मंदिर के शिखर *सुदर्शन* के साथ स्थापित किया गया है।

रथ-सप्तमी के दिन पर पूजाएँ और प्रसाद समर्पणों की, गोविंदराज, नाच्चियार और सेनै - मुदलियार के संदर्भ में, गोविंदराज मंदिर से संबन्धित सूचना संख्या 118 से मिलती है। मूल विराट मूर्ति के सामने निर्मित *मंटपम्* की छत और दीवारों का चिदंबर के मंदिर की अनुकृति में रंगों का अलंकरण है अथवा अरण्यवास के संदर्भ में श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के द्वारा निर्मित आश्रम सा रहता है।

मलैनिन्र भट्टर (अय्यप्पन) के पुत्र वेङ्कटत्तुरैवार वेङ्कटेश भगवान के मंदिर के पुजारियों में एक थे। इन्होंने दिनांक 17-09-1539 ई. को 50 *पणम्* मंदिर के कोषागार में दान के रूप में दिया था। इस संदर्भ में उनके कोषागार से जो मिलनेवाला *पणम्* 60 था, उनके साथ यह अर्पण हुआ। यहाँ ध्यान देने की

बात है कि मंदिर के कोषागार से कुल मिलाकर 130 *पणम् नंबियार* (पुजारी) के रूप में काम करने के लिए मिलते थे। इसमें 60 पणम् बाकी रह गये थे। यह पणम् *धर्म - दर्शन* के संदर्भ में काम करने के लिए मिलता था, वह भी श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में श्रीलक्ष्मीदेवी उत्सव के संदर्भ में। इस राशि में 3 या 3¼ दिनों के लिए यह पणम् पुजारी के हिस्से में मिलता है। यह भी उस समय से पहले चलनेवाले 10 *ब्रह्मोत्सवों* में मुख्य पुजारी के रूप में कार्य निर्वाह के लिए मिलनेवाली रकम है। इस रकम का अंश भाग 60 *पणम्* और 50 *पणम्* उन्होंने भगवान को अर्पित किया (संख्या 136)। इस नंबी वेङ्कटत्तुरैवार ने एक और नंबी मलैनिन्र पेरुमाल के साथ मिलकर दिनांक 09-11-1539 ई. में 150 *पणम्* नकद और उनको प्रतिमा दक्षणिा के रूप में मिलनेवाले 25 पणम् के साथ 25 *पणम्* अपने पारिश्रामिक को मिलाकर *नामार्चना* (1008 अष्टोत्तर सहस्र नामार्चना) के लिए कुल मिलाकर 195 *पणम्* मूल राशि के रूप में अर्पित किया है। यह वराह स्वामी, वेङ्कटेश्वर भगवान और अन्य परिवार देवताओं के लिए है (संख्या 138)। उन दिनों में *नंबिमार (अर्चक)* 12 सदस्यों की मंदिर की व्यवस्था की देख-रेख के लिए चयनित समिति के सदस्य होते थे। उनका जीवन प्रधानतः मंदिर में भगवान को अर्पित *प्रसादम्* के अंश भाग पर ही आधारित रहता था। विशेष उत्सवों के अवसर पर ही कुछ पैसा उनको पारिश्रमिक के रूप में मिलता था। वह भी रद्द किया गया, लेकिन प्रसादम् का अंश भाग उनको मिलता था। मासिक राशन (अनुभुक्तक) और अन्य खर्चे के लिए कुछ पैसा भी मिलने लगा। कुछ चावल भी मिलता था। यह चावल कोलुवु श्रीनिवास (वेङ्कटेश्वर) को *तिरुमहामणि मंटपम्* में *तोमाल-सेवा* के बाद और *अर्चना* से पहले समर्पित होता था। यह *पंचागश्रवणम्* के समय संपन्न होता था। इसी संदर्भ में सामने समर्पित होता था। ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल में, उनके अधीन मंदिर की शासन व्यवस्था के द्वारा पूर्व निर्देशित और परंपरा से चलते आये सभी उत्सव रद्द किये गये। भगवान को देवदान में प्रदत्त लगभग 200 गाँवों को भी वापस ले लिया गया। इस से मंदिर की आमदनी लगभग पूर्ण रूप से घट गयी। फिर एक मात्र आय का स्रोत भक्तों द्वारा दिये गये अंशदान ही था। यहाँ ध्यान देने की एक और बात यह कि उस समय तक जो चार लाख का पैसा कोषागार में था उसे भी सरकार को समर्पित करना पडा था। *जीयरों* को छोडकर अन्य *स्थानत्तार* की समिति को रद्द किया गया। मंदिर की व्यवस्था को चलाने के लिए *पारुपत्यदार* और कुछ वेतन पर काम करनेवाले लोगों को नियुक्त किया गया। ये सब चन्द्रगिरि के तहसीलदार के अधीन काम करते थे। मंदिर के अन्य कर्मचारी *प्रसादम्* के अंश भाग पाकर काम करने लगे। उनको दिया जानेवाला अल्प वेतन को रोक दिया गया।

दिनांक 09-10-1538 ई. में *तोंडमंडलम्, पुरमंडलम्* और *उल्मंडलम्* के बुनकरो ने विजयनगर, मगधपट्टणम्, विदुरपट्टणम् और पूरणप्पूर के बुनकरों के बीच एक सम्मति पत्र बना है। इसके अनुसार

वे एक विशेष प्रकार के वस्त्र बुनेंगे। इसके अनुबन्ध पत्र के अनुसार सब उसकी पाबन्दियों को स्वीकार करेंगे। जो इसका अतिक्रमण करेगा उसको 12 पोन-वरहों का जुरमाना देना होगा। यह तिरुपति से कांचीपुरम तक और उससे परे पूरे दक्षिण प्रान्त तक लागू होनेवाला निर्णय था। जो जुरमाना का पैसा है वह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के श्रीभंडारम् को समर्पित होगा (संख्या 112)।

* * *

श्रीनिवास मंगापुरम् : जिल्द I के संख्या 199 से 203 तक में यह देखा जा सकता है कि श्रीनिवास मंगापुरम् (सिद्धक्कुट्टै) कोट्टाल स्थलम् में है। यह वैकुंडवलनाडु में है जो तिरुवेङ्कट कोट्टम् से संबध्द है। देवराय-II के समय में यह श्रोत्रियम् के रूप में ऐलान किया गया था। यह घोषणा वेदपारायणम् के लिए देवस्थान के अधीन हुई। आजकल कोटाला एक छोटा गाँव है। यह चन्द्रगिरि से लगभग दो मील की दूरी पर है। परन्तु उस समय तो यह मूलतः तालूका केन्द्र था। यह एगुवरेड्डिपल्लि की पश्चिम दिशा में था। वहाँ पर एक शिथिल गोपुरम् को हम आज भी देख सकते हैं। जिल्द IV संख्या 144 और 145 में वेदपारायण करनेवाले पंडितों के श्रीनिवासपुरम् गाँव का नाम परिवर्तित कर अल्मेलुमंगापुरम् रखा गया और उसे ताल्लपाक संकीर्तनाचार्यों का गाँव कहा गया (सन् 1540 ई.)। यह स्पष्टतः सूचित करता है कि पहले का गाँव अब गायब हो गया और आज उसके स्थान पर एक नया गाँव बस गया है। यह 107 वर्ष के समय में हुआ। लेकिन एक बाढ़ के कारण पूरा गाँव गायब ही हो गया।

मुसलमानी सेनाओं ने भी इसका नाश किया (सन् 1790 ई.) इस समय तक के मंदिर को। इसके परिणामृतः श्रीकल्याण वेङ्कटेश्वर स्वामी का मकरतोरणम् और अन्य सभी छोटे मंदिर, उनमें स्थापित भगवानों की मूर्तियाँ और आल्वारों की मूर्तियाँ नाश की गयीं। पद्मावती देवी की मूर्ति का भी नाश हुआ। इस विनाश के बाद ही तिरुचानूर की प्रसिद्धि बढ़ी। उसका नाम भी अलमेलु मंगापुरम् रखा गया। वहाँ अलमेलु मंगतायार की प्रतिष्ठा भी की गयी। श्रीकल्याण वेङ्कटेश्वर स्वामी मंदिर की स्थापना चिन्नन्ना ने की है। चिन्नन्ना द्वारा स्थापति ''तिम्मप्पालयम्'' की भी लगभग यही स्थिति हो गयी। यह चंद्रगिरि के पास तोंडवाडा गाँव में है। इसके आसपास के एक और मंदिर की भी यही स्थिति हो गयी।

श्रीसुंदरराज स्वामी को स्वप्न में कल्याण वेङ्कटेश्वर स्वामी ने दर्शन दिया। इससे प्रभावित होकर ही उन्होंने कल्याण वेङ्कटेश्वर की पूजाएँ आरंभ की थीं। उनका स्वर्गवास 01-02-1979 में हुआ। उन्होंने लगभग 30 वर्ष पूजा - कार्यक्रमों का निर्वाह किया था। तिरुपति - तिरुमल - देवस्थानम् ने 29-04-1967 में इस मंदिर को अपने अधीन कर लिया। उसका पुनर्निर्माण कराया। इस मंदिर में 22-02-1981 को (प्रथम) ब्रह्मोत्सव का आरंभ हुआ। साक्षकार वैभवोत्सवम् भी चलता रहा। देवल तीर्थ (कल्याणी नदी) के किनारे पर वेदपाठशाला भी आरंभ की गयी (दिनांक 14-02-1981)। पुनः मंदिर का वैभव आरंभ हुआ।

- गोपी कृष्ण

अध्याय - 21

सम्राट सदाशिवराय का राज्यकाल (जिल्द V - ति.ति.दे. परिलेख)
विजयनगर काल - III

सम्राट सदाशिवराय महाराज के राज्यकाल में अधिकतर श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीगोविंदराज के उत्सव थोडे - बहुत परिवर्तनों के साथ चलते ही रहे हैं और कुछ नये उत्सवों का भी श्रीगणेश हुआ है।

अच्युतराय के समय चलनेवाले 10 *ब्रह्मोत्सव* सदाशिवराय के राज्य काल में भी श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के चलते ही रहे हैं (इनका उल्लेख संख्या 13, 38, 46, 129 में है। ये जिल्द V में है)। लेकिन अंतिम परिलेख जिल्द V संख्या 176 में 11 *तिरुक्कोडि तिरुणाल (ब्रह्मोत्सवम्)* सूचित हैं।

इसी प्रकार गोविंदराज स्वामी के दो *ब्रह्मोत्सव वैकाशी* और आणि महीनों में चलते थे। वे पहले दो या तीन वर्ष इनके राज्यकाल में भी चलते रहे हैं। लेकिन सन् 1545 ई. में *मासी* महीने में एक तीसरा *ब्रह्मोत्सव* आरंभ किया गया। इसका प्रप्रथम उल्लेख दिनांक 03-07-1545 ई. के एक परिलेख संख्या 47 में मिलता है। इसके बाद संख्या 53 (दिनांक 15-07-1545 ई.) में तथा दिनांक 16-07-1545 ई. के परिलेख संख्या 54 में और आगे चलकर 06-03-1545 ई. के परिलेख संख्या 92, 99 और 141 में मिलते हैं। लेकिन 06-03-1945 ई. का परिलेख संख्या 38 में तो दो ही *ब्रह्मोत्सवों* का उल्लेख है - *वैकाशी* और *आणि ब्रह्मोत्सव।* इस से यह माना जा सकता है कि *माशी* मास के ब्रह्मोत्सव का आरंभ मार्च तथा जुलाई 1545 ई. के बीच ही हुआ होगा। शायद 03-07-1545 ई. में ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंगार ने इसका आरंभ किया होगा (संख्या 47)। एक चौथे *ब्रह्मोत्सव* का आरंभ जुलाई 1562 ई. में हुआ है (संख्या 171)।

संख्या 129 तो विविध *ब्रह्मोत्सवों* के प्रारंभकर्ताओं के नाम सूचित करता है। ये श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के ब्रह्मोत्सव हैं जो विविध महीनों में संपन्न किये जाते रहे हैं यथा -

1) तिरुमल मंदिर के लेखपाल का आवणि मास में
2) काडवन पेरुंदेवी, सुंदर पांड्य राजा की राणी - *पुरट्टासि* मास में - आदि ब्रह्मा के नाम पर
3) देवराय महाराजा (विजयनगर राजा) - *अर्पशी* मास में
4) बुक्कराय महाराय - *कार्तिकै* मास में
5) कृष्णराय महाराय - *तै* मास में
6) अरियन (हरिहरराय महाराय) - *माशी* मास में
7) वीर नरसिंह यादवराय - *पंगुनी* मास में

8) मंदिर के एक लेखापाल *चित्तिरै* मास में
9) ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंगार - *आणि* मास में
10) रामराज चिन्न तिम्मराज - (संख्या 99 में तिरुमलराज और एर्र तिम्मराज नाम से उल्लिखित) *आणि* मास में द्वितीय *ब्रह्मोत्सव।*

उक्त सूची में *आणि* मास में दो *ब्रह्मोत्सव* हम पाते हैं। इससे ब्रह्मोत्सवों की संख्या 10 होती है। अच्युतराय के समय के दो परिलेखों में (संख्या 86 और 110, जिल्द IV) सूचित 9 *ब्रह्मोत्सवम्* और संख्या 174 सूचित 10 *ब्रह्मोत्सवों* को *आडि* मास से गिना जाता रहा है। यथा आडि, *आवणि, पुरट्टासि, अर्पशी, कार्तिकै, तै, माशी,* और *पंगुनि* तथा अंतिम *चित्तिरै। आणि* में ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंगार द्वारा आरंभ किये गये ब्रह्मोत्सव से संख्या 10 होती है (संख्या 174, जिल्द IV)। इससे यह विदित होता है कि *आडि ब्रह्मोत्सव* सदाशिवराय के समय में रुक गया था। लेकिन संख्या 153, 161 और 176 (जिल्द V) में 11 *ब्रह्मोत्सवों* का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन परिलेखों में (जिल्द I, संख्या 215 और अन्य) *आडि* से *चित्तिरै* तक 7 *ब्रह्मोत्सवों* को संपन्न करने की सूचनाएँ मिलती हैं। इन सातों में से दो *ब्रह्मोत्सवों* का आरंभ सामवाय ने किया था। वे *पुरट्टासि* और *मार्गळी* मासों में चलते हैं। इनके आरंभ का काल सन् 614 ई. है (जिल्द I, संख्या 8 और 9)। तिरुवेङ्कटनाथ यादवराय ने *आडि* मास में (जुलाई 1330 ई. में) (I-99); मुल्लै तिरुवेङ्कट जीयर ने *माशी* मास में हरिहर II के नाम पर जनवरी सन् 1388 ई. में (I-185, 186); देवराय-II ने *आश्वयुज* मास दिसंबर 1429 ई. में (I-192) *ब्रह्मोत्सवों* को आरंभ किय। *आश्वयुज* मास तो *पुरट्टासी* और *अर्पशी* को समेटता है। इनको सामवाय ने पहले ही आरंभ किया था, अश्वयुज उत्सव जिसका आरंभ देवराय II ने किया, शायद *अर्पशी* मास में मनाया गया होगा (V-129)। इन पाँचों *ब्रह्मोत्सवों* के साथ दो और *ब्रह्मोत्सवों* के आरंभ के समय (मास) नहीं बताये गये। लेकिन उनको *चित्तिरै* (I - 74, 75, 61) और *पंगुनि* (I - 220, 221) मासों के *ब्रह्मोत्सव* माना गया है। कुल मिलाकर ये सात *ब्रह्मोत्सव* बनते हैं - *पुरट्टासि, मार्गळि, आडि, माशी, आश्वयुज (अर्पशी), चित्तिरै* और *पंगुनि।* कृष्णराय ने एक और *ब्रह्मोत्सव* का आरंभ किया है - *तै* मास का *ब्रह्मोत्सव।* इसका आरंभ जून 1513 ई. में हुआ है (III-64, 65)। इस *तै* उत्सव का उल्लेख III-142 में हुआ था। इसका आरंभ श्रीकृष्णराय महाराय ने किया है। अच्युतराय ने दिसंबर 1535 ई. में *लक्ष्मीदेवी - महोत्सव* की शुरूआत की थी (IV-54)। मार्च 1539 ई. में ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंगार ने *आणि ब्रह्मोत्सवम्* का आरंभ किया था (IV-100, 129)। इस प्रकार *ब्रह्मोत्सवों* की संख्या 10 बनती है। IV-110 जनवरी 1537 ई. का परिलेख सूचित करता है कि 9 *ब्रह्मोत्सव* तो *आडि, आवनि, पुरट्टासि, अर्पशी, कार्तिकै , तै, माशी, पंगुनि* और *चित्तिरै* मासों में संपन्न होते हैं। IV-174 मार्च 1542 ई. का परिलेख तो 10 *ब्रह्मोत्सवों* की संख्या देता है जिनमें उक्त 9 और

आणि ब्रह्मोत्सव 10 वाँ है। उक्त दोनों सूचियों में हम पाते हैं कि *आवणि* और *कार्तिकै* उत्सव जो नये हैं और मार्गळि उत्सव जो सामवाय द्वारा आरंभ हुए थे। उनको छोड दिया गया तथा साथ-साथ तिरुवैकुण्ठनाथ यादवराय और अच्युतराय का *लक्ष्मीदेवी महोत्सवम्* भी। हो सकता है कि लक्ष्मीदेवी *महोत्सव* को *ब्रह्मोत्सव* नहीं समझा गया हो और इस कारण उसे ब्रह्मोत्सवों की सूची में नहीं जोडा गया हो। सामवाय के *मार्गळि ब्रह्मोत्सव* को *अध्ययनोत्सवम्* और *तिरुपल्लि एळुच्चि* उत्सवों के *मार्गळि* मास में जोडने के कारण छोड दिया गया हो। यह एक प्रकार से स्थानांतरण ही है। इसे 13 वीं शताब्दी में *वैष्णव* कार्यक्रम के रूप में आरंभ किया गया और पूरा वैष्णव आराधना विधान बना।

पुरट्टासि ब्रह्मोत्सव को आरंभ करनेवाली सामवाय का नाम काडवन पेरुंदेवी के रूप में उल्लिखित करना और पेरुंदेवी को सुंदर पांड्य (V, 129) की राणी बताना एक स्पष्ट गलती है। इस गलती को मंदिर के लेखपाल ने किया है और *स्थानत्तार* ने उसे रजस्ट्री भी किया है। इस से यही विदित होता है कि उनको इतिहास के तथ्य ज्ञात नहीं हैं। जिल्द I के संख्या 8 और 9 परिलेखों में स्पष्ट उल्लेख है कि शत्तिविटंकन (श्री कडपट्टिगल की रानी और पल्लव पेरकडैयर की पुत्री) सामवाय ही काडवन् पेरुंदेवी के 'टाइटल' के हकदार हैं। इस प्रकार वे पल्लवों के मंत्रियों की पुत्री और पल्लव राजकुमारी ही वह है, न कि सुंदर पांड्य की रानी। पांड्यराजा जटावर्मन सुंदर पांड्य - I ये हो सकते हैं। इन्होंने (1251-1275 ई.) मंदिर की यात्रा की थी। भगवान का दर्शन कर उन्हें दो समर्पण अर्पित किये तथा *हेमकलश स्थापि* (सोने का कलश) भी प्रस्तुत किया। यह *विमान* के ऊपर उसे शोभित करने के लिए प्रदान किया गया कलश है (I - 49, 43-56)। कांडवन पेरुंदेवी तो 8 वीं शताब्दी की हैं जबकि सुंदर-पांड्य 13 वीं सदी के। राणित्व सूचक शब्द कांडवन पेरुंदेवी को परंपरा से रानी के लिए प्रयुक्त शब्द है। मंदिर के मैनेजरों ने राजा का नाम सुंदर पांड्य को कांडवन पेरुंदेवी से जोडकर याद किया होगा।

बुक्कराय ने (I - 178) एक गाँव को मंदिर के लिए अर्पित किया था। उनके द्वारा *कार्तिकै ब्रह्मोत्सव* के आरंभ की सूचना नयी ही है। इसके साथ *आवणि* और *चित्तिरै* उत्सवों को मंदिर के लेखापालों द्वारा मिलाकर अंकित करना भी नया है।

परिलेख संख्या 84 से 94 (जिल्द I) वीर नरसिंगदेव यादवराय का उल्लेख करते हैं। लेकिन उनके द्वारा *वेङ्कटेश्वर* भगवान के *ब्रह्मोत्सव* को आरंभ करने की बात की सूचना नहीं मिलती। एक *ब्रह्मोत्सव* (*पंगुणी* मास का) का आरंभ होना भी नयी सूचना ही है (V-129)। नरसिंग देवराय की रानी ने *आणि ब्रह्मोत्सव* का आरंभ श्रीगोविंदराज के लिए किया था (IV-129, मार्च 1239 ई.)।

ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंगार द्वारा आरंभ किये गये ब्रह्मोत्सव की सूचना हमें पहले IV-100 से प्राप्त होती है। यह अक्तूबर, 1537 ई. में हुआ है। उस सूचना में महीने का नाम खंडित भाग में रह कर लुप्त

हो गया है। इसके बारे में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह *आणि* मास में आरंभ किया गया है (IV-129, मार्च 1539 ई.)।

ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंकार द्वारा आरंभ किये गये ब्रह्मोत्सव की सूचना हमें पहले IV-100 से प्राप्त होती है। यह अक्तूबर, 1537 ई. में हुआ है। उस सूचना में महीने का नाम खंडित भाग में रह कर लुप्त हो गया है। इसके बारे में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह आणि मास में आरंभ किया गया है (IV-129, मार्च 1539 ई.)।

संख्या 99 (जिल्द V) में संख्या 153, 161 और 176 में लिखित कुछ उत्सव वाहनों की सूचना अवश्य है। ये *ब्रह्मोत्सवों* के दिनों में उत्सव मूर्तियों की शोभायात्रा के संदर्भ में प्रचलित वाहन ही हैं। *हंस* वाहन, *ब्रह्मोत्सव* के द्वितीय दिवस पर, सिंह वाहन तृतीय दिन रात को, अश्व वाहन आठवें दिन रात को तथा *शेषवाहन* 9 वें दिन रात को शोभायात्रा में उपयोग में आते हैं। गोविंदराज 7 वें दिन रात को *मदनगोपाल* के रूप में शोभायात्रा में निकलते हैं।

साधारणतया *ब्रह्मोत्सव* को विवाहोत्सव माना जाता था, इस प्रकार कुछ परिलेखों में बताया भी गया है। ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंगार के पुत्र चिरु (चिन्न) तिरुमलय्यंगार ने नेदियम् नामक गाँव के आधे भाग को भगवान को अर्पित किया था। इससे 150 *रेखै-पोन* की आमदनी होती थी। यह दान 17-08-1547 ई. को किया गया। उस आमदनी से उन्होंने एक *वैवाहिकोत्सवम्* व्यवस्थित किया था और चित्तिरै मास में पाँच दिन पर्यन्त यह उत्सव मनाया जाता था। इस उत्सव का अंत *शात्तुमुरै* से होता था और वह दिन *रोहिणी* नक्षत्र का दिन होता था। इससे यह माना जा सकता है कि इस उत्सव का आरंभ *रेवति* नक्षत्र से होता होगा (संख्या 99, जिल्द V)। *तिरुमंजनम्* (पवित्र स्नान) गोविंदराज और उनकी दोनों नाच्चियारों (श्रीदेवी और भूदेवी) को संपन्न किया जाता था। *अंकुरार्पण* के दिन पर विशेष समर्पण होते थे। भगवान को *तिल्लैक्कु वैट्टन-मंटपम्* तक शोभायात्रा में ले जाया जाता था। यह एक विशाल *महामंटप* है (इसे *तिल्लै* भी कहते हैं जो चिदंबरम् के मंदिर के समान है। या हो सकता है कि *तिल्लै* नामक नृत्यांगना के नाम पर यह हो। माना जाता है कि इस नृत्यांगना ने गोविंदराज मंदिर का निर्माण किया था।) यहाँ पर सुबह सुबह ही भगवान को पहले शोभायात्रा में ले जाते हैं। इसके बाद गोविंदराज *गरुड* पर तथा नाच्चियार पालकी में चलते हैं। वहाँ फिर ऊँजल पर उनको बिठाकर पूजाएँ तथा नैवेद्य आदि का अर्पण होता है। मध्याह्न के समय पर गोविंदराज स्वामी के पदयुगमों को दूध से धोया जाता है। यह ऊँजल पर विराजमान भगवान की सेवा है। इस समय एक नाच्चियार *हंसवाहन* पर और दूसरी नाच्चियार *चातक पक्षी वाहन* पर आरूढ़ रहती हैं। सुगंध पुष्पमालाओं के विनिमय के बाद गोविंदराज और उनकी दोनों देवियाँ शोभित मिलती हैं। द्वितीय दिवस पर शाम को विवाह सूत्र में बन्धे देवतात्रय को *ध्रुव नक्षत्र*

का दर्शन कराया जाता है। इसके बाद *वसंत* उत्सव के लिए शोभायात्रा में निकलते हैं। उस वक्त उनको *चंदन* (श्रीगंध) (पेस्ट) को पानी में मिलाकर उन पर छिडका जाता है। बचे गंधजल को मंदिर के सेवकों और अन्य नौकरों में बाँटा जाता है। फिर पूजाएँ और समर्पण शाम को अर्पित होते हैं। तत्पश्चात् एक और शोभायात्रा पुर-विथियों में संपन्न की जाती है। उस समय *शेषवाहन* पर भगवान विराजित होते हैं। यह द्वितीय दिन की रात को संपन्न होता है। तीसरे दिन पर सामान्य पूजादि और समर्पण चलते हैं। इसके बाद *वैकुण्ठ विमानम्* पर भगवान की शोभायात्रा निकलती है (*वैकुण्ठ* वाहन भगवान के वास स्थान वैकुण्ठम् को सूचित करता है।) इस वाहन पर तीनों की मूत्रियाँ (गोविंदराज और उनकी दोनों देवेरियाँ) शोभित होती हैं। साधारण तौर पर चलनेवाले धार्मिक कार्यक्रम तथा प्रसादों के निवेदन (समर्पण) के बाद चौथे दिन का कार्यक्रम चलता है। उस दिन रात को गोविंदराज स्वामी *हनुमान* वाहन पर तथा दोनों देवेरियाँ पालकी में विराजित होकर शोभायात्रा में निकलते हैं। इस प्रकार जैसे सामान्य मानवों के विवाह संपन्न होते हैं, उसी पद्धति में भगवान का विवाहोत्सव अधिक वैभव के साथ मनाया जाता है।

श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के *ब्रह्मोत्सवों* में एक नये धार्मिक अनुष्ठान का आरंभ भी इस समय में हुआ था। इसी को *कोइल-आल्वार-तिरुमंजनम्* कहते है। इसमें मंदिर की दीवारों और मंदिर का प्रांगण साफ किया जाता है। इसके लिए चंदन और कर्पूर मिश्रित पानी का उपयोग किया जाता है। इससे भगवान के दर्शनार्थ आनेवाले भक्तों के प्रवाह से दूषित वायु साफ और सुगंधित होती है। जिल्द V संख्या 25 के अनुसार तिरुपति के एक व्यापारी वंगापुरम् नारायण शेट्टि ने दिनांक 19-10-1544 ई. में कोयिल तिरुमंजन की व्यवस्था करके आरंभ की। लेकिन इसमें कार्य विधि का अथवा विशेष *ब्रह्मोत्सव* का उल्लेख नहीं है। इस संदर्भ में मनाये जानेवाले अन्य उत्सवों की भी सूचना नहीं है। आजकल यह प्रक्रिया केवल एक *ब्रह्मोत्सव* के संदर्भ में चलती है। इस संदर्भ में मूल मूर्तियाँ और परिवारिक देवताओं की मूर्तियाँ ढकी जाती हैं और गर्भालय की दीवारों तथा प्रांगण दीवारों और प्रांगण प्रांत को शुद्ध किया जाता है। *तिरुमहामणि मंटपम्* भी शुद्ध होता है। शुद्धि के बाद सुगंध लेपन (चंदन और कर्पूर मिश्रित जल) से पोता जाता है। फिर शुद्ध जल से धोया जाता है। पूर्ण रूप से इस प्रक्रिया को संपन्न किया जाने के पश्चात् ही भक्तों को मंदिर में प्रवेश की अनुमति दी जाती है। वे भगवान का *दर्शन* कर सकते हैं।

उपर्युक्त नारायण शेट्टि ने ही *दमनारोहण - वसंतोत्सवम्* की व्यवस्था श्रीगोविंदराज स्वामी के लिए की है। इसमें *'दमनम्'* नामक एक सुगंधित पौधे से गोविंदराज स्वामी को पूर्ण रूप से अलंकृत किया जाता है। यह दमन - *वसंतोत्सव* वसंत ऋतु में पांच दिन पर्यन्त चलता है। यह भी *अंकुरार्पण* से आरंभ कर संपन्न किया जाता है। यह स्वाति नक्षत्र से आरंभ होकर *उत्तराषाढ़ा* नक्षत्र तक चलनेवाला उत्सव है। सात्तुमुरै से इस उत्सव की समाप्ति होती है। यह पंगुनि मास का उत्सव है (मार्च - अप्रैल - संख्या

25)। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र को समाप्त इसलिए किया जाता है कि वह नक्षत्र अलमेलुमंगा (पद्मावती) का जन्म नक्षत्र है। अलमेलुमंगा श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान की देवेरी ही हैं न! यद्यपि यह उत्सव पाँच दिनों के लिए मनाने का विधान है, फिर भी स्वाति नक्षत्र से *उत्तराषाढा* नक्षत्र तक 7 दिन होते हैं।

उक्त दाता ने भगवान वेङ्कटेश्वर, गोविंदराज और सुदर्शन को भी विविध समर्पणों की व्यवस्था की थी। यह व्यवस्था एक संदर्भ के लिए नहीं था बल्कि विविध विशेष संदर्भों के लिए थी। भगवान के *वन-भोजनम्* उत्सव के लिए भी दाता ने देवदान दिया। वन भोजनम् पर्व (जंगल प्रांत में जाकर भोजन खाना) पहले से था लेकिन दाता ने उसके लिए और देवदान की व्यवस्था की थी। यह *श्रवणा* नक्षत्र पर *कार्तिक मास* में मनाया जाता है (संख्या 66)। नारायण शेट्टि ने और उनके परिवार के सदस्यों ने सब मिलकर कुल मिलाकर 48,900 *पणम्* मंदिर कोशागार को मूल धन के रूप में अदा किया (संख्या 25)। इसी प्रकार *वन-भोजनम्* की व्यवस्था तिरुमल पर भी दिनांक 25-10-1537 ई. में ही ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंगार ने की थी। यह भी *कार्तिक मास* में *श्रीवैष्णवों* तथा अपने परिवार के लोगों के लिए हुआ था (संख्या 100, जिल्द IV)।

कालत्ति शेट्टि नामक एक और तिरुपति के व्यापारी ने दिनांक 31-12-1543 ई. को *'तै'* महीने में 30 दिन पर्यन्त *तिरुमंजनम्* की व्यवस्था की थी। यह *तै* मास में शुक्ल पाड्यमी से कृष्ण पक्ष अमावस्या (*माशी* महीने में) तक मंदिर की *तिरुमंजनम्* सेवा के लिए देवदान था। यह *तिरुमंजन* आराधना वेङ्कटेश्वर भगवान और ज्ञानप्पिरान (वराहस्वामी) दोनों के लिए संपन्न होती है। इस संदर्भ में एक *रेखै-पोन* की दक्षिणा *श्रीनिवास* का *पुराणम्* पढने के लिए (पाठ के लिए) *ब्राह्मण* को दी जाती है। मलैकिनिन्र पेरुमाल के मंदिर की *तिरुमंजन* सेवा के संदर्भ में भी वराह स्वामी के मंदिर में इसी प्रकार किया जाता है। उस समय परिपूर्ण रूप से प्रसाद समर्पण भी होते हैं (संख्या 10, जिल्द V)।

> [[यह श्रीनिवास पुराणम् कथा है, इसकी जानकारी नहीं मिलती है । यह श्रीनिवास भगवान की मिथकीय कथा हो सकती है। श्रीनिवास का अर्थ है लक्ष्मी का निवास। लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर के वक्षःस्थल पर वास करती है। विष्णु और भगवान वेङ्कटेश्वर अभिन्न ही हैं। यह क्या वेङ्कटाचल माहात्म्यम् ही है या अन्य गाथा - इसका उल्लेख नहीं है।]]

संख्या 16 बताता है कि शेव्वराय वडमलै अप्पन के० पुत्र नागप्पय्यन् ने एक शिला रथ का निर्माण कर भगवान को अर्पित किया था। यह उनका *धर्म दान* था (उनकी सेवा है।)।

बहुसंख्यक *ब्रह्मोत्सवों* में 9 वें दिन पर उत्सव - मूर्तियों को तेल और हल्दी लेप से पोता जाता है। इस लेपन को *तिरुचूर्ण काप्पु* या *चूर्णाभिषेकम्* कहते हैं। जब उत्सव मूर्तियाँ वीथियों में शोभायात्रा में

निकलती हैं तब उस लेपन चूर्ण को भक्तों में वितरित किया जाता है। इस चूर्णाभिषेकोत्सवम् की सूचना संख्या 41 में उल्लिखित है। इस संदर्भ में भगवान वेङ्कटेश्वर को विविध समर्पण अर्पित होते हैं।

अच्युतराय के समय में ताल्लपाक पेद्द तिरुमलय्यंगार ने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए अपनी ओर से एक *ब्रह्मोत्सवम्* की व्यवस्था की थी। यह सदाशिवराय के राज्यकाल में भी चलता रहा। इसका आरंभ दिनांक 03-07-1545 ई. को हुआ था। उन्होंने उत्सव मूर्तियों और श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए अलग अलग दिनों में अलग अलग प्रसाद अर्पण की व्यवस्था भी की थी। इस व्यवस्था में विभिन्न प्रकार की सेवाएँ अर्पित करनेवालों के लिए पैसे देने की व्यवस्था भी शामिल है (संख्या 47, जिल्द V)। इतना ही नहीं, उन्होंने *इड्डलि पड़ि* की व्यवस्था भी की जो 20 दिन ग्रीष्मोत्सव के समय पर अर्पित होता है। यह संकीर्तन भण्डारम् को अर्पित होता है। *संकीर्तन भण्डारम्* श्रीस्वामी वेङ्कटेश्वर की *हुंडी* के सामने और श्रीरामानुज स्वामी की मूर्ति की पूर्व दिशा में है। यह *विमान प्राकारम्* की उत्तरी मंच पर है। यहीं पर ताल्लपाक अन्नमाचार्य के संकीर्तनों का *भण्डार* मिला है (ताल पत्र और ताम्र पत्र)। ये वेङ्कटेश्वर मंदिर के प्रथम *संकीर्तनाचार्य* हैं। उन्होंने भगवान की सन्निधि में कीर्तनों का गान किया है। ये संकीर्तनाचार्य भी कहलाये गये हैं। फिर परंपरा में अन्नमाचार्य के द्वितीय पुत्र पेद्दतिरुमलाचार्य तथा इनके बडे पुत्र चिन्न तिरुमलाचार्य दोनों ने भगवान की सन्नधि में संकीर्तन गान किया था। संकीर्तनों की रचना भी इन्होंने की थी। संकीर्तन गान की यह परंपरा चार शताब्दियों तक चलती रही। 1920 ई. के आस पास मैंने उस संकीर्तन *भण्डार* को तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् को स्वच्छ प्रतियाँ बनाकर छापने के लिए प्रस्तुत किया है। इन तालपत्रों और ताम्रपत्रों को और उनमें अंकित *संकीर्तनों* को संगीत की कलादेवी कहते थे। उनको प्रसाद समर्पण भी किया गया था।

ताल्लपाक पेद्द तिरुमलाचार्य ने श्रीअलिमेलमंगा नाच्चियार के सामने भी संकीर्तन गान की व्यवस्था की थी। इसके अनुसार उनकी सन्नधि में वर्ष के 53 शुक्रवार के दिनों में, 13 *मृगशिरा* नक्षत्र के दिनों में देवी की सन्निधि में संकीर्तन गान होना था। तदर्थ, दो संकीर्तन गाने वाले विद्वानों की व्यवस्था भी की गयी। इसके लिए 16 *रेखै-पोन* देवदान और 8 *पणम्* दो विद्वान गायकों को अर्पित करने की भी व्यवस्था की गयी। उक्त 66 दिनों में पवित्र-स्नान का भी प्रावधान किया गया जिसमें हल्दी का उपयोग किया जाना था। साथ-साथ *श्रीभाष्यम्* की व्याख्या का भी नियमन हुआ था उसी संदर्भ में। *'श्रीभाष्यम्'* श्रीरामानुजाचार्य द्वारा रचित *वेदों* की व्याख्या है। इस व्याख्या द्वारा *विशिष्टाद्वैत* सिद्धांत का प्रतिपादन होता है। इस सिद्धान्त को सामान्यों तक पहुँचाने केलिए ही इसका पठन और व्याख्या करना होता था। इसका पाठ एक *श्रीवैष्णव* विद्वान किया करते थे। यह *तिरुमंजन* सेवा के समय, उक्त 66 दिन पर्यन्त चलता था। इस कार्य को संपन्न करने के लिए विद्वान को 6 रेखै-*पोन* प्रति वर्ष मिलते थे। *रेखै-पोन* सुवर्ण मुद्राएँ थीं। इससे विद्वान को 5 *पणम्* प्रति मास की दक्षणा मिलती थी।

समानांतर में पेद्द तिरुमलय्यंगार ने तिरुपति में गोविंदराज स्वामी को पान, सुपाडी और हल्दी के समर्पण की व्यवस्था *तिरुमगलुडान - वरुवार - तिरुमंजनम्* के लिए की थी। यह रोज चलनेवाली है। इस संदर्भ में *यज्ञोपवीतम्* और, *संकीर्तन* गान के लिए भी उन्होंने प्रबन्ध किया था। संकीर्तन गान के लिए दो संकीर्तनकारों को नियुक्त भी किया गया। उनको मानदेय के रूप में 1 *रेखै-पोन* और चार पणम् हर महीने हर एक संकीर्तन गान गानेवाले संगीतज्ञों को मिलता था। इसका खर्च 16 *रेखै-पोन* और 8 *पणम्* कुल मिलकर वर्ष के लिए होता था। इसकी व्यवस्था भी उन्होंने की है। इस सूचना से विदित है कि हर एक को 7 *पणम्* हर महीने का खर्च आता है। इसके अतिरिक्त रामानुजाचार्य के *श्री भाष्यम्* पाठ के लिए गोविंदराज मंदिर में हर महीने का खर्च 5 *पणम्* होता था। कुल मिलाकर यह खर्च 6 *रेखै-पोन* प्रतिवर्ष का होता है।

सभी मुद्दों पर, पूजा - अर्पण और सेवकों के लिए भृति सब मिलाकर, 280 *रेखै-पोन* का खर्चा होता था। इसके लिए मुत्यालपट्टु गाँव को दान दिया गया जिससे 280 *रेखै-पोण* की आमदनी प्रति वर्ष होती थी। इससे कुछ वर्षों तक सभी सेवाएँ और कार्यक्रम निर्विघ्न चलते रहे हैं। फिर समय के बीतते, कुछ अव्यक्त और अकथित कारणों से उक्त गाँव से आमदनी रुक गयी। उस वक्त पेद्दतिरुमलय्यंगार ने 157 *रेखै-पोन* तथा 3½ *पणम्* स्वयं उक्त कार्यक्रमों के लिए अर्पित किया था। जब सदाशिवराय गद्दी पर बैठे, तब तिरुमलाचार्य ने गाँव दान को पुनः देकर कार्यक्रम निर्वहण के संकट को दूर करने की प्रार्थना एक अर्जी पत्र द्वारा की। सदाशिवराय ने पुनरुद्धार किया। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि सदाशिवराय और उनके साले तथा मुख्य मंत्री आरवीडु वंश के अलिय रामराज से सहमति तदर्भ मिली थी। तत्पश्चात् उन्होंने 100 *रेखै-पोन* खर्चकर उस गाँव के तालाब की मरम्मतें करवायीं। तब जाकर पुनः मुत्यालपट्टु गाँव श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर के अधीन हुआ। इतना ही नहीं उन्होंने 36 *रेखै-पोन* मंदिर कोष को दिये। इस समय उनके शिष्य द्वारा जमा किये गये 70 *रेखै-पोन* के अतिरिक्त थे। इस समग्र कार्य से पहले जो भी सेवा कार्यक्रम रद्द हो गये थे उन सबका पुनरुद्धार हो गया। इतना ही नहीं, *गरुड* ध्वजारोहण भी आरंभ हुआ। यह गोविंदराज के तीनों ब्रह्मोत्सवों में संपन्न होने लगा - यथा *वैकाशी, आणि* और *आडि* मासों के ब्रह्मोत्सवों में। अंत में ध्वजावरोहण कार्यक्रम भी *ब्रह्मोत्सवों* में चलने लगा।

[[कोंडवीडु सीमा के तीन गाँव - चीराला, पेराला और आण्डुपल्लि गाँवों के संदर्भ में उक्त प्रकार से आमदनी को मंदिर को समर्पित करने के विधान में रुकावट आयी थी। इन गाँवों का दान पेरिय तिम्मरसय्या ने किया था। ये बयकार रामप्पय्या के पिता और सदाशिव राय के मंत्री एवं गवर्नर थे। इसकी सूचना संख्या 17 जिल्द V से मिलती है। इन गाँवों के स्थानापन्न रूप में रामप्पय्या ने कुलत्तूर गाँव से मिलनेवाली आदमनी का आधा अंश 150 *रेखै-पोन* भगवान को अर्पित किया। बाकी आधी आदमनी गोविंदराज स्वामी को पहले ही उनके पिताजी ने दान में अर्पित कर दिया था। आगे चलकर उन्होंने

कोण्डवीडु प्रांत के कोप्पलि और परुच्चूर गाँवों को, गंडिकोट सीमा के कूरुच्चूरु को तथा कुप्पायिनिगुण्टा को दान में दिया। इससे 800 *रेखै-पोन* मिलते थे। इस राशि से गोविंदराज, सुदर्शन, तिरुविरुण्ड पेरुमाल, शूडिक्कोडुत्त-नाच्चियार (आण्डाल/गोदादेवी), अच्युत - पेरुमाल तथा उनकी दोनों चाच्चियारों को समर्पण होने का निर्देश है। यह स्वयं अपने और अपने परिवार के निकट संबन्धियों के नाम पर दिया गया देवदान है। इनके अलवा भी कुछ गाँवों से आमदनी के रुक जाने की सूचनाएँ भी मिलती हैं। सदाशिवराय द्वारा अनुदत्त तथा नागर पण्डैयार द्वारा आदेशित एक गाँव की आमदनी इसी प्रकार रुक गयी थी और इसके स्थान पर नागर पण्डैयार ने निप्पनपुरम् गाँव का आधा अंश दान में दिया और पूर्व अर्पित सभी समर्पणों को अर्पित करना फिर आरंभ हो गया (संख्या 77, जिल्द V)। पेंड्लिकोडुकु तिम्मराज ने भगवान वेङ्कटेश्वर को *वसंतोत्सवम्* संपन्न कराने के लिए तीन गाँवों को दान में दिया है (संख्या 93)। लेकिन उन गाँवों की आमदनी रुक गयी। उसके स्थान पर उन्होंने एक और गाँव को दान दिया जिससे सब कार्यक्रम यथावत् चलने लगे। यह 15-02-1554 ई. में हुआ है (संख्या 151)। ताल्लपाक तिरुवेङ्कटनाथ (तिरुवेंआदय्या) ने वेङ्कटेश्वर के *वैवाहिकोत्सवम्* के लिए मल्लवरम् गाँव दान में दिया है (संख्या 71)। इसकी आमदनी भी रुक गयी। लेकिन इसकी स्थनापन्नता में उन्होंने देवरायपल्लि को दिनांक 19-02-1554 ई. में दान में दिया और वैवाहिकोत्सवम् पुनः चलने लगा (संख्या 153)।]]

दिनांक 03-07-1545 ई. में पेद्द तिरुमय्यंगार ने 2860 पणम् मंदिर के कोषागार में अदा किया। उनके द्वारा पहले व्यवस्थित 62 दध्योदन प्रसाद समर्पण आगे भी चलता रहा, यह वन भोजन के संदर्भ में था। इसको जारी रखते हुए 12 वडा - पडि का अर्पण भी आरंभ किया गय। ये 12 वडा - पडि उत्सव मूर्तियों को 12 मंडपों में अर्पित होते हैं। ये 12 *मंण्टपम्* तो मंदिर की *स्थानत्तार* समिति के 12 सदस्यों द्वारा निर्मित हैं (संख्या 47-ए)।

आरवीडु बुक्कराज - रामराज - तिम्मराजय्या के पुत्र श्रीमान महामंडलेश्वर विट्ठलेश्वर महाराज ने तीन गाँवों का दान श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को दिया। इससे 1000 *रेखै-पोन* आमदनी होती थी। इससे श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान का *पल्लवोत्सवम्* पाँच दिन पर्यन्त चलाया जाता थ। यह उत्सवम् वैकासी मास में पाँच दिन पर्यन्त चलता था और *शात्तुमुरै* से अन्त होता था। यह *रोहिणी* नक्षत्र का समय था। अनेक प्रकार के अन्न - प्रसादों और 6 *वागैपडि* (भिन्न प्रकार के प्रसाद - *वडा पडि, अतिरस पडि, अप्प - पडि, गोधि पडि, सुगया पडि* और *दोशा - पडि*) अर्पित होते थे। यह उत्सव के पाँचों दिनों में चलता था। इसके साथ 3 अन्न प्रसाद भी अर्पित होते थे - एक *अप्पलम् - पडि* और दो घडों का मट्ठा हर दिन भगवान वेङ्कटेश्वर को अर्पित होते थे (संख्या 51)। उन्होंने *ब्रह्मोत्सवम्* में भाग लेनेवाले भक्तों को वस्त्र प्रदान करने की व्यवस्था भी की थी। यह *ब्रह्मोत्सवम् पुरट्टासी* मास में मनाया जाता था। *ब्रह्मोत्सवम्* में भक्तों को मट्ठा देने के लिए एक जल - केन्द्र की भी व्यवस्था उन्होंने की। कुछ पुरस्कार और भृतियों को देने

की भी व्यवस्था थी जो सभी मंदिर के कर्मचारियों को दिये जाते थे। इन कर्मचारियों में *स्थानत्तर, नंबियार* (मंदिर के पुजारी), मंदिर की नर्तकियाँ, वेद पाठ करनेवाले विद्वान, तिरुमोळि के गायक, *तिरुवेङ्कट - माहात्म्यम् (वेङ्कटाचल माहात्म्यम्)* को सुनानेवाले पंडित, *मुहूर्त* निर्णायक पंडित, आदि थे। मंदिर स्थानत्तार अपने पास 1000 *रेखै-पोन* की आमदनी को पूर्ण रूप से खर्च करने का अधिकार रखता था। श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के समस्त दैनिक कैंकर्य निभाने और *पल्लवोत्सवम्* संपन्न करने का दायित्व उन्हीं पर रहता था। यह उनका कर्तव्य भी था।

पोट्लपाडि तिम्मराजय्या ने 13,220 *नर्पणम्* मंदिर के कोषागार को दिनांक 15-07-1545 ई. को समर्पित किया। यह सदाशिवराय और अलिय रामराजय्या के शुभ के लिए था। इससे *अळगप्पिरानार - तिरुमंजनम्* के समय वेङ्कटेश्वर के मंदिर में रोज *वेङ्कटाचल माहात्म्यम्* को पढने (पाठ करने) तथा उसी संदर्भ में भगवान को शुद्ध किया गया चंदन, कर्पूर, पान तथा सुपाडी अर्पित करने के तथा इस धार्मिक कार्य संपन्न करने समय एक *अतिरस - पडि* प्रसाद समर्पण के लिए भी था। प्रतिदिन चार अन्न प्रसाद समर्पण और *ग्रीष्म* उत्सवों के समय 20 अन्नप्रसाद समर्पण के लिए भी था (संख्या 53)। उन्होंने अच्युत पेरुमाल, वरदराज पेरुमाल तथा गोविंदराज स्वामी के मंदिरों में भी *वेङ्कटाचल माहात्म्यम्* पठन के लिए प्रावधान किया था जो उस वक्त होना निर्देशित था। इस कार्य के लिए अलग भृति देने और वेङ्कटाचल माहात्म्य पाठ सुनानेवालों के लिए आवश्यक सामग्री प्रस्तुत कराने के लिए भी था। आगे इन्होंने श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान और गोविंदराज स्वामी के *ब्रह्मोत्सवों* के संदर्भ में तथा *मुक्कोटि द्वादशी, मकर संक्रमण, उगादि* और *दीपावली* के दिनों में समर्पणों की भी व्यवस्था की। *आण्डाल* (गोदादेवी) के लिए भी इसी प्रकार उनके *मार्गळि* - नीराट्टोत्सव के लिए आवश्यक प्रावधान भी किया था। ग्रीष्म उत्सव के संदर्भ में गोविंदराज और उनकी देवेरियों को शिला रथ में ऊँजल पर (झूले पर) आसीन कराकर उत्सव मनाना भी इसमें है। यह गोविंदराज मंदिर में संपन्न होता है। यह 20 दिन का उत्सव है। इस समय उत्सव मूर्तियों पर गुलाबजल छिडका जाता है। *चंदन* और कर्पूर को गुलाब जल में मिलाकर यह समर्पण होता है। इस धार्मिक अनुष्ठान के बाद मूँग दाल से पका नैवेद्य समर्पित होता है। इसकी भी व्यवस्था के लिए उन्होंने देवदान अर्पित किया है।

तिरुमल पर भी इसी प्रकार का एक उत्सव (ऊँजलि उत्सव) शिला रथ में होता है। दो मंदर की नृत्यांगनाओं ने (लिंगसानि और तिरुवेङ्कटमानिक्कम्) इसकी व्यवस्था की है। गीष्म उत्सव के समय उत्सव मूर्तियों को 20 दिन पर्यन्त ऊँजल पर विलसाते हैं और अन्तिम दिन को विशेष समर्पण होते हैं (संख्या 32)। सदाशिव महाराज और आरवीडु बुक्कराय श्रीरंगराज के पुत्र अलिय रामराजदेव के कुशल-मंगल की कामना से पुदुप्पट्टु गाँव को दिनांक 19-01-1545 ई. में मंदिर को देवदान के रूप में अर्पित किया गया है। यह गोविंद - पेरुमाल के *अंग-रंग - वैभोगम्* के लिए किया गया था। तदर्थ आवश्यक सामग्री

को संजोने के लिए पोट्लपाटि रामराज के पुत्र तिम्मराजा ने *तिरुमंजनम्* और अन्य समर्पणों के लिए गोविंदराज के लिऐ प्रावधान कराया था। यह *द्वादशी* के दिन (मुक्कोटि द्वादशी) के लिए और भगवान की शोभायात्रा के लिए है। उस दिन को गोविंदराज *गरुडवाहन* पर शोभित होकर निकलते हैं तो उनकी नाच्चियार (देवियाँ) *पालकी* में निकलती हैं। सेनै मुदलियार भी साथ चलते हैं। उस संदर्भ में हनुमान को भी अर्पण होते हैं। *मकर संक्रमण* के दिन पर भी *तिरुमंजनम्* तथा प्रसाद समर्पण होते हैं। उन दिनों में *तिरुवेङ्कट माहात्म्यम्* का पठन भी संपन्न होता है। यह भगवान वेङ्कटेश्वर के पास *तिरुमंजनम्* के समय होता है। यही गोविंदराज की सन्निधि में भी होता है। इस कार्यक्रम को अच्छी तरह निभाने के लिए पोट्लपाडि तिम्मराजा ने 50 पणम् अर्पित किया था मूल धन के रूप में। यह सब सदाशिवराय महाराज और श्रीरंगराज के कुशल - मंगल के लिए था (संख्या 29)।

उदयगिरि नरसिंह भट्टर के पुत्र उदयगिरि देवराय भट्टर और पोट्लपाडि तिम्मराज के पुत्र पोट्लपाडि चिन्न तिम्मयदेव (महाराज आरवीडु पुक्कराय के पौत्र) ने मिलकर गोविंदराज सन्निधि वीथि में स्थित हनुमान मंदिर में श्रीविट्ठलेश्वर स्वामी की मूर्ति की स्थापना की थी। आरवीडु बुक्कराय *आत्रेय गोत्रज* थे। इस सूचना के अनुसार दिनांक 25-03-1546 ई. में यह संपन्न किया गया था। उन्होंने विट्ठलेश्वरपुरम् नामक नये सिरे से विकसित गाँव को कुछ खेतों सहित (सिंचाई के लिए नहर के साथ) देवदान में प्रस्तुत किया। मंदिर के *स्थानत्तार* को इसके नियंत्रण का अधिकार भी प्रदान किया। इतना ही नहीं तिरुपति के *कोमटि* (शेट्टि समुदाय) से 10 *रेखै-पोन,* तिरुपति के व्यापारी वर्ग से 10 *रेखै-पोन,* कोट्टपाल्यम् के व्यापारी समूह से 10 *रेखै-पोन* - कुल मिलाकर 30 *रेखै-पोन* वसूल करने का दायित्व भी उनको दिया गया। इससे नये स्थापित विट्ठलेश्वर के लिए प्रतिदिन दो समयों में नैवेद्य समर्पण का निर्देश भी दिया गया है। यह नैवेद्य प्रक्रिया गोविंदराज स्वामी की प्रक्रिया के अनुसरण में होनी भी आदेशित है। इसके अनुसार 52 शनिवार के दिनों में *तिरुमंजनम्* सेवा और 13 *श्रवणा* नक्षत्र सेवाएँ (वर्ष में आनेवाले), *श्रीजयंती, दीपावली, कार्तिकै, मकर-संक्रमणम्, रथ सप्तमी, आडि - अयनम्* और अन्य पवित्र दिनों की सेवाएँ संपन्न होनी हैं। इतना ही नहीं, गोविंदराज स्वामी के 3 *ब्रह्मोत्सवों* और *वन-भोजनम्* सहित अन्य कार्यक्रमों को भी होना है। *वन-भोजनम्* तो *कार्तिक* मास में श्रवणा नक्षत्र पर संपन्न किया जाता है। *कृत्तिका* नक्षत्र के दिन पर तो *तिरुवलि - आळवन (सुदर्शन चक्र)* को *आळ्वार - तीर्थम्* तक (कपिल तीर्थम्) शोभायात्रा में ले जाया जाता है। वहाँ भगवान की *तिरुमंजनम्* सेवा अन्य प्रसाद समर्पणों के साथ होती है। वहाँ पर *मनोहर - पडि* को भी अर्पित किया जाता है। इसी प्रकार गोविंदराज स्वामी भी *आळ्वार तीर्थम्* तक उसी जगह पर शोभायात्रा में पहुँचते हैं। *मकर संक्रमण* (14 या 15 जनवरी में) पर यह सेवा होती है और वहाँ एक *मनोहर - पडि* अर्पित होता है। इस परिलेख में यह भी

सूचित है कि तिरुच्चुकनूर (तिरुचानूर) का एक और नाम *(प्रतिनामम्)* है - वरदराज पुरम् (संख्या 66, जिल्द V)।

ताल्लपाक तिरुमलय्यंगार के चतुर्थ पुत्र तिरुवेङ्कटनाथ ने दो गाँवों का दान दिया है। ये गाँव हैं - शेडलूरु (कोंडवीडु सीमा का एक गाँव जिसकी वार्षिक आमदनी 500 *गट्टि वरहा* हैं) और मल्लवरम् (जिससे 120 *गट्टि वरहा* प्राप्त होते हैं)। वरहा एक सुवर्ण मुद्रा है जिसपर वराह का चिह्न अंकित रहता है। यह दान दिनांक 17-07-1546 ई. में हुआ है। इस की पूर्ण आय से भगवान वेङ्कटेश्वर का *वैवाहिकोत्सवम्* (आजकल का कल्याणोत्सवम् समान) पाँच दिन मनाया जाता है। यह *अनूराधा* नक्षत्र से *उत्तिराडम (उत्तराषाढा)* नक्षत्र तक *पंगुनि* मास में (मार्च-अप्रैल) संपन्न होता है (संख्या 71)। तिरुमलय्यंगार के बडे भाई *शिरु* (चिन्न) तिमलय्यंगार ने उसी प्रकार का उत्सव गोविंदराज स्वामी के लिए दिनांक 17-08-1547 ई. में आरंभ किया था (संख्या 99)। इस उत्सव में मानव विवाह व्यवस्था के सभी अंशों का अनुपालन होता है जैसे मंगल स्नान, विविध संस्कार, वीथियों में उत्सव, पुष्पमालाओं का परस्पर विनिमय आदि। इन उत्सवों में एक विशेषता भी है - मलैकुनियनिन्र पेरुमाल झूले पर आसीन रहते हैं तो एक देवेरी *हंसवाहन* पर और दूसरी देवेरी *चातक - पक्षी - वाहन* पर शोभित रहती हैं। उस समय मलयप्प स्वामी के पवित्र चरणों को दूध से धोया जाता है और *होमम्* भी चलता है। *ध्रुव* नक्षत्र का *दर्शन* भी रात के आरंभित काल में कराया जाता है। *चंदन - वंसतोत्सवम्* तथा अन्य वैवाहिक परंपरागत कार्यक्रम भी पवित्रता से चलाये जाते हैं।

उत्सवमूर्तियों के लिए प्रसादादि समर्पणो की व्यवस्था करने के साथ साथ उन्होंने वेङ्कट-कृष्ण की मूर्ति, अलिमेलमंगा नाच्चियार और वराह स्वामी को भी *अर्पिशि* मास के *श्रवणम्* नक्षत्र के दिन के समर्पणों को व्यवस्थित किया है। *चित्तिरै* मास के *मृगशिरा* नक्षत्र में पेरियपेरुमाल के लिए समर्पण का भी प्रावधान कराया है। यह पेरिय - तिरुमलय्यंगार का जन्म नक्षत्र भी है और ये उनके पिताजी भी हैं। इतना ही नहीं उनकी माता तिरुमलम्मा के सांवत्सरिक मृत्यु दिन पर *अर्पिशि* मास में, अपने बडे भाई तिरुवेङ्कटप्प के सांवत्सरिक दिवस पर, पितृ संबन्धी ताऊ ताल्लपाक नरसय्यंगार के आब्दिक *माशी* मास के विशाखा नक्षत्र (वैकाशी में) के दिन तथा पितामह ताल्लपाक अन्नमय्यंगार के जन्म नक्षत्र पर भी कुछ समर्पणों की व्यवस्था इन्होंने की थी (संख्या 71)। दाता ताल्लपाक तिरुवेङ्कटनाथ के बडे भाई चिन्न तिरुमलय्यंगार ने दिनांक 17-08-1547 ई. (सं. 99) में एक *मनोहर पडि* का प्रावधान सुदर्शन के लिए भी कराया है। यह सुदर्शन गोविंदराज मंदिर के प्रथम गोपुर पर हैं। अर्पण *मृगशिरा* नक्षत्र में *वैकाशी* मास में (जो *चित्तिरै* मास होना था, गलत अंकित किया गया है) होना निर्देशित है। यह पेरिय तिरुमलय्यंगार का जन्म नक्षत्र है। एक *मनोहर - पडि* गोविंदराज को *चित्तिरै* मास के *चित्तिरै* नक्षत्र के

दिन की सेवा का आयोजन था। यह दाता का जन्म नक्षत्र था यानी चिन्न तिरुमलय्यंगार का जन्म नक्षत्र है।

इसी चिन्न तिरुमलय्यंगार ने मंदिर को नेडियम् गाँव का आधा भाग दिनांक 17-08-1547 ई. में देवदान के रूप में अर्पित किया (संख्या 99)। इससे 150 *रेखै-पोन* की वार्षिक आमदनी मिलती थी। इसका उपयोग गोविंदराज के *वैवाहिकोत्सवम्* के लिए होने का निर्देश हुआ था। गोविंदराज का विवाह उनकी दो नाच्चियारों के साथ चित्तिरै मास में पाँच दिन पर्यन्त मनाया जायेगा। *रोहिणी नक्षत्र* के दिन इस उत्सव की परिसमाप्ति होगी। इस उत्सव के लिए आवश्यक धार्मिक संस्कार, त्यौहार, समर्पण, पूजाएँ, तथा शोभा-यात्राएँ भी संपन्न होते हैं। विविध सेवाओं के लिए भृतियाँ और भेंट भी दी जायेंगी। उस समय उन्होंने एक और गाँव वेडुमणक्कम् का दान दिया था। इस गाँव से 200 *रेखै-पोन* की आमदनी मिलती थी। इससे गोविंदराज स्वामी के दैनिक पूजा - समर्पण होते थे। साथ-साथ *तीर्थवारि मंटपम्* में (*आळ्वार तीर्थम्* के पास) लक्ष्मी - नारायण पेरुमाल और तिरुपति में कत्तारि हनुमान मंदिर में उनके द्वारा प्रतिष्ठित नरसिंह पेरुमाल के भी समर्पण होने थे। इतना ही नहीं, गोविंदराज स्वामी के तीनों ब्रह्मोत्सवों के विविध दिनों पर होनेवाले कुछ समर्पणों का भी प्रावधान उन्होंने कराया है। यह *ब्रह्मोत्सव वैकाशी, आणि* और *माशी* महीनों में संपन्न किये जाते थे। कुछ और विशेष पवित्र दिनों के लिए भी प्रावधान हैं। सालुव गोविंदराज द्वारा जो प्लवोत्सव (नाव पर भगवान का पुष्करिणी में शोभा-यात्रा उत्सव) का आरंभ किया गया तथा उसके लिए भी प्रावधान कराये गये है। सालुव गोविंदराज तो प्रादेशिक गवर्नर और सालुव तिम्मरसु *(अप्पाजी)* के छोटे भाई थे। इसी प्रकार आण्डाल (गोदादेवी) के *मार्गळी - नीराट्टम्* उत्सव के लिए; विट्ठलेश्वर-पेरुमाल, रघुनाथ (श्रीराम) और अच्युत - पेरुमाल के लिए नियत दिनों और चुने हुए संदर्भों के लिए भी व्यवस्थाएँ हुई हैं। तिरुचानूर में वरदराज पेरुमाल के मंदिर में *उगादि, दीपावली, पाडियवेट्टै* (आखेट उत्सव) के लिए तथा उनके दो रथोत्सवों केलिए (*तै* और *पंगुनि ब्रह्मोत्सवों*) तथा *विडायार्रि* दिनों के लिए भी आवश्यक व्यवस्थाएँ की गयीं। उन्होंने अतिरिक्त प्रावधान भी गोविंदराज स्वामी के लिए किये हैं। ये गोविंदराज के *वसंतोत्सव* से संबन्धित 5 वें दिन और समाप्ति के दिन से संबन्धित हैं। *वसंतोत्सव* के बाद गोविंदराज की रथयात्रा भी होती है। उस संदर्भ में अलंकर, रथ को खींचनेवाले मजदूरों तथा ध्वज ढोनेवाले कार्यकर्ताओं, छत्र तथा दीप धारकों को भृति देने के लिए भी प्रावधान किये गये हैं।

चिन्न तिरुमलय्यंगार ने उपर्युक्त प्रावधान तो किये हैं, इनके साथ साथ उनके पुत्र तिरुवेङ्कटय्यन् ने आणि ब्रह्मोत्सवों के समय उत्सव मूर्तियों के लिए 5 वें, 8 वें और 9 वें दिन की व्यवस्थाओं के लिए 41 *रेखै-पोन* का प्रावधान अपनी ओर से कराया है। इन *आणि ब्रह्मोत्सवों* की स्थापना तिरुमलराज (एर्र

तिम्मराज) ने भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए की है। यह *उरि-आडि* के दिन व्यवस्थित किया गया जिसे उनके पिताजी ने आरंभ कराया था। यह उत्तर वीथी में होता है। इसी समय कंदाडै अप्पन् ने पुन्नियम् गाँव का देवदान दिया था। इससे 60 *रेखै-पोन* वार्षिक आमदनी होती थी। इससे *उत्सव मूर्ति* को रथोत्सव के दिन पर समर्पण होंगे। ये ब्रह्मोत्सवम् थे - *पुरट्टासि, कार्तिकै, तै* और *पंगुनि ब्रह्मोत्सवम्।* ताल्लपाक पेरिय तिरुमलय्यंगार और एरि तिम्माराज से आरंभ किये गये आणि ब्रह्मोत्सव और गोविंदराज *शेष - वाहनम्,* उनके ब्रह्मोत्सवों के नौवें दिनों पर (*वैकाशी, आणि* और *माशी* महीनों में) तथा आण्डाल, रामानुज और सुदर्शन के लिए निर्णीत दिनों पर नैवेद्य समर्पण आदि भी चलते हैं उक्त व्यवस्था से।

आरवीडु नारप्पराज के पुत्र श्रीमान महामण्डलेश्वर पोट्लपाडि रंगराज ने तिरुवेङ्कटमुडैयान (श्रीवेङ्कटेश्वर) की एक मूर्ति की प्रतिष्ठा वानमामरै जीयर *मठम्* में तिरुपति में दिनांक 13-10-1546 ई. में की थी। उस मूर्ति के लिए रात के समय अर्पित होनेवाले प्रसादों की व्यवस्था भी उन्होंने की थी। ये गोविंदराज स्वामी मंदिर की पाकशाला में तैयार होंगे (संख्या 79)। हर वर्ष वेङ्कटेश्वर और गोविंदराज के लिए 2920 पणम् अर्पित करने के साथ साथ उन्होंने 370 *रेखै-पोन* की आमदनी प्रदान करनेवाले एक गाँव राच्चेरुलु का भी दान किया था। उसी दिन दिनांक 13-10-1546 ई. में कोयिल केल्विवान मामलै रामानुज जीयर ने 2000 *नर्पणम्* वेङ्कटेश्वर भगवान की मूर्ति के एक दिन के प्रसाद आदि समर्पण के लिए देवदान प्रस्तुत किया है। यह मूर्ति उक्त जीयर द्वारा स्थापित की गई थी। इस मूर्ति के सामने ज्योतियों के प्रज्वलन की भी व्यवस्था उन्होंने की है (संख्या 80)।

कहा जाता है कि तिरुमल मंदिर के लेखा देखने के लिए 14 लेखापाल नियुक्त हुए हैं। उन सबने मिलकर उनके ही द्वारा स्थापित मंटपम् में वेङ्कटेश्वर, गोपालकृष्ण तथा उनकी देवेरियों की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। यह दिनांक 28-10-1546 ई. में हुआ था। उन मूर्तियों के विभिन्न समर्पणों के लिए 2575 *नर्पणम्* की मूल राशि भी समर्पित की गई थी। इससे नैवेद्य समर्पणों के साथ-साथ दीप ज्योतियाँ भी प्रज्वलित होती थीं। इतना ही नहीं, *रोहिणी* नक्षत्र, श्रीकृष्ण के जन्म नक्षत्र के 13 दिनों पर तथा 14 भिन्न दिनों में लेखापालों के नामों पर रात के नैवेद्य समर्पण होते थे। दैनिक और विशेष दिनों पर होनेवाले समर्पण गोविंदराज के मंदिर की पाकशाला में तैयार होते हैं (संख्या 82)।

उदयगिरि नारसिंह भट्टार के पुत्र देवराय भट्टार ने तिरुपति के व्यापारी समुदाय से एक सहमति पत्र प्राप्त किया। उसके अनुसार भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को 1250 *रेखै-पोन* हर वर्ष मिलेंगे। उससे भगवान का स्नपनोत्सव होगा। यह सहमति दिनांक 06-03-1547 ई. को हुई थी। मंदिर के *स्थानत्तार* को इस शशि को प्राप्त करने की आदेशानुमति भी थी। इससे प्राप्त धन राशि से सभी प्रकार की पूजा सामग्री, नैवेद्य समर्पण, ज्योतियाँ, फूल आदि हर दिन समर्पित होंगे। श्रीसीतलेश्वर पेरुमाल की जो मूर्ति उनके द्वारा

तिरुपति में स्थापित की गयी, उसके लिए आवश्यक सामग्री, वस्तुएँ, मंदिर के सेवकों की भृति, फुलवारी के मालियों की आजीविका भृति, *सहस्रनाम कीर्तन* (1008 नाम) *अर्चना* करनेवालों का वेतन, *वेदापारायण* करनेवाले वेद पंडितों को भृति, पेयजल वितरण करनेवालों को सेवा-भृति, विट्ठलेश्वर स्वामी के मंदिर की सेवाएँ (तिरुमल पर्वत के पास तिरुपति में है) आदि संपन्न होंगी (संख्या 89)।

शोट्टाय एट्टूर तिरुमलनंबि कुमार तातय्यंगार के पुत्र श्रीनिवासय्यंगार ने दिनांक 03-06-1547 ई. को जगदाभिगुट्ट सीमा का एक गाँव दान में दिया है। उस गाँव से आमदनी 2000 *चक्रम्-पोन* था। इस गाँव को पहले सदाशिवराय महाराज ने उनको दान में दिया था। इस गाँव की आमदनी से श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के *पल्लवोत्सवम्* का आरंभ किया गया। यह उत्सवम् पाँच दिन पर्यन्त चलता है - *पुनर्वसु* नक्षत्र से पूरम *(पूर्व फल्गुणी)* नक्षत्र तक और *माशी* महीने में। इसमें यह भी बताया गया है कि *सभैयार* (तिरुचानूर की शासन समिति) को उत्सव के अंतिम दिनों में तिरुच्चि वाहन और *वैकुण्ठ - विमान* वाहन की व्यवस्था भी करनी है। इस कार्य के लिए उनको एक रेखै-पोन प्राप्त करना है। यह सेवाओं के लिए भृति है। *तिरुवेङ्कट माहात्म्यम् (वेङ्कटाचल माहात्म्यम्)* का पठन भी तिवेङ्कत्तुरैवार से होना है और तदर्थ - उनको 2 *पणम्* मिलना है। ऐयुन्नि अप्पन को उत्सवों का *मुहूर्त* निश्चय करना है और इसके लिए उनको भी 2 *पणम्* पारिश्रमिक मिलना है। आळ्वार तीर्थम् पर पोट्टलपाडि तिम्मराज द्वारा प्रतिष्ठित वेङ्कटेश्वर भगवान की मूर्ति (*आळ्वार तीर्थम्* में पोट्लपाडि तिम्मराजा के द्वारा स्थापित) के लिए तथा गोविंदराज एवं उनकी देवेरियों केलिए उनके *ब्रह्मोत्सव* के समय के 13 दिनों पर्यन्त (माशी महीने में) नैवेद्यादि समर्पण प्रस्तुत करने हैं। प्रधानतः *तीर्थवारी* के दिन (*माशी* महीने में) और अधिक समर्पण होने हैं। उस दिन को भगवान नम्माल्वार मंदिर में शयन गृह में रहते हैं - उसी तीर्थ में। इतना ही नहीं, भगवान जब *रायर मंटपम्* में *वैकाशी* ब्रह्मोत्सवों के समय तीर्थवारी समय में रहते हैं, उस समय पर भी समर्पण होते हैं। पुनः तिरुपति के विट्ठलेश्वर मंदिर में विड़ायर्रि के दिनों में भगवान गोविंदराज को *वैकाशी ब्रह्मोत्सवों* के समय तथा विट्ठलेश्वर को *माशी ब्रह्मोत्सवों* के समय तीन रथोत्सवों में समर्पण प्रस्तुति के लिए निर्देश है। (संख्या 92)।

सूर्य वंशीय कंपराज के पुत्र पेंड्लिकोडुकु तिम्मराज ने दिनांक 08-06-1547 ई. में मंदिर को तीन गाँव दान में दिये थे। ये गाँव पहले उनको एर्र तिम्मराज से मिले थे। इससे 200 *रेखै-पोन* वार्षिक आमदनी मिलती थी। इन्होंने भगवान वेङ्कटेश्वर को उस आमदनी से पाँच दिवसीय *वसंतोत्सव* मनाने के लिए यह दान दिया था। *विशाखा* नक्षत्र के दिन (माशी महीने में) से आरंभ कर *श्रवणा* नक्षत्र पर, *अंकुरार्पण* से आवश्यक धार्मिक अनुष्ठानों से उत्सव को *श्रवणा* नक्षत्र तक संपन्न करना है। यह 7 दिन का उत्सव ठहरता है। उन दिनों में *तिरुमंजनम्,* प्रसादादि का समर्पण और सेवकों की भृतियाँ आदि सबका निर्वाह करना दाता का अभिमत है (संख्या 93)।

काश्यप गोत्र, आपस्तंभ सूत्र तथा *यजुः शाखा* के पट्टप्प नायक के पुत्र सूरप्प नायक ने दिनांक 10-05-1551 ई. में श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के लिए *सहस्रनामार्चना* संपन्न कराने के लिए एक गाँव का दान किया। इससे 400 *रेखै-पोन* की आमदनी मिलती थी। इससे पाँच दिन का अर्चन संपन्न होना है। यह *मखा* नक्षत्र में *अधिवासम्* से आरंभ होकर *(उत्तिरम्) चित्ता* नक्षत्र के दिन समाप्त होनेवाला उत्सव है। श्रीवेङ्कटेश्वर की मूर्ति के लिए वर्ष भर 400 *रेखै-पोन* तथा दैनिक *अन्न प्रसाद* समर्पण की भी व्यवस्था इससे होनी है (संख्या 127)।

संख्या 94 *कोयिल* आळ्वार *तिरुमंजनम्* की सूचना देता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय भगवान वेङ्कटेश्वर को 10 *मनोहर- पडि* का समर्पण भी होता है। यह *कोयिल आळ्वार तिरुमंजनम्* हर *ब्रह्मोत्सव* के आरंभ में होता है। *चंदन* और कर्पूर मिश्रित जल से मंदिर की दीवारों तथा प्रांगण को धोया जाता है। मूल विराट स्वामी को भी विशेष प्रसाद समर्पण किये जाते हैं। यह पहले ही स्पष्ट किया गया है (संख्या 25 में)।

तिरुपति के वैश्यों के समूह द्वारा दिनांक 24-11-1547 ई. में जनार्दन - पेरुमाल की मूर्ति की स्थापना की गयी थी। यह पहले ही सूचित थी। इस मूर्ति के लिए आरवीडु रामराजु तिम्मयदेव महाराज के पुत्र पप्पु तिम्मय महाराज ने दैनिक रूप से प्रसाद समर्पण तथा ज्योति प्रज्वलन की व्यवस्था की थी। साथ-साथ विशेष दिनों तथा उत्सव के लिए समर्पणों की व्यवस्था उन्होंने की थी (संख्या 101)।

तिरुपति की भाष्यकार वीथी में (गोविंदराज स्वामी की उत्तर माडा वीथि में) मदन गोपाल पेरुमाल की मूर्ति की स्थापना की बात पहले सूचित है। उस भगवान के लिए प्रसाद समर्पण और पूजादि की व्यवस्था दिनांक 05-01-1544 ई. में पोत्तुराजु के पुत्र मट्ल वरदराज ने की थी। *श्रीजयंति* (कृष्ण-जयंती) के दिन पर एक अप्पपडि अर्पण की भी सूचना इस में है (संख्या 11)।

उक्त भाष्यकार तिरुवीथि में ही तिरुवेङ्कट गोपालकृष्ण तथा उनकी देवेरियों (रुक्मिणी तथा सत्यभामा) की मूर्तियाँ मंदिर के लेखापालों द्वारा प्रतिष्ठित हुई थीं। लेकिन यह मंदिर की पूर्वी दिशा में है। यह दिनांक 25-10-1546 में हुआ। एक लेखापाल ने वृत्ताकार दीप ज्योतियों की व्यवस्था उस समय की थी। उनकी *तिरुमंजन* सेवा के 3 दिनों में (*रोहिणी नक्षत्र* पर) समर्पणों की व्यवस्था भी इसमें सम्मिलित हुई (संख्या 82)। इसके अलवा सभी 14 लेखापालों ने गोपालकृष्ण और वेङ्कटेश्वर दोनों के लिए 14 विशेष दिनों के समर्पणों की व्यवस्था भी की थी।

नंद्याल नरसिंगराज के पुत्र नंद्याल *नारपराज* ने गोविंदराज स्वामी के दो द्वार पालकों की मूर्तियाँ स्थापित की थीं। ये दोनों मूर्तियाँ गोविंदराज स्वामी के गर्भालय के पास प्रतिष्ठित हुईं। इसके अलावा

दो गाँवों के दान के द्वारा (दिनांक 18-03-1549 ई.) दैनिक प्रसाद समर्पणों की व्यवस्था उन्होंने की थी (संख्या 122)।

आरवीडु रामराज कोनेटिराज के पुत्र आरवीडु कोंडराज ने नम्माळ्वार (12 *आळवारों* में एक) की मूर्ति बनवाकर *रामानुजकूटम्* में (वैष्णव भोजन शाला में) स्थापित किया था। यह नार्थमाडा वीथि में है। इसमें *वैष्णव* (यात्रियों) *भक्तों* के लिए भी भोजन का प्रबंध है। इसके लिए 10 गाँवों का दान किया है। इस से लगभग 5713 *रेखै-पोन* की आमदानी मिलती थी। यह दिनंक 02-10-1550 ई. में प्रदत्त दान है। इससे नित्य प्रति 125 समर्पण होते हैं। इस में हर समर्पण में सुगंध द्रव्य, मसाला द्रव्य, दही, घी, तेल, कर्पूर, पान, सुपाडी आदि के साथ 125 समर्पणों के लिए आवश्यक पदार्थों की ''सल्पाइ'' (आपूर्ति) की व्यवस्था है। रामानुजकूटम में *वैष्णव-भक्त* यात्रियों को अन्नदान की व्यवस्था हुई थी (संख्या 125)।

आरवीडु कोंडराज द्वारा स्थापित *रामानुजकूटम* के लाभ के लिए सम्राट सदाशिव राजा ने *मकर - संक्रमण* के दिन अर्थात् 15 जनवरी 1554 ई. में एक *रायसम्* (राजा का आज्ञादेश) ऐलान किया है। उसके अनुसार विजय नगर साम्राज्य के विविध प्रादेशिक राजाओं के राज्यों पर जो कर डाले हैं (राज्यों और प्रांतीय अधिपतियों पर) उनको वसूल करने का अधिकार वेङ्कटेश्वर मंदिर *स्थानत्तार* को दिया गया है। उस प्रकार वसूल की गयी धन शशि को उक्त *रामानुजकूटम* के लिए ही खर्च करना था। दिनांक 02-07-1554 को *स्थानत्तार* ने राजा के आदेश को एक परिलेख के रूप में प्रकाशित किया। यह आदेश कोंडराज *रामानुजकूटम्* के पक्ष में है। कर वसूली से जो धन राशि प्राप्त होगी, उससे *रामानुजकूटम्* में अन्नदान की व्यवस्था करनी थी। यह भी समाचार मिलता है कि सम्राट सदाशिवराय ने 200 बैल, *हंस मुद्रा* अंकित कर मंदिर सेवा के लिए अर्पित किये। ये बैल तिरुमल और तिरुपति के मंदिरों की सेवा के लिए हैं। नम्माळ्वार के *रामानुजकूटम्* की आवश्यक सामग्री पहुँचाने के लिए भी इन बैलों का उपयोग किया जा सकता है (संख्या 154)।

सदाशिवराय ने लगभग एक दर्जन करों को भगवान की सेवा के लिए दान में दिया। इसके साथ-साथ *रामानुजकूटम्* ने आरवीडु बुक्कराज रामराज श्रीरंगराज के पुत्र आरवीडु रामराजय्या से भी पुरस्कार स्वरूप कुछ प्राप्त किया जो रामानुजकूटम के लिए प्रसादम् बनाने के लिए था। इस संदर्भ में दिनांक 11-11-1554 ई. में मंदिर के लिए उनके द्वारा प्रदत्त चार गाँवों के दान की सूचना मिलती है। इनसे मिलनेवाली आमदनी 4000 *रेखै-पोन* थे। इससे भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को 200 *वेल्लै - तिरुप्पोनकम्* का प्रतिदिन समर्पण होना था। यह भगवान के लिए प्रथम *प्रसादम्* है जो *दध्योदन - अवसरम्* के बाद अर्पित होता है। इन 200 समर्पणों में से दाता का भागांश चौथा अंश तथा उसके समान अंश जो गोविंदराज स्वामी को अर्पित होता है *नम्माळ्वार - रामानुजकूटम्* को मिलना है। इसे दाता रामराजय्या *उभयम्* कहा

गया। इस प्रकार अन्नदान शाला, 50 और पोंगलि - *तलिग* - *प्रसादम्* गोविंदराज मंदिर से प्राप्त करने लगी। यह श्रीवैष्णव - यात्रियों को *आरवीडु रामराजय्या* का अनुदान था (संख्या 155)।

ताल्लपाक पेद्दतिरुमलय्यंगार के चौथे पुत्र ताल्लपाक तिरुवेनादर (चिन्नन्ना) ने दिनांक 13-01-1558 में कोत्तूर नामक एक गाँव को भगवान के लिए दान में दिया। इसकी आमदनी से *पेंड्लि तिरुणाल* (वैवाहिकोत्सवम्) के लिए नैवेद्य - समर्पण का प्रावधान कराया था। इसका आरंभ उनसे 17-07-1546 ई. में ही कराया गया है (संख्या 71)। इसको आगे बढाया गया दिनंक 19-02-1554 ई. (सं. 153) में। इस समय पर मल्लवरम् गाँव के स्थान पर देवरायपल्लि दान में दिया गया, परन्तु वह सफल नहीं हो सका। इसके स्थान पर 330 *रेखै-पोन* का अलग प्रावधान कराया गया है। इससे उत्सव मूर्तियों के लिए शुद्ध किया गया कर्पूर, अन्य *सुगंध द्रव्य,* गुलाब-जल, आदि को स्नपन और अलंकरण के लिए और एक *दोशै* - *पडि* खर्च निकलता था। यह खर्चा विवाहोत्सव (कल्याण सेवा) के पाँचवें दिन पर संपन्न किया जाता था। *गरुड़ ध्वज* के लिए कुछ समर्पण इसी से होते थे। यह ध्वजारोहण पर्व पर होता था। तीनों उत्सव मूर्तियों की *तिरुमंजन* सेवा का भी प्रावधान इससे था। पेद्द तिरुमलय्यंगार, दाता के पिताजी, के जन्म नक्षत्र पर पान-सुपाडी के समर्पण की व्यवस्था और गीष्मकालीन उत्सव के संदर्भ में 20 दिन पर्यन्त जो संकीर्तन सेवा होती थी, उनके लिए भी प्रावधान था। श्रीवेङ्कटेश्वर तथा गोविंदराज को विशेष अवसरों पर, प्रधानतः द्वितीय, पंचम तथा नवम् दिनों में, तीनों *ब्रह्मोत्सवों* में अर्पण भी होती थी (*वैकाशी, आणि* और *माशी* महीनों के *ब्रह्मोत्सवों* में)। ये समर्पण आगेवाले *मंटपम्* में, जहाँ तिरुवालि - आळ्वन की मूर्ति स्थापित हुई है तथा दाता द्वारा आळवन की भी स्थापना हुई है, समर्पित होते हैं। तिरुवालि - आळवन (सुदर्शन) की मूर्ति को 2190 *वेल्लै* - *तिरुप्पोनकम्* (पोंगल) भी अर्पित होता है। इस मूर्ति की स्थापना *गोविंद* - *पुष्करिणी* के पश्चिमी तट पर हुई है। यह तिरुपति में है। इस मूर्ति को सुबह दो अन्न प्रसाद, मध्याह्न के समय दो और रात को दो प्रसाद अर्पित होते हैं- पूजाओं के पश्चात्। इस पूजा में *चंदन,* पान-सुपाडी, तिल का तेल (ज्योतियों के लिए) तथा *तिरुमंजनम्* अर्पित होते हैं। यह विशेष रूप से शनिवार और कुछ विशेष पर्व दिनों में संपन्न होता है (संख्या 159)। इस सबसे यह स्पष्ट होता है कि उक्त दाता 'सुदर्शन' के विशेष भक्त हैं।

आरवीडु बुक्कराज रामराज श्रीरंगराज के पुत्र तिरुमलय्यराय (तिरुमलराय) ने *तिरुमलराय मंटपम्* का निर्माण करवाया है। यह वेङ्कटेश्वर मंदिर के अंदर *संपंगि* - *प्रदक्षिणम्* में है। दाता ने स्वयं अपने ही नाम पर इसका निर्माण दिनांक 15-12-1561 ई. तक कराया। इस मंटपम् में जब भगवान विलसते हैं तब होनेवाले खर्च के लिए प्रधानतः अन्न-प्रसाद समर्पण और उत्सव आदि सेवाओं के लिए 16,500 *पणम्* को मूल धन के रूप में दान के रूप में अर्पित किया। उस मूल धन से मिलनेवाली ब्याज से खर्चे करने थे। *मंटपम्* में 10 *ब्रह्मोत्सवों* के समय में भी भगवान की उत्सव मूर्तियाँ जब पधारती है तब उनके

लिए आवश्यक सेवाओं के लिए भी उस ब्याज से खर्च करना नियत था। विशेष पर्वों और पवित्र दिनों के लिए होनेवाले खर्चे का भार इसी से संपन्न होता है। सब कुल मिलाकर 439 *अतिरस-पडि* समर्पण होते हैं (संख्या 168)। यह *तिरुमलराय मंटपम्* सालुव नरसिंह द्वारा निर्मित *मंटपम्* का विस्तार रूप ही होना चाहिए।

सोत्तै येत्तूर तिरुमलनंबी श्रीनिवासय्यंगार ने मंदिर को 28-7-1562 ई. को कुछ गाँव दान दिये। उनके 10 *ब्रह्मोत्सवों* के 13 दिनों में और अन्य पर्वों, विभिन्न नक्षत्रों के लगने के दिनों में, अन्यान्य वार्षिक पर्व दिनों में, गोविंदराज स्वामी को 4 *तिरुपोणक्कम्* तथा चंदन, सुपारी पत्ते, शुद्ध कर्पूर, कुल 436 अतिरस पड़ी वेंकटेश्वर के लिए वर्ष में एक बार (सं. 171) देने की बात है। इन दानदाता ने गोविंदराज स्वामी के *ब्रह्मोत्सवों* के 10 दीन, *आर्द्रा* के साथ *अंकुरार्पणम्* से लेकर विशाखा के तीर्थवारि तक का विवरण इसमें प्रस्तुत नहीं किया। इनका विवरण अप्रस्तुत है। इसलिए गोविंदराज स्वामी के लिए एक वर्ष में 4 *ब्रह्मोत्सव* मनाते हैं।

नायनार कपिलेश्वर उडै नयनार के मंदिर (तिरुपति के पास कपिलेश्वर स्वामी का मंदिर) के *स्थानत्तार* ने एक परिलेख लिखाया है। यह पत्थर पर खुदवाया गया शिलालेख है (संख्या 172)। यह दिनांक 30-01-1563 में लिखाया गया। यह मंदिर की नर्तकियों में से एक शेव्वुसानि की ओर से है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि कपिलेश्वर स्वामी के मंदिर की प्राकार दीवारें तथा पाकशाला बिजली गिरने से नष्ट हुई थीं। राचवीडु नायक के आदेश पर उस नृत्यंगना ने उनको पुनर्निर्मित करवाकर *विघ्नेश्वर* (विनायक भगवान) की मूर्ति की स्थापना *नृत्य मंटप* में करवायी है। भगवान की सेवाओं के लिए 200 *पणम्* मूल धन अर्पित किया है। इससे हर रोज फूल मालाएँ और प्रसाद समर्पण होने थे गणपति के लिए। यह कपिलेश्वर स्वामी का मंदिर सब से पहले 13 वीं शताब्दि में प्रचार में आया है। इसके बाद उस मंदिर की ''मैनेजिंग कमटी'' अलग बन गयी।

कामरसप्पय्या के पुत्र करणीक अप्पलय्या ने एक विशेष उत्सव का आरंभ *रथ-सप्तमी* के दिन *मकर (तै)* मास में आरंभ किया। इसे मलैकुनिन्न पेरुमाल और उनकी दो नाच्चियारों के लिए *अंकुरार्पणम्, होमम्, तिरुमंजनम्* के साथ आरंभ किया गया। उसके अनुसार *सूर्य - प्रभा* वाहन पर उत्सव - मूर्तियों को शोभित कराकर शोभा यात्रा संपन्न की जाती है। एक और उत्सव *सुदर्शन* का भी वराह स्वामी *मंटपम्* में मनाया जाता है। इन उत्सवों में *तिरुमंजनम्* तथा प्रसाद समर्पण भी यथा विधि संपन्न होते हैं। रात में *वैकुंठ-विमानम्* की भी शोभा यात्रा निकलती है (आजकल यह नहीं है)। उक्त दाता ने उसी समय गोविंदराज स्वामी के लिए पाँच दिन का *पल्लवोत्सवम्* भी मनाया है। यह उत्सव *उत्तिरट्टादि* नक्षत्र (उत्तराषाढ़ा) से *कृत्तिका* नक्षत्र तक चलता है। यह *चित्तिरै* मास का उत्सव है। इस उत्सव से संबन्धित

कुछ समर्पण और पूजाएँ *तिल्लैक्कुवाइत्तान - मंटपम्* में होते हैं। शोभायात्रा शेषवाहन पर प्रथम दिवस की रात को ही होती है। इसी प्रकार की शोभायात्राएँ द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ दिनों में *तिरुच्चि* वाहन पर भगवान को आसीन कराकर चलती है। *वैकुण्ठ विमान* पर पाँचवें दिन की शोभायात्रा चलती है। प्रथम चार दिनों में रात के समय शोभायात्राएँ चार वीथियों में संपन्न होती हैं तो पाँचवें दिन की रात को आठ वीथियों में (संख्या 173)।

मलैनिन्रान भट्टर अप्पय्यन के पुत्र वेङ्कटत्तुरैवार ने *पाशु-बन्धन* उत्सव का आरंभ तिरुपति में दिनांक 26-11-1545 ई. में किया था। इस उत्सव में आठ *अन्न प्रसाद* भी अर्पित होते हैं। उन्होंने इसके लिए मूल धन राशि 185 *पणम्* समर्पित किया था (संख्या 60)।

श्रीवेङ्कटेश्वर भगवन को हर दिन सैंकडों अन्न-प्रसाद की इकाइयों की व्यवस्था हो गयी थी। विशेष दिनों, विशेष उत्सवों तथा विशेष संदर्भों से संबन्धित समर्पण इनसे अलग हैं। ये उत्सव मूर्तियों के लिए भी अर्पित होती हैं। गोविंदराज स्वामी के लिए भी इसी प्रकार के समर्पण हुए हैं। *प्रसाद* मूल विराट तथा अन्य मूर्तियों को अर्पित होते हैं और उनका चौथा भाग दाताओं (उभयदारों) को मिलता है और ¾ भाग 12 *स्थानत्तारों,* मंदिर के सेवकों, तथा भक्तों में *प्रसाद* के रूप में बाँटा जाता है। *स्थानत्तार,* मंदिर के पुजारी और अन्य सेवक समुदाय को वेतन नहीं मिलता है। वे मंदिर से प्राप्त *प्रसाद* पर ही पूर्ण रूपेण आधारित होकर भगवान की सेवाएँ करते थे। केवल उत्सवों और विशेष संदर्भों की सेवाओं के लिए मात्र कुछ भृतियाँ मिलती थीं। यह भी दाताओं के निवेश मूल धन की व्याज से ही वितरित होती थीं। इसमें गाँव दान भी सम्मिलित हैं। 13 वीं शती तक आते आते मूल विराट तथा मूर्तियों को अर्पित धन राशि या गाँव दान की आमदनी से सेवकों के लिए मिलनेवाला *प्रसाद* और विशेष भृति सभी सेवक समुदाय के लिए पर्याप्त नहीं होता था। उनकी आजीविकाएँ बहुत मुश्किल से चलती थीं। इस पर दृष्टि डालकर उस समय के *स्थानत्तार* ने वीर नससिंह यादव राय को अनुदान बढाने के लिए आवेदन पत्र दिया। परिणामतः कुछ अतिरिक्त खेत मंदिर को मिले। इनसे *प्रसाद* समर्पण और सेवकों के लिए आजीविका भृति कुछ बढे। कालांतर में भक्तों की ओर से भगवान के लिए भेंटें हुईं। इस से प्रसाद वितरण में वृद्धि बढी। मंदिर सेवकों को भी प्रसाद और भृति पहुँचाने में कुछ सुविधा हुई। भगवान से संबन्धित कार्यों को करने के लिए जन भी अच्छी संख्या में आने लगे।

तिरुमल और तिरुपति के ये पट्टादार, (लेस्सीज़) *प्रसादक्कारर - महामेदंगल्* संख्या की दृष्टि से ग्यारह व्यक्ति हैं। इन्होंने अलग अलग रूप से धन राशि का दान दिया। मंदिर के कोषागार में यह राशि 3260 *पणम्* हुई। समय था 06-02-1547 ई.। विविध प्रकारों के प्रसादों की व्यवस्था इस धन राशि से हुई। तिरुपति में विट्ठलेश्वर और गोविंदराज के लिए भी की गयी है (संख्या 88)।

तिरुवाडि राज्य (ट्रावन्कूर राज्य) के राजा तिरुवाडिराज ने दिनांक 14-09-1557 ई. में श्रीमान महामंडलेश्वर रामराज तिम्मयदेव महाराज के पुत्र विट्ठलराजा के मंगल की भावना (पुण्यम्) से कुलयपाट्टम् द्वितीय अर्ध गाँव का दान किया है। यह गाँव ताम्रपर्णि नदी के तट पर है। उस गाँव से वार्षिक आमदनी 350 *रेखै-पोन* मिलती थी। इससे श्रीवेङ्कटेश्वर को 12 *तिरुप्पोनकम्* तथा गोविंदराज को 12 *तिरुप्पोनकम्* हर दिन अर्पित होते हैं। इस गाँव का प्रथम अर्द्ध भाग शूडिकोडुत्त नाच्चियार को उनके *मार्गळि-नीराट्टम्* उत्सव के लिए और शुक्रवार के उत्सव के लिए पहले ही अर्पित किया गया था। (सं.158) ये देवी भी तिरुपति में ही प्रतिष्ठित की गयी हैं। *प्रसादम्* का दाता भागांश तिरुवेङ्कटनंबि तिम्मय्यार के पुत्र श्रीनिवासन को दिया जाता है। ये वत्स-गोत्र तथा *वैखानस - सूत्र* के ब्राह्मण और मंदिर के पुजारी हैं।

मंदिर को देवदान अर्पित करनेवाले व्यक्तियों में केवल धनवान ही नहीं, बल्कि सामान्य भक्त भी थे जिनकी आमदनी भी बहुत सीमति रहती थी। इन भक्तों ने अपनी शक्ति की सीमा से बढकर देवदान समर्पित किये थे। इनमें मंदिर की कुछ नृत्यांगनएँ भी थी। मंदिर के द्वारपालकों ने भी अपनी ओर से समर्पण अर्पित किये। ये समर्पण ब्रह्मोत्सवों के 7 दिन के लिए हुए हैं और 10 *ब्रह्मोत्सवों* के लिए ये वितरित हैं। ये समर्पण पेरिय - पेरुमाल के उगादि उत्सव के लिए भी हुए हैं। उगादि दक्षिण में नव वर्ष के रूप में मनाया जाता है (संख्या 70)।

कुछ भक्तों ने दूर दूर से आनेवाले भक्तों की प्यास बुझाने के लिए पीने के पानी की व्यवस्थाएँ पहाडी मार्ग में की है तो कुछ भक्तों ने छाया देनेवाली झोंपडियों की व्यवस्था की। ये पहाडी रास्ते से मंदिर तक चलनेवाले भक्तों के लिए की गयी थी। पर्वत तल में, बीच रास्ते में और तिरुमल पर भी इस प्रकार की व्यवस्थाएँ की गयी हैं। नेमि शेट्टि नामक एक तिरुपति के व्यापारी ने भक्त यात्रियों की सेवा के लिए मंदिर के कोषागार को कुछ रकम अर्पित की है।

यह *पुरट्टासि ब्रह्मोत्सव* के समय बडी मात्रा में भक्तों को छाछ पिलाने के लिए प्रस्तुत की गयी है (संख्या 39)। उदयगिरि नरसिंग भट्टार के पुत्र देवराय भट्टार ने 1600 *नर्पणम्* मंदिर कोश में जमा किया था। इसमें दो पेय जल वितरण केन्द्र एक *मंटपम्* के पास स्थापित करने का उद्देश्य निहित था। इसका *व्यासराय मंटपम्* के पास होना भी लक्षित था। मासिक वेतन पर दो सेवकों को भी इस कार्य के लिए नियुक्त किया गया था। दैनिक रूप से उनको *प्रसादम्* भी मिलता था। *पुरट्टासि ब्रह्मोत्सव* के समय में कुछ ज्यादा मात्रा में पेय जल का वितरण होना स्वाभाविक ही था। इसके लिए सेवकों को अतिरिक्त भृति भी मिलती थी। मंगलम् गाँव के पास पैदल के मार्ग में एक और पेयजल *मंटपम्* की स्थापना की

गयी जो पहाड की पूर्व दिशा में है। वहाँ के सेवक को साधारण वेतन के सम वर्षिक तौर पर एक *रेखै-पोन* भी मिलता था। यह उसे जलकेन्द्रों के पर्यवेक्षण के लिए मिलता था (संख्या 61)।

मंदिर के लेखापाल थे दामोदरन। उन्होंने तिरुमल पर एक पेयजल केन्द्र का आरंभ किया। वहाँ के सेवक को *प्रसादम्* का एक अंश देने की व्यवस्था भी इसके साथ हो गयी (संख्या 105)। एक और पेयजल केन्द्र का आरंभ तिरुमल पर हुआ। इसका सेवाभार मंदिर वितरण सेवकों द्वारा स्वीकृत किया गया। इसका आरंभ एल्लप्प नायक ने किया। भगवान वेङ्कटेश्वर के समर्पणों के लिए कुछ अंश दान दिया था (संख्या 130)।

पोट्लपाडि तिम्मराज और *स्थानत्तार* दोनों ने मिलकर तिप्पसानि की पुत्री तिरुवेङ्कट - मानिक्कम् को सम्मानित किया। ये मंदिर की नृत्यंगना थी। मंदिर की उसके द्वारा की गयी सेवाओं के लिए यह सम्मान किया गया। उस सम्मान में उसको *दंडिकै* (पालकी) को पुरस्कार के चिह्न के रूप में दिया गया था। यह एक उच्चतर गौरव चिह्न था। उसका कारण था तिरुवेङ्कटमुडैयान और अलमेलमंगा ने उस पर कटाक्ष किया। उसका नाम ''तिरुवेङ्कट - मानिक्कम्'' रखा गया। इस के सूचक के रूप में *स्थानत्तार* ने *धर्म - शासनम्* प्रदान किया। उसकी ओर से एक संपूर्ण प्रसाद - तलिगै उसके नाम पर सिंचित फूल वाटिका के संरक्षक को मिलना है। उस पुष्पवाटिका का नाम है - 'अलरमेलमंगै नाच्चियार पुष्पवाटिका'। इतना ही नहीं उस नृत्यांगना के निवास स्थान पर (तिरुपति में) एक पूर्ण *प्रसादम्* गोविंदराज मंदिर से जायेगा। यह हर रोज होगा (संख्या 74)।

तिरुमलराजा के महल में सेवारत 21 कुमारमंगलम् के निवासियों को श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में सेवार्थ भेजा गया। यह दिनांक 27-07-1552 ई. के एक आदेश से हुआ है। उनके द्वारा हर दिन एक छोटी माप ''एक *उरि*'' का घी हर एक द्वारा भगवान को अर्पित करने की आज्ञा भी उस आदेश में थी (संख्या 135)।

निम्न सूची तिरुमल पर भगवान वेङ्कटेश्वर को संपन्न किये जानेवाले विभिन्न उत्सवों और सेवाओं का परिचय देती है। ये सब भगवान के लिए निर्दिष्ट और विभिन्न दाताओं द्वारा आवश्यक धनराशि या अन्य समर्पणों से संपन्न होनेवाले उत्सव और आराधनाएँ हैं (संख्या 168 और 171)। ये मूल विराट और उत्सव मूर्तियों को संपन्न किये जानेवाले है -

1. **ब्रह्मोत्सव** : दस *ब्रह्मोत्सव* उत्सव मूर्तियों के साथ संपन्न होते हैं। 14 दिन पर्यन्त हर ब्रह्मोत्सव मनाया जाता है। हर ब्रह्मोत्सव *ऊँजल मंटपम्* में मनाया जाता है। यह *मंटपम्* तिरुमल राय के द्वारा निर्मित है और *ध्वजस्तंभम्* के सामने और *संपंगि प्रदक्षिणम्* में हैं। सालुव नरसिंह राय के द्वारा पुनर्निमित होकर यह सालुव नरसिंह *मंटपम्* नाम से व्यवहृत है।

2. ***अन्ना - ऊँजल - तिरुणाल*** (**डोलोत्सव या ऊँजल उत्सव**) : यह उत्सव 5 दिन पर्यन्त चलता है। इसका आरंभ सालुव नरसिंहराज ने किया है (दिनांक 15-06-1473 ई. में - संख्या 50 जिल्द II)।

3. ***पवित्रोत्सवम्*** : यह भी पाँच दिन पर्यन्त मनाया जाता है। इसका आरंभ सालुव महादेव महाराज ने किया है (दिनांक 18-01-1464 ई. - (संख्या 18, जिल्द II)।

4. **सहस्रनाम - अर्चना** : (वास्तव में यह *अष्टोत्तर - सहस्रनाम अर्चना* है - 1008 भगवान के नामों के उच्चारण सहित अर्चना है।) यह पाँच दिन का आध्यात्मिक कार्यक्रम है। आजकल तो यह *उदयार्चना* के समय संपन्न होता है। फूल और *तुलसी दलों* से यह पूजा संपन्न होती है। यह दैनिक पूजा है। 16 वीं शताब्दी तक इसका प्राचुर्य नहीं रहा। उन दिनों में *अष्टोत्तर शतनाम* (108 नाम) पूजा अधिक थी। अब एक नया उत्सव सहस्रनामार्चना के रूप में आरंभ किया गया है।

5. ***सहस्र कलशाभिषेकम्*** : यह एक दिन का आराधनोत्सव है। उत्सव मूर्तियों को 1008 कलशों के जल से स्नपित किया जाता है। यह एक *आर्जित* सेवा है। मंदिर में निर्धारित शुल्क अर्पित करने पर चलायी जानेवाली सेवा है। आजकल इस सेवा का मूल्य रु.2500/- है। संख्या 171 के अनुसार यह सेवा वेङ्कटत्तुरैवार (उग्र-श्रीनिवास) को अर्पित होती है।

6. ***अध्ययनोत्सवम्*** : यह 25 दिन का उत्सव है। *मार्गळि* मास में यह उत्सव मनाया जाता है। इस समय *तमिल प्रबन्धम्* का पाठ होता है।

7. ***वसंतोत्सवम्*** : यह वसंत उत्सव 5 दिन का उत्सव है। इसका आरंभ तिरुमल राजय्या ने किया है।

8. ***दमनारोहण - वसंतोत्सवम्*** : दमनम् (एक सुगंधित पत्तों का पौधा) से मूर्तियों को अलंकृत कर अर्चित किया जानेवाला उत्सव है। यह *आणि* मास में 5 दिन का उत्सव है।

9. ***ऊँजल*** **उत्सव** : यह झूले का उत्सव है। यह 9 दिन पर्यन्त संपन्न होता है।

10. ***पेण्डुल-तिरुणाल*** (**विवाहोत्सव**) ***वैवाहिकोत्सव*** : यह 5 दिन का उत्सव है। ताल्लपाक तिरुवेङ्कटनाथ (चिन्निना) द्वारा आरंभ किया गया उत्सव है यह। (दिनांक 17-07-1546 ई. संख्या 71, जिल्द V)।

11. ***लक्ष्मीदेवी उत्सव*** : यह 5 दिनों का उत्सव है।

12. ***कोडै तिरुणाल*** : यह ग्रीष्म - उत्सव है। 20 दिन पर्यन्त मनाया जाता है।

13. ***प्लवोत्सव*** : पुष्करिणी में भागवान नाव पर शोभित होते हैं। यह नौ दिनों का उत्सव है।

14. ***पल्लवोत्सवम्*** : यह पाँच दिन का उत्सव है।

15. ***फलोत्सवम्*** : यह तीन दिन का उत्सव है।

16. ***अध्ययनोत्सवम्*** : यह उडैयवर (रामानुज) का उत्सव है। 6 दिन पर्यन्त चलता है।

इन सोलह उत्सवों के साथ-साथ 10 *ब्रह्मोत्सव* भी अलग अलग महीनों में *विशेष तिरुणालों* (मेला) के रूप में मनाये जाते हैं।

उक्त उत्सवों के साथ-साथ *तिंगल उत्सव* (मासोत्सव) भी मनाये जाते हैं। वर्ष के हर मास में ये उत्सव चलते हैं। उन उत्सवों में विशेष निवेदन और प्रसाद अर्पण भी होते हैं - अलग अलग मूर्तियों को ये अर्पित होते हैं -

12 *मास संक्रमण* : ये बारह अयनांत हैं। तमिल 12 मासों में आते हैं ।

13 *अमावस्या* के दिन।

13 *पूर्णिमा* के दिन।

25 *दशमी* के दिन (शुक्ल पक्ष दशमी और कृष्ण पक्ष दशमी)

25 *एकादशी* के दिन (शुक्ल पक्ष एकादशी और कृष्ण पक्ष एकादशी)

25 *द्वादशी* के दिन (शुक्ल पक्ष द्वादशी और कृष्ण पक्ष द्वादशी)

13 नक्षत्रों के दिन (*रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्यमी, उत्तर - फल्गुणी, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा और श्रवणम्*)

इसी प्रकार कुछ *विशेष - दिवस,* धार्मिक दिवस, उत्सव दिन आदि भी वर्ष में आते हैं। उन दिनों पर विशेष पूजाएँ और प्रसाद समर्पण अलग-अलग मूर्तियों को होते हैं। यथा - *श्रीजयंती, उरि - आडि, उत्थान द्वादशी, अर्पशी - पूर्वाषाढ़ा, दीपावली, कार्तिकै, मकर संक्रमणम्, पादियवेट्टै, तै - पूषम्, तन्नीर - अमुदु, उगादि, श्रीराम नवमी, वैकाशी - विशाखा* और *माशी* - मखा।

इन विशेष दिनों के अलावा कुछ भक्तों ने अपने जन्म - दिनों या जन्म नक्षत्रों के दिनों पर विशेष पूजा - अर्चना तथा समर्पणों की व्यवस्थाएँ भी की हैं।

श्रीरस्तु - शुभमस्तु

अध्याय - 22

आरवीडु वंश - शासक और अनुगामी काल

(खंड VI, पार्ट 1. ति.ति.दे. के अभिलेख)

अत्यधिक क्षत-विक्षत और अपूर्ण अभिलेख खंड़ 6 के अभिलेख संख्या 1, भाग 1 के द्वारा *तिरुमलेन्द्र* अर्थात् *तिरुमलराय महाराय आरवीडु बुक्का,* उपाधिकृत *अंतेम्बवरगंडा* के विषय में सूचना प्राप्त होती है। उनका पोतध्वज वराह से अंकित था और उनकी महारानी *वल्लांबिका* (बल्लांबिका) के सुपुत्र नाम रामराज था।

कल्याणपुरा के महाराज *श्रीरंगराज* इसी *रामराज* के पुत्र थे और उन्होंने अपनी धर्मपरायणता और दयालुता प्रदर्शित करते हुए अनेक दान और उपहार प्रदान किए। इस *रामराज* को चौंसठ कलाँए सिद्ध थीं और वह चलिक्किनारायण[1], नानावर्ण - श्रीमड़ंलीक गंडा, राय - राहुत्त - मिंद आदि नामों एवं उपाधियों से अलंकृत था। इनका विवाह तिरुमलांबिका से हुआ था। *रामराज* के भाई *तिरुमलेंद्र* थे और उन्होंने डोला - महोत्सवम् (झूला-उत्सव) प्रारंभ कराया। इस उत्सव का आरंभ 15-12-1561 ई. में भगवान वेङ्कटेश्वर के लिए हुआ था। इन्होंने *वेंगलांबा* से विवाह किया और इनके चार पुत्र - *रघुनाथ, श्रीरंग,* रामराज और वेङ्कटाद्रि हुए। *तिरुमलेंद्र*[2] ने तुर्कों के सुल्तान *तुलुक्कानम* - अल्ला समेत अनेक राजाओं को पराजित किया।

इस तिथि 15-12-1561 से केवल दो दिन पहले तिरुमल्य्यराजा ने 16,500 नर्पणम् (मुद्रा) मंदिर को दान में दी और साथ ही 14 दिनों के लिए किए जाने वाले 10 ब्रह्मोत्सवों में चलमूर्तियों के लिए नैवेद्यार्थ 140 अतिरस - पडि प्रदान किया। यही नहीं 15 अन्य उत्सव जो 110 दिनों के ये, उसके लिए 110 *अतिरस-पडि,* 15 मासिक नक्षत्र और अमावास्या तथा पौर्णमी दिवस अर्थात् कुल 217 दिनों के लिए 217 अतिरस-पडि। साथ ही *अतिरस-पाडि* 11 उत्सव दिवसों के लिए दान दिया। किन्तु ग्रंथ पांच की संख्या 168 में कुल योग 439 *अतिरस-पडि* 439 दिवस के लिए दिया गया है, जबकि वास्तविक

---

1. संभवतः यह उपाधि *'चालुक्य-नारायण'* 'आरवीडु राजवंश का पूर्व चालुक्यों और यादवरायों से कुछ संबंध बताता है। पूर्वी चालुक्यों का सीधा प्रभुत्व तिरुपति तक आ गया प्रतीत नहीं होता, किन्तु यादवरायों ने इस क्षेत्र पर शासन अवश्य किया था और यह संभव है कि पहले यादवरायों के शासन काल में गोविंदराज के देवालय को *चालुक्य- नारायणन-कल* या मरक्काल कहा गया।

2. यह संदर्भ अवश्य ही अतिशयतापूर्ण दंभोक्ति हो सकती है क्योंकि 1565 ई. में हुए तालिकोटा के युद्ध में अपने बडे भाई अलिय - रामराजा की मृत्यु के उपरांत वह *सदाश्विराय* को अपने साथ लेकर पेनुकोंडा की ओर भाग खडा हुआ था।

संख्या 478 बनती है। इन 39 दिनों के अंतर को कुछ अन्य उत्सवों में संभवतः समाहित कर लिया। साथ ही इसी दिन को उन्होंने भगवान वेङ्कटेश्वर के वसंतोत्सव का पांच दिवसीय समारोह भी उद्घाटित किया। इससे भी काफी समय पूर्व 27-7-1552 ई. को उन्होंने कुमारमंगलम् ग्राम के इक्कीस लोगों को शुद्ध घी की अनवरत आपूर्ति हेतु नियुक्त किया। ये लोग पहले उनके महल चंद्रगिरि में घी की आपूर्ति करते थे (ग्रंथ 5 संख्या 135)।

सदाशिव राय के समय से ही *अलिय रामराज* ने भेंट की मात्रा निर्धारित की थी (संख्या 2)। उसके साथ-साथ *कोमंडूरु अप्पावय्यंगार* के पुत्र अप्पय्यर ने 27-11-1579 ई. वेङ्कटेश्वर भगवान तथा *अलमेलुमंगा-नाच्चिमार* हेतु भेंट का प्रबंध किया।

शक संवत् 1504 चित्रभानु नामक वर्ष में 16-1-1583 ई. को *श्रीरंगदेव महाराजा* जब अपना शासन चला रहा था तब *तम्मू* नायक के पुत्र *तिल्लप्प नायक* ने विजयनगर शहर से तिरुपति में अपने द्वारा बनवाए गए मंडपम् के लिए भेंट का प्रावधान किया। यह गोविंदराजा के पादियवेट्टै दिवस को हुआ और गोविंदराज के लिए वार्षिक जन्म नक्षत्र मार्गशीर्ष और मासी माह में होने वाले उत्सव के लिए भेंट, उपहार, स्नानादि हेतु था। उनकी दो देवेरियाँ आंडाल, सेनई मुदलियार और रामानुज मंडपम् में विराजमान थे और रात्रि में मशालों के प्रकाश में एक जुलूस की तरह (शोभायात्रा के समान)वे देवालय लौटे और दो नाच्चिमार गोदादेवी (आंडाल), सेनइ मुदलियार और रामानुज पालकी में सवार थे (संख्या 3)।

अय्यावय्यंगार के पुत्र तथा *तोलप्पाचार्य*, के *पौत्र ईत्तूर तिरुमल कुमार-तातार्य*, ने 25-9-1583 ई. को देवालय हेतु लगभग 720 रेखै पोन की वार्षिक आमदनी वाले गाँव दान में दिए। तब *श्रीरंगरायदेव महाराय* का शासन था और उन्होंने पूजा-अर्चना की प्रातःकालीन विधि के उपरान्त दो भेंट प्रतिदिन प्रदान करने का प्रबंध कराया। अर्पसी माह के ब्रह्मोत्सव को फिर से प्रारंभ कराया और उसे 12 दिन तक प्रतिदिन अनेक भेंट और अर्चना-पूजा द्वारा विधिविधान से कराने के लिए कहा जो शोभायात्रा के दौरान अनेक - स्थानों पर दी जाती थीं। कुल 1512 *तिरुप्पोनक* भेंट ही नहीं दी गई बल्कि इनके साथ ही शोभायात्रा की मूर्तियों को अनेक *पण्यारम्* भी दी गईं। छः प्रकार की *वगइ - पडि* वेङ्कटेश्वर की मूल-मूर्ति को दी गईं। ये मूर्ति गतिशील थीं और अर्पशि-ब्रह्मोत्सव से पूर्व के बृहस्पतिवार को यह होता था। फूलों के मुकुट से सजावट होती थी। अनेक प्रकार की सुगंधि का प्रयोग होता था तथा तिरुमंजनम हेतु, पहले के शुक्रवार को अनेक प्रकार की भेंट दी जाती थीं (संख्या 5)। केवल हंस, गरुड, और गज वाहन ही शोभायात्रा के लिए नियत हैं। इस *ब्रह्मोत्सव* की अनोखी विशेषता यह थी कि देवालय के मुनीम देवालय की आय-व्यय का लेखा - जोखा प्रस्तुत करते थे और उस मुनीम का सम्मान चंदन से होता था।

इस दानदाता ने *कैशिक-पुराण* के श्रवण के उपरान्त उत्थान द्वादशी के दिन वेङ्कटेश्वर का और उरि-आडि, के दिन कृष्ण तथा मलयप्पा के चरणारविंद में अतिरिक्त भेंट प्रदान की।

जब शोभायात्रा में भगवान की मूर्तियाँ अनेक अवसर एवं उत्सवों पर विभिन्न वाहनों में तिरुपति के अनेक स्थानों व आसपास के स्थानों पर ले जाई जाती थीं, तब एक बार दान में प्राप्त एक गाँव *अविलाल* के एक निवासी ने तिरुपति से दक्षिण में एक मील की दूरी पर बसे अपने गाँव में इन शोभायात्रा-मूर्तियों को ले जाने का विचार किया और 18-10-1584 ई. को अमल में ले आया कि दो या तीन दिनों तक ब्रह्मोत्सव के विशेष दिवसों पर तिरुमंजनम् के साथ इनको भी रखा जाये। यह तारीख इसलिए नियत की गई कि गाँव के मडंपम में तिरुमंजनम् के साथ अन्यान्य निवेदनों की व्यवस्था भी हो जाएगी। गाँव के बगीचे में इसके लिए मंडप सजाया गया(संख्या 6)। तब तक इससे पूर्व पास के ही एक गाँव कूपुचंद्रपेटा में पूर्णमासी की रात्री को गोविंदराज की प्रतिमाओं की शोभायात्रा का आगमन एवं विश्राम हुआ करता था और वहाँ अनेक कीमती भेंटें भगवान को अर्पित की गई थीं।

नरसय्या के पुत्र अवसरम चेन्नप्पा ने 22-4-1586 को वेङ्कटेश्वर और अलमेलुमंगा-नाच्चिमार पर तीन दिनों के लिए यानी गरुड़ ध्वज फहराने के दिन, और आडि महीने के ब्रह्मोत्सव के विडायार्रि दिवस पर, उसी आडि मास के पुनर्वसु के दिन भी समर्पित किया जाना चाहिए। तिरुमल के मंडप में विडायार्रि के दिन सेनई - मुदलियार और भाष्यकार (रामानुज) की चलमूर्तियों को भी यह नैवेद्य समर्पित होगा (संख्या 7)। इन आडि-ब्रह्मोत्सवों का विवरण सदाशिवराय के काल में उत्कीर्ण शिलालेखों की सूची में प्राप्त होता है। यह भी संभव है कि बीच में इनके चालू नहीं रहने तथा अभिलेख सं.7 से कुछ समय पूर्व पुनः प्रारंभ किया गया लगता है। जिस भांति अर्पशि ब्रह्मोत्सव (25-9-1583) में पुनः प्रारंभ कर दिया गया हो (संख्या 5)।

सर्वधारी शक संवत् 1510 अर्थात् 1588 ईस्वी में *श्रीरंगदेव महाराय* का शासन चल रहा था (संख्या 8)। यहाँ यह उल्लेख प्राप्त होता है कि शक संवत् 1514 नंदन नामक वत्सर के दौरान *वेङ्कटपतिदेव महाराय* विजयनगर साम्राज्य पर शासन करते थे। 14-7-1592 ई. (संख्या 9), इस तिथि को विजयनगर के एक व्यापारी *तिम्मप्पा नायक* ने एक तो तिरुमंजनम के लिए भेंट दी, दूसरे *गोविंदराज, नाच्चिमार, सेनइ मुदलियार* और *रामानुज* के लिए *रामानुज* के बारह दिवसीय अध्ययनोत्सव में नैवेद्य का प्रबंध किया। गोविंदराज के वैकाशि के तीन ब्रह्मोत्सवों के प्रथम दिन और रथोत्सव के दिन तथा, आणि और आवणि माह के ब्रह्मोत्सव में, मार्गल नीराटोत्सव में रथ में बैठी आंडाल को, चित्रै मास में 4 दिन के लिए होने वाला पुष्पोत्सव तथा स्नानोत्सव, दानदाता मंडप में नैवेद्य तथा शोभायात्रा के लिए, तीर्थवारि (सरोवर स्नान, आळ्वार तीर्थम् या कपिल तीर्थम्) के दिनों में गोविंदराज को नैवेद्य जब वैकाशि, आणि, आवणि और मासी के ब्रह्मोत्सव की समाप्ति के पश्चात् प्लव - उत्सव के दिवस पर

और ग्रीष्मोत्सव में से एक दिन, स्नान - नैवेद्य हेतु और - *गोविंदराज* की *तुलसीमाहात्यम्* अर्थात् *मुक्कोटि - द्वादशी* के दिन और *वसंत - तिरुनाल* (वसंतोत्सव) के तीसरे दिन को नैवेद्य का समर्पण। *रामानुज* के *अध्ययनोत्सव* के समय, देवालय के बाहरी द्वार पर *गोविंदराज, नाच्चिमार* और *एमपेरुमानार* (रामानुज) को गोविंदराज देवालय के लेखाकारों से हिसाब - किताब का विवरण प्रस्तुत किया हुआ बताते हैं।

तंबि शेट्टी के पुत्र, *शिलंबिडैय्यारशेट्टी* रामापुरम् के नागरत्तारों में (बेरिशेट्टी निवासी) प्रसिद्ध व्यापारी थे। रामापुरम्, तिरुपति के दक्षिण में लगभग डेढ मील की दूरी पर स्थित था। इन्होंने *श्रीवरदराज पेरुमाल, नाच्चिमार* और *तिरुक्कच्चिनंबी* की मूर्तियाँ, तिरुपति के पश्चिम में स्थित *पेरिय - राजा वीधी* (मुख्य मार्ग) के एक मंडप में स्थापित कराईं और 19-4-1596 ई. को जब *वेङ्टपति देव महाराय* का शासन था इस देवालय में प्रतिदिन पूजा - अर्चना तथा नैवेद्य की व्यवस्था की। श्रवणा नक्षत्र के तेरहवें दिन जो *वरदराज* (जैसे वेङ्कटेश्वर का है) का जन्म नक्षत्र भी माना जाता है और *श्रीजयन्ती, दीपावली, कार्तिकै, तै-पूषम* और वैकाशि-विषाखा के दिनों में तथा मार्गली के तीस दिनों में तथा अन्य शुभ दिनों में पूजा-प्रार्थना की जाने लगी। कुछ विशेष दिनों में गली के व्यापारी अपनी भैंसों के दूध से बनाए गए घी को गोविंदराज के मंदिर के लिए देने लगे। वैशाखी ब्रह्मोत्सव की समाप्ति पर देवार्चन के पश्चात् तीर्थवारि से लौटने पर और कोदै (ग्रीष्मऋतु) उत्सव के दसवें दिन तैरोत्सव के लिए आळ्वार - तीर्थम् के लिए जाने से पूर्व भी पूजार्चना की व्यवस्था हुई। विजयदशमी के दिन गोविंदराज को दानदाता के मंडप में उनके मूलग्राम रामापुरम् में ले जाया गया और वहाँ दान दिए गए (संख्या 12)। पश्चिमी दिशा की राज-वीथी आजकल 'बेरीगली' कही जाती है क्योंकि बेरिशेट्टी वर्ग के ज्यादातर लोग वहाँ रहते हैं और वे तिरुक्कच्चिनम्बी को एक संत (आळ्वार) मानते हैं और वे उनके वर्ग या समुदाय के हैं। संभव है कि दान-दाता स्वयं बेरिशेट्टी रहा हो। (कपिलतिर्थम् कोदै तिरुनाल के दसवें दिन गोविंदराज के लिए में प्लवोत्सव मनाया गया किन्तु बाद में यह रुक गया और आजकल यह केवल कपिलेश्वर के लिए तीन दिन का होता है जब कृत्तिका, रोहिणी, और मार्गशीर्ष नक्षत्रों की मार्गली के जगमगाते पक्ष का समय होता है तथा यह दिसम्बर के द्वितीय पखवाडे का समय होता है।

31-3-1606 ई. को विजयनगर के बोक्कसम कृष्णय्या ने वेङ्कटेश्वर के लिए कुछ निर्धारित दिनों के समय नैवेद्य का प्रावधान किया। इनमें आवणि मास का एक निर्धारित दिन सहित 11 ब्रह्मोत्सवों के अमुक दिन भी थे। साथ ही प्लवोत्सव के दिनों में गोविंदराज के लिए, हनुमान की मूर्ति के मंडप के सामने इस मूर्ति को गोविंद पुष्करिणी के किनारे (स्वर्गीय महंत प्रयागदास ने मंदिर के सामने और देवस्थान् धर्मशाला के पार्श्व में के स्थित पुष्करिणी जो शताब्दियों पूर्व ही ध्वस्त हो गया था और जिसे

उन्होंने लगभग पचास वर्ष पूर्व धर्मशाला के साथ पुनः उद्धार करके बनवाया था। प्रयागदास देवालयों के अंतिम विचारणकर्ता माने जाते हैं) कोदै - तिरुनाल उत्सव के बीसवें दिन चढ़ाया जाना था और साथ ही गोविंदराज और नाच्चिमार के मंडप में वैकाशि और आणि ब्रह्मोत्सव में समर्पित होना था। (संख्या 13)। गोविंदराज के लिए नौका उत्सव उन दिनों गोविंद पुष्करिणी में मनाया जाता रहा होगा और संभवतः कपिलतीर्थम् में नहीं। शायद यह भ्रमवश संख्या 12 में उल्लेख किया गया है। आजकल यह इस पुनरुद्घाटित तालाब में मनाया जाता है। इसका उद्घाटन विचारणकर्ता (प्रशासक) के द्वारा हुआ। यह प्लवोत्सव पाँच दिनों के लिए चलता है और कृष्ण तथा आंडाल (गोदादेवी) के निमित्त होता है। प्रथम दिवस की रात को कृष्ण और आण्ड़ाल के लिए, राम, सीतादेवी और लक्ष्मण के लिए द्वितीय रात्रि को, गोविंदराज के लिए तीसरी रात को नियत है। मखा माह की पूर्णिमा और उसके दो आगामी दिन गोविंदराज के लिए नियत है।

लक्कप्पा नायक के पुत्र *हनुमय्यर अन्नंगार* विजयनगर सेना में मिलटरी अफसर थे और विजयनगर शहर में *माल्यवंत*[3] *पहाडी* पर पदा - रुढ़ थे। उन्होंने 28-11-1606 ई.में वेङ्कटेश और अलमेलमंगा नाच्चियार के लिए 5 मिठाइयों के साथ प्रतिदिन भोजन - भेंट आर्पित कीं। इस अर्पण में प्रातः काल दध्योदनम् (दही चावल) भी था। *वेङ्कटपतिदेव महाराय* और उनकी रानी *कृष्णाजी - अम्मन* के सौजन्य से एक गाँव की तीन चौथाई आमदनी, एक तालाब और तीन रजवाहे, कुल मिलाकर 365 रेखै-पोन की आमदनी इस तरह नियत की गई कि पूजा अर्चना अनवरत चले और चौथाई बचे भाग से सेवारत जवानों व अफसरों के भरण-पोषण के लिए सुनिश्चित किया गया (संख्या 14)।

अप्रैल 1606 ई. में गोविंद पुष्करिणी के किनारे एक मंडप में *नारायणदासरी नायक* ने *रघुनाथजी* की मूर्ति की स्थापना कराई और अप्रैल 1606 में भगवान की पूजा-अर्चना का प्रबंध सुनिश्चित किया। पुनर्वसु नक्षत्र के तेरहवें दिन की रात्रि को दीपमाला रोशनी तथा तिरुपति में *रामानुजकूटम* के अंतर्गत तीर्थयात्रियों के भोजन की निःशुल्क व्यवस्था कराई। यही नहीं वैकाशि और आणि ब्रह्मोत्सवों तथा अन्य शुभ दिनों जैसे *मुचुकुंद-मोक्षम्* उत्सव आदि के लिए *गोविंदराज* को प्रतिवर्ष 50 रेखै-पोन की व्यवस्था कराई। *चक्रत्ताल्वान* (सुदर्शन) को *गोविंदराज* के मंदिर में मार्गळी मास के तीस दिनों में आगे वाली चोटी पर लगवाया। उनके द्वारा लगवाई गई पट्टाभि-वेङ्कटेश-पेरुमल की मूर्ति के मंडपम् में प्रतिदिन नैवेद्य

---

3. यह माल्यवंत पहाडी पर विजयनगर की सेना की टुकडी का ठिकाना 1565 ई. के तालिकोटा युद्ध से पूर्व चलन में रहा होगा। इस युद्ध में *अलिय रामराजा* की मृत्यु हुई थी और तब उसका छोटा भाई *तिरुमलराजा* ने अपने साथ *सदाशिवराय महाराजा* को लेकर *पेनुकोंडा* की ओर पलायन किया और विजयनगर को उसके भाग्य पर छोड दिया जिन्हें मुस्लिम सेना ने ध्वस्त किया। अतः संभव है कि दानदाता के पिता *लक्कप्पा नायक* सेना की टुकडी के नायक रहे हों। इस अभिलेख के अंकन से लगभग पचास वर्ष पूर्व उनका उस माल्यवंत पहाड़ी पर आवास हो।

आता था और चित्तिरै विशु के दिन सूडिकोडुत्त - नाच्चियार (आण्डाल) के लिए नैवेद्य मार्गळी - नीराट्टम-पर्व और अन्य दो दिनों को सुनिश्चित किया गया (संख्या 15)।

संख्या 16 का उल्लेख वार्षिक क्रम प्रमादीका के दौरान होगा और यह शालिवाहन शक वर्ष 1535 पड़ता है जिसको सन् 1613 कहा जाएगा। तब वेङ्कटपतिदेव महाराय का शासन था और उस समय कुछ महत्वपूर्ण नैवेद्यों का उल्लेख हुआ है अर्थात् गरुड-अंकित ध्वज वैकाशि, आणि, आवणि और मासी महीनों में होने वाले चार ब्रह्मोत्सवों में गोविंदराज के रथ पर फहराई गई और ग्रीष्मोत्सव के दूसरे दिन पहले गोविंदराज को और बाद में तिरुमंगै - आळ्वार को कृत्तिका नक्षत्र और कार्तिकै माह में जो आळ्वार का वार्षिक जन्म - नक्षत्र है और साथ ही वर्ष के कृत्तिका नक्षत्र के तेरह दिनों में; और गोविंदराज और नच्चियार को रथ मंडप में विराजित कर उनकी शोभायात्रा निकाली जाने लगी तथा शोभायात्रा से पूर्व अर्थात् मंदिर की ओर प्रस्थान के पूर्व, गोविंदाचार्य एक पालकी में और उनके दो नच्चियार तिरुच्ची में होते थे।

नोट्टक्कार कोनप्पय्यन के पुत्र नोट्टक्कार वेङ्कटय्यन, (भारद्वाज गोत्र, आश्वलायन सूत्र एवं रिक-शाखा) ने दो सिंचाई रजवाहे खुदवाए और इन दो रजवाहों के द्वारा सिंचाई किए गए दो गाँवों से जो आमदनी लगभग 200 रेखै - पोन मिलती वह वर्ष 4-11-1614 को तिरुमंजनम् और नैवेद्य के रूप में चित्तिरै - ब्रह्मोत्सव में वंसत-उत्सव स्वरूप मलयप्पा और उनके दो नाच्चियार को दसवें दिन वसंत-मंडप में दे दिए गए। यह नैवेद्य कृष्ण के लिए भी था। *तिरुवायमोळि-मंडप* में चढावे हेतु 12 दिन की दस से कुल 132 दिनों के लिए *अंकुरार्पणम्* दिवस से लेकर विदायार्रि तक सभी ग्यारह ब्रह्मोत्सवों में नैवेद्य की व्यवस्था की गई। प्रत्येक ब्रह्मोत्सव के दसवें दिन उपवन - मंडप में और चांदी के शेष - वाहन के पहले दिवस की रात्रि को शोभायात्रा के अवसर पर सभी प्रबंध किए गए। यह चांदी का शेष-नाग भी उन्होंने ही भेंट की। तीसरे दिन की रात्रि को सिंह-वाहन भी भेंट दिया जो सभी ग्यारह ब्रह्मोत्सवों में प्रयुक्त किया जाने लगा। उसने रामायण पट्टाभिषेक समारोह का भी आयोजन किया जो रामनवमी के अगले दिन मनाया गया, श्रीरामनवमी के अगले दिन अर्थात् दशमी को पुष्यमी नक्षत्र था और चैत्र माह के शुक्लपक्ष में उभयम् (सेवा) का आयोजन प्रारंभ हुआ। वेङ्कटम्मा, जो नोट्टक्कारा वेङ्कटुप्पय्यन, की पत्नी थी, विजयनगर के पास चिन्ना - होत्तूर ग्राम में निवास करती थीं उनकी ओर से अर्चना- सेवा उभयम् में मलयप्पा और उनके दो नाच्चियार, श्रीराम, सीतादेवी और लक्ष्मण, सेनै मुदलियार, रामानुज, हनुमान, सुग्रीव और अंगद जो गर्भगृह में विराजते थे उन्हें *तिरुमंजनम्* दिया जाता था, *चंदन* का लेप लगाया जाता था, कपूर और अन्य विविध सुगंधियों से सजाया जाता था और उनके धवल मुख पर तिलक लगाया जाता था। तत्पश्चात् दही मिश्रित भोजन और छः प्रकार के 'पड़ी' (व्यंजन जैसे अतिरसम्, अप्पम्, दोसा, इड्ली आदि) का भोग लगाया जाता था। सभी मूर्तियों को *वेन्नमालैइत्तान* -

मंटपम् (संभवतः *तिरुमामणि-मंडपम्,* खुला बाहरी पोर्टिको) में बैठाया गया और *वायु-पुराणम्* के अंश संभवतः *पट्टाभिषेकम्* समारोह के अंश पढे जाते थे (संख्या 18)।

शिरगिरि राजय्या (श्री भोगला राजय्या के पुत्र) के पुत्र श्रीमान महामंडलेश्वर चिन्न तिम्मराजय्या ने 4-11-1616 ई. को वेङ्कटरायदेव महाराय के शासनकाल में 12 प्रसादम् (नैवेद्य) का संकल्प लिया। यह उस प्रसादम् का भाग था जो *स्थानत्तार* (देवालय - न्यासी) रामराजय्या (अलीय-रामराज) के द्वारा दानदाता के मध्यस्थ *तिरुनारायणपुरम्* के *तरिवेङ्कटय्यंगार* (मैसूर राज्य में मेलकोटे स्थान) और तिरुमल में ही निवास करते थे और वहाँ के रामानुजकूट्टम में 12 श्रीवैष्णव यात्रियों को भोजन दिया करते थे। वेङ्कटेश्वर के दैनंदिन भोग हेतु, मलयप्पा और उनके दो देवेरियों को उनके 10 ब्रह्मोत्सवों के निश्चित दिनों में जब वे तिरुमामणि मंडपम् में विराजते थे और प्रत्येक ब्रह्मोत्सव के नौ दिनों में गरुड ध्वज को (यह ब्रह्मोत्सव पुरट्टाशि माह से प्रारंभ होता था) और इसी प्रकार से *वैकाशि, आणि, आवणि, मासी* में होने वाले 4 *ब्रह्मोत्सवों* में कुछ नियत दिवसों पर तिरुपति में गोविंदराज के लिए नैवेद्य और 4 *ब्रह्मोत्सवों* में प्रत्येक के पहले दिन से ही नौ दिनों तक *गरुड ध्वज* के लिए भी भेंट का प्रावधान रहा (संख्या 19)।

नोट्टक्कार कोनप्पय्या के पौत्र, नोट्टक्कार वेङ्कटय्या (संख्या 18) के पुत्र नोट्टक्कार नारायण ने तिरुमल के 11 *ब्रह्मोत्सवों* में प्रत्येक ब्रह्मोत्सव के अंतिम दिन को *वसंत नवमी* उत्सव मनाने का प्रबंध कराया। (संभवतः *तीर्थवारि* धार्मिक अनुष्ठान के पश्चात् उत्सव के नौंवे दिन वराहस्वामी के देवालय के मंडप के सामने यह तब हुआ करता होगा जब उत्सव की परिसमाप्ति पर स्वामी-पुष्करिणी से जलाभिषेक होता था)। *पल्लयस्तुलाम्* में मलयप्प की शोभायात्रा के पश्चात् नाच्चिमार पालकी में और सेनई-मुदलियार और रामानुज तिरुच्चि में शोभायमान होकर *तिरुमंजनम्* के साथ वसंत मंटप में विराजते थे। शोभायात्रा नगर भर में चारों मुख्य मार्गों से होकर गुजरती थी। यह प्रत्येक ब्रह्मोत्सव के तीसरे दिन होता था। अनेक नैवेद्य दिन और रात को चढाए जाते थे। यही नहीं वर्ष के 53 रविवारों को दानदाता के पिता वेङ्कटय्या की ओर से, जिन्होंने विशालहृदयता दिखाकर वेङ्कटेश्वर की सेवा हेतु राजकीय सेवा से मुक्ति पाकर तिरुमल में रहना स्वीकार किया था (संख्या 20), ने यह प्रबंध किया था। दानदाता का आवास दन्नायकमंगलम् का निर्माण वेङ्कटपतिदेव महाराय ने कराया था। यह अभिलेख शक संवत् 1549, प्रभव अर्थात् 25-5-1627 ई. का है। तब श्री वीर-रामरायदेव महाराय का शासन चल रहा था।

संख्या 25 एवं 26, एक तेलुगु 'सीसमालिका काव्य' संख्या 25 तेलुगु अक्षरों में अंकित है और संख्या 26 तमिल के - ग्रंथ अक्षरों में। इस अभिलेख पर शक संवत् 1550, वार्षिक क्रम *विभव* अंकित है जो ई. 1628 का होता है। ये मट्ला कुमार-अनंतराज, के सुपुत्र मट्ला तिरुवेंगलराज और चेन्नम्मा

के वंश, के युद्ध और झगडों, सेवाओं, उपहारों और दानशीलताओं के आलेख हैं। वे देव-चोड़ा के वंशज थे और जो सूर्यवंश के समुद्र में चंद्र के समान देदीप्यमान थे। उनका अधिकार वेङ्कटाचल से लेकर अहोबल की पहाडियों तक फैला था। उन्हें *राजसिंह* (राजाओं में जो शेर समान था), मैवर गंडा (मैवर के नायक), विरुद-सामज-सिहं-भीषण (शेर समान जो राजाओं के लिए सिंहस्वप्न बना था), गंडर-बाल-प्रचंड-विक्रमशाली(प्रचंड सूरज जैसा योद्धा) मानिनी-जनमनो-मन्मथ (जो सुंदर स्त्रियों का चितचोर था) आदि उपाधियों से अलंकृत किया गया था। यही नहीं उन्हें श्रीवेङ्कटेश्वर सेवा धुरंधर (श्री वेङ्कटेश्वर के अन्यतम भक्त), आश्रित मंदार (आश्रितों का उद्धारक) और आर्यनुता (श्रैष्ठ राजा) भी कहा गया।

कपर्दि (शिव) के समान उन्होंने पालगिरी, अनिमेला, पीलेरु, चप्पली और वेमुपल्लि (वेम्पल्लि) के युद्ध लडे तथा कोट्टागला, पलकडा, गुंडलूरु, और मुस्तूरु तथा कुमाल्लकाल्व आदि शत्रुओं की सेनाओं को नष्ट किया।

भगवान उदयाचलाधीश्वर (उदयगिरि के श्रीरंगनायक) से उन्होंने एक *डमाई* (डमरु) और *सामजध्वजा* (हाथी का ध्वजपट - स्वामित्व का चिह्न) प्राप्त किया तथा इनके लिए एक *आखेट* (*आखेट मंटप*) और *उद्यान* का निर्माण कराया। श्रीवीरराघवस्वामी, तिरुवल्लूरु (मद्रास के समीप) के लिए एक *वंसत मंटप* बनवाया। वेङ्कटाचलपति (वेङ्कटेश्वर) के लिए एक *स्वर्ण अश्व* वाहन, चरणारविंद में उन्होंने भेंट किया। एक *स्वर्ण सिंधूरा* (स्वर्ण-गज वाहन) और एक *स्वर्ण समर भूपाल वाहन* (स्वर्ण राज रथ), *एक पद्मपीठ* (कमलाकार आसन), *एक रत्नाध्य मकुट* (रत्नजडित मुकुट), और एक *नैवेद्य भाजन* (भोजन परोसने की थाली) भेंट दी। उन्होंने एक *उन्नत केलि मंटप* (*आखेट मंटप*), *सोपान-मार्ग* (सीढियों का मार्ग), एक *अग्र गोपुर* (सामने की पहाडी पर बने गुंबद को गाली-गोपुर कहते हैं) और दूसरे दो मंच भी बनवाए। उन्होंने *गंगेय-गज-तुरगम-वाहन-आर्णव* (स्वर्ण गज और अश्व रथ) बनवाकर दिए। उन्होंने गोविंदराज मूर्ति (*भ्राजिष्णु*) को चमचमाता हुआ बनवाया। साथ ही नील-कंठ भगवान कालहस्ति ग्राम - श्रीकालहस्ति ग्राम क्षेत्र-ईश्वर के चरणों में उन्होंने *कनक-मोहन-मयूर-वाहन* (स्वर्ण जलपरी और स्वर्ण मयूर वाहन) प्रस्तुत किया।

उन्होंने पहाडी के रास्ते में वेङ्कटाधीश्वर (वेङ्कटेश्वर, वेङ्कट पर्वत के अधिदेवता) की एक नयनाभिराम मूर्ति प्रतिस्थापित की। उन्होंने भगवान नेलंदलूरु (नंदलूरू, कडपा जिला) के चार गोपुर बनवाये और एक *सरसी* मंटप (तालाब के बीच में स्थापित द्वार मंटप) और पुष्प-वाटिका भी बनवाई।

ओंटिमिट्टा के रघुनाथ (श्रीराम) (कडपा जिला में नंदलूरू के समीप) के लिए उन्होंने बाहरी मंडपों का निर्मण कराया और परिक्रमा परिसर को जोड़ते थे और दो प्रसरित *गोपुरों* को दक्षिण में तथा उत्तर में बनवाया और अंदर परिक्रमा के लिए परिसर में जगह छोडा। इसके के अतिरिक्त *नित्योपचार* (नित्यपूजा) को ईश्वर की अनुकंपा प्राप्त करने के लिए बनवाया।

उन्होंने चेन्नमाम्बापुरा और चेन्नमाम्बासमुद्रा नामक दो *अग्रहारों (ब्राह्मण-बस्तियों)* को बसाया।

उन्होंने *सिद्धवट* (कड़पा के समीप) में चेन्नकेशव भगवान को स्थापित कराया और *प्राकार* (परिक्रमा) तथा *गोपुर* को मंदिर के साथ निर्मित कराया। यही नहीं, उन्होंने कई आभूषण भी भगवान की सेवा में भेंट किए। भगवान सिद्धवटेश्वर को उसी स्थान पर *हाटकवृषभ-वाहन* (स्वर्ण वृषभ वाहन) भेंट किया और यही इच्छा की कि वे उस पर आरूढ होवें।

चक्रधर के लिए, *अनंत राजपुर वर ग्राम* (सभी ग्रामों में यह ग्राम उत्तम माना गया) में उन्होंने विष्णु को सुदर्शन चक्रधारी के रूप में मूर्तवत बनवाया, उनका गोपुर निर्मित कराया। इस कार्य को उन्होंने पूर्ण निष्ठा (कैंकर्य-दीक्षिता) के साथ कार्यान्वित किया। दयालु कपर्दि (शिव) के लिए उन्होंने एक मजबूत गोपुर सोमशिला (चंद्रगिरि) में बनवाकर दिया।

इसी प्रकार पुष्पगिरि (कडपा जिले के) *प्रसवाचलेश्वर* भगवान को भी परिक्रमा और गोपुर बनवाकर दिया तथा देवालय में प्रतिवर्ष उत्सव का आयोजन प्रारंभ कराया। उन्होंने देवुनि-कडपा के बाहरी क्षेत्र में रमाविभु (लक्ष्मीपति विष्णु अर्थात् वेङ्कटेश्वर) का हर्षित मन से गोपुर बनवाया तथा उसके साथ प्राकार (परिक्रमा स्थान) का भी निर्माण कराया और वीरभद्र का मंदिर राचवीडु (रायचोटि, कडपा जिला) में बनवाया और यह प्रसिद्ध द्विपक्षी गोपुर अतिशय प्रसिद्ध हुआ।

वस्तुतः वह धर्मार्थ नित्य दान हेतु *अन्न-सत्र* (सुपाच्य भोजन-उपलब्ध कराने वाली सराय) जिसमें छः प्रकार के सुस्वाद भोजन पादचारियों के लिए परोसे जाते थे जहाँ तीर्थयात्री सेतु (यह वह पुल है जो बंगाल की खाडी में है और - भारत के सुदूर दक्षिण में रामेश्वरम् की ओर इंगित करने के लिए है), से पादयात्रा करते हुए आते थे और *सीताचल* (बद्री) हिमालय तक जाते थे, *आळ्वार-तीर्थ* (तिरुपति का कपिल-तीर्थ), *शेषाचल-कुरुवा* (शेषाचल अर्थात् वेङ्कटाचल पर बना रास्ता), सिद्धवटम्, ओंटिमिट्टा, प्रसव- महीभृत(पुष्पगिरि), ओरमुपाडु (कडपा जिला में), दुव्वूरू, गुंडलूरु, पोरुमामिल्ला, नेलवनूरु, ओर्मिल्ला एवं अनंतराजपुर आदि आदि में भी *अन्न-सत्र* उपलब्ध कराया।

उन्होंने सहर्ष *तुला-दान* (स्वयं को तराजू में रखकर उसके दूसरे पलडे में सोना चांदी रखना) करके (स्वर्ण एवं चांदी) सवर्ण-रजत को लोगों में वितरित किया। *मही-दान* (जमीन-दान याभू-दान), *गो-दान* (गायों का दान) और *बहु-सहस्र-कन्यका दानादि* (विवाह योग्य हजारों कन्याओं के लिए अनेक उपहार आदि) को देकर, *ब्राह्मणों* को *यज्ञ* और अन्य *दान धर्मों* के लिए लोकोपकार हेतु विभिन्न वस्तुएँ एवं धनादि का दान किया।

वह कटकपुरी का लुटेरा था।

उसे प्रति वर्ष पवित्र गंगा जल लाकर उसमें स्नान कराकर पवित्र करने का उपक्रम किया जाता था। वह *अनघ-मूर्ति* (पापमुक्त व्यक्ति) था।

उसने चेन्नूरुपुर के मार्ग के निर्माण हेतु भी कुछ सहायता की थी और उसने एक तालाब (तटाकाकार-विजित-निराकर) के रूप में उसका उद्धारक और संरक्षक समझा।

वह मट्ल तिरुवेंगलराज का होनहार और नेक पुत्र था। वह राजाओं का राजा था। वह *चेन्नमांबा* का पुत्ररत्न सभी प्रकार के धनधान्य से पूर्ण मोती के समान देदीप्यमान था। वह पुरुषों में श्रेष्ठतम और श्रेष्ठ दानवीर था तथा नागभूषण भी उसे सहज ही प्राप्त था। वह कुशलवक्ता भी था। यही नहीं उसका धैर्य व साहस उसे उसके नाम मट्ल कुमार अनंत सिद्ध करने के लिए पर्याप्त था।

उसने सुंदर व प्रसरित शेष पहाडी पर अनेक देवालयों का निर्माण कराया जिनमें श्रीपाद मंडप (ऐसा द्वार जिनमें फर्श के पत्थर पर भगवान विष्णु के पवित्र चरण अंकित हैं) में ब्रह्म, ईश्वर (शिव), सनक और अन्य देवगण और ऋर्षि - मुनियों की अनेक मूर्तियाँ विराजमान हैं और इनकी उपस्थिति तब तक रहेगी जब तक सूर्य-चंद्र एवं तारे रहेंगे।

श्रीपाद-मंटप से कुछ ही दूरी पर एक मंटप है जिसे रचमम्यों के द्वारा पादाल-मंटप कहा जाता है। इसे भी उन्हीं मट्ल कुमार अनंतराज ने गोपुरम् मार्ग बनवाकर रखा। इस गोपुरम् को यहाँ क्रोत्त (नया) गोपुरम् कहा जाता है। यह उस प्राचीन, ध्वस्त गोपुरम्[4] से भिन्न है जिसे सालुव नरसिंहा ने पंद्रहवीं शताब्दी (इसका ऊपरी हिस्सा कुछ दशक पूर्व गिर गया था) में बनवाया था। इसके निर्माण की ओर इंगित करती, दो अभिलेख इसके अंतरक्षेत्र में विद्यमान हैं। इनमें से एक तेलुगु में है (संख्या 27) और दूसरा तमिल (संख्या 28) में है। इसे पढने पर यह ज्ञात होता है कि इस *गोपुरम्* का निर्माणकर्ता म्टल-कुमार-अनंतराज थे।

इसी आंतरिक हस्से में, जो पूर्व चर्चित है, थोडा ऊपर जाने पर कुमार अनंतराज के माता पिता के चित्र अभिलिखित हैं और उनके नीचे दो पंक्तियाँ हैं - एक *तेलुगु में* (संख्या 29) और एक *तमिल में* (संख्या 30)। इससे इनके माता पिता का नाम ज्ञात होता है - *तिरुवेंगलनाथ-राजू* और उनकी महारानी *चेन्नम्मा।*

तिरुपति में गोविंदराज मंदिर के कुछ समीप, पूर्व दिशा में कुमार अनंतराज ने एक विशाल *गोपुरम्* भी बनवाया, और उसके दक्षिण आधार पर अंदर की ओर *तेलुगु* में एक अभिलेख अंकित है (सं. 31)।

---

4. आजकल उसका पुनरुद्धार हो रहा है। सालुव नरसिंह के ध्वस्त गोपुर के बदले एक नया गोपुर खड़ा किया जा रहा है।

- गोपी कृष्ण

इसमें यह उद्घोषणा की गई है कि इस गोपुरम् का निर्माण अपनी सेवा (उभयम्) के रूप में श्रीमन महामंडलेश्वर कुमार अनंतराजय्या ने कराया जो मट्ल तिरुवेंगलनाथराजय्या देवकोड महाराजुलय्या के पुत्र थे।

इस अभिलेख के सामने, इस *गोपुरम्* की उत्तरी छोर पर अंदर की ओर दो मूर्तियाँ उकेरी गई हैं और इनके नीचे अभिलेख संख्या 32 अंकित है, जिनमें एक को मट्ल तरुवेंगलनाथराजु और दूसरे को उनकी रानी चेन्नमा कहा गया है।

किसी रामचन्द्रय्या नामक महानुभाव ने 29-9-1631 ई. को जब श्रीवीरकुमार-वेङ्कटपतिरायदेव महाराय का शासन चल रहा था, तब तिरुमल में *पुरट्टाशि-ब्रह्मोत्सव* के चौथे दिन को उत्सव मूर्तियों के निमित्त उन्होंने दान तय किया। यही नहीं, गोविंदराज और उनके नाच्चिमार को तिरुपति में चित्रा-पूर्णिमा के दिवस पर, *मकर-संक्रमण* के दिन और *वैकाशि ब्रह्मोत्सव* के पाँचवे दिन तथा मार्गली के पाँचवे दिन आण्डाळ् को (गोदा देवी) और गोविंदराज के मंदिर के गरुडाल्वार के लिए प्रतिदिन नैवेद्य के निमित्त दान दिया (सं. 21)।

प्रतिवादी-भयंकर अण्णंगराचार्य ने श्रीलक्ष्मी-नारायण-पेरुमाल की मूर्ति बनवाकर तिरुपति की दक्षिण माड-वीथी में अवस्थित एक मंदिर में स्थापित कराई। साथ में पेरियाल्वार भी विराजमान थे। उन्होंने 25 रेखै पोन *भूदान* के निमित्त भी दिए और 2-1-1636 ई. को जब वेङ्कटपतिरायदेव महाराय का शासन था, *वैकाशि-ब्रह्मोत्सव* के दिन गोविंदराज की सेवा में भेंट दिया। गोविंदराज, नाच्चिमार, सेनई-मुदलियार और रामानुज जो लक्ष्मी-नारायण-पेरुमाल के मंदिर में, सामने के मंटप में विराजमान कराए गए। यह पेरियाळ्वार के जन्म नक्षत्र *स्वाति* के दिन किया गया था। गोविंदराज,नाच्चिमार, कृष्ण और आण्डाल को उसी मंटप में *तिरु-आदि पुरम्* (*आडि* महीने के *पूर्व-फल्गुणी नक्षत्र*) को प्रबंध कराया गया। इसी के साथ लक्ष्मी-नारायण-पेरुमाल को आडि महीने में *पुष्यमी* को दान दाता के जन्म दिवस के संदर्भ में, उसी मंटप में सातवें दिन आण्डाल को, मार्गळी-नीराट्टम उत्सव के समय 12 वें दिन अध्ययनोत्सव के दिन लक्ष्मी नारायण पेरुमाल को, तेरहवें दिन, उसी दिन को लगनेवाले स्वाति जन्म नक्षत्र के दिन पेरियाळ्वार को और श्रीराम को श्रीरामनवमी के अवसर पर तिरुपति की गली में नाथमुनि आळ्वार के मंदिर में। गली का नाम उनके नामानुरूप लगवाई गई। जो भी नैवेद्य की तैयारी करती थी, वह गोविंदराज के मंदिर के रसोई घर में बनाया जाता और वहाँ से उसे श्रीलक्ष्मी-नारायण और नाथमुनि आळ्वार के मंदिर के परिसर में नियत दिनों सहर्ष ले जाया जाता (संख्या 22)।

श्रीवीर श्रीरंगदेव महाराय के शासन काल में किसी दान दाता ने 15-6-1638 ई.को मलयप्प और उनके नाच्चिमार के लिए दान दिया। यह दान *उपवन-मंटप* में विराजमान देवताओं के लिए 11*ब्रह्मोत्सवों* के चौथे दिन, तथा गोविंदराज और उनके दो नाच्चिमार के *तिरुमंजनम्* के समय, ग्यारह दिन के लिए

मूला नक्षत्र में होने वाले कुल 13 दिवसीय समारोह में शोभायात्राओं के निमित्त, इन 13 दिनों में से ग्यारह के लिए दान दिया गया क्योंकि बाकी 2 को *वैकाशि* और *आणि ब्रह्मोत्सवों* में समाहित कर लिया गया था (संख्या 23)।

श्रीवत्सगोत्र, आश्वलायन-सूत्र और ऋक् शाखा के राजश्री शिवराज रामचंद्र येतामातरावु दबीरुशाई ने शुद्ध स्वर्ण का एक गोलकार आभूषण जिसका वज़न 5 *वराहा* और मूल्य 525 श्रीरंगराया-वराह (गद्यानस नाम से तब प्रसिद्ध मुद्रा) 19-3-1684 ई. को भगवान के गले (अपरंजि-बंगारु-कंटि) की शोभा अभिवर्धन के निमित्त दिया। यही नहीं, 4 *शुद्धान्न यूनिट* और 1 *अलंकार यूनिट* तिरुवेंगलनाथस्वामी के लिए, महाराज श्री सूद - भानुज - पंतुलु के सौजन्य से प्राप्त हुआ और 1 तलिगा (भोजन की मात्रा), 1 बर्तन भर पायसम् (खीर) और अन्य पदार्थ वराह स्वामी को प्रतिदिन नैवेद्य के निमित्त संकल्प लिया गया (संख्या 24)। इस अभिलेख में तत्कालीन शासनकर्ता का उल्लेख नहीं मिलता। संभवतः दानदाता कोई महाराष्ट्र ब्राह्मण था जो इसी राज्य का सेवक था। इनका संबंध महाराष्ट्र के शासक शिवाजी से है जिन्होंने *कोंकण* प्रदेश (पश्चिमी कूल) पर विजय प्राप्त की थी। यह घटना 1673 ई.की है और इसके पश्चात् लगभग 4 वर्षों में इन्होंने कर्नूल, जिंगी और वेल्लोर तक को जीतकर अपने साम्राज्य की सीमा यहाँ तक अभिवर्धित कर ली थी (देखें सेवेल की पुस्तक 'ए फरगॉटन एम्पायर' पृष्ठ 220) और तदनुसार उन्होंने इस क्षेत्र के लिए प्रशासकों की नियुक्ति की होगी। चूंकि उस समय महाराष्ट्र या मराठी भाषा इस क्षेत्र के लिए अपठनीय थी, इसलिए स्थानीय भाषा *तेलुगु* का प्रयोग संभवतः अभिलेख खुदवाने के लिए किया गया। किन्तु बाद में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में मराठी मंदिर के रिकार्डों को लिखने के लिए एक मात्र भाषा नियत की गई और अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी के अंतर्गत मंदिर के राजस्व को आरकोट नवाब के लिए अतिरिक्त फौज और रक्षण हेतु काम में लाया जाने लगा।

प्राचीन *ध्वजस्तम्भं* के कमलासन आधार पर तेलुगु लिपि (सं.42) में एक अंकन है 'श्रीवेङ्कटपति (वेङ्कटेश्वर) के चरणारविंद में दंडवत, यह ध्वज स्तम्भ; झण्डा, राजश्री सिद्धलूरी रामाजी मादर्सु-पंतुलु के *उभयम्* (दान, सेवा) की भेंट है। इसी प्रकार मंदिर में विराजमान भगवान की सेवा के लिए 163 *रेखै-पोन* के लगभग आमदनी वाले गाँव तिप्पागुंटपल्ली को कुछ दान दाताओं ने दान में दिया (संख्या 47)।

संख्या 48 फुटकर रूप से यह उल्लेख करती है कि उस समय श्रीरंगदेव महाराय का शासन था। वर्ष काल का उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

संख्या 54 में 11 ब्रह्मोत्सवों और भेंट-चढावे का उल्लेख करता है।

संख्या 56 में उगादि (चंद्र वर्ष का प्रथम दिन) के दिन *तिरु मणिमंटप* (बाहरी परिसर) में स्थापित मलैकुनिय-निन्र-पेरुमाल (उत्सव मूर्ति) को 1 तिरुप्पावडै (पके हुए चावल का बडा ढेर) भेंट करने का उल्लेख है।

संख्या 61 में उस चढावे को दिए जाने का उल्लेख है जिसमें तिरुमल में होने वाले *कोदै-तिरुनाल* (ग्रीष्मोत्सव) के अवसर पर प्रस्तर-रथ में आरूढ उत्सव मूर्तियों के निमित्त चढावा होगा।

संख्या 90 में वैकाशि और आणि महीनों में गोविंदराज के दो ब्रह्मोत्सवों के अंत में *तीर्थवारि* (निमज्जन हेतु जल) के दिनों में *यागशाले* (निर्धारित स्थान) में गोविंदराज के नैवेद्य के लिए प्रबंधन का उल्लेख है और गोविंदराज तथा उनके दो सहयोगियों के लिए श्रीपादमंटप में पहाडी के नीचे आधार स्थल पर नैवेद्य के प्रबंधन का उल्लेख है।

सं. 93 में गोविंदराज के लिए दैनंदिनी भेंट-अर्चना का प्रावधान किया गया है और गोविंद - कृष्णन को जिसे वेंङ्कटय्यन और गोविंदराज के हनुमान के लिए भी यह प्रावधान है। साथ ही हनुमान जी को वर्ष के 52 शनिवारों को भी देने का प्रावधान है।

संख्या 100 के अनुसार कोंडय्यन नामक महानुभाव मट्ल कुमार अनंतराज के प्रतिनिधि के रूप में नायक के दान, धर्म सेवा, पूजा और अर्चना आदि का प्रबंध देखते थे (संख्या 25 और 26 के अनुसार)।

संख्या 113 में कनुउ (मकर संक्रमण का अगला दिन) को, *तीर्थवारि* के दिनों में वेङ्कटेश्वर भगवान के लिए नैवेद्य समर्पण का उल्लेख है। साथ ही *पादियवेट्टै* (आखेट-उत्सव) (*कनुउ* के दिन ही) और वेङ्कटतुराइवर के लिए (*उग्र-मूर्ति*) निश्चित दिवस हेतु भी।

संख्या 124 में दो गाँवों यथा वीडु और वेन्नमपल्लि की राजस्व आय का दान श्रीताल्लपाक चिन्न तिमय्या द्वारा गोविंदराज को 3 तिलान्न (तिल से बनाया गया भोजन) का प्रतिदिन भोजन अर्थात् वर्ष में कुल 1095 बार और वेङ्कटेश्वर के लिए 6 राजान्न (तेलुगु भाषा में राजानालु का अर्थ उत्तम प्रकार का चावल), कुल नैवेद्य वर्ष में 2190 बार देने का प्रबंध हुआ। धान को नापने-तोलने के लिए जो पद्धति अपनाई गई थी उसे *कोदै-कडमैक्काल* कहेंगे। यह उससे भिन्न थी जो सामान्यतः मंदिरों में माप की पद्धति-*मलैकुनिय निन्नन-काल* (मरक्काल) थी, विशेष रूप से तिरुमल में और *चालुक्य-नारायणन-काल*, तिरुपति गोविंदराज के मंदिर में थी। प्रति *वट्टी* या *पुट्टी* धान का तत्कालीन मूल्य 4 *पणम्* था।

संख्या 126 में सायंकालीन दीप प्रज्जवलन एवं पुष्प व्यवस्था से संबंधित है। यह व्यवस्था नरसगाणे द्वारा *श्रीस्वामी* (वेङ्कटेश्वर) तथा उनके परिवार की सुख-समृद्धि हेतु की गई थी।

* * *

अध्याय - 23

तालिकोट युद्ध के विध्वंस से विजयनगर साम्राज्य का पतन और उसके भीषण परिणामस्वरूप श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर की समृद्धि पर दष्प्रभाव

सदाशिवराय के शासन काल में उनका बहनोई (ब्रदर-इन-लॉ) अलिय-रामराज सर्वप्रभुत्वसंपन्न और प्रभावशाली मुखिया उनका *प्रधानी* (मुख्यमंत्री) था। अपने दो छोटे भाइयों के सहयोग से उसने सलकम भाइयों को तबाह किया। पेद्द- तिम्मराज और चिन्न तिम्मराज दोनों ही राज्य में अतिशय प्रभुता रखते थे। यह कहा गया है कि उन्होंने सिंहासन पर आरूढ होने के लिए अच्युतराय के पुत्र चिक्क (चिन्ना)-वेङ्कटाद्रि, अपने भतीजे, के दावे को अधिमानता दी यदि वह उनके बहनोई की मृत्यु के समय 1542 ई. में जीवित होता। उन्होंने सदाशिवराय, अच्युतराय के अनुज भ्राता रंगराय के सुपुत्र, को गद्दी पर बिठाया।

प्रभुतासंपन्न प्रधानी अलिय-रामराज अपने बहनोई सदा शिवराय के नाम से राज्य पर शासन करता था और निस्संदेहपूर्वक राजा केवल पृष्ठभूमि में ही था। उसने सभी स्थानीय राज्यपालों को पूर्णतः अधिकार में रखा था। वह निडर, साहसी और दुःसाहसी भी था। उसने सेना को मजबूत बनाया और उसे सभी प्रकार से आवर्धन किया। अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के बल पर उसने आपस में लड़ते-झगडते रहने वाले पाँच राज्यों के सुल्तानों को जो बहमनी साम्राज्य से च्युत कर दिए गए थे, उनको यथा समय सहायता प्रदान की। किन्तु उसने सदा बहुत ही घमंड एवं अभद्रता से व्यवहार किया। वह उनके प्रति सदा विरोधी का व्यवहार करता था। उनके संदेशवाहकों का अपमान भी करने से न चूकता था। उनकी पूजा पीठों को भी अपवित्र करा देता था। इससे वे सदा व्यक्तिगत रूप से अपमानित महसूस करते थे और अपने धर्म को दुत्कारा जाता देख अप्रसन्न होते थे। इसलिए पाँच में से चार सुल्तानों ने सम्मिलित षड्यंत्र की रचना कर, विजयनगर शहर पर आक्रमण करके इस हिन्दू साम्राज्य को तहस - नहस करने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होंने शक्तिशाली बडी सेना का गठन किया और बिजापुर के मैदान में जाकर एकत्र हो गए। वहाँ से उन्होंने कृष्णा नदी की ओर प्रस्थान किया और तालिकोटा के पास डेरा जमाया।

सुल्तानों के आगे बढते जाने की खबर से पूर्ण परिचय प्राप्त होने पर, रामराज ने अपने छोटे भाई तिरुमलराज को सेना की एक टुकडी को लेकर जाने के लिए कहा और उसे शत्रु को नदी पार करने से रोकने का काम सौंपा। अपने सबसे छोटे भाई वेङ्कटाद्रिराय को एक बडी सेना लेकर अपने साथ लगा लिया और वह स्वयं सारी सेना को लेकर आगे बढ चला। सभी राज्यों की समस्त सेना को उसने विजयनगर साम्राज्य की सुरक्षा हेतु लगा दिया। अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए या राजधानी की

देखभाल के लिए भी सेना सुरक्षित न रखी। उसे अपनी सफलता का अतिशय भरोसा था। 'वह 96 वर्षीय था लेकिन उसमें तीस वर्षीय युवक-सा बल व जोश था। उसने बडे दम्भ से कहा कि उसके शत्रु चाहे कितनी भी बहादुरी प्रदर्शित कर लें, वे उसके समक्ष निरे बच्चे थे और शीघ्र ही मार भगा दिए जाएँगे' और 'वह अपनी सेना की अगुवाई किसी हाथी या घोडे पर सवार होकर नहीं बल्कि उनके साथ किसी खाई में बैठकर करना पसंद करेगा।' 'अपनी विजय के बारे में उसको इतना विश्वास था कि यह कहा जाता है कि उसने अपने मातहतों को यह आदेश दे दिया था कि वे हुसैन निजाम का सिर काट कर लाएँ और आदिल शाह तथा गोलकोंडा के इब्राहीम को जिंदा घसीट लाएँ जिससे कि वह उन्हें अपने जेलखाने में लोहे के पिंजरों में उम्र कैद करके रख सके और उनके दुस्साहस का उन्हें मजा चखा सके।

भयंकर युद्ध के दौरान, रामराय ने अपने जवानों के मन में उत्साह और साहस का संचार करने के लिए खाई से बाहर निकलकर रत्नजडित सिंहासन पर बैठकर दिशा निर्देश देना चाहा। वह 'एक रत्नजडित सिंहासन पर बैठा था। साटन का गुलाबी छत्र उसके सिर पर था। उसने अपने खजांचियों को बहुत-सा धन उसके आसपास रखने को कहा जिससे कि वह उत्साह वर्धन के लिए अपने सैनिकों को यथायोग्य समुचित रुप से पुरस्कार दे सके और उन्हें धन, स्वर्ण, रत्न और अन्य पुरस्कर देकर मालामाल कर सके।' पाँचों दुश्मनों की तोपों ने ऐसा कहर मचाया कि लगभग 5000 हिन्दू रणभूमि में लेटे रहे और 5000 शत्रु सैनिकों ने रास्ता बनाकर वहीं आ धमकने में कामयाबी पा ली जहाँ राय सिंहासन था। पर उसने इससे पूर्व ही अपना स्थान बदलकर खाई में पनाह ले ली थी। जब एक हाथी उसकी ओर बढा और डर के मारे वहाँ तैनात लोग खेत रहे.. उससे पूर्व कि वह घोडे पर चढकर तैयार होता, कई लोग उस पर टूट पडे और वह पकडा गया तथा कैदी बना लिया गया।' कमांडर ने उसका सिर धड से अलग कर दिया और उसका सिर एक भाले पर लटका दिया। अपने चीफ़ का मृत चेहरा देखकर हिन्दू सेना भाग खडी हुई। संभवतः वेङ्कटाद्रि ने भी युद्ध के मैदान में जीवन गँवाया।

केवल तिरुमलराय बच गया था और विजयनगर की ओर लौटा। उसने जल्दी-जल्दी सभी खजानों को बांधा और स्वर्णाभूषण, जवाहरात आदि को लेकर पेनुकोंडा किले की ओर भागा। उसका धन 550 हाथियों पर लादा गया था। राज्य का प्रतीकचिह्न और राजाओं का रत्नजडित सिंहासन तथा सम्राट सदाशिवराय को लिए वह दौडा जा रहा था।

तालिकोटा के युद्ध में विजयनगर सेना की हार व अपमान वस्तुतः 30 मील दक्षिण में राक्षस तंगिडी नामक स्थान पर कृष्णा नदी के दक्षिण में दस मील दूर 23 जनवरी 1565 ई. को हुई थी। इसके दूरगामी परिणाम राजधानी व हिन्दू साम्राज्य पर बहुत ही विनाशकारी हुए और इससे फिर वे कभी उभर नहीं पाए। युद्ध के दो दिन बाद, सुल्तान और उसकी सेना ने चैन की साँस ली और युद्ध स्थल पर ही

तरोताजा हुए। तीसरे दिन विजयनगर के लुटे पिटे हताश होकर शहर में पहुँचे। पाँच महीनों तक उन्होंने अपना क्रोध व रोष, हताश व असुरक्षित नगर पर लूटपाट करके उतारा। नागरिकों को मारा और मंदिर को ध्वस्त किया। महलों, राजप्रासादों एवं मूर्तियों को मिट्टी में मिला दिया। 'लूट इतनी भयावह थी कि सेना में भर्ती हुआ प्रत्येक आम आदमी स्वर्ण, आभूषणों, हीरों, जवाहरात, घोडों, दासों और दासियों से मालामाल हो गया। क्योंकि सुल्तान ने केवल अपने प्रयोजन के लिए ही हाथियों को हस्तगत किया और अपने सैनिकों को लूट का सामान खुद रखने की अनुमति दे दी।' 'वास्तव में लूट बहुत ही बडी मात्रा में हई होगी। काउतो नामक लेखक का कहना है कि वहाँ एक हीरा मिला जो आकार में मुर्गी के अण्डा जितना बडा था और इस हीरे को आदिलशाह ने अपने पास रखा। 'तलवार और आग से, कुल्हाडी और कुंदों से, उन्होंने राज्य को नष्ट करने का नित्य कर्म निरंतर किया। संभवतः विश्व इतिहास में ऐसी नृशंस घटना दूसरी न घटी होगी। यह हाहाकार इतनी तेजी के साथ आया कि इतना आचरण भरा आलंकारिक नगर जो धनाड्य एवं मेहनती जनता से भरा था और धनधान्य की जहाँ वर्षा ही हो रही थी वहाँ दूसरे दिन बलात् लूटपाट प्रारंभ हुई और पलक की एक झेंप मात्र में ही यह नगर खंडहर होता चला गया। चारों ओर बर्बरता का तांडव और मृत्यु का आतंक फैलता चला गया। इनका वर्णन करना भी आज कठिन होगा।' यही इस महान एवं सुंदर नगर की नियति थी। अपनी इस दुर्दशा से यह नगर फिर कभी न उभर सका बल्कि सदा के लिए बर्बादी एवं निर्जनता का दर्दनाक दृश्य बनकर रह गया। (सेवेल्स 'ए फोरगोटन एम्पायर, अध्याय XV, 'विजयनगर का ध्वंस' पृष्ठ संख्या 196-208)

विजयनगर साम्राज्य के पतन और नगर के ध्वंस एवं खंडहर बन जाने का दुष्प्रभाव समस्त हिन्दू साम्राज्य पर पड़ा। बिजापूर और गोलकोंडा की सल्तनतों ने एक-एक करके समस्त परिक्षेत्र को अपने अधिकार में कर लिया और अंततोगत्वा उसे मुगल साम्राज्य का अंग बना दिया। तालिकोटा के इस भयावह युद्ध के उपरान्त सन् 1566 में गोलकोंडा की सेनाएँ राजमंड्रि की ओर बढीं और 1571-72 ई.में इस क्षेत्र को पूर्णतया जीत लिया। इसी दौरान बिजापूर ने आदोनी पर आक्रमण किया और उसे अपने नियंत्रण में ले लिया। सन् 1573 में बिजापूर के आदिल शाह ने धारवार और बंकपूर की ओर कूँच किया और डेढ़ वर्ष में इसे अधिकार में कर ही लिया। फिर वह कोंकण की ओर बढा और उसे भी हस्तगत किया। तीन वर्ष पश्चात् उसने बेल्लमकोंडा पर आक्रमण किया 'और भयभीत होकर राय ने पेनुकोंडा भी छोड दिया और चंद्रगिरि में शरण लिया।' जब तिरुमलराय के पश्चात् श्रीरंगराय ने शासन संभाला तो गोलकोंडा के सुल्तान पेनुकोंडा की ओर बढा तथा इसे अपने अधिकार में ले लिया और श्रीरंगराय को अपना कैदी बनाया। यह 1578 ई.की बात है। किन्तु बाद में उन्हें छोड दिया और फिर उसने पूर्वी क्षेत्र के अहोबलम् को अधिकार में लिया और इसे छः- सात वर्ष तक अपने अधीन में रखा। '1584-

85 ई. में अंकित अहोबलम् से प्राप्त श्रीरंग का अभिलेख यह स्पष्ट उल्लेख करता है कि अहोबलम् को ध्वंस्त करने और उसे दुर्भाग्य के हवाले करने के पीछे मट्ला चीफ का सुल्ताने से मिल जाना था। वही इस क्षेत्र में शक्तिशाली था' (डॉ. एस.के. अय्यंगार का 'हिस्ट्री ऑफ तिरुपति' खंड II, पृष्ठ 337)। सन् 1579 में उसने विनुकोंडा का किला और कोंडवीडु, कच्चेरलकोटा और खम्मम को भी अधिकार में लिया। कृष्णा नदी के दक्षिण का एक बडा भाग उसके स्वामित्व में चला गया। सन् 1589 में गोलकोंडा के मुहम्मद कुली ने कर्नूल और कडपा जिलों पर आक्रमण किया। कर्नूल, नंद्याल, गंडीकोट और कई स्थानों को हथिया लिया तथा नेल्लूर जिले पर भी बार-बार झपटे मारे। 1593 ई.में बीजापुर के सुल्तान ने मैसूर पर आक्रमण किया और उसे हस्तगत कर लिया। विजयनगर के एक वायसराय ने मैसूर पर सन् 1610 तक शासन किया और इसके बाद वह अपने राजाओं से स्वतंत्र हो गया। सन् 1602 में तंजाऊर और मदुरा के नायक स्वतंत्र हो गए।

जनवरी 1565 के अंतिम सप्ताह में सम्राट सदाशिवराय के साथ तिरुमलराय के पेनुकोंड़ा पलायन करने का कारण विजयनगर सेना की असम्मानजनक हार थी। इसका कारण यह भी था कि उसके भाई अळिय-रामराज ने तालिकोटा के युद्ध के समय संदिग्ध एवं जल्दबाजी भरे परिवर्तन किए थे। फिर उसने सदाशिवराय के नाम से उसकी मृत्युपर्यन्त (1568 में) साम्राज्य के दक्षिण हिस्से का प्रशासन संभाला और तत्पश्चात् उसने 1575 तक स्वयं सिंहासनारूढ होकर राज्य किया। उसके उपरान्त उसका द्वितीय पुत्र श्रीरंगराय द्वितीय (II) ने 1586 तक विजयनगर पर शासन किया। सन् 1578 में उसने अपनी राजधानी पेनुकोंडा से बदलकर चंद्रगिरि कर ली। उसके बाद शासन की बागडोर उसके सबसे छोटे भाई वेङ्कट प्रथम ने सन् 1614 तक संभाली। वह लावारिस मरा और इस कारण राज्य के उत्तराधिकारी के चयन के चक्कर में घरेलू युद्ध भड़क पडा। वेङ्कट की रानी बायम्मा के भाई गोब्बूरि जग्गराया ने अपनी बहिन के तथाकथित पुत्र के दावे को स्वीकार किया और इसमें तिम्मा नायक और महाराज (संभवतः चित्तूर जिले के कारवेटिनगर के मुखिया) ने समर्थन किया। श्रीरंग, वेङ्कट-प्रथम के द्वारा मनोनीत उनके भतीजे ने सिंहासन पर कब्जा किया। किन्तु वह हटा दिया गया और जग्गराया के प्रासाद में कैद कर दिया गया। जग्गराया ने जब श्रीरंग के वेलुगोटी याचमनायक के बरगलाने पर भाग जाने की कोशिश की और उसने छिपकर अपने दूसरे पुत्र राम को पहले ही वेलुगोडी चीफ़ के पास पहुँचा दिया था, तब उसने अपनी पत्नी महारानी, दो पुत्र तथा बेटियों की हत्या कर दी और आत्महत्या करके मर गया। याचमनायक ने राम के दावे का सफ़लतापूर्वक अनुपालन किया और उसे सिंहासन पर बिठाया। इसमें उससे तंजोर के रघुनाथ नायक का समर्थन प्राप्त हुआ जो स्वयं कुंभकोणम् में भगोडा राजकुमार के रूप में प्रतिष्ठित हुआ था। राम ने 1616 से लगभग 1632 तक शासन किया। वह भी निस्संतान मरा और

मृत्यु से पूर्व ही उसने वेङ्कट-द्वितीय और श्रीरंग-चतुर्थ को 1622 में अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। वेङ्कट-द्वितीय ने राम के पश्चात् शासन संभाला और 1642 तक शासन किया। श्रीरंगचतुर्थ ने उसके पश्चात् शासन संभाला तो अक्तूबर 1642 से 1672 तक शासन किया। श्रीरंग का नाम 1681 तक अभिलेखों में उल्लखित होता रहा। इसके पश्चात् वेङ्कट और रंग के नाम माधव और राम के साथ एक के बाद एक 1678 से 1793 तक के अंभिलेखों में देखे जा सकते हैं किन्तु तब तक हिन्दू साम्राज्य अस्तित्व विहीन हो गया था।

पेनुकोंडा से तिरुमलराय ने मुस्लिम आक्रमणकारियों को दक्षिण की ओर धकेला। किन्तु उसके पुत्र श्रीरंग को पेनुकोंडा छोडना और उस हिस्से को दुश्मन के हवाले करके उसके पश्चात्, उनके भाई वेङ्कट ने गोलकोंडा की सेनाओं के विरुद्ध खूब लडे और उन्हें कृष्णा नदी के परे ही रखा। चित्तूर, वेल्लूर, चेंगलपट जिले और शायद दक्षिण आरकोट जिले के कुछ भाग भी तत्कालीन विजयनागर साम्राज्य के अंग दिखाई देते हैं। यह सिलसिला 17 वीं शताब्दी के मध्य तक चला। वेङ्कट द्वितीय और श्रीरंग-चतुर्थ, बार-बार बिजापूर और गोलकोंडा सेनाओं से लडने को बाध्य होते थे और तिरुपति तथा चंद्रगिरी के साथ ही आसपास के क्षेत्रों को बचाए रखना खास कठिन कार्य था।

[विजयनगर साम्राज्य के स्थानीय एवं क्षेत्रीय क्षत्रप स्वयंप्रभु हो गये तथा स्वामिभक्त न रहे। यहाँ तक कि श्रीरंग-चतुर्थ इतना परेशान हो गया कि उसे मुगल सम्राट शाहजहाँ को उसके पुत्र औरंगज़ेब के माध्यम से प्रार्थना करनी पडी। औरंगजेब 1656 में दक्खन का वायसराय था। श्रीरंग को इन भ्रष्ट एवं निरंकुश अधिकरियों के विरुद्ध समर्थन की इतनी अवश्यकता थी कि उसने यहाँ तक कह दिया कि यदि मुगल साम्राज्य चाहे तो वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर सकता है। किन्तु इस प्रकार की अपील और प्रार्थना पत्र श्रीरंग-चतुर्थ ने भेजा था अवश्य, लेकिन वह शाहजहाँ तक नहीं पहुँचाया गया। (डॉ. एस. के. अय्यंगार कृत 'हिस्ट्री ऑफ तिरुपति', खंड II, पृष्ठ 314 - 473)]।

गोलकोंड सुल्तान एवं उसकी सेना के द्वारा तिरुपति की जनता को दी गई यातनाओं का 'वेङ्कटाचल विहार शतकम्' में वर्णन

'वेङ्कटाचल-विहार शतकम्' तेलुगु कविता में तिरुपति की जनता द्वारा भोगी गई तथा सुल्तान गोलकोंडा और उसकी सेना द्वारा दी गई अनेक यातनाओं का वर्णन एक तेलुगु कवि ने प्रत्यक्षदर्शी की हैसियत से सुल्तान अब्दुल्ला कुत्बशाह और उसकी गोलकोंडा सेना तथा अनेक वज़ीर अधिकारीगणों का निरंकुश व्यवहार देखा था। इसलिए उसने जनता की भावनाओं, अनेक दुख-दर्द, बलात्कार, मार-काट, अत्याचार, अंगभंग, बलात् धर्मपरिवर्तन, आबाल-वृद्ध-नारी हत्या आदि का मर्मान्तक वर्णन किया है।

यह भी बताया है कि उन्होंने कैसे हिन्दू मंदिरों और धर्मस्थलों को अपवित्र किया, उन्हें लूटा और तिरुपति के अनेक मंदिरों की मूर्तियों को खंडित किया। कवि का नाम कविता[1] में उल्लिखित नहीं है। कविता का शीर्षक है - 'वेङ्कटाचल विहार शतकम्।' यह शतक एक सौ पद्यों का ग्रंथ है किन्तु केवल 98 पद्य ही प्राप्य हैं। सीसमालिका छंद में लिखी गई काव्य पंक्तियों की प्रत्येक चौथी पंक्ति एक समान संपुट होती है। इसे 'तेट-गीत' कहा जाता है। चतुर्थ पंक्ति भगवान वेङ्कटेश्वर को संबोधित करती है - 'शत्रु संहार वेङ्कटचल विहार' अर्थात् 'वेङ्कटाचल निवासी जो शत्रु का संहारक है।' कवि कोई वैष्णव-ब्राह्मण प्रतीत होता है क्योंकि छंद संख्या 66 में वह कहता है - ''मैं मुसलमानों का कर्तारु मंत्र कैसे उचारु छोडकर अपने 'गायत्री मंत्र' और पाप का भागी बनूँ। बिना 'नामम्' के अपना मुख कैसे दिखाऊँगा और कैसे मैं पेनुगोंडा बाबू (नवाब) की प्रशंसा करूँ और कैसे ही तुमारी अर्चना छोड दूँ हे जग पति! मैं।'' कविता संख्या 7 में कवि गंभीर होकर कहता है कि यदि उसके जैसा ब्राह्मण किसी प्रकार से सुदर्शन चक्र भगवान वेङ्कटेश से प्राप्त कर ले तो वह अवश्य ही अश्वारूढी होकर शत्रु पर टूट पडेगा और उनको भरसक चोट पहुँचायेगा और चैन की सांस तभी लेगा जब उसके चारों ओर के अंबार गिरेंगे और वह तुर्कों को गोलकोंडा तक खदेड देगा। कविता सं. 9 में वह कहता है कि 'तुम्हारे तमिल कानों ने बहुत वर्षों से तमिल-प्रबंधों को गायन के माध्यम से सुना और उन्हें अब उनके लिए बंद नहीं करना चाहिए। अर्थात् उन्हें अब मुस्लिम गान को सुनने का अभ्यस्त नहीं होना होगा बल्कि तमिल पाशुरम्, जो आळ्वार संतों की हैं, को ही सुनना होगा। छंद 91 में कवि ने कहा कि अब तक उसने केवल वेङ्कटेश के पवित्र नाम का ही गुणानुवाद गायन किया है जो वैदिक सुगंध से भरा है और कोई मनुष्य उसकी बराबरी नहीं कर सकता। उसने पूछा, ''अब मैं आगे क्या करूँगा?' वहीं छंद 4 में उसने कहा कि मोदेगुंटा, कावली, जलदंकी, कोडवलूरु और गंडवरम् आदि स्थान उस युद्ध में बडे बडे गज, अनेक घुडसवार और लपलपाती खूनी तल्वार लिए हिन्दुओं को पददलित करते तथा इन बस्तियों को उजाडते सैनिक 'सुलतानी अब्दुल' (गोलकोंडा के सुल्तान अब्दुल्ला) ने कहर ढाया। छंद 77 में कहा कि उसे इस बात का आश्चर्य है कि नेल्लूर नगर किस प्रकार इस भयंकर सैनिकों के आगमन को सहन कर पाएगा जबकि अनेक पवित्र मंदिरों की पवित्रता नष्ट कर दी गई, उपवन के वृक्षों को अनेक गजों ने खेल खेल में रोंद डाला। *ब्राह्मणों* के लिए पवित्र पूजा-स्थान ''सरदारु'' (सरदार, सेना के आधिकारी) की आरामगाह बन गए और ''पद्माकरमुलु'' (कमल युक्त सरोवर) मूत्रालयों में परिवर्तित हो गए।

---

1. विद्वान वेदम् वेङ्कटकृष्णशर्मा, अपनी 'शतक वाङ्मय सर्वस्वम्' (भाग 1, पृष्ठ 124) में कहते हैं कि शत्रुसंहार शतकमु अर्थात् वेंकटाचल विहार शतकामु का रचनाकार 18 वीं शताब्दी का गोगुलपाटि कूर्मनाथ कवि था।

- गोपी कृष्ण

कावली, कोव्वूरु, दुव्वूरु, नेल्लूरु, पालूरु, पेल्लाकूरु और रावूरु आदि स्थानों और नगरों के ऊपर धूल के बादल छा गए जो 'यवन' (यवनों) की अनगिनत सेनाओं के आगमन से उठी थी।

वह कहता है कि शत्रु ने नेलत्तूरु, ताल्लपाक, मन्नूरु, ओतुकूरु, ओरमुपाडु, पेनु-बालपेटा, कोडूरु, मन्नेरु, केरुवा, और ममुदूरु (मामण्डूरु) (खं.55) और कालहस्ती (खं.57) पर अधिकार जमा लिया। और रल्लकालुवा को पार करते समय सेना ने इतना भयंकर शोर किया कि पहाडी की गुफ़एँ भी कंप उठीं। वह वेङ्कटेश्वर भगवान को उकसाता है, यह कहकर कि यद्यपि आपके प्रशंसक, वाहन, छत्र और स्वर्णयुक्त युद्ध-भेरी एवं नगाडे अनुपस्थित हैं, अच्युत-कृष्णराय के द्वारा भेंट की गई हीरे की माला (ऐसी मालाएँ कृष्णराय और उनकी दो रानियों ने भेंट की थी) विलुप्त नहीं होनी चाहिए और आपको 'कोप्पेर'(हुंडी) (दानपात्र) में विभिन्न तीर्थ यात्रियों द्वारा जमा की गई अनेक वस्तुओं और धन धान्य तथा सिक्कों को भी छांटना नहीं चाहिए (खं.50)। जब तुर्क लोग मंदिरों में घुस गए और उन्होंने देव प्रतिमाओं को खंड-खंड कर दिया, महान धार्मिक कथावाचकों को अपमानित करते हुए उनके मस्तक पर शोभित तिलक-चंदन को चाट डाला और उनके सिर पर शोभित शिखा को काट फेंका, क्या यह संभव है कि अब आप ऐसे पापी का वध करे? मैं बहुत कमजोर होकर आपसे विनती करता हूँ। आपका कृपाकटाक्ष मेरा भाग्य बदल देगा (खं.5)।

कम्खाण-गणमु (सेना नायकों के अनुगामी) और गोलकोंडा के वज़ीर के अधिकारी सैनिकों ने सन्यासियों को पकडकर उनके मुंडे हुए सिरों को एक-दूसरे से टकराकर फोड़ डाले, जैसे ये कोई द्वंदयुद्ध हो। सोमयाजियों (याज्ञकों) के ब्रह्मसूत्रों (यज्ञोपवीत) को खींचकर उन्हें अपने धनुषों में बाँध लिया, मंदिरों में जो अश्व वाहन थे, उन पर चढकर उनके द्वारा पंडितों को उभाड़ा। चारों ओर 'हे राम' मचा था। स्त्रियों के सतीत्व की धज्जियाँ उड़ाई जा रही थीं। मुख्य रूप से कोमटी (व्यापारी) वर्ग की वधुओं को अगवा करके उनके संरक्षकों से धन मांगा जाता था, फिरौती माँगी जाती थी। तिरुपति के कई हिस्सों में बड़ी दुर्दशा थी। तुम्हारा बडा भाई तिल्ला-गोविंदराज शयन मुद्रा में है और स्वयं को झिंझोडने में असमर्थ है (खं.15)। तिल्ला - गोविंदराज बहुत वृद्ध हैं और पुरातन कालीन व्यक्ति हैं। उनके हाथों में चक्र चलाने की शक्ति नहीं और भोजन के अभाव में उन्होंने हार मान ली है। उनका *सार्ङ्ग* (धनुष) अप्रयोग के कारण जंग खा गया है। उनकी तलवार को तिलचट्टे चाट गए हैं। उनकी *कौमोदकी* और *पांचजन्य* (शंख, चक्र) भोपरा व बोदा हो गया है। उनके सेवक स्वार्थी होकर उन्हें छोड गए हैं। वे कह गए हैं कि वे बिना वेतन के कार्य नहीं कर सकते। जब वे इस प्रकार निरुपाय हो गए हैं, तो क्या वे इन शक्तिशाली यवन क्षत्रपों के विरुद्ध चढाई कर सकते हैं? (खं.21) (संभवतः यह वर्णन बताता है कि उस समय गोविंदराज के मंदिर के विपरीत दिन चल रहे थे) 'जंग खाए पीतल और तांबे की चीजों

को पिघलाकर तोप के गोले बनाए। गंडकी नदी से पूजा हेतु लाए गए शालिग्रामों को गोली बनाया गया, पत्थरों में खुदे और फँसे अन्य पत्थरों को संगतराशों ने पदपाषण बनाया। आपने इन कर्मों का संज्ञान लिया या नहीं? ऐसे कुकर्म तुर्की सेना व सेना नायकों ने किया (खं.16)।

'किसी तरह से पिछले तीन दिनों में, विभिन्न देवियों ने अपने बहुमूल्य गहनों को नहीं पहना। क्या आपको ज्ञान है कि इस प्रकार आभूषणों का बिना उपयोग के परित्याग करना तुर्कों के भय के कारण ही है? कृपया इन्हें इस पहाडी-दर्रे से बाहर खदेड़ो? (खं.17) 'ये तुर्की नर्सपहसालार अपनी अभद्रता, अमर्यादा, घमंड तथा मदिरा के मद में चूर हैं उन्होंने हमारा रक्त भी पी डाला है। ऐसी ही एक तुर्की सिपहसालार ने *जिय्यंगारु* को रोंदा और वह दर्द से बिल बिलाता हुआ मंदिर में आ गया। खुले दरवाजे मालाएँ बन गई और उनकी गर्दनों को सज्जित कर गई, जब आल्वार, भाग उठे। उनको देखकर *नंबी* (पूजा कराने वाले *अर्चक*) अंदर तेहसाने की ओर दुम दबाकर भागा जहाँ एक बिच्छू ने उसे काट लिया। वहीं खडा रहा गया। मंदिर का *पारुपत्यदारु* (प्रबंधक) औरतों की पांत के पीछे छिप गया। वे तुर्क सिपहसालार सबके प्रति गंदी एवं अभद्र भाषा का प्रयोग कर रहे थे। नगर को लूट रहे थे। क्या हम इसके लिए उन तिल्ल-गोविंदराजुलु को दोष दें जो उन्हें नेस्तनाबूद करने में असमर्थ हैं? (खं.22-23)।

यदि *चंडाल* (निम्न जाति के लोग) आपकी पवित्र पहाडी पर चढें तो हम सहन कर सकते हैं, यदि *माला* (अस्पृश्य लोग) पुष्करिणी के पवित्र जल को स्पर्श करें तो निम्नतम श्रेणी के भी सभी लोगों को *मोक्ष* देती है, किन्तु हमारे देवताओं के शरीर पर सुशोभित जवाहरातों के लूटने का समाचार सुनना हमारे लिए असंभव है, असहनीय है। (खं.25) आप कैसे सहन करेंगे जब वे आपके आंतरिक कक्ष (गर्भगृह) में प्रवेश करेंगे? आपका पवित्र कक्ष और आपकी बहुमूल्य चीजें लूटी जा रही हैं? क्या आप स्वयं राज परिवार से नहीं? क्या आप में मर्दानगी पराक्रम और विक्रम की कमी है? (खं.27)

'क्या आप इस युद्धोन्मत्त सेना को बिना किसी घृणा भाव के समाप्त नहीं कर सकते और इस पहाडी प्रदेश के समूल नाश को रोक नहीं सकते? *'जीर्ण कर्णाट-लक्ष्मी'* (विजय नगर साम्राज्य की विनाशोन्मुख कर्णाट समृद्धि) को बचाओ और अपने सुदर्शन चक्र से वाजीरों के सिर, धड से अलग कर दो और अपने वज्राघात से इनकी अपकृत्य भरी हिम्मतों को नष्ट करके रख दो। इन्होंने हम लोगों के खून के साथ खेला है, हमें घायल किया है, खून के झरने बहाये हैं। इन्हें आप *पेरूरु* ग्राम के तालाब तक खदेड दो (तिरुपति के पश्चिम में सडक के किनारे लगभग 3 मील की दूरी तक) (खं.30)। फिरंगी घुडसवारों ने यहाँ पहाडी तक आधमक नेकी धृष्टता की (वे अपनी तोपों से लगातार आग उगलते हैं, लोगों को मारते हैं। ये देखने में *यवन कालांतक* (मुसल्मानों के मृत्युदेवता) के ऐसे प्रतिनिधि हैं जो मृत्यु समय के पूर्व ही लोगों को परलोक पहुँचा देते हैं, आप इनका वध क्यों नहीं कर देते? इन्हें पहाडी के

नीचे धकेलो, समाप्त करो और विजयश्री का वरण करो (खं.32)। वे आपके देवालय में बुर्ज के नीचे जो मुख्य द्वार है), उस के ऊपर चढे सोने की पर्त को काट रहे हैं। आप भी क्यों नहीं इनकी ऐसे ही खाल उधेड देते? सभी मनोहर कुंज कब्रों से सटे पडे हैं और मंदिर में पूजा अर्चना के लिए जल लानेवाले वाहक गलियों में दिखाई नहीं देते, केवल मदिरा पात्र दिखाई देते हैं। कोई *कमंडल* (पानी का लोटा जो संयासी रखते हैं) मठों में नहीं पाया जाता, केवल अभद्र भाषा सुनाई पडती है। घरों से धर्मग्रंथों के पारायण की ध्वनि नहीं। मंदिरों में नित्य पूजा और उत्सवादि नहीं होते। कुछ सुनाई देता है तो घोडों का हिनहिनाना। आप क्यों यह सब सहन कर रहे हो? इस *पठान* सेना को मारना कुछ क्या संभव नहीं होगा? चंदन-वाटिकाओं में मांस सुखाने के लिए फैलाया जाता है और समस्त गंदगी वराह-पुष्करिणी में धोई जाती है। नमाज - दावतें वैखानसों के (पृष्ठ. 38, 39) द्वार पर उड़ाई जाती हैं। (खं.38 और 39) लोगों ने घर त्यागकर यत्र-तत्र छिपने और जान बचाने में ही अपनी भलाई मानी है। स्त्रियाँ अनगढ टिकटियों में छिप गई हैं। कुछ स्त्रियाँ सुरंगों में जा छिपी हैं। उनके पास न कोई जेवर है, न उनके पति का पता। उनकी संतानें भी पीछे छूट गईं हैं (सं.62)। (PNo V-62)

'आप कैसे सहन कर सकते हैं जब तुर्क गायों का वध करने लगते हैं? आप तो गौ-पालक हैं (कृष्ण जैसे) गोपाल हैं। जब वे विवाहिताओं का शीलहरण करते हैं, तो आप, जिन्होंने द्रौपदी की लाज बचाई, क्यों नहीं आते? जब वे ब्राह्मणों का अपमान करते हैं, उन्हें सताते हैं और देवी देवताओं की मूर्ति-भंजन करते हैं, गो *ब्राह्मण, स्त्री रक्षक* आप क्यों नहीं सहारा देते? (खं.67) जब तुर्कों ने सिद्धवटम् पर प्रहार किया और लोगों का वध किया, देवी कामाक्षी का सिरोच्छेद किया, भगवान सिद्धलिंग ने अपने शरीर त्यागा और चन्ना केशव स्वामी ने, पेन्ना नदी में डुबो लिया और दूसरे देवतागण कूचकर गए और केवल ओण्टिमिट्ट के भगवान रघूद्वह (श्रीराम) वहाँ खडे रह सके (खं.69)।

'सेतु-बंध-रामेश्वर स्वामी समुद्र तट पर रेत में दब गए। जंबुकेश्वर ने *तपस्या* करने की ठान ली और फलाहार करने लगे और उन्होंने अपने केश बढा लिए, चिदंबरेश्वर (नटराज) *भस्मासुर* की भयंकर करतल क्रिया से किंकर्तव्यविमूढ हो गए। श्रीशैलम के मल्लिकर्जुन ने स्वयं को गहन वनों में छिपा लिया। मधुर चोक्कय्य स्वामी (मधुरा के चोक्कनाथ स्वामी) ने आनंद के आश्रय अन्यत्र देखना आरंभ किया। रंगनाथ (श्रीरंगम के) दिवस-रात्रि सोने लगे। बस आप ही तिरुमल से नीचे नहीं उतरते। क्या आप तुर्कों का वध करने में समर्थ नहीं है? (खं.61)।

'हमारे मंगलगिरिसामी मंगलगिरि वासी पानकाल - नरसिंहस्वामी निरंतर घडे भर भर कर गुड से मीठा किया जल (पानकम्) पीने में लगे हैं। अहोबलाध्यक्ष हरि (अहोबल नरसिंहस्वामी) निरंतर लच्छी (लक्ष्मीदेवी) के साथ क्रीडारत हैं और उनका ध्यान भंग नहीं किया जा सकता। पुरुषोत्तम सदैव प्रसादम्

(पवित्रभोजन) के भक्षण में रत रहते हैं और विचारहीन रहते हैं। धर्मपुरी गुहास्थान पति (धर्मपुरी कंदरा के भगवान) मनन-चिंतन में मग्न हैं और इन देवताओं ने पहले से ही इस्लामीकरण कुबूल सा कर रखा है, किन्तु आप इस *मुस्लिम बहुल देश* में एकमात्र दक्खिनी बचे हो, आप यह सब कैसे सहन कर सकते हो? (खं.74) क्या आपके पहाड की चोटियाँ लंघनीय हो जाएँगी यदि तुर्की सेना आपके पहाड को घेर लेगी और आपको कूट डाले? क्या कोई आपका रक्षक भी है, यदि ये आप पर टूट पडते हैं और तुम्हारे हाथ से यह दंड छीन लेते हैं तो? क्या यहाँ आपकी रक्षा हेतु कुछ अंगरक्षक नियुक्त हैं, यदि ये लोग जबर्दस्ती हिंसक बन तुम्हारे जवाहरात लूटने लगें तो? क्या आपकी पुकार पर कोई अन्य आएगा यदि ये जबरन आपके मंदिर में प्रवेश पा लें तो और तुम्हारे *बिलमु* (बिल में, विवर में, खेह में) ही पहुँचकर तुम्हें पददलित कर दें तो? हाय! दक्षिण के हम दीनहीन दुःखी जन आपके कृपा - कटाक्ष के बिना कैसे रहें? (खं.79)

[पुराणों में वर्णित विवर या छिद्र जिसमें भगवान वेङ्कटेश्वर युगों से रहते आए थे, और जो तभी दृष्टिगोचर हुई जब राजा तोंडमान ने पता लगाया और उनके लिए एक देवालय बनवाया। यह उसी को लक्ष्य करके 'बिलम्' (बिल) शब्द का संधान किया गया है और जैसे वह बिल अब भी विद्यमान रहा होगा ऐसा इंगित है। ऐसा स्थान जहाँ भगवान वेङ्कटेश्वर पुनः अपने जवाहरातों और अकूट कोष को लेकर छिप सकें। पद्य 23 में इसी 'गोह' को इंगित करके 'गोंडी' शब्द का प्रयोग किया गया है जहाँ *नंबी* को किसी बिच्छू ने काटा था और अन्यत्र भी *'बिलमु'* (जैसे खं.84) जहाँ भगवान वेङ्कटेश कभी सिमटे बैठे थे और बाहर जाने का नाम भी न लेते थे।]

''हृष्ट-पुष्ट *वजीरें* ने श्रीवैष्णवों को तरह से पीडित करना प्रारंभ किया - उनकी शिखाओं को आपस में बांध देते। मुलिकिनाडु समुदाय के लोगों को लाठियों से पीटते। गोड्लवेटी-महाग्रहार ब्राह्मणों को भीड में ले जाकर मारते और द्रविड लोगों (तमिल भाषियों) को अभद्रशब्दों में गाली सुनाते। कितनी दुर्दशा है कि आप अपनी गुफा छोड खोह में जा छिपे हैं और वहाँ से बाहर आने का नाम भी नहीं लेते? (खं.84)''

''आप चक्रधारी हैं और इतनी ही आपकी प्रसिद्धि रह गई है, लेकिन आप तुर्कों पर प्रहार करने में असमर्थ हैं। केवल आपकी अर्धांगिनी शोभावती 'लच्छी' (लक्ष्मी, धन की अधिष्ठात्री) का सम्मोहन बचा है। किन्तु आप ऐसे हो कि जो धन आपको सुपुर्द है उसमें एक पाई की भी रुचि आपमें नहीं दिखाई देती। बस आप लोगों की निगाह में कहने भर के भगवान हो। किन्तु आप अपने भक्तों को अब 1116/- भी दे पाओगे। (एक हजार एक सौ सोलह रुपये का उपहार बहुमूल्य माना जाता है और कवि के द्वारा 1116 रुपए की चर्चा उसी रकम की ओर संकेत है)। स्वर्णाभूषण एवं पोषाक आप पर हैं

अवश्य किन्तु भोग अब आपके मोटे चावल का ही लगता है, अब आपके थालियों को धोने की भी अनुमति आप नहीं देते, इतनी मितव्ययता से आपने धन संचित किया। यदि यह सारा धन आप इन तुर्कों को फिरौती के रूप में दे देंगे तो आपके भक्त आप पर कैसे विश्वास करेंगे (खं.89)। मैं आपका शुभ चिंतक हूँ इसलिए प्रार्थना करता हूँ कि इन तुच्छ मन वाले लोगों को एक भी धेला न दें। (सं.90)

कावेरी रंगा (*कावेरी* नदी में स्थित श्रीरंगम् टापू के अधिष्ठाता श्रीरंगनाथ जी) को भोजन-भोग, *कंची*-वरदप्पा की *गरुड सेवा,* पेनुगोंडा-रामभद्र की भव्यता, गंडिकोट माधव का प्रभाव, उदयद्रि (उदयगिरि) रघुवीर की प्रभुता, कडपा-वेङ्कटराय (कडपा के वेङ्कटेश्वर), कालहस्तीश्वर की प्रसिद्धि और के मल्लिकार्जुन (श्रीशैलम् के) का प्रबल आकर्षण, ये सभी लुप्त हो गए। सभी ने अपनी विशेषताएँ और प्रभुता खो दी, आप ही बस इसे बचाए रख पाए हैं (खं.92) जब आपकी इस चाहर दीवारी के समस्त प्रस्तर खंड उखाड - उखाड कर *गोरीलु* (कब्र) बनाने के काम में ले लिए जाएँगे, तब आप कहाँ रहेंगे? कौन - से फूल आप अपने बालों में लगाएँगे जब आपके सभी पुष्प-वृक्ष काटकर उनके स्थान पर बागों में *भांग* के बीज बो दिए जाएँगे? आप किस भोजन का भोग लगाएँगे जब आपके निमित्त का सभी भोजन *फकीरों* को दे दिया जाएगा? कौन - से जवाहरात आप धारण करेंगे जब सारे जवाहरात घुडसवार खुद बाँट लेंगे? इस प्रकार कुछ अश्वारोही सैनिक थोड़े धनी अवश्य हो जाएँगे, पर यह तभी होगा जब कोई (आप) इतने लापरवाह रहेंगे? अपनी शक्ति को एकत्र कीजिए और शीघ्रतापूर्वक इन पारशीकुलु (फारसी) को मार गिराइए (खं.93)।

'आदमी के व्यवहार की सभी औपचारिक सीमाएँ लाँघी जा चुकी हैं, तुर्कों ने चारों ओर से तिरुपति को घेर लिया है और इसे निर्दयता से लूट रहे हैं (सं.94)। क्या आपको उन तुर्कों को पददलित नहीं करना चाहिए जिन्होंने आपके लिये तैयार किये गये भोग को जूठा किया - बर्बाद किया, हजार खम्भोंवाले विशाल *मंटप* को अस्तबल में बदल दिया, *बाबय्या* नामक मुस्लिम अधिकारी ने मंदिर को गोरी बना दिया, *गर्भगृह* में गंदगी से भरा दिया, मूर्तियों को खंडित किया और पवित्र जवाहरात को लूटा, रसोईघर की सामग्री को तितर बितर किया, *नंबी* पर प्रहार किया, *जियंगारों* की देह को उछाला और तिरुमल के संभ्रान्त व्यक्तियों के घरों *(तिरुमालिगलु)* को जी भर कर लूटा। यह लूट खसोट कब तक चलेगी, प्रभु? (सं.95)

''जब पहले *मनुज-राक्षस* (देखने में मनुष्य और कर्म से *राक्षस*) *विजयापुरी* (बिजापुर) से आकर दक्षिणी राज्यों पर आक्रमण करते थे, उन्हें अपने अधीन करते थे तब राजगोपाल मूर्ति भाग खडा हुआ था। उसने इन नीच *यवनों* (मुसलमान) को पीठ दिखाई थी। कांची वरदप्पा (वरदराज़) बहुमूल्य हीरों को छीन लिए जाने के भय से थर-थर कांपने लगा था। चेंगल्वराय (नरसिंहस्वामी), घटिकाचल के देवता

(शोलिंगर) पहाडी से नीचे न जा पाए। श्रीमुश्नम् गर्भगृह में चले गए और देवी तिरुकोवलरु टुकडे टुकडे हो गई (खं.70)।

''दशमी, एकादशी, द्वादशी के व्रतोपवास और भोजन रुक गए (दसवें, ग्यारहवें, बारहवें, दिन - शुद्धा के समय) और *राजा* (मुस्लिमों) की दावतें बढ गईं। शिव व विष्णु के माहात्म्य केन्द्र बंद हो गए और *बाबय्या* को भेंट देना बढ गया। धर्माध्यापकों के कार्यालयों में ताले पड गये और *फकीरों* के प्रति सम्मान बढ गया। *वेद शास्त्र* और अन्य धार्मिक ज्ञान का प्रसार आकाश कुसुम हो गया और *अल्लाह-शास्त्र* (मुसलमानी पढ़ाई) का चलन बढ चला। खेद है! क्या आपने अपने स्वर्गिक गान को अपनी कमजोरी के कारण तुर्कों को भेंट कर दिया है? (खं.81)।

'यदि अब भी आप तुर्कों को नष्ट नहीं करते, तो मैं चुप नहीं रहूँगा। मैं आपके पूर्व जीवन के सभी गुप्त रहस्यों को बहिर्गत कर दूँगा। मैं ने कभी उन्हें भुलाया नहीं है। तुम्हारे वे कृत्य - माखन चुराकर हडपकर जाना और बेचारी विवाहित गोपिकाओं से अनवरत छेडखानियाँ करना, पूतना को मार गिराना जबकि वह माता के समान दुग्धपान कराने आई थी और आपने अपनी गर्वोन्मत्तता में अपने भाई बलराम को वृद्धा यमुना नदी पर हल से प्रहार करने हेतु उकसाना आदि (खं.80)।

''स्वयं को 'श्रीहरि' कहना बंद करो और उसकी जगह 'मृत्युजाहल्ली' कहो, 'पेरुमाल्लु' के स्थान पर 'खोड़ा,' 'विष्णु' के स्थान पर 'कर्तारु', 'कृष्ण' के स्थान पर 'बाबय्या' क्योंकि जैसे 'दक्खिनुल' (दक्कानी), तुर्क, पारसी (फारसी), 'तानकील' (मिलिटरी या थाना के कर्मचारी) आदि अपमानित, गाली और बदसलूकी से आपको धकियाते हैं। मैंने आपसे अपनी मन की कह दी क्योंकि मैंने आपका अन्न खाया है और भी अनेक भोग भोगे हैं। मेरा और कोई मन्तव्य नहीं। इन दर्दनाक नजारों से घबराए बिना, समय रहते इनसे निकलने का प्रयत्न करो (खं.85)।

''*म्लेच्छ* सैनिक मदमत्त होकर हुडदंग मचा रहे हैं, चारों ओर हाहाकार मचा है। वे सदा तलवारें चमचमाकर लोगों को भयभीत करते हैं। आप इन्हें सहन किए जा रहे हैं और इनको नष्ट करने का नाम भी नहीं ले रहे जबकि ये अपना आतंक बढाते जा रहे हैं। क्या इनके कुकृत्यों के लिए आपकी सहमति है? (खं.96)।

सामान्य निर्देश - पाठक जो दक्षिण भारत के इतिहास से परिचित नही हैं वे इन नामो को जब भी ये आते हैं इस प्रकार भी सरलता की दृष्टि से पढ सकते हैं। कडप्पा (कड़पा) कोंजीवरम् (कांजीवरम्, कांची, कोचीपुरम्), कर्नाटिक (कर्नाटक) आरकोट (आर्कोट)

- गोपी कृष्ण

'यदि आपने सच्चे ही मत्स्य, वराह, सिंह और राम के तीन नामों आदि अनेक अवतार धारण किए हैं तो क्यों नहीं इन हिंसक *वज़ीरों* को नेस्तनातूद कर देते? उन पर चोट, मार, काट, फाड और निकाल बाहर करते? (सं.83)

'यदि आप कम से कम इतना ही कर दें कि इनके श्रेष्ठ अश्वों को पेट दर्द कर दें, किसी रहस्यमयी तकनीक से इनके पर्वताकार गज धरती पर पटखनी खाने लगें, इनकी सेना के जवान अपने घमंड को काबू में रखें और इनकी कब्रों की संख्या बढती चली जाए। दुश्मन कंबख्त *वजीरों* को छडी से इतना पीटो कि पीठ सूज जाए और कुछ ऐसा करिश्मा करो कि इन तुर्कों की सेना कायरतापूर्वक गोलकोंडा तक पीछे हट जाए। गोलकोंडा ही क्या ये ढिल्ली (दिल्ली), आगरा (आग्रा), विजापुरी (बीजापूर) और ऐसे ही दूरस्थ स्थानों में यही करते भाग खडे हों - 'साहेब सल्लामु खूब! (श्रीमानजी, अलविदा)! (खं.97)।

अंत में कवि श्रीवेङ्कटेश्वर से बहुत दुःखपूर्वक क्षमाप्रार्थना करते हुए यही कहता है - 'मैंने आपको घमंडी और उपहास में आपको न जाने क्या क्या कह डाला। आपको कायर कहा जबकि आप हैं सर्वश्रेष्ठ योद्धा, हृदयहीन कहा जबकि आप हैं सर्वदा भक्त वत्सल, शक्तिहीन कहा जबकि आप हैं सर्वप्रभुवरसंपन्न, सर्वव्यापक। इस सकल ब्रह्मांड के प्रत्येक अणु में भी आपकी उपस्थिति है,बाल जैसे पतले पदार्थ में भी आप हैं। मैंने आपको आलसी कहा किन्तु आप स्वंय प्रकाश और स्फूर्ति कारक हो, मैंने हडबडाहट और अवसाद के मूड में इसीलिए आपको दोषी कहा क्योंकि मैं आपको उकसाना चाहता था जिससे संसार का भला हो। आप इन आक्रमणकारी हिंसक तुर्कों को समाप्त कर दें। मैं पछताते हुए आपसे करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि मेरे हजारों अपराधों को सहन करें और क्षमा करें। (खं.98)।

इस अज्ञात कवि के काव्य की पृष्ठभूमि में वर्णित तत्कालीन परिस्थितियों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उस समय गोलकोंडा के सुल्तान अब्दुल्ला कुत्ब शाह की मुस्लिम सेना ने कोहराम मचाया था। विजयनगर साम्राज्य के इस मध्य क्षेत्र संपूर्ण तिरुपति को आतंकित किया हुआ था और दूसरी ओर दक्षिणी क्षेत्र में बिजापूर की सेनाएँ कहर बरपा कर रही थीं। दक्षिण क्षेत्र की हिंदू प्रजा भयंकर कष्ट में थी। अधिकांश ने अपने घर, संपत्ति, परिवार, पत्नी, बच्चे और अन्य संबंधी को खो दिए थे और उनकी अपनी जान के भी लाले पडे हुए थे। वे जंगलों और वनों में ही नहीं अन्य निरापद किन्तु वन्य प्राणियों से आच्छादित स्थानों में निवास करने के लिए बाध्य थे जनता के लिए यह एक हृदयविदारक त्रासदी पूर्ण और गंभीर परिस्थिति थी। अवश्य ही हिंदू धर्म की हानी और अपूरणीय क्षति हुई थी। मूर्तियों और मंदिरों का खंडन और लूटपाट ही तुर्क सेना का कार्य बन गया था।

इस प्रकार की अमर्यादित एवं गंभीर परिस्थिति सुल्तान अब्दुल्ला, उसके वजीर और इसकी सेना ने उत्पन्न की थी। सुल्तान ने अपने लोगों को खुली छूट दे रखी थी कि वे अपनी बर्बरता का खुला परिचय कराएँ। इतना आतंक फैलाए और लोगों को भयभीत कर दें कि कोई सिर न उठा सके। अपने आक्रमण और उसके कुछ समय तक यह कुकृत्य चलता रहा जब तक कि क्षेत्र के सभी लोग पूर्ण रूप से आश्रित न हो गए। बाद में उन्होंने हिंसा और अपने कुकृत्यों में कुछ कमी की होगी और लोग भी उनकी यातनाओं के आदी हो गए होंगे। अपनी उस नई दबी कुचली जिंदगी की गाडी को इसी प्रकार ढोने के लिए बाध्य हो गए होंगे।

गोलकोंडा के एक वजीर 'मीर जुमला' ने इस क्षेत्र को पहली बार विजित किया। जब वह औरंगजेब के साथ चला गया तो यह क्षेत्र मुगल साम्राज्य का एक अंग घोषित कर दिया गया। सन् 1656 में औरंगजेब, दक्खिन का वायसराय बना और अपने पिता शाहजहाँ का प्रतिनिधि होकर दक्खिन में तैनात हुआ। बाद में सुल्तान अब्दुला ने इसे पुनः जीतने के प्रयत्न किए और अपनी मृत्यु के समय 1672 ई. तक उसने इसे आधिकार में ले भी लिया। अतः तिरुपति क्षेत्र पर अब्दुल्ला का आक्रमण लगभग 1656 के पश्चात् ही हुआ होगा या संभव है कि 1656 और 1668 के बीच हुआ हो। क्योंकि तब तक ईस्ट इंडिया कंपनी का अस्तित्व स्थापित हो गया था। सन् 1668 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने गोलकोंडा के वायसराय के यहाँ अपना एक दूत भेजा था जो तिरुपति आया था और वहाँ इसके शासनपत्र (चार्टर) पर सहमति हुई थी। संभवतः यह 1664-65 ई. में हुआ होगा। मीर जुमला का नाम इस कविता में भी कहीं नहीं आया। हाँ इस शतक में सुल्तान अब्दुल्ला का नाम दो बार आया है।

तिरुपति का क्षेत्र जब अधीनस्थ हो गया तो वह गोलकोंडा के वायसराय द्वारा तिरुपति के मुख्यालय से ही शासित होता था। यह स्थिति तब तक रही जब तक गोलकोंडा सुल्तान को पूर्ण रूप से 1688 में औरंगजेब द्वारा हस्तगत नहीं कर लिया गया।

वेङ्कटापतिराय द्वितीय के शासन में उसकी पत्नी के दो भाई दामेरला वेङ्कटप्पा नायक और अय्यप्पा नायक बहुत प्रभावशाली हो गए थे। वेङ्कटप्पा नायक मंत्री तो था, साथ ही साथ, एक बडे राजस्व वाले क्षेत्र वंडीवाश का प्रशासक भी था। दूसरी ओर अय्यप्पा नायक पूनमल्ली में एक छोटे पद पर था। वेङ्कटप्पा नायक की सलाह पर महाराज वेङ्कटपतिराय-द्वितीय ने चंद्रगिरि के आवास से मार्च 1639 में फ्रांसिस डे को मद्रास में एक कारखाना (फैक्ट्री) लगाने का फरमान किया। यह फरमान 1645 में श्रीरंग चतुर्थ द्वारा पुष्ट किया गया।

सन् 1636 में दिल्ली सम्राट शाहजहाँ ने दक्खिन पर आक्रमण किया। उसने अहमदनगर की शक्ति को खत्म किया और बिजापूर से संधि की जिसके अनुसार बिजापूर को यह आजादी दी गई कि वह

विजयनगर की डूबती और सिमटती सीमा का जितना भाग चाहे अपने हस्तगत कर सकता था। गोलकोंडा को भी इसी प्रकार की स्वाधीनता दी गई। बिजापूर ने वेल्लोर को हथियाया और गोलकोंडा ने चंद्रगिरि को। जिंजी (चेंजी) 1649 में बिजापूर के हाथ लगा। सन् 1638 से गोलकोंडा ने विजयनगर के दक्षिणी भाग को जीतना आरंभ किया। यह कार्य प्रभावशाली मंत्री मीर जुमला की निगरानी में हुआ जिसने 1656 में औरंगजेब की तरफदारी की थी। औरंगजेब अपने पिता शाहजहाँ के प्रतिनिधि के रूप में वायसराय था। शाहजहाँ ने यह भी घोषणा की कि इस प्रकार मीर जुमला के द्वारा हस्तगत की गई कोई भी बस्ती या क्षेत्र मुगल साम्राज्य की होगी और उन्होंने मीर जुमला को अपना प्रतिनिधि कारसाज़ नियुक्त कर दिया। किन्तु गोलकोंडा को फिर से जीता गया और यह 1672 में भी इनके अधिकार में रहा और बाद में जब गोलकोंडा राज्य को 1686-88 में औरंगजेब ने कुचल डाला तब जाकर दक्खन और कर्नाटक के क्षेत्र 1686 में पूर्णतया मुगल साम्राज्य के अंग बने। सन् 1668 में इसी दौरान जब गोलकोंडा द्वारा मध्य क्षेत्र पर कब्जा किया हुआ था, इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने मद्रास से तिरुपति में स्थित गोलकोंडा के वायसराय से मिलने के लिए एक प्रतिनिधि दूत को भेजा। वायसराय ने दूत को गोलकोंडा जाने के लिए कहा जिससे वह अपने चार्टर को पहले चीफ नेकनम खान से सही करा ले और फिर मीर जुमला से भी मिल ले। एक बार फिर 1680 में कंपनी ने तत्कालीन गोलकोंडा मंत्री अक्कन्ना से मिलने के लिए एक दूत को भेजा। वह मंत्री के भाई मादन्ना से मिला जिसने उसे यह सलाह दी कि वह तिरुपति जाकर अक्कन्ना से संपर्क करे। उससे यह स्पष्ट होता है कि तब तक तिरुपति एक तीर्थ यात्रा क्षेत्र के रूप में तो प्रसिद्ध हो ही गया था। इतना ही नहीं वह उस काल के राजनीतिक और यहाँ तक कि मिलिट्री प्रशासन का भी प्रमुख केन्द्र बन गया था।

शिवाजी एवं मराठा - उसी समय के दौरान सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पश्चिमी भारत में एक नई शक्ति -हिंदू शक्ति का उदय हुआ। महाराष्ट्र राज्य में प्रसिद्ध, निर्माण और अविचलित नायक शिवाजी का वर्चस्व प्रारंभ हुआ। शिवाजी के पितामह मल्लोजी भोंसले घुडसवारी के कप्तान थे और उन्हें पूना में कुछ जागीर प्राप्त हुई थी। अहमदनगर के सुल्तान से प्राप्त 'पूना' और अन्य स्थानों की जागीर को मल्लोजी ने अपने पुत्र शाजी को सौंपा। सन् 1636 में शाहजहाँ और बीजापुर के सुल्तान के बीच जब संधि हुई तब शाजी बिजापूर की सेवा में आए और उन्हें कर्नाटक की ओर कूंच करने का आदेश हुआ। तत्कालीन विजयनगर के सम्राट श्रीरंग चतुर्थ ने उनका विरोध किया और उसे वेल्लोर जिले के गुडियात्तम् स्थान पर 1638 में हरा दिया। किन्तु शाजी ने पलटी खाई और सेलम के रास्ते से होते हुए वह वेल्लोर की ओर बढा और उसने जिंजीं को हस्तगत कर लिया। उसकी इस सफलता से प्रसन्न होकर, बिजापूर के सुल्तान ने शाजी को बंगलोर के पास कुछ बहुमुल्य *जागीरें* दीं। तब शाजी ने अपने पुत्र को अपनी पूना का *जागीर* दे दी और बाद में जब उसने कुछ और जागीरें पाईं तो वह शिवाजी के सौतेले

भाई वेङ्काजी द्वारा हस्तगत कर ली गईं। इस पर निर्भीक शिवाजी ने बिजापूर की सीमा में लूटपाट करनी शुरु कर दी और बदला लेने के लिए सुल्तान ने शिवाजी के पिता शाजी को बंदी बना लिया। उन्हें चार वर्षों तक बिजापूर में ही रखा गया ताकि शिवाजी अपने आप को संयमित रखने का उपक्रम करें। पिता की कैद से रिहाई के पश्चात्, शिवाजी ने बिना समय गँवाए अपने बल को बढाना शुरु कर दिया और सन् 1674 तक अपने लिए राजा का दर्जा प्राप्त कर लिया।

सन् 1676 में शिवाजी ने यह संकल्प लिया कि वह उन सभी दक्खिनी जागीरों को अपने भाई वेङ्काजी से मुक्त करा लेगा जिन्हें उसने बिजापूर सुल्तान ने प्रतिनिधि के रूप में हस्तगत किया था। इसके लिए शिवाजी ने गोलकोंडा के सुल्तान से यह तय किया कि उसे बिजापुर के उन दक्षिणी क्षेत्रों को गोल्कोंडा के लिए जीतने की अनुमति मिले और यह भी कहा कि वह उनके राज्य की उत्तरी सीमाओं की रक्षा भी करेगा। इस समय श्रीरंगराय चतुर्थ की विधवा रानी और उनके दो बच्चों ने शिवाजी से उनके भरणपोषण के लिए धनराशी को तय करने की प्रार्थना की। बताया जाता है कि 'शिवाजी ने राज परिवार के रख-रखाव व पोषण के लिए अच्छी राशि नियत भी की', (डॉ.एस.के.अय्यंगार 'हिस्ट्री ऑफ तरुपति' खंड II पृष्ठ 314)। शिवाजी, कल्लूर मार्ग से चित्तूर जिले में प्रवेश कर गए। रास्ते में गाँवो को जलाते हुए और फसलों को नष्ट करते हुए वे तिरुपति, कालहस्ती और कांजीवरम् से गुजरे तथा उन्होंने वेल्लूर, आरणि और जिंजी को अधिकार में कर लिया। तभी अचानक गोलकोंडा के सुल्तान ने उन्हें मदद के लिए वापस बुला लिया। इसलिए वे संताजी के पास एक छोटी फौजी की - टुकडी को छोडकर वापिस चले गए। संताजी को वेङ्काजी ने आसानी से हरा दिया। वेङ्काजी ने तंजोर और दूसरे अन्य क्षेत्र अपने रखे और शिवाजी को अपने पास रखे गए क्षेत्र से प्राप्त राजस्व का आधा भाग देने का वचन दिया।

यह ज्ञात नहीं है कि शिवाजी ने तिरुपति के रास्ते से गुजरते समय वेङ्कटेश्वर के मंदिर पर चढाई की थी और क्या उसने भी इसे लूटा-खसोटा।

शिवाजी की मृत्यु 1680 में हुई और उसका पुत्र सांभाजी महाराष्ट्र का शासक घोषित हुआ। सन् 1686 में सम्राट औरंगजेब ने राजपूताना से स्वयं को दक्खन स्थानांतरित किया। पहले उसने बिजापूर पर आक्रमण किया और उसे बर्बाद किया। उसने मराठों से युद्ध किया, सांभाजी को पकडकर उसे मौत के घाट उतारा। फिर उसने गोलकोंडा को नष्ट किया और इसके पश्चात् कर्नाटक मुगल साम्रज्य का अंग बना लिया गया और वह दक्खन का एक भाग बन गया।

सांभाजी की मृत्यु के पश्चात् उसके अवयस्क पुत्र साहू को गद्दी पर बैठाया गया और राज काज को उसके चाचा राजाराम ने प्रतिनिधि बनकर चलाया। मुगलों ने साहू जी को पकड़वालिया और

राजाराम ने गद्दी हड़प ली तथा जिंजी को कब्जे में ले लिया। आठ सालों की पकड के बाद जुलफ़िकर खान ने इसे पुनः प्राप्त कर लिया और राजाराम वेल्लोर भाग गया, वहाँ से भी उसे सतारा जाना पड़ा।

औरंगजेब के लिए देश के दक्षिण प्रांत पर विजय केवल मिलट्री अधिकार था क्योंकि बगावतें और युद्ध होते ही रहते थे और प्रदेश में खून खराबा और विनाश होता रहता था। उत्तरी भारत में भी असुरक्षा एवं अव्यवस्था कायम थी। बीस वर्षों की दक्षिण भारत में अनवरत मिलट्री उठा-पटक के परिणाम निराशाजनक ही रहा और औंरगजेब वापिस दिल्ली लौट गया। 1707 में उसकी मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् मुगल साम्राज्य संकटग्रस्त होता चला गया।

इस समय निजाम-उल-मुल्क उपाधि देकर आसफ जाह को दक्खन का सुबेदार नियुक्त किया गया। लेकिन मराठाओं ने उसे कार्य भार संभालने से रोका और इस बात के लिए मजबूर किया कि वे साहू को संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न राजा माने और उन्हें इस बात के लिए अधिकृत करें कि वे 'चौथ' वसूल कर सके। 'चौथ' राजस्व का चौथा या दसवाँ भाग होता था और दक्खिन सूबा तथा अन्य दक्षिणी राज्यों यथा तंजोर, मैसूर और तिरुचिरापल्लि के राजस्व मराठों द्वारा वसूल किया जाता था। हुसैन आलि की हत्या के बाद आसफ जाह ने हैदरबाद से ही खुद को सुबेदार घोषित कर दिया और आरकाट के नवाब के द्वारा कर्नाटक को एक आश्रित क्षेत्र बना लिया गया।

सन् 1740 में मराठों ने राघोजी भोंसले के नेतृत्व में कर्नाटक पर चढाई की और कल्लूर के पास से चित्तूर जिले में प्रवेश कर गए। वहाँ उन्होंने नवाब दोस्त आलि और उसके बेटे को दामलचेरुवु के युद्ध में मौत के घाट उतार दिया। तब दोस्त आलि के दूसरे पुत्र सफदर आलि ने वेल्लोर किले से शान्ति की गुहार की और राघोजी भोंसले ने एक करोड रुपए लेकर पीछे हट जाना मंजूर किया। यह सन् 1740 की चढाई का समय था जब वह चित्तूर जिले में था और तिरुपति के बहुत पास से गुजरते समय राघोजी भोंसले ने वेङ्कटेश्वर के देवालय में भगवान वेङ्कटेश के दर्शन किये। उनको अनेक जवाहरात पेश किए। इन जवाहरातों का विवरण निम्नलिखित हैं -

मोतियों का एक हार जिसमें मानिक आदि जवाहरात जडे हुए थे अनुमानित तत्कालीन मूल्य 33,000/-। मोतियों की एक माला जिसमें अन्य जवाहरात का एक पन्ना हस्तागत लगभग 28,000/-। मोती की सत्रह लडियाँ (हर एक लडी में 20 मोतियाँ) जो 28,000/- का था। एक कलि कितु - राई, बहुमूल्य जवाहरातों में बेशकीमती पत्थर का जडा मुकुट 8,500/- और 20 मोतियों के सेट से बनी 5 लडियों वाली एक मोतियों का हार, हीरों की लडी, पीछे रूबी जडी जिसका मूल्य 45,000/- था। यह अनुमानित मूल्य लगभग 35 वर्ष पूर्व का है। इन जवाहरातों को एक अलग डब्बे में रखा गया है जिसे

'राघोजी वारि पेट्टे' कहा जाता हैं और इन्हें विशेष अवसरों पर सुसज्जित करने के लिए निकाला जाता है।

दक्खन और कर्नाटक युद्ध

इनके पश्चात् दक्खन और कर्नाटक षडयंत्रो, हत्याओं तथा युद्धों के अखाडे बन गए। ये झगडे हैदराबाद निजाम और कर्नाटक के नवाब के बीच थे और अंग्रेज व फ्रांसीसी इनमें किसी न किसी का पक्ष लिया करते थे। हैदरअली तथा उसके पुत्र टिप्पू सुल्तान के युद्ध अंग्रेजों से सन् 1800 तक चलते रहे। इनमें मराठाओं की चुट पुट झपट्टामार हरकतें चलती रहती थीं।

आरकॉट के नवाब द्वारा कर्नाटक को अधिकार में लेने के कारण वेङ्कटेश्वर के देवालय सहित तिरुपति का भाग भी उसी के क्षेत्राधिकार में पड़ता था। यह स्वाभाविक था कि वह मंदिर की आय को हस्तगत करे जिससे वह इसे बाद में अंग्रेजों को दे सके। उसने तिरुचिनापोलि केचंदा साहब और उसके पुत्र राजा साहब पर हमले जारी रखे और इससे उसके राजकोष को बहुत क्षति पहुँची। और युद्धों के पश्चात् जब वह गद्दी पर मजबूती से आरूढ हो गया और अंग्रेजों ने उसे आरकोट का नवाब मान लिया तो इसके बदले उसे लगभग 1748 में तिरुपति के मंदिर के राजस्व सहित कुछ अन्य जिलों के राजस्व को भी अंग्रेजों के हवाले करना पड़ा था।

'सितंबर 1751 में, श्रीमती डूप्ले ने अपना एक अमलदार भेजी। राजगोपाल पंडित, जिसे, वासुदेवाचार (अंग्रेज कंपनी द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि) ने कार्यभार संभलवाने से मना कर दिया और बाहर कर दिया।'

सन् 1753 में नरसिंहराव ने मोरारी राव के आक्रमण के प्रत्युत्तर में तिरुपति की ओर कूच किया।

दो मराठा अफसर राघवाचारी और बालकृष्ण शास्त्री कर्नाटक से एकत्र की जा रही चौथ को संग्रह करने के लिए भेजे गए। वे करकंबाडी के रास्ते से होते हुए तिरुपति की ओर बढे। अंग्रेज प्रतिनिधि ने उनके विरुद्ध कार्यवाही की और लडाई में राघवाचारी को गोली लगी, वह मारा गया। मराठा सेना के कमांडर बलवंत राव को उनकी सेना के साथ तिरुमल की पहाडी पर चढने से रोका गया। वह अपने व्यक्तिगत अंगरक्षकों के साथ ही वेङ्कटेश्वर भगवान की पूजा के लिए जा सका। बलवंत राव ने ऐसा ही किया और जाने से पहले अपनी सेना को सख्त आदेश दिया कि आसपास के प्रदेश को लूटा न जाए। यह तीर्थयात्रा 1757 में हुई थी।

कावेरिपाकम् में राजा साहब की सेना की हार होने के बाद उन कुछ दुस्साहसियों ने जो उनकी सेवा में थे किसी रोजगार के अभाव में लोगों को लूटना शुरु कर दिया। उनमें से सबसे अधिक

दुस्साहसी मुहम्मद कमाल ने नेल्लूर के आस पास पहले लूटपाट की और बाद में सन् 1753 के लगभग तिरुपति की ओर कूच कर दी। उसका उद्देश्य मंदिर की अमूल्य संपात्ति को लूटना था। अंग्रेजों ने वासुदेवाचार की मदद के लिए मद्रास से सेना की एक छोटी टुकडी भेजी। कमाल का हाथी मारा गया और उसे पकडकर फांसी पर लटका दिया गया।

फिर 1756 में नजीबुल्ला ने आरकोट के नवाब के एक भाई मुहम्मद अली के विरुद्ध बगावत की और नवाब के एक किले पर अधिकर कर लिया। अगस्त 1757 में उसने मंदिर को हथियाने की कोशिश की। जब अंग्रेजों ने मद्रास से एक टुकडी भेजी तो उसने मंदिर पर आक्रमण करने का विचार त्याग दिया। किन्तु उसने तीर्थयात्रा के लिए जाने वाले अनेक तीर्थयात्रियों को सितंबर-अक्तूबर के वार्षिक उत्सव में जाने से रोका और उन्हें दूसरे रास्ते कर दिया।

कमांडर गोपाल राव के नेतृत्व में एक बडी मराठा सैनिक टुकडी ने पहले तो कडपा जिले में लूटपाट करना शुरु किया फिर वह कल्लूर-पास से गुजरता हुआ चित्तूर जिले में पहुँची। वहाँ से 1759 को उसने मंदिर पर आक्रमण करने के लिए रवानगी की। वह 'पहाडी पर चढ गया और मार्च में उसने पगोडा पर अधिकार कर लिया, यह सोचते हुए कि अप्रैल के उत्सव में होने वाली आय को भी वह हस्तगत कर लेगा। इस उत्सव से पूर्व बालाजी राव (पेशवा) ने अपनी टुकडी के मुख्य अंग को वापिस बुला लिया और केवल एक टुकडी नारायण शास्त्री के पास रही जिसे चंद्रगिरि के अब्दुल वहाब ने बडी आसानी से अपने अधिकार में कर लिया। वहाब अंग्रेजों के द्वारा हंसी का पात्र बनने का खतरा उठाना नहीं चाहता था। इसलिए उसने मद्रास सरकार को तुरंत अपनी सफलता का विवरण भेजा और साथ ही यह विनम्र प्रार्थना भी की कि उसे मंदिर के राजस्व को ठेका रखने की अनुमति प्राप्त हो। उसकी प्रार्थना अस्वीकृत की गई और कार्यरत वासुदेवाचार को ही पट्टेदार रखा गया ('नार्थ आरकोट' जिला मैनुअल - ए.एफ. कोक्स पुनः लेखन एच.ए. स्टुआर्ट 1895, पृष्ठ 73)।

वहाब की हार के बाद, नारायण शास्त्री तिरुपति के पूर्व में स्थित कर्कमबाडी के पोलिगार के पास गए, उनकी सहायता लेकर उत्तरदायित्व मंदिर की सुरक्षा हेतु अपने लोगों के साथ अगस्त में मंदिर को फिर से काबू में कर लिया। 200 सिपाहियों की एक टुकडी और 15 यूरोपियों को मद्रास से उसे हटाने के लिए भेजा गया लेकिन उसके तिरुपति आने पर यह पता चला कि केवल 80 सवर्ण हिंदू ही तिरुमल की पहाडी पर चढ सकते थे और मंदिर में प्रवेश कर सकते थे। यही लोग ऊपर भेजे गए और एक ऐसी भयंकर लडाई हुई जिस में मंदिर के अंदर और मंदिर के बाहर दोनों ही ओर से अनेक लोग हताहत हुए और बचे सिपाहियों को पीछे हटने के लिए बाध्य किया गया। अंग्रेज कमांडर मेजर कल्लिऑड ने एक अन्य मार्ग से आगे बढकर करकंबाडी पर आक्रमण कर दिया और उसके पोलिगार की हत्या करने

के बाद क्षेत्र में आगजनी प्रारंभ हो गई। फिर एक बार मंदिर पर घात लगाया गया और हताश मराठा पीछे हट गए। नारायण शास्त्री को जाना पडा। पट्टेदार को पुनःपदारूढ कर दिया गया।

आरकोट के नवाब अब्दुल वहाब ने अंग्रेजों द्वारा राजस्व की वसूली करने की अनुमति न मिलने के कारण निराश होकर तिरुपति के निचले क्षेत्र पर आक्रमण किया। किन्तु फिर उस बात की अफवाह सुनने पर कि अंग्रेजी सेना आगे बढी आ रही है, अपने दुस्साहस को छोड दिया। उसने चंद्रगिरि के किले पर कब्जा कर लिया और सही समय और मौके की तलाश में ठहर गया। उस समय अक्तूबर 1758 में फ्रांसीसी कमांडर कोलोनेल बुस्सी, हैदराबाद से आकर काउन्ट द - लल्ली से मिलकर मद्रास पर होने वाले आक्रमण को तिरुपति में ही रोक दिया। अंग्रेजी कंपनी के पट्टेदार को पकडकर धमकाया कि उसे मंदिर का समस्त राजस्व सौंप दिया जाए। तब नवाब के दोनों भाई मुहम्मद अली नेल्लूर से और नज़ीबुल्ला चंद्रगिरि से बूसी से मिलकर उसकी सेना के साथ कूच किया, पर निराश होकर वहाब चंद्रगिरि के किले में लौट आया।

1763 ई. में दक्खन के सूबेदार निजाम अली ने कर्नाटक पर आक्रमण किया। कर्नाटक के नवाब मुहम्मद अली की अपील करने पर अंग्रेजी कंपनी ने फौज़ भेजी। दोनों सेनाएँ तिरुपति के मैदान में मिलीं 'किन्तु निजाम का परपोषी संपूर्ण रात के अंधेरे में ही पलायन कर गया और कालहस्ती की पहाडी के रास्ते नेल्लूर की ओर बढ चला।

मैसूर की दूसरी लडाई में हैदारअली ने कर्नाटक पर आक्रमण किया और अपने विविध आक्रमणों के दौरान चित्तूर के किले पर अधिकार कर लिया। चित्तूर के पोलिगार और कालहस्ती, कारवेटीनगर और वेङ्कटगिरि के जमींदारों ने हैदर अली का समर्थन किया। सन् 1780 में नवाब मुहम्मद अली के भाई अब्दुल वहाब ने जिसने चंद्रगिरि का किला कब्जे में किया हुआ था उसने वह किला हैदर अली को सुपुर्द कर दिया। किन्तु हैदर अली चंद्रगिरि से तिरुपति के मंदिर पर आक्रमण करने से परहेज करता था क्योंकि उसका अंतःकरण और धार्मिक वृत्ति उसे रोकती थी। विल्क्स के शब्दों में, 'हैदर की आधी से अधिक प्रजा हिंदू थी और उन्होंने उसे परोक्ष रूप से प्रेरित किया कि वह तिरुपति मंदिर की पवित्रता बनाए रखे। वरन् तिरूपति बस चंद्रगिरि से 9 मील दूर था, यहाँ तक कि उसने इसके लिए वैसी ही छूट के लिए मोहम्मद अली से कुछ भी न वसूला।' हैदर अली के व्यक्तित्व का यह पक्ष विल्क्स से लेकर डॉ. एस. के. आय्यंगार ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफतिरूपति के खंड II पृष्ठ 534-35 में दिया है और इसी खंड के पृष्ठ 552 में टिप्पणी की है कि 'केवल हैदर अली ही एकमात्र चमचमाता अपवाद था, जैसा कि विल्क्स ने उल्लेख किया है, 'उसने मंदिर को पूरी तरह से छोड दिया और उसके राजस्व और पूंजी को वैसा ही रखा'। इससे यह ज्ञात होता है कि हैदर अली ने मंदिर के प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं

किया। श्री.वी.एन. श्रीनिवास राव ने अपने ग्रंथ 'तिरूपति श्रीवेङ्कटेश्वर बालाजी'' पृष्ठ 164 में इस कथन का समर्थन किया और कहा है कि 'यह कहा जाना चाहिए कि इसका श्रेय हैदर अली को जाता है कि उसने न तो मंदिर की कार्यवाही में, और ना ही उसके राजस्व में कोई हस्तक्षेप किया और सभी संस्थाओं को पहले जैसा चलने दिया।' उन्होंने यह भी कहा कि 'अन्यत्र उपलब्ध हुई अमलदारों की सूची में देखा जा सकता है कि एक 'अनिकल नरसिया' ने हैदर अली के प्रतिनिधि के रूप में 1782 से 84 तक दो वर्ष तक प्रशासन किया। जबकि पृष्ठ 182 के नोट IV(a) में अमलदारों की सूची में, मेकेंजी खंड XXV, पृ.76. एफ एफ, मद संख्या 15 में यह नोट किया गया है कि 'हैदर अली के प्रतिकूल दिनों में अनिकल नरसिया ने प्लव से लेकर सूबक्रोट' तक बहादुर..... दो वर्षों के लिए प्रंबधन किया।' यह स्पष्ट दिखाई देता है कि हैदर अली ने यद्यपि मंदिर के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं किया और अपने आपको मूर्तिभंजक के रूप में प्रस्तुत किया। इसको अपने अधिकार में एक अमलदार या प्रबंधक के माध्यम से लिया। उसे प्रबंधक बनाया और एक लाख पगोडा का वार्षिक राजस्व मंदिर से प्राप्त करके अपना खजाना भरा।

* * *

अध्याय - 24

ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा वेङ्कटेश्वर मंदिर का अभिग्रहण एवं प्रबंधन

1744 के कर्नाटक युद्धों के दौरान अंग्रेजी कंपनी सेना ने कर्नाटक के कुछ हिस्से को आरकोट के नवाब से छीन लिया। साथ ही 1748 तक वेङ्कटेश्वर मंदिर के राजस्व में भी दखल देना प्रारंभ कर दिया और 1799 में चौथी मैसूर युद्ध की समाप्ति और 1795 में नवाब मुहम्मद अली की मृत्यु के बाद उसके पुत्र की 1801 में मृत्यु होने पर कंपनी ने मुहम्मद अली के दूसरे पुत्र अजीम उल उमर से जुलाई 1801 में एक संधि की जिसके आधार पर 'उसने संपूर्ण कर्नाटिक भूमि पर अपने प्रभुत्व को छोड दिया और इसके बदले में अपने और अपने परिवार के भरणपोषण के लिए कुल आकलन राजस्व का पाँचवा भाग स्वीकार करने की मान ली।'

इस प्रकार कर्नाटक को अभिग्रहित करने पर अंग्रेज कंपनी इसकी पालक व मालिक बन गई। साथ ही मंदिर की आय भी उसके अधिकार क्षेत्र में आ गई। हिंदू शासकों के द्वारा दान दी गई जमीनें एवं गाँव, उनके निजी दानदाता और आश्रित जो सातवीं शताब्दी से लेकर 16 वीं शताब्दी के मध्य और सदाशिवराय के शासनकाल के अंत तक की सारी परिसंप -त्तियों को कंपनी ने अपने अधिकार में करके उसे अपना अंग बना लिया होगा। उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि संपात्ति गाँव की है या मंदिर को दान में दे दी गई है। यह दृष्टिकोण उन्होंने इस देवालय के लिए ही नहीं अपनाया अपितु दक्षिण भारत के सभी मंदिरों को दी गई राजाओं व अन्य महानुभावों द्वारा दी गई भूमि व गाँव के लिए वे समान नीति रखते थे। इसका विपरीत प्रभाव यह हुआ होगा कि अनेक उत्सवों का मनाना कठिन हो गया होगा। वेङ्कटेश्वर के मंदिर में होने वाले ग्यारह ब्रह्मोत्सवों और कई अनेक उत्सवों के साथ ही प्रतिदिन होनेवाली विविध प्रकार के व्यंजनों वाली भोग सामग्री जो अनेक दान दाताओं से चलता था वह समाप्त प्रायः होती चली गई क्योंकि पहले से दिए गए गाँव और भूमि से न कोई धन या ही कोई फ़सल प्राप्त हो सकी।

मेकंजी के पास एक पुस्तक की पांडुलिपि थी। शीर्षक था - ''कैफीत ऑफ द बाउंड्रीज़ ऑफ तिरुपति'' जिसमें एक अजीब-सा नक्शा देवालय के सीमा क्षेत्र को दिखाता है। यह सीमाक्षेत्र मुसल्मानों के विजय अभिमान के पूर्व का है। श्री वी.एन. श्रीनिवास राव ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ 168 (अध्याय II) में तिरुपति सीमा क्षेत्र का वह नक्शा प्रस्तुत किया है जिसमें उन सब गाँवों को दर्शाया गया है जो मंदिर द्वारा दान में प्राप्त किए गए थे जिसमें वेङ्कटगिरि, कालहस्ती, कारवेटिनगर आदि नगर पूर्व दिशा से दक्षिण की ओर थे और चंद्रगिरि तालुक पश्चिम की ओर और उत्तर की ओर कडपा था। इस

तिरुमलगिरि एवं तिरुमल जायदाद के अंतर्गत लगभग 187 गाँव थे, जिसमें से केवल एक गाँव ही मंदिर के वास्तविक अधिकार में था, 2 गाँव *पेद्दजीयंगार* (वरिष्ठ प्रतिनिधि), 2 गाँव *चिन्न (छोटे) जीयंगार* के अधिकार में थे। 16 गाँव उन 4 परिवारों के पास थे जो मंदिर में *नंबी (अर्चक)* थे, '13 गाँव अर्चक पुरुषों के पास थे, प्रमुख *गोल्लर*, अग्रहारम और श्रोत्रयम् गाँव किराये पर दे दिए गए थे, चिर्तनूर और मलूर,' 4 में से दो महंत और 3 इतर इनामदार को, कुल 40 गाँव दिए गए थे। जबकि बाकी 124 गाँव *पालेगारों* (पोलिगार) और *जमींदारों* के हाथ में थे और मट्ल परिवार के मुखियाओं की युवा संतति के पास थी। 5 गाँव करकंबाडी *पालेगार*, जो उस गाँव के निवासी थे, के अधिकार में थे किन्तु 'तिरुपति के पालेगार' के रूप में कार्यरत थे। 'कृष्णापुरम् थाना' के पाँच ग्रामों के पालेगार भी 'तिरुपति के पोलिगार' के रूप में कार्यरत थे। (तिरुपति में नगरपालिका कार्यालय[1] के साथ लगा पत्थर का एक मंडप है जिसे 'कृष्णापुरम् थाना' कहा जाता है। शायद इसमें पहले उन दिनों यहाँ नगर के पश्चिम में नगर सेवार्थ एवं रक्षार्थ नियुक्त गार्ड रहा करते थे।), 9 गाँव मामंडूर *पालेगार* को, 1 मोगराल *पालेगार* को, 16 कालहस्ती *जमींदार* को, 36 कारवेटी नगर *जमींदार* को, 34 नागपट्ला *पालेगार* के और 18 गाँव मट्ल चीफ को सुपुर्द थे (वही, पृष्ठ 170-171)। ये *पालेगार* और *जमींदार* अपने प्राप्त गाँवों में चौकीदार नियुक्त कर और नगर और मंदिर के परिसर की सुरक्षा के लिए तैनात किए जाते थे। तिरुपति से तिरुमल जाने वाले मार्ग में एक स्थान है 'मामंडूरी मिट्ट'[2] (उच्च-तल) जो संभवतः मामंडूर पालेगार के लिए गार्ड-स्टेशन था और मुख्य मामंडूर के अतिरिक्त था।

यह ज्ञात नहीं है कि कब तिरुपति-एस्टेट के इन 187 गाँवों को मंदिर के स्थायी कर्मचारी वर्ग में बाँट दिया गया और कुछ को सुरक्षा एजेंटों को दे दिया गया। किसी भी प्राप्त अभिलेख में इस तथ्य का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

तिरुपति-एस्टेट के चारों दिशाओं में फैले इन 187 गाँवों के अतिरिक्त, बीसों गाँव ऐसे भी थे जो अनेक राजाओं, चीफ, संभ्रान्त जन और अन्य भक्तों द्वारा दान में दिए गए थे। विजयनगर साम्राज्य

---

1. संप्रति प्राचीन नगरपालिका कार्यालय, में ए.पी. स्टेट को को-आपरेटिव बैंक का कार्यालय है। इसी से जुडी हनुमान जी की एक मूर्ति है जिसे कृष्णपुरम् थाना में पूजा जाता है। कुछ समय पूर्व वहाँ उस प्रस्तर मंडप में पाँच नयनाभिराम मूर्तियों-आदिनारायण, अनंतनारायण, अच्युत नारायण, वीरनारायण और वेङ्कटनारायण-की स्थापना एवं प्राणप्रतिष्ठा की गई है।

2. मामंडूरी-मिट्ट, या सातवाँ मील तिरुमल के प्राचीन घाट-मार्ग एवं फुटपाथ से बराबर की दूरी पर है। वहाँ एक पुलिस-चौकी स्थापित है और आज भी इसका उद्देश्य तीर्थ यात्रियों की सुरक्षा करना है। सन् 1980 में अर्थात् 23-8-1980 के दिन वहाँ प्रसन्न आंजनेय की प्लास्टर प्रतिमा गरूड प्रतिमा के साथ-साथ लगाई गई थी।

- गोपी कृष्ण

के अन्य नगरों एवं क्षेत्रों में भी ऐसे गाँव अवश्य थे जिन्हें समृद्धि एवं शान्ति के दिनों में विभिन्न अवसरों पर मंदिर को दान में दिये गये थे किन्तु मेकंजी की सूची में इनका उल्लेख नहीं है। संभव है 1748 से ये गाँव आरकोट के नवाब और 1801 से इंग्लिश कंपनी के अविभक्त भाग बन गए।

श्री वी.एन. श्रीनिवास राव ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ 173 पर सूचनार्थक एक टिप्पणी दी है। इसमें कहा है कि 'भाव' चक्र-वर्ष में श्रीनिवासाचारी, एक अमलदार वेङ्कटेश्वर मंदिर में थे, 1744 से 1762, 1763 से 1764 और 1769 से 1781 तक प्रबंधक के रूप में रहे और उन्होंने तिरुचानूर में जमीन का एक टुकडा प्राप्त किया और इसे 'श्रोत्रियम्' (एक गाँव जिसमें ब्राह्मण रहते थे) के रूप में ढाला। इस भूभाग को उसने 26 भागों में बाँटा और एक एक भाग एक एक ब्राह्मण को जल-की उपलब्धि कराकर सुपुर्द किया। यह *भाव* वर्ष सन् 1755 पडता है। बाद में *हेविलंबी* (1778 ई.) में आरकोट के 'सुभा के प्रसिद्ध ब्राह्मण राज्यपाल और ''मोहम्मद अलीराजा के राजस्व मंत्री राजा भिरबुल रायोजी ने इन उपरोक्त वर्णित गाँवो के धन एकत्र करके इन 26 गृहों का एक अग्रहार बनाया जो पवित्र सरोवर के चारों ओर स्थित था। इस सरोवर को पद्मसरोवर कहा जाता था, इनमें 26 वृत्तियाँ धारा-दत्त के नाम से ब्राह्मणों को दी गई।''

[वेङ्कटाचल माहात्म्यम् के पद्म-पुराण में और कुछ अन्य अभिलेखों में भी 108 ब्राह्मण परिवारों का वर्णन आता है जिन्हें ऋषि शुक ने स्थापित किया था और इनमें से तीन परिवारों के यजमानों को प्रबंधन समिति, स्थानत्तार वेङ्कटेश्वर मंदिर, में प्रतिनिधित्व दिया जाता था। इन 26 ब्राह्मणों को इस भू-स्थल पर 26 भू-भागों के आबँटन और एक नए अग्रहारम के निर्माण का कारण और आवश्यकता नहीं बताया जाता। संभव है पूर्व के इन 108 परिवारों की समयोपरांत मुस्लिम आक्रमणों से नष्ट एवं क्षतिग्रस्त अवस्था और घटती संख्या के संरक्षण हेतु इन 26 आवासों का पुनः निर्माण कराया गया हो।]

सवाल-जवाब-पट्टी - मंदिर का स्वामित्व अपने हाथ में लेने के पश्चात् मद्रास से, अंग्रेजी सरकार ने संभवतः मंदिर की सभी परिसंपत्तियों एवं देनदारियों, आय-व्यय, प्रत्येक दिन के भोग और विशेष पूजा अर्चना, धार्मिक सेवा एवं उत्सव, अंशकालिक एवं स्थाथी कर्मचारियों के वेतन भत्तों का आकलन, और दूसरे अन्य मामलों और मंदिर के प्रारंभ, इतिहास, धार्मिक आस्थाओं, इनमें विराजमान अनेक मूर्तियों का विवरण और तिरुमल, तिरुपति तथा तिरुचानूर के सभी महत्वपूर्ण, गौण और सामान्य मंदिरों की गणना का लेखा जोखा और आकलन कराने के लिए उपक्रम किया। एक प्रश्नावली तैयार करके मंदिर के विभिन्न कर्मचारियों को दी गई और उनको एक साथ संग्रह करके इन्हें **'सवाल जवाब पट्टी'** कहा गया।

पूर्ण पड़ताल करके यह प्रश्नावली तैयार की गई थी और इसमें 14 बिंदुवार सूचनाएँ अनेक मंदिरों के प्रबंधन हेतु माँगी गई थीं। मुख्यतः तिरुमल और तिरुपति तथा तिरुचानूर के मंदिर थे और प्रश्नावली में निम्नानुसार प्रश्न थे, जैसे - (1) क्या प्रत्येक मंदिर में *धर्मम्* (सेवाएँ) *सरकार* (अंग्रेज कंपनी सरकार) द्वारा दी गई सहायता के आधार पर की जा रही हैं? (2) दान, धर्मार्थ या प्राइवेट मंदिर कर्मचारियों, *जमींदारों* या *पालेगारों* के माध्यम से? (3) यह आमदनी या दान कैसे एकत्र किया जा रहा? (4) क्या इस दान को प्राप्त करने के लिए किसी स्टाफ को कुछ खर्च के लिए अतिरिक्त दिया गया कितना वसूल हुआ? (5) क्या क्या इसे अमुक संस्था के उद्धार के लिए व्यय किया गया? (6) क्या मंदिर या मठ पत्थर का बना या चूने का या दोनों का और कितना तथा कौन-सा पदार्थ *दीवारों* में लगा है, *गर्भ-गृह* में, *अंतरालम्* (फर्श पर), *मुख-मंटपम्* (बाहरी पोर्टिको), कल्याण मंटप (विवाह स्थल) में, महा मंटप (बडी बाहरी पोर्टिको) में और दूसरे मंटपों में? (7) मंदिर के विभिन्न वर्गों के कर्मचारी, उनके कार्य और मंदिर की देव प्रतिमा की पूजा में नियत कार्य, दिन में कितनी बार पूजा की जा रही है और कितने समय के लिए? (8) कार्य के निष्पादन में आने वाली गलतियों के कारण कितनी बार दंडित किए गए? (9) इसके आय व्यय का विस्तृत ब्यौरा? (10) कुछ सरकारी कर्मचारी मंदिर के स्टाफ में हैं और वे मंदिर के प्रबंधक के कहे में चलते हैं? उस प्रबंधन के जिससे ये प्रश्न पूछे गए हैं, अतः इस प्रश्न के आधार पर जो सूचना माँगी गई थी वह यह थी कि क्या धर्मकर्ता (दान प्रबंधक) ने स्वयं अपने लिए मंदिर की सामग्री को लूटा है? और क्या भेंट-दान में कोई कोताही की गई है? (11) क्या धमकर्ता द्वारा प्राप्त आमदनी किसी अन्य स्टाफ के सदस्य को दी जा रही है और यदि हाँ, तो किस अधिकार या दस्तावेज के आधार पर, क्योंकि दान की निरंतरता और संग्रह बना रहना चाहिए और इस पर कोई हानि नहीं होनी चाहिए, इसके आधार पर प्रत्येक आमदनी किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए होनी चाहिए, (12) किसके द्वारा मंदिर के कार्यक्रमों का प्रबंधन हो रहा? मंदिर को किसने बनवाया, उस समय *धर्मकर्ता* किस पद पर कार्यरत था, किसके कहने पर व अधिकार से समस्त आमदनी व खर्चे की आज्ञा दी जा रही, वास्तविक आय और व्यय क्या था? और क्या दान और धर्मार्थ कार्य उसकी मूल भावना के अनुरूप किया जा रहा था, (13) क्या *धर्मम्* दूसरों के हाथ में है? उनके हाथ में नहीं? जो इसके प्रारंभक थे या सेवादारों द्वारा चलाए जा रहे थे, क्या बाहरी लोग या उत्ताराधिकारी को *पडितरम्* (भेंट) में हिस्सा मिल रहा है और *पड़ी* (वडा, लड्डू, और ऐसे ही घी में तले भुने पदार्थ) यह पता करने के लिए कि ये कैसे होता है और किस अधिकार के अंतर्गत और, (14) यदि कोई मंदिर और *सत्रम्* (मुफ़त भोजनालय) या आराम घर (धर्मशालाएँ) तिरुपति तालुक में हैं जिनका प्रबंधन किसी के द्वारा नहीं हो रहा है तो उनकी सूची उपलब्ध कराई जाए।

यह प्रश्नावली फसली 1227 अर्थात् 1818-19 ई. में कभी की गई थी और 19 धार्मिक संस्थाओं के 14 अतिरिक्त बिंदुओं के प्रश्नों के उत्तर फसली 1228 में 14 अगस्त 1819 ई. को तालुक कार्यालय के सेरिस्तदार अलब्दु गोविंद राव द्वारा कलमबंद किए गए। उसने अनेक संस्थाओं से संबंधित कई लोगों से विवरण मँगवाया, उन्हें संगठित किया और अपनी रिपोर्ट बनवायी और इसमें कुछ तालिकाएँ भी बनाकर प्रस्तुत की गईं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि तिरुपति तालुक मुख्यालय था और जिला चित्तूर पड़ता था।

फसली 1211 (1801-02 ई.) में कई 'कैंकर्य पट्टी' (ऐसे लोगों की सूची जो वंशानुगत रूप से स्थायी कर्मचारी थे और कुछ अन्य अस्थायी जिनका नाम सूचीबद्ध था) जिससे सबके नामों का उल्लेख था, उनकी सेवाओं और उनके वेतन की सूचना एकत्र की गई। संभवतः यह कार्य जुलाई 1801 में प्रारंभ हुआ जब इंस्ट इंडिया कंपनी ने आरकोट के नवाब से इस क्षेत्र को अधिकार में लिया और मंदिरों की कार्य प्रणाली का अध्ययन किया। तत्पश्चात् फसली 1230 (1820-21ई.) एक ऐसी ही अन्य 'कैंकर्य पट्टी' तैयार कराई गई। इसे ए. रंगाराव, सेरिस्तदार, आर. सुब्बाराव-तहसीलदार ने हस्ताक्षरित किया और एक अन्य पट्टी 2 अक्तूबर 1820 में तैयार की गई।

'सवालजवाब पट्टी' के साथ ही 14 अगस्त 1819 को 'पैमाइशी' का कार्य भी हुआ। इसमें तिरुमल, तिरुपति और तिरुचानूर के कई मंदिरों और पूजास्थलों की मूर्तियों की पैमाइश की गई। इतना ही नहीं कई मंदिरो, इमारतों आदि की भी नाप-जोख की गई। इन नक्शों व पैमाइशों को स्थानीय 'करणम्' (ग्रामीण लेखाकार) द्वारा हस्ताक्षरित किया गया और तदुपरांत सेरिस्तदार अलब्दु गोविंद राव ने 14 अगस्त 1819 ई. को इस पर हस्ताक्षर किए।

इन कार्यों के अतिरिक्त एक 'दिट्टम पुस्तक' भी तैयार कराई गई जिसमें प्रत्येक मूर्ति एवं *आळ्वार* को प्रत्येक दिन विभिन्न समयों में, विशेष आयोजनों में साप्ताहिक, पखवाडा, माह व वर्ष, के साथ ही मात्रा एवं वितरण का तरीका भी एक साथ तैयार करा लिया गया जिससे सभी भेंट एवं चढाने की मात्रा नियत हो सके। भविष्य के लिए भी यह निर्धारण मानक बन गया, आज भी इसका अनुपालन होता है। चौथा रिकार्ड ब्रूस-कोड था जो मंदिर के प्रशासन से संबंधित था और इस को भी तैयार कराया गया।

'सवाल जवाब पट्टी'

1. वेङ्कटेश्वर मंदिर : 'सवाल जवाब पट्टी' से संबंधित - श्रीवेङ्कटेश्वर देवस्थानम् को सर्व प्रधान देवालय माना गया और इससे संबंधित उत्तर दिए गए। इसकी आय स्वीकृत की गई वस्तुओं का मूल्य और नकद भुगतान जो कंपनी सरकार द्वारा निर्धारित था, इस प्रकार था - 7997 पूली-वराहा, 3 मैलिस और 6 कासु तथा 6074 पूली वराहा, 9 मैली और 49 कासु सेवा-प्रदाताओं की आय उस भूमि से थी

जो उन्हें दी गई थी। साथ ही 2935-41-12 वह धन था जो धर्मार्थ या दानार्थ उन जनसामान्य दान दाताओं, मंदिर-सेवादारों, *शेट्टी* समुदाय के व्यापारियों, *जमींदारों* और बाहरी लोगों से लिया गया कुल 17007 पूली, 8 मैली और 67 कासु।

कानुक (दान) से मंदिर को होने वाली आमदनी और आर्जितम् (भोजन-भोग, उत्सव, शोभायात्रा और अन्य सेवाओं) के लिए निर्धारित शुल्क जो सरकार की ओर से (उसके एजेंट या किसान प्रतिनिधि के माध्यम से) एकत्र किया जाता था वह 34458 पूली, 16 मैली और 77 कासु था *इनाम* भूमि जो मंदिर के सेवादारों को ठेका अवधि पर दिया गया था, उससे 6074 पूली, 9 मैली तथा 49 कासु अर्थात् कुल 40532 पूली, 26 मैली और 46 कासु और *धर्मम्* के प्रतिनिधि से 2935 पूली, 41 मैली और 12 कासु था। कुल मिलाकर यह 43468 पूली, 22 मैली और 58 कासु हुआ। पहले योग से यह देखा जा सकता है कि 80 कासु से 1 मैली बनता था और 45 मैली से 1 पूली-वराह बनता था। यह तत्कालीन धन को इंगित करने की रीति थी।

इस आय को एकत्र करने का कोई अलग कर्मचारी नहीं था। तीर्थ यात्री मंदिर में दर्शन के समय सीधे अपना चढावा चढा देते थे और उसे *चिट्ठा* (खाते) में चढा दिया जाता था। मातबरू शेख साहब के एजेंट जिन्होंने कुछ दान एकत्रित किया था, उन्होंने मंदिर की विशेष श्रेणियों में *गृहस्थों* (वे परिवार-प्रमुख जो दान देते थे) का इच्छानुसार ही जमा किया और इसमें से पहले वे दान एकत्र करने में हुए अपने खर्च को काट लेते थे और शेष धन को *चिट्ठा* में दर्ज कराते थे।

देश के उत्तरी भाग में राघोजी भोंसले और अन्य के द्वारा भी *'धर्मम्'* कराया जाता था। आकलन धन 14,000 नारायणपेट रूपए से जो 3500 पूली-वराहा, पूली 1146-11-20 (रु/- 4585) होता है। भगवान श्रीवारु अर्थात् वेङ्कटेश्वर के आभूषणों के लिए काटा जाता था और पूली 511-11-20 (रु/- 2045) माली का वेतन, 2 माली जो पंखा झुलाते थे, कपूर के लिए, मुफ़त भोजन के लिए और अन्य देवताओं की भेंट-पूजा के लिए, अर्चना के लिए, भगवान के 1008 नाम जपने के लिए और मुख्य अतिथियों को उपहार देने के लिए और धन लाकर दान करने वाले *गृहस्थों* को प्रसाद देने के लिए, और दैनिक भेंट-पूजा, पखवाडे की पूजा और *ब्रह्मोत्सवों* में विभिन्न प्रकार के भोज्य, शोभायात्रा, दियों के लिए तेल और अन्य कर्मों हेतु व्यय होता था। कुल बकाया 1507 *पूली* और 10 *कासु* बचता था।

दान धर्मार्थ कार्यों का निष्पादन धर्मकर्ताओं द्वारा भी कराया जाता था।

मद संख्या 5 के उत्तर में यह बताया गया कि वेलगरला का संपूर्ण तालुक मंदिर के लिए एक *ईनाम* क्षेत्र था और इससे होने वाली धन राशि प्राप्त नहीं हो पा रही थी और न ही दूसरे तालुकों से *ईनाम* की प्राप्तियों की सूचना थी, और चूंकि इसका हिसाब रखना आवश्यक था, इसलिए यह सुझाव दिया

गया कि तालुकों के तहसीलदारों को यह राशि वसूल करने का निर्देश दिया जाए और वे यह रकम *पारुपत्यदार* को विशिष्ट उद्देश्यों के लिए जमा करा दें जिससे उस धन से *पारुपत्यदार* दान-धर्म का कार्य सुचारु रुप से चालित कर सकें।

तभी यह भी सुझाव आया कि चूंकि *पारुपत्यदार* तिरुमल का एकमेव कार्यनिर्वहण अधिकारी था और यदि वह कभी बीमार पडा तो उसके स्थान पर उसके कार्य के निष्पादन के लिए किसी सहायक का होना आवश्यक था और इसके लिए इस पद का सृजन स्वीकृत किया जाए।

एक तीसरा सुझाव भी दिया गया। यह कहा गया कि मंदिर अधिरारियों ने पूर्णय्या साहेब, *महिसूर कर्ता* को एक प्रार्थना पत्र देकर फूलों के एक बगीचे से भगवान *श्रीवरु* (वेङ्कटेश्वर) के लिए फूलों की नित्य आपूर्ति करने का प्रबंध करने को तब कहा था जब वे फसली 1227 (1818-19 ई.) में यहाँ आए थे। उन्होंने एक बगीचे को नियत ही नहीं किया था बल्कि दो माली भी नियुक्त करने के आदेश दिए थे। इनके वेतन के लिए धन की माँग की गई और यह भी कहा गया कि एक दूसरा बाग भी लगाया जाए जिससे फूलों की उचित आपूर्ति सुनिश्चित की जा सके।

छटे प्रश्न के उत्तर में यह नोट किया गया कि मंदिर प्रस्तर निर्मित था और इसके *मंटपम्* तथा अंतस्थल के तथा *प्राकार* (चार दीवारी) के सभी रिकार्ड *पैमाइशी* खाते में दर्ज किए गए थे।

मद संख्या 7 के उत्तर में मंदिर से और उसकी अन्यान्य सेवाओं के लिए नियुक्त लोंगों के नाम और पदनाम दर्ज किए गए थे। संपूर्ण स्टॉफ में 92 सेवक थे जिनमें प्रमुख, गौण और अस्थायी कर्मचारी शामिल थे।

बंगारु-वाकिली की चाबियाँ, बंगारु वाकिली जो मंदिर का वह मुख्य प्रवेश द्वार है जो सुनहरा है और दो द्वारपालकों के बीच का है, और जवाहरातों के संदूक जहाँ रखे जाते थे, वे जीयंगार (जैसे वे आज भी हैं) की निगरानी में होते हैं, जबकि, अंतः द्वार की चाबियाँ और प्रतिदिन पहनाये जाने वाले आभूषणों के संदूकों की चाबियों के रखने का उत्तरदायित्व अर्चकों पर था। मंदिर का मुख्य द्वार आठ बजे प्रातः खोला जाता था। इससे कुछ समय पूर्व मंदिर का एक कारिंदा, *जीयंगार* को उनके *मठ* से बुलाने जाता था और वे कुंजी लेकर मंदिर आते थे। दूसरा कारिंदा *अर्चक* को बुलाने जाता था। *पारुपत्यदार* और अन्य कार्यरत कर्मचारी वर्ग मंदिर के द्वार पर उस समय तक आकर उपस्थित हो जाते थे। जब *बंगारु - वाकिली* खोला जाता था तो *अर्चक, एकांगी* और *गोल्ला* (ग्वाला वर्ग का सेवक) अंदर प्रवेश करते थे, और पीछे से दरवाजा बंद कर लेते थे, *अखंड ज्योति* को ठीक करते थे (घी से भरा दीपक), लेट्टीस का द्वार खोलते थे और फिर बाहरी दरवाजे खोल दिए जाते थे, तब *जीयंगार* प्रवेश करते थे और *अर्चक* को कपूर की थाली देते थे। जलते कपूर से वेङ्कटेश्वर भगवान की आरती होती

थी। तभी *सुप्रभातम्* (भगवान को जगाने के लिए गाए जाने वाले छंद बद्ध श्लोक) गाया जाना बताते हैं। इसे ताल्लपाक अन्नमाचार्य के वंशज गाते थे। नौ बजे तक *तोमाल-सेवा* और अन्य *पूजा* समाप्त हो जाती थीं और प्रथम *नैवेद्यम्,* बडे घंटा नाद के साथ प्रथम बार भोग लगाया जाता था, इसके पश्चात् अन्य *पूजा* और द्वितीय *नैवेद्य* के साथ भोजन *धर्मम्* और अंत में *आरती* होती थी। प्रातः के नैवेद्य, पूजा की समाप्ति पर, तीर्थ यात्रियों को *देव-दर्शन* करने के लिए अंदर प्रवेश करने दिया जाता था।

किन्तु प्रश्न सं.7 के अंतर्गत मंदिर के कर्मचारियों और उनके कर्तव्यों को सिलसिलेवार गिनाने के बाद भी यह एक बार फिर इसके अंत में उल्लेख किया गया। कहा गया कि श्रीवारु (वेङ्कटेश्वर) की पूजा का सिलसिला कैसे रहेगा और प्रथम *पूजा* अर्थात् प्रातः कालीन पूजा ठीक 9 बजे हो जाए और इसी समय के भीतर *तोमाल-सेवा* भी समर्पित की जाए और मात्रा का नैवेद्य, *दध्योदनम्, बकाला भात, चप्पिडी-प्रसादम्* अर्थात् *शुद्ध-अन्नम्* (केवल पका-चावल) का भोग दस बजे प्रातः से पूर्व लगा दिया जाए और तत्पश्चात् तीर्थ यात्रियों को *दर्शन* के लिए प्रवेश की अनुमति दे दी जाए। सुबह बारह बजे तक दर्शन चले और तदुपरांत दोपहर की दूसरी *पूजा* एक बजे तक हो जाए और दूसरी बार फिर से भोग लगाया जाए इसे 'दूसरी घंटी' कहा गया (प्रातः काल की भोग, चढावा को 'पहली' घंटी कहा गया। दोपहर के भोग में *अलंकारम् अन्नम्* (अतिरिक्त पका चावल), सूपम् और रसम् (चना और सूप) और पायसम (पका चावल जिसमें दूध तथा शक्कर मिला हुआ हो, यानी खीर) सम्मिलित हो। फिर से लगभग 8.30 बजे रात्रि तक *तोमाल सेवा* समाप्त की जानी चाहिए और यह 9 बजे तक। चावल की रोटी, (दोसा) *मोलगु-ओगीरम्* (घी और मसालेदार विशेष रूप से काली मिर्च युक्त पका चावल) *परमान्नम्* (गुड में पका भात) जिसे *तिरुवीसम्* कहा जाता है और *शुद्ध अन्नम्* भगवान को अर्पित किया जाना चाहिए। फिर तीर्थयात्रियों को दर्शन के लिए भेजना चाहिए और दस बजे तक *'मंचपु- सेवा'* (शयन सेवा) समाप्त हो जानी चाहिए। मंदिर की प्रत्येक सेवा और उत्सव के लिए, एतदर्थ कार्यकर्ता व अधिकारी उपस्थित रहकर सेवा समर्पित करना होगा। इनसे पता चलता है कि उन दिनों तीर्थयात्री के लिए 10 बजे से 12 बजे दोपहर तक प्रथम नैवेद्यम् के बाद दर्शन निर्धारित किया गया।

तत्पश्चात् एक बडा बर्तन गर्भगृह के बाहर रखा जाता और *पारुपत्यदार बंगारु-वाकिलि* पर खडे होकर उन तीर्थयात्रियों को आगे करते जो अधिक *कानुक* (भेंट) धन दानर्थ लाते थे, उन्हें बिठाया जाता, धन प्राप्त किया जाता, गिना जाता और कपडे में गांठ बांधकर उसे सील कर दिया जाता और फिर उस सील की गई पोटली के साथ तीर्थयात्री को *दर्शनार्थ* मंदिर के गर्भगृह में भेज दिया जाता। उसके साथ एक *कारिंदा* भी जाता जो यह सुनिश्चित कराने के लिए था कि वह पोटली ठीक प्रकार से नियत स्थान पर *भेंट* करने के निमित्त रख दिया जाए। *दर्शन* के पश्चात् ऐसे धनी दाताओं जिन्होंने *'कानुक'* दान दिया, उन्हें भगवान का *प्रसाद* दिया जाता जिसमें *'वडा'* (उड़द दाल का घी में पका वडा)

आदि दिये जाते। दर्शन समय के पश्चात्, सभी सील किए गए बंडलों को खोलकर उन से धन, सिक्के, जवाहरात, सोना आदि अगल अलग किए जाते थे और उन्हें बंगारु वकिली से बाहर *रंगमंटप* में लाया जाता और धन राशि व अन्य सामान (सोना, हीरे, मोती..) को *पारुपत्यदार* और *जीयंगार* के रजिस्टरों में दर्ज कर दिया जाता था। फिर से इनकी पोटली बांधी जाती और मंदिर की सील लगाई जाती थी। *जीयंगार* और *पारुपत्यदार* इसे करते थे और इस *आर्जितम्* (आय) का ब्यौरा बनाकर *जीयंगार* के लेखाकार व *पारुपत्यदार* के हस्ताक्षरों से युक्त किया जाता। फिर *कोप्परगी* या *हुंडी* बांध दी जाती और वहाँ पर उपस्थित गार्डों को यह आदेश दिया जाता कि वे उसकी अच्छी तरह से देखभाल करें और तत्पश्चात् *पारुपत्यदार* घर वापिस जाते। उसके बाद लेटिस-द्वार पर ताला लगाने के लिए *अर्चक* आगे बढता और ताला लगाकर वह भी घर चला जाता।

आठ बजे सायं को *अर्चक* और *जीयंगार* मंदिर के चपरासियों को साथ लेकर फिर मंदिर में जाते और 9 बजे से पहले ही रात्रि *पूजा* तथा *नैवेद्यम्* की पद्धति पूर्ण की जाती। फिर तीर्थ यात्रियों को *दर्शन* के लिए जाने दिया जाता। *दर्शन* की समाप्ति पर मंचपु-सेवा (शयन - सेवा) दस बजे तक समाप्त की जाती। *उसके* पश्चात् अंत:पुर का द्वार बंद करके ताला लगया जाता। अर्चक ताला लगाकर घर जाता और *बंगारु-वाकिलि* भी बंद करके ताला लगा दिया जाता और तालों पर विभिन्न सीलें लगा दी जातीं।

मंदिर में, *जीयंगार* अथवा उसका सहायक *एकांगी* कपूर जलाकर आरती की थाली *अर्चक* को सौंप देता और तब भगवान को आरती दी जाती। वही पुष्प, मालाएँ, वस्त्र और अन्य शोभा-सज्जित हेतु सामग्री देता।

पारुपत्यदार रात्रि दर्शन में आए तीर्थ यात्रियों से *कानुक* (धनराशी, भेंट आदि) लेकर उसी प्रक्रिया से उसे संरक्षित करता जैसे *दोपहर* के समय किया जाता था।

तोलप्पाचारी परिवार के 7 *आचार्य-पुरुष* मंदिर की पूजा के समय प्रतिदिन *वेद-पारायाणम्* करते थे। वे यह कार्य शोभायात्रा के समय भी निष्पादित करते थे। वे *आकाशगंगा तीर्थ* से अपने आदमी के द्वारा प्रतिदिन तीन घडे जल मँगवाते और उस *'तीर्थम्'* (जल) को लेकर उन संत *आचार्य पुरुषों* में से प्रथम *मंत्रपुष्पम्* और *सहस्र-नाम* का उच्चारण करते चले जाते और उस *अर्चना* के समय दूसरे *छः पंडित आचार्य पुरुष प्रबंधम्* का गान (पाठ) करते।

साम-वेद गायक प्रतिदिन *सामवेद गायन* ही नहीं करते थे बल्कि भगवान वेङ्कटेश्वर को हरके शुक्रवार पहनने के लिए एक नया *यज्ञोपवीत* (जनेऊ) भी कुछ तीर्थ यात्रियों की इच्छा व प्रार्थना के पश्चात् उपलब्ध कराते थे। *यज्ञोपवीत* को श्रीवेङ्कटेश को अर्पित करने की यह परिपाटी ताल्लपाक पेद्दा-तरुमलाचार्य ने मार्च 1532 ई. में प्रारंभ की थी (खंड IV, सं. 14)।

पल्ले समुदाय का चपरासी *पारुपत्यदार* के कहने से इधर उधर के कार्यों हेतु जाया करता था। दूसरा चपरासी (सेवादार) *उग्राणम्* (पंसारी स्टोर) में पान और सुपारी जो तीर्थ यात्रियों द्वारा भेंट की जाती थी, को एकत्र करता था और उन्हें बाजार-भाव से बेचकर उस बिक्री को *सरकार* (सरकारी खाते) में जमा करता। जब भगवान की शोभा यात्रा निकाली जाती तब वह सशस्त्र सेवादार हो जाता था।

गोल्ल-चार्वाकारु बीस अन्य सहयोगियों और अधिकारी के सेवादारों के साथ तहसीलदार की सेवा करता था। जब *कानुका* आदि धन और स्वर्णादि से भरे सील किए हुए बोरियाँ तिरुमल से लाए जाते तो उनके *परकामणि* (अलग करना, जाँच करना) उसी का कार्य था। वह वहाँ कई व्यापारियों को पहले से ही तैयार रखता था और इस कार्य अर्थात् छंटनी के पश्यात् वह फिर से उन बोरियों को बांध देता और उन्हें बक्सों में सील करने के उपरांत रख देता इतना ही नहीं, गोविंदराज और रामस्वामी (श्रीराम) की शोभायात्रा के समय और *पारुवेटा* तथा *तीर्थवारी* (शिकार व स्नान) के अवसर पर वह सशस्त्र अंगरक्षक के तौर पर अपने लोंगों के साथ सेवा कार्य करता था।

गज-गृह में 14 कर्मचारी (सामान्य), एक *दारोगा* (सूपरवाइजर), 4 *महावत,* 4 *गडेकार* (भाला-चालक) और 5 चारा आपूर्वक थे। अश्वशाला में केवल 3 अश्व रक्षक थे और चारा आपूर्वक केवल 3 थे। पशुओं की संख्या का उल्लेख नहीं हुआ है किन्तु कार्यरत कर्मचारियों की संख्या के आधार पर यह प्रतीत होता है कि 4 हाथी और 3 घोडे थे और वे तरुपिति में रखे जाते थे और शोभा यात्राओं के समय भव्यता प्रदर्शन के लिए उन्हें साथ ले आया जाता था। तिरुमल में जब कभी कोई उत्सव होता, तो उन्हें लाया जाता जिससे वातावरण की शोभा और भव्यता बढ़ जाती थी।

चूँकि प्रश्न 8 के 'चूक' होने के संबध में यह उल्लेख किया गया है कि बीमारी के कारण अनुपस्थित रहने वाले किसी कर्मचारी के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई और थोडा सा अर्थ-दंड भी यदा कदा छोटे मोटे दोष के कारण लगया गया, किन्तु गंभीर आरोपों एवं भूलों को *हुजूर* के सम्मुख पेश किया गया और उसको उनके आदेशानुसार अनुपालित किया गया।

प्रश्नावली के मद संख्या 12 के नीचे यह उत्तर दिया गया था कि *वेङ्कटेश्वर देवस्थानम्* अति प्राचीन देवालय है - *अनादि* काल से यह है और मूल रूप से यह ब्रह्म को साक्षात्कार दिया, और ब्रह्म ने इसकी पूजा की। तब भगवान स्वयं तोंडमान चक्रवर्ती (सम्राट) के सामने मूर्त हुए और आदेश दिया। उसने तदनुसार इनका यह मंदिर बनवाया और इसलिए उस समय इन सबकी आमदनी व खर्च का ज्ञान न हो सका। तत्पश्चात् *शालिवाहन-शक* संवत् 939 चक्र वर्ष *पिंगल* में महानात्मा *भाष्यकार* (श्री रामानुज) का जन्म हुआ और उन्होंने अपने समय में सभी दिव्यदेशों (विष्णु पूजा के दिव्य स्थान) में कट्ल (पूजा, दान, भेंट, चढावें आदि) की व्यवस्था की। वे इस स्थान पर भी आए और इसके धर्मकर्ता के पद को

संभाला, इसके गोपुरम् (चोटी), प्राकारम् (प्रहरी दीवार) का निर्माण कराया, परिक्रमा बनवाई और कई अन्य इमारतों का भी निर्माण कराया और ऐसा कहा गया है कि अनेक धर्म कार्य किए। यह भी कहा गया था कि वर्तमान जीयंगार उन्हीं के शिष्यों का वारिस था और उसकी आमदनी अलग से अंकित की जाती थी। यह भी आगे उल्लेख किया गया था कि विभिन्न मदों में किया गया खर्च नवाब के दिनों से ही जाँचा जाता था और इसकी तसदीक (नैत्यिक खर्चा) निर्धारित थी और इसी तरह इसे तब भी उसी तरह के चलाया जा रहा था।

2. गोविंदराज का मंदिर : इसके बाद महत्व की दृष्टि से गोविंदराज के मंदिर का विवरण दिया गया था। *सरकार* द्वारा इसकी आमदनी का निर्धारण राशन के दाम के लिए किया गया था। 563 *पूली,* 28 *मैली* और 40 *कासु* भूमि के लीज़ का किराया अतिरिक्त मिलता था, 26 *पूली,* 2 *मैली* और 66 *कासु कानुक* (भेंट) लीज़ से प्राप्त होता था। इस प्रकार कुल 589 *पूली,* 31 *मैली* और 26 *कासु* की आमदनी होती थी। धर्मात्मा (*धर्माला*) एजेंटों, मंदिर सेवादारों, व्यापारियों और अन्यों से 131 *पूली,* 35 *मैली* और 14 *कासु* की प्राप्ति होती थी और *कानुक, आर्जितम्* (नैवेद्य के निमित्त जो शुल्क निर्धारित था तथा वाहन सेवाओं का शुल्क) तथा इस अंतिम मद को मिलाकर कुल 900 *पूली* होता था। इस प्रकार कुल आमदनी 1057 *पूली वराहा* और 38 *मैली* मानी जाती थी।

अनेक स्थानों से आए तीर्थ यात्रियों द्वारा चढाए गए *कानुका* (भेंट) से प्राप्त राजस्व और दान में प्राप्त आर्जितम् (भोजन चढ़ावे और रथ वाहन यात्रा का शुल्क) निर्धारित होते थे और किसान सरकार के कर्मचारियों के माध्यम से हर वर्ष नियमित रूप से लीज़ राशि का भुगतान करते थे।

धर्मम् के लिए चढावे के सामान की प्रतिपूर्ति एजंटों (कारिंदों) द्वारा नियत दिनों में होती थी जब कोई उत्सव होता था और इस प्रकार वे अपना कार्य भलीभांति संभालते थे।

मेलम् (मंगल वाद्य यंत्र) को कोई वेतन नहीं दिया जाता था और न ही *गोल्ला* (ग्वाला लोग) नौकरों को। लेकिन उनको मंदिर के *कानुक* की जमीन लीज़ पर दी गई थी। इसलिए वाद्ययंत्रक केवल उत्सवों पर सेवा करते थे और सामान्य दिनों में सायंकाल के समय और मंदिर की अन्य समयों की पूजा में उपस्थित नहीं होते थे। इसलिए यह प्रस्ताव रखा गया कि कुछ वेतन निर्धारित करके *तसदिक* (खर्चे की मान्य सूची) में दर्ज कर दिया जाए जिससे वे मंदिर में होने वाली प्रत्येक *पूजा* में हर समय संगीत की स्वरलहरी बिखेर सकें।

इस मंदिर में *विमानम्* (गुंबद), *गोपुर* (चोटियाँ) और अन्य सजावटें ईंटों एवं चूने से बनी थीं। मंदिर में दो सम्मिलित अहाते थे - आन्तरिक और बाहरी। बाहरी अहाते में कई मंटप थे (प्रस्तर-खंड)। इन सबका उल्लेख *पैमाइशी* खाते में किया गया था।

वेङ्कटेश्वर के मंदिर में कार्यरत चार *अर्चक* परविारों में से दो परिवारों को ही बारी बारी से गोविंदराज मंदिर में *पूजा* करने का अधिकार था। दो *जीयंगार* - वरिष्ठ एवं कनिष्ठ, और उनके सहायक *एकांगी* को मंदिर में भी कार्य करना होता था और सात आचार्य-पुरुषों (धार्मिक तथा आध्यात्मिक अध्यापक) के यहाँ भी। बिना वेतन के, सम्मानार्थ और वंशानुगत मंदिर कर्मचारी इन तीन श्रेणियों में से थे। वह जो *सहस्रनाम* (अर्चना के समय भगवान के एक हजार आठ दिव्य नामों का पठन) का जप करता था, *अध्यापक* जो प्रबंधो को बाँचता था, -*ज्योषी,* पुरोहित, (पुजारी) *गोल्ला-चारवाकार* (चरवाहों का प्रमुख), *पल्ले-चारवाकार* (पल्ले-श्रेणी के सेवक) *कैकाल* (बुनकर), *कामाटी* (बढई), गिरीजीनि (पेंटर) और *दर्जी,* बोक्कसम सभासद (वस्त्रों, बिस्तर, चारपाई और अन्य वस्तुओं के इंचार्ज) और तेवाकुल (रसोइया)। इनकी संख्या कुल 27 थी।

इनमें नियमित वेतन प्राप्त कर्ता सेवक कुल आठ थे जिन में *मुद्रा-मनिषि* (हाथों पर शंख व चक्र की मुद्रा बनाने वाला, निरीक्षक-प्रबंधक) एक छत्र वाहक, एक सातानी (माली-शात्ताड़ श्रीवैष्णव), फूल मालायें बनाने वाला), दो *गौरुगोल्लु* (वाद्ययंत्रवादक), एक फूल उपलब्ध कराने वाला, और दो तिरुवीधि (मेहतर) कर्मचारी।

इनमें से प्रथम श्रेणी के कर्मचारी मुख्यतः वेङ्कटेश्वर मंदिर के अनुबंधित कर्मचारी थे और यहाँ इसी सेवा के लिए नियुक्त थे।

हाथी और घोडों तथा इनके महावत और अश्वारोहियों तथा अन्य कर्मचारी जो तिरुपति के निवासी थे, उनका खर्च वेङ्कटेश्वर मंदिर के द्वारा उठाया जाता था।

पल्ले-चारवाकार में से एक कर्मचारी प्रवेश द्वार में *गोपुरं* के नीचे खडा होता था। *गोल्ला* सेवक तीर्थ यात्रियों से समर्पित धन और भेंट एकत्र करने में कानुक के पट्टेदार की मदद करता था। प्रमुख उत्सवों में देव प्रतिमाओं की शोभायात्रा के समय ये *सेवकवृंद गोल्ल चारवाकार* तथा *पल्ले चारवाकार* शोभायात्रा के साथ हथियार बंद होकर आते थे। दर्जी रथ को उत्सव के समय कपडों की वंदनवार से सजाता था, जब कभी आवश्यकता होती तो अन्य वस्त्रों को सीता था उनकी मरम्मत भी करता था और बाद में उन्हें सुरक्षित अपने पास रख लेता था। पेंटर *सारथी* (रथ का चालक) की लकड़ी की मूर्ति को पॉलिश करता था। उन घोडों और शेरों की भी जो लकड़ी के बने थे, बढई रथ की मामूली मरम्मत कर देता था और उत्सव के समय शोभा यात्रा निकालने में सहायक होता था।

गोविंदराज मंदिर में पूजा की पद्धति वेङ्कटेश्वर मंदिर की पद्धति के समान ही थी। किन्तु समय कुछ आगे का था। जब मंदिर के सेवकों को बुलाया जाता वे *अर्चक* और *जीयंगार* और एक *एकांगी* के साथ

पीछे पीछे मंदिर की चाबियाँ लेकर प्रातः सात बजे जाते और *मुद्रा-मनीषी* आदि की उपस्थिति में मदिंर का बाहरी द्वार खोला जाता था। बाहरी द्वार *जीयंगार* द्वारा लाई चाबियों से खुलता था और आंतरिक द्वारा *अर्चक* द्वारा खोला जाता था, फिर *एकांगी* और *कैकाल* सेवादार *अर्चक* के साथ भीतर प्रवेश करते, दीपक को ठीक करते और सभी चीजों की ओर नज़र दौडाते यह जानने के लिए कि वे सुरक्षित हैं कि नहीं।

तब *जीयंगार* प्रवेश करते थे। *तोमाल सेवा* और *अर्चना* सहित *पूजा* होती और तत्पश्चात् *नैवेद्यम्,* प्रातः 9 बजे तक पूर्ण कर ली जाती। बाद में तीर्थ यात्रियों को *दर्शन* के लिए आने दिया जाता, तब नियत कर्मचारी उनसे *कानुक* (भेंट) प्राप्त करके उसे एक छोटे संदूक में रखते। यह *दर्शन* दोपहर के बाहर बजे तक बढाया जाता तब दोपहर को *पूजा* की जाती और तीर्थ यात्रियों द्वारा भोजन की भेंट नियत कर्मचारी के माध्यम से मूर्ति के समक्ष प्रस्तुत की जातीं और फिर उसी के द्वारा भोग लगाने के उपरान्त संबंधित तीर्थयात्री को वापिस कर दी जाती। फिर *अर्चक* आंतरिक द्वार को बंद करता और घर चला जाता। *जीयंगार* और अन्य कर्मचारी भी अपने स्थानों पर लौट जाते। रात्रि में सात बजे को, समस्त कर्मचारी वर्ग उपस्थित होता और रात्रि-*पूजा, नैवेद्यम्, तीर्थ यात्रियों* के लिए *दर्शन* और भगवान के लिए शयन-प्रबंधन, रात के दस बजे तक संपन्न होते। *जीयंगार* फिर मुख्य द्वार पर ताला लगाकर चाबी लेकर अपने *मठ* की ओर वापस लौटते।

इस मंदिर में, *'यादव पेरुमाल्लु'* और सामान्यतः *'पार्थ सारथी'* (*महाभारत* में अर्जुन के सारथी *श्रीकृष्ण*) कहे जाने वाले भगवान का मंदिर *रायलु* (विजयनगर के एक राजा) के समय में निर्मित कराया गया था। बाद में, *भाष्यकार* (वैष्णव धर्म के अध्यापक रामानुज) ने गोविंदराज स्वामी की प्रतिमा चित्रकूट बनाम चिदंबरम से प्राप्त की, और पास में ही मंदिर बनवाकर उसे स्थापित किया। चूंकि गोविंदराज स्वामी के प्रति भक्तों की आध्यात्मिक आस्था बढी और अभिव्यक्त हुई, इसलिए उनकी *पूजा* जारी रही। बाद में पार्थसारथी की *पूजा* में व्यवधान आने का कारण यह था कि प्लास्टर की बनी इस मूर्ति में कुछ 'विरूपता' आ गया था।

3. शाल - नाच्चियार का थान/स्थान : तीसरे उल्लेखनीय स्थान (थान) का संबंध शाला - नांचारम्मा से है। *सरकार* से उनके लिए 18 *पूली,* 2 *मैली,* 54 *कासु* का भत्ता निर्धारित था और नकद प्राप्ति 6 वराहा की थी, कुल वराहा थे - 24-2-54 और दान-धर्म में *उभयदारों* (दानदाताओं) से 8-26-41 *पूली* का *धर्मम्* (दान) प्राप्त होता था। एक रुपया या इससे अधिक के दान करने वाले तीर्थ यात्रियों के दान की राशि गोविंदाचार्य स्वामी के मंदिर में कर्मचारी द्वारा जमा की जाती थी। और एक रुपये से कम की कोई भी राशि *परिचारक* (थान की सेवा करने वाले रसोइयों में से एक) को दे दी जाती।

उभयदार उत्सवों के दौरान सभी सामान की आपूर्ति करते थे। यह थान पत्थर से निर्मित था और कुछ ही हिस्सा इसका प्लास्टर का था। गोविंदराज स्वामी मंदिर के *अर्चक* के क्लर्क 'प्रतिमा' की *पूजा* सुबह सात बजे से सुबह दस बजे तक करते थे। आधा सेर पका हुआ भात नैवेद्यम के रूप में भोग लगाने के लिए दो बार प्रस्तुत किया जाता था। सात दिन तक चलने वाले उत्सव के समय सभी कार्यक्रमों के सहज संचालन के लिए गोविंदराज मंदिर के सभी कर्मचारी सहयोग देते थे।

चार भुजाधारी श्रीमहालक्ष्मी की मूर्ति मूलरूप से पहले यादव-पेरुमाल्लु मंदिर के उत्तर के एक स्थान पर प्रतिष्ठित की गई थी और इस मूर्ति की स्थापना *रायलु* के कार्यकाल में दक्षिणाभिमुखी के रूप में हुई थी। बाद में यह मूर्ति वहाँ से स्थानांतरित की गई और *शाला* में प्रस्थापित की गई। *शाला* (मुख मंडप के दक्षिण पूर्व अंतिम छोर पर इमारत का एक हिस्सा) को प्रमुखता दी गई। यह तब हुआ जब *भाष्यकार* ने गोविंदराज स्वामी को स्थापित कराया था। इसलिए ये *शाला- नांचारम्मा* (शाला-नाच्चिमार) के नाम से प्रसिद्ध हुई।

4. सूडिक्कोडुत्त-नाच्चियार का मठ/थान : अन्य महत्वपूर्ण मठ (थान/स्थान) जैसे चौथा मठ सूडि-कोडुत्त-नांचारम्म (नाच्चियार) का था। इसके रख - रखाव हेतु *सरकार* द्वारा नियत भत्ता 39-16-19 *पूली* नियत था और इसकी पूर्ण *कानुक* 32 *पूली* थी। *उभयम* के लिए 18-5-62 *पूली* नियत था। इस प्रकार 50-5-62 की कुल आय थी। जैसा शाला-नांचारम्मा के मठ के मामले में था, इस मठ में भी *कानुक* की भेंट तीर्थ यात्रियों द्वारा दी जाती थी और एक रुपए या उससे अधिक की प्राप्ति पर गोविंदराजस्वामी के मंदिर के नियुक्त कर्मचारी द्वारा यह स्वीकार करके उसको दर्ज किया जाता था और एक रुपए से कम की राशि पर *अर्चक* का भाग चला जाता था। यह मठ मुख्य रूप से पत्थर और कुछ हिस्सा मोर्टार का बना था। *अर्चक* के क्लर्क *पूजा* और परिचारकम (सहायता) दोनों में भाग लिया करते थे। पूजा प्रातः 10 बजे से 12 बजे दोपहर तक और शाम के 7 बजे से रात्रि के 10 बजे तक होती थी। दिन और रात दोनों समय आधी-माप पका भात गोविंदराजस्वामी के मंदिर से इस थान को भेंट किया जाता था। कहा जाता है कि यह मठ *भाष्यकार* के समय में निर्माण कराया गया।

5. श्रीकोदंडराम का मंदिर : तिरुपति में पांचवाँ महत्वपूर्ण वर्णित मंदिर श्रीकोदंडराम का मंदिर था। *सरकार* द्वारा निर्धारित समस्त वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए 145-38-0 *पूली* निर्धारित किया गया था और भूमि लीज़ पर देने से तथा मुख्य *कानुक* (भेंट) से प्राप्तियाँ 80-4-2 *पूली* थीं और *उभयम् धर्मम्* एजेंटों से प्राप्तियाँ 71-8-42 *पूली* था। इस प्रकार कुल आय 151-12-44 *पूली* था। मंदिर द्वारा प्राप्त *कानुक* की प्राप्ति में से, मंदिर *ओडिगम-वारु* (सेवा प्रदाता) कुछ अंश रख लेते थे और बाकी ईंधन के लिए उपयोग में लाया जाता था। *फास्की* (*पशिक* - चढाए गए भोग का अंश) मंदिर के रसोइयों द्वारा

जारी किया जाता था, जैसी तिरुमल और तिरुपति के मंदिरों और गोविंदराज में परंपरा थी और यह उन्हीं रसोइयों (*तेवाकुलवारु*) द्वारा लगाया जाता था। इसके लिए वे मंदिर के *धर्मकर्ताओं* गुंडप्पा और वेङ्कटराव को लीज़ राशि दिया करते थे। इसी के साथ, इस प्रबंधन के अनुसार, ऐसे प्रबंध किए गए थे कि स्थानीय लोग और बाहरी लोग आवश्यक-वस्तुओं को लगातर आपूर्ति करते रहते थे और यह परिपाटी *फ़सली* 1199 (1790-91) से लागू थी। इसकी अनुमति और आदेश नवाब साहब द्वारा दिए गए थे और तदनुसार *मस्तजारु* (कार्यनिर्वहणाधिकारी, प्रशासक) रघुनाथाचारी द्वारा प्रभावी किया गया था तथा *फ़सली* जारी रखी गई थी। धर्मकर्ताओं गुंडप्प और वेङ्कटराव के नाम से इस प्रकार एकत्र किए गए लीज़-धन में से कुछ का उपयोग मंदिर-कर्मचारियों के वेतन देने के लिए खर्च किया जाता था और बाकी मंदिर के निमित्त लगता था। इसके लिए अलग हिसाब रखा जाता था और इसे *सरकार* के खर्च और आमदनी के खाते में सम्मिलित नहीं किया जाता था।

यह एक प्राचीन मंदिर था। यह पत्थर से निर्मित था और *विमानम्* तथा *गोपुरम्* मोर्टार के बनाए गए थे।

इसके स्टॉफ में एक *अर्चक, बोक्कसम* (खजाना) लोगों का एक क्लर्क, एक रसोइया, दो *गोल्ला* और एक माली थे। *अर्चक* 7 बजे प्रातः से 9 बजे प्रातः तक *पूजा* करता था और *मात्रा* तथा *दध्योदनम्* का *नैवेद्यम्* चढाता था और फिर मध्याह्न *पूजा* 10 बजे से दोपहर के 12 तक होती थी। इसके बाद भी *नैवेद्यम्* प्रस्तुत किया जाता था। रात्रि में 7 बजे से 9 बजे तक फिर *पूजा* होती थी और *नैवेद्यम्* का भोग लगाया जाता था। *नैवेद्यम्* में *अलम्कारम्* और *पूलि-ओगीरमु* का भोग होता था और फिर शयन के समय *मंचपु-सेवा* (देवता को बिस्तर = चारपाई पर शयनार्थ वहन करने हेतु सेवा) की जाती थी। इस प्रकार दिन की सेवाओं पर विराम लगता था, *तिरुमानम्। बोक्कसम* क्लर्क *अभिषेकम्* (स्नानादि) के लिए जल की अपूर्ति करता था। *चंदनम* (चंदन - घिसना) तैयार करता था और *पूजा* के लिए पात्र (बरतनों) को मांजता-साफ़ करता था। रसोइया भोजन-भोग तैयार करता था। गोल्ल समस्त सामग्री को मंदिर में लेकर आता था और मंदिर की सुरक्षा भी देखता था। माली पूजा के लिए पुष्पों की आपूर्ति करता था।

चंद्रवंशी जनमेजय राजा ने इस मंदिर को बनवाकर मूर्ति स्थापित कराई। अयोध्या रामानुजय्यंगार ने *प्राकारम्* (विवृत्त दीवार) और गोपुरम् *रायलु* के राज्य काल में निर्मित कराया। *फसली* 1226 में (1817-18 ई.) एक नया विमानम् (आसन के ऊपर की गुंबद) बनवाया और इसकी प्राण प्रतिष्ठापन के लिए *कुंभाभिषेकम्* की पूजा की गई।

6. तिरुचानूर का श्रीकृष्ण स्वामी का मट : छटा उल्लेखनीय मंदिर श्रीकृष्ण स्वामी तिरुचानूर का समझा जाता था। *सरकार* द्वारा इस मंदिर की सभी आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए 32-25-57 *पूली*

निर्धारित किया गया था और दान दाताओं से *उभयम्* के निमित्त 3-15-55 *पूली* प्राप्त होता था। यह मठ पत्थर से बना था और इसे श्रीपद्मावती-देवस्थानम् से संबद्ध माना जाता था।

अर्चक, रसोइया, सामान लाने वाला सेवक, *धर्मकर्ता* और श्री पद्मावती मंदिर के तलारि (चौकीदार) (कृष्णपुरम् *पालेगार* के विवाचक) इस मठ में भी कार्यरत थे। *अर्चक* प्रातः, मध्याह्न और रात्रि के समय मठ में पहले पूजा करते थे फिर पद्मावती के मंदिर में जाते थे। श्रीपद्मावती के नैवेद्यम पकाने के साथ ही श्रीकृष्ण के लिए नैवेद्यम भी रसोइये एक साथ पकाते थे और श्रीकृष्ण को पहले तथा पद्मावती को उनके बाद नैवेद्यम का भोग लगाया जाता था।

यह मठ एक प्राचीन मठ है। जब शुक महर्षि स्वर्णमुखी नदी के तट पर तप कर रहे थे, श्रीकृष्ण और उनके भाई (बलराम स्वामी) तीर्थ यात्रा करते हुए वहाँ पहुँचे। मुनि ने उन्हें वहाँ रोका और उनकी पूजा की और अपने 108 मानस पुत्रों को उत्पन्न करके उन्हें इस कृष्ण-मठ थान मंदिर की *पूजा* व्यवस्था में लगा दिया। साथ में श्रीवारु (तिरुमल श्रीवेङ्कटेश्वर) की सेवा भी सुनिश्चित की। उनके परिवार जन कृष्ण मंदिर में *पूजा* करते थे। तिरुचानूर नामक *अग्रहारम्* इन्हीं *पुजारियों* का था और श्रीनिवासाचारुलु नामक किसी पंडित ने दूसरों के लिए भी एक अन्य *अग्रहारम्* की व्यवस्था की। इस मठ के निर्माता का नाम ज्ञात नहीं होता।

7. श्रीपद्मावती मंदिर, तिरुचानूर : सातवाँ प्रसिद्ध मंदिर चिरुतानूर (प्रसिद्ध नाम तिरु-चुक-नूर, श्रीशुक पुरी) में श्रीपद्मावती का था। यहाँ सरकार द्वारा नित्यखर्च की प्रतिपूर्ति के लिए 80-17-19 *पूली* भत्ता निर्धारित था। भूमि की लीज से 66-23-26 *पूली* की प्राप्ति होती थी और *कानुक* (भेंट) से लीज राशि 57-8-60 *पूली* की प्राप्ति होती थी। इस प्रकार कुल राशि 204-4-25 *पूली* थी। धर्मम् के एजेंटों से प्राप्तराशि 368 *पूली*, 35 *मैली* और 9 *कासु* थी। स्थानीय जनता और बाहरी लोगों द्वारा चढाई गई *कानुक* का उपयोग *दीपाराधना* (नित्य दीप-प्रज्ञवलन), और पूजा तथा हर शुक्रवार को दूसरे मठों हेतु होता था।

मंदिर के संगीतज्ञों को कोई वेतन नहीं दिया जाता था और न ही उन्हें कोई *ईनाम* (कर सुविधा या छूट)। भूमि ही उनके पास थी। उन्हें थोड़ा प्रसादम् दिया जाता था किन्तु वह उनके भरण पोषण के लिए पर्याप्त न हीं था। इसलिए वे दिन में तीन बार की जानेवाली *पूजा* में सेवा कार्य करते थे किन्तु *पूजा* के तीनों प्रहरों में प्रतिदिन संगीत वादन अपरिहार्य था क्योंकि यह स्थान एक प्रसिद्ध धर्मस्थल था जहाँ नित्य पूजा, विशेष साप्ताहिक *पूजा*, मासिक और वार्षिक उत्सव और कर्म किए जाते थे। इसलिए यदि कुछ वेतन दिया जाता तो कार्य ठीक चलता।

इस मंदिर में दो *धर्मकर्ता* थे और वे सामान प्राप्त करके उसे रसोइयों को दे देते थे जिससे वे भोजन-भोग बना सकें। एक *अर्चक*, एक *बोक्कसम* (सेवादार) और एक रसोइया नियत थे। इनके अतिरिक्त *कृष्णापुरम् पालेगार* के कुछ कर्मचारी थे जो तिरुपति से *सामान* लाया करते थे, उसे साफ करते थे और रसोइए को सौंप देते थे।

अर्चक 8 बजे सुबह से 10 बजे प्रातः कालीन *पूजा*, 11 बजे से 12 बजे मध्याह्न-*पूजा* और रात्रि 8 से 10 तक रात्रि *पूजा* तथा शयन-*पूजा* आदि कराते थे। शुक्रवार को विशेष पूजा (निश्चय ही *अभिषेकम्*, स्नानादि) के साथ ही मूर्तियों की शोभा यात्रा भी निकाली जाती थी।

यह मंदिर तोंडमान-चक्रवर्ती के शासन काल में निर्मित कराया गया था। लगभग पचपन वर्ष पूर्व चक्र-वर्ष *तारण* (लगभग 1764 ई.) में निज़ामु दौला की सेना ने इस गाँव पर चढ़ाई की; इस मंदिर को तोडा और मुख्य मूर्ति को खंडित किया। फिर उसके अगले वर्ष-*पार्थिव* नाम संवत्सर (1765 ई.) में मंदिर के प्रबंधकों ने *मुस्तजारु* (प्रशासक) वैद्युलु तिरुमलरावु की आज्ञा से *दुबाश* वांच नारायणपिल्ला चिन्नपट्टनम् (मद्रास) वाले से संपर्क किया गया और उन्होंने मंदिर की मूर्ति को फिर से निर्मित कराया। मठ का पुनः निर्माण कराया गया और नई मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा की गई। त्रिची (त्रिचनापल्ली) के नम्मालवार के मंदिर से प्राचीन शोभायात्रा मूर्ति और अन्य मूर्तियों को भी लाया गया, शायद तिरुपति में लाकर उन्हें मंदिर में प्रतिष्ठापित कराया गया।

8. सूर्य नारायण स्वामी का मठ/थान/मंदिर, तिरुचानूर : आठवाँ विवरण जिसके यहाँ की गई है, वह थान या स्थान श्रीसूर्य नारायण स्वामी का चिरुतानूरु में है। इस मठ के लिए *सरकार* द्वारा कोई अनुदान नहीं दिया जाता था। राशन के लिए *पूली* 6-33-60 का प्रावधान था और भूमि से लीज़ राशि *पूली* 3-28-10 थी जो कुल राशि 10-16-70 *पूली* होती थी। पट्टु-तातावारी, तिरुपति के कोदंड रामस्वामी मंदिर के *अर्चक* को *ईनाम-भूमि* प्राप्त थी और उनका अनुचर इस स्थान पर केवल एक समय पूजा किया करता था।

यह एक प्राचीन संस्था थी। जब तिरुमल वेङ्कटेश्वर ने पद्म सरोवर में तपस्या की थी और उनके ध्यान में पद्मावती (देवी) थीं, तब सरोवर से एक सुनहरा कमल उत्पन्न हुआ और इसकी पंखडियों को खिलने देने के लिए सूर्य की किरणों की अवश्यकता हुई तो सूर्य-नारायण स्वामी प्रकट हुए। यह पत्थर से निर्मित था।

9. कपिलेश्वर स्वामी मंदिर, तिरुपति : कपिलेश्वर स्वामी का मठ/थान/मंदिर नौ वाँ वर्णित किया गया है। इस मंदिर के लिए *सरकार* द्वारा नियत भत्ता 50-11-20 *पूली* था और *धर्मम्* से कोई योगदान नहीं होता था। इस मंदिर के लिए कोई धर्मकर्ता नहीं था।

इसका *गर्भगृह,* रंग मंडप और दूसरे हिस्से प्रस्तर से निर्मित थे। *प्रदक्षिणा, महाद्वारम्* और खंभे लकडी के थे। एक *अर्चक* और उनका *अनुचर* मंदिर में सेवा करते थे। मंदिर की सुरक्षा का उत्तरदायित्व *करकंबाडी पालेगार* का था। एक *पूजा* की जाती थी।

कपिलेश्वरस्वामी की प्रतिमा कपिल मुनि को स्वतः स्फूर्त हुई थी। वह स्वयं साक्षात्कार देकर प्रकट हुए थे। यह अत्यंत प्राचीन मंदिर था। यह ज्ञात नहीं है कि तोंडमान - चक्रवर्ती के समय से पूर्व इसे किसने बनाया।

10. हनुमंतराय स्वामी मंदिर, तरिपति : यहाँ हनुमंतराय स्वामी (आंजनेय/हनुमान) का थान था और यह कपिलतीर्थम् को जाने के रास्ते में पडता था।

मुस्तजारु श्रीनिवासाचारी ने वेदांतपुरम् अग्रहारम् में प्रतिष्ठित करने के निमित्त मूर्ति बनवाई। वहाँ इसकी *पूजा* नहीं हो रही थी और गाँव में अग्निकांड से हानि हुई। अतः गाँव के लोग इस मूर्ति को अपने गाँव से बाहर ले आए और इसे कपिलतीर्थ के मार्ग में प्रतिष्ठित कर दिया। पहले एक बैरागी (उत्तर भारत से आया विरागी) यहाँ *पूजा* किया करता था। 40 वर्ष पूर्व (यानी सन् 1780 में) श्रीवेङ्कटेश्वर के दर्शनार्थ एक गुजराती मद्रास से यहाँ आया। उसने इस मंदिर को लकडी के खंभों से बनाया। फसली 1209 (1801 ई.) में सामी शेट्टी तत्कालिक *मुस्तज़ारु* के अनुचर ने कुछ राशन देने का प्रबंध किया और अंग्रेज कंपनी ने जब प्रबंधन संभाला, तो उसने पूली 20-4-13 की यथायोग्य अनुमति दी।

11. संजीवरायस्वामी पीठम्, तिरुपति : ग्यारहवीं प्रमुख, उल्लेखनीय प्रतिष्ठित पीठम् संजीवरायस्वामी का था (आंजनेय स्वामी जो संजीवनी पहाडी को जीवन रक्षक (संजीविनी) बूटी के साथ लाए थे) जो उत्तरी दिशा[3] की कतार में खड़ी थी, यह श्रीहाथीरामजी मठ जो हाई रोड या गांधी रोड तिरुपति, के सामने है। मूर्ति पहले इसी खाली *मंटपम्* - में - *पूजा* के बिना रखी गई। फ़सली 1204 (1795 ई.) में अमीर केसरी सिंह ने इसका उद्धार किया और इसके लिए राशन की आपूर्ति कराई जिसे अंग्रेज कंपनी ने भी जारी रखा।

12. मणवाल महामुनि पीठ, तिरुपति : बाहरवीं पीठम् मणवाल-महामुनि की है। यह गोविंदराजस्वामी मंदिर में उत्तरी प्रवेश द्वार के पास है। इसके लिए *सरकार* का भत्ता 2-22-8 *पूली* था और लीज़ राशि 3-3-41 *पूली* थी। अन्य आय कुल 34-1-29 *पूली* थी। इस प्रकार कुल आय 37-4-70 *पूली* थी। इसका गर्भगृह और मंडप पत्थर के बने थे और चारदिवारी तथा भोजनालय ईंटो के थे तथा खंभे मिट्टी के बने थे। इसमें केवल दिन में एक बार *पूजा* होती थी।

---

3. एक दूसरी पीठ भी अंजनेय स्वामी की है जो टी. टी. डी. के पश्चिम में 'वकुल' इमारत से लगी है।

इसके *धर्मकर्ता आचार्य पुरुष* वीरवल्ली अप्पलाचार्लु थे। वीरवल्ली अरंगन वरदय्या इनके उत्तराधिकारी थे जिन्होंने लगभग चार सौ वर्ष पूर्व अपनी *ईनाम* भूमि पर सिंधूर हनुमंतराय स्वामी (आंजनेय) (संभवतः भवानी नगर में) की पीठम् के पास कपिलतीर्थ जाने के मार्ग में इसे स्थापित कराया। चूँकि उस स्थान पर बसी बस्ती नष्ट हो गई, इसलिए उनके वंशजों में से एक कोनप्पाचारी इसे दो सौ वर्ष पूर्व वहाँ से ले आए और इसे इस पीठ में एक *मंटपम्* बनवाकर प्रतिष्ठित किया। यह *मंटपम्* सन्निधि गली के गोविंदराज स्वामी मंदिर के द्वितीय *प्राकार* के बाहर स्थित है।

13. नम्माळ्वार पीठम्, तिरुपति : तेरहवीं पीठम् नम्माळ्वार[4] की है, जो तिरुपति के गोविंदराज मंदिर के पास उत्तरी दिशा की गली के उत्तरी हिस्से में स्थित है। *सरकार* द्वारा दिया जाने वाला भत्ता 13-2-0 *पूली* था। यह स्थान पत्थर से बना था। इसके लिए कोई *धर्मकर्ता* नियुक्त नहीं था। *पूजा* केवल एक समय होती थी और रात में एक दिया जला दिया जाता था। मंदिर का निर्माण कोनेटि महाराय ने किया था।

14. वेदांत-देशिका पीठम्, तिरुपति : चौदहवीं पीठम् वेदांत दोशिक से संबंधित है। *सरकार* से इसका भत्ता 9-28-8 *पूली* था और भूमि लीज से 8-33-60 *पूली* तथा *उभयम्* से 4-13-8 *पूली* प्राप्त होता था। इसके *धर्मकर्ता* ताताचारी दिन में एक बार *पूजा* करते थे। *मंटपम्* के लिए *आस्थानम्* (लेवी) तब बहुत बडा था जब गोविंदराज स्वामी को यहाँ लाकर रखा गया था। लगभग 400 वर्ष पूर्व तत्कालीन *पूजारी* के प्रपितामह माडबूशी वीरराघवाचारी ने गर्भगृह बनवाया। यह लकडी के खंभों पर स्थित था। इसका फर्श बनवाया और देशिका की प्रतिष्ठा की। दान से प्राप्त राशि से *पूजा* प्रारंभ की। फिर लगभग सौ वर्ष पूर्व *ब्रह्मतंत्रस्वामी* ने विस्तृत *मंटपम्* बनवाया जो उत्तर में इसके सामने था और साथ ही 4 खंभों को *मंटपम्* के सामने भी जोडा। लगभग 60 वर्ष पूर्व *मुस्तजारु* श्रीनिवासाचार्लु ने गर्भगृह बनवाया और उसकी दीवारों तथा फर्श को फिर से बनवाया। यही नहीं, *सरकार* से मंदिर के लिए धन भी अनुदान में प्राप्त करवाया। इस समय के रिकार्ड को देखने से पता चलता है कि उस समय के *पूजारी* शेषाद्रि अय्यंगार ने माडबूशी तामरपु ताताचार्लु के कहने से गर्भगृह का परिसर बनाया और उसमें खंभे लगवाए। इस पीठम् के पास *उभयम्* हेतु *ईनाम* भूमि थी।

---

4. यह नम्माळ्वार पीठ कई मंडपों से घिरा एक छोटा-परिसर है। पहले यह रामानुजकुटम् के रूप में प्रयुक्त था। फिर यह हाई स्कूल, ओरियंटल कॉलेज, होस्टल, ओरियंटल हाई स्कुल, कान्वेंट स्कूल भी बना और अब यह टी.टी.डी. म्यूजियम् में परिवर्तित किया जा रहा है जिसमें 1000 खंभों का मंटपम् हाल, तिरुपति में निर्मित किया जाएगा (26-12-1980)

- गोपी कृष्ण

15. उल-आळ्वार पीठम् : पंद्रहवीं पीठम् गोविंदराज स्वामी मंदिर की उल आळ्वार की थी। इसके दीपक हेतु तेल के खर्चे का भत्ता 0-40-24 *पूली* था। गोविंदराज स्वामी के *अर्चक* का क्लर्क दिन में एक बार और फिर रात्रि में यहाँ *पूजा* किया करता था। कंदाल अप्पलाचारी और गोविंदाचारी परिचारक थे जो बारी बारी सेवा करते थे। गोविंदराज स्वामी मंदिर से पके हुए भात के चार गोले दिन और रात में यहाँ भेंट किए जाते थे। इस *आळ्वार* की शोभायात्रा की मूर्ति गोविंदराज स्वामी के गर्भगृह (*प्रदक्षिणम्*) के दक्षिण में रखी जाती थी।

15 (a) तीन मुदल आळ्वार : पेरिआळ्वार, तोंडरप्पडि-आळ्वार और तिरुप्पाणि आळ्वार की पीठम्, सहायक पीठम् मानी जाती थी। इन तीनों आळ्वारों की सेवा कंदाल अप्पलाचारी और अन्य किया करते थे और साथ ही पेरि - आळ्वार के अलिपिरि (अडिपडि,तिरुमल जाने के लिए सबसे नीचे की सीढ़ी) स्थान की सेवा भी करते थे। ये बहुत ही प्राचीन पीठम् थे। तीन सौ वर्ष पूर्व रामस्वामी महारायलु ने गोपुरुम् और उस पीठम् को चार दीवारी आदि को बनवाया था। एक सौ पचास वर्ष के लगभग, जब कोई 'लाला' यहाँ आया - प्रपितामह जिनका नाम अप्पलाचारी था, उनका *परिचारक पेरिआळ्वार* और तोंडरप्पडि-आळ्वार की दो प्रतिमाएँ गोविंदराज पट्टणम् (तिरुपति) लाया। तिरुप्पाणि - आळ्वार की प्रतिमा को *पंचमों (हरिजन)* ने छीन लिया, जबकि मुख्य प्रतिमा प्राचीन *पीठम्* में हो विराजती रही। दोनों ही मूर्तियों-तिरुप्पाणि आळ्वार और तोंडरप्पडि-आळ्वर में कुछ खंडित हुआ और कुछ दिनों तक कोई *पूजा* नहीं हुई। सरकार की अनुमति से गोविंदाचारी ने इन दोनों मूर्तियों को गोविंदराज स्वामी मंदिर दक्षिण *मंटपम्* में विराजित कराया, वहाँ लकडी के दरवाजे लगवाए और दीपक-प्रकाश तथा भेंट चढ़ावे की उचित व्यवस्था भी की।

15 (b) तिरुमंगैयाळ्वार पीठम् : अगला उप-पीठम् तिरुमंगै आळ्वार का है जिसका विवेचन यहाँ किया जा रहा है। यह कपिल-तीर्थम् मार्ग के पूर्व में स्थापित था। यह बिल्कुल खंडहर हो गया था। यह चिन्न जीयंगार के प्रबंधन में था। यह कहा गया था कि इसे कृष्णरायलु ने बनवाया था। इसके पास कोई आवासीय गृह नहीं था और इसलिए लगभग पचास वर्ष पूर्व यहाँ शोभयात्रा की प्रतिमा लाकर पेरिआळ्वार व अन्य के साथ रखी गई। इन्हीं के साथ ही इनकी *पूजा, नैवेद्यम्* और *दीपाराधना* हुई। मुख्य मूर्ति खंडित थी।

15 (c) कुलशेखराळ्वार पीठम् : कुलशेखर की पीठम् एक सहयोगी अथवा उप-पीठम् की भांति देखी गई। यह कहा गया कि यह कपिल-तीर्थम् के पश्चिम[5] में स्थापित थी और इसे अयोध्या-रामानुज

---

5. यह वही स्थान हो सकता है जहाँ के.टी.रोड पर एन.जी.ओ. कॉलनी में एक प्राथमिक विद्यालय चलाया जा रहा है। वहाँ स्थित मंटपम् ही आळ्वार का आवास रहा होगा।

- गोपी कृष्ण

जीयंगार ने बनवाया था। यह बुजुर्गों द्वारा चलाई जाती थी। यह पीठम् भी एक तो बस्ती से दूर थी और दूसरे खंडहर हो गई थी। इसलिए इसकी शोभायात्रा - की मूर्ति को लाकर *पेरि-आळ्वार* पीठम् में स्थापित कर दिया गया था। *बोयिस* (बनवासी) इस पीठम् की देख रेख करते थे। अन्य मूर्तियों के साथ इसकी भी *पूजा* हो जाती थी।

16. तिरुमल नंबी पीठम् : अब यह तिरुमल नंबी का पीठम् गोविंदराज स्वामी मंदिर के पश्चात् सोलहवें स्थान पर है। इसके लिए *सरकार* की ओर से 1-38-67 *पूली* भत्ता तथा तोलप्पाचारी की ओर से *उभयम्* के लिए 25-12-49 *पूली* की राशि दी जाती थी। सेवा यहाँ तोलप्पाचारी से संबंधित थी और *पूजा* गोविंदराजस्वामी के *अर्चक* के सेवक दिन और रात में एक-एक बार करते थे। गोविंदराज स्वामी के मंदिर से यहाँ पके हुए भात का गोला भेजा जाता था।

17. कूरुत्ताळ्वार पीठम् : सत्रहवीं संस्था के रूप में कूरुत्तालवार पीठम् की चर्चा की गई है। राशन के लिए *सरकार* से प्राप्त होने वाली राशि 3-39-0 *पूली* थी और भूमि की लीज़ से 23-12-53 पूली अर्थात् कुल राशि 27-6-53 *पूली* की बनती थी। *अर्चक* के सेवक के द्वारा एक बार दिन में और एक बार रात में *पूजा* की जाती थी और दोनों समय जब *पूजा* होती थी, तब पके भात के चार कौर उन्हें नैवेद्य रखी जाती थी। कूरत्ताळ्वार अनंताचारी इसमें दूसरी सेवाएँ प्रदान करते थे और दोनों कालों की सेवा में चार पके भात के कौर नैवेद्य रखी जाती थी। वेङ्कटपतिरायलु के शासनकाल में उनके गुरु दोड्डाचार्य भट्टर जो कुरत्ताळ्वार के वंशज थे, ने इस पीठम् का निर्माण कराया और अपने *अग्रहारम्* में तिरुमळिशै आळ्वार की एक मूर्ति स्थापित कराई जो उन्होंने अपने संबंधियों की आर्थिक सहायता से किया और एक अन्य प्रतिमा तिरुमल से आळ्वार की अग्रहारम्, जिसे भक्तिसारपुरम् कहते थे, में स्थापित कराई। यह बाद में खंडहर हो गई। फिर मुस्तजारु रघुनाथचार्लु के काल में, जब सय्यद मोहम्मद खान ने इस स्थान का दौरा किया तो भट्टारकुलोद्भव कृष्णमाचारी ने *शासनम्* (रिट, संभवतः हस्तांत्तरण का आदेश) अपने दामाद माडबूशी गोविंदाचारी को सौंप दिया जिसने चक्र वर्ष *कीलक* में गोविंदराज स्वामी मंदिर के *मंटपम्* में दो मूर्तियाँ लाकर स्थापित कराईं।

18. भाष्यकार पीठम् : भाष्यकार (रामानुज) पीठम् अट्ठारहवीं है जिसे अब देखा जाएगा। *सरकार* के लिए इसका भत्ता और *उभयम्* 38-4-32 *पूली* था। यहाँ प्रातः कालीन एवं सायंकालीन *पूजा* अर्चक द्वारा की जाती थी जब चार कौर पका भात भोग लगाता था। अन्य सेवाएँ वेंगापुरम् (वंगीपुरम्?) राघवाचारी द्वारा ऑनरेरी धर्मकर्ता पेद्द-जीयंगार की ओर से की जाती थी और *परिचारक* पके भात के कौर को प्राप्त करता था। यह पीठम् कडिय-यादवरायलु और भाष्यकार के संबंधी तथा शिष्य एम्बारु ने भाष्यकार की अनुमति से स्थापित की।

19. तिरुमंगैयाळ्वार पीठम् : उन्नीसवीं पीठम् जो अब वर्णित की जा रही है वह तिरुमंगै[6] आळ्वार की है। *सरकार* से इसके लिए भत्ता 4-14-61 *पूली* नियत था और *उभयम्* के द्वारा 5-33-32 *पूली* की राशि प्राप्त होती थी। कुलराशि 10-3-13 पूली की थी। *अर्चक* का *गुमाश्ता* (सेवक/परिचारक) दोपहर और रात्रि में *पूजा* करके पके भात की चार कौर नैवेद्य में रखता था। कंदाल परिवार जन अपने *धर्मकर्ता, चिन्न-जीयंगार* की ओर से पीठम् में अन्य सेवा कार्य किया करते थे। यह पीठम् कपिल-तीर्थम् मार्ग पर पूर्व की ओर थी और प्रायः जीर्ण-शीर्ण थी। यह कहा जाता था कि यह पीठम् *कृष्णरायलु* द्वारा बनवाई गई। चूँकि खंडहर एवं निर्जन स्थान पर थी जहाँ कोई रहता नहीं था, इसलिए वहाँ से शोभयात्रा की मूर्ति लाकर पेरि-आळ्वार मठ में स्थानातंरित की गई जहाँ अन्य आल्वार मूर्तियों के साथ, *पूजा* की गई। मुख्य मूर्ति खंडित भी थी।

इस दस्तावेज के अंत में यह उल्लेख किया गया है कि कुल उन्नीस देवस्थानों की यहाँ चर्चा की गई है क्योंकि पेरि-आळ्वार और दो अन्य (तिरुमंगै - आळ्वार और कुलशेखर आळ्वार) को एक साथ उल-आळ्वार की पंद्रहवीं पीठम् के साथ समूह में रखा गया था। इसके पीछे संभवतः यह कारण था कि ये पीठम् मुख्यतः खंडहर मात्र रह गए थे और इनकी प्रमुख प्रतिमाएँ खंडित थीं। इनकी शोभायात्रा की मूर्तियाँ पेरि-आळ्वार पीठम् में स्थापित कर दी गई थी जो गोविंदराज के मंदिर के उत्तर में पूरब की दूसरी *प्राकार* से लगा था और मुख्य द्वार के पास स्थित था।

पैमाइशी लेखा/खाता

अनेक मंदिरों एवं दूसरी इमारतों के पैमाइशी लेखा खाते फसली 1227 में तद्तद् स्थानों के *करणम्* (कारिंदा) द्वारा *महाराष्ट्र* भाषा में तैयार किए गए थे। उन्हीं के द्वारा हस्ताक्षरित भी थे। साथ ही *सेरिस्तदार* तालुक कार्यालय द्वारा भी प्रतिहस्ताक्षरित थे। 14 अगस्त 1819 ई. को अलब्दु गोविंदराव ने गणना, माप और अनेक स्थानों एवं ईमारती-ढांचों की जो उस समय विभिन्न मंदिरों में विद्यमान थी, कि पैमाइश कराकर प्रतिहस्ताक्षर किए।

1. वेङ्कटेश्वर - मंदिर : तिरुमल के वेङ्कटेश्वर मंदिर में, एक *गर्भ-गृह* (स्थान जहाँ मूर्ति विराजमान होती है) और उसके ऊपर *विमान* (गुंबद) का उल्लेख किया, इसकी *अंतरालम्* (छत या दीवारें) और *मुख-मंटपम्* (प्रथम-पोर्टिको) को मद संख्या 1 में रखा गया है, फिर मंचपु-सेवा-गृहम् (वह कमरा जिसमें एक चारपाई भगवान के शयनार्थ छत से लटकी होती है), और अगली *श्रीरामचंद्र स्वामी सन्निधि* (वह उच्चासन जहाँ श्रीराम विराजमान थे), इसके साथ ही पूर्व दिशा में *मुख-अंतराल मंटपम्* और अंतिम

---

6. यह निर्जन पीठम् आज भी के.टी.रोड पर ति.ति.दे. प्रशासनिक कार्यालय की बगल में स्थित है। इसका उल्लेख पहले भी 15 (b) और अब 19 में अलग से किया गया है।

रंगमंटपम् (जनता के दर्शनार्थ विभिन्न उत्सवों में भगवान की सेवा हेतु, दीवार रहित *महामणि-मंटपम्*) जिसमें एक आंतरिक परिधि भी था (प्रदक्षिणम्-परिक्रमा के लिए) और वह दक्षिण पूर्व से आरंभ होकर विराजमान आसन के चारों ओर *डोलु-मंटपम्* (ढोल-नगाडे बजानेवालों के लिए) और उत्तर में *सेना-मुदलियार* पीठम् और पास में विकास मंटपम् - इन सबके साथ केन्द्रीय पीठम् बनती थी।

इस समूह के दक्षिण-पूर्व में *स्वयं-पाकशाला* या *मेल-पोटु* (रसोईघर) है, पश्चिम से लेकर कल्याण-मंटपम् (विवाह-स्थल) तक एक रास्ता है जिसमें दस प्रस्तर स्तंभ-सामने हैं और तीन कमरे पीछे, एक दीप-घर के लिए, दूसरा *यागशाला* (यज्ञशाला) के लिए और तीसरा मेहताजी साहुकार के नियंत्रण में। कल्याण मंटपम् में एक उथली नक्काशीदार द्विस्तंभी *सिंहासन मंटप* है, एक छोटी-सी वेदी जिसमें मलयप्पस्वामी (शोभायात्रा मूर्तियों) को *ब्रह्मोत्सव* में विराजामान कराया जाता है और इसके पीछे एक छोटा *गर्भ गृह* है। ये सब एक उच्च चबूतरे पर स्थित है जिसके दक्षिण में *विमान प्रदक्षिणम्* (प्रधान वेदी के चारों ओर का *विमान* (गुंबद) सहित मूल आसन के चारों ओर का स्थल) है।

इस ''कारीडार'' के पश्चिमी भाग में एक वेदी पर कुछ कमरे हैं जो, 1) राघोजी भोंसले की *पालकी* और *वाहनों* के लिए बनाये गये हैं, 2) नडिगड्डम के परिवार जनों के *वाहनों* के लिए, 3) सुरपुरम् राज्य के *वाहनों* के लिए और अन्य चीजों के लिए, 4) वेङ्कटगिरि राजा के *प्रसाद* वितरण के लिए 5) पादगल परिवार के अधिकार में और 6) तिल के तेल को निकालने के लिए कमरा।

विमान प्रदक्षिणा के उत्तर की ओर वाले चबूतरे पर कुछ कमरे थे जिन्हें एक एक करके क्रमशः कुछ रसोइयों ने ले रखा था, मैसूर राज्य के सामान का गोदाम, मट्ल मुखिया के लोग, *कैंकाल* सेवक, *वगपडी* (भेंट किए गए *पण्यारम्*) ताल्लपाकम् संगीतकारों द्वारा अभिलेखित ताम्र - पट्टिकाएँ, *सभा-अर* भगवान के वस्त्रों को रखने के लिए, भाष्यकार की पीठम्, *मंचपु - अर* (भगवान के पलंग को रखने के लिए कमरा), *कानुक - अर* (तीर्थयात्रियों के द्वारा दिए गए दान को रखने का कमरा) और *बोक्कसम* लोगों का *पण्यारम* कमरा, चंदन घिसने का कमरा, मंदिर का *प्रसाद* रखने का कक्ष और योग - नरसिंहस्वामी के पीठ के पूर्वी कोने के दक्षिण में वरदराज स्वामी पीठ दक्षिण - पूर्वी कोने में अंदर के द्वार और छोटी चोटी के नीचे रसोई घर के पास स्थित है।

दूसरी परिधि में *संपंगी-प्रदक्षिणम्* आंतरिक *प्राकार* के आस पास अनुरक्षक-द्वार से प्रारंभ करके बाहरी बडी चोटी के नीचे तक जाता है। यह पहले अच्युतरायलु और कृष्णरायलु की मूर्तियों से जाती है जो पूर्वी प्राकार दीवार से गुजरती है। फिर इसके दक्षिण-सिरे पर जो कक्ष है उसमें मशाल/टार्च रखने के काम में लाया जाता है और मैसूर राज्य के कुछ वाहन भी यहाँ हैं, इसके बाद रंगनायक का रसोईघर है और उनका मठ या पीठम् है जिसमें *विमानम्* प्लास्टर का बना है और इसके सामने चार खंभों का

पतला *सिंहासन-मंटपम्* है, इसके पश्चिम में इसे जोडती *पिंडिशाला* (चावल पीसने की चक्की) है, फिर एक खुला मंटप है, उसके पश्चिम में स्टोर कक्ष है। इससे सटकर एक कुँआ है, जिससे पानी बहता रहता है जिसे *विरजा*-नदी कहते हैं। *पण्यारम्* बनाने वाला रसोईघर उत्तर में है, *यमुनोत्तर* जहाँ पुष्प मालाएँ बनाई जाती हैं और अंत में *स्वर्ण मंटप* है जो चार मंजिला है। इसके पश्चिम में *रजिता* (चांदी) का मंटप है। *सुवर्ण मंटप* के बीच में मुख्य द्वार के पास एक *मंटपम्* है जिसके उत्तरी हिस्से में तीन ढली हुई (कृष्णराय और उनकी दो रानियों की) मूर्तियाँ रखी गई हैं और इसके दक्षिणी भाग में अच्युतराय एवं उनकी रानी की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

मुख्य द्वार अर्थात् *दरवाजा* पूर्व से पश्चिम तक 33 फुट का बना है, 21 उत्तर से दक्षिण तक यह 15 फुट ऊँचा है, साथ में एक *गोपुरम्* है जिसमें तीन मंजिला प्लस्तर के *कलशों* का 33 फुट लंबा, पूरब से पश्चिम तक, 21 फुट चौडा-उत्तर से दक्षिण तक 30 फुट चौडा तथा 51 फुट ऊँचा गुंबद है।

यह भी उल्लेख किया गया है कि *तिरुमलराय मंटपम्* में तीन तलों या मंजिलों का 54 खंभों का मंटप है इसमें सबसे ऊँचा *सिंहासन-मंटप* (शोभायात्रा की मूर्तियों को बिठाने के लिए) है जो काले पत्थर 6×6 स्क्वायर फुट का है जिसमें *विमानम्* प्लस्तर से बना है और इसमें चार छोटे खंभों की व्यवस्था है। नीचे का दूसरा मंटपम् 30 खंभों वाला है और पूर्व से पश्चिम तक की इसकी चौड़ाई 33 फुट है, उत्तर से दक्षिण की लंबाई 39 फुट की है और तीसरा निम्नतर *मंटपम्* 16 खंभों वाला है। वह 24 फुट ऊँचा, 33 फुट उत्तर से दक्षिण तक लंबा और पूर्व से पश्चिम तक 30 फुट चौडा है इसके खंभों पर बहुत सुंदर ढंग से नक्काशी की गई है।

इसके पश्चात् *तिरुमलराय-मंटपम्* के सामने स्थित *ध्वज-स्तम्भम् मंटप* का उल्लेख किया गया है। इसमें उभरा ध्वज स्तंभ और *बलि-पीठम्* हैं।

उसके उत्तरी दिशा में ईंटो से चार बना स्तंभों का *मंटप* है जिसमें तोंडरमल्लु और अन्य मूर्तियाँ स्थापित हैं (तोंडरमल्ला)।

तोंडरमल्लु (परिवार) *मंटपम्* और *पूल-बावि* (वह कुंआ जिसमें भगवान पर चढाए पुष्प एवं हार जो यथासमय विसर्जित किए जाते हैं, और इसमें डाल दिये जाते हैं ताकि अन्य कोई उन्हें नहीं पहने) के बीच पूरब की ओर *सुवर्ण मंटप* के पास *रजिता-मंटप* है और *तोंडरमल्लु-मंटपम्* के पीछे चार खंभों वाला 9×9 स्क्वायर फुट का एक *मंटपम्* है जिसमें वेङ्कटपतिराजू की मूर्ति है।

2. गोविंदराज का मंदिर : श्रीगोविंदराज स्वामी के तिरुपति में स्थित मंदिर के बारे में *पैमाइशी* लेखा में लिखा है कि मंदिर पत्थर का बना है और पूरब की ओर उसका मुख द्वार है और इसका मुख्य

पूजा स्थल 15 फुट पूरब से पश्चिम तक और 21 फुट उत्तर से दक्षिण तक बताया गया है। इसकी ऊँचाई 12 फुट है। श्रीगोविंदराज स्वामी की मूर्ति शयन मुद्रा में है और *शेष-तल्प* पर आराम कर रही है (शेष नाग या आदि-शेष के शरीर को बिस्तर बनाकर भगवान विष्णु सोते हैं, इसलिए उन्हें 'शेषशायी' कहते हैं)। शेषनाग के फण मुडे हुए और तांबे के हैं और भगवान के सिर को सहारा देते हैं। संभवतः *चित्रकूटम्* (चिदम्बरम्) से लाई गई प्रतिमा को शेषनाग के साथ इस प्रकार स्थापित किया गया। *गंडकी नदी* से अनेक *शालग्राम* भी लाए गए थे जो विभिन्न आकारों के थे और जिनमें अच्छे व शुभ चिह्न थे। उन्हें पवित्र मानकर, विष्णु स्वरूप मानकर *पूजा* अर्चना की जाती है। यह शयन मूर्ति सिर से पैर तक प्लस्तर से बनी है और सिर से कमर तक चाँदी का कवच लगाया गया है। उनका मुख चर्तुमुख (चार मुखोंवाला ब्रह्म) था श्रीदेवी (लक्ष्मी) की पत्थर से बनी मूर्ति की ओर देखती है और चरण उत्तर दिशा में, भू-देवी की एक प्रस्तर - प्रतिमा दक्षिण मुखी रखी थी। दो प्रस्तर प्रतिमाएँ मधु और कैटभ नामक दो राक्षसों की हैं जो उनके चरणों के पास उत्तर पूर्व दिशा में हैं। इसकी *प्रदक्षिणा* में उत्तर पूर्वी कोने में सेनामुदलियार का मंदिर है और *कानुक* गृह दक्षिण-पूर्व में स्थित है।

श्री गोविंदराय के मंदिर से जुडा हुआ ही दक्षिण में तिरुवंदि यादवपेरुमाल (ग्वाल कृष्ण), की मूर्ति है यह भी अति प्राचीन है। किन्तु यहाँ *पूजा* नहीं होती। कृष्ण और उनकी साथिन की मूर्ति यहाँ हैं।

इसके साथ ही गोविंदराज के मंदिर में ही शोभा यात्रा की मूर्तियाँ विराजमान हैं जो संजीवरायस्वामी की है और मंदिर के सामने पूर्व की ओर है। उत्तरी गली की ओर जिसे हाई-रोड कहते हैं जो बाजार स्ट्रीट है और पट्टाभि राम स्वामी (राज्याभिषेक के पश्चात् के श्रीराम) और उनके भाई लक्ष्मण *पेटा-गुडी* (तिरुमंगई आळ्वार उर्फ जीयंगार गुडी जो कपिल - तीर्थ की सडक पर मंदिर है) से लाए गए हैं।

इन दोनों पीठों की *प्रदक्षिणा* - पूर्व से पश्चिम तक की लंबाई 66 फुट थी, उत्तर से दक्षिण 34 ½ फुट थी और 12 फुट चौडी और इसमें कुल 30 खंभे थे।

रंगमंटप के दक्षिण-पूर्वी हिस्से में रसोई घर था, पश्चिम में आटा चक्की का कमरा, इसके पश्चिम में वेङ्कटेश्वर की एक प्रस्तर मूर्ति है। पश्चिम में चार आळ्वारों - पेद्द (पेरी) आळ्वार, तिरुमंगा आळ्वार, कुलशेखर आळ्वार और तोंडरप्पडी - आळ्वार की मूर्तियाँ थीं। साथ ही कोदण्डरामास्वामी (धनुर्धारी राम) की मूर्ति थी। उनकी सीता देवी और राम के भाई लक्ष्मण, इसके साथ यज्ञशाला और इसके पास *कल्याण मंटपम्* - जिसमें यहाँ के स्थान देवता का विमानम् और वेङ्कटेश्वर स्वामी के सामने पूर्व में पीठ और दक्षिण में नम्माळ्वार की पीठ और इसी के साथ गजेन्द्रवरदराज (विष्णु भगवान जिन्होंने गजेन्द्र को मगरमच्छ के चंगुल से छुडाया) के साथ लक्ष्मी हैं। वे दोनों *गरुड़ वाहन* पर सवार हैं।

पूर्व दिशा में *प्राकार* दीवार से सटा हुआ एक लंबा *अंकनम्* का *मंटप* है, पाँच या छः फुट चौडा होगा। इसमें *बोक्कसम्* के लोगों का उत्तर पूर्वी कोने में एक कमरा है। इसके आगे *कानुक* कक्ष है जिसमें प्राप्त *कानुक* रखा जाता है। आगे *पल्ले* लोगों का कक्ष है जहाँ वे अपना सामान रखते हैं, इसके दक्षिण में *बलिपीठम्* और संजीवराय स्वामी की वेदी के सामने और इसके *मुखमंटपम्* के ऊपर एक कक्ष है जो 6×6×8 घन फुट का है। इसमें अक्कन्ना[7] की मूर्ति स्थापित है जो ईंटों और चूने की बनी है वह लगभग 1675 से 1687 ई. तक अंतिम गोलकोंड सुल्तान अब्दुल हसन कुतब शाह का मुख्य मंत्री था। उनका भाई मादन्ना चंद्रगिरि -तिरुपति का गवर्नर था।')

प्रथम *प्राकार* दीवार में ये सब ढ़ाँचे व इमारतें लगी हैं, इसकी लंबाई पूर्व से लेकर (इसी प्रकार पश्चिम से लेकर) 234 फुट और उत्तर से (इसी प्रकार दक्षिण से) 183 फुट और ग्रेनाइट पत्थर के हिस्से की ऊँचाई 22 फुट और इसमें ईंटों और मोर्टार का मोटापन 2 फुटा इस प्रकार कुल ऊँचाई 24 फुट, मोटाई 3 फुट और आंतरिक द्वार मार्ग पूर्वी दीवार में और इसके पीछे तिरुवंडी-यादव पेरुमाल पीठ 24 फुट पूर्व में, 27 फुट उत्तर में, और 10½ फुट ऊंचा और उसके ऊपर 24 फुट ऊंचाई का *गोपुरम्* है।

उत्तर में दूसरे द्वारमार्ग से बाहरी प्रवेश द्वार के बाहर पारुपत्यदार *मंटपम्* है जो पूर्व की तरफ 18 फुट और उत्तर की तरफ 22½ फुट है। संभवतः वेङ्कटेश्वर मंदिर के पारुपत्यादार का कार्यालय तब इसी *मंटपम्* के परिसर में ही होता था।

बाहरी प्राकार से सटा हुआ पूर्वी दीवार से दक्षिण की ओर बाहरी (दूसरी) द्वार के पास *लक्ष्मी देवी मंटपम्* है। पूर्वमुखी मंदिर में अंदर जाने के लिए पौढियाँ 7 ½ फुट की हैं, 19 ½ फुट पूरब और 33 फुट उत्तर में 8 अंकनम् (स्थान/थान) हैं जिनमें आठ खंभें हैं, पत्थर की दीवार की मोटाई पश्चिम से दक्षिण तक 4 फुट हैं और ऊंचाई 10 फुट है।

इस मुख्य स्थल में एक *मंटपम्* भी जोडा गया है जो 4 फुट ऊँची वेदी (प्लेटफार्म) पर 9 फुट ऊँची पूरब में 5 खंभों पर टिका था, 33 फुट उत्तर में 13 फुट ऊँचाई पूर्वी ओर, 7½ ऊँचाई का मकान उत्तरी किनारे पर आखरी *अंकनम् दलवायी अनंतप्पा* ने *धर्मम्* के आधार पर बनवाया।

---

7. अक्कना की मूर्ति हटा दी गई थी और जनता के दर्शनार्थ इसे उत्तर-पश्चिम कोने में रख दिया गया था। इसमें थोडी बहुत मरम्मत की भेंट से कर दी गई थी। मूर्ति *प्रणाम* मुद्रा में *यज्ञोपवीत* और मनकों की माला पहने खडी है। नग्न बदन होने के कारण मूर्ति किसी मुख्य मंत्री की न लगकर किसी आळ्वार संत की लगती है।श्री पार्थस्वामी के मंदिर के जीर्णोद्धार के समय (6-3-1977) यह चैंबर हटा दिया गया था। अक्कना का मूल स्वरूप लुप्त हो गया क्योंकि इतने परिवर्तन हो गए। यहाँ एक प्राचीन आळ्वार की मूर्ति थी, वह भी अनुपलब्ध है। कहा जाता है कि नव निर्माण के समय उसे कहीं स्थानांतरित कर दिया गया। हो सकता वहाँ श्रीकृष्ण की उपस्थिति के कारण वह मूर्ति पेरि आळ्वार की हो।

- गोपी कृष्ण

इसके दक्षिण में 4 खंभों के दो *मंटप* हैं और इसके पूर्व में एक *मंटपम्* है जिसे, *गोवर्धनगिरी मंटप* कहते हैं। इसे मधुरा वेनम्मा ने बनवाया था।

फिर इस पैमाइश में उल्लेख आया है कि 4 खंभों वाले दो ऊँचे *मंटप* पूर्व में हैं जो बाहरी *गोपुरम्* में स्थित दूसरे मंदिर *प्राकार* में हैं। इसकी पैमाइश 10×10×25 घन फुट है। इसकी छत में कई खूँट लगे हैं जिनमें जंजीरें लटकी हुई हैं और इनमें एक झूला है जिसमें *विमानम्* भी है जिसकी माप 7½ फुट ऊँचाई की है। यह बनावटी फव्वारे के पास स्थित है।

थोडा आगे पूर्व की ओर सेंट्रल स्ट्रीट की ओर जाने पर बडा *गोपुरम्* है जिसे मट्ल प्रमुखों ने *धर्मम्* से बनवाया था। इसका नीचे का हिस्सा और उससे जाने वाला रास्ता पत्थर का बना था और यह 54 फुट पूर्व में, 72 फुट उत्तर में, 28 फुट ऊँचा और रास्ता 13 फुट चौडा है। इसके ऊपर सात मंजिल की चोटी है और हर मंजिल में दो वर्गाकार रास्ते हैं; एक रास्ता पूर्व की ओर और दूसरा पश्चिम की ओर जाता है। यह ईंटों एवं मोर्टार से बनाया गया था और इसकी ऊँचाई 110 फुट थी। यह दक्षिण-पूर्व कोने में थोडा-सा[8] खंडित है।

इसके बाद गोविंदराज मंदिर के बाहर व दूसरे अहाते में स्थानों, पीठ और अन्य निर्माण के विवरण है। दक्षिण पंक्ति में क्रमबद्ध रूप से हर *प्राकार* दीवार को जोडती तिरुमल नंबी का सिद्ध पीठ है। इसके पूर्व में भाष्यकार (रामानुज) का पीठ है; इससे सटी हुई वेदी कूरत्ताळ्वार की है जिसमें तिरुमुशि-आळ्वार की चल-मूर्ति है। इसके पूर्व में फैला हुआ *गर्भगृहम्* के साथ *मंटपम्* विद्यमान है। इसकी नाप है - 130½ फुट पूर्व से, 69 फुट उत्तर से और 12 फुट ऊँचाई, इसमें 14 *बावुलु* (तल कक्ष) हैं जिनमें घी व तेल रखा जा सकता है।

उत्तर की ओर की पंक्ति में पुराना आटा रखने का कमरा है, इसके पूरब में मधुर-कवि-आळ्वार का पीठम् है। उसके सामने एक कुँआ है। वहाँ पुष्प वाटिका तीनों ओर मंटपों से घिरा है।, उसके पास पूर्व में बाहरी गोपुरम् और पश्चिम मुखी धरातल पर एक *मंटपम्* था जिसमें 8 खंभे थे और 15 फुट पूर्व की ओर तथा 26 फुट वह उत्तर की ओर है, और ऊपर की ओर प्रथम तल में 12 अंकणम् का *मंटपम्* है जिसमें चक्र की पत्थर पर खुदाई करके *गोपुरम्* के पास रखा गया है और इसकी पूजा चक्रत्ताळ्वार के नाम से की जाती है। इसकी पैमाइश पूर्व में 24 फुट, उत्तर में 24 फुट और ऊँचाई 8 फुट है। इसमें 20 खंभें हैं और ऊपर जाने के लिए जीना है।

---

8. तीन वर्ष पहले इसकी पूरी मरम्मत हुई है।

- गोपी कृष्ण

साथ में लगा बाहरी *गोपुरम्* जो पूर्व *प्राकार* दीवार के दूसरे हिस्से में है। इसकी पैमाइश इस प्रकार है - 33 फुट उत्तर की ओर, 27 फुट पूरब की ओर और 17 फुट ऊँचाई और इसके ऊपर ईंट और मोर्टर की 33 फुट ऊँचाई दूसरी *प्राकार* दीवार पूरब की ओर 215 फुट है, उत्तर की ओर 181 फुट और 24 फुट ऊँचाई।

3. कोदंडराम का मंदिर : फिर उसके पश्चात् तिरुपति के उत्तरी हिस्से में स्थित श्रीकोदंडराम स्वामी के मंदिर का उल्लेख है। यह संग-बंडि शैली अर्थात् प्रस्तर शैली में है और पश्चिम मुखी है। इसके *पुजारी* उस समय पट्टू तातावारी थे। इसका *गर्भगृह* भी पत्थर से बना है और इसका प्लेटफार्म दो फुट ऊँचा है जिसमें एक वर्गाकार चेंबर है 24×24×10 फुट का और उसके ऊपर 20 फुट का एक *विमानम्* है। इसमें 3 मुख्य मूल प्रस्तर प्रतिमाएँ हैं - कोदंडरामस्वामी, सीतादेवी और लक्ष्मण तथा 8 शोभायात्रा मूर्तियाँ है। पश्चिम की ओर इसके फ़र्श पर चार अन्य तांबे की मूर्तियाँ विराजती हैं - विश्वक्सेन, आंजनेय, नम्माळ्वार और भाष्यकार की। स्नान *मंटपम्* में दक्षिण की ओर उत्तर मुखी भाष्यकार की पीठम् पर दो मूर्तियाँ पत्थर की हैं। उनमें एक बडी और दूसरी छोटी। यहीं कुछ शोभायात्रा की मूर्तियाँ भी विराजमान हैं। श्रीवेङ्कटेश्वर, उनकी दो सहभागिनियाँ उभय-नाच्चारुलु, और *चक्रम*[9] जो मंगलपुरम् के मंदिर का है। यह मंदिर पाकाल-पाल्यम् क्षेत्र में है और इसके सामने दूसरी ओर सेनाधिपति (विश्वक्सेन) वेदी दक्षिण मुखी होकर स्थापित है।

स्नान-मंटप के पास पश्चिम दिशा में *आस्थान-मंटप* है। एक प्राकार दीवार ग्रेनाइट पत्थर की है जो मंदिर की चारदीवारी बनती है। यह 345 फुट पूर्व में, 174 फुट उत्तर में और 13½ फुट ऊँची है और इसके ऊपर 1½ फुट ईंट व मोर्टार का पलस्तर है। इस प्रकार कुल ऊँचाई 15 फुट हो जाती है। पश्चिमी प्राकार दीवार के मध्य में वेदी के सामने एक महाद्वार है। यह पत्थर का बना है और पूर्व में 24 फुट, उत्तर में 30 फुट, ऊँचाई 11 फुट और गेटवे 15 फुट है। इसके ऊपर जो गोपुरम् है, उसकी तीन मंजिलें हैं और ऊँचाई 29 फुट है।

4. *नम्माळ्वार पीठम्* : गोविंदराज मंदिर के बगल में उत्तरी गली में नम्मालवार पीठम् है। यह उत्तर पंक्ति में दक्षिण मुखी होकर स्थित है और पत्थर की बनी है। इसके गर्भगृह में नम्माळ्वार की एक स्थिर मूर्ति है, एक शोभायात्रा मूर्ति है और श्रीनिवासमूर्ति (वेङ्कटेश्वर) की नयनाभिराम मूर्ति है। तिरुप्पानाळ्वार और उनकी नयनाभिराम मूर्तियाँ अर्थात् श्रीकृष्ण, रुक्मिणी और सत्यभामा की मूर्तियाँ हैं। वहाँ की दक्षिण दिशा में *आस्थान* मंटप के साथ *रंगमंटप* है जो 48 फुट पूरब, 63 फुट उत्तर और

---

9. संभव है कि ये मंगलम्पेट के प्रसन्न वेङ्कटेश्वर हों।

- गोपी कृष्ण

10 फुट ऊँचा है। कहा जाता है कि तब इस मंटप में तालुक कार्यालय हुआ करता था। इस इमारत की चारों ओर पत्थर की बनी एक *प्राकार* दीवार है जो 114 फुट पूरब में, 285 फुट उत्तर, 17 फुट ऊँची और 3 फुट मोटी है।

5. गंगई-कोंडान-मंटपम् : यहाँ यह उल्लेख है कि श्रीगोविंदराज स्वामी के लिए रामचंद्रपुरम् स्ट्रीट तिरुपति, में, *गंगुंड्रामंटप* कहा जाता था। इस स्थान का नाम संभवतः भ्रष्ट हो गया है और यह *बिरुद गंगई - कोंडान* राजेन्द्र चोळ् - 1 का बिगडा रूप है। यहाँ उत्सवों में शोभायात्रा के समय कुछ समय के लिए गोविंदराज स्वामी विश्राम करते हैं। कुछ अभिलेखों में आया है कि शहर का उत्तरी हिस्सा जो कोदंड रामस्वामी मंदिर के इर्द-गिर्द था उसे रामचंद्रपुरम् नाम दे दिया गया। इस विवरण से यह प्रतीत होता है कि इस बस्ती की सीमा मंटपम् तक बढ गई थी और उसके पश्चात् इसका नाम *गंगुंड्रामंटपम्* स्ट्रीट (गली) पडा होगा।

6. एक आळ्वार और कृष्ण : यहाँ एक आळ्वार पीठम् का उल्लेख है जो *माल-वाड़ा* के पश्चिम में है और एक अन्य पीठम् है चेन्ना-कृष्णस्वामी की जो *मादिग वाडा* (दो हरिजन बस्तियाँ) के दक्षिण में है।

7. कपिलेश्वर पीठम् : कपिलेश्वर स्वामी पीठम् की जानकारी देते समय उस पीठम् के गर्भगृह की नाप या पैमाइश दी गई है - 6¾ ×7 ¼×7 घन फुट। यहाँ एक स्वयंभू और एक कृत्रिम शिवलिंग की प्रतिष्ठा भी है, जिसको अच्छी प्रकार से सिमेंट से बिठाने की आवश्यकता बताई गई। गर्भगृह के दक्षिण में एक गुप्त कमरा है, इसकी पैमाइश 9×5 ¼×6 घन फुट है और इसमें देवी की शोभयात्रा मूर्ति रखी गई है। इसमें जाने का मार्ग भी देवी के गर्भगृह से होकर ही जाता है जो दक्षिण दिशा में है। किन्तु इसे भारी ग्रेनाइट के पत्थर से और उसके ऊपर कई अन्य छोटे पत्थरों के स्लैबों से ढककर बंद कर दिया गया है। फिर मोर्टार सिमेंट और ईंट से भर दी गई है। इस गुप्त कक्ष से सटा हुआ पश्चिम दिशा में कपिलेश्वर का स्वयं प्रकट *अंकणम्* का स्थान है। इसके नीचे चीटियों द्वारा बनाया गया एक ढूह है जिसकी ऊँचाई तीन फुट होगी और इसके ऊपर लकडी की *कामधेनु* (इच्छापूर्ति करनेवाली पवित्र गाय) गाय और उसका बछडा है। कपिल-महामुनि उनके रक्षक की मुद्रा में उत्तरमुखी होकर वहाँ विरजमान हैं। इसके दक्षिण में कामाक्षी-अम्मा देवी की पीठम् है। उसके सामने *मुख-मंटप* है जिसमें *नंदी* (बैल) कपिलेश्वर की ओर मुख किए हुआ है, उमा-महेश्वर की मूर्ति उत्तर में है और सूर्य नारायण तथा छोटी-सी मूर्ति विनायक (गणेश) की दक्षिण की ओर है। सभी तीनों मूर्तियाँ पश्चिमाभिमुखी हैं। उत्तर के मार्ग में प्रदक्षिणा हेतु चंडिकेश्वर विराजमान हैं। *द्वारपाल, अंकनम्* के बाहर मुस्तैद खडे हैं, इसके उत्तरी कक्ष में दक्षिण मुखी होकर विश्वेश्वर और दक्षिण कक्ष में तीन प्रस्तर प्रतिमाएँ *षन्मुखस्वामी* (गुहा, स्कंध

सुब्रह्मण्यस्वामी, कुमार स्वामी) और उनकी दो देवियाँ वल्ली और देवयाना विराजती हैं। मंटपम् में एक शिवलिंग है जिसमें पानवट्टम (जलहरी) जिससे पानी, दूध और अन्य द्रव्य जो बाहर निकलने की व्यवस्था भी की गई है। पास में ही *नंदी* जी विराजते हैं। इसके पश्चिम में मोर्टार का बना एक ध्व-जस्तंभ है।

मुखमंटप के दक्षिण में *रंगमंटप* है जिसमें दक्षिणामूर्ति की मूर्ति है और एक मूर्ति-चिह्न नाग देवता की उत्तरी दीवार से सटा दिखाई देता है।

पूरब की दिशा में रसोईघर है। इसके दक्षिण में खुले स्थान पर उत्तराभि मुख होकर एक विशाल *नंदी* बैठा है। यहाँ *कालभैरव* भी पश्चिम मुखी हो बैठे हैं। साथ में उनके भक्त सहस्त्रारलिंगेश्वर स्वामी, उनके भक्त गरुवडा; सामने *नंदी,* काशी विश्वेश्वर स्वामी, विघ्नेश्वर और *नंदी* सहित काल भैरव की मूर्तियाँ भी विराजती हैं।

8. वेणुगोपाल स्वामी : कपिल तीर्थ के दक्षिण में एक *मंटप* में वेणुगोपाल स्वामी का पीठम् है। उनकी नाक खंडित है, उनकी एक ओर रुक्मिणी और दूसरी ओर सत्यभामा है और बाहर दो *द्वारपाल* हैं।

9. रंग मंटप और लक्ष्मी नारायण स्वामी : उत्तर दिशा में कपिल तीर्थ में एक रंगमंटप है, जो 6×6 अंकनम् चौका और 50×50×16 घन फुट तथा 49 खंभों वाला है। यहाँ लक्ष्मी से समाहित लक्ष्मीनारायण स्वामी की मूर्ति है। मूर्ति की नाक थोड़ा खंडित है।

10. गुफा में लक्ष्मीनरसिंह स्वामी : कपिल तीर्थ के पश्चिमी कोने की एक गुफा में लक्ष्मी-नरसिंह स्वामी की प्रस्तर प्रतिमा, कुछ खंडित अवस्था में, पूर्वाभिमुख है। गुफा में प्रवेश हेतु सीढियाँ बनी हैं।

11. नम्माळ्वार पीठम् : नम्माळ्वार[10] पीठ, कपिल-तीर्थ के प्रवेश के पास उनकी चल प्रस्तर प्रतिमा है। यहाँ नम्माळ्वार, कूरत्ताळ्वार, भाष्यकार और नाथमुनि आळ्वार तथा श्रीनिवास मूर्ति (वेङ्कटेश्वर) की छोटी-सी प्रस्तर प्रतिमायें हैं; नम्माळ्वार की शोभायात्रा मूर्ति यहाँ से गोविंदराज स्वामी के मंदिर भेज दी गई। कोई दरवाजा न होने के कारण एक बडे पत्थर से इसके प्रवेश द्वार को बंद कर दिया गया है।

---

10. यह परित्यक्त/छोड दी गई पीठम् है और यहाँ मूर्तियाँ नहीं पाई गईं। तिरुपति के समीप पेरुरु बंड़ नाम के एक बडे चट्टान पर श्रीरामानुज का एक खंडित मंटप है।

- गोपी कृष्ण

12. अलिपिरी पादाल मंटपम् और पारुवेट-मंटपम् : यहाँ *अलिपिरि* (अडिपडि - पहाड की पहली सीढ़ी) में भी एक प्रस्तर मंडप का उल्लेख है। यह तिरुमल गिरि पहाडी के सब से नीचे तल पर है। इसमें भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के चरणों को प्रस्तर पर उकेरा गया है। प्रस्तर ग्रेनाईट का है और फर्श पर समतल है। इसलिए इसका नाम *श्रीवारि - पादालु* - मंटपम है। यह एक बडे *गोपुरम्* के दक्षिण दिशा में है (जो बाद में खंडहर हो गया)। यह स्थान *पार्वेट-मंटपम्* तिरुपति, के पूर्व में है और रेणिगुंटा सडक पर लगभग एक मील दूर है।

13. तिरुचानूर का श्रीपद्मावती मंदिर : चिरतानूरु (तिरुचुकनूर, तिरुचानूर) में यह बताया गया है कि यह देवी पद्मावती माँ का मंदिर है। यह पत्थर का बना और पूर्वाभिमुखी है। इसका गर्भगृह 10 फुट पूरब से पश्चिम, 7 फुट उत्तर से दक्षिण और 8 फुट ऊँचा, इसके ऊपर 18 फुट ऊँचा एक विमान है। इसमें *पद्मासन* में विराजमान देवी की मूल मूर्ति शोभायमान है। इनकी शोभायात्रा मूर्ति भी इसी प्रकार सुंदर है। इनकी एक अन्य मूर्ति पलंग पर विराजमान श्रीनिवास मूर्ति की है, एक मूर्ति जो वस्तुतः अळगु, (सुंदर) है वह तिरुवेंगड़स्वामी (वेङ्कटेश्वर) की है जिनके साथ में उनकी दो दिव्य विभूतियाँ श्रीदेवी और भूदेवी हैं। एक स्थान पर आदर के साथ प्रभा के नीचे तिरुमंगै आळ्वार और तीन मूर्तियाँ कृष्णस्वामी, रुक्मिणी और सत्यभामा की हैं। गर्भगृह की *प्रदक्षिणा* में उत्तरी दिशा की ओर एक कक्ष में एम्मेरुमानार (रामनुजम) की एक प्रस्तर मूर्ति है और उनकी शोभायात्रा मूर्ति भी है। दोनों दक्षिण मुखी हैं। दक्षिण दिशा के एक कक्ष में एक मुख्य प्रस्तर प्रतिमा *सेनाधिपति* की है और नम्माळ्वार तथा गरुडाळ्वार (गरुड वाहन) भी। *प्रदक्षिणा मंटप* से लगा हुआ पूरब में आस्थान-मंटप है जो 25 फुट पूरब, 36 फुट उत्तर, 11 फुट ऊँचा है। इसमें एक जीर्ण अश्व वाहन है जिसे तांबे की प्लेटों से जड़कर सुंदर बनाया गया होगा। इसके पूरब में 54 फुट ऊँचाई का *ध्वज - स्तंभ* और पूरब में *बलि पीठ* है, इनके ऊपर लकडी का एक रोड डाल दिया गया है। इसके पूर्व 16 प्रस्तर खंभों का एक *रंगमंटप* है जिसमें 4 फुट के रकबे पर 24×24×8 घन फुट का स्थान है।

14. कृष्ण स्वामी पीठम् : देवी के मंदिर के दक्षिण में एक गज की दूरी पर श्रीकृष्ण स्वामी का मंदिर पीठम् है। यह पत्थर से निर्मित है। इसके गर्भ-गृह की माप 6×6×9 घन फुट है। इस आस्थान-मंटप के ऊपर एक बडा घंटा लटका हुआ है। अंदर सिंहासन पर कृष्ण स्वामी (श्रीकृष्ण) की दो भुजा वाली मूल मूर्ति विद्यमान है। *पद्मासन* में पूर्वाभिमुख की द्विभुजी मूर्ति *बलभद्र स्वामी* की (कृष्ण के बडे भाई बलराम) हैं। *पद्मासन* में ही उत्तर मुखी प्रस्तर प्रतिमाएँ, 3 शोभायात्रा की मूर्तियाँ वेणुगोपालस्वामी (ग्वाले के रूप में वंशी बजाते श्रीकृष्ण), रुक्मिणी, सत्यभामा तथा चक्र (विष्णुभगवान का सुदर्शन चक्र) हैं।

15. अळगु - तिरुवेङ्कटनाथ पीठम् : कृष्ण स्वामी पीठम् के दक्षिण पार्श्व में अळगु तिरुवेङ्कटनाथ स्वामी पीठम् है। वेङ्कटेश्वर की यह सुंदर *प्रस्तर*[11] प्रतिमा है जिसकी *पूजा* नहीं की जाती है। लेकिन इसके पीठम् की स्थिति ठीक है। इसका सिंहासन 7×7×9 घन फुट है। यहाँ मुख्य मूर्ति अळगु-तिरुवेंगलनाथ स्वामी की है। इसमें एक *प्रदक्षिणा* भी उपलब्ध कराई गई है। साथ में पूरब में एक *आस्थान मंटप* है, आगे पूरब में एक *रंगमंटप* जिसमें पूर्वान्त में *गरुड* की एक वेदी स्थित है।

कृष्णस्वामी पीठम् के सामने *महाद्वार-मंटप* है। वह पत्थर का बना है जिसमें ऊपर इंटों का और मोर्टार की एक[12] जीर्ण-शीर्ण मीनार है। यह 13 फुट पूरब में, 24 फुट उत्तर में है। यह 15 फुट ऊँचा है। इसमें पत्थर की चौखट लगी है जिसमें लकडी के दरवाजे और मामूली मीनार ईंटों और मोर्टार की बनी है।

मंदिर के समस्त *प्राकार* दीवार, पूरब में 210 फुट, उत्तर में 156 फुट का है और इसकी ऊँचाई 11 फुट है। यह भी ईंटों और मोर्टार से बनी है। आजकल यह छोटे ग्रेनाइट के पत्थरों की कुछ ऊँचाई तक ही बनी दिखाई देती है।

पद्म-सरसु के बीच में *निराली-मंटप* है। 'तै' (जनवरी) मास में कारवेटी नगर के *जमींदार* तालाब में *तेप्पोत्सवम्* (प्लवोत्सव) किया करते थे। मंटपम् के नीचे का भाग 7 फुट गहरा है जहाँ जल भरा जाता था और इस ऊपरी फर्श पर बने मंटप की पैमाईश 12×12×10 घन फुट है जिसमें 10 फुट ऊँचाई के *विमानम्* को आधार देने के लिए 4 स्तंभ बने हैं।

सरस्सु (तालाब) के पूर्वी किनारे पर *तीर्थ-वारी मंटप* है जिसमें देवी की प्रतिमा उनके वार्षिक उत्सव के 9 वें दिन बिठायी जाती है। यह तमिल माह *कार्तिकी* में होता है जब स्नान और *तीर्थवारी* दिया जाता है।

16. सूर्य नारायणस्वामी और वेङ्कटेश्वर : तालाब के पूरब में चतुर्भुज सूर्य नारायण स्वामी एवं वेङ्कटेश्वर की पश्चिम मुखी पीठम् हैं। पिछली पीठम् 39×24×12 घन फुट है और इसमें 24 खंभें हैं। यह अब भी अच्छी स्थिति में है। यह वह स्थान माना जाता है जहाँ लक्ष्मी के त्याग दिए जाने पर *श्रीवारु* (वेङ्कटेश्वर) ने *तप* किया था और लक्ष्मी को पुनः प्राप्त किया था।

17. वरदराजस्वामी : गाँव के पूरब दिशा में वरदराज स्वमी का एक बडा मंदिर स्थित रहा था जिसका मुख पश्चिम की ओर है। यहाँ की विशाल मूर्ति की *पूजा* भी नहीं होती। यहाँ देवी पेरुंदेवम्मा

---

11. यहाँ श्री सुंदरराजस्वामी की पूजा की जाती है। देखिए पृ. सं. 108

12. जीर्णोद्धरण के उपरांत, आज उसकी स्थिति बहुत अच्छी है।

- गोपी कृष्ण

की पीठम् है जो पूरब में है। इसके रसोई के लिए प्रयुक्त पत्थर देवी पद्मावती के मंदिर निर्माण के लिए प्रयोग किए गए थे।

कैंकर्य पट्टी

दो *कैंकर्य-पट्टी* तैयार की गई - एक फसली 1211 (1801ई.) में और दूसरी फ़सली 1230 (1820 ई.) में। पहले वाली में अर्थात् फसली 1211में प्रत्येक सेवादार के द्वारा दिए गए बयान *(कैफियत)* दर्ज की गई थी, जैसे कि किस प्रकार की सेवा उसने की, उसको कितना नकद वेतन और कितनी अन्य आमदनी हुई, भूमि और अन्य गाँव इत्यादि जो उसके अधिकार में हैं या अन्य संबंधित विवरण। यह उन चार *अर्चकों* के परिवार, दो *जीयंगार* और चार *एकांगी,* सरकार *अर्चक* - श्रीराम मंदिर के *अर्चक, आचार्य पुरुषों* के सात परिवार, *बोक्कसम सभा* के लोग, ताल्लपाक परिवार, *गोल्ल-चारवाकार, पल्ले-चारवाकार,* महंत जानकीदास, दयाराम महंत *बलकीराम मठ,* तिरुपति और मंगापुरम् के *करणम्,* करकमबाडी पालेगार, कृष्णापुरम् पालेगार और मामंडूर पालेगार हैं। गाँव और भूमि की आय के अतिरिक्त, मंदिर सेवा में लगे वंशानुगत क्रम से कार्यरत *अर्चक* जो *ताल्लपाक* परिवार से कुछ प्राप्ति और *प्रसादम्* लेते थे, *जीयंगार* और आचार्य पुरुष वर्ग वैष्णव अतिथियों को भोजन और अन्य भेंट देते थे जब कोई उत्सव होता था और वे मंदिरों तथा *आळ्वार* पीठों में विशेष अवसरों पर *उभयम्* भी प्रदान करते थे। वे विद्यार्थियों को पढाया भी करते थे और इन सबको वे अपने नित्य कार्यों से अतिरिक्त करना होता था। उन्हें प्रतिदिन प्रातः काल वेङ्कटेश्वर एवं गोविंदराज के मंदिरों में आकर *प्रबंधम्* का पठन करना होता था। *बोक्कसम-सभा* के लोगों के बारे में ऐसा कुछ उल्लेख नहीं कि उनके पास कोई भूमि या अपने गाँव थे।

मंदिर में नकद वेतन पाने वाले कर्मचारियों में *उत्तर-पारुपत्यदार* और 17 अन्य कर्मचारी भी थे। किन्तु दोनों ही पट्टियों में *पारुपत्यदारों* का कोई उल्लेख नहीं है।

कैंकर्य-पट्टी, फ़सली 1230 में *कैंकर्य* (सेवाओं) अर्थात् कई लोगों के सेवाकार्य मात्र का उल्लेख है, किन्तु उनकी भूमि और गाँव तथा वेतन-भत्तों एवं अन्य प्राप्तियों का कोई उल्लेख नहीं है।

तिरुपति में कपिलेश्वर मंदिर तक चौकीदारी करते हुए जाना तीन पालेगारों को होता था। उन्हें तिरुपति के विभिन्न मार्गों पर गार्ड-पोस्ट अर्थात् सुरक्षा-चौकी भी स्थापित करनी होती थी। मंदिर में आनेवाले यात्रियों की सुरक्षा के साथ ही उनके द्वारा लाए गए *कानुक* (भेंट) की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी उनकी थी।

एक इश्तहार में किसी ए. सा - रामाचार्युलु ने अंकित किया है कि मेजर मुन्रो, मद्रास के गवर्नर, वेङ्कटेश्वर के दर्शन हेतु एक दिन तिरुपति आए, वे रात को यहाँ ठहरे भी थे क्योंकि वे प्रातः काल को

तिरुमल जाना चाहते थे। उस रात्रि को श्रीवेङ्कटेश्वर उसके सपने में आए। वे उन *आचार्यपुरुषों* में से एक आचार्यपुरुष के भेस में थे। उन्होंने मेजर मुन्रो को यह सलाह दी कि वे ऊपर दर्शन के लिए न जाए और मद्रास लौट जाए क्योंकि वे हिन्दू नहीं थे। आदेशानुसार वे मद्रास लौट गए। यह मुन्रो का वेङ्कटेश्वर में विश्वास को दिखाता है। बाद में उन्होंने भगवान पर भोग प्रदान किया और कुछ भूमि भी दान में दी। यह भेंट प्रातः *पूजा* के बाद पहली घंटी के समय अब भी दी जाती है।

उपरोक्त प्रश्नोत्तरी सरीखे इश्तहार के प्रश्न सं. 20 में यह उल्लेख है कि 432 गाँवों को तिरुपति के आसपास के श्रेत्रों में राजाओं और अन्य धनी लोगों ने इसके निमित्त दान कर दिया था जिससे दिन में कुल 60 बार भोजन-भोग लगाया जा सके। तिरुपति तालुक के इर्द गिर्द जो मंदिर के कार्यकर्ता और वार्डन थे, उन्हें भी लगभग 170 गाँवों का दान मिला हुआ था। बचे हुए 250 के लगभग गाँवों को ही चित्तूर एवं कडपा जिलों के विभिन्न तालुकों के गठन में लगाया गया होगा। इन 432 गाँवों के अतिरिक्त, दर्जनों गाँव के राजाओं, सरदारों, श्रेष्ठियों और अन्य दान दाताओं ने 1565 ई. के तालिकोटा युद्ध के समय तक दान में दिए होंगे और ये गाँव दक्षिण भारत में ट्रावनकोर तक फैले थे और बाद में ये बीजापुर के और गोलकोंडा के सुल्तानों के द्वारा विभिन्न समयों में जीत कर अपने राज्यों में मिला लिए गए। फिर इनको आर्कोट के कर्नाटकी नवाबों ने हस्तगत किया और अंततोगत्वा अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी ने बिना समय गँवाए, तुरंत इन्हें या तो हस्तगत किया होगा या उनसे इन्हें दे दिया गया होगा। तब तक *ईनाम* व सहायता अनुदान के रूप में दी जाने वाली भूमि की सीमा पर लगने वाला *सुदर्शन चक्र* आदर्शनीय हो गया होगा और तब इसे दक्षिणी जिलों के विभिन्न तालुकों का अंग बना लिया गया होगा। इसका परिणाम यह हुआ कि भगवान को 60 बार भोग लगाने के स्थान पर 3 बार ही भोग लगाया जाने लगा और वह भी मात्रा में कम कर दिया गया। तीन बार अर्थात् एक बार पूर्वाह्न को, दूसरी बार दोपहर में और तीसरी बार रात में। यह भी दिट्टम या राशन की मात्रा के निर्धारण के अनुसार होता था।

यह भी यहाँ उल्लेखनीय है कि 1786 ई में ही आर्कोट के नवाब द्वारा इंग्लिश कंपनी को *कानुक* और *आर्जितम्* से प्राप्त आमदनी अर्पित कर दी गई थी और कंपनी ने इसे अपने मातहतों या बटाईदारों को देकर इससे प्राप्त राजस्व का भोग 1843 ई. तक किया।

* * *

अध्याय - 25

ब्रिटिश द्वारा मंदिर प्रशासन का महंतो को हस्तांतरण करते हुए इसे त्यागना और फलस्वरूप समृद्धि होना

अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के इंग्लैंड में बैठे कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स को इस बात पर सख्त आपत्ति थी कि कंपनी के अधिकारी और लोग हिन्दू मंदिरों के प्रबंधन के बहाने इन धार्मिक संस्थाओं में जाकर मूर्ति पूजा में योगदान दें, किन्तु दिखावे के लिए कि वे लोगों की भावनाओं को आहत नहीं करना चाहते और इसलिए वे इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहते। उन्होंने अपने प्रबंधन को छोडने का एक आदेश पारित किया। यह आदेश 1842-43 ई. से लागू हुआ। ये रानी विक्टोरिया के शासन काल के प्रारंभिक दिन थे।

इसके अनुसार श्रीवेङ्कटेश्वर के मंदिर के साथ ही अन्य अनेक संबंधित मंदिर जैसे श्रीगोविंदराज मंदिर, श्रीकोदंडराम मंदिर और श्रीकपिलेश्वर के तरुपति में स्थित मंदिर और श्रीपद्मावती का तिरुचानूर का मंदिर सितम्बर 1843 ई. को तिरुपति के श्रीहाथीराम जी मठ के महंत श्रीसेवादास जी के संरक्षण में दे दिया गया। इन्हें मंदिर के *विचारकर्ता* (प्रशासक) के रूप में नियुक्त किया गया। यह दिनांक 21-4-1843 में एक मुच्चिलका (समझौता) के आधार पर हुआ। उन्हें इन मंदिरों का प्रबंधन अपने वंशानुगत-शिष्यों से कराना था किन्तु प्रबंधन के लिए कोई राशि नहीं दी गई थी या नियमित पूजा अर्चना के लिए कोई धन नहीं दिया जा रहा था। इसके लिए जब जोरदार माँग की गई, तब रु.5000 राशि इस कार्य के लिए दी गई थी।

यह विश्वास किया जाता था कि 1843 ई. तक जो वार्षिक राजस्व मंदिर के द्वारा कंपनी को प्राप्त होता था इसमें खेती-बाडी की आय का बकाया ही 40 लाख से अधिक रुपए था। नेल्लूर के एक वकील श्री ए.एस. कृष्णा राव जो मद्रास विधानसभा के सदस्य थे, ने बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों के विधान सभा में यह प्रश्न कई बार उठाया कि यह रकम तिरुपति देवस्थानम् को क्यों नहीं दी जाए? मद्रास सरकार ने इसके लिए कुछ अजीब से उत्तर दिए और फिर अंत में इसके संबंध में किसी धन या लेखा की मौजूदगी को इंकार ही कर दिया।

1843 ई. से 1933 ई. तक महंतों की छः पीढ़ियों ने देवस्थानम् पर *विचारणकर्ता* के रूप में आधिपत्य जमाए रखा। मंदिर अभिलेखों में इनमें से तीन के द्वारा की गई सेवाओं का उल्लेख है। पहले *महंत, विचारणकर्त्ता* सेवादास ने स्वामी पुष्करिणी का जीर्णोद्धार करवाकर इसमें दो मुख्य तालाब जोडे- *श्रीवराहतीर्थ* और *श्रीनिवास तीर्थ* जिसमें *मार्कंडेय, अग्नि, यम,* (मृत्यु के देवता या अगस्त्य ऋषि)

वशिष्ठ, (ऋषि) वरुण, (वर्षा के देवता) वायु (हवा के देवता), कुबेर (संपदा के देवता), गालव (ऋषि) और सरस्वती तीर्थ अर्थात् कुल 9 तीर्थ (पवित्र सरोवर) चक्र वर्ष सौम्य, शक संवत् 1771 में बृहस्पतिवार 31 अगस्त 1849 ई. को जोडे (सं.130, खंड VI, अंग-I)। उन्होंने प्लवोत्सव को भी पुनः आरंभ कराया जो श्रीनिवास (वेङ्कटेश्वर) और श्रीअलमेलमंगा (पद्मावती, लक्ष्मी) को एक साथ होता था। इसका अभिलेख संस्कृत गद्य में लिखा गया है, किन्तु लिपि तेलुगु है और इसकी प्रति लिपि सं. 131 में देवनागरी में उपलब्ध है।

अगले *विचारणकर्ता,* श्रीमहंत धर्मदास, महंत सेवादास के शिष्य ने कपिलतीर्थ की सीढियों और इसके पूर्वी मंटप का शक 1787 रक्ताक्षी, दिनांक 10-2-1865 ई. (संख्या 133) ने पुनरुद्धार कराया। इसका उल्लेख तेलुगु सीसमालिका छंद में संख्या 134 में रिकार्ड है और श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर के बाहरी प्रवेश द्वार के *गोपुरम्* में अंकित है। इसे *पडिकावली* (कार्यरत रक्षक) *गोपुरम्* कहा जाता है। इसके साथ ही कुछ अन्य मंदिर भी हैं जो चक्र वर्ष *बहुधान्य* में 11-9-1878 ई. को स्थापित किये गये थे।

छठवें और अंतिम विचारणकर्त्ता श्रीमहंत प्रयागदास ने कपिलतीर्थ का जीर्णोद्धार कराया। उनके भाई शिष्य राम-लक्ष्मणदास ने सोने का कलष श्रीवेङ्कटेश्वर के गर्भगृह के ऊपर *कलियुग* वर्ष 5010 में लगवाया, यह चक्र वर्ष *कीलक* में 30-9-1908 ई. को हुआ (संख्या 135)।

भिन्न भिन्न महंतों विचारणकत्ताओं से प्रस्तुत की गई सेवाओं का गोपालाचार्लु द्वारा विवरण

तिरुपति के स्वर्गीय श्री एम.पी. गोपालाचारियर, जो नल्ला-गोपालाचार्लु के नाम से प्रसिद्ध थे और जो देवस्थानम् के एक पेंशनकर्ता थे, ने क्रमांक से *विचारणकर्त्ताओं* के द्वारा की गई सेवाओं की एक सूची बनाई।

उन्होंने प्रथम *विचारणकर्त्ता* श्रीमहंत सेवादास की कैंकर्यों (सेवाओं) का उल्लेख करते हुए बताया कि उन्होंने एक स्वण *पीतांबरम्* (कवच) चरणों तक प्रदान किया, उसके साथ एक स्वर्ण यज्ञोपवीतम् (पवित्रधागा), एक स्वर्ण पद्म - पीठम् (कमल की पंखुडियों के आकार की वेदी), अमूल्यरत्न जडित कर्णाभूषण, *नागाभरणम्* (नाग के फण के समान बना भुज बंध), मुकुट के नीचे बांधे जाने वालीं हीरों की प्लेट, ये सब श्रीवेङ्कटेश्वर की मुख्य मूल मूर्ति के उपयोग के लिए थीं; एक *वैरमुडी* (सिर पर पहनने का गोलाकार आभूषण) मोतियों से बना आभूषण श्रीवेङ्कटेश्वर की शोभा यात्रा के लिए था और एक मोती - मुकुट जिसमें चांदी की प्रस्तर थी वे हाथों और टांगों को ढ़कने के लिए था और एक *राजमुडी* (बंधे हुए बालों को ढकने के लिए आभूषण) मोतीवाली आभूषण भगवान वेङ्कटेश की दोनों सहभागिनियों के लिए, एक लैटिस-टिस का दरवाजा जिस पर चांदी का प्रस्तर चढाया गया, यह दरवाजा *कुलशेखर*

पडी कहा जाता है और यह पद्मपीठ के निकट है। इसमें चाँदी की चार जंजीरें भगवान के बिस्तर और शेरशीर्षवाले सिंहासन के ऊपर चांदी का प्रस्तर शोभायात्रा में मूर्तियाँ ले जाने के लिए, *मुक्कोटि प्रदक्षिणम्* और अंतःपुर को ठीक कराया और शोभायात्रा मूर्तियों को *वज्र कवचम्* (हीरा जडित स्वर्णाभूषण) मुक्कोटि एकादशी के दिन भेंट किया, किन्तु बाद में इस स्थान पर पूजा बंद करा दी गई, क्योंकि आने जाने का रास्ता संकरा होने के कारण भगदड़ होने का भय था। उन्होंने स्वामी पुष्करिणी की मरम्मत कराई और एक जमींदोज नाले से *पात-कोनेरु* (पश्चिम में स्थित अच्युतराय का सरोवर) सरोवर से जल की अबाध आपूर्ति कराई। *मकर तोरणम्* वाली चाँदी के प्रस्तर वाली *तिरुच्ची* बनवाई, महाशेष वाहन को तैयार कराया, ब्रह्मा के लिए नया रथ और एक और रथ तिरुमल के लिए बनवाया, तिरुपति के गोविंदराज के मंदिर के पूर्व में बडे *गोपुरम्* के पास दक्षिण में टूट फूट की मरम्मत कराई। तिरुचानूर में उन्होंने देवी का *मुखमंटपम्* बनवाया और उनके हाथों में चाँदी का प्रस्तर लगवाया।

श्रीमहंत सेवादास के शिष्य श्रीमहंत धर्मदास ने विचारणकर्त्ता का पदभार 1864 ई. में संभाला। उन्होंने स्वर्ण *किरीट,* हाथों के लिए प्रस्तर, चरणों के लिए स्वर्ण मुद्राओं की दो नेकलेस (शाणारकासुलु), एक बडी *मकर कंठि* बनवाकर खजाने में सुरक्षित रखा, इसमें स्वर्ण में अनेक हीरे जवाहरात जडवाए गए थे और तब के हिसाब से इसकी कीमत 2 लाख रुपए थी। एक गोलाकार गहना जिसमें हीरे, मानिक और हथेली के आकार का, रत्न का एक किरीट (मुकुट) बनवाया और दरवाजे की चौखटों और लकडी के दरवाजों पर दशावतार की मूर्तियाँ ताँबे की प्लेटों पर उकेरकर लगवाई गईं। इसलिए इसे *बंगारु-वाकिली* कहते हैं।

शोभायात्रा मलयप्पस्वामी के लिए, उन्होंने कल्कि - तुराई (जिसको मुकुटिका में जड़ा गया था) फिर से बनवाई जो राघोजी भोंसले द्वारा दिए गए अनेक जवाहरातों में था। अनेक मोतियों को खजाने से निकलवाकर उन्हें सोने के तारों में पिरोवाया और उनमें हीरे - जवाहरातों का पुच्छ लगवाकर रखा गया जो मुप्पनारु रानी ने भेंट किया था। एक यहाँ स्वर्ण-प्रस्तर युक्त *मकर-तोरणम्* बनवाया जिसमें दोनों ओर *गंधर्वों* को उकेरा गया था। सोने से मंढवाया गया एक *सर्वभूपाल* वाहन, चांदी से मंढवाया गया *सूर्यप्रभा वाहन, छोटा तथा बडा गरुड वाहन,* हनुमंत वाहन, अश्ववाहन और *कल्पवृक्ष वाहन* सभी चांदी की प्लेटों से बहुत सुंदरता से मंढवाए गए थे।

उन्होंने हजार खंभों वाले *मंटप* का जीर्णोद्धार करवाया और इसे तीर्थ यात्रियों के लिए धर्मशाला में परिवर्तित किया। दो *गोपुरम्* और *प्राकार* की चार दीवारी का कुछ अंश और तिरुमल के कुछ मंटपों की मरम्मत भी करवाई। *कल्याण मंटप* की *यज्ञशाला* की मरम्मत करवाते समय, यह कहा जाता है कि पाँच छोटे बंद बर्तन पाए गए जिनमें सोने के सिक्के भरे हुए थे। ये सिक्के सम्राट वेङ्कटपति, गजपति

(उडीसा का शासक) से संबंधित थे। उमा-महेश्वर (पार्वती और शिव के चित्र अंकित थे), *गंडभेरुंडा* (बाज का चित्र अंकित), *इक्केरी - वरहालु* (दक्षिण कनरा की स्वर्ण मुद्राएँ) और *शांणार-कासुलु* आदि की तत्कालीन कीमत लगभग 2 लाख रुपए होगी। सरकार ने आकर उन्हें अपने अधिकार में ले लिया और खजाने में जमा करके जिला कोर्ट में रखा। *वैखानस-आगम-शास्त्र* (वैखानस पूजा पद्धति के रीति रिवाज के अनुसार) के अधिकार को प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करके ये पाँचों पात्र (बर्तन) देवस्थानम् लाए गए और बाद में खजाने में रखे गए।

तिरुपति में उन्होंने गर्भगृह (जडी बंधनम्) के सिंहासन को ठीक कराया। गोविंदराज की प्रतिमा को मजबूती से फिर स्थापित कराया। गोविंदराज के लिए सोने के कर्ण-फूल बनवाए और उनकी दो सहधर्मिणियों के लिए भी सोने के मुकुट बनवाए। शाला-नांचारु से पत्थर चक्की हटवाई, भाष्यकार की पीठम् तक बने चौकीदार के मुख्य द्वार के आवास पर *मंटपम्* बनाया, एक नई पीठम् कूरुत्ताळ्वार के लिए बनवाई, एक मूर्ति *भट्टार* की बनवाकर स्थापित की और *वाहन* रखने के लिए एक नया स्थान उत्तर की पुष्पवाटिका के बदले बनवाया गया। उन्होंने बडे और छोटे कई *शेष वाहन, गरुड वाहन, हनुमंत वाहन, हंस वाहन, अश्ववाहन* और *भोगी तेरु* (वाहन जो गोविंदराज और अंडाल को लेकर *भोगी* त्यौहार के समय जनवरी में शोभा यात्रा निकाली जाती थी) के लिए वाहन बनवाए या मरम्मत कराई। तिरुपति के श्रीराम मंदिर में तीन मुख्य प्रतिमाओं के लिए जड़ी-बंधनम् (मजबूती से स्थापित कराना) करने का कार्य किया। ध्वज स्तंभ को नक्काशीदार गोल प्लेटों से लगवाया गया। श्रीराम, सीतम्मा और लक्ष्मणस्वामी और सेनाधिपति के लिए चाँदी के कामदार किरीट (मुकुट) बनवाए गए। साथ ही राम और लक्ष्मण के लिए *धनुष - बाण* और एक बडा चाँदी का धनुष भगवान राम की प्रमुख प्रतिमा हेतु बनवाया गया। उन्होंने वहाँ पत्थर का एक *मंटपम्* भी बनवाया और सुरक्षा-द्वार के पीछे रथ के बगल में दूसरा मंटप बनवाया।

आळ्वार तीर्थम् (कपिलतीर्थम्) में उन्होंने दोनों ओर के मंटपों की मरम्मत करवाई, *वेणुगोपाल स्वामी मंटपम्, लक्ष्मी-नारायणस्वामी* के सामने का मंटपम्, पश्चिमी किनारे पर स्थित गुफा में *नरसिंहस्वामी* का मंटपम् और कपिलेश्वर मंदिर का जीर्ण-शीर्ण भाग इन सबका जीर्णोद्धार कराया।

तिरुचानूर में उन्होंने एक *प्राकारम्* और एक *गोपुरम्* बनवाया। पुष्करिणी की खुदवाई व निर्माण कराया और शुक्रवार उपवन में स्थित *मंटपम्* तथा कुएँ को ठीक कराया। देवी पद्मावती की प्रतिमा के लिए *जड़ी-बंधनम्* करवाया और उनके लिए जवाहरातों का एक स्वर्ण जडित किरीटम् (मुकुट) पुच्छ मुकुट बनवाया। इसमें छोटी-छोटी सोने की घंटियाँ देवी की केश राशि की शोभा बढाने के लिए बनवाए और कई अन्य गहने बनवाए। देवी के हाथों के लिए स्वर्ण प्रस्तर बनवाए जिसमें सोने के कमल बने

थे। उन्होंने एक नया वाहन बनवाया, रसोई घर बनवाया और पश्चिम की ओर कुछ कमरे बनवाए। *वाहन मंटपम्* और सूर्यनारायण पीठम् बनवाकर वहाँ उन्हें स्थापित कराया।

श्रीमहंत धर्मदास के पश्चात् उनके शिष्य श्रीमहंत भगवानदास सन् 1880 में *विचारणकर्ता* बने।

तिरुमल में उन्होंने *ध्वजस्तंभ,* कुछ *मंटपों* की मरम्मत कराई और कुछ आभूषण भी बनवाए। तिरुपति कार्यालय से लेकर तिरुमल मंदिर तक टेलिफोन लाइन बिछवाये गए। ताजे पानी की टैंक की मरम्मत कराई और गलियों के भीतर तक जल को ले जाने के लिए जमीन में पानी के पाइप बिछवाने का कार्य प्रारंभ कराया और टैंक के दक्षिण में एक सुंदर *बंगला* गवर्नर व उच्चाधिकारियों के आवास हेतु बनवाया।

तिरुपति में उन्होंने *पुष्प-तोट* (पुष्प वाटिका) में कमरे बनवाए, हाई स्कूल की इमारत बनवाई, *संस्कृत-पाठशाला बनवाई* और तीर्थयात्रियों में *प्रसादम्* बंटवाने की सुव्यवस्था की।

उन्होंने कुछ लाख रुपए की कर्ज, उस धन के अतिरक्ति जो उनके *गुरु* धर्मदास ने दिया था, कारवेटि नगर जमींदारी के राजा (मुखिया) को तिरुत्तनी तालुक को रेहन रखकर दिया और कुछ धन श्रीकालहस्ती के *राजा* को भी काचिनाड तालुक को गिरवी रखवाकर दिया।

तिरुपति में उन्होंने एक *मकर तोरणम्* श्रीराम की शोभायात्रा मूर्ति हेतु बनवाया और स्वर्ण तथा हीरा जडित दो बाजू बंद (बाजि-बंधु) करवाकर भेंट किए। साथ ही *कल्कि-तुराई,* जवाहरात जडी एक पेटी, एक *मकर-कंठी,* दो जवाहराती एक जवाहराती खखडी (बालों को पीछे कर उसमें लगाने का हेयर-बैंड), और दो सोने की *मोहरों* वाली मालाएँ तिरुपति और तिरुचानूर के खजाने में देवी के लिए जमा कराया।

उन्होंने चाँदी की प्लेटें लगवाकर एक सूर्यप्रभावाहन और एक *सर्व-भूपाल वाहन* तिरुपति में बनवाया।

तिरुचानूर में उन्होंने *ध्वज स्तंभ* के चारों तरफ़ मंटप बनवाए, सुंदर राज स्वामी की पीठम्, और *नीराली मंटप* विमान के साथ जिसमें एक *कलश* था और *तेप्पोत्सवम्* (प्लवोत्सव) का उद्घाटन किया।

श्रीमहन्त महाबीरुदास, श्रीमहन्त भगवानदास के वंशज व शिष्य सन् 1890 से सन् 1894 तक रहे पर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया।

उनके पश्चात् श्रीमहन्त रामकिशोरदास ने 1895 ई. में देवस्थानम् की व्यवस्था संभाली। उन्होंने एक हीरे जवाहरातों से जडा शंख और एक चक्र वेङ्कटेश्वर की शोभायात्रा मूर्ति के लिए बनवाया और

उनकी दोनों देवेरियों के लिए दो तगडियाँ और दस्तबंद बनवाए और स्वर्ण प्रस्तर युक्त पाजेब तथा छोटी छोटी घंटियों वाले घुंघरु उन्होंने तिरुपति में स्थित आंडाळ् या गोदादेवी के लिए बनवाए।

श्रीरामकिशोरदास के तीन शिष्य थे - प्रयाग दास, रामलक्ष्मणदास, मूलरामानुजदास और इन तीनों में से प्रयागदास को सन् 1900 में उनका उत्तराधिकारी चुना गया।

श्रीमंहत प्रयागदास ने नीराली-मंटप को फिर से बनवाया। स्वामी-पुष्करिणी के उत्तर-पश्चिमी किनारे पर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पडी श्रीवराह स्वामी की पीठम् का पुनः निर्माण कराया और मूर्ति को पुनः स्थापित कराया। *आईना-महल* (दर्पण-महल) श्रीवेङ्कटेश्वर के मंदिर में उत्तरी प्रवेश के स्थान पर बारह वर्ष तक वहाँ रहने के बाद उन्होंने एक नया वाहन बनवाया, *हंस वाहन* और *गरुड वाहन* को ठीक करवाया, *गोपुरम्* की मरम्मत कराई, कुछ *मंटपों* को बनाया। वेङ्कटेश्वर मंदिर की *संपंगि-प्रदक्षिणा* के फर्श को ठीक कराया। नई चाँदी की तिरिच्ची बनवाई, यात्रियों के आराम के लिए सत्रम् (धर्मशालाएँ) बनवाए, एक दवा खाना खोला, मंदिर के *द्वारपालकों* को और भी सजाया - धजाया और उन्हें चाँदी के पतरों से युक्त किया। श्रीपद्मावती की एक छोटी - सी सोने की मूर्ति गढवाई और इसे श्रीवेङ्कटेश्वर के हृदय के पास प्रस्तुत किया। *शंख* और *चक्र* को स्वर्ण-प्लेट से युक्त किया और इसमें दो हाथ अतिरिक्त लगवाए। श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के हाथों के लिए भी इसी प्रकार स्वर्ण प्रस्तर बनवाकर लगवाए।

तिरुपति में, गोविंदराज की मूल मूर्ति और उनकी देवेरियों की मूर्तियों के लिए उन्होंने चाँदी की प्लेट के प्रस्तर बनवाये। उनकी शोभायात्रा मूर्तियों के लिए जवाहरात का एक स्वर्ण पतकम् (पुच्छ) और कानों के कर्णफूल, सूडिकोडुत्तु-नांचारु के लिए एक जवाहरात की तगडी और सोवरिनों की चैन बनवाई। उन्होंने सिंहवाहन बनवाया, गजवाहन बनवाया और *मकरतोरण* भी बनवाया। तीनों पर चाँदी की प्लेट भी जडवाई गई थी, दो बार *जाडी-बंधनम्* गोविंदराज की मूल मूर्ति के लिए करवाया और सिंहासन के पास का फर्श साफ करवाया, *मुख मंटपम्, कल्याणमंटप,* रास्ता बाहरी और चौकी-गेट तक जाने वाले को ग्रेनाइट पत्थर से मरम्मत कराया। गर्भगृह पर एक नया *विमानम्* बनवाया और इस पर गुंबदी *कलश* लगवाया, देवस्थानम् कार्यालय इमारत और कोशागार में एक तिजोरी लगवाई तथा पुरानी बडी बडी ग्रानरी *मंटप* को कार्यालय की सुविधा के लिए छोटे - छोटे हिस्सों में बँटवाया जिससे किसी में रिकार्ड रखे जा सके और वो अन्य कार्यों में सुविधापूर्वक प्रयोग किए जा सकें।

तिरुपति के श्रीराम मंदिर में, उन्होंने श्रीराम के चाँदी के *कवच* की मरम्मत कराई और सीतम्मा तथा लक्ष्मण के लिए नए नए चांदी के *कवच* बनवाए। मूर्तियों के लिए स्वर्ण दस्त बंद और चरणों के

लिए भी ऐसे ही सुनहरे प्रस्तर, सोने का धनुष जिसमें छोटी छोटी घंटियाँ लगी थीं और तीर और कुछ गहने शोभायात्रा मूर्तियों के लिए और गर्भगृह तथा *प्रदक्षिणा* के बाहरी दरवाजे तक ग्रेनाइट पत्थर बिछवाए।

तिरुचानूर में उन्होंने देवी पद्मावती के आसन पर *विमानम्* बनवाया उसके ऊपर *कलश* चढाया, श्रीसुंदरराजस्वामी की मूर्ति स्थापित कराई। देवी को एक स्वर्ण *मुकुट* बनाकर रखवाया, चाँदी की प्रभा (गर्तिका), एक किरीट सुंदुरराजस्वामी के लिए बनवाया, एक दस्तबंद, कुछ जवाहरात, एक हीरों से जडा *कर्णपत्रालु* (कानों को ढकने के लिए) देवी की शोभायात्रा मूर्तियों के लिए, वेङ्कटेश्वर के लिए कर्ण-फूल का जोडा; उनके स्थान से लेकर बाहर तक ग्रेनाइट के पत्थर बिछवाए। प्रस्तर युक्त *ध्वज-स्तंभ* लगवाए और यात्रियों के आवास के लिए कई सत्रम् (धर्मशालाएँ) व कमरे बनवाए और *तेप्पोत्सवम्* (प्लवोत्सव) का उद्घाटन किया।

तिरुमल के नीचे कपिलेश्वर के मंदिर में, उन्होंने *कुंभाभिषेकम्* (बडे बडे बर्तनों से पानी का अभिषेक) के साथ कपिलेश्वर स्वामी की मूर्ति पुनः स्थापित कराई। स्वर्ण *किरीट, हस्त कमल, चरण पाजेब* और कुछ अन्य आभूषण देवी-देवताओं की शोभायात्रा की मूर्तियों के लिए और *नंदी* वाहन के लिए चांदी का-परता और मूर्तियों के लिए प्लवोत्सव का प्रारंभ कराया।

उन्होंने पूर्वी रेलवे स्टेशन के पास यात्रियों की सुविधा के लिए बडा सत्रम् (धर्मशाला) तिरुपति में बनवाया।

उन्होंने देवस्थानम् के पाँच लाख रुपए बोंबे विकास लोन में लगाए और इससे 54,500 रु. का वार्षिक ब्याज प्राप्त हुआ। 1920 के लगभग उन्होंने पी.ओ.आर.आर एण्ड सन्स, मद्रास से एक जडशाङू खरीदा। इसमें *कुच्चलु* (चुन्नटदार बाल और साथ में सिल्क के तीन पुच्छ थे)। इसमें सोने के गोलाकार सिक्कों में हीरे, मानिक (रुबी) और नीलम (सफायर) जैसे रत्नजडे थे। इसकी कीमत उस समय 14,000 रुपए थी। यह वेङ्कटेश्वर मंदिर में मलयप्पा की दो नाच्चिमारों में से एक को सजाने के लिए था। यह गोविंदराज की देवेरियों को उत्सव के समय उनकी शोभायात्रा में सजाने के लिए मद्रास से मंगाई गई थीं। इसे 'मैं' लाया था।

सन् 1930 के प्रारंभ में सिंहासनारुढ़ एवं धनी विधवा रानी गद्वाल संस्थानम् ने कुछ परिमाण के, स्वर्णाभूषण और नकदी भेंट की और इनमें अनेक कीमती पत्थर और जवाहरात जडे थे। श्रीमहंत[1]

---

1. श्रीमहन्त प्रयागदास ति.ति.दे. अभिलेखों के एकत्रीकरण एवं प्रकाशन के लिए उत्तरदायी थे और उन्होंने यह कार्य श्री साधु सुब्रह्मण्य शास्त्री (इस पुस्तक के लेखक) के द्वारा करवाया। इसके बारे में पूर्ण विवरण ति.ति.दे. एपिग्राफिकल रिपोर्ट की प्रस्तावना में देखा जा सकता है।

प्रयागदास ने मेरे निरीक्षण में एक बहुत सुंदर जवाहरात जडा *किरीट* मलयप्पा के लिए मंगवाया। इसे मद्रास के एक कुशल कारीगर, ठेकेदार - स्वर्णकार ने, मेरे निरीक्षण में निर्मित कराया।

ब्रूस कोड

1795 ई. में नवाब मुहम्मद अली की मृत्यु पर और उसके पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु सन् 1801 में होने पर मुहम्मद अली के दूसरे पुत्र अज़ीम-उल-उमरा के साथ जुलाई 1801 में अंग्रेज कंपनी ने एक समझौता किया। इसके अनुसार ''उसने समस्त कर्नाटक क्षेत्र पर अपने संपूर्ण आधिपत्य को सौंप दिया, इसके बदले में अपने और अपने परिवार के पोषण के लिए आकलित राजस्व का एक बटा पाँच भाग को लेना स्वीकार किया (अध्याय 24 पृष्ठ 305 के अनुसार)।''

वेङ्कटेश्वर मंदिर के साथ कर्नाटक को हस्तगत होने पर, अंग्रेजी कंपनी के सरकार ने चार रिकार्ड तैयार करवाए। ब्रूस-कोड इनमें से एक था। इसका संबंध मंदिर की व्यवस्था और प्रशासन से है। आमदनी को इकट्ठा करना और उसका हिसाब रखना, वंशानुगत रूप से कार्यरत अथवा स्थायी कर्मचारियों के ऊपर अधिकार एवं ऐसे ही अन्य मामलों के साथ इस कोड का लेना देना था।

* * *

अध्याय - 26

लेखकों, कविगणों एवं संगीतकारों का समर्पण एवं गुणानुवाद गायन

विजयनगर साम्राज्य के महानतम सम्राट, कृष्णदेवराय महाराय, जो प्रारंभिक ज्ञात रचनाकार हैं, उन्होंने अपने काव्य को वेङ्कटेश्वर भगवान को समर्पित किया था। उनकी काव्यात्मक पुस्तक 'आमुक्तमाल्यदा' से ज्ञात होता है कि वे *तेलुगु* और *संस्कृत* के आधिकारी विद्वान थे और *विशिष्टाद्वैत* दर्शन में निष्णात थे। स्वयं कवि होने के साथ ही, वे कवियों एवं सहित्यकारों के आश्रयदाता भी थे 1 उन्होंने अनेक कवियों, कलाकारों, शिल्पकारों, नर्तकों, वास्तुविदों आदि को प्रोत्साहित किया (नोट-3,पृष्ठ 155 और पृष्ठ 184-185 देव.एपि.रिपोर्ट)। वे कवियों और कलाकारों का एक वार्षिक सम्मेलन करके उन्हें पुरस्कार प्रदान करते थे। वे भगवान वेङ्कटेश्वर के परम भक्त थे और सात बार तिरुमल आए थे। पहली बार वे यहाँ तब आए थे जब वे एक युद्ध के दौरान शत्रु सेना के पीछे थे, उनके साथ उनकी दो रानियाँ भी थीं, या हो सकता है एक ही रानी साथ हो, उन्होंने भगवान को अपनी श्रद्धा व्यक्त की, कीमती वस्तुएँ भेंट की और जवाहरात तथा जेवर चढाए। 30,000 *वराहों* (मुद्रा) का अनुदान श्रीवेङ्कटेश्वर के आसन पर और *आंनद दिव्य विमान* को स्वर्ण जडित कराने के लिए दिया जो 9-9-1518 ई. को पूर्ण हुआ (वही,पृ.165)। उनके दरबारी कवि मुक्कु तिम्म कवि ने सम्राट के इस समपर्ण एवं भक्तिभाव को अपने *काव्य* 'पारिजातापहरणम्' में उन्हें 'श्रीवेङ्कटगिरि वल्लभ सेवा-परतंत्र-हृदय' कहा। इसी तरह उनके राज कवि अल्लसानी पेद्दनामात्य ने अपने *प्रबंध* 'मनुचरितत्रमु' में कृष्णय्या को महाराज कहते हुए लिखा कि वे ''करुणाकर वेङ्कटविभु चरण स्मरण प्रसंग संगत-मति'' (वह बुद्धिमान व्यक्ति जो हर समय भगवान वेङ्कटेश्वर के पवित्र चरणों में भक्तिरत रहता है और सदा विद्वानों से घिरा रहता है)।

प्रतापरुद्र गजपति, उडीसा के महाराज, के विरुद्ध कलिंग पर चढाई के दौरान कृष्ण-देवराय कुछ दिनों के लिए विजयवाडा (बेज़वाड़) में रुके और वहाँ से श्रीकाकुलम् (चिककोले) जनवरी 1576 ई. के मध्य गए। वहाँ उन्होंने उपवास रखा और ईश्वर का ध्यान किया तथा उन्हें *'आन्ध्रा-मधुमथन'* कहा, आंध्र विष्णु कहा। उस रात्रि के चौथे पहर तक जागरण करते रहे बाद में उनके स्वप्न में भगवान आंध्र-जलजाक्ष प्रकट हुए और निर्देश दिया कि वे *तेलुगु* में एक रचना करें और उसे अपने प्रिय वेङ्कटेश, जो उनका ही प्रतिरूप है, को समर्पित करें। इस तथ्य को उन्होंने 'आमुक्तमाल्यद' में अध्याय I, काव्य II में वर्णित किया। इस *काव्य* के शीर्षक 'आमुक्तमाल्यद' का अर्थ है 'स्वयं माला को पहनने के पश्चात् उस माला को देने वाली और फिर उसे भगवान को सजाने के लिए भेंट करने वाली।' जहाँ वह रहती थी, इस काम को करनेवाली वह कन्या, 'सूडि-कुडुत्त-नाच्चियार' कहलायी यद्यपि उनका मूल नाम 'गोदा' (आण्ड़ाळ्) था। उक्त ग्रंथ का एक उपशीर्षक भी है 'विष्णुचित्तीयमु' (विष्णुचित्त से संबंधित

कथा)। यह निस्संदेह गोदादेवी और आण्डाळ् और उनके धर्म पिता विष्णुचित्त की कथा है। किन्तु इसमें अनेक संतों और पुराण पुरुषों के जीवन चरित हैं तथा इसके साथ ही इसमें *विशिष्टाद्वैत* के दर्शन व आचार शास्त्र की मीमांसा भी है। यह ग्रंथ पढने और समझने की दृष्टि से क्लिष्ट है, कठिन है। विष्णुचित्त विल्लिपुत्तूर के भगवान के भक्त थे और उन्हें स्वयं के एक उपवन से पुष्प उगाकर उन पुष्पों से तथा पुष्प मालाओं से भगवान की सेवा करना था। उसकी कोई संतान नहीं थी। एक दिन जब वह उपवन में हल चला रहा था तो वहाँ उसे एक बच्ची पड़ी मिली। उसने उस लडकी को घर लाकर उसका पालन - पोषण किया। जैसे जैसे वह कन्या बढी, उसकी *भक्ति* स्थानीय देवता पर बढती गई। जब उसके पिता मूर्ति के लिए हार बना कर रखते, तो वह चुपके - चुपके (ताकि उनके पिता न देखें) उन मालाओं को स्वयं धारण कर लेती और उतारके रख देती। पिता अनजाने उन पहनकर उतारी गई मालाओं को ले जाकर मंदिर में देवार्पित कर देते।

'विश्वगुणादर्श चंपू' के कवि वेङ्कटाधवरिन्, सत्रहवीं शताब्दी में हुए थे। उन्होंने अपनी[1] कृति में भगवान वेङ्कटेश्वर को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है।

'भगवान श्रीनिवास ने अपने स्थान वैकुंठ धाम का मोह त्याग कर शेषाचल की ओर प्रस्थान किया तथा उनके साथ में अर्धांगिनी रमा अर्थात् अलमेलुमंगा नाच्चियार हैं। वे समस्त वेदों का सार है। अपने भक्तों तथा संसार के रक्षक हैं। शेषाद्रि पर निवास करने वाले, ये दया सागर वेङ्कटाचलपति जगत्कर्ता, जगत्भर्ता और जगत्संहारक हैं। मनुष्य अपने कर्मों द्वारा भक्ति मार्ग से इनके पास बहुत आसानी से पहुँच सकता है। इस भगवान ने, कृष्णावतार के समय कुचेल से कुछ पृथु का (पोहा चावल) प्राप्त किये और उसके बदले में अपार धन दौलत दे दी। इसी प्रकार इस कलियुग में, भगवान वेङ्कटेश्वर किंचित मात्रा में कुछ प्राप्त करके अपने भक्तों को बदले में अपार धन समृद्धि देते हैं और उनकी समस्त इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। भगवान के इतने असंख्य गुण हैं कि उनका गुणानुवाद करना किसी के लिए संभव नहीं। भगवान की कृपा से बहरा सुनने लगता है, गूंगा बोलने लगता है, कटे हाथ वाला लिखने लगता है, अंधा देख सकता है, लंगडा इस पहाडी को लांघ सकता है और निस्संतान स्त्रियाँ इस स्थान पर आने से संतानवती हो जाती हैं।'

अगले कवि जिसने अपनी रचनाएँ वेङ्कटेश्वर को समर्पित की, वे थे - चिंतलपल्लि छायापति, जिन्होंने तेलुगु में 'राघवाभ्युदयमु' की रचना की और इसे वेङ्कटेश्वर को भेंट किया। 'कवि देवरकोंडा *वेलमा* दरबार से जुडे विद्वानों एवं कवियों के परिवार से संबंधित थे और उन्होंने बोरवेल्ली के वेङ्कट रेड्डी के कहने से यह काव्य लिखकर श्रीवेङ्कटेश्वर को समर्पित किया। वे 18 वीं शताब्दी के तेलंगाना कवि

1. काव्य पंक्तियाँ संख्या 191, 206

थे जिन्होंने बोरवेल्ली के राजाओं के आश्रयदाता के रूप में लिखा। ये राज्य बाद में पुराने निजाम राज्य की गद्वाल एस्टेट में मिला लिया गया था (द हिन्दू 30-1-1966 में समीक्षित)।

स्वर्गीय पंडित श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्रुलु, ने, तिरुपति देवस्थानम् ओरिएण्टल इंस्टीट्यूट, 19 *शतकों* (सौ पद्यों का), *स्तवम्* (गुणानुवाद) और अन्य प्रकार की तेलुगु कविता और गद्य आदि का संग्रह और संपादन किया। उन्होंने अनेक पांडुलिपियों (तिरुपति देवस्थानम् द्वारा प्रकाशित) का संपादन किया। ये भगवान वेङ्कटेश्वर को संबोधित थीं जैसे 'शत्रुसंहार वेङ्कटचल विहार' (शत्रु के नाशक व वेंकट पहाड़ के संचारी) 'वेङ्कट शैल-नायक', 'वेङ्कटरमणा', 'वेङ्कटेश्वर', (वेंकट पहाड़ के स्वामी) 'वेङ्कटाचलपति' आदि। इनमें से कुछ पूर्ण हैं और कुछ अपूर्ण। अधिकांश रचनाकारों के नाम अज्ञात हैं। उन्होंने इस संग्रह का नाम 'श्रीवेङ्कटेश्वर लघु-कृतुलु' (पद्यात्मक कृतियाँ) रखा। इसमें से 'वेङ्कटाचल विहार शतकमु' में सत्रहवीं शताब्दी के तीसरे प्रहार में गोलकोंडा *सुल्तान* की मुस्लिम सेना द्वारा की गई लूट, हत्या और बर्बरतापूर्ण कार्यवाहियाँ जो तिरुपति पर की गईं, उनका मर्मांतक वर्णन है। तिरुपति के निवासियों की पीडा व कष्ट का वर्णन हृदय विदारक हैं (जैसा पृष्ठ 291 से 297 तक में दिया गया है)।

'वेङ्कटाचल-धाम-तारावली' (27 कविताएँ 27 तारों की संख्या के आधार पर और सभी कविताएँ वेङ्कटाचलपति को संबोधित) क्षोभ प्रकट करती हैं कि तीनों विश्व पर शासन करने वाले वेङ्कटेश को मोटा चावल गंदी थालियों में खाना पड़ रहा है। कवि उकसाता है कि वह अपना हाथ उस सिक्के को लेने के लिए भी बढा देता है जो चलन से बाहर हो गया है, घर घर जाता है जबकि वह धन की देवी श्रीलक्ष्मी का पति है, उसकी छाती पर ही विराजित है। वह बडे अनमने भाव से यह जोड देता है कि *कासु* (सबसे छोटा सिक्का) का ब्याज भी उसके निधि में जोड दिया जाए और पूछता है, 'क्या आपके सेवक की इच्छा आपकी इच्छा जैसी नहीं?'

'पंकजात भवांदेश-शतकमु' बताता है कि 'दशावतार' को वेङ्कटेश ने धारण है और उसमें यह भी कहा गया है कि वह कलियुग के अंत में ''कल्कि'' के रूप में जन्म लेगा। जब बुरे लोग धरती पर शासन करेंगे और धर्म की हानि होगी, जब राजा और दूसरे लोग चोरों का - सा व्यवहार करेंगे और जब विशाल नदियाँ भी सूख जाएँगी और सूखा तथा अकाल पडेगा, तब वह बुराई का नाश करके इस धरा पर धर्म को प्रतिष्ठित करेगा। इसमें स्वामी के किरीट, कुंडल, कौस्तुभ-मणि, रत्न-हार और अलमेलुमंगा को उनके हृदय में धारण करने की चर्चा भी है।

'वेङ्कटेश्वर-पंचकमु (पाँच पाद) में श्रीवेङ्कटेश के मस्तक पर चंदन के तिलक का वर्णन है। उनकी केश राशि अनेक भौंरों को मंडराने दे रही है जैसे वे मधुस्थान हो, बडे - बडे मोतियों की माला उनके

वक्षःस्थल पर और अलमेलुमंगा उनके हृदय पर विराजती है। यह श्रीवेङ्कटेश के केशों का अद्भुत एवं अपूर्व वर्णन प्रतीत होता है।

'वेङ्कटाचलपति - शतकमु' में कवि वेङ्कटेश के वक्ष पर लाल चंदन के दाग का बडा प्रभावकारी वर्णन करता है और उनके स्थाथी आवास शेषशायी का वर्णन करके उनसे प्रार्थना करता है कि उनकी रक्षा की जाए। वे यह भी कहते हैं कि उन्होंने पूर्ण रूपेण श्रीवेङ्कटेश के शंख, चक्र, गदा, पद्म को देखा है और उनके चरणारविंद को भी देखा है। साथ ही उन्होंने *पुलकापु-तीर्थम्* (चरणामृत) का पान भी कर लिया है। *प्रसाद* ग्रहण किया है जिससे उनके जन्म-जन्मांतर के पाप धुल गए हैं। वे कहते हैंः 'आप (श्रीवेङ्कटेश) तीनों लोकों के कर्ता हो और इसके प्रमाण स्वरूप मैं एक पत्थर को जल पर तैरा दूँगा; मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि आप सर्वशुद्ध हैं आप सबको पवित्र करते हैं और आपके सिवाय कोई दूसरा ईश्वर नहीं। यह बात मैं आपके चरणारविंद को छूकर और सर्पदेव को दूसरे हाथ में थाम कर कह सकता हूँ। आप अपने दास की शक्ति को देख लो', 'आज आपके चरणों में मेरी भक्ति मेरे मन में घर कर गई है, मेरा जन्म सफल हुआ मेरे गुणों की विजय हुई और अब यह संभव है कि मैं भवसागर को केवल आपकी कृपा रूपी नाँव के सहारे पार कर जाऊँ।' 'मेरा मन मैं ने अपनी पुत्रीवत नियंत्रण में किया हुआ है, कैसे खडा होना है यह सिखाया है। मैंने उसे *तात्विक-नाट्य शास्त्र* सिखाया है।' यह इसलिए कि वह आपके गुणानुवाद का सफल गायन कर सके। ये कुछ ऐसे तरीके हैं जो मैं ने आपके उन चरणारविंद में स्थान पाने के लिए अपनाए हैं जो श्रीलक्ष्मीदेवी द्वारा दबाए जाते हैं। आपकी पवित्र *तुलसी* एवं वनमालिका की मालायें, आपके *शंख-चक्र* और गदा-पद्म में और आपकी *तिरुमणि* में और आपकी *त्रिचूर्ण-रेखा* (माथे पर तीन पुण्ड्र तिलक) में मैंने अपना मन रमाया है। ''एक पुत्र पिता के बिना आगे नहीं बढ पाता। आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। आपने अपने प्रिय सेवकों को माफ करना व सुरक्षित रखने का प्रण लिया है।''

'वेंङ्कटनगाध्यक्ष-शतकमु' के रचनाकार ने वेङ्कटेश भगवान से पूछा, 'मैं जब आपको पुकारता हूँ आप उत्तर ही नहीं देते। क्या आपको मुझ पर दया नहीं आती? आप आठों दिशाओं के दिग्पतियों के स्तवन सुनने में लगे रहते हैं और शायद इसीलिए मेरी करुणा प्लावित पुकार नहीं सुन पाते या आप गाँव-गाँव, घर-घर जाकर *कासु* (पैसे) का ब्याज वसूल करते रहते हैं और अपने पुराने हिसाब को चुका रहे हैं? आहा! अच्छी बात है, और आगे क्या? आप अपने दाये हाथ को नीचे की ओर दिखाते हो। क्या हम कहें कि यही स्थान *वैकुंठ* है और क्या आप ये कह रहे हैं कि आपके पवित्र चरणों को देखा जाए जिन्हें मानव मात्र का संरक्षक और अज्ञान भक्त कहा गया है। क्या यह बनावट है? मुझे संदेह है इसलिए मैं आपसे इसकी व्याख्या करने को कहता हूँ।' 'पहले भी मैं ने आपके बारे में अनेक कथाएँ पढीं थीं। आप ही केवल अपने भक्तों के संरक्षक व पालनकार हो दूसरा कोई नहीं। आपके चरणारविंद

ही विश्व में सबकी शरण स्थली है। आप श्रमित लोगों को राह दिखाते हो।' 'मैंने अपनी आँखों से आपकी स्वर्ण विभूषित पोषाक देखी, *शंख-चक्र* देखा, आपके माथे पर तिलक की शोभा देखी और आपके चरणों से निकलती हुई अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ भी देखीं।'

'श्रीवेङ्कटेश्वर कल्याणमु' में सरल भाषा प्रयोग द्वारा वह पौराणिक कथा वर्णित है जिसमें भृगु महर्षि भगवान विष्णु की छाती पर पद प्रहार करते हैं जहाँ श्रीलक्ष्मी का निवास है। उनका उद्देश्य यह जानना था कि ब्रह्म, विष्णु, महेश की त्रिमूर्ति में श्रेष्ठतम कौन है। जान - बूझकर किए गए इस अपमान से रुष्ट होकर लक्ष्मी जी का कोल्लापुरम् (कोल्हापूर) प्रस्थान करना और विष्णु का उनसे वैकुंठ लौटने की प्रार्थना करना, उनका यह प्रस्ताव कि वे दोनों वेङ्कटगिरी पर मिलकर पद्मसरोवर (तिरुचानूर का तालाब) में जाएँगे जहाँ लक्ष्मी जी का जन्म *कार्तिक* माह के शुक्ल पक्ष की पंचमी को, हुआ था जब दिन शनिवार था और श्रवणा नक्षत्र था और जो अलमेलुमंगा कहलायी। वे फूलों का एक हार लेकर प्रकट हुईं। लक्ष्मी जी ने वह हार विष्णु भगवान के गले में डाल दिया और उन अनेक उपस्थित विभूतियों में से चुना। तब बृहस्पति, देवताओं के पंडित, ने उनका विवाह संस्कार कराया।

'श्रीरमा-परिणयमु' (श्रीलक्ष्मी विवाह) की रचना तरिगोंडा वेंगमांबा ने *द्विपद* छंद में की है। इसमें वेङ्कटेश और लक्ष्मीदेवी के विवाह और उससे जुडे अनेक मार्मिक प्रसंगों की गाथा है। बचपन से ही ये कवयित्री अपने ग्राम के स्थानदेवता तरिगोंडा नरसिंह स्वामी की आराधना करती थीं। वे श्रीनरसिंह की *भक्ति* में सदा लीन रहती थी और यही भक्ति उन्हें तिरुपति के वेङ्कटेश्वर तक ले गई। वे इन दोनों विभूतियों को समान मानकर भक्ति भाव से आराधना करती थीं। उनके पिता ने जबरन इनका विवाह कर दिया, यह सोचकर कि परिवार में रहकर वे अपने भक्ति मार्ग को छोड देंगी। किन्तु उन्होंने गृहस्थ जीवन को छोड पूर्ण समर्पित भाव से वेङ्कटेश्वर की भक्ति करने की ठानी। उनके पति का असमय जवानी में ही निधन हो गया और उन्होंने युवा-विधवा के रूप में घर त्याग तिरुमल में आकर सदा सर्वदा के लिए वेङ्कटेश्वर की *भक्ति* में समय बिताना प्रारंभ कर दिया। सुब्रह्मण्यम् नामक गुरु की शिष्या बनकर उन्होंने *योग* एवं ध्यान की साधना भी प्रारंभ की (जैसा उन्होंने अपने ग्रंथ के अंत में कहा है)। 'श्रीरमा-परिणयमु' ग्रंथ में वे अपने पिता का नाम कानाल कृष्णार्य और माता का नाम मंगांबा बताती हैं। तथा *नंदवर* समुदाय के *ब्राह्मणों* में स्वयं को वाशिष्ठ *गोत्रोत्पन्न* स्वीकार करती हैं। इसी से ताल्लपाक अन्नमैय्या, महा कवि अल्लसानि पेद्दनामात्य और सालुव तिम्मरुसु प्रधानी से संबंधित थे। पति का नाम 'इंजेटि वेङ्कटाचलपति' के कारण उन्होंने उपनाम 'इंजेटि' प्राप्त किया।

अपनी कुछ साहित्यिक रचनाओं यथा 'द्विपद-भागवतमु', 'राजयोग सारमु' और 'वेङ्कटाचल माहात्म्यमु' में उन्होंने अपने को अनपढ बताते हुए कहा कि उन्हें किसी अध्यापक ने ''ओ-न-मालु''

(तेलुगु वर्णमाला) नहीं पढाई। और वे श्रीनरसिंहस्वामी की कृपा से लिखने को तत्पर हुई हैं तथा उन्होंने आलोचकों, कवियों तथा विद्वानों से यह प्रार्थना की कि वे उनके छंदशास्त्र के ज्ञान में दोष न निकालें। अपनी योगिक शक्ति और आत्म बल से इन्होंने तेलुगु एवं संस्कृत पर असाधारण अधिकार प्राप्त किया और इसी का फल है कि ये तेलुगु कविता में तीन *पुराण -वराह, भविष्योत्तर* एवं *पद्मपुराण* में अपनी ओर से भी कुछ जोडा। उनकी तेलुगु कविताओं के विषय महाभारत व भगवत के हैं और एक पुस्तिका 'राज-योग-सार' द्विपद छंद में है। उनकी अन्य कृतियाँ वेङ्कटाचल माहात्म्यमु', 'द्विपद भारतमु', 'श्रीरमा परिणयमु' चेंचु नाटकमु, योग वाशिष्ठमु, राज-योग-सारमु, विष्णु पारिजातमु, शिव नाटकमु, मुक्तिकांता विलासमु आदि हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं को तरिगोंडा श्रीनरसिंह स्वामी एवं श्रीवेङ्कटेश्वर को एक ही मूर्ति के दो रूप मानते हुए अर्पित कीं और अपनी कृति 'विष्णु पारिजातमु' में यह रेखांकित किया कि दोनों श्रीकृष्ण के विविध रूप हैं।

वे संभवतः 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध या उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में यहाँ रही होंगी। जीवन के चौथे प्रहर में उन्होंने वेङ्कटेश्वर के ध्यान और *योग* में अपने को लगाया और 'तुंबर कोंना'[2] के लिए प्रस्थान किया। निडर होकर वे घने जंगल में दस मील दूर स्थित मंदिर के उत्तर में बसे गोगर्भम् तीर्थ में रही और वहाँ वेङ्कटेश्वर का साक्षात्कार पाया। वे फिर तिरुमल आ गईं और सदा वेङ्कटेश्वर की भक्ति में लीन रहीं। यह कहा जाता है कि वेङ्कटेश्वर उनके सामने जैसे ही वे पुकारती थीं, आ खडे होते थे। कहा जा सकता है कि उनको *योगिक* समाधि में उनको भगवान दर्शन देते थे। आज भी तिरुमल की उत्तरी गली के एक बगीचे में उनकी समाधि अवस्थित है। आजकल वहाँ पास ही एस.वी.बी. नागी रेड्डी इंग्लिश मीडियम स्कूल है और वहाँ के लोग इन्हें इस स्थान के संरक्षक देवता मानते हैं। वे एक मोती

---

2. तुंबुरु तीर्थम् या तुंबुर कोना एक प्राकृतिक उपकल्पा है जो संभवतः100 करोड वर्षों पूर्व बनी होगी। यद्यपि इसका भूगर्भीय महत्व है, इसकी स्थिति घने जंगलों में शांत वातावरण के मध्य एक उत्तेजक अनुभव है। आम आदमी आज भी वहाँ जाने से डरता है। अनेक लोग साथ न हों तब भी आगामी खतरों से बचना मुश्किल था। फिर भी उस समय तारिगोंड वेंगमांबा द्वारा वहाँ जाना कल्पना से परे की बात है।

तीर्थ के पास, एक गुफ़ा 'वेंकमांब गेवी' है जहाँ उन्होंने ध्यान लगाया होगा और यह विश्वास किया जाता है कि यहाँ ऐसा गुप्त मार्ग है जो तिरुमल मंदिर और आज के कान्वेंट स्कूल में स्थित बगीचे से जा मिलता हो। इसकी पुष्टि में यह कहा जाता है कि वहाँ एक कुंए जैसा गड्ढा है जिस पर एक बडा ग्रेनाइट पत्थर रखा है जो उनकी समाधि के पास है। एक छोटी-सी आंजनेय स्वामी की मूर्ति भी वहाँ है जो उनके द्वारा पूजी जाती थी। परम्परानुसार वे भगवान के लिए इस स्थान पर बैठकर पुष्पहार बनाती थीं। इसलिए इस स्थान को आज भी पवित्र मानते हैं और पूजा करते हैं। इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए अधिकारी राम लक्ष्मण दास, भ्राता शिष्य महंत प्रयागदास, ने छः महीने इस तुंबुरुकोन में तपस्या और प्रायश्चित किया।

- गोपी कृष्ण

जडे चांदी की थाली में कपूर ज्योति प्रज्ञवलित करके *मुत्याल-आरती* किया करती थीं। मोती इस प्रकार जडे थे जैसे ये दशावतारों में से एक की मुद्रा हो, इस प्रकार प्रत्येक रात्रि को भोग-श्रीनिवास की मूर्ति वेङ्कटेश्वर के मंदिर में पालने में शयनार्थ लिटाने के समय यह आरती देती थी और आज भी इस प्रथा को उनके वंशजों द्वारा निभाया जा रहा है। वे एक अलौकिक विभूति थीं।

वेंगमांबा परिवार से जुडे स्वर्गीय श्रीगंडेपल्ले कुप्पय्या ने तरिगोंडा वेंगमांबा के हितार्थ दान में दिए गए इक्तीस दस्तावेजों को संभाल कर रखा है। ये दस्तावेज भोजपत्रों पर हैं और इनमें गाँवों व भूमि की रजिस्ट्री, स्वर्ण मुद्राओं के उपहार, चावल का दान (अन्नदान) आदि के विवरण हैं। श्री एस.कृष्णा रेड्डी, एम.ए.बी.एड (गोपी कृष्ण) जब एस.वी.बी. नागी रेड्डी इंग्लिश मीडियम स्कूल, तरिगोंडा वेंगमांबा बाग, तिरुमल के प्राचार्य थे, उन्होंने इन पत्रों को कृपापूर्वक दिखाने के लिए विद्वान के.जे.कृष्णमूर्ति, एम.ए., एस.वी. यू. ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट से कहा और उन्होंने ऐसा किया भी।

ये दस्तावेज शक संवत् 1707 से लेकर है जो *कलियुग* वर्ष 4886 है और चक्र वर्ष *विश्वावसु चैत्र* मास का है (मार्च 1785 सन् कहा जा सकता है)। और यह शक संवत् 1730 *कलियुग* वर्ष 4909 चक्र वर्ष *विभव, फाल्गुन* मास अर्थात् 19 फरवरी सन् 1809 तक पच्चीस वर्ष का काल ठहरता है।

ये उपहार *नरसिंह जयन्ती* को *वैशाख* माह में विधिविधान से मनाने और उस दिन लोगों को भोजन करने के लिए दिये गये। यह *जयंती वैशाख* मास शुक्ल पक्ष त्रयोदशी को मनाया जाता है और यह चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में नवमी को होने वाले *श्रीराम नवमी* और श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को होने वाली *श्रीकृष्ण जन्माष्टमी* या *गोकुलाष्टमी* या *कृष्ण-जयंती* के समान है। इन महान अवतारों के जन्म दिवसों पर मंदिरों एवं घरों में बडी उमंग धाम रहती है और सांप्रदायिक विधान से पूजा अर्चना की जाती है।

श्रीनृसिंह जयन्ती के दिन वेंगमांबा द्वारा लोगों को भोजन कराने के लिए अनेक गाँवों के निवासियों ने मुक्तहस्त से दान दिया। इन दान दाताओं में मुखिया, मुनीम, काश्तकार, *पुरोहित* (पुजारियों), *व्यापारी वैश्य (कोमटी),* (फुटकर दुकानदार), *बेरी-शेट्टी* (सोने - चाँदी के व्यापारी), *नूट इब्बंद्रु - नगरम् वारु* (शहर के 102 प्रतिष्ठित व्यापारी), *पालेगार* (अफसर जिनके पास उनके लिए कुछ गाँव व जमीन भरणपोषण के लिए दी जाती थी और जो श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर के साथ ही उसके इर्द गिर्द के स्थानों की सुरक्षा आदि किया करते थे) और दिंडिगल के *जमींदार* शामिल थे।

दान दाता गाँवों में *तिरुविलयाट्टम* (वस्तुतः *तिरुविदयाट्टम* अर्थात् ईश्वर को दत्त (देवदानम्)), जिसमें *उल-मंडलम्* (अंतः पुर, वेङ्कटेश्वर के मंदिर के केन्द्र और आंतरिक भाग) के साथ *गोडुगल-नाडु*

(पुराने तमिल नाम कुडवूर-नाडु का बिगडा स्वरूप *कुड* (कोदई)) का *गोडुगु* हो गया, छाता इसका अर्थ है, और देवस्थानम् के कुछ बाद की लिखावटों में इसे) 'गोडगरनाडु[3] भी कहा गया है। यह कुडवूर नाम के गाँव के साथ अनेक अन्य गाँवों के समूह का नाम रहा। यह स्थान तिरुपति के दक्षिण में पड़ता होगा किन्तु अब इसका कोई अस्तित्व नहीं है।' यह तोंड-मंडलम् प्रदेश के अंतर्गत पडता है।

शक संवत् 1707 कलिगुय वर्ष 4886 चक्र वर्ष विश्वावसु, शुक्ल पक्ष (दिन नहीं दिया गया) चैत्र मास की सबसे पुरानी दस्तावेज है। रविवार (जिसके साथ कुछ मिले जो रहते हैं), अश्विनी नक्षत्र, (मार्च 1785), में *कर्नम्* (मुनीम) चंद्रगिरि तालूका, सेतुवराय-पिल्ल ने 50 *गुंटा* जमीन का दान करने का संकल्प किया। इस भूमि की माप खंभे से 48 फुट है। इसे छोटे-छोटे प्लाटों में बाँट दिया गया था। यह अगरम ग्राम के पास जल स्रोत के समीप चंद्रगिरि किले की पहाडी के पश्चिम में ऐतेपल्ली के पूर्व में और वृषभ-पर्वतम् के दक्षिण में है। यह शेषाचल पहाडी के दक्षिण में पडता है। इसमें *तिरुविद्याट्टम्* और *उलमंडलम्* भी समाहित हैं जो *तोंड-मंडलम्* (प्राचीन पल्लव सीमा जिस पर कांचीपुरम् का शासन था) में है। यह *मातृश्री* वेंगमांबा के हितार्थ दिया गया था।

दूसरे रिकार्ड, शक 1716 *आनंद, मार्गशीर्ष-शुद्ध* 15 शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा (= शनिवार, 6 दिसम्बर 1794) के अनुसार *कल्लूरी* रंगपति राजू, औबल राजू और वेंगमांबा के पुत्र, और कदिरीपति राजू के पौत्र (संभवतः कल्लूरु के पालेगार) ने एक अपरंजिरूका (शुद्ध सोने की मुद्रा) प्रतिवर्ष हरेक *पुरोहित* के घर, *शेट्टी-वर्तकुलु* (शेट्टी या कोमटी संप्रदाय के व्यापारी), *कापुलु* (किसान) और *फ़णालवारु* (फुटकर दुकानदार) जो इस क्षेत्र में रहते थे (मा-तालुका ग्रामादुललो) को नरसिंह जयंती के अवसर पर होने वाले बडे उत्सव पर मुफ्त भोजन दान के लिए दिया गया।

वर्षासन-दान-पत्रिका (वार्षिक दान पत्र दस्तावेज) में पुल्लूरु मोगराल के पालेगार, रघुनाथनायनिवारु, जो केशवप्पनायनिवारु के पुत्र और तिम्माप्पनायनिवारु के पात्र, ने कहा जाता है कि एक आदेश (*शेलवु*) दिया कि *मातृश्री* वेंगमांबगारु-को *श्रीनृसिंह जयंती* के विशाल उत्सव के समय प्रतिवर्ष 5 (पाँच) तिरुपति *वरहालु* दिए जाएँ। यह आदेश शक 1717, *राक्षस* नाम संवत्सर *आश्वीयुज-शुद्ध* 15, *सौम्य-वासरमु* (बुधवार, पूर्णिमा, 28 अक्तूबर 1795 ई.) दिनांक को हुआ है।

---

3. गोडगर - नाडु : इस क्षेत्र के कापु और रेड्डी अर्थात् मूल रेड्डी जो सुवर्णमुखी नदी के किनारे बस गए थे उन्हें गोडगनाटि रेड्डी कहा जाता है। यह इसी आधार पर है क्योंकि समस्त आंध्रप्रेदश में यह अमुक शाखा पाई जाती है सिवाय उन लोगों के जो इस क्षेत्र को छोडकर तमिलनाडु या अन्यत्र चले गए।

- गोपी कृष्ण

इसी वर्ष को दस दिन के बाद *आश्वीयुज-बहुल* दशमी (शनिवार, 7-11-1795 ई.) को बंगारु पालेम के *पालेगार* चंद्रशेखर नायनिवारु, वेङ्कट वीरप्पा-नायनिवारु के पुत्र और चंद्रशेखर-नायनिवारु पदेन श्रीमान महानयनंकाचार्युलु के पौत्र ने अपने संरक्षण में होने वाले सभी गाँवों को आदेश दिया कि बारह *वरहालु* और *वरशासनदानमु* का भुगतान *श्रीनृसिंह जयन्ती* के वार्षिक उत्सव में दान एवं भोजन हेतु *मातृश्री* वेंगमांबा को दिया जाए।

अगले वर्ष शक संवत् 1718 *नल, कार्तिक शुद्ध* दशमी (नवंबर 1796 ई.) को *पालेगार* राजश्री मामंडूरु कृष्णम-नायनिवारु ने एक दान पत्र के द्वारा बरानि गड्डा फसली खेत में 97 *गुंटा* जमीन, जो तूंगपाल्लु के पुदिपट्ल में पेरुमाल्ल पल्ली के पूर्व में पडती थी, को दान में दिया। यह भूमि *शेषाचल-पर्वत* के दक्षिण में थी और *तिरुविडयाट्टम्-उत्मंडलम्* में थी। यह दान श्रीवेंगमांबा *मठ* को *नृसिंह-उत्सव* के अवसर पर भोजन दान अर्थात् भंडारा करने के लिए दिए गये। उन्होंने ऐसी भूमि दान दी जिसमें जल का प्रबंध था और उन्होंने इसे स्वर्ण सहित श्रीलक्ष्मी नृसिंह को भेंट की जिससे इससे दानदाता का यश जब तक सूरज चांद हैं तब तक यह बना रहे।

उसी दिन, शक 1718 *नल, कार्तिक - शुद्ध दशमी* (नवंबर 1796 ई.) को *पालेगार* परिवार के एक अन्य सदस्य मामंडूरु (हो सकता है कि वह स्वयं ही *पालेगार* हो और पिछले रिकार्ड का दानदाता उसका पुत्र या भाई हो) वेंकटप्प - नायनिवारु, मामंडूरी सर्वप्पनायक के पुत्र, *राजमान्य राज-पूजित राजश्री* (राजा द्वारा अभिप्रेत एवं सम्मानित और सम्माननीय राजा) ने इसी प्रकार की एक अन्य दान पत्र बनाई और उसी स्थान पर उसी सीमा में अपने अधिकार का उपयोग करके 77 *गुंटा* भूमि श्रीनृसिंह के विशाल उत्सव पर भंडार के लिए दान में दे दी।

यह दान पत्र, कहा जाता है कि, वेङ्कट्रायडु, टंकशाला वरदप्पा के पुत्र, के द्वारा लिखा गया संभवतः वरदप्पा *टंकशाला* या खजाने में कार्य करता था और इसलिए उसका नामांश *टंकशाला* पडा। इससे यह भी ज्ञात होता था कि उस समय वहाँ सिक्के गढने के लिए कोई *टंकशाला* थी और जो संभवतः मामंडूरु पालेगार द्वारा ही चलाई जाती थी।

शक संवत 1720, *कालयुक्ति, श्रावण बहुल पंचमी* को, (= अगस्त 1798 ए.सी.,), करकंबाडि के पालेगार वीर राघवप्पा - नायनिवारु, राघवप्पा नायनिवारु के पुत्र और दासरी - नायनिंमवारु के पौत्र ने उत्तर पूर्व *नल्लमानिकाल्व* गाँव से तरिगोंड वेंगमांबा *मठ* की ओर पडने वाली 100 *गुंटा* जमीन दान में दी। यह दान श्रीनृसिंहोत्सव में भंडार के लिए था। यह उत्सव *वैशाख* माह में संपन्न होता था। पर यह दान इसलिए भी था कि वह अपने अधिकार से इसे बेच सके, किसी और को दे सके और अपने शिष्यों को दे सके, सदा के लिए जब तक आकाश में सूर्य- चंद्रमा की उपस्थिति है - *आचंद्रार्क स्थायी* होगा।

किसी बसिवि रेड्डी, शायद एक प्रसिद्ध व्यक्ति, जो पेदकोंडुपल्ले में तय्यूरु-पायकट्टु में कारवेटि नगर तालुक का रहने वाला था, ने एक *पूल-वरहा* प्रतिवर्ष का दान किया। यह दान नृसिंह जयन्ती के वार्षिकोत्सव पर तरीगोंडा वेंगमांबा के *मठ* के लिए दिया गया। (दिनांक अक्तूबर 1803 ए.सी.,)।

सितम्बर 1806 में गोट्टिगल्लु के तिम्मा रेड्डी ने श्रीवेंगमांबा *मठ* को जमीन का एक टुकडा दान में दिया। यह भी *वैशाख* माह में श्रीनृसिंहोत्सव के अवसर पर भंडारे के निमित्त था।

शक संवत् 1728 में, *अक्षय* नामक संवत्सर, *वैशाख बहुल पंचमी, सौम्यवासरमु* (बुधवार, 7 मई 1806) को वेङ्कटसामी, *कालिकांबा वर-प्रसाद कुलैन* (जिसे देवी कलिकांबा का वर प्राप्त हुआ) के पुत्र - वेलिगरम धनकोटि ने गाजुल बसिवि रेड्डी और बसिवि रेड्डी चाविडी रेड्डी की सहमति से श्रीवेंगमांबा के *मठ* को एक *पूला-वरहा* प्रतिवर्ष दान दिया। यह दान भी *वैशाख* माह में श्रीनृसिंहोत्सव के भंडारे के लिए था।

शक संवत् 1717 राक्षस नाम संवत्सर में, अधिक - भाद्रपद (पुरुषोत्तम मास) *शुद्धपंचमी, सौम्य-वासर, हस्ता नक्षत्र* था (बुधवार, 19 अगस्त 1795 ई.) दिंडिगल्लु के जमींदार, आरनि विजय वेङ्कटपति राजा-बहदरु वारु ने दो गाँव वडमदुर और चित्तूरु भेंट किए। इनका कुल खर्चा रु. 4000 था, इसमें रु.2160 प्रति वर्ष भोजनालय के लिए जो *मातृश्री* वेंगमांबगारु द्वारा देखा जा रहा था, रु.480/- *स्वामी* (वेङ्कटेश्वर के सेवार्थ) - संभवतः *नित्य-कर्पूर आरती,* हर रात्रि शयनकाल में भगवान की शोभायात्रा की मूर्तियों को शयनार्थ भेजते हुए, मोतीजडी चांदी की थाली में जो *दशावतार* के रूप में थी जो वेंगमाम्बा की भतीजी चेंगम्मा द्वारा की जाती थी) के लिए दिए गए। उन्नीसवीं शताब्दी की पहली दशाब्दियों में इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी के मंदिर प्रबंधन के दौरान भी और आज भी यह प्रथा चली आ रही है। रु.360/- नित्य-तलिया (तलिगा-नित्यभोजन-भोग) और रु.1000/- *मनोवृत्ति खर्चु* (मनोवांछित खर्चे के लिए) के रूप में निर्धारित किए गए।

चक्र वर्ष *आनंद, फाल्गुन शुद्ध सप्तमी* (मार्च 1795 ई.) में तिरुमल और तिरुपति में रहने वाले बेरि शेट्टी संप्रदाय ने, जिन्होंने हर घर-दूकान प्रतिवर्ष एक *अपरंजि* रुका (शुद्ध सोने का छोटा सिक्का) दान करने का संकल्प लिया था और यह भी जिम्मा लिया था कि श्रीनृसिंह जयंति उत्सव पर यह राशि वेंगमांबा हेतु एकत्र की जाएगी। इनका इस प्रकार वर्णन किया गया है। ये तिरुमल - तिरुपति के स्वर्गिक सिंहासन पर विराजमान थे, और अपने श्रेष्ठ गुणों के लिए ख्यात थे, *कुबेर* (धन के देवता) के वंशज थे और अयोध्या नगरी के संभ्रान्त प्रशासक (शायद नगर सभा के), और धर्मशिवाचार्य के आशीर्वाद से इतने प्रसिद्ध हो गए थे और अपने वंश-*गोत्र* (निर्धारित ऋषि के वंशज) के उन्नायक थे। इनका *गोत्र* तिरुकच्चिनंबी वंश से जुड़ा था। (वे इस वैष्णव संत को अपने समुदाय का मानते थे) और

जैसे श्रीवरदराज स्वामी के चरण कमलों से उन्होंने भ्रमर के समान अमृत पान किया था और सहस्र ऋषि के *गोत्र* से संबंधित होने वाले और नगर के तीन आवासीय परिसरों में रहने वाले *नगरम्वारु* (नगर के प्रतिष्ठित पुरुष) कहे जाते थे।

शक संवत् 1717 में, *राक्षस, फाल्गुन* शुद्ध पूर्णिमा (मार्च 1796 ई.) *नूट-इब्बांद्रु-नगरम् वारु* (नगर के एक सौ दो निवासी), तिरुपति के श्रीगोविंदराज स्वामी के स्वर्गिक सिंहासन के समीप रहने वाले, प्रारंभ से ही श्रेष्ठ गुण संपन्न माने जाने वाले, पेनुगोंडा (शायद नगरपालिक के) महान शासक कुबेर के वंशज होने के कारण धनी हुए, *कन्यका* (देवी) के भाई होने के कारण, भास्कराचार्य के वर और शक्ति से समृद्ध, श्रीजनार्दन देव के चरण कमलों के पूजक, ने एक *अपरंजी-रूका* हर वर्ष की दर से *मातृश्री* वेंगमांबा को श्रीनृसिंह जयंती - महोत्सव के अवसर पर दान देने का संकल्प लिया।

शक संवत् 1718 के दस्तावेज में, नाल नाम संवत्सर, चैत्र-शुद्ध दशमी (मार्च 1796 ई.) को राचप्पा शेट्टी लिंगी शेट्टी, केशव शेट्टी और अन्य, जिनमें एक सौ दो *नगरम्-वारु* शामिल थे, उन्होंने एक *अपरंजी-रूका* हर वर्ष हर घर के हिसाब से श्रीनृसिंह महोत्सव में भंडारे के लिए श्रीवेंगमांबा को प्रदान किया।

इसी प्रकार से नूटा-इब्बन्द्रु-नगरम् वारु, जो विभिन्न गाँवों से थे, उन्होंने एक *अपरंजी-कासु* हर - हर घर के हिसाब से इसी उद्देश्य अर्थात् श्रीनृसिंह उत्सव के लिए भंडारे के निमित्ति दान देने का संकल्प लिया, मुख्यतः 102 वर्तकुलु (व्यापारियों) ने जो नागपट्लपेटा (भाकरापेट), रंगमपेट और कुछ अन्य गाँव, शक संवत् 1718, *नल, चैत्र बहुल सप्तमी* (= अप्रैल 1796 ई.) शेट्टी और अन्य 102 *नगरम् - वारु* जो पीलेरु तालुक के अय्यवारिपल्ली के थे और शक संवत् 1718 में, *नल* नाम संवत्, *चैत्र बहुला सप्तमी* शुक्रवार (अप्रैल, 1796 ई.) और शक सवंत् 1720 *पेनुमूरिपेट* गाँव के 102 *नगरम्वारु* अर्थात् शक संवत् 1720, *काल युक्ति, चैत्र बहुल त्रयोदशी* (शनिवार, सन् 14-4-1798) में एक *शंखु-रूका* (शायद मोहर पर शंख के निशान के कारण यह नाम रखा गया) हर वर्ष प्रदान करने का संकल्प लिया गया।

पुराने रिकार्डों में, इक्कतीसवाँ, *वर्तकुलु,* (वैश्य) मंगलम्पेट के श्रीप्रसन्न वेङ्कटेश्वर स्वामी के पास निवास करने वाले और *पेनुगोंडा* - पुरवराधीवारुलु के वासी, देवतु वेङ्कटेशम शेट्टी, रापूरि वेङ्कटराम शेट्टी द्वारा संचालित और अन्यों द्वारा मदद पाकर एक मत से हर घर से हर वर्ष एक *शंखु-रूका* देने का संकल्प लिया गया जो *वर्षासनधर्मम्* के लिए वेंगमांबा को दिया गया। यह भी श्रीनृसिंह जयन्ती के विशाल उत्सव के दिवस पर भंडारे और नयनाभिराम पुष्प सज्जा हेतु प्रदान किया गया। इस दस्तावेज

पर शक संवत् 1730, *कलियुग* वर्ष 4909, *विभव, फाल्गुन* - शुद्ध पंचमी (रविवार 19 फरवरी 1809) अंकित है।

शक संवत् 1719 *पिंगल, चैत्र बहुल पंचमी,* रविवार (अप्रैल 1797 ई.) *स्थलम्* और *परस्थलम्* के अट्ठारह *फणालवारु* (बाहरी व भीतरी रिहायश) ने हर वर्ष हर गृहस्थ एक *अपरंजी रूका* दान देने का संकल्प लिया जो मातृश्री वेंगमांबा के मठ को भोजन दान के निमित्त दिया गया। यह भी *वैशाख* मास के होने वाले नृसिंहोत्सव के लिए नियत था और उनके आगामी शिष्यों द्वारा भी तब तक, जब तक आकाश में सूर्य-चंद्रमा हैं भोग किए जाने के निमित्त था।

रेड्लु (रेड्डी श्रेणी की रय्यत) और करणालु (गाँव के मुनीम) ने शक संवत् 1720, काल युक्ति, श्रावण सुदी विदिया, बुधवार (जुलाई - अगस्त 1798 ई.) को दो तिरुपति *वरहालु* हर वर्ष की दर से वेंगमांबा के *मठ* को नृसिंहोत्सवम् हेतु दान देने का संकल्प लिया जो उनके शिष्यों-प्रशिष्यों द्वारा अनंत काल तक उपभोग किया जा सके और दान दाताओं के पुत्र, पौत्र और उनके वारिस *आचंद्रार्क स्थायी* रूप से इस राशि को जमा कराएँ। दान दाता चित्तूर तालुका के वाविलितोटा नामक ग्राम के निवासी थे।

दो वर्षों में लिखे गए दस दस्तावेजों में, शक संवत् 1716, *आनंद* (1794-95 ई.) और शक 1717, *राक्षस* (1795 ई.), कई गाँवों के विभिन्न वर्गों के निवासियों ने दर्जनों गाँवों से एक एक *मानेडु* (आधा माप) चावल हर माह हर गृहस्थ घर की दर से वेंगमांबा को नृसिंह जयन्ती उत्सव दिवस पर देने का वचन दिया। तीन रिकार्डों में चलि-बिंद्रा (चलि पंदिरी, इसे तीर्थयात्रियों के लिए 'प्याऊ' कह सकते हैं, के द्वारा संचालित जल प्रबंधन) का भी जिक्र है। इनमें से कुछ गाँव तिरुविडयाट्टम् अर्थात् देवदान गाँव, भगवान को दान किए गए ग्राम, कहे जाते थे। चावल का दान करने वालों में छः श्रेणी के लोग थे जैसे रेड्डी, करणालु, पौरोहितुलु, शेट्टी वर्तकुलु, कापुलु और अलमेलुमंगापुरम् जिसमें भगवान वेङ्कटेश्वर मंदिर जैसा प्रतिलिपि मंदिर है, वह नागपट्ला - तालुका के पहाडी रास्ते में है किन्तु आजकल यह गाँव मंगापुरम् कहलाता है, जबकि तिरुचानूर को आजकल अलमेलु-मंगापुरम् कहा जाता है। कुछ गाँवों के लोग चार *बल्लु* चावल हरवर्ष देने के लिए राज़ी हो गए और तोंडवाडा गाँव ने दो *पुट्टी* चावल देने का संकल्प लिया गया जिसमें एक *पुट्टी* चावल *कारु* फसल (दिसंबर-जनवरी फसल) और एक *पुट्टी* कोडा फसल (ग्रीष्म फसल) के समय देय था और साथ ही चार *अपरंजि-रूकलु* भी देने का संकल्प था।

ये जो स्वर्ण मुद्राओं, चावल, भूमि और गाँवों का दान दिंडिगलु के जमींदारों और *पालेगारों* द्वारा किया गया वह वस्तुतः स्वेच्छापूर्वक लगता है। ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि कोई वेंगमांबा की ओर से इन भेंटों और दान के लिए लोगों से जाकर याचना करता था। लोग *योगिनी* वेंगमांबा के बारे में बहुत कुछ जान गए थे, उनकी धार्मिकता तथा नरसिंहस्वामी के प्रति श्रद्धा-भक्ति और पूजा तथा उनकी

जयन्ती के अवसर पर प्रतिदिन धर्मार्थ दान तथा भंडारे का आयोजन किया जाता था। यात्रियों के लिए जल की प्याऊ लगाना, पुष्प सज्ञा तथा पुष्पोपहार की भेंट करना और भगवान का भोग आदि उस समय लोगों के द्वारा काफी प्रशंसा को प्राप्त हुए होंगे। इन्हीं सब कारणों से इतने लोगों ने स्वेच्छा से इतना दान दिया और संकल्प लिया। यह इस बात का भी सूचक है कि उन्होंने इतना धार्मिक गुण प्राप्त किया था, केवल साहित्यिक गुण ही नहीं बल्कि उन्होंने अपनी धार्मिक, योगिक एवं दार्शनिक पुस्तकों में प्रकाशित करके कमाया था।

वेंगमांबा ने ऐसी जन-भावनाओं और आदर प्राप्त करने के लिए अवश्य ही कठिन परिश्रम किया होगा। दशक और इससे भी अधिक समय तक अपने उद्देश्य की तल्लीनता के विषय में जिज्ञासु जन समाज को भली प्रकार से समझा दिया होगा।

किशोरावस्था में ही इन्होंने श्रीनरसिंहस्वामी के प्रति भक्ति भाव प्रारंभ कर दिया था। तरिगोंडा उनका जन्म स्थान था और उनकी इस धर्मपरायणता के कारण उन्होंने घर गृहस्थी के कार्यों से मुँह मोड लिया था और अपने घर में अजीब तरह से व्यवहार करना शुरु कर दिया जिससे माता - पिता बहुत दुःखी हुए। उन्होंने इनका विवाह बिना पूछे ही कर दिया और फिर पति की मृत्यु भी शीघ्र हो गई। वे बहुत ही कम आयु में विधवा हो गई। वे इसके पश्चात् कुछ वर्ष अपने पिता के पास और रही होगी और बीस वर्ष की आयु में वे तिरुमल आ गई। उन्होंने दस वर्षों तक एकांतवास तथा घोर साधना की जिसके कारण देश भर में उनकी कीर्ति फैल गई और सन् 1785 से अनेक दान दाता स्वेच्छापूर्वक उन्हें अनेक भेंट देने लगे। यह सिलसिला लगभग 25 वर्ष तक अर्थात् 1809 ई. तक चला। सी.पी.ब्राउन ने 'तेलुगु शब्दकोष' में यह बताया है कि वे 1840 में जीवित थीं तो हो सकता है कि तब वे 80-85 वर्ष की आयु की होती होंगी और इसके पश्चात् भी एक दशक तक उन्होंने जीवन पाया हो।

स्पष्ट है कि वेंगमांबा[4] का जन्म 1750 से 1755 ई. के बीच हुआ होगा और उन्होंने 20 वर्ष की आयु के लगभग तिरुपति में स्थायी वास प्रारंभ किया होगा और संभवतः उन्होंने श्रीनरसिंहस्वामी की पूजा चलाई हो क्योंकि उनकी जयन्ती वे पहले से ही अपने गाँव तरिगोंडा में मनाती थीं। भगवान

---

4. स्वर्गीय श्री गुंडीपल्ले कुप्पय्या शर्मा ने एक लेख को 1940 के लगभग प्रकाशित किया था। वे तरिगोंडा वेंगमांबा मठ, तरुपति के उत्तराधिकारी थे। उन्होंने माना कि वेंगमांबा की मृत्यु शक संवत् 1738, ईश्वर, श्रावण सुदी नवमी अर्थात् 7-8-1817 को हुई किन्तु इसमें संदेह यह है कि सी.पी.ब्राउन के अनुसार वे सन् 1840 में जीवित थी। हो सकता है कि शक संवत् 1738 गलती से 1798 के स्थान पर छप गया। अतः इनकी मृत्यु तिथि 7-8-1877 को मानी जाए और इसलिए वे रामानुज के समान 120 वर्ष से अधिक की आयु को प्राप्त करने वाली सिद्ध हुईं।

- गोपी कृष्ण

नरसिंहस्वामी उनके ग्राम के स्थान देवता थे जिनकी पूजा वे बचपन में करती आई थीं और उन्होंने 1850 ई. के लगभग तक 90-95 की परिपक्व आयु प्राप्त की।

अपनी साहित्यिक कृतियों में उन्होंने श्रीवेङ्कटेश्वर और श्रीतरिगोंड नरसिंह स्वामी को एक ही माना है।

स्वर्गीय श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्रुलु ने भी 16 अनुच्छेदों का एक संक्षिप्त ग्रंथ तैयार किया जिसमें अधिकतर पुराने तेलुगु कवियों की पांडुलिपियों से प्राप्त रचनाएँ हैं। इनमें से कुछ रचनाएँ श्रीवेङ्कटेश्वर को समर्पित हैं, किन्तु सभी में वेङ्कटेश्वर का नख-शिख वर्णन, श्रृंगार (अलंकार) व हीरे जवाहरात का मनोरंजक वर्णन है। दो तीन कवियों ने कुछ व्यंग्यात्मक पंक्तियाँ भी लिखी हैं। ये कवि 14 वीं शताब्दी से लेकर 19 वीं और 20 वीं शताब्दियों तक के हैं।

एर्रा - प्रगड

इनमें से प्रारंभिक कवि एर्रा प्रगड हैं जो चौदहवीं शताब्दी में जन्में थे। इन्हें 'शंभुदास' (शिव के दास) और 'प्रबंध परमेश्वर' (*प्रबंध काव्य* के प्रख्यात रचनाकार) कहा गया। इन्होंने 'तेलुगु महाभारत' के 'आरण्य पर्व' का बचा हुआ अंश पूरा किया। इसके अन्य भागों को पहले ही 'नन्नय भट्ट' और 'तिक्कना सोमयाजी' ने पूरा कर दिया था। इन्होंने 'नृसिंह पुराणमु' की रचना कर उसे कर्नूल जिले के अहोबिलम् श्रीनरसिंह स्वामी को समर्पित किया। तेरह छंदों में से अंतिम सात में, कवि बताता है कि *सांख्य, योगी, शैव, पांचरात्र* और अन्य भिन्न भिन्न लोग नरसिंह स्वामी की पूजा भिन्न भिन्न तरह से अपने मतानुसार करते हैं (तुलना करें श्लोक - 'यम् शैवाः' नं 4 प्रार्थना)।

(ताल्लपाक अन्नमाचार्य ने भी इसी प्रकार के विचारों के आधार पर एक *संकीर्तन* की रचना की। किन्तु पूरा करने पर इसे एक भिन्न धरातल प्रदान किया। यह *बौली-राग* है और प्रारंभ इस प्रकार होता है - 'एंत मात्रमुन नेव्वरु दलचिन अंत - मात्रमे नीवु, अंतरंतरमुलनेंचि चूडा पिंडन्ते निप्पट्टी अन्नट्ट' यह *पल्लवि* (पहली दो पंक्तियाँ) है। इसका अर्थ है - मनुष्य की भक्ति की पराकाष्ठा होने पर, आप भी प्रत्युत्तर देते हैं ठीक वैसे ही जैसे जैसा आटा जिस मात्रा में प्रयोग किया जाता है वैसा ही आकार प्रकार में उसका *अत्तिरसम्* या *अप्पम* या मीठा ढोकला बनता है। *वैष्णव* आपकी पूजा करते हैं विष्णु के रूप में, *वेदांती* आपको *परब्रह्म* मानते हैं, *शैव* आपको शिव समझते हैं और *कापालिक* आपको आदरपूर्वक आदि-भैरव मान कर पूजते हैं।

'शाक्त लोग अपनी तरह से आपको शक्ति का स्वरूप मानते हैं, मनुष्य अपनी इच्छाओं और भावनाओं के अनुरूप आपको अनेक रुपों में ध्यान करते हैं, निम्न मनोकामना रखने वाले आपसे धन-

वैभव की कामना करते हैं। इनके प्रति आप इतने उदार नहीं दिखते। किन्तु जो आपको ऊँचे भाव से देखता है उसे आप अद्भुत व विराट दिखाई देते हो।'

'कोई वस्तु आप से परे है (आप हर समय तत्पर हैं) जिस प्रकार से कमल का फूल सदा एक ही प्रकार से खिलता है चाहे वह सामान्य जल हो या (भगीरथी) (गंगा जल) से भरे गंगा के किनारे पर स्थित बावडियों से सिंचित जल में उत्पन्न कमल हो। हे भगवान श्रीवेङ्कटपति! आप पर हमारा पूर्ण विश्वास है आपकी ही टेक हमें है, आसरा है, हम आपकी शरण में हैं। हम आपकी शरण में स्थान पाना चाहते हैं। मैं यही अपना एक मात्र जीवन लक्ष्य समझता हूँ कि आपके चरणारविंद में मुझे शरण मिले।')

ताल्लपाक अन्नमाचार्य :

एक अन्य रचनाकार ताल्लपाक अन्नमाचार्य ने 'वेङ्कटेश्वर शतकमु' की रचना की। वे 15 वीं शताब्दी के थे। वे श्रीवेङ्कटेश्वर मंदिर में संकीर्तनाचार्य थे और उन्होंने 32,000 *संकीर्तनों* की रचना की। उन्हें विजयनगर साम्राज्य के दूसरे वंश के राजा सालुव नरसिंह से अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त हुए। उनका शतक वेङ्कटेश्वर को संबोधित हैं और वे भगवान को संबोधित करते हुए उन सभी दृष्टांतों जैसे उनकी सहधर्मिणी अलमेलुमंगा से संबंधित महिमाओं आदि को गाते हुए उनके गुणानुवाद को प्रस्तुत करते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं

'ओ वेङ्कटेश्वर! लोग इस धरा पर आपकी सहधर्मिणी को अलमेलुमंगा कहते हैं, जिसने हस्त कोमल पत्तों के समान, वे संसार के रक्षक की सहधर्मिणी, समस्त विश्व की माता , सभी जीवों की मूल उत्पत्ति कारक, आपके कृपाकटाक्ष के पडते ही हम धन्य हो गए और पादों से तर गए। आप दोनों की शोभायात्रा में लोग गली-गली आपकी *आरती* उतारते हैं।

'ओ श्रीवेङ्कटेश्वर! स्वर्ग की देवियाँ आपकी सहधर्मिणी अलमेलुमंगा के गुण गाती हैं कि उनकी कृपादृष्टि में ही आपकी कृपादृष्टि है। ब्रह्म और अन्य उन्हें बुलाते हैं, प्रार्थना करते हैं 'कृपया अपने स्वामी को हमारी ओर दृष्टि डालने के लिए कहो' और फिर आपके समक्ष वे दंडवत् होते हैं।

बडे बडे *ऋषि-मुनि* आपकी अर्धांगिनी को संबोधित करते हैं, 'ओ! अलमेलुमंगा, वेङ्कटेश्वर आप हैं और आप वेङ्कटेश्वर हैं। आप दोनों में भेद नहीं है। आपके शब्द उनके हैं। वे वास्तव में आपका मन है और समस्त जीवों का जीवन आपके हाथ में है।' 'अलमेलुमंगा जब आपकी ओर मुडकर देखती हैं तो मानो फूलों का सारा उपवन आप को आप्लावित कर देता है। वे आपकी पूजा करती है। आपकी प्रिय सहचारिणी अलमेलुमंगा अमृतमय हैं, जब समुद्र मंथन हुआ तो वे उत्पन्न हुईं। इन शब्दों से *मुनिगण* उनकी प्रशंसा करते हैं।

'ओ वेङ्कटेश्वर! मैं तुमारी धर्मपत्नी का सम्मान करता हूँ, उनके समक्ष नतमस्तक होता हूँ। मैं गुणहीन हूँ, बड़ी कठोर जिंदगी जी रहा हूँ, मैं दुष्ट हूँ, पापी हूँ, जन्म से ही अभागा हूँ। मैं शरणगत हूँ। ओ अलमेलुमंगा, आपकी दया मुझे प्राप्त हो और मैं बहुत चाहत से आपकी कृपाकौर का आकांक्षी हूँ। मैं आपकी पूजा प्रार्थना और अर्चना के लिए शब्द रूपी पुष्प गुच्छों का प्रयोग करता हूँ।'

ताल्लपाक पेद्द तिरुमलाचार्य

अन्नमाचार्य के पुत्र पेद्द-तिरुमलाचार्य थे। उन्होंने 'श्रीवेङ्कटेश्वर सुप्रभातम्' को सरल तेलुगु में *संस्कृत श्लोकों* के अनुसार ही *द्विपदों* में रूपान्तरित करके प्रस्तुत किया। उसको 'श्रीवेङ्कटेश्वर प्रभात स्तवमु' (प्रातःकालीन प्रार्थना) नाम दिया। यह इसलिए कि भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर को रात्रि की निद्रा के पश्चात् प्रातःकालीन पूजा के समय जगा दिया जाए जिससे संत महात्मा और स्वर्गिक देवतागण उनकी अर्चना कर सकें और भगवान उन्हें आशीर्वाद दे सकें। उन्हें उनका मनोवांछित वर प्राप्त हो कर समृद्धशाली बने। वे कृष्णदेवराय के ही नहीं, अच्युतराय और सदाशिवराय के भी समकालीन थे। कृष्णराय ने इन्हें कोई आश्रय नहीं दिया। किन्तु सदाशिवराय और अच्युतराय दोनों ने उन्हें सहायता दी और इनके आश्रयदाता बने और इन्हें कई गाँव भेंट में दिए।

रेवनूरी वेंकटार्य

अन्नमाचार्य के दोहित्र (नाता), उनकी द्वितीय पुत्री तिरुमलांबा के पुत्र [तिरुमलांबा अन्नमाचार्य की द्वितीय पत्नी अक्कांबा की पुत्री थी] थे। उनके पिता का नाम रेवनूरि तिरुमलकोंडयार्य था। वे 16 वीं शताब्दी के थे। उन्होंने एक तेलुगु काव्य 'श्रीपाद-रेनु-माहात्म्यमु' की रचना की। [(श्री पादरेणु का लाभ एवं गुण। श्रीपादरेणु साफ किए गए कपूर में सिवेट का तेल डालकर हरेक शुक्रवार को भगवान के चरणों (*श्रीपाद*) में कुछ समय के लिए रखा जाता था और तब वह मुख्य रूप से मंदिर के *मिरासी* सेवकों में बाँट दिया जाता था और साथ ही उसे भगवान के *प्रसाद* के रूप में थोडा थोडा करके तीर्थयात्रियों में भी बाँट देते थे।)] कवि इस प्रसाद की उच्च गुणवत्ता का बखान करता है। यह मधुर *श्रीपादरेणु* (भगवान के चरणों की धूल) उनकी है जो शेषाद्रि के मंदिर में रहते हैं और इनकी सुगंध अगर से भी ज्यादा खुशबूदार होकर फैली हुई है। यह चंदन, कमल, चंदनम्, सुवासिति कपूर, *वकुलपुष्प* (पगड) और *जव्वादी* से भी बढ़कर है। वे भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वे उसकी जिह्वा पर विराजमान होकर, उन्हें महान कविता करने का वर दें। भगवान वेङ्कटेश ने ही *धन्वंतरि* (दैववैद्य) के रूप में अवतार लेकर हर रोग के लिए औषधि का पता लगाया। चाहे रोग कितना ही पुराना क्यों न हो उनकी *पादरेणु* से वह 'छू- मंतर' हो जाता है। इसमें ऐसी दैवी शक्ति है। वे प्रर्थना करते हैं कि इस *पादरेणु* में भी वैसी ही अनेक शक्तियाँ आ मिली हैं जिससे उनके रोग-शोक जड से मिट जाएँ और उन्हें अमरत्व का वरदान

मिले। वे यह भी कहते हैं कि इसमें अद्भुत शक्ति है और इससे गूंगापन, बहरापन, अज्ञान, हकलाहट आदि रोग इसलिए दूर हो जाते हैं क्योंकि इसे श्रीनरसिंह स्वामी के पवित्र चरणों के पास क्षणभर के लिए स्थान मिला है। इससे *परमपद* (स्वर्ग) प्राप्त होगा और *परम वैष्णवों* (विष्णु का अनन्य भक्त) को इसके स्पर्श मात्र से उच्च कोटि का स्थान प्राप्त होगा। यही *पादरेणु* भगवान विष्णु के अनेक *अवतारों* का कारण बनी। अंत में वे कहते हैं कि यही पादरेणु अन्नमाचार्य *(संकीर्तनाचार्य)* की सफलता का मूल है। वे प्रार्थना करते हैं कि उनकी और उनके लोगों की रक्षा हो जाय ये चरण रज जो भगवान के चरणारविंद के पास थी और जो अलमेलुमंगा के पति हैं सदा सर्वदा उन्हें और भक्तों की रक्षा करें।

काकमानि मूर्ति कवि

काकमानि मूर्ति कवि सोलहवीं शताब्दी के एक प्रतिष्ठित तेलुगु कवि हैं। उन्होंने अपनी काव्य कृति 'राजवाहन विजयमु' को श्रीवेङ्कटेश के श्रीचरणों में समर्पित किया। वे प्रार्थना करते हैं कि अपने दो नेत्रों से कृपा कटाक्ष से, अपने सदा प्रार्थनारत भक्तों का अज्ञान मिटा सकते हैं। भगवान करे कि आपके गले में पडी हुई यह *वैजयन्ती* (स्वामी के वक्ष पर लटकने वाली माला) माला हमें धन धान्य से भर दे। शेष पर्वत के भगवान मेरे समक्ष मेरे स्वप्न में प्रकट हुए, उन्होंने माँ अलमेलुमंगा का हाथ पकडा था और उनके अंगों पर स्वर्णजटित पीतांबर शोभित था। शंख, चक्र, हंस-चक्र (गोलाकार थाली जिस पर हंस के चिह्न छपे हों) उनके कंधे पर शोभायमान थे और *कौस्तुभ मणि* से वे सुशोभित थे। ऐसे परम आराध्य को वे अपनी कृति समर्पित करते हैं जो कवियों के आश्रयदाता हैं। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि मेरी प्रत्येक अभिव्यक्ति सटीक व सुष्ठ होगी एवं इतनी मधुर जैसे चीनी, फल, पेडा और उक्केरा (गेहूं से बनी गुड मिश्रित मिठाई) तथा मनोहरम् (मुरमुरों तथा गुड के लड्डू)। मेरे द्वारा लिखा गया प्रत्येक छंद पूर्णतया अमृत तुल्य होगा। फिर क्यों मैं अपनी *कृति* (गीता) को वेङ्कटाद्रि पति के चरणारविंद में अर्पित करने से रोकूँ? क्या श्रीवेङ्कटाद्रि के गुणानुवाद गायन करना उचित नहीं? वे सर्वत्र विद्यमान हैं जैसे पेडों की कदंराओं में, जलाशयों में और बहते झरनों में, भगवान शंकर की *जटाओं* में से निकलती - *गंगा जल* में और इस पाप-विनाशन तीर्थ में। क्या यहाँ यह उचित नहीं कि वेङ्कटगिरि भगवान का गुणानुवाद गायन किया जाए? इस पर्वत पर प्रत्येक वृक्ष चंदन का है, हर पत्थर हीरा है और हर जंगली जानवर कस्तूरी मृग और सिंह है, हर झरने से गंगा जल बहता है, हर तीर्थ पापों को कुल्हाडी से काटता है, हर *मंटप* स्वर्णिम, हर ऋषि भृगु-महर्षि, हर स्थान आंनद का स्थान, हर स्थान अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है और पवित्रता से भरा यह *अमृत* है।

यह स्थान सामान्य नहीं, भगवान की स्वर्णिम चोटी से कई बार भक्तों को यह भ्रम हो जाता है कि ये कहीं सुमेरु पर्वत तो नहीं? और इसी के पास बलि पीठम् पर दुःखी-पीडित, गूंगे, बहरे, अंधे, लंगडे-

लूले और संतानहीन दंडवत प्रणाम करते हैं। उनका वर्तुलाकार चरण स्थित वेदी मन में आशा का संचार कराता है। उनके मंदिर से *चंदन, कस्तूरी, केसर* की गंध आती है, और अलमेलुमंगा पति जो ऐसे सुवासित मंदिर में वेङ्कटगिरि पर रहते हैं, वे अपने भक्तों के जन्म जन्मान्तर के पापों को नष्ट कर देंगे।

अप्पपा (हा! हा!) क्या हमें इस प्रकार चंदनम्, कर्पूर, सिवेट तेल, कस्तूरी आदि से सुवासित जल से, जो उनके गर्भगृह से मधुर सुवास बिखेरते हुए हर शुक्रवार को जो चरणामृत मिलता है, उससे आचमन नहीं करना चाहिए?

श्रीवेङ्कटेश ने अपने हाथ में एक रक्षाबंधन बांध कर रखा है जिससे वे मानव मात्र की रक्षा के लिए वचनबद्ध हों। वे अपने भक्तों के जन्म जन्मांतरों के पाप नष्ट कर देंगे, उनकी गरीबी दूर कर देगें, सूजन दूर कर देंगे और ऐसी अनेक असाध्य बीमारियों को जड से समाप्त कर देंगे और उन्हें शैतान तथा ऐसी ही पापात्माओं से मुक्त करा देंगे। वे अच्छाई के पर्याय हैं, *अमृत* के साक्षात् देव हैं, समुद्र मंथन से वे ही *अमृत* को असुरों से छीन लाए थे, संसार में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। *चक्रधारी* हैं, पवित्र नामधारी हैं और अंधकार में प्रकाश का किरण हैं।

देवता स्त्रियाँ *मुक्कोटि* (*मुक्कोटि द्वादशी* जो जनवरी के अंत में आती है और यह स्थान-दान का एक पारंपरिक उत्सव है) के अवसर पर वेङ्कटगिरि की ओर चल पड़ती हैं और मोद के साथ कहती चलती हैं कि भगवान की अर्धांगिनी तो उन्हें बिना कटा चावल ही पकाकर दे दिया करती हैं और यह भी नहीं सोचतीं कि भगवान उसे पचा भी पाएँगे या नहीं, और वे बिना साफ की गई थालियों की मालकिन हैं और वे भगवान को ऐसी स्वर्णमयी पोषाक पहनाती हैं बिना यह देखे कि ये पोशाक उन पर जँचती भी है या नहीं। वे यह भी कहती हैं कि भगवान तो इस प्रकार खुले हृदय से अपना धन अपने भक्तों पर लुटाते हैं और उसका ब्याज केवल एक *कासु* से ज्यादा नहीं लेते। वे भक्तों के कानुका (भेंटों) में उपस्थित हैं और अपने *भक्तों* के वचनों को स्वीकार करके उन्हें कृतार्थ बनाते हैं।

दूर दूर से तीर्थयात्री जैसे कटक, कल्याण (आज के ओडिशा तथा कर्नाटक)और दिल्ली क्षेत्रों से *ब्रह्मोत्सव* (सितम्बर-अक्तूबर में होने वाला वार्षिक उत्सव) में वेङ्कटेश्वर के दर्शनार्थ तिरुमल आते हैं। वे ऐसे वेङ्कटेश्वर के दर्शन करने वाले हैं जिन्होंने अपने शुद्ध अंतःकरण में श्रीलक्ष्मी को स्थान दिया है। वे अंधे को नेत्र देते हैं, बाँज स्त्रियों को संतान और लंगडा एवं पंगु व्यक्ति को शीघ्र ही पर्वत लांघ जाने की शक्ति देते हैं। इसी प्रकार बहरे सुनने लग जाते हैं और गूंगे बोलने लगते हैं। ऐसे ये तीर्थयात्री आपस में बोलते हैं और प्रसन्न होते हैं।

तीर्थयात्री सुदूर दक्षिण में बसे *सेतु* (रामेश्वरम् सेतु) से आते हैं और *काशी* (बनारस) से भी अर्थात् उत्तर भारत से भी। ये सब वेङ्कटगिरि पर्वत पर *वैशाख तीर्थ* के समय प्रतिदिन वेङ्कटेश की पूजा और उनके स्नान (अभिषेकम्), *चंदन* आदि को देखकर धन्य होते हैं। उनके हाथ में *पारिजात* पुष्प होता है जिसे वे अपने नयनों से लगाते हैं। यह उनके लिए एक अनोखी बात है और इसलिए उसे अपने बालों में खोंस लेते हैं। कभी उन पुष्पों से हार बनाकर पहन लेते हैं और स्वयमेव प्रसन्न हो जाते हैं। वे *आकाशगंगा तीर्थ* जाकर स्नान आदि करके अपने शरीर को स्वच्छ और निर्मल बनाते हैं।

बहुत ही विलक्षण परिवार-प्रमुख हैं श्रीवेङ्कटेश, लक्ष्मी पति। उनके पुत्र हैं *मन्मथ* (काम देव), उनकी पुत्री हैं भगीरथी (गंगा नदी), उनकी आराध्या हैं माँ भूमि, वे निवास करते हैं गिरि पर। उनके बडे भाई हैं बलभद्र (बलराम), उनके ज्योष्ठ पुत्र ब्रह्म हैं, इनकी पुत्र-वधू शारदा (सरस्वती) उनके श्वसुर समुद्र और उनके दूसरे श्वसुर राजा भोज हैं, उनके हृदयस्थल पर विराजमान रत्न मानिक है और उनके वस्त्र शुद्ध स्वर्ण से बने हैं। ये सब मुक्कंटि (त्रिनेत्र शिव) के पास नहीं, चौदह भुवन उनके उदरस्थ हैं। क्या कोई ऐसा भगवान है जो विशालहृदय और भक्तों पर कृपा करने वाला है, जैसे *शेषशैल* के निवासी श्रीवेङ्कटेश जी हैं?

सिद्धिराजु तिम्मराजु

सिद्धिराजु तिम्मराजु, कोंडवीडु के गवर्नर (राज्यपाल) थे। वे ओबलराजु के पुत्र और आरुवीडु परिवार के अलिय-रामराय के भानजे थे। वे सोलहवीं शताब्दी में थे तथा उन्होंने तेलुगु में एक काव्य 'परमयोगी विलासमु' की रचना कर उसे मंगलगिरि के नृसिंहस्वामी को समर्पित किया। एक छंद (तेलुगु की *सीसमालिका*) में वे भगवान वेङ्कटेश्वर के शांत चित्त हो खडे रहकर अपने भक्तों को देखने की मुद्रा का वर्णन करते हैं। उनका बायाँ हाथ उनके कटि पर रखा हुआ, उनकी स्वर्णिम पोषाक, उनका दायाँ दान-हस्त इनके चरणों की ओर इंगित करता हुआ, मानो वह चरण भक्तों व दासों के लिए शरण स्थली है। उनके कृपापूर्ण कटाक्ष, गले में मुक्ता की माला, उनका जगमगाता *किरीट* (मुकुट) और दोनों ओर *शंख* एवं *चक्र* की शोभा देखते ही बनती है।

तरिगोप्पुल मल्लन

तरिगोप्पुल मल्लन सोलहवीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध तेलुगु कवि थे। वे चंद्रगिरि के रहने वाले थे। उन्होंने 'चंद्रभानु चरित्रमु' नामक काव्य की रचना की और इसे माहुरपुर के भगवान दत्तात्रेय को समर्पित किया। वे श्रीवेङ्कटेश के दर्शनार्थ आने वाले करोड़ों तीर्थयात्रियों की यात्रा का मनोहारी वर्णन करते हैं। कई ने अपने गालों को तारों से बाँधकर मुँह को ताला लगा लिया है और सिर पर संकल्पित

कानुक (चढ़ावा) को संभाले हुए हैं, शरीर को सिर पर संकल्पित किए हैं और अपने प्राण को मुट्ठी में दबाए हैं। कुछ लोग अपने शरीर को धरती पर लिटाकर उसे गोल गोल घुमाते हुए लुढकते आ रहे हैं। कुछके भक्त एक एक कदम चल दंडवत् प्रणाम करते हैं और कुछ इक्के - दुक्के हैं कुछ समूह में हैं। वे सबसे पहले भगवान श्रीगोविंदराज को शेषशायी के रूप में दर्शन करते हैं जो शेषनाग पर कुछ उचके से लेटे हैं और उनके मुखारविंद की रक्षा सहस्त्र फण ने कर रखी है। बायाँ हाथ जाँघ तक जाता है और फैला हुआ है और दायाँ हाथ तकिए का काम दे रहा है। *कौस्तुभ* उनके हृदय की दायीं ओर झुकी है और उनका *श्रीवत्सं* चिह्न झुकी हुई है। उनकी दो चमचमाती आँखें चरणों की ओर देख रही हैं। ये तीर्थयात्री फिर अनेक भिखारियों के द्वारा की जा रही मसखरियों, चहल बाजियों, खेल तमाशों, गायन-वादन-नृत्य और अन्य क्रियाओं को देखकर प्रसन्न होते हैं।

फिर ये तीर्थयात्री तिरुमल गिरि चढने लगे। स्त्रियों को अधिक जोर लगाना पडता है तो, वे पसीने पसीने हो जाती हैं। रास्ते में इधर उधर कई बार गहरी गहरी साँसे लेती हुइ ठहर जातीं। अपने कपडों से ही अपना पसीना पोंछ डालती हैं।, उनकी टाँगे काँपने लगती हैं। थकान बढ जाती और थकी टाँगों पर उनका शरीर अशक्त-सा होता जाता है। फिर भी वे अखंड आनंद से भर जाती हैं जब वे अंततोगत्वा मंदिर के द्वार पर जा पहुँचती हैं।

उन्होंने देखा कि श्रीवेङ्कटेश अपने दायें हाथ से पृथ्वी की ओर इशारा कर रहे हैं। उनका बायाँ हाथ जंघे से सटकर है। उनकी तलवार लटकी है और उस रूप को देखकर भक्तों में *भक्ति* जागती है।

कवि कहता है कि 'मैं उस विष्णु की पूजा करता हूँ जो अपने हाथ में चक्र धारण करता है, जो अपने हृदय में लक्ष्मी को विराजमान रखता है। जो हर समय अपने *भक्तों* की रक्षा करता है। जिसने इस पृथ्वी की रक्षा हेतु *वराह* का अवतार लिया और अनेक नृशंस *राक्षसों* को मारा है।

पिंगळि सूरनार्य

पिंगळि सूरनार्य सोलहवीं शताब्दी के एक तेलुगु कवि थे। उन्होंने पाँच तेलुगु रचनाएँ की। वे कर्नूल जिले के नंद्याल नगर के क्षेत्रीय शासक कृष्णराय के संरक्षण में थे। उनकी बाद की कृतियों में से एक है 'कलापूर्णोदयमु' (सी. पी.ब्राउन ने इसे 'द मेटामॉर्फोसिस' के नाम से प्रस्तुत किया) और उन्होंने यह कृति अपने संरक्षक कृष्णराय को समर्पित किया। नंद्याल परिवार के मुखिया अलिय-रामराय की आरवीडु वंश के सहयोगी थे और उसके भाई आरवीटि बुक्कराय थे। काव्य के दूसरे खंड में मणिकंधर, दैवी संगीत में नारद मुनि के शिष्य, समस्त भारत वर्ष में तीर्थयात्रा के लिए निकले। उन्होंने यमुना नदी के तट से यात्रा प्रारंभ की। वहाँ से वे मथुरा (मुत्तर), हरिद्वार, शालग्राम पहाड, तथा बदरिकाश्रम में गए,

नैमिषारण्य (निम्सार), कुरुक्षेत्र, प्रयाग, काशी, अयोध्या, गंगासागर-संगमम् (जहाँ गंगा नदी समुद्र में जा मिलती हो), नीलाचल, जगन्नाथ धाम, कूर्मविभु (कच्छप आकृति), सिंहाचल स्वामी, और अहोबल स्वामी क्षेत्रों में से होते हुए वेङ्कटेश्वर के मंदिर में पहुंचे।

उन्होंने *स्वामी-पुष्करिणी* के पवित्र जल में स्नान किया, अपनी अर्धांगिनी समेत भूवराह स्वामी की पूजा की और फिर वे भगवान वेङ्कटेश के भव्य मंदिर में प्रवेश कर, प्रथमतः *परिवार-देवताओं* (परिसर में उपस्थित अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ) को देखा। उनके प्रति आदर व सम्मान का भाव प्रकट किया। फिर उन्होंने वेङ्कटेश के गर्भ गृह की ओर देखा। अचल-सुदृढ, कमल जैसे कोमल चरणों में नाना प्रकार के जवाहरातों से युक्त पाजेब चमक रही थी। स्वर्ण जटित तगडी कमर में, जिसमें हीरे जडे थे, नाभि में चमकता जवाहरात, गले में *वैजयन्तीमाला,* वक्षःस्थल में श्रीलक्ष्मी विराजमान, वरप्रदाता की मुद्रा में दायें हाथ को नीचे की ओर किए हुए, बायें हाथ को कमर पर टिकाए, दो अन्य सुदृढ पिछले हाथों में *शंख* और *चक्र,* मोतियों की लडियों की माला गले में शोभित, किसलय से गाल, मुस्कान भरा चेहरा, कानों में *कुंडल,* (मकराकृति के) अरविंद के समान नयन, सुंदर नासिका, दर्शनीय भौंह-युगल, नामम् (मस्तक पर धवलवर्ण के ऊर्ध्वपुण्ड्र) और अतिसुंदर रत्न जटित मुकुट।

हर्षातिरेक से और आश्चर्यचकित हो उन्होंने भगवान के अंग-प्रत्यंगों को देखा। बाद में उन्हें होश आया और उन्होंने भगवान वेङ्कटेश्वर को इस प्रकार संबोधित किया - 'मेरी दृष्टि आपके चरण कमलों से नहीं हटती, भगवान; कैसे मैं ऊपर दृष्टि करके आपके *कनकाम्बरम्* (स्वर्णिम पोशाक) को देखूँ, और यदि आपके *कनकाम्बरम्* को देख भी लूँ, तो कैसे मैं अपने नयन आपके *उदर बँधनम्* (तगड़ी) की ओर ले जाऊँ, मेरे नयन एकटक होकर आपके *उदर बंधनम्* को निहार रहे हैं। फिर आपके वक्षःस्थल की ओर जाकर नयन *श्रीवत्स* चिह्न को देखती हैं और उसी *श्रीवत्स* में अटक जाती हैं, कैसे उन्हें मैं आपके कमल सम आजानु बाहु की ओर ले जाऊँ? जिधर भी मेरी प्यासी दृष्टि जाती है, आपकी कमल सम भुजाएँ, गला ,ओष्ठ, *मकर कुंडल,* चिबुक, नासिका, नयन, भौहें या केश राशि मेरी दृष्टि वहाँ से हटती ही नहीं। मैं क्या करूँ?' इस प्रकार विचार करते हुए, वे मस्त हो गए और समस्त संसार तथा अपना अस्तित्व तक को भी भूल गए। कुछ क्षणों के बाद जब उन्हें होश आया तो उन्होंने भगवान के समक्ष बार बार प्रणाम किया। अपनी वाणी को सचेत किया और भगवान वेङ्कटेश के गुणानुवाद गायन में लग गए।

इस प्रकार उन्होंने तीन दिन और तीन रातें वेङ्कटाद्रि पर्वत पर बिताए और वहाँ से बिदा लेकर काँची की ओर प्रस्थान कर गए।

श्रेष्ठलूरी वेङ्कटार्य

श्रेष्ठलूरी वेङ्कटार्य सत्रहवीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध तेलुगु कवि हुए। वे कंदाल अप्पलाचार्य के शिष्य और तेनालि रामकृष्ण कवि और सारंगु तम्मैया (तेलुगु काव्य 'वैजयंती विलासमु' के रचनाकार) के समकालीन थे। इन्होंने *द्विपद* छंद में एक रचना प्रस्तुत की ''श्रीनिवास-विलास-सेवधी।'' दो दशाब्दि पूर्व देवस्थानम् ने इसे प्रकाशित करने का प्रस्ताव रखा था किन्तु तब यह संभव न हो पाया। स्वर्गीय कोराडा रामकृष्णय्या, एम.ए., देवस्थानम् ओरिएंटल इंस्टिट्यूट ने इस ग्रंथ का अतिसंक्षिप्त रूप तेलुगु गद्य में प्रस्तुत किया और इसे 'श्रीनिवासविलासमु' शीर्षक दिया और यह संक्षिप्त गद्य काव्य 1954 में प्रकाशित हुआ। जैसा उन्होंने बताया है कि मूल काव्य कृति के रचनाकार ने यह तेलुगु काव्य 'श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यम्' के विषय में 12 *पुराणों* में दिए गए परस्पर विरोधी एवं भिन्न विचारों का सम्मेलन कराने हेतु रचा था।

9 *तीर्थों* की उपलब्ध 'स्वामि पुष्करिणी' इसके प्रथम अंश में इस प्रकार दी गई है-

1) वराह तीर्थ - उत्तर पश्चिमी कोने में;
2) धनद (कुबेर, धन के स्वामी) - तीर्थम्, उत्तर की ओर;
3) गालव (ऋषि) - तीर्थम्, उत्तर -पूर्व में ;
4) मार्कंडेय (एक प्रमुख शिव-भक्त) - तीर्थम्, पूर्व दिशा में,
5) अग्नि-तीर्थम् - उत्तर पूर्व में;
6) यम-तीर्थम् (मृत्युदेवता) - दक्षिण दिशा में;
7) वशिष्ठ (एक मुनि) - तीर्थम्, दक्षिण-पश्चिम में
8) वायु (वायु के देवता) - तीर्थम्,पश्चिम की ओर अश्वत्थ वृक्ष की छाया में
9) सरस्वती (ज्ञान की देवी) - तीर्थम्, पुष्करिणी के मध्य में।

तत्पश्चात् इसमें वीर-चोळ् की गाथा प्रस्तुत की गई है। ये चाळ् प्रदेश के राजा थे। एक बार ये शिकार पर गए और स्वर्णमुखरी नदी के किनारे एक उपवन में वेङ्कटाचल पर्वत के पास नागेन्द्र की पुत्री नंदिनी, से मिले। वहाँ आपसी सहमति से उन्होंने *गांधर्व* विवाह किया। नंदिनी माँ बननेवाली थी। तब उसने अपने पिता से चोळ् राजा के बारे में कहा। कुछ समय के उपरान्त, वह पुत्रवती हुई। जब बालक बडा हुआ तो उसने अपनी माता से अपने पिता के बारे में पूछा और उन्हें देखने की इच्छा प्रकट की। नागेन्द्र धनंजय ने अपने नाते को एक सुरंग के मार्ग से चोळ् राजा के पास भेजा। अपने मंत्रियों की सलाह पर उसने नंदिनी को भी भेजा। लडके का नाम 'तोंडमान' रखा गया। उसने वेङ्कटगिरि के पास

अपनी राजधानी बनाई और जब वह राजा बना तो उसने एक *पांड्य* राजकुमारी और कई अन्य राजकुमारियों से विवाह किया।

जब एक बार तोंडमान एक उपवन में विहार कर रहा था, कुछ सेवक उसके पास दौडते हुए आए और उन्होंने बताया कि दूर कोई चींटियों द्वारा बनायी गयी एक बिल देखा है जिसपर दूध की धारा प्रवाहवत् स्वतः बह रही है और चारों ओर भूमि में फैल रही है। तोंडमान ने इसके बारे में शयनकक्ष में, सोने से पूर्व सोचा। रात को स्वप्न में उसने देखा कि कमल नयन विष्णु उससे अपनी उपस्थिति के बारे में सूचित कर रहे थे। अगली सुबह शिकारी-प्रमुख वासु ने यह बात राजा को बताई कि एक श्वेत वराह हर रात को अनाज के खेत में आकर अन्न खा जाता - है। यदि वे उस पर तीरों से प्रहार करने लग जाते तो वे तीर सारे टुकडे टुकडे होकर बिखर जाते हैं। कहीं से कोई अलौकिक आकाशवाणी होती है कि यह वराह उनका प्रतिनिधि देवता है और आदेश दिया जाता है कि इस स्थान पर राजा को लाया जाए।

अगले दिन तोंडमान उसी स्थान पर लाखों दूध के बर्तन लेकर पहुँचे और उन्होंने भी रात्रि में श्वेत वराह को खेत में अनाज खाते देखकर उस पर तीर का निशाना साधा, किन्तु शिकारी वासु ने उन्हें ऐसा करने से रोका और वराह एक गुफ़ा में जा घुसा। जब राजा वहाँ से बाहर निकला और उस स्थान को दूध से भिगो दिया, तब वराह अवतार वहाँ प्रकट हुआ और कहा, 'एक बडा *विमान* बनाओ, एक मंटप का निर्माण कराकर उसके चारों ओर *प्राकार* दीवार बनवाओ और *वैखानसागम* की पूजा विधान का आचरण करके धन-धान्य एवं समृद्धि प्राप्त करो। मैं श्री *स्वामि-पुष्करिणी* के दक्षिण की ओर *श्रीनिवास* के नाम से निवास करता हूँ। यदि तुम *विमान, प्राकार* और *मंटप* इन दो स्थानों पर बनवाओगे और नित्य *पूजा* प्रांरभ कराओगे तो *वैकुंठपुर* में तुम्हारा स्थान सहज व सरल होगा। इतना कहकर वराह अंतर्धान हुआ। उसने यह सुझाव व निर्देश दे दिया कि यदि राजा उनका पालन करके पूजा-अर्चना का आरंभ करेगा तो अवश्य ही *राज-योगी* कहलाएगा। राजा ने आदेशानुसार, निर्माण कार्य प्रांरभ कराया और अपनी राजधानी से एक ऐसी सुरंग भी बनवाई जिसका पूर्व निर्देश दिया गया था और उसी से प्रतिदिन आकर वह पूजा करता था। भगवान की इच्छा एवं आज्ञा से उसने अनेक उत्सव *कन्या* (सितंबर-अक्तूबर) माह में मनाना आरंभ कर दिए। उन्होंने *वैखानस-मुनि* को मंदिर का *पुजारी* नियुक्त किया और उन्हें पूजा, सजावट और शोभायात्रा को विधिवत् करने के लिए कहा। साथ ही मंदिर की चोटी पर *ध्वजारोहण* भी प्रारंभ कराया। उसने अनेक उत्सवों के अवसर पर भिन्न भिन्न वाहनों से शोभायात्राएँ निकलवाईं जैसे -

1) शेष वाहनम् (सर्प - सवारी) *भक्तों* के लिए।

2) हंस वाहनम् (हंस-वाहनम्) ब्रह्म के द्वारा वाहन के निमित्त दी गई।

3) सिंह वाहनम् - यह दिखाने के लिए कि उन्होंने हिरण्यकशिपु को मारा था।

4) पुष्पक वाहनम् - (कुबेर का *विमान*) यह दिखाने के लिए कि वे और महीसुता (सीता या पद्मावती) इस स्थान पर इस पर आए।

5) गरुड वाहनम् - गज और ग्राह (मगरमच्छ) की जल में लड़ाई के अवसर पर गज-रक्षा हेतु भगवान दौडे चले आए थे। इसी कथा को स्मरण कराने के लिए।

6) हनुमंत वाहनम् - यह याद दिलाने के लिए कि हनुमान (आंजनेय स्वामी) के द्वारा रावण-वध के लिए लंका जाते समय भगवान राम का उनके कंधों पर बैठना।

7) गज वाहनम् - श्रीराम के रूप में अयोध्या का शासन करने के लिए भगवान राम ने शत्रुंजय नामक गज पर शोभायात्रा की थी, उसी के स्मरण में।

8) सूर्य वाहनम् (प्रभा-वाहनम्) - यह दिखाने हेतु कि भगवान को सूर्य के अंतर में होने वाली सभी क्रियाएँ ज्ञात हैं।

9) रथ - महाभारात के युद्ध में अर्जुन के रथ सारथी बनकर उपदेश देने वाले एवं विजय दिलाने वाले श्रीकृष्ण का स्मरण कराने के लिए।

10) तुरग वाहनम् - (अश्व वाहनम्) - म्लेच्छों के संहार हेतु आगामी कल्कि अवतार का पूर्वाभास कराने।

11) शिबिका (पालकी) वाहन - नौ प्रकार के जवाहरातों से युक्त पालकी जो नवमी के दिन आदिवराह मठ की ओर जाती थी और वहाँ से स्नानार्थ स्वामि पुष्करिणी का जल प्राप्त किया जाता था। यह इस बात का प्रतीक है कि भगवान भक्त रक्षक हैं।

कुमारस्वामी, शिव के पुत्र, ने अपने पिता के हितार्थ तारकासुर का वध किया और इससे उन्हें *ब्रह्म* हत्या का पाप लगा। परिणामस्वरुप उनकी भूख - प्यास उड गई और वे थके - मांदे रहने लगे। पाप को दूर करके उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए शिव ने उन्हें 'नारायण मंत्र' का जप करने की आज्ञा दी। यह मंत्र मन ही मन जपना था। माता गिरिजा देवी पार्वती के द्वारा परोसे गए भोजन को खाने के पश्चात् कुमारस्वामी वेङ्कटगिरि (वेङ्कटाद्रि) की ओर चल पडे जहाँ वासुदेव का निवास था। रास्ते में उन्हें

बृहस्पति मिले जिन्होंने उनसे पूछा कि वे विष्णु की खोज में क्यों जा रहे थे, जबकि वे स्वयं विष्णुमूर्ति थे। उन्होंने बृहस्पति से पूछा कि ये किस तरह है? उन्होंने उत्तर दिया 'विष्णु तत्व का एक अणु शिव में विद्यमान है जिससे तारकासुर का वध संभव हुआ। ब्रह्म ने देवताओं को सूचना दी कि उसी तत्व से गिरिजा देवी के एक पुत्र उत्पन्न होगा। इस उत्तर से संतुष्ट होकर कुमारस्वामी वेङ्कटाद्रि के लिए आगे बढ चले। इसी दौरान गिरिजा ने अपने पुत्र की सुरक्षा की चिंता शिवजी से की और दोनों ही वेङ्कटाद्रि की ओर चल पडे। वहाँ उन्होंने देखा कि दो जंगली जानवर मिलकर मैथुन क्रीडारत थे और उन्होंने भी खुद को इसी प्रकार जानवरों में बदलकर आनंद लेना प्रारंभ कर दिया। इस संभोग से जो बीज गिरा, उसे वायु देव ने एकत्र किया और उसे अंजना देवी को दे दिया जो वहाँ पर्वत पर तपस्या कर रही थीं। वे इसे पाकर गर्भवती हो गई और हनुमान का जन्म हुआ। शिव व गिरिजा ने अपने पुत्र कुमारस्वामी को कुमारधारा तीर्थ में पाया।

विश्वक्सेन तीर्थः

इसका उद्भव - जब दुर्वास - मुनि तपस्या कर रहे थे, तब इंद्र ने एक अप्सरा, कुंतल, को भेजा जिससे यज्ञ भंग हो जाए। उसकी शरारतों को बर्दाश्त न कर क्रोध में उस *मुनि* ने उसे शाप दिया कि वह *चेंचु* की जनजाति में *'चंचेत'* के रूप में जन्म ले। इस प्रकार जन्म लेकर वह बडी होकर, आहार-विहार करने लगी जहाँ एक बार वरुण (जल-देव) भी उसके साथ हो लिए। वह गर्भवती हुई और विश्वक्सेन का जन्म हुआ। उसने विष्णु का ध्यान किया और एक विशेष तड़ाग पर जाकर *सायुज्य* (ज्ञान) प्राप्त किया और उनका सेना नायक बन गया। विश्वक्सेन के उस तड़ाग पर ठहरने के कारण और वहाँ तपस्या व समाधि लगने के कारण उस स्थान का नाम *'विश्वक्सेन-तीर्थ'* पड़ा।

कपिल-तीर्थ-शौरी

(विष्णु) कपिल मुनि के रूप में इसी तड़ाग की ओर से जा रहे थे। यही उनका मार्ग था। वे *शिव-लिंग* की पूजा करते थे और इसलिए यह नाम पडा।

गणपवरपु वेङ्कट कवि

सत्रहवीं शताब्दी के गणपवरपु वेङ्कट कवि ने 'श्री प्रबंधराज विजय- वेङ्कटेश्वर-विलासमु' की रचना की और साथ में कई अन्य रचनाएँ भी कीं तथा उन्हें श्रीवेङ्कटेश को समर्पित किया। वे दयालु वेङ्कटनाथ से प्रार्थना करते हैं कि उनकी और उनके परिवार की रक्षा करे और वक्षःस्थल पर अलमेलुमंगा को धारण करने वाले भगवान उनकी इच्छाएँ पूर्ण करें तथा उनके गृह में निवास करें। तीर्थयात्री अपने सिर पर बोझ धारण करके, पग पग पर दंडवत प्रणाम करते हुए और गिरते-पड़ते, प्रार्थना करते पूजा करते,

आगे बढते हैं। *मोकाल्ल-मुडुपु* (एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी तक ऊपर चढने में पैरों से घुटनों तक की ऊँचई पार करना) से बहुत तनाव होता है।

बहुत से तीर्थयात्री *उभयम्* (पूजा और भोग) और *चेरुपुस* (पका हुआ भोजन) जैसे *दोसे, अप्पमुलु* (मीठे चावल के रोटी) और *अतिरसमुलु* (मीठी रोटी) का प्रबंध करते हैं और भगवान का आवाहन करके उन्हें श्रद्धापूर्वक भोग लगाकर इस प्रसाद का बंधु जनों में वितरण करते हैं।

वेङ्कटेश के भक्त समूह थके मांदे तीर्थयात्रियों को सेवा प्रदान करते हैं। वे अनेक उत्सवों में भाग लेते हैं, वडपप्पु (भिगोये गये मूंग दाल), पानकमु (गुड का पानी), केला, नारियल पानी, गर्म पानी, छाछ या मट्ठा, दही, *गंध* (चंदन) युक्त कपूर, सिवेट, पुष्प, छातें, पंखे, इलायची, अदरक, लौंग, कटहल, गन्ना, खजूर और पान के पत्तों में सुपारी आदि का वितरण करते हैं।

कवि कहता है - 'मैंने आपके स्वर्ण घुंघरु युक्त पाजेब से सजे चरण कमलों की ओर दृष्टिपात किया है, वरदान देने वाला आपकी वरद हस्त, आपका बाँया हाथ कमर पर विश्राम मुद्रा में, आपका पीतांबर, आपके गाल में चबाया हुआ सुपारी का टुकडा, आपका विश्वम्भर विशाल उदर, अलमेलुमंगा और श्रीवत्सम् को वक्षःस्थल पर स्थान देना, विशाल वक्षःस्थल, आपके दो हाथ जिनमें शंख और चक्र हैं, आपके कंधों पर शोभित आभरण, गले में शोभित तुलसी-माला, कानों में विराजते मकराकृति कुंडल, आपके लाल ओंठ, कमनीय गाल, सुगठित नासिका,दयापूर्ण नेत्र, स्पष्ट मुख और अद्भुत *किरीट* (मुकुट)', - सब मोहक हैं।

'क्या अलमेलुमंगा- ताई (माता) यह सहन कर पायेगी? वे देखती हैं कि आप गंदी थालियों में से कच्चा चावल खा लेते हैं, आप *कासु* के ब्याज सहित *भेटों* को एकत्र करते हैं। आप एक महान *वैष्णव* के द्वारा खोदी जा रही भूमि में तालाब बनाने के लिए सिर पर मिट्टी ढोने लगते हैं और आपने एक अन्य स्त्री से भी विवाह किया है? आपके इन सब कृत्यों पर गंभीरता से सोचकर उन्होंने, शर्म को छोडकर, विवाह के समय आपको सलाह दी थी।'

'पहले, आपने उन सभी दोषों को दरकिनार कर दिया, शबरी ने आपको जूठे, गंदे बेर खिलाए और इसलिए अपवित्र हो गए। *एरुकल पादुशा* (जंगली जात के मुखिया) की सभी इच्छाएँ पूर्ण कर दीं; वह ऐसा राजा था जिसने आपके भोजन और अन्य सुविधाओं को कम कर दिया और आपका भागीदार बन आपके अनेक जवाहरातों को हडप लिया। क्या यह *पारुपत्यदार* जो आपके सारे क्रियाकलापों को बड़ी चतुराई से चलाता है, आपका मित्र है? कृपया मुझे समझाइए कि इनका मालिक कोई आपके जैसा अन्य देवता है या आप स्वयं हैं, क्योंकि हम ऐसे देवता की खोज में हैं जो हमें सदा सर्वदा संरक्षण बिना किसी लाग लपेट व दोषारोपण देगा।'

[कवि ने यहाँ एक बहुत महत्वपूर्ण सूचना प्रदान की है। पुराने जमाने में अनेक राजाओं और प्रमुखों ने बहुत से बेशकीमती जवाहरात और गहने वेङ्कटेश्वर को भेंट दिए। उन्हें कई गाँव और नित्य सेवा के लिए विविध वस्तुएँ दी गईं। किन्तु यहाँ कवि कहता है कि *पादुशा* (बादशाह) ने उनकी भेंट पूजा की मात्रा घटा दी और उनके अनेक आभूषणों को हस्तगत कर लिया और निश्चय ही अनेक गाँवों और भूमि को भी सेवा से हटा लिया। यह *बादशाह* संभवतः गोलकोंडा का सुल्तान था जिसने तिरुपति के आसपास के इलाकों को, जो विजयनगर की सीमा में पड़ते थे, जीत लिया और वेङ्कटेश्वर मंदिर को भी अधिकार में ले लिया। वह सन् 1660 ई. में हुआ था। उसका नाम अब्दुल्ला कुतुब शाह था। वह 1672 में मृत्यु को प्राप्त हुआ और उसके पश्चात् अबुल हसन कुत्ब शाह आया। औरंगजेब ने गोलकोंडा राज्य को सन् 1688 में समाप्त किया)। कवि उस काल में रहा होगा क्योंकि उसने स्वयं प्रत्यक्ष दर्शन की तरह सुल्तान की नीति, भगवान वेङ्कटेश को पूजा-भोग में कमी और उनके आभूषण आदि के प्रति लोभ को देखा होगा। इस सबका वर्णन वर्तमान काल की क्रिया का प्रयोग करते हुए करता है।]

'यदि आप ईश्वरत्व का दावा करते हैं तो क्या यह सही होगा कि बिना सर्वश्रेष्ठ तिरुपति के अभूतपूर्व प्रबंधन, बिना किसी के दोषों को देखे और स्वर्ग एवं भूतल पर आनंद की वर्षा करे, बिना अलमेलुमंगा के भाग्य को संवारे, बिना अपने भक्तों की पुकार व प्रार्थना को सुने और अपनी कृपा कौर से कृतार्थ किए? आप बिना सोचे समझे ऐसा करेंगे तो आप अकेले रह जाएँगे। फिर भी आप हमारे पिता हैं और अलमेलुमंगा हमारी माता है। अलमेलुमंगा ही हमारे लिए एक मात्र सहारा है, हमारे मन-उपवन में आपकी महान परंपरा का वृक्ष मजबूती से लगाया जाए ऐसी ही कामना है!'

संभवतः वे कवि हैं - गणपवरपु वेङ्कटकवि जिन्होंने 'सर्व-लक्षण-शिरोमणि' की रचना की और इसे एक उप-शीर्षक दिया-'श्री वेङ्कटेश आंध्रमु', और वेङ्कटेश के नाम से लिखे इस ग्रंथ को उन्हीं को समर्पित किया। उन्होंने *शीशमालिका* छंद के तीसरे छंद में कहा कि उन्होंने अनेक *देशीयमुलु* (क्षेत्रीय शब्द), *तद्भावमुलु* (तद्भव शब्द) और *तेंगु पदमुलु* (तेलुगु शब्द) को एकत्र किया है जो देवता और दैविक शक्तियों से संबंधित हैं। *मानव, स्थावर* और *तिर्यक* (कुटिल जीवी) की चार श्रेणियाँ और इसमें *नानाअर्थ-वर्ग* (शब्द समूह जिनका पर्याय है) को 128 पंक्तियों में निबद्ध करके संसार के हितार्थ प्रस्तुत किया है। हर प्रकार के शब्द समूह के साथ उसका संस्कृत पर्याय दिया है जिससे वह कार्य समतुल्य हो जाए अर्थात् ऐसी सेवा योग्य हो जैसे अमरसिंह का 'अमर कोश' या 'नामलिंगानुशासनम्' है। इसके लिए कवियों की शुभाशीस वांछित है और इसे आंध्र-निघंटु (तेलुगु विश्वकोश) कहा जाना चाहिए। इस काव्य के अंत में *गद्य* में उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि वे श्रीपेरुंबुदूरी यतिराजाचार्या (रामानुजाचार्य) के शिष्य थे और वे *नंदवरकुल* से आते थे, उनका *वशिष्ठ गोत्र* था और *आश्वलायन-सूत्र* के हैं। उन्हें

अनेक बार गज, अश्व, पालकी, रत्नजडित आभूषण, वस्त्र, आवास आदि के द्वारा कर्नाट, टुंदीरा (तोंडा-मंडलम्), चोळ, पांड्या आदि ने सम्मानित पुरस्कृत किया है। वे गणपवर मंत्रिमणि और मंगमांबा के पुत्र थे। उन्होंने अपनी कृतियों को तिरुवेंगलनाथ को समर्पित किया जो वेङ्कटाद्रि के देवाधि देव हैं।

चेल्लपिल्ल नरस कवि

चेल्लपिल्ल नरस कवि 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के एक तेलुगु कवि थे। उन्होंने 'वेङ्कटेश्वर-विलासमु' की रचना की। इसमें श्रीवेङ्कटेश्वर का विवाह एक चेंचु जनजाति की कन्या से होने का वर्णन है। कुछ अन्य कविताएँ भी हैं। यह कन्या भगवान वेङ्कटेश के सुंदर मुख का वर्णन करती है, उनकी मधुर मुस्कान, स्वर्णिम चमक, नील वर्णी शरीर, कृपाकटाक्ष, लक्ष्मी को हृदय पर धारण किए हुए रहना, मस्तक पर कस्तूरी तिलक, *शंख-चक्र* धारी, और सिर पर रत्न जटित मुकुट आदि का। फिर वे भगवान पर दोषारोपण करती हैं कि वे *भक्तों* के धन को दान के रूप में प्राप्त करते समय एक पैसा ब्याज को भी नहीं छोडते और एक कौडी भी कम नहीं लेते। किसी भी आतिथेय के घर जाकर अशुद्ध थालियों में कच्चा चावल खा लेना और अपने घर में नित्य अन्नदान भोजन का प्रबंध करना, *प्रसाद* को बेचना और उसके मूल्य को कंजूस की भांति हाथ फैलाकर माँगना आदि करते हैं। इसलिए लोग आपके बारे में तरह तरह की बातें करते हैं और आपके और मेरे बीच के संबंध की चर्चा करते हैं। संभवतः वेङ्कटेश स्वयं उत्तर देते हैं, 'क्या यह एक उत्तम युक्ति नहीं कि *भक्तों* से येन केन प्रकारेण धन ले लिया जाए जिससे वे अपनी कंजूसी से बाज आयें? क्या मेरा सामान्य चावल गंदी और जंग लगी थालियों में खाने से तुम्हारे घमंड को रोकने में सहायक नहीं? क्या यह समानता का सूचक नहीं कि किसी के भी द्वारा अर्पित भोजन स्वीकार कर लिया जाए? क्या यह दानशीलता और भलाई नहीं कि भिन्न-भिन्न प्रकार के पकवान बनाकर *भक्तों* में वितरित किए जाएँ? सुकुमारी, ये कोई ऐसे दाग नहीं या आक्षेप नहीं जिनकी चर्चा की जाए, ये तो अतिशय उत्तम गुणों के परिचायक हैं।

कृष्ण कवि

कृष्ण कवि अट्ठारहवीं शताब्दी के तेलुगु कवि थे। वे चिरुमामिल्ल पापय्य-प्रभु के दरबारी कवि थे। उन्होंने कालिदास विरचित 'शाकुन्तलम्' का, अनुवाद किया और इसे श्रीवेङ्कटेश्वर को समर्पित किया। इसे उन्होंने तेलुगु में नाम दिया - 'शकुंतला परिणयमु।'

उन्होंने लिखा - मैं वेङ्कटपति का गुणानुवाद गायन करता हूँ जो अलमेलुमंगा अर्थात् इंदिरादेवी (लक्ष्मी) का इस प्रकार आलिंगन करते हैं कि उनकी छातियों पर छिडका गया केसर, भगवान के वक्षःस्थल पर भी लग जाता है। वे महान भगवान हैं जिनके कृपा कटाक्ष से समस्त संसार को आनंद

प्राप्त होता है, जिनका सुंदर स्वरूप संसार की भलाई हेतु है, वे ज्ञान के आगार व सागर हैं। अनेक राजा-महाराजा जैसे अंग, बंगाल, चोळ, कलिंग, (वंग, गौल, गौड, विदर्भ), पाँचाल, नेपाल, मालवा, आन्ध्र, शक, युगांध्रा और अन्य क्षेत्र इसी कारण समृद्ध हैं क्योंकि आप उनके संरक्षक हैं; समस्त भुवनों के पति, देवी-देवताओं द्वारा पूजित आपने पूर्ण सज्ञा से वैकुंठ छोड इंदिरादेवी को साथ ले स्वामी-पुष्करिणी तीर्थ के समीप अपना स्वर्णिम आवास बनाया। आप बड़ी भव्यता से शेषगिरि में निवास करते हैं और बडी प्रसन्नता से अपने *दासों* (भक्तों, सेवकों, अनुयायियों) के दंडवत् प्रणाम स्वीकार करते हैं।

वेङ्कटाचल विलासमु

'वेङ्कटाचल विलासमु' में कुछ *मुनियों* की वेङ्कटाचल की तीर्थयात्रा का काव्यात्मक तेलुगु भाषा में सुंदर वर्णन है। इसके रचनाकार, रचना काल और तत्संबंधी अन्य विवरण अज्ञात हैं। मार्ग में ये *मुनिवृंद* श्रीकाकुलम् (चिकचोल) के भगवान की पूजा करते हैं जो कृपापूर्वक उनके पापों का शमन करते हैं। चलते चलते वे कृष्णवेणी (कृष्णा नदी) सागर मलिका पहुँचे और भी कई नदियों को उन्होंने पार किया जो समुद्र से मिलने के लिए प्रवाहित थीं। उन्होंने इन सभी नदियों में स्नान किया और बडी इच्छा से वेङ्कटगिरि पर पहुँचने की ठानी। चलते चलते ये संन्यासी शेषशैल पर पहुँचे जिसमें स्वर्णजटित, जवाहरात जडित अनेक गुफाएँ, तटाक और जलाशय थे। उन्होंने वहाँ मुकुट धारी वेङ्कटेश को देखा जिनके माथे पर *तिरुमणि* (सफ़ेदवर्ण के समानांतर लकीरों का तिलक) मोतियों की लडी मस्तक पर विराजमान थी, कानों में मकराकृति कुंडल, कोमल चमकते गाल, मुस्कान भरा चेहरा, शीतल व अशीतल दृष्टि, बिंवाधर कमनीय, *शंख-चक्र* धारी, प्रसिद्ध *कल्प-वृक्ष* (स्वर्ग का वह वृक्ष जो हर इच्छा पूरी करता है) के समान दो हाथ, नील वक्षःस्थल जिसमें अलमेलुमंगा का आवास, कमर पर कमर बंध और उससे बंधी तलवार, स्वर्ण जडित रेशमी पीतांबर जिसका पल्ला कमर से खोंसा हुआ, पैरों में स्वर्ण घुंघरु वाली पायल, शरीर से शक्ति पुंज निकलता हुआ, समस्त भुवनों के स्वामी के *विरुद* से सम्मानित, भलाई करने वाले, सामान्यातः साफ न की गई थालियों में भोजन करने वाले, बिना कूटा चावल भक्षण करने वाले, संकल्प की गई कासु (धन राशि) को ब्याज सहित वसूल करने वाले, *मुक्कोटी-तीर्थम्* का आनंद लेने वाले, तीर्थयात्रियों का सीढ़ी-सीढ़ी पर साष्टांग दंडवत प्रणाम स्वीकार करने वाले, स्वर्ण मुद्राओं के पट्टा-दाता, शुक्रवार को स्नान दान प्राप्त करने वाले सुवदन देवता, और स्वादिष्ट भोजन को भरपूर मात्रा में लेने वाले हैं। उन्होंने भगवान वेङ्कटेश को *ब्रह्म,* विष्णु और महेश तीनों में अर्थात् त्रिमूर्ति में से प्रथम घोषित किया। उन्हें शेषाचल स्वामी, सर्व ईश, सर्व आत्मा, विश्व पालक, हर वस्तु रूप और सनक तथा सनंदन से पूजित कहा। इस प्रकार अर्चना की कि 'आप ही इस जग के कर्ता, भर्ता और हर्ता हो; आप समस्त विश्व के उदर स्वरूप हो। आप सभी-देवताओं की इच्छा पूर्ण करते हैं, आपकी

महिमा का पार *ब्रह्म,* विष्णु, महेश भी नहीं पा सकते। आप ऐसे परब्रह्म हैं जिनकी थाह हम *तपस्वी* कहाँ पा सकते हैं? आप *शंख, चक्र, गदा, खड्ग, सार्ङ्ग, चाप* धारी हो - क्या इस उपकत्या की बडाई शब्दों में की जा सकती है? इस क्षेत्र का सौंदर्य, इस *तीर्थ* का गुण, और *शौरी* (विष्णु) की कृपा, *गुरु* (देवगुरु बृहस्पति) भी, *वागीश* (ब्रह्म) और फणीश (शेषनाग) भी आपकी महिमा का पार नहीं पा सकते। हमने पूर्व जन्म में कौन से तप किए, कौन से सुकर्म किए, कौन से *नोमु (व्रत)* उपवास रखा कि हमारी जन्म जन्मान्तर की इच्छा पूर्ण हुई। हम श्रीवेङ्कटेश के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर सके। वेङ्कटाचल पति के समान हमारे सब दुःखों को कौन दूर करेगा और पापों को क्षमा कर पुण्यवान कौन बनाएगा।' इस प्रकार अभिव्यक्त करते हुए *मुनिगण* तिरुमल से नीचे उतरे, आलुवारि - तीर्थ (कपिल-तीर्थ) पहुँचे। इस दक्षिणी तीर्थ का जल सब पापों को नष्ट करता है इसलिए इसमें स्नान किया। सर्पों द्वारा सुसज्जित भगवान की पूजा की, भगवान जो आठों दिशाओं में व्याप्त है, जो दिगम्बर है जो त्रिनेत्र हैं अर्थात् शिव रूप हैं। जिनको *नागभूषण, दिगंबर,* फ़ालनेत्र (माथे पर तीसरा नेत्र धारण करने वाले) आदि कहते हैं। इन्हें अनलक्ष (अग्निनेत्र) भी कहते हैं। यही कपिलेश्वर हैं। तत्पश्चात् वे तिरुपति के गोविंदराज मंदिर में गए और उनके समक्ष साष्टांग दंडवत प्रणाम किया। वे भगवान वेङ्कटेश के इस स्थल से विदा लेना नहीं चाहते थे और इसलिए उनके चरणारविंद और उसमें चमचमाती पाजेब व स्वर्ण घुंघुरुओं का ध्यान करते हुए बार बार पीछे मुड मुडकर देखते रहे और धीरे - धीरे आगे की यात्रा पर अग्रसर हो गए।

दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री चेल्लपिल्ल वेङ्कटशास्त्री

दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री एवं चेल्लपिल्ल वेङ्कटशास्त्री उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में लेखन कार्य करते हुए अपने सम्मिलित प्रयासों से एक - सौ से अधिक ग्रंथों के प्रणेता हुए। अपने बचपन व यौवन काल में उन्होंने वेङ्कटेश भगवान के दर्शन किए और उन्होंने भगवान को संबोधित करते हुए कहा, - 'आप *कासु* (पैसा) पर *कासु* एकत्र किए जाते हो और अपना खजाना भरते जाते हो। जितना भी धन आए उसे भंडार किए जाते हो, पर हमें कोई उपहार प्राप्त नहीं होता। भयभीत होकर तीर्थयात्री आपके दर्शन के लिए आते हैं, पर यदि हम उनसे स्वेच्छा से भी मिलते हैं, वे मुश्किल से ही हम पर ध्यान देते हैं। वे सहर्ष आपको न जाने क्या-क्या देते चले जाते हैं किन्तु हमें कुछ भी देने से कतराते हैं। कुछ देते भी हैं तो उस दान को बहुत बड़ा समझते हैं। वे आपकी सेवा भी करते हैं और दक्षिणा भी देते हैं। यद्यपि हम उनकी सेवा करते हैं वे हमें एक भी भेंट नहीं देते। अब और क्या कहें? यद्यपि हमारे और आपका नाम समान ही है जैसे तिरुपति और वेङ्कटेश, लेकिन, हमारे भाग्य असमान हैं।' 'आप क्यों *कासु* पर *कासु* एकत्र किए जाते हो, क्या यह कुल की दरिद्रता का संकेत नहीं है? आप क्यों रिश्वतखोरों का पक्ष लेते हो? आप बडे बडे धनी राजाओं को इस तरह से क्यों संबोधित

करते हो जैसे आप कोई पैसा-उधार देने वाला *कोमटी* (वैश्य) हो, या फिर आपने उन्हें कोई बडा कर्ज दिया हो? आप पहाडी की चोटी पर ही क्यों निवास करते हो, क्या आप शिकारियों जैसे हो? आपके इन सभी व्यवहारों से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप हंसमुख प्रकृति के हो, पर यह मैं समझ नहीं पाता कि आप वास्तव में अपनी कैसी छवि दिखाना चाहते हो? अरे कवियों और कलाकारों के संरक्षक तिरुपति वेङ्कटेश्वर! भगवान वेङ्कटेश्वर। हम आपके सामने नतमस्तक हैं।'

एक बार फिर चेल्लपिल्ल वेङ्कटशास्त्री जुलाई 1936 में अपने 66 वें जन्म दिवस पर अपने मित्रों एवं शिष्यों के कहने से अपनी षष्ठिपूर्ति के उपलक्ष्य में धार्मिक पूजापाठ करवाने के निमित्त वेङ्कटेश्वर स्वामी के दर्शनार्थ अकेले ही गए। तब वहाँ उन्होंने श्रीवेङ्कटेश को संबोधित करते हुए कुछ तेलुगु काव्य पँक्तियाँ प्रस्तुत कीं, यथा - 'इंदिरा पति ने अनेक रमणीय स्थानों के उपलब्ध होने के बावजूद सहर्ष शेषगिरि पर रहना स्वीकार किया क्योंकि वे तेलुगु काव्य के रसिक हैं।' 'ये अद्वितीय देवाधिदेव, जिन्हें *उपनिषदों* ने स्वीकार किया और *आंध्र* लोगों ने जिन्हें 'वेङ्कन्ना' कहा। भक्तों को बचाने के लिए सहर्ष उत्तर देंगे 'आ' जब कोई आर्त 'गो' कहकर पुकारता है।' ऐसे अनेक दृष्टांत हैं कि भगवान ने एक व्यक्ति के मृत पुत्र को जीवित कर दिया; एक नदी के बीच दलदल में फँसी गोमाता जो 'अंबा' कहकर पुकार रही थी उसे किनारे ला दिया; उनमें आस्था रखने वाले शुद्ध हृदय से उनके समक्ष नतमस्तक होते हैं और यह कहते नहीं थकते 'वेङ्कट नायक हमारे पिता हैं।' विद्वानों का कथन है कि 'सत्यलोक' सत-चित्-आनंद का धाम है, भगवान का स्वरूप छहो भुवनों से ऊपर है किन्तु यहाँ पृथ्वी पर यह वेङ्कटेश्वर के रूप में साक्षात् विद्यमान हैं। धरती पर छः गिरिधामों पर बसा विष्णु लोक। *तीर्थयात्री* इस गिरि पर चढने के लिए शीघ्रता करते हैं जिससे कि वे उस समय से पूर्व यहाँ पहुँच जाए जब सूर्य की प्रथम किरणें उनके स्वर्णजटित *गोपुरम्* पर पडती हैं और उसे जगमगाहट से भर देती है। तीर्थयात्री मार्ग में आपस में अपनी अपनी कठिनाइयों की चर्चा करते हैं और यह भी बताते चलते हैं कि किस प्रकार भगवान की अनुकंपा से उनके सारे कष्ट दूर हुए। वे इसी का स्मरण करके जोर जोर से भगवान के गुणानुवाद गायन में लग जाते हैं और सुध-बुध खो देते हैं। इस प्रकार उनके *भक्त* सभी सप्तगिरि तक जा पहुँचते हैं। आपको छोडकर कोई अन्यदेवता नहीं जो इस प्रकार तत्परता से *भक्तों* को इस *कलियुग* में सुनता हो। मैं ने पहले भी एक बार आपके दर्शन किए थे और आज भी मेरा यह परम सौभाग्य है जो मैं आपके दिव्य स्वरूप का दर्शन कर पा रहा हूँ। वृषादीश्वर! हम किस प्रकार, जिद्दी कीट पतंग, पूर्वानुमान लगा सकते हैं कि हमारे भाग्य में क्या लिखा है? आप ही इसे जानते हैं। कृपया, मेरी वन्दना स्वीकार करो और मुझे सदैव आपका दासानुदास समझो। चूकि मैं आपका अनुचर हूँ, इसलिए आपकी कृपा का आधिकारी हूँ। अपनी 66 वीं वर्षगाँठ पर आपने मुझे *दर्शन* देकर उपकृत किया है। यह मेरे

लिए कितना शुभ दिन है! आपके *दर्शन* से मुझे इहलोक में ही प्रसन्नता प्राप्त नहीं हुई है बल्कि परलोक में भी स्वर्ग में मेरा स्थान सुरक्षित हो गया है।

उत्तर भारत से जो तीर्थयात्री आपके दर्शन के लिए आते हैं, वे आपको 'बालाजी' कहते हैं, इससे आप 'शक्ति' (बाला) शक्ति के प्रतीक बन जाते हैं। संभवतः आप मेरे लिए मातृ तुल्य भी हो जाते हैं। आपको बहुत से भक्त 'सुब्रह्मण्यम्' भी कहते हैं अर्थात् फालाक्ष के पुत्र, अग्नि नेत्र युक्त शिव। क्यों भक्त आपको भिन्न भिन्न नामों से पुकारें? आप सबमें हैं और इसमें किसी को क्या संदेह हो सकता है? 'कुछ कहते हैं कि रामानुज ने आपको हरि (विष्णु) के रूप में देखा जबकि यह शिवस्थल (शिव का स्थान) कहा जाता रहा था और शिव का प्राचीन स्थान यहाँ अब तक विद्यमान है। लेकिन मैं नहीं जानता कि यह सत्य है या नहीं। इस विरोधाभास का वेदान्तियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा (जो यह मानते हैं कि *जीवात्मा* और परमात्मा दोनों एक दूसरे के समान हैं व परस्पर पूरक हैं) जो यह मानते हैं कि 'जगन्नास्ति' (यह जगत नहीं है) सूत्र सही है और जिनके लिए प्रत्येक वस्तु 'ब्रह्म' का स्वरूप है? मुझे अपने बचपन में एक 'डोला' (पालना) मिला हुआ था और अब मेरे बुढापे में मुझे एक 'डोली' (पालकी) मिली हुई है। प्राचीन काल से ही ऋषि-मुनि यह कहते आए हैं कि बुढापा बचपन का पुनरागमन है। यह मेरे सामने प्रत्यक्ष हो गया जब मुझे यहाँ तक आपके सामने एक 'डोली' में लाया गया। मेरे प्रपितामह के अनुज भ्राता महान कवि नरसकवि, जिन्हें आप जानते होंगे, ने आपके सम्मान में एक शतक लिखा था जिसका शीर्षक है 'वेङ्कटेश्वर विलासमु' और मुझे गर्व है कि मैं उनका वंशज हूँ। मेरी प्रार्थना है कि आप मुझ पर कृपाकटाक्ष कर कृतार्थ करें।' (पृ.367)

वट्टिपल्ले नरकंठीरव शास्त्रुलु

मेरे मामा, स्वर्गीय पंडित वट्टिपल्ले नरकंठीरव शास्त्रुलु हैं। उन्हें *तर्कालंकारभूषण* का विरुद दिया गया था। उन्होंने श्रीवेङ्कटेश्वर के सम्मान में दो संस्कृत पद लिखे थे। एक पद में 5 छंद थे और दूसरे पद में 9 पद्य थे जिन्हें 'श्रीवेङ्कटेशाष्टकम्' कहा गया। आठ *श्लोकों* के प्रथम अक्षर को यदि एकत्र करके पढा जाए तो अष्टाक्षरी मंत्र 'ओम् नमो नारायणाय' की रचना होगी। वे श्लोक 'तिरुमल श्रीवेङ्कटेश्वर' पत्रिका के खंड 1 संख्या 4 नवंबर 1932 में प्रकाशित किये गये थे।

श्रीवेङ्कटेश्वर स्तोत्रम्

(प्रथम पाँच श्लोकों का समूह)

1. चतुराश्चतुरः सकृत्पुमर्थान
   चतुरोदातुम इवोद्वहन् भुजान् यः

करुणावरुणालयः समिन्धे
फणिशैते शरणंतमाश्रयामः

2. नमस्कमीकुर्मोस नटजन मनोभीष्ट घटना
पतियाम्सम शेष-क्षितिधर-शिरोभूषण मणीम
त्रिलोकी-निर्माण-स्थिति-हरण-लीलासुरशिकम्
श्रियः-कांतं-देवम् सुगुणनिधिम् अस्मत्-कुल - गुरुम्

3. श्रीमद वेङ्कटशैल-शेखर तटे संचारं आतन्वती
निश्कंपां तटितं सदैव दधाति भूयो अमृतं वर्षति,
सौहार्दम् च धनंजये विधदती ध्यातुं तमो-धुनवती,
पुष्याद्वो-नितरां प्रमोद-लतिकां या कापि कादंबिनीम्

4. जयंति श्रीकांत-प्रणय-रसधारा मधुरिपोः
कटाक्षः कारुण्यामृत-जलधि-कल्लोल-निकराः
त्रिलोकी कल्याण-प्रणयन-महाकल्प-विटपाः
श्रित-स्वांत-ध्वांत-प्रशम-करणादित्य-किरणः

5. अहीन-शैलस्थं अहीन-वैभवं महो यदा भाति महोत्सवःसतां
निरंतरं तं निगमंत-गोचरं चिरंतनम् चेतसि चिंतयामहं

श्रीवेङ्कटेशाष्टकम्

नौ श्लोकों का दूसरा समूह

1. ओम्-तत्सदिति निर्देश्यं जगज्जन्मादि-कारणम्,
अनंत-कल्याण-गुणं वंदे श्री वेङ्कटेश्वरम्

2. नातामर-शिरोरत्न-श्रीपदाम्बुजम्
प्रावृषेन्य-घनश्यामं वंदे श्री वेङ्कटेश्वरम्

3. मोहादि-शदरि-व्यूह ग्राहाकुल-महार्णवे,
मज्ञतां तरणीम् न्रीणाम् वंदे श्री वेङ्कटेश्वरम्

4. नाथं त्रिजगतां एकं साधु रक्षण-दीक्षितांम्
श्री शेष-शैल-मयं वंदे श्री वेङ्कटेश्वरम्

5. राजद-राजीव-पत्र श्री-मदमोचन लोचनं
   मंदहास-लसद वक्त्रं वंदे श्री वेङ्कटेश्वरम्

6. यन्-मुखेन्दु-स्मित ज्योत्सना भूयसीम् तमसाम् ततिम्
   विधुनोति प्रपन्नानां वंदे श्री वेङ्कटेश्वरम्

7. नान्तस्य कस्यचिद् वाक्यं शब्दस्यानन्य वाचिनः
   ब्रह्मा-रुद्रेन्द्र-जनकं वंदे श्री वेङ्कटेश्वरम्

8. यद्वक्षः- स्थल-मधास्य बाति श्री-रमापयिनी,
   तटिल्लेखेवाभ्र-मध्ये वंदे श्री वेङ्कटेश्वेरम्

9. वेङ्कटेशाष्टकम् इदं नरकंथिर-वोदितं
   यः पठेत् सततं भक्त्या तस्मै विष्णुः प्रसीदति

इन दो प्रकार के श्लोक बंधों के अतिरिक्त, कवि ने कई अन्य आशु काव्य रचनाएँ की हैं -

1. श्रियं अतनुं तनोत्-वतनु कोटिविलासि-तनुः
   सुतनु समंचितम् दधद उरस्थलं अष्टमलैः
   सततविभावितः परम-हर्षि-महर्षि-कुलैः
   फणिगिरि-शेखरः सुगुण-भूस्तव कोऽपि विभुः

(जनवरी 1933 ई. की 'तिरुमल श्रीवेङ्कटेश्वर' पत्रिका के प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित श्लोक)

2. श्रीमान शेष-गिरींद्र-शेखर-मणिर-वंदारु-चूडामणिः
   दुःख-ध्वांत निरास-वासर मणिस-त्रैलोक्य-रक्षामणिः
   श्रीमत्रय्यबला-शिरोमणिर-उरो-विन्यस्त-कान्तमणिः
   पायान न स तु देवकी-जथरजस-श्रीशोमर-ग्रामणिः

संगीतकार

ताल्लपाक अन्नमाचार्य प्रथम संगीतकार थे जिन्होंने श्रीवेङ्कटेश्वर की प्रशंसा में गीतों *(संकीर्तनों)* की रचना की। उनके पौत्र, चिन्न तिरुमलय्यंगार ने अपनी काव्य कृति 'अन्नमाचार्य चरितमु' में यह उल्लेख किया है कि उनके पितामह अन्नमाचार्य ने 32,000 *संकीर्तनों* की रचना की थी जो श्रीवेङ्कटेश्वर को ही समर्पित थे। वेङ्कटेश्वर के मंदिर में एक छोटी-सी कोठरी में 3000 के लगभग तांबें से बनीं प्लेटों में दोनों ओर तीन-तीन की संख्या में संकीर्तन उकेरे गए हैं। इस प्रकार कुल संकीर्तनों की संख्या लगभग 18,000

ठहरती हैं और इनमें अन्नमाचार्य उनके पुत्र पेद्द-तिरुमलाचार्य और उनके पौत्र चिन्न-तिरुमलाचार्य से लिखे गए *संकीर्तन* भी सम्मिलित हैं। 18,000 *संकीर्तनों* में से 10,000 *संकीर्तन* अन्नमाचार्य के 5,000 पेद्द तिरुमलाचार्य के तथा 3,000 चिन्न - तिरुमलाचार्य के द्वारा लिखे गये माने जाते हैं। बाकी संकीर्तनों का क्या हुआ, यह अज्ञात है। कुछ वर्ष पूर्व मद्रास अभिलेख विभाग ने पता किया था कि कुछ लिखित प्लेटें अहोबल नरसिंह स्वामी के मठ में और कुछ श्रीरंगम् के रंगनाथ स्वामी मंदिर में उपलब्ध हैं। वस्तुतः कुछ ही अहोबल मंदिर में मिली हैं और उन्हें तिरुपति देवस्थानम् में सुरक्षित रखे गये हैं।

वे तेलुगु भाषी *नंदवर* थे अर्थात् *नंदवरीक ब्राह्मण* थे। अपने जीवन को भगवान वेङ्कटेश्वर को अर्पित करने के कारण, उन्होंने स्वयं को *वैष्णव* के रूप में दीक्षित करा लिया और *वैष्णव* नियमों एवं सिद्धान्तों का पालन करने लगे। वे नियम जो *आळ्वार* के पाशुरों में दिए गए हैं और उनकी रीति-नीति के अनुसार हैं और उन्हीं के आधार पर उन्होंने अपने *संकीर्तनों* की रचना भी की। उनके पौत्र ने यह भी उल्लेख किया है कि अन्नमाचार्य ने 'रामायणम' की भी रचना *द्विपद छंद* में तेलुगु में, 'वेङ्कटाद्रि-माहात्म्यम्' की रचना संस्कृत में, 'श्रृंगारमंजरी' और 12 'शतकमुलु' के साथ ही 'श्रृंगारसंकीर्तनलु' 'अध्यात्म संकीर्तनलु' और संकीर्तन लक्षणम्' की रचना संस्कृत में की। किन्तु ये रचनाएँ अब उपलब्ध नहीं हैं।

उनका जन्म 9 मई 1408 ई. को हुआ था और वे 96 वर्ष की भरपूर आयु तक जीवित रहे। 23 फरवरी 1503 ई. को उनका निधन हुआ। 96 वर्षों में 80 वर्ष वे तिरुमल में ही घर बनाकर रहे। सोलह वर्ष की आयु से ही उन्होंने *संकीर्तन* बनाना प्रारंभ किया और उनको वेङ्कटेश्वर के समक्ष गाया करते थे। इस प्रकार तकरीबन 400 संकीर्तन प्रतिवर्ष बनाते गए और इस प्रकार 80 वर्षों में कुल 32,000 की संख्या पूरी हुई। इस काल में उन्होंने अपने *संकीर्तनों* द्वारा भगवान की पूजा आराधना की। जीवन के अंतिम दिन पर उन्होंने अपने पुत्र पेद्द तिरुमलय्यंगार को आदेश दिया कि मेरे बाद तुम कम से कम एक *संकीर्तन* प्रतिदिन भगवान की सेवा में प्रस्तुत किया करो। उनके पौत्र ने 'अन्नमाचार्य-चरितमु' (जीवनी) में कहा है कि प्रारंभ में अन्नमाचार्य अपने गाँव ताल्लपाक में रहते थे और प्रतिवर्ष वेङ्कटेश के *ब्रह्मोत्सवों* में भाग लेते थे। गाँव में लौटकर *संकीर्तन* लिखने में लग जाते थे। संभव है वे तब गाँव में रहने चले गए हों जब उनके पुत्र पेद्द-तिरुमलाचार्य ने उनके स्थान पर मंदिर के 'संकीर्तन-आचार्य' का पद संभाला।

वैष्णव विचारधारा के अनुयायी वनने के बाद उनका श्रीवेङ्कटेश में विश्वास बढता गया और वे मानने लगे कि परिवार के संबंधों को मजबूत करने के लिए, जीवन के उतार-चढाव और कष्टों को दूर करने के लिए केवल वेङ्कटेश्वर पर अडिग आस्था रखना श्रेयस्कर है, हमें उनके समक्ष अपना संपूर्ण

समर्पित कर देना चाहिए और उनका गुणानुवाद गायन करना चाहिए। भगवान के साधक *शंख* तथा *चक्र* जैसे *संकेतों* पर विश्वास करते हैं तथा नामोच्चारण से ही हम भवसागर के कष्टों से मुक्त होते हैं। वे इस बात पर भी जोर देते हैं कि पूर्ण समर्पण तथा भक्ति के द्वारा ही वे पापों से मुक्त करते हैं और शांति व सुख प्रदान करते हैं। वे इसी विधि को सबके लिए कल्याणकारी मानते हैं। उनके पौत्र चिन्न - तिरुवेंगलनाथ ने अपनी कृति 'अन्नमाचार्य-चरित्रमु' की प्रस्तावना में कहा है कि 'अन्नमाचार्य ने हमारे जन्म जन्मान्तर के पापों को दूर कर दिया और आपके निर्मल चरित्र को समझने एवं आपको पाने का मार्ग दिखाया। वह भक्ति मार्ग है। आपकी भक्ति और गुणानुवाद गायन, यदि रामानुज (*वैष्णव* संप्रदाय और *विशिष्टाद्वैत दर्शन*) ने सर्वोत्तम धर्म कहकर उस की व्याख्या की। आप ही वे अपूर्व देव मूर्ति हो और रामानुज हमारे सर्वमान्य *गुरु* हैं। यह ठीक ही होगा कि हम उनके अनुग्रह को स्वीकार करें। आपसे हम विनती करते हैं कि हमारे अनगिनत दोषों को आप विस्मृत करें और हमें अपने चरणों में जगह दें। हमारे दोषों को ठीक करें और हमें सदैव सुरक्षा देने की कृपा करें। अन्नमाचार्य की भक्ति का ख्याल करके और हमारी प्रार्थनाओं पर आप ऐसे ही ध्यान दें जैसे पुत्र पर दयानिधि पिता ध्यान देता हो। ऐसे ही भावनात्मक विचारों का प्रकटीकरण एक अन्य कविता में किया गया है जो इसमें अलग से जोड दिया गया है। अन्नमय्यंगार की 'श्रृंगारमंजरी' में कहा गया है कि अन्नमय्या, वेंकटप्पा का विश्व को प्रदत्त अतुलनीय उपहार हैं। (यह माना जाता है कि अन्नमाचार्य श्रीवेङ्कटेश्वर की *नंदक* (तलवार) के मूर्तिमान स्वरूप थे। यह जो उनका अलंकृत नाम 'नंदवर' है और जिस खानदान में वे पैदा हुए थे वह निश्चित रूप से 'नंदक' या 'नंदकवर' से जुडे थे। ये वेङ्कटेश्वर सदैव सर्वव्यापी हैं। उन्होंने उनके मन में 'आदिनारायण', सर्वव्यापी ईश, आनंदकंद, के बीज रोंपे। वे सनक और सनंदन जैसे अनेक संतों जैसे ही महान कहलाए। अपनी महानता के प्रकटन हेतु उन्होंने अनगिनत कीर्तनों की रचना की। वेङ्कटेश के गुणानुवाद गाते थे। *संकीर्तन* वेदों के भावार्थ को सहजता से अभिव्यक्त करते हैं। अन्नमाचार्य ने श्रीरामानुज का धर्म अपनाया और जीवन पर्यन्त उसका पालन किया और हमारे लिए उन्होंने अनेक देवी देवताओं के बीच श्रीवेङ्कटनाथ की रमणीक प्रस्तुत की।' ऐसा प्रतीत होता है[5] कि इस पद चिन्न तिरुमलाचार्य ने अपनी ओर से जोड दिया होगा।

अपनी भक्ति से उन्होंने वेङ्कटेश्वर के लिए 'कल्याण उत्सव' प्रारंभ कराया और इस उत्सव में उन्होंने लक्ष्मीदेवी को उनके लिए पत्नी रूप में प्रस्तुत किया होगा। इस प्रकार कन्यादान करने के कारण वे

---

5. यहाँ अन्नमय्या का एक संकीर्तन 'वाड वाडल...' जिसमें लेखक का वक्तव्य है, इसलिए नहीं दिया जा रहा क्योंकि संक्षिप्तता को कायम रखना इसका उद्देश्य है।

- गोपी कृष्ण

श्रीवेङ्कटेश्वर के श्वसुर हो गए। आज भी यह उत्सव बडे धूमधाम से मनाया जाता है और अन्नमय्यंगार के वंशज इसे मनाते हैं। अप्रैल 1949 में तिरुपति देवस्थानम् प्रशासन ने 'अन्नमाचार्योत्सवम्' का तीन दिवसीय उत्सव उनके जन्म दिवस पर प्रारंभ किया और प्रतिवर्ष यह उत्सव होता है, जिसमें अनेक संगीतज्ञों द्वारा श्रीअन्नमाचार्य के *संकीर्तनों* का गायन होता है।

अन्नमाचार्य के पुत्र पेद्द-तिरुमलाचार्य, जो अभिलेखों में पेद्द-तिरुमल्लय्या तिरुमलय्यंगार, तिरुमलय्य, तिरुमलाचार्य और तिरुमलार्य- देशिका नामों से पुकारे गये हैं, वे भी अपने पिता के समान एक प्रतिष्ठित विद्वान, दार्शनिक और संगीतज्ञ थे। वे मंदिर के दूसरे 'संकीर्तनाचार्य'थे। अपने पिता के निर्देशानुसार जो उन्हें पिता ने मृत्यु-शय्या पर दिए थे कि वे प्रतिदिन कम से कम एक संकीर्तन श्रीवेङ्कटेश के गुणानुवाद के लिए बनाकर गायें, तदनुसार उन्होंने 'श्रृंगार-संकीर्तनलु' और 'अध्यात्म-संकीर्तनलु', श्रीवेङ्कटेश के लिए लिखे और साथ ही 'हरिवंश काव्य', 'चक्रवाल मंजरी', 'वैराग्य वचनमालिका गीतालु' 'श्रृंगारदंडकमु', 'श्रृंगार-वृत्त- पद्याल-शतकमु', 'उदाहरणमुलु', 'नीतिशीश-शतकमु', 'सुदर्शन-रगल' और एक तेलुगु गद्य रूपान्तर 'भगवद्गीता' का भी प्रणयन किया। उनकी बहिन के पुत्र रेवनूरी वेङ्कटकवि ने अपनी रचना 'शकुंतल परिणयमु' में कहा है कि पेद्द तिरुमलय्या की अतिशय भक्ति और *संकीर्तन* सेवाओं के कारण, श्रीवेङ्कटेश्वर उनसे बहुत प्रसन्न हुए और उनको वरदान दिया कि वे स्वयं उनके परिवार की तीन पीढियों में संतान के रूप में जन्म लेंगे और यह क्रम तिरुमलय्या से प्रारंभ होगा। यह भी वर दिया कि उनकी आने वाली सात पीढियाँ *मोक्ष* को प्राप्त करेंगी। पेद्द-तिरुमलाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र चिन्न-तिरुमलाचार्य ने अपने पिता और पितामह के पद चिह्नों का अनुकरण करते हुए मंदिर में 'संकीर्तनाचार्य' का पदभार संभाला और 'श्रृंगार-संकीर्तनलु' की रचना की। यही नहीं, वेङ्कटेश के गुणानुवाद गायन करते हुए 'आध्यात्म संकीर्तनलु' लिखा। इसके अतिरिक्त 'अष्टभाषा-दंडकमु' और पितामह अन्नमाचार्य रचित संस्कृत कृति 'संकीर्तन लक्षणम्' का तेलुगु काव्यानुवाद प्रस्तुत किया। अपनी बुद्धिमत्ता से सीखी आठ भाषाओं (संस्कृत, शौरसेनी, मागधी और अन्य संबंधित सात भाषाएँ) का उल्लेख 'अष्ट महिषी-कल्याणमु' में किया है जो उनके तीसरे छोटे भाई चिन्न - तिरुवेंगलनाथ (चिन्नन्न के नाम से ख्यात) ने लिखी। उन्होंने कहा कि वे 'चारुतर-अष्ट-भाषा-चक्रवर्ती' (आठ सुंदर भाषाओं के ज्ञाता) के बिरुदु *(उपनाम)* से सम्मानित किए गए थे। यह कृति ताम्र-पत्रों पर अनूदित की गई थी। साथ ही कुछ अन्य कृतियाँ भी थीं और लेखन तिथि का उल्लेख भी कर दिया गया है। यह दिन है - चंद्र मास *मार्ग शिर* की पंचमी, चक्र वर्ष *हेवलंबी,* बुधवार जो अंग्रेजी तिथि क्रम में 7 नवंबर 1537 ई को ठहरता है (और अधिक जानकारी के लिए देव.एपी.रिपोर्ट पृष्ठ 279-302 देखें)।

पुरंदरदास कन्नड भाषा के संगीतज्ञों में से एक हैं, जिन्होंने अपने काव्यत्व एवं संगीत से सबको मंत्रमुग्ध किया। वे पंडरपुर के पांडुरंग-विट्ठल स्वामी के उपासक थे। वे पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में

हुए। ये संगीतज्ञ सामान्यतः 'दासरु' कहे जाते हैं, कन्नड भाषी उन्हें ऐसा ही समझते थे। इन्होंने अधिकतर भगवान विट्ठल की प्रशंसा में गीत गाए। पुरंदरदास ने अन्नमाचार्य की प्रसिद्धि सुनी और वे पंडरपुर से तिरुमल आए। उन्होंने अन्नमाचार्य की प्रशंसा की और उनको वेङ्कटेश्वर भगवान का मूर्त रूप बताया और अन्नमाचार्य ने भी इसी प्रकार संत पुरंदरदास को विट्ठल स्वामी का साकार रूप कहा। अपने मिलन के शुभ अवसर पर, उन्होंने एक गीत बताया। गीत एक ही है किन्तु अपने आराध्य देव को संबोधित करने पर भिन्न लगने लगते हैं। गीत का अंत भिन्न है ही।

पल्लवी : नारायण ते नमो नमो
भव नारद सन्नुत नमो नमो

चरणम् 1: मुरहर नगधर मुकुंद माधव
गरुड-गमन पंकज-नाभ
परम पुरुष भव भंजन ते नमो (केशव)
नर-मृग शरीर नमो नमो

चरणम् 2: जलधि-शयन रवि-चंद्र-विलोचन
जलरुह-भव-नुत-चरण-युग
बलि-बंधन गोवर्धन वल्लभ (धारक)
नलिनोदर ते नमो नमो

चरणम् 3: आदि-देव सकलागम-पूजिता
यादवकुल मोहनरूप
वेदोद्धर तिरुवेंकट नायक
नाद प्रिय ते नमो नमो
[वेदोद्धारक वेंकट-नायक
पुरंधर विट्ठल नमो नमो]

यहाँ अन्नमाचार्य ने तिरुवेङ्कटनायक का आवाहन करते हुए उनको अपना प्रिय देव घोषित किया और पुरंदरदास ने अपने इष्ट देव विट्ठल पंडरपुर का नाम रखकर गीत के रचनाकार के रूप में अपना नामोल्लेख किया।

जब पुरंदरदास ने मंदिर में प्रवेश किया, वहाँ भी उन्होंने कुछ गीत गाए जिनमें श्रीवेङ्कटेश का नखशिख वर्णन, उनकी वेषभूषा और आभूषणों का वर्णन किया और इस प्रकार अपनी अर्चना प्रस्तुत

की। इनमें से एक भजन में उन्होंने कहा, 'कंडे, कंडे स्वामिय बेडिकोंडे' '(मैंने भगवान को देखा और उनकी पूजा की)', 'मैंने देखा तिरुपति वेङ्कटेश के किरीट की करोडों सूर्यों जैसा जगमगा रहा था' - उनके चेहरे की मुस्कान, मस्तक पर *तिरुमणि,* अद्वितीय *शंख, चक्र,गदा,* अब्ज *(पद्म)*, चारों हाथों में और उनके चरण जो संकल्प किए हुए *काणिक* (भेंट) की एक - एक कौडी वसूल कर लेते हैं, नमकीन भोजन करते हैं, *तीर्थ* का विक्रय करते हैं (शुक्रवार के स्नान से एकत्र किए गए जल की बिक्री) और वह भी 20 दुड्डू (सिक्के, 40 पैसे) प्रति सेर, *सर्पशयन* (सर्प अर्थात् शेषशायी भगवान) इष्टदेव के चरणों में, मैं ने यह भी देखा कि श्रीदेवी (लक्ष्मी) उनके हृदय पर विराजी हैं और उनकी अमूल्य *कौस्तुभ* मणि भी। यही नहीं *गरुड, किन्नर,* नारद और अन्य *गंधर्व* भी विद्यमान थे, उनके वरद हस्त *भक्तों* को वर देने की मुद्रा में, शेषशायी भगवान विष्णु शेषगिरि पर्वत पर सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं।' उनका यह गीत *मुखारी* राग और *मट्टे* या *मत्यताल* में निबद्ध है और इन शब्दों से आरंभ होता है - 'कंडे कंडे स्वामिय बेडि कोंडे; कंडे तिरुपति वेङ्कटेशाय..' एक अन्य गीत जिस में *कापी-राग* और *आट-ताल* का प्रयोग है तथा उसकी पल्लवी है - धनिय नोडिदेनो वेङ्कटरमणा धनिया नोडिदे शिखामणि तिरुमलन..' वे जोर देकर कहते हैं कि उन्होंने वेङ्कटगिरि वासी वैभवशाली भगवान के दर्शन किए जो तिरुमल के रत्न हैं जिनके पैरों में स्वर्णजटित *'गेज्जे'* (पायल) हैं, वे *पीतांबर* पहनते हैं, *ओडयान* (तगडी) पहनते हैं जिसमें हीरे जवाहरात जडे हैं। *कौस्तुभ मणि, वैजयन्ती* माला, *भुजकीर्तियाँ,* मस्तक पर घना *तिलक, शंख-चक्र* धारी-शंखध्वनि करते हुए और अपनी बाहुओं से इंगित करते हुए 'यह भू-वैकुंठ (पृथ्वी पर स्थित वैकुंठ) है', *कासु* को ब्याज सहित वसूल करते हुए शरीर से *चंदन* और *कस्तूरी* गंध और शिकारी की तरह इधर उधर दृष्टिपात करते हुए और समस्त ब्रह्मांड के कारणहार हैं।

तीसरे भजन में जो *नवरोजु*-राग और आदि - ताल में निबद्ध है, वेङ्कटरमण को संबोधित करते हैं, '*नंबिदे निन्न-पादवा, वेङ्कटरमण, नंबिदे निन्न पादवा' 'नंबिदे निन्न-पदांबुज-युगल, चंददि सलहो मंदर धरणे* (मैंने आपके चरणारविंद पर भरोसा किया है, मुझे सही मार्ग सुझाओ, हे मंदर पर्वत को उठाने वाले!) उन्होंने कई अन्य गीत भी गाए। *सावेरी-राग* में गाए एक गीत में वे वेङ्कटेश्वर को उसके भक्त के घर जाने को कहते हैं- *'बारय्या वेङ्कट-रमणा भकुतर मनेगे'* और उन्हें उनके *दशावतार* नामों से जैसे आदिकच्छप, मुददिसूकर, सदय नरसिंह और अन्य अनेक नामों से बुद्ध और कल्कि तक, और प्रार्थना की कि भगवान उनके घर आयें। एक अन्य गीत में जो बिलहरी-राग और आदि-ताल में हैं, वे फिर एक बार वेङ्कटेश को संबोधित करते हैं जिन्होंने *दशावतार* ग्रहण कर विभिन्न समयों में लोकों का उद्धार किया है। वे उनको हर पाप धोने की प्रार्थना करते हैं। उन्होंने वहाँ एक लोरी भी गाई थी, ऐसी एक मान्यता है।

इसी प्रकार व्यासराय या व्यासतीर्थ, पुरंदरदास के गुरु जो विजय नगर के सम्राट कृष्णदेवराय द्वारा बहुत माने जाते थे, ने भी वेङ्कटेश को श्री श्रीनिवास कहकर *तोडि-राग* और *रूपक-ताल* में गाया था 'निन्न नोडी धन्य नादेनो, श्री श्रीनिवास....'

अन्य कन्नड दासों ने भी वेङ्कटेश की स्तुति की यथा - *'श्री वेङ्कटेश पालिसो निन्न श्री पाद सेवरद-नडिसो* (नादनामक्रियराग; अर्थात् 'गुरु गोपाल विट्ठल)', *थूशणक - भूषण यदु-भूषण, शेषगिरि-वास, श्री वर वेङ्कटेश'* (कांभोजी, रंग वहल सूचक, वेङ्कटेश, भव-संकट, परि-परिसो, निन्नवरमेनिशो (कम्भोजी श्रीपति, विट्ठल संकेत)।

एक व्यंग्यपूर्ण गीत भी है जिसमें वेङ्कटेश से संबंधित और उन्हें व्यापारियों तथा *लोभी सेठों* जैसा कंजूस मक्खीचूस बताया गया है। किन्तु इस कृति के रचनाकार का नाम ज्ञात नहीं है।

पल्लवी बंदेवय्या गोविंद शेट्टि

अनुपल्लवी हरिवान तीर्थ प्रसाद वुंडेननागे

चरण 1. अप्पवु अतिरस तुप्पवु बिसि-हालु, ओप्पुव हवालक्कि, शुंटि मेनुसु, अपुरूप-वाडे, खज्ञायगळा-नेल्ल, चप्पन्न-देसक्के मारुव शेट्टि

चरण 2. वडद मडिके तंद इडिदु नामव माडि, कोडुवेनु कासिगे ओव्वोंदनु, ओडल तुंबि मिक्का, अन्नव मारिसि, वेदेवे, यगळिसुव, कडु-लोभी-शेट्टि

चरण 3. शेषगिरि-यल्लि यासवागिह- शेट्टि, देशदेशक्के हेसराद-शेट्टि, कासुकासिगे बद्दी, कानिशि-कोंड आदि-केशव-नारायण तिम्म-शेट्टि

अगले ज्ञात त्रिमूर्ति संगीतकार हैं जिन्होंने वेङ्कटेश के गीत गाए हैं - त्यागराजु, मुद्दु-स्वामी दीक्षित[6] और श्यामाशास्त्री। ये 18 वीं-19 वीं शताब्दी में हुए। इनमें त्यागराजु का नाम सबसे अधिक ख्यात है। वे 1759 ई. में पैदा हुए थे और उनके पिता का नाम काकर्ल रामब्रह्मम् और माता का नाम कांतम्मा (या सीतादेवी) था। ये तिरुवारूरु नामक गाँव के निवासी थे। वे बिना किसी आश्रयदाता या किसी अन्य की सेवा लिए 88 वर्ष तक का जीवन जिए और *संन्यासी* के रूप में उनकी मृत्यु 6 जनवरी 1847 ई. को हुई। वे श्रीराम के परम भक्त थे। वाल्मिकि रामायण के 24,000 *श्लोकों* के आधार पर कहा जाता है कि उन्होंने भी 24,000 *कीर्तनों* की रचना श्रीराम भक्ति हेतु की। किन्तु केवल एक हजार के लगभग

---

6. इन्हें मुत्तुस्वामी दीक्षित भी कहा जाता है

- गोपी कृष्ण

ही पद प्राप्त हैं। उन्होंने अनेक अन्य देवी देवताओं पर भी कई गीत बनाए और जब जब उनके मंदिरों में गए उन गीतों का गान किया। उन्होंने एक बार श्रीवेङ्कटेश्वर के भी दर्शन किए और वहाँ दो *संकीर्तन* गाए। साथ ही उन्होंने अपने एक 'घन-राग-पंचकम्' गान में भी उनका उल्लेख किया और गाया - 'साधिंचने ओ मनसा'। *आरभी - राग* में निबद्ध यह गीत काफ़ी प्रसिद्ध हुआ। जब त्यागराज श्रीवेङ्कटेश के मंदिर में पहुंचे, तब दोपहर का समय था। इसलिए उन्होंने यह गीत *मध्यमावती* राग और *आदि-ताल* में गाया -

पल्लवी : वेङ्कटेश निनु सेविंपनु पदि-वेल कन्नुलु गावलेनय्या

अनुपल्लवी : पंकजाक्ष! पालित मुनि-जन-भावुकं-अगु दिव्यरूपमुनु गोन्न

चरण 1. एक्कुव नीवनि दिक्कुलु बोगडग अक्कर-गोनि मदिसोक्कि
कनुगोन, निक्कमु नीवे ग्रक्कुन-ब्रोव तलुक्कनि मेरसे चक्क-तनमु-गल;

चरण 2. एनोमु-फलमो नी-नामामृत-पानमु अनु सोपानमु दोरकेनु,
श्रीनायक! परमानंद! नी-सरि कानानु, शोभायमान-आंध्रुलु-गल;

चरण 3. योगि-हृदय, नीवे गतियनु जन-भागधेय!
वर-भोगीश-शयन! भागवत-प्रिय!
त्यागराज-नुत, नागाचलमुपै बागुग नेलकोन्न!

[त्यागराजु ने कहा, 'हे वेङ्कटेश! आपको समझने और पूजने के लिए दस हजार आँखें चाहिए। आपने जो यह अलौकिक स्वरूप धारण किया है, इसके कारण सभी दिशाओं में आपकी प्रशंसा हो रही है। आप श्रेष्ठ हैं, आराध्य हैं हमारे और हम आपके दर्शनाभिलाषी हैं। आप बिजली की तरह एक क्षण में प्रकट होते हैं। पूर्व कर्मों व पूजाराधना के फलस्वरूप मैंने आपके दर्शनामृत का पान किया। आपके पवित्र नाम का उच्चार करते मैं सीढियाँ चढता चला गया। हमें आपके समान कोई दूसरा नहीं लगता, आपके चरणों में हमें स्थान चाहिए। आप *योगियों* के हृदय में वास करते हो। वे लोग कितने भाग्यशाली हैं जो आपके समक्ष आकर आपके सामने नतमस्तक होते हैं। आदिशेष पर शयन करने वाले *भक्तों* के सहायक आप त्यागराजु द्वारा गुणानुवाद के द्वारा स्मरण किए जाते हैं। हे नागाचल (शेषाचल) पर रहने वाले भगवान! आपको प्रणाम हैं]

एक अन्य कीर्तन में जो *आदि-ताल* तथा *गौलीपंतु-राग* में निबद्ध है, वे तिरुपति के वेङ्कटरमण से प्रार्थना करते हैं कि उनके हृदय से द्वेष का परदा हटा दें क्योंकि यह परदा उन्हें *धर्म* (सद्व्यवहार), *अर्थ* (संपदा, नीति व आध्यात्मिक प्राप्ति) और *मोक्ष* (स्वार्गिक आनंद, सौंदर्य) से दूर कर रहा है -

तिरुपति श्रीवेङ्कटेश्वर

पल्लवी : तेर तीयगराद नालोनि तिरुपति
वेङ्कटरमण मत्सरं-अनु

अनुपल्लवी : परमपरुष धर्म-अर्थ-मोक्षमुल
पारदोलुचुन्नदि नालोनि

चरण 1. मत्स्यमु आकलिगोनि गालमुचे
मग्नमैन रीतिनुन्नदि अद्यमैन
दीप-सन्निधिनि मर-गड्डपडि चेरचिनट्लुन्नदि

चरण 2. इरवोंदग भुजियिंचु समयमुन
ईग दगुलु-रीति-नुन्नदि-हरि-ध्यानमु सेयुवेल
चित्तमु-अन्त्यजु-वाडकु पोयिनट्लुन्नदि

चरण 3. वागुर-यनि तेलियक मृग-गणमुलु
वच्चि-तगुलु रीतिनुन्नदि-वेगमे नि-मतमुन्
अनुसरिंचि त्यागराज-नुत-मद-मत्सरं-अनु

[ओ वेङ्कटरमण (वेङ्कटेश)! तिरुपति वासी, आप मेरे मन पर पडा द्वेष का पर्दा हटा दो, यह मेरे हृदय को *धर्म, अर्थ* और *मोक्ष* प्राप्त करने से रोकता है। हे परम पुरुष! जैसे एक भूखी मछली शिकार के लिए डाले गए कांटे को ही काटने लगती है और इसके फलस्वरूप पकडी जाती है, जैसे एक चमकदार प्रकाश पुंज के मार्ग में कोई बाधा हो, जैसे स्वादिष्ट भोजन ग्रहण करते समय उसमें कोई मक्खी आ गिरे, जैसे हरि नामस्मरण करते समय मन इधर-उधर डोले और जैसे जंगली पशु यह न जाने कि सामने जाल है और व्यर्थ ही गुर्राए। आप चूँकि भक्त वत्सल हैं, इसलिए मेरे मन से मद,मत्सर एवं मान का पर्दा शीघ्र हटाओ]

त्यागराज स्वामी के मित्र, मुद्दुस्वामी दीक्षित का जन्म 1775 ई. में हुआ था। उनकी माता सुब्बम्मा और पिता राम स्वामी दीक्षित थे। सोलह वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने *वेदाध्ययन* पूर्ण कर लिया था। संस्कृत साहित्य अध्ययन के पश्चात् *आयुर्वेद* (भारतीय वैद्यशास्त्र) का अध्ययन भी किया और *ज्योतिष* (भारतीय ज्योतिष शास्त्र) का सम्यक् ज्ञान भी पाया। *मनाली* नामक स्थान पर अध्ययन करते हुए उन्हें एक संत स्वामी चिदंबरनाथ योगी का सान्निध्य प्राप्त हुआ जो उन्हें काशी (बनारस) ले गए और पाँच वर्ष तक अपने शिष्यत्व में रखकर फिर वापिस मनाली भेज दिया। कुछ समय पश्चात् मुद्दुस्वामी दीक्षित तिरुत्तणी नामक स्थान पर गए और उन्होंने *पंच-दश-अक्षरी-मंत्र* का जप करना प्रारंभ किया। यह मंत्र

तिरुत्तणी के सुब्रह्मण्यम् स्वामी का था। एक रात्रि को वे एक वृद्ध *योगी* के रूप में स्वप्न में दिखाई दिए और उन्होंने उनके मुख में कुछ मिश्री रखी जिससे उन्हें क्षण मात्र में ही कविता तथा संगीत का ज्ञान प्राप्त हो गया। तत्क्षण ही वे सुब्रमण्यम् स्वामी के गुणानुवाद गायन में लीन हो गए और पुकार उठे - 'गुरु गुह'। उन्होंने यही अभिव्यक्ति अपनी समस्त संगीत रचनाओं के साथ जोडी। संस्कृत के विद्वान होने के कारण अपनी *कृतियों* में संस्कृत का उपयोग किया, यद्यपि वे अन्य भाषा विद भी थे। उन्होंने 300 *कृतियों* में विभिन्न देवी देवताओं की प्रशंसा की है। उन्होंने केवल 60 वर्ष की आयु पाई और इनका देहांत 1835 ई.में एत्तियापुरम् में हुई।

उन्होंने पाँच गीत श्रीवेङ्कटेश्वर पर लिखे। उनमें से एक गीत *वातीवसंत-भैरवी-राग* (वकुलाभरणम्) और *त्रिपुट-ताल* में निबद्ध है -

[सर्वद्रष्टा वेङ्कटेश्वर का गुणानुवाद गायन किया, वातीवसंतभैरवी (राग) में प्रशंसा की उसकी जो प्रसिद्ध तंज - नगर (तंजावूरु,तंजोर) का वासी है और *गुरु-गुह* (सुब्रह्मण्यम् स्वामी) से सुपरिचित है, *आद्यम्* (आदि ब्रह्म), अनेक संत जैसे वशिष्ठ और वामदेव ने माना है, सुभामिनी अलमेलुमंगा के साथ, संगीतकारों के मुकुट मणि, दया के सागर, *आनंद* से आप्लावित करने वाले, *भक्त वत्सल*)

पल्लवी : प्रसन्न वेङ्कटेश्वरम् भजरे
वातीवसंतभैरवी नुतम

अनुपल्लवीः प्रसिद्ध तंजनगर स्थितं प्रबल
गुरुगुह-वेद्यम आद्यम् - वशिष्ठ
वामदेव-विदितम् - वरालमेलु - मंगाश्रितम्
रसिक शेखरम्-कृपाकरम् रक्षिता भक्तानंद-करम्

यह कीर्तन जो *सुरटि राग, आदि-ताल* में है, वह वेङ्कटेश को 'विनायक-तुरग-आरुढ़म्' प्रस्तुत करता है। विनायक, जो अश्व पर आरुढ़ हैं (विघ्नेश्वर, गणपति) जो चूहे को वाहन बनाकर, गोकर्ण (पुण्य तीर्थ) क्षेत्र में रहकर सभी के पापों को हरने वाला, इस कीर्तन में अलमेलमंगा समेत अश्व पर आरुढ़ हैं।

पल्लवी : श्री वेङ्कटगिरीशम् - आलोकये - विनायक - तुरगारूढम्

अनुपल्लवी : देवेश - पूजित भगवंतम्, दिनकर - कोटि -
प्रकाशवंतम्, गोविंदम्, नट भूसुर -
बृंदम्, गुरुगुहानंदम्, मुकुंदम्;

चरण : अलमेलुमंगा - समेतम्, अनंत - पद्मनाभम् - अतीतम्
कलियुग - प्रत्यक्ष - विभातम्
कंजजादि - देवोपेतम्, जलधर - सन्निभ -
सुंदर - गात्रम्, जलरुह - मित्राब्ज - शत्रु -
नेत्रम्, कलुषापह - गोकर्ण - क्षेत्रम्,
करुणारस - पात्रम् चिन्मात्रम्;

तीसरे गीत में जो *पूर्णचंद्रिका - राग* और *रूपक-ताल* में निबद्ध है, उसमें संगीतज्ञ ने श्रीवेङ्कटेश्वर के चरणारविंद में निम्नवत् श्रद्धा व्यक्त की है -

पल्लवी : शंख - चक्र - गदा - पाणिम् - अहम् -
वंदे श्री शार्ङ्ग - नंदक कौस्तुभ - धारिणम् वंदे;

अनुपल्लवी : पंकेरुह - चरणम् पद्मावती-रमणं
संकटापहरणं - सदा - भक्ताभरणं
कुंकुम पंकिल - गात्रम् पंकज विशाल -
नेत्रम् शंकर - सन्नुति - पात्रम् वेङ्कटः
वरद क्षेत्रम्;

चरण : गजेन्द्र संरक्षणम्
गरुड - वाह - विचक्षणम्
अजेंद्रादि - विलक्षणम्
अमृत - सार भक्षणम्
अजामीलादि - प्रभृत - यनेक - दासादि
संतरणम् भजे पूर्ण - चंद्रि
कांग - गुरुगुहांतः करणम्
कुजादि - गृह - विहितम्
विरजा - नदी - तट - स्थितम्
सजातीयादि - रहितम्
निजानंद - बोध हितम्

चौथे गीत में उन्होंने *वराळि राग* और *रूपक-ताल* में श्रीवेङ्कटेश्वर की महिमा का विवरण प्रस्तुत कियाः

पल्लवी : शेषाचल - नायकं भजामि
विशेष - फलदायकम्

अनुपल्लवी : भाषारमण - प्रभृत - यशेषामर - नुत
कौस्तुभ भूषालंकृता बहुतर -
वेषात्मक - विग्रहम्

चरण : मंदहास - वदनम् -
स्वच्छंद - हृदय - सदनम्
सुंदर - जित - मदनं
मुकुंदम् मधुसूदनम्
अरविंद - पत्र - नयनम्
गोविंदम् उरग - शयनम्
सुर - बृंद - सत्कृताध्ययनम्
नंद - नारायणम्
पुरंदरादि - दिक्पाल
सनंदनादि - मुनि - वरालि
वंदितम् अभिनव गुरुगुह
नंदितमनंत - कीर्तिम्।

पाँचवा गीत *कापी-राग* और *आदि-ताल* में है और इसमें तीन भाषाओं -तेलुगु, कुछ तमिल और कुछ के संस्कृत के शब्द हैं। इसलिए इसे *मणि-प्रवाल-कीर्तन* (अनेक मणि-मुक्ता युक्त) कहेंगे। ब्रह्म एवं अन्य देवताओं के द्वारा प्रशंसित श्रीवेङ्कटेश्वर हमें दुःख से निकालता है। वे हमें अनेक वर और धन देकर सुख-समृद्धि देते हैं। तभी तो लोग *शेषाचल* पर दौडे चले आते हैं जिसने पहले भी अंधों को नेत्र दिए। *गोकर्ण-क्षेत्र* के निवासी वेङ्कटेश ने मृकंडु आदि *मुनियों* को वर दिए जिन्होंने उन्हें रमापति (लक्ष्मी के पति) कहकर संबोधित किया। यही नहीं, उन्हें दयानिधे (दया के सागर), वासुदेव जिनके सामने अनेक *वानर* नतमस्तक हुए, *दीन-रक्षक, पीतांबर धारी* (पीले वस्त्र पहनने वाले), देवाधिदेव (देवताओं के देवता) और वेङ्कटाचलपति भी कहा। वस्तुतः वे गुरुगुह के *मामा* हैं और इनके अन्य नाम हैं - सुब्रह्मण्यस्वामी, कुमारस्वामी, षण्मुख आदि।

पल्लवी : वेङ्कटाचलपते, निन्नु नम्मिति
वेगमे ननु रक्षिम्पुमय्या

अनुपल्लवी : पंकजाक्ष प्रमुखादि विनुत
पादमुन्-आश्रयिंचिन वारिकेल्ल
संकटमुलु - दीर्चि सम्पदलिच्चि
मंगलम् - पोरुंदिय पुरिवरतल
विलंगुम वेङ्कटाचलपते;

चरण : श्रीनिवास शेषाचलमु नुंचि
शीघ्रैवंदु, अंधुनिक-अभीष्ट
दानं - ओसगि, गोकर्ण-क्षेत्रमुलो
नेलकोनि - मृकंडु मुदलान भक्तानाम्
अभय - वरप्रदान चतुरतर रमापते
दयानिधे प्रत्यक्षमुगा निंदमा -
निलत्तिल निन् - महिमै यनेकम् वानर -
वनम्गुम वासुदेवने वांचितार्थ -
फलम् - इच्चि - वरदने दीन-रक्षा
पीतांबर - धर, देवदेव, गुरुगुहन् - मामन् - आन

इन तीन संगीतज्ञों में से श्यामाशास्त्री का जन्म 1763 ई. में त्यागराज के जन्म से चार वर्ष पूर्व तिरुवारूरु ग्राम में हुआ था। उनके माता पिता निस्संतान थे और इसलिए वर्षों तक उन्होंने स्थानीय देवी कामाक्षी देवी की पूजा की। वे श्रीवेङ्कटेश्वर को प्रसन्न करने के लिए प्रत्येक माह के अंतिम शनिवार को कुछ ब्राह्मणों को भोजन खिलाते थे। एक दिन एक ब्राह्मण ने उन्हें एक भविष्यवाणी सुनाई कि एक वर्ष के भीतर ही उनको एक पुत्र होगा और श्याम शास्त्री का जन्म एक वर्ष में ही हो गया। उनका नाम वेङ्कट सुब्रह्मण्यम् रखा गया किन्तु माता-पिता उन्हें प्यार से *'श्याम-कृष्ण'* कहते थे। वे 1827 में 64 वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हुए। उन्होंने विभिन्न रागों में 300 कृतियों की रचना कीं। उन्होंने वेङ्कटेश भगवान पर भी एक कृति की रचना की।

श्याम शास्त्री के द्वितीय पुत्र सुब्बराय शास्त्री (1803-1863) ने वेङ्कटेश पर निम्नलिखित गीत लिखा - *हमीरुकल्याणी*-राग, *आदि-ताल*

पल्लवी : वेङ्कट - शैल - विहारा नीवेगति ब्रोवरादा श्री -

अनुपल्लवी : पंकज - भव सुरपति नुत चरणा -
किंकर - संकुल संकट - हरण श्री -

चरण : विंटिनि ने नी - वरगुण - कथलनु
वीनुलकेंतो आनंदमुग
कंटिनि गिरिनि गोपुरमुल मणिमय -
मंटपमुलनु नी - बंटुड - नैति श्री.....

(ओ वेङ्कटगिरि वासी! आप ही हमारे आधार हो, आप हमें क्यों नहीं बचाते? भगवान जिनके चरणों की पूजा ब्रह्म और इंद्र करते हैं और जो अपने सेवकों के कष्टों का नाश करते हैं? मैं ने आपके बारे में अनेक कथाएँ सुनीं और सुनने के बाद मैं ने तिरुमल जाकर दर्शन भी किए, वहाँ का *गोपुर* व *मंटप* देखा और आपका दास बन गया)।

बाद के कुछ संगीतज्ञों में से कुछ इन तीनों के शिष्य-प्रशिष्य हुए, उन्होंने श्रीवेङ्कटेश की प्रशंसा में गीत, संकीर्तन और संगीत प्रस्तुत किए।

वीणा कुप्पय्यार त्यागराज के प्रत्यक्ष शिष्य थे। वे बाद में मद्रास में ही बस गए। उन्होंने 'पंचरत्नमुलु' (पाँच रत्न) नामक कृतियाँ श्रीवेङ्कटेश्वर के प्रति लिखीं। वे इस प्रकार हैं (प्रो.पी.सांबमूर्ति ने 28-12-1969 के रविवासरीय 'द संडे हिंदू' में यह सूची दी) 1) 'मम्मु ब्रोचु....' *सिंहेंद्रमध्यम-राग* और *आदि-ताल,* 2) 'नन्नु -ब्रोवन्-इक...' *मुखारि-राग और-आदि* ताल, 3) 'सरोजाक्षुनि...' *सावेरी-राग* और *आदि-ताल,* 4) 'नीवेदिक्कनि...' *दरबारु-राग* और *आदि-ताल,* 5) 'बागु मीरगनु-नातो *पलुकगरादा* वादा..' *शंकराभरण-राग* और *रूपक-ताल।* पट्नम् सुब्रह्मण्यय्यर (1845-1902) ने भी कुछ गीत श्रीवेङ्कटेश्वर पर लिखे। उनमें से एक कृति में वे वेङ्कटेश से प्रार्थना करते हैं कि वे उनके पापों को दूर करके उन्हें संरक्षण दें ठीक वैसे ही जैसे उन्होंने गजराज (गजेन्द्र) को बचाया था और जैसे वे अपने करोडों *भक्तों* की आराधना सुनते हैं -

केदार राग और रूपक - ताल

पल्लवी : समयम् - इदे ननु ब्रोव जालमेल तालजाल

अनुपल्लवी : कमल - नाभ श्री रमण कमलासन - नुत - चरित

चरण : करुणतोनु गजराजुनु गाचि -
रक्षिंचिनदि - गाक -
वर पार्थसारथि यनुचु,
वसुधलो बिरुदांकितुडै;
परम भक्त कोट्लकेल्ल वरमुलिच्चि -

ब्रोचिन श्री वरद - वेङ्कटेश नादु - दुरितमेल्ल
दीर्पवय्य :

एक और कृति है - *कदनकुतूहल-राग* और *आदि-ताल*

'रघुवंश-सुधांबुधि-चंद्र.....'

उन्हीं की तीसरी कृति है - *वृंदावनसारंग-राग* और *आदि-ताल*

'सरसीरुहानन श्रीराम...'

चौथी कृति *बिलहरी-राग-मिश्रजाति* और *जम्पु-ताल* में निबद्ध है -

पल्लवी : परि - दान मिच्चिते पालिंतु - वेमो.

अनुपल्लवी : परमपुरुषा श्रीपति नापै नीकु,
करुणगल्गकयुन्न कारणमेमय्य;

चरण : रोक्कम - इच्चुटकु ने, मुक्कंटि -
चेलि गानु, चक्कनि - चेलिनि - योसग
जनक - राजुनु गानु, मिक्किलि सैन्यमिव्व
मार्कंटेन्द्रुड - गानु - अक्कटिकम्
एटुगल्गु, आदि - वेङ्कटेश नीकु

[संभवतः आप मेरी रक्षा करेंगे यदि मैं इसके बदले में कुछ दूँ, ओ परमपुरुष!, लक्ष्मीपति, आप मुझ पर कृपा नहीं कर रहे हैं इसका कारण क्या है? आपको मैं कुछ धन दे सकूँ ऐसा मैं कोई कुबेर का मित्र नहीं जो त्रिनेत्र शिव के मित्र हैं। आपके लिए सौंदर्यमयी कन्या भेंट करने मैं जनक जैसा राजा नहीं। आपको एक बडी सेना ही देने मैं वानरों की नगर किष्किंधा का पति (सुग्रीव) नहीं। फिर क्या कारण है कि आप मेरे प्रति इतना कठोर हृदय रखते हैं?]

पट्नम सुब्रह्मण्यम् अय्यर के शिष्य, श्रीरामनाथपुरम श्रीनिवासय्यंगार ने भी कुछ गीत श्रीवेङ्कटेश के प्रति भक्ति में लिखे और उन्हें 'श्रीनिवास' कहकर संबोधित किया। उनकी एक कृति *केदार-गौल-राग* और आदि-ताल में निबद्ध है -

पल्लवी : सरगुन पालिंप समयमुरा
नीकु, सरि-एव्वरून्नारुरा सरसिज-नेत्र

अनुपल्लवी : वरगुण-शेषाद्रि-वरद -
वेङ्कटेश्वर, वनज-संभव नुत
वरमुलोसगि ननु;

चरण : शर-धृति पूजित गजराजु
मोरलिडग अनुग्रहिंचलेदा, अतिवेत -
जेंदिन परम-भक्तुडगु प्रह्लादुनि
मुनुपे ब्रोवलेदा मन्मथ-जनक
महार्षमुनकु - निकेतन महनीय
श्रीनिवास नीदु सत्-कथलनु विनि निनु
वेडितिनि, मनसु-करिगि नीवु नादु
संकटमुल-दीर्चि

इस गीत में संगीतज्ञ वदर-वेङ्कटेश्वर (इच्छा को पूर्ण करने वाले) से याचना करते हैं कि वे शेषाद्रि पर्वत के निवासी, ब्रह्म द्वारा प्रशंसित हैं और उन्हें वे अवश्य ही संरक्षण व वरदान देंगे, चाहे अभी या समय के आने पर, 'क्योंकि उनके जैसा कोई दयालु नहीं जो संरक्षण दे सके। शर-चाप धारण करने वाले आपने क्या गजराज (गजेन्द्र) की रक्षा नहीं की जब उसने सहायता के लिए चिल्लाया और क्या आपने अपने परम भक्त *प्रह्लाद* को उसके संकट के समय सहारा नहीं दिया? मन्मथ के पिता, दयानिधान, महान श्रीनिवास, मैं आपकी कृपा कथाओं को सुनकर आपके चरणारविंद की शरण में आया हूँ, आप अपने नवनीत समान हृदय से मेरे दुःखी जीवन के दुःख को दूर करके मुझे बचा लें।'

श्री एन.आर.भूवराहन, ने अपने एक आलेख (रविवार हिंदू-पत्रिका, 22 फरवरी 1970), को रामनाथपुरम् श्रीनिवास अय्यंगार पर केन्द्रित करते हुए उन्हें 'पट्नम सुब्रह्मण्यम् अय्यर के माध्यम से त्यागराज का प्रशिष्य घोषित किया।' यह प्रतीत होता है 'श्री वाग्गेयकारुलु' (संगीतकारों) शीर्षक से श्री एका सुब्बारावु ने अपनी पुस्तक 'क्रोत्त-संगीत-विद्या-दर्पणमु' में सुब्रह्मण्य अय्यर का जन्म 1845 ई. को बताया है जो त्यागराज की मृत्यु से दो वर्ष पूर्व का है। इस प्रकार वे त्यागराज के सीधे शिष्य नहीं हो सकते, हाँ यदि वे शिष्य हैं तो त्यागराज के किसी पट्ट शिष्य के हो सकते हैं। इसलिए यह कहना उपयुक्त होगा कि श्रीनिवास अय्यंगार त्यागराज के प्रशिष्य हैं।

तिरुपति के विद्वल नारायण स्वामी नायडु संगीतकार, वायलिन वादक, वीणावादक और *हरिकथाकार* थे। उनका समय 1871 से 1910 ठहरता है। उन्होंने अनेक गीत वेङ्कटेश जी पर लिखे थे। जनवरी 28-1-1973 को हुई एक *सदस* (गोष्ठी) में, जो श्रीत्यागराज-मंटपम् तिरुपति में श्रीत्यागराज उत्सव के

दौरान हुई थी, उसमें संगीत विद्वान विद्यल नरसिंहुल नायडु, नरसिंह स्वामी नायडु के भतीजे को सप्तगिरि संगीत विद्वन्मणि' *उपाधि* प्रदान की गई। संगीत कलानिधि चित्तूर सुब्रह्मण्यम् ने वहाँ नरसिंह स्वामी नायडु के चार संकीर्तन प्रस्तुत किए और बाद में श्रीनरसिंह नायडु ने उन्हें मुझसे लिखवाया। वे हैं -

1) *बेगड - राग* और *आदि - ताल*

पल्लवी : नी-दासुडा ननि वेडिते निर्दयुंडवै ननु ब्रोववेमि

अनुपल्लवी : वेदान्त - शास्त्रमुल नेरुग विविध - पुराणविधुल नेरुग

चरण : करिराजु शास्त्र - निपुणुडनिय कडु-भाग्यशालि कुचेलुडनिय तिरमुग ब्रोचिन-दल्ल-नाडु तिरुपतिपुर-वरद-वेङ्कटेश

2) *सावेरी - राग, आदि - ताल*

पल्लवी : ऐंदु-बोदुर रामा नीवाड येंत वेडुकोन्न सुंतैन दय रादु

अनुपल्लवी : मुंदटीवले भक्तुल ब्रोवलेद - मोहनांग ना मोरालकिम्पवु :

चरण : धीरुड नी-विट्लूरकुन्ना - वेमि देवुडेव्वडो
तेल्पुमा इलन तिरुपतिपुर-वरद-वेङ्कटेश
दिव्यमैन नी-रूपमु जूडक

3) *पुष्पतिलक - राग०, आदि - ताल*

पल्लवी : इकनैन ना मोर विनराद इनकुल - चंद्र इदि समयमुरा

अनुपल्लवी : अकलंक नीवे आधारमनि-आशिंचि-युन्न आदरिंच-वेमि :

चरण : परमदयाकरुड-वनि प्रह्लाद-आदुलु (मुनुपु)
वेड करुणिंचि वेग कापाडलेदा-तिरुपति पुर-वरद-वेङ्कटेश

4) *बलहंस - राग, आदि - ताल*

पल्लवी : इक-नेवरितो विन्नविंतुरा-इनवंशाब्धि - सोम

अनुपल्लवी : शुक-शौनक-सन्नुत राम सुंदराकार ने (निक)

चरण : तेर-चाटगु ई - नर - माम्सपु-तेर देहमुने

नम्मि हरुडे (हरिये) तिरुपतिपुर -
वासुडौ - आत्मये अनि-ने-नेरुग

1) मैं आपके दास होने के नाते आपसे अनुनय करता हूँ, आप मेरे प्रति इतने अनुदार क्यों हैं? आप मेरी रक्षा क्यों नहीं करते? मैं ने न तो *वेदांत-शास्त्र* पढें हैं और न ही *पुराणों* के सिद्धान्तों में मेरी कोई पैठ है। क्या *करि-राजु* (गज श्रेष्ठ) *शास्त्रज्ञ* था? और इसी कारण आपने दौडकर उसकी रक्षा की? क्या कुचेल (सुदामा) धनपति था? इसलिए आपने उसका पक्ष लिया? ओ तिरुपति के वेङ्कटेश आप मेरी सुध कब लोगे और कब वरदान दोगे?

2) राम जी, आपका यह दास, जाए तो कहाँ जाए? आप मुझ पर लेशमात्र भी दया नहीं दिखाते, चाहे मैं कितनी भी विनती करूँ। क्या पहले जैसे अब आप अपने *भक्तों* की रक्षा नहीं करते? मोहनांग! क्यों मेरी प्रार्थना नहीं सुन पा रहे? साहसी भगवान? कृपया मुझे बता दें कि इस भूमि पर कौन भगवान है क्योंकि आप तो टस से मस नहीं हो रहे। (मैं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ) ओ तिरुपतिपुर वरद वेङ्कटेश आपके दिव्य स्वरूप के दर्शन बिना मुझे अन्यत्र चैन कहाँ?

3) कम से कम अब तो आप मेरी प्रार्थना सुन प्रसन्न हो जाइए; ओ चंद्रवंशी चंद्र, यही एक अवसर है। जब मैं आपकी शरण में हूँ, हे भक्त वत्सल! आप ही मेरे आधार हैं, आप मेरे प्रति उदारता क्यों नहीं दिखाते? पहले जब प्रह्लाद और अन्य अनेक भक्तों ने आपसे याचना की तो आपने उन्हें बचाया, ओ तिरुपतिपुर-वरद-वेङ्कटेश?

4) और किसके सामने मैं अपना दुःखडा रोऊँ? ओ चंद्रवंशी चंद्र, राम जिन्हें शुक और शौनक आदि मुनियों ने पूजित किया, हे सुंदर वदन राम? मुझे यह समझ नहीं आता कि मैं मांसल शरीर पर विश्वास रखके तिरुपति वासी को कैसे भूल गया?

[संभवतः कृतिकार का यहाँ 'हरि' (विष्णु) को संबोधन है क्योंकि अनुपल्लवी में 'राम' का संदर्भ है और उनके परिवार को पल्लवी में संबोधित किया है। जैसा अन्य गीतों में होता है, ईश्वर का अर्थ वेङ्कटेश लगाया जाता है। किन्तु दूसरों के द्वारा गायन होने के समय, यह हरुडु (शिव) के रूप में भी परिवर्तित हो जाता है यदि अंतिम ध्वनि को इस प्रकार खींचकर उच्चरित किया जाए। तेलुगु में 'डु' प्रत्यय प्रायः पुल्लिंग का सूचक है। 'वासुडु' को ऐसा ही देखा जाए। इसलिए 'हरिये' यहाँ सही शब्द होगा]

वाराणसी सुब्बराय नामक सज्जन, संभवतः उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तिरुपति वासी थे, ने एक *'मंगलम्'* गीत तेलुगु में लिखा जो श्रीवेङ्कटेश पर है और इसका शीर्षक है - 'श्रीनिवास'। यहाँ वे तिरुपति वेङ्कटेश के दर्शन करने की अपनी उत्कट अभिलाषा को अभिव्यक्त करते हैं। वे रंगमंटप' के

सुंदर स्तंम्भों को देखना चाहते हैं और भगवान का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहते हैं, जिससे उन्हें सुखसमृद्धि और धन-धान्य प्राप्त हो। वे *अभिषेक तीर्थम्* का पान करने के अभिलाषी हैं जो प्रति शुक्रवार मंदिर के बाहर एक बर्तन में एकत्र किया जाता है जो पापहंता है। जो इसका पान करता है वह आध्यात्म शक्ति और कृपा प्राप्त करता है। *'तोमाल सेवा'* और वैभवशाली *'सहस्र नाम अर्चना'* के लिए अनेक अधिकारियों से प्रार्थना करना पडता है और साथ ही *'एकान्त-सेवा'* जो कष्ट और दीनता दूर करती है वह कब ही मिलेगी? अंततोगत्वा 'भवंतु मंगलम् :-'

1) रंगैन-स्तंभाल रमणीयमैनट्टि-रंग-मंटपु-सेवलेन्नटिको श्रृंगारं - ओप्पग सिरुलन-ओसंगेटि श्रीनिवासुनि दय कलुगुटेन्नटिको - स्वामी मंगलम् मंगलम्;

2) अट्लैते पापमुलु ईड्च-पोल्लिंचिन तोट्टि-तीर्थपु-सेवलेन्नटिको अट्टे इट्टे तापमुलन्नी अणचिन स्वामिज्ञान-प्रसादमु कलुगुटेन्नटिको स्वामी मंगलम् मंगलम्;

3) चाल-जनुल-चेत बतिमालि-पडि तोमालसेवा चूचुटेन्नटिको, वालायमुग सहस्र-नाम-पूजा-वैभोगमु चूचुटेन्नटिको-स्वामी मंगलम् मंगलम्;

4) चिंतलन्नि एडबापु-चेयग एकान्त-सेवा चूचुटेन्नटिको इंतटिकि वारणासि सुब्बराय श्रीनिवासुनि दय कलुगुटेन्नटिको - स्वामी मंगलम् मंगलम्:

मेरे मामा स्वर्गीय श्री वट्टिपल्लि नरकंठीरव शास्त्रुलु, एक प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान एवं कवि ने संस्कृत में एक मंगलम् गीत 'शेष भूषण' को 'माधव' कहकर संबोधित किया -

1) अंगद-अंगज-कोटि श्रृंगारधर
दिव्य-मंगलांग संग रंग श्रवनत -
वंगदुत्तिंग वीयुंगत्तुंग भुजंग -
पुंगव भोगो संगैक श्रवण मंगलम्
माधव तव मंगलम् मंगलम्

2) कुंद-कुसुम शरदिंदु शीत-सुधारस
मंद-हसित बृंदा सुंदर - वदन -
आरविंद बृंदारक- वंदित - चरण -
आरविंद कुंद मुकुंद मंगलम्
माधव तव मंगलम् मंगलम्

3) शेष-भूषण बलि- पेषण मुख
सूर दोषण विनुत विभीषण शयन
मेष विशेषो दोष विशेषण भीषण
चरित मंगलम् - मंगलम् माधव
तव मंगलम् मंगलम्

4) शुंठ-शेखर दशकंठ दानवनाथ
कंठ-कानन परि-लुंठन-निपुण
कुंठिताघ नरकंठीरव कवि
कंठीरव नित्य कंठोक्त सुगुण
मंगलम् माधव तव मंगलम् मंगलम्।

* * *

अध्याय - 27

वेङ्कटेश्वर मंदिर में नित्य पूजा विधान

1. प्रातः 3.00 बजे से 3.30 तक - **सुप्रभातम् :** 'सुप्रभातम्', 'स्तोत्रम्' 'प्रपत्ति' और 'मंगलाशासनम्' श्लोकों का वाचन होता है। ताल्लपाक अन्नमाचार्य का वंशज उनके कुछ संकीर्तन गाता है। केवल रु.25/- का टिकट लेकर ही - विश्वरूपसर्वदर्शनम् पा सकते हैं।

2. प्रातः 3.30 बजे से 3.45 बजे तक - **शुद्धि**

3. प्रातः 3.45 से 4.30 तक - **तोमाल सेवा**, भोग मूर्ति के लिए स्नान, पूजा और पुष्पहार सज्जा, साथ ही संकीर्तन व गीत गायन 'प्रबंधम्' से - आमंत्रणोत्सवम् टिकट (200/-) द्वारा हर टिकट पर दो लोगों को ही अनुमति।

4. प्रातः 4.30 से 4.45 तक - **कोलुवु** (दरबार): कोलुवु श्रीनिवास मूर्ति को एक स्वर्ण आसन (कुर्सी/पौढी) पर बिठाया जाता है। उसके ऊपर एक छत्र भी होता है जो कभी मैसूर के महाराज ने भेंट दिया था। मूर्ति को गुड और तिल (भुने हुए) का भोग लगाया जाता है और फिर मंदिर में पिछले दिन हुई आमदनी एवं खर्चा का ब्यौरा पढकर सुनाया जाता है, इसके पश्चात् पंचाग से पहले दिन, उस दिन और अगले दिन का फ़ल (पंचांग श्रवण) पढकर सुनाया जाता है।

5. प्रातः 4.45 से 5.30 तक - **प्रथम अर्चना** (वेङ्कटेश्वर के 1008 नामों से पूजा) सहस्रनाम अर्चना।

6. प्रातः 5.30 से 6.00 - **पहली घंटी** अर्थात् **पहला नैवेद्यम्** (भोग), दो बडे बडे घंटे बजाकर भोजन का भोग लगाने की घोषणा की जाती है, वैष्णव आचार्य पुरुष जीयंगार या उनके सहयोगी द्वारा शात्तुमुर (प्रबंधम् से) गायन होता है और फिर उपस्थितों में 'मात्रा' (दहीचावल) बाँटा जाता है।

7. प्रातः 6.00 बजे से 12.00 बजे दोपहर तक - **सर्वदर्शनम्** (सभी को निःशुल्क दर्शन)।

8. दोपहर 12.00 बजे से 1.00 बजे तक - **दूसरी घंटी - नैवेद्यम् दूसरी बार**। इसके पश्चात् दूसरी अर्चना भगवान के 108 नामों से (एकांतम्, अर्थात्। दूसरे नैवेद्यम् में भोजन-भेंट (चेरुप्पुलु) और भोज्यपदार्थ (पण्यारम् या पालु) की भेंट वेङ्कटेश्वर भगवान को प्राप्त होती है और कुछ भेंट/भोग लगाए गए भोजन में से कुछ प्रसादम् तथा कुछ पण्यारम् लेने के पश्चात् बाकी गृहस्थ (यजमान) को लौटाया जाता है। अब तक यह दूसरी अर्चना भी अर्जितम् (शुल्क जमा करके की गई/सशुल्क) थी अर्थात् लोग इस सेवा के समय टिकट खरीदने पर ही प्रवेश कर पाते थे किन्तु 1970 से इसे एकान्त सेवा ही घोषित किया गया है। देवस्थानम् द्वारा 1971 में पञ्चाँग वर्ष 1971-72 में प्रकाशित

पञ्चाँग के अंतिम पृष्ठ में एक पाद-नोट द्वारा यह घोषणा की गई थी कि जो नित्य अर्चना के लिए (निर्धारित शुल्क 42/- प्रतिवर्ष) एकमुश्त प्रस्तुत करता है और अपने आपको कृतार्थ करना चाहता वही केवल प्रथम अर्चना में शामिल किया जाएगा।

9. दोपहर 1.00 बजे से 7.00 बजे सायं तक - **सर्वदर्शनम्** (यही वह समय भी है जब विभिन्न उत्सव जैसे 'कल्याण-उत्सव' (विवाह), और शोभायात्राएँ, जो गृहस्थ (यजमानों) द्वारा प्रायोजित होती हैं उनका बंदोबस्त किया जाता है)।

10. शाम 7.00 बजे से रात्रि 8 बजे तक - **रात्रि पूजा** (तोमल सेवा, अर्चना और नैवेद्यम्)।

11. रात्रि 8.00 बजे से अर्धरात्रि 12.00 बजे तक - **सर्वदर्शन**

12. 12.30 रात्रि - **एकांत सेवा** (पानुपु सेवा, शयन-सेवा) दर्शनम्-आजिर्तम् (आमंत्रणोत्सवम् 200/- टिकट धारक को प्रवेश) केवल। तरिगोंड वेंगमांबा की आरती उसी थाली से जिसमें दशावतारों की मूर्तियाँ हैं। थाली में मोती जडे होते हैं। काजू तथा दुग्ध का भोग लगाया जाता है। गृहस्थों को वह प्रसाद दिया जाता है, प्रत्येक को एक चम्मच दूध और कुछ काजू के टुकडे दिए जाते हैं। भोग श्रीनिवास मूर्ति, एक छोटी - सी चांदी की मूर्ति, को शयन के लिए वहाँ अर्धमंटप (वह अहाता जहाँ भक्तगण सर्वदर्शन के समय दर्शन करने के लिए खडे होते हैं) में चांदी की जंजीरों के सहारे छत से लटकी हुई शय्या को नीचे लाकर शयन कराया जाता है। वर्ष में ग्यारह महीने भोगमूर्ति को इसी शय्या पर शयन कराया जाता है। धनुर्मास में (15 जनवरी से फरवरी के मध्य तक)) इस पर श्रीकृष्ण शयनित रहते हैं।

इस समय चंदन के साथ कस्तूरी (मस्क) मिलाकर उसे संतरों का आकार देकर दो संतरों को एक चांदी के प्याले में रखा जाता है और इसलिए इसे फलम् कहा जाता है। यह फलम् प्रातःकालीन पूजा तक श्रीवेङ्कटेश्वर के चरणों के पास रखा जाता है और इसमें से चुटकी भर उन भक्तों को दिया जाता है जो विश्वरूपदर्शन के समय उपस्थित रहते हैं।

एकांत सेवा के समय अन्नमाचार्य का एक वंशज भगवान के लिए लोरी गाता है। इस सेवा के समय बडे-बडे स्वर्ण बर्तनों में जल भरकर रखा जाता है और द्वार बंद करने से पूर्व उन्हें अंदर ठीक प्रकार से रख दिया जाता है। अगली सुबह यह जल 'तीर्थम्' (पवित्र जल) या चरणामृत के रूप में एक चांदी की चम्मच से सभी दर्शनार्थियों को दिया जाता है। यह माना जाता है कि इस जल का उपयोग ब्रह्म एवं अन्य देवी देवताओं ने श्रीवेङ्कटेश्वर की पूजा अर्चना के लिए किया।

यह प्रक्रिया प्रति दिन प्रायः इसी प्रकार चलती है किन्तु बुधवार, बृहस्पतिवार और शुक्रवार को इसमें कुछ परिवर्तन-परिवर्धन होता है।

बुधवार को नित्य पूजा का कार्यक्रम वही रहेगा, किन्तु प्रातः 6 बजे से 8 बजे तक सहस्र कलशाभिषेकम् होगा। छोटे - छोटे 1008 चाँदी के घडों में भोग श्रीनिवास को स्नान कराया जाएगा और 8 बजे प्रातः सर्वदर्शन प्रारंभ होता है। बृहस्पतिवार के दिन, पिछले शुक्रवार को पहनाए गए वस्त्र, आभूषण, जो श्रीवेङ्कटेश्वर को सजाए गए थे उनमें से अधिकंश को उतारा जाता है और बस कम वस्त्राभूषण उनके शरीर पर रह जाते हैं। वे एक गोटे लगे मखमली गाउन में होते हैं। इस प्रक्रिया को सड़लिंपु और/अथवा सल्लिंपु (हटाना, ढीला करना) कहते हैं। इसके पश्चात् दूसरी अर्चना जिसमें भगवान के 108 नामों का एकान्त में जप किया जाता है और दूसरी बार नैवेद्यम् भी भेंट किया जाता है। तदुपरांत सुबह 8 बजे से शाम के छः बजे तक तीर्थयात्रियों को 'सर्वदर्शन' के लिए अंदर भेजा जाता है। फिर, संध्या पूजा और नैवेद्यम् के पश्चात् पानकम तथा दाल का भोग होता है, उसके पश्चात्, मूर्ति को पुष्पमालाओं से सजाया जाता है यह आपाद-मस्तक पूर्णरूपेण होता है और इसलिए इसे 'पूलंगि दर्शनम्' कहते हैं। इसके पश्चात् एकान्त वास लगभग 12.30 अर्धरात्रि के बाद होता है।

शुक्रवार प्रातः बहुत सवेरे, सुप्रभातम् गायन के बाद, तोमाल सेवा और अर्चना एकांत में हो जाती हैं और थोडा-सा भोग भी लगा दिया जाता है, तब भगवान के अभिषेक के निमित्त हर वस्तु तैयार की जाती है। पक्का कर्पूर का चूर्ण और केसर भीगी हुई के साथ और उसमें कुछ कस्तूरी और कुछ बूंद तेल को डालकर आलेप तैयार होता है, इसे चंदनम् कहते हैं। सिवेट तेल निकाला जाता है - यह सिवेट के बडे-बडे टुकड़ों को तिल के तेल में मिलाकर और तरलीकृत कपूर डालकर सिवेट तेल के साथ एक लुगदी की तरह बनाया जाता है। सब गंध-सुंगध के उपादान को चांदी के प्यालों में एकत्र करके शोभायात्रा के साथ गाजे बाजे बजाते हुए, ढोल बजाते हुए मंदिर में विमान प्रदक्षिणा की जाती है। जब गेंद के आकार की सिवेट तेल मिश्रित कपूर मिश्रित लुगदी को भगवान के चरणों में रखा जाता है तब वे सभी तीर्थ-यात्री, गृहस्थ और यजमानों को जिन्होंने निर्धारित सेवा शुल्क जमा किया है इन चारों के लिए या इनमें से एक के लिए तथा साथ ही अभिषेक टिकट लेनेवाले आते हैं और श्रीवेङ्कटेश का अभिषेक प्रारंभ होता है।

अभिषेक का कार्यक्रम जल से प्रारंभ होता है, पुरुष-सूक्त तथा प्रबंधम् का स्वस्ति वाचन होता है और फिर, दुग्ध, जल, चंदन युक्त जल, जल, जलयुक्त जाफ़रान (कस्तूरी), और अंत में जल से अभिषेक होता है। जब जाफ़रान युक्त जल, भगवान के शरीर से नीचे बहता है, उसे चांदी के बर्तनों एवं अन्य बडे बर्तनों में एकत्रित किया जाता है। फिर उनके शरीर को एक कपडे से पोंछा जाता है और

सिवेट तेल उनके सिर से चरणों तक लगाया जाता है और थोडा - सा शुद्धि कृत कपूर चूर्ण भगवान की चिबुक से छुआया जाता है। श्वेत नामम् उस चूर्ण के साथ दो भागों में धीरे-धीरे छिडका जाता है। यह थोडा-सा मुख पर भी लगाया जाता है और उसमें कुछ शुद्ध कस्तूरी भी मिला दी जाती है। अगला अभिषेक श्रीलक्ष्मी का होता है जिनकी सुवर्ण मूर्ति एक सुवर्ण जंजीर से भगवान के हृदय पर शीभित होती है। उस समय श्री-सूक्तम् का पठन होता है। अंत में कर्पूर आरती उतारी जाती है।

जब दर्शकगण और आगंतुक निकल जाते हैं, श्वेत नामम् फैलकर सूख जाता है तब भगवान को पीतांबर पहनाया जाता है। सभी कीमती जवाहरात और गहने पहनाए जाते हैं।

सिवेट तेल तथा शुद्धिकृत कपूर को मिलाकर बनाया गया उस लुगदी या पेस्ट का कुछ हिस्सा परंपरागत सेवकों में बाँट दिया जाता है और कुछ अंश गृहस्थों को 'श्रीपादरेणुवु' कहकर दिया जाता है।

कर्पूर चूर्ण को चिबुक से स्पर्श कराने की एक परंपरा चली आई है। कहते हैं एक बार एक भक्त अनंताळ्वार जो रामानुज के शिष्य थे, उन्होंने एक जलाशय खोदने का कार्य प्रारंभ किया। यह जलाशय 'आळ्वार जलाशय' कहा जाता है। यह कार्य उन्होंने अपनी पत्नी के सहयोग से प्रारंभ किया। उन्होंने एक बार देखा कि एक युवक बिना अनुमति के खुदाई करके जमीन से मिट्टी निकाल रहा था जबकि यह कार्य अनंताळ्वार व उनकी पत्नी ही मिलकर करना चाहते थे। वे किसी अन्य का हस्तक्षेप सहन न कर सके और क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपने हाथ में लिए खुदाई के सब्बल को उठाया और उस युवक की ओर फेंका। यह सब्बल युवक की चिबुक पर लगा। युवक अंतर्धान हो गया। बाद में जब भक्तगण मंदिर में पूजा-अर्चना के लिए गए तो उन्होंने देखा कि भगवान वेङ्कटेश की चिबुक से रक्त का प्रवाह हो रहा था। यह देखकर अनंताळ्वार को अपने कृत्य पर बहुत दुःख हुआ, वे कुछ दवा लाए और भगवान की चिबुक पर उसे लगाया जिससे रक्त प्रवाह रुके। इस परंपरा को निभाते हुए, प्रत्येक शुक्रवार को स्नान के उपरान्त श्रीवेङ्कटेश्वर की चिबुक पर शुद्धिकृत कपूर चूर्ण लगाया जाता है।

एकत्रित किया गया जाफ़रान-युक्त जल (आजकल उसमें शुद्धिकृत कपूर भी मिलाया जाता है) जो उनके स्नान के उपरान्त एकत्र किया जाता है वही अभिषेक-तीर्थ (चरणामृत) कहा जाता है। यह अति पवित्र माना जाता है क्योंकि यह जल उनके संपर्क से आया। सुबह 10 बजे से सात बजे शाम तक जो भी तीर्थयात्री सर्वदर्शन के लिए आते हैं उन्हें एक चम्मच भर यह जल आचमन के लिए दिया जाता है। यह गृहस्थों को भी दिया जाता है साथ ही इन्हें सूखे चंदन के छोटे-छोटे टुकडे, श्रीपादरेणु और पण्यारम् भी दिया जाता है। उनको घर लाया जाता है जहाँ वे अपनी तीर्थयात्रा से वापिस आने पर भोज पर अपने मित्रों व रिश्तेदारों को बुलाते हैं, वहाँ यह तीर्थम् प्रसाद इत्यादि को सभी अभ्यागतों में वितरित

किया जाता है। यह तीर्थम् और श्रीपादरेणु घरों में सहेज कर रखी जाती है और घर में पूजा के पश्चात् इनकों बडे आदर के साथ ग्रहण किया जाता है। यही नहीं जिस प्रकार गंगाजल को मरणासन्न व्यक्ति के मुख में डाला जाता है, वैसे ही इन्हें भी डाला जाता है।

अभिषेक और सज्ञा के पश्चात् तोमालसेवा और अर्चना के साथ 108 नाम भगवान के उच्चरित किए जाते हैं। यह कार्य 8.30 प्रातः से 9.30 तक होता है।

तत्पश्चात् 9.30 से 10.00 बजे प्रातः तक श्रीवेङ्कटेश्वर को शात्तुमुर के साथ ही नैवेद्यम् भेंट किया जाएगा।

उसके पश्चात् प्रातः 10.00 बजे से 7 बजे तक सर्वदर्शन (धर्म दर्शनम्) प्रारंभ होता है। रात्रि में तोमाल सेवा और अर्चना होती है जो एकांत में होती है और फिर भोग लगया जाता है। 'एकांत सेवा' - 'आर्जितम्' 12.30 बजे अर्धरात्रि में संपन्न की जाती है।

दर्शन, सेवा और उत्सवों की सूची और उनका शुल्क

आर्जित सेवाओं का समय सारिणी

कर्पूर आरती (एक) एक रूपया

(i) **दर्शन**	**रू. पै.**
1. स्पेशल दर्शन	25.00
2. सुप्रभातम्	25.00

नोट - एक टिकट पर एक ही व्यक्ति को प्रवेश

(ii) **सेवाएँ**	**रू. पै.**
1. आमंत्रणोत्सवम्	200.00
2. पूर अभिषेकम्	500.00
3. गंबूर पात्र	300.00
4. जव्वादि पात्र	200.00
अन्य पात्र :-	
5. जफर पात्र	100.00
6. कस्तूरी पात्र	100.00
7. सहत्र कलश अभिषेकम्	2,500.00

8. तिरुप्पावड	5,000.00
9. कोइल आळ्वार तिरुमंजनम्	1,745.00

मद - 1 - प्रातः काल को, तोमल सेवा और अर्चना में दर्शन के लिए 2 लोग प्रवेश पा सकेंगे, और एकांत सेवा के लिए रात्रि में भी। उन्हें पोंगली प्रसादम् भी दोपहर के नैवेद्यम् के पश्चात् दिया जाएगा।

मद - 2 से 6 - ये केवल शुक्रवार को होंगे। केवल एक टिकट पर एक व्यक्ति के लिए प्रवेश मिलेगा। टिकटधारी को अभिषेकम् के पश्चात् वडा प्रसाद दिया जाएगा।

मद - 7 केवल बुधवार को होगा

मद - 8 केवल बृहस्पतिवार को होगा

ये एक दिन के उत्सव हैं और यजमान को प्रसाद, वडा, अप्पम, दोसा-आदि भोग दिया जाएगा, मद संख्या 7 के लिए ही इनके अतिरिक्त वस्त्र भेंट भी दिया जाएगा।

सामान्य नियम - आरती और दान के लिए एक रूपया अतिरिक्त देना होगा जैसा अवसर व परंपरा के अनुसार देना आवश्यक हो।

(iii) उत्सवम्	**रू. पै.**
1. वसंतोत्सव	2,500.00
2. ऊँजल सेवा	1,500.00
3. ब्रह्मोत्सवम्	750.00
4. कल्याणोत्सवम्	1500.00
5. तेप्पोत्सव	2,500.00
6. सहस्र दीपालंकार सेवा	2,000.00
7. श्री पुष्पयागम्	5,000.00

मद - 1. **वसंतोत्सवम् -** यह उत्सव 3 दिनों के लिए या उससे भी कम दिनों के लिए जैसे टिकटधारी और मंदिर प्रबंधन की सुविधा हो। यजमान को वस्त्र भेंट दिया जाता है।

2. **ऊँजल सेवा -** इसमें गृहस्थ (यजमान) को एक स्वर्ण मुद्रा वस्त्र भेंट दिया जाएगा।

3. **ब्रह्मोत्सवम् -** 6 (छः) लोग ब्रह्मोत्सवम् के लिए प्रवेश पा सकेंगे, उत्सव के मनाने के हर दिन (दो दिन के लिए - दत्तम् दिवस से लेकर) जो सामान्यतः तीन दिन तक मनाया जाएगा या कम दिन के लिए भी जैसी मंदिर व लोगों की सुविधा हो। उत्सव के दिन भक्तों को पोंगल व दोसा का प्रसाद दिया जाएगा। अंत में, वस्त्र भेंट और प्रसाद दिया जाएगा।

4. **कल्याणोत्सवम्** (विवाह-उत्सव) - उत्सव की समाप्ति पर, वस्त्र भेंट परंपरानुसार दिया जाएगा, साथ ही लड्डू, वडा, अप्पम्, दोसे और अन्न प्रसाद होगा। यह प्रतिदिन होगा लेकिन उत्सवों के दिन कल्याणोत्सव नहीं होता। इसमें दस लोगों को प्रवेश की अनुमति होती है। उत्सव के लिए नियत राशि में वह राशि भी सम्मिलित है जो तिरुमल में गृहस्थ के आवास तक प्रसाद इत्यादि को वाहन द्वारा पहुँचाने पर खर्च होता है।

5. **तेप्पोत्सवम् -** (प्लवोत्सव) इसमें गृहस्थ को एक स्वर्ण मुद्रा भी वस्त्र भेंट के साथ दी जाएगी और यह केवल मंगलवार को होता है।

6. यह उत्सव श्रवणा नक्षत्र में प्रतिमाह 4 बजे सायं से 6 बजे सायं तक मनाया जाता है और इसमें भाग लेने के लिए छः लोगों को अनुमति मिलती है।

7. इस समय यह श्रीवारी ब्रह्मोत्सवम् 1981 के अंतर्गत होना विचारणीय है।

(iv) वाहनम्	**रू. पै.**
1. सर्वभूपाल के साथ वज्रकवचम् और आरती	125.00
2. स्वर्ण गरुड, कल्पवृक्ष, महाशेष, सूर्यप्रभा और सर्वभूपाल विशेष तथा आरती	125.00
3. चांदी का गरुड, लघु शेष, चंद्रप्रभा,गज,अश्व वाहनम् सिंह वाहनम्, हंस वाहनम्, और हनुमद् वाहनम् विशेष और आरती	100.00

हर एक उत्सव के उपरान्त हरेक गृहस्थ को एक वडा प्रसाद के रूप में दिया जाएगा।

सामान्य (iii) और (iv) के लिए एक रूपया (1/-) अतिरिक्त और आरती केलिए परंपरानुसार और आवश्यकतानुसार अतिरिक्त देना होगा।

(v) अन्नप्रसादम्	**रू. पै.**
1. दध्योदनम्	75.00
2. पुलिहोरा	75.00
3. पोंगली	100.00
4. चक्केरा पोंगली	100.00
5. शक्करभात	125.00
6. केसरीभात	125.00

7. पायसम्	125.00
8. सीरा	200.00

नोट - नैवेद्यम् के पश्चात् गृहस्थ को जो किसी भी पूजा में भाग लेता है, उन्हें यह प्रसादम् दिया जाएगा।

(vi) पडुल प्रसादम्	**रू. पै**
1. अप्पम	250.00
2. लड्डू	600.00
3. वडा	350.00
4. पोली	250.00
5. दोसा	250.00
6. तेनेतोला	250.00
7. सुकियम्	250.00
8. जलेबी	600.00

नोट - जो इस प्रसादम् की भेंट/भोग में सम्मलित होते हैं, उन्हें भोग के लिए तीस (30) संख्या में यह प्रसाद दिया जाएगा। गृहस्थों को यह प्रसाद अपने बर्तन में लेना होगा।

(vii) नित्यकर्पूर आरती	**रू. पै**
1. नित्यकर्पूर आरती	21.00
2. नित्य नवनीत आरती	42.00
3. नित्य अर्चना	42.00

नोट - पहले वर्ष बर्तन (संकल्प) के रूप में, दो वर्ष के लिए कुल धनराशि का भुगतान करना चाहिए। (1-9-1981 तक संशोधित)

विशेष सूचनाः उपर्युक्त सभी सेवाओं के शुल्क मूल पुस्तक रचने के समय के हैं। आज के शुल्कों का समाचार ति.ति.दे.से प्राप्त किये जा सकते हैं। कुछ तो अवश्य हैं ही।

* * *

अध्याय - 28
श्री वेङ्कटेश सुप्रभातम्
संक्षिप्त नोट

'श्री वेङ्कटेश सुप्रभातम्' के चार खंड (मद) हैं। (1) सुप्रभातम् ('शुभ प्रभात्' प्रार्थना, इसमें कुल 29 *श्लोक* हैं जो भगवान को प्रातः समय, शयन से जगाने के हैं। (2) स्तोत्रम्-(संरक्षक के लिए अनुनय) कुल 11 श्लोक, (3) प्रपत्ति-(भगवान के पवित्र चरणों में समर्पण) कुल 16 श्लोक, (4) मंगलाशासनम् (भगवान के यश, शुभ, गुणानुवाद तथा आशीर्वाद के लिए कामनापूर्ण प्रार्थना) कुल 14 श्लोक - इस प्रकार सुप्रभातम् में कुल 70 *श्लोक* हैं।

इन चारों खंडों से युक्त 'श्री वेङ्कटेश सुप्रभातम्' पुस्तिका देवस्थानम् के विभिन्न 'पूछताछ कार्यालयों' तिरुमल, तिरुपति और सूचना कार्यालयों में कमली कीमत पर उपलब्ध है।

'सुप्रभातम्' में पहले खंड के श्लोक में कौशल्या के पुत्र श्रीराम को संबोधित किया गया है और दूसरे श्लोक में गोविंद (गोपालक कृष्ण जिन्होंने संकट के समय गायों की रक्षा की थी), और कमलापति, विष्णु श्रीलक्ष्मी पति, का उल्लेख है। स्पष्ट है कि श्रीवेङ्कटेश्वर को राम, कृष्ण और विष्णु के रूप में देखा जा रहा है।

तीसरे और चौथे श्लोक में श्रीलक्ष्मी को वेङ्कटेश की सहधर्मिणी, वृषशैल (वृषभाचल, एक पर्वत का नाम) के नाम से संबोधित किया गया है।

अगले चौबीस (24) *श्लोक* वेङ्कटेश्वर को 'शेषाद्रिशेखर - विभो, वेङ्कटाचलपति, वेङ्कटपति, वेङ्कट, वृषाचलपति कहकर सुप्रभात के रूप में समर्पित होते हैं।'

29 वाँ और अंतिम पद यह घोषणा करता है कि जो इस सुप्रभातम् का स्वरवाचन करता है, उसे सबसे उत्तम पद 'परमार्थम्' प्राप्त होती है और सर्वोत्तम वांछनीय स्थिति 'मोक्ष' प्राप्त होती है।

इस स्तोत्रम् में, भक्त प्रथमतः स्वयं को वेङ्कटेश के चरणारविंद में प्रस्तुत कर देता है और कहता है कि वह पूरी श्रद्धा, विश्वास और भक्ति से केवल उन्हें ही चाहता है और वह किसी अन्य देवी-देवता की शरण में नहीं जाना चाहता। दसवें श्लोक में वह यह स्पष्ट भी करता है कि वह अनेक दिवसों की कष्टपूर्ण यात्रा करके उनके दर्शनार्थ तिरुमल आया है और इसलिए वह कृपाकांक्षी है।

वह भगवान को उनके गुणानुवाद गायन के द्वारा यह भी स्मरण कराता है कि वे कितने भक्तवत्सल, दयानिधान हैं।

वह श्रीलक्ष्मी देवी की पूजा प्रार्थना (प्रपत्ति का प्रथम श्लोक) पहले करता है। वह कहता है कि माता श्रीलक्ष्मी, वेङ्कटपति की पूरक हैं और वह 'क्षमा करने वाला' को सहयोग देती है। अपने दो हाथों में कमल थामे उसकी कोमल पंखुडियों के समान कमनीय, कमलासन पर विराजमान या कमलासन में

बैठी, अपने पुत्रों पर वात्सल्य बरसातीं और अन्य विशाल हृदय वालों को दर्शाती और पूजनीय देवी (भगवती) आपको हमारा बारंबार वंदन है। इस प्रकार वंदना के पश्चात्, अगले 15 श्लोकों में भक्त भगवान के चरणारविंद में पूर्ण समर्पण करता है। प्रथमतः प्रशंसा और श्रीलक्ष्मी को संबोधन स्पष्ट है। इस दृष्टि से सार्थक है कि उनकी दयालुता और भक्त की यह इच्छा कि उनके हस्तक्षेप से और उनके पति के कृपा कटाक्ष से भगवान वेङ्कटेश का आशीर्वाद प्राप्त करने में आसानी होगी। यही विचार 16 वें और अंतिम श्लोक के अर्थ में भी प्रतिध्वनित होता है।

प्रपत्ति के 10 वें *श्लोक* में, भक्त-रचनाकार यह घोषणा करता है कि ऋग्वेद में यह स्थापित है कि भगवान विष्णु के चरण ही संसार का सर्वश्रेष्ठ शरणस्थली है और इसकी प्राप्ति के आनंद की तुलना नहीं की जा सकती। वे यहाँ फिर एक बार उल्लेख करते हैं कि भगवान की हथेलियाँ भी उसी प्रकार मधु के स्रोत हैं और इसी कारण भक्त उनके चरणों में समर्पित होता है। 11 वें श्लोक में, वे आगे कहते हैं कि उनके चरणों को पकडकर ही अर्जुन ने पार्थसारथी के रूप में से प्रस्तु त भगवान ज्ञान को प्राप्त किया और इस पूर्ण समर्पण के महत्व को एक बार फिर स्वीकार किया। जो भगवान को समर्पित होता है, उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं। 'मंगलाशासनम्' के 9 वें श्लोक में वे *मंगलम्* कहते हुए श्री वेङ्कटेश के चरण कमलों एवं वरद हस्तों को भक्त की एकमात्र शरण स्थली घोषित करते हैं।

इन *श्लोकों* का सार यही है कि भगवान वेङ्कटेश उस भक्त पर अवश्य अनुकंपा करेंगे जो उनके समक्ष पूर्ण समर्पण कर देता है।

'मंगलशासनम्' का आठवाँ श्लोक घोषणा करता है कि अनंत काल तक वेङ्कटेश के दर्शन करने वालों की टकटकी उनकी तरफ लगी रहती है और वे ऐसी (अतृप्त्यामृत रूपाय) अतृप्त लालसा भरी दृष्टि से उन्हें निहारते रहते हैं कि इसका वर्णन करना असंभव है। एक बार कुछ समय देखकर फिर बार-बार देखते हैं। वे भगवान के सम्मुख सदा सर्वदा के लिए खडे रहना चाहते हैं और बस उनके मुखारविंद को उनके आपाद मस्तक शरीर को देखते रह जाते हैं मानों किसी ने कोई जादू कर दिया हो। सामान्य रूप से यह अनुभव प्रत्येक तीर्थयात्री को होता है जो बार बार पीछे मुड मुड कर देखते जाते हैं, जब तक वे *बंगारु वाकिलि* (गर्भगृह का बाहरी प्रवेश द्वार) तक नहीं पहुँच जाते। जब तक वे देख सकते हैं, देखते जाते हैं, क्योंकि वे भगवान के सामने पहुँचने पर वहाँ से तुरंत आगे बढा दिए जाते हैं। श्रीवेङ्कटेश के सौंदर्य और उनके नखशिख के सुगठन की इतनी शोभा व प्रबल आकर्षण है कि 16 वीं शताब्दी के एक, प्रसिद्ध तेलुगु कवि ने अपने काव्य में इसी प्रकार का उल्लेख किया है। (देखें पुस्तक का पृष्ठ 361)

* * *

अध्याय - 29

श्रीवेङ्कटेश-अष्टोतर-शत-नामः

(श्रीवेङ्कटेश के एक सौ आठ नाम और उनकी पूजा)

मुनिवृंद ने श्रीवेङ्कटाचल की महान और गौरवशाली कथा तथा श्री वेङ्कटेश के बारे में सूत महामुनि से विस्तारपूर्वक सुना तो उनके मन में यह भावना जागृत हुई कि यह जाना जाए कि पहले इनकी पूजा किसने की। सूतमुनि ने उत्तर दिया कि बहुत समय पहले महर्षि कपिल ने इनकी पूजा की और इसमें भगवान के 108 नामों का उच्चार किया। ये नाम गुप्त रखें जाते हैं और हर किसी को या सबको इन्हें नहीं बताया जाता।

इन नामों से भगवान वेङ्कटेश की पूजा करेंगे, तो लंबी आयु, धन और सुख-समृद्धि भक्तों को प्राप्त होगी, इसमें संदेह नहीं।

नामोच्चार से पूर्व, उसे निम्नलिखित मंत्रों को पढना चाहिए -

अष्टोत्तरशतस्यास्य ऋषिः
ब्रह्मा, छंदो अनुष्टुः ब्रह्मः
हृदयः वेङ्कटेशः

ध्यानम्

1. श्रीमान् शेष गिरींद्र शेखर-मणिर -
   वंदारू-चूडामणिः
   दुःख-ध्वांत-निरास-वास-रमणी -
   स्त्रैलोक्य-रक्षा-मणिः
   श्रीमत्रैय्यबला-शिरोमणि-रुरो -
   विन्यस्त-कान्तामणिः
   पायान्नस-सतु-देवकी-जठरजस्-
   श्रीषोमर-ग्रामणिः
2. वंदे श्रीनयनोत्पलस्य-शशिनम्
   शेषाचलाधीश्वरम्

ब्रह्माद्यर्चित-पादपद्म-युगलम्
लोकैक-नेत्रोत्सवम्
वाशिष्ठैस्सनकादिभिर- मुनिगणैस्-
संसेव्यमानं सदा
भक्तानाम्-अखिलेष्ट-दायिनम्
अहं श्री वेङ्कटेशम् गुरुम्

3. भास्वच्-चंद्रम-असौ-यदीय -
नयने भार्या-यदीया रमा
यस्माद्विश्व-श्रृदष्य भू-द्यमिकुलम्
यद्ध्यान-युक्तं सदा
नथो यो जगतां नगेंद्र दुहितुर -
नाथोपि यद्-भक्ति माम
स्तातो यो मदन्स्य यो दुरितहा तम
वेङ्कटेशम् भजे

4. ऊर्ध्वौ हस्तौ यदीयौ सुर-रिपु -
दलने बिभ्रतौ शंख-चक्रे
सेव्या-वंघ्री स्वकीया-वभिदधदरो
दक्षिणो-यस्य पाणिः
तावन-मात्रम् भवाब्धिम् गमयति
भजता मूरुगो वाम पाणिश -
श्रीवत्सांकश्च लक्ष्मी-र्यदुरसि
लसतस-तम भजे वेङ्कटेशम्
नील-गो-क्षीर-सम्भूतः-बीजम् ;
श्रीनिवासः - शक्ति : ;
वेङ्कटाधिपः - हृदयम्.

[शरीर के विभिन्न अवयवों को छूते हुए जब इन मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, तब इन तीन अंगों को छूना होगाः गुप्त अंग, दो पंजे और बायाँ हिस्सा (ठीक हृदय की ओर)]

इसके बाद वेङ्कटेश्वर के 108 नामों का पठन करना होगा -

तिरुपति श्रीवेङ्कटेश्वर

1. ओम् वेङ्कटेशाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
2. ओम् शेषाद्रि-निलयाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
3. ओम् वृष-द्रग्गोचराय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
4. ओम् विष्णवे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
5. ओम् सदंजन-गिरीशाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
6. ओम् वृषाद्रिपतये	श्री वेङ्कटेशाय नमः
7. ओम् मेरु-पुत्र-गिरीशाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
8. ओम् सरस-स्वामि ततीजुशे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
9. ओम् कुमारकल्प सेव्याय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
10. ओम् वज्रि-दृग विषयाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
11. ओम् सुवर्चला-सुतन्यस्त-सैन्यापत्य-भराय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
12. ओम् रामाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
13. ओम् पद्मनाभाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
14. ओम् सदा वायु स्तुताय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
15. ओम् त्यक्त-वैकुंठ-लोकाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
16. ओम् गिरि-कुंज-विहारिणे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
17. ओम् हरि-चंदन-गोत्रेंद्र-स्वामिने	श्री वेङ्कटेशाय नमः
18. ओम् शंख-राजन्य-नेत्राब्ज-विशयाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
19. ओम् वसू-परिचर-त्रात्रे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
20. ओम् कृष्णाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
21. ओम् अब्धि-कन्या-परिश्वक्त-वक्षसे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
22. ओम् वेङ्कटाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
23. ओम् सनकादि महायोगि पूजिताय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
24. ओम् देवजित प्रमुखानंत-दैत्य संघ-प्रणाशिणे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
25. ओम् श्वेत-द्वीप-वसन-मुक्त-पूजितंघ्रि युगाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
26. ओम् शेष-पर्वत-रूपत्व प्रकाशन पराय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
27. ओम् शानु-स्थापित-तारक्ष्याय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
28. ओम् तार्क्ष्याचल-निवासिने	श्री वेङ्कटेशाय नमः
29. ओम् मायागूढ-विमानाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः

30. ओम् गरुड-स्कंध-वासिने श्री वेङ्कटेशाय नमः
31. ओम् अनंत-शिरशी श्री वेङ्कटेशाय नमः
32. ओम् अनंताक्षाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
33. ओम् अनंत-चरणाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
34. ओम् श्रीशैल-निलयाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
35. ओम् दामोदराय श्री वेङ्कटेशाय नमः
36. ओम् नीलमेघ-निभाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
37. ओम् ब्रह्मादि-देव-दुर्देश-विश्व-रूपाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
38. ओम् वैकुंठागत-सद्धेम-विमानांतर-गताय श्री वेङ्कटेशाय नमः
39. ओम् अगस्त्याभ्यर्थिताशेषजन-द्रग्गोचराय श्री वेङ्कटेशाय नमः
40. ओम् वासुदेवाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
41. ओम् हरये श्री वेङ्कटेशाय नमः
42. ओम् तीर्थ-पंचक वासिने श्री वेङ्कटेशाय नमः
43. ओम् वामदेव प्रियाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
44. ओम् जनकेष्ट-प्रदाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
45. ओम् मार्कन्डेय-महातीर्थ-जात-पुण्य-प्रदाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
46. ओम् वाक्पति-ब्रह्म-दात्रे श्री वेङ्कटेशाय नमः
47. ओम् चंद्र-लावण्य-दायिने श्री वेङ्कटेशाय नमः
48. ओम् नारायण-नगेशाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
49. ओम् ब्रह्म-क्लुप्तोत्सवाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
50. ओम् शंख-चक्र वरा-नम्र-लसत-करतलाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
51. ओम् द्रवन-मृग-मदासक्त-विग्रहाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
52. ओम् केशवाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
53. ओम् नित्य-यौवन-मूर्तये श्री वेङ्कटेशाय नमः
54. ओम् अर्थितार्थ प्रदात्रे श्री वेङ्कटेशाय नमः
55. ओम् विश्व-तीर्थाघ-हारिणे श्री वेङ्कटेशाय नमः
56. ओम् तीर्थ-स्वामि-सरस-स्नात-जनाभीष्ट-प्रदायिने श्री वेङ्कटेशाय नमः
57. ओम् कुमार-धारिकावास-स्कंदाभीष्ट-प्रदाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
58. ओम् जानुदघ्न-समुद्भूत पोत्रिणे श्री वेङ्कटेशाय नमः

59. ओम् कूर्म-मूर्तये	श्री वेङ्कटेशाय नमः
60. ओम् किन्नर-द्वंद्व-शापान्त-प्रदात्रे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
61. ओम् विभावे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
62. ओम् वैखानस-मुनि-श्रेष्ठ-पूजिताय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
63. ओम् सिंहाचल-निवासाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
64. ओम् श्रीमन-नारायणाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
65. ओम् सद्-भक्त-नीलकंठार्च्य नृसिंहाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
66. ओम् कुमुदाक्ष-गण-श्रेष्ठ-सैन्यापत्य-प्रदाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
67. ओम् दुर्मेधः प्राण हर्त्रे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
68. ओम् श्रीधराय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
69. ओम् क्षत्रियांतक - रामाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
70. ओम् मत्स्य-रूपाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
71. ओम् पांडवारि-प्रहर्त्रे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
72. ओम् श्रीकराय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
73. ओम् उपत्यका-प्रदेशस्थ-शंकरध्यात-मूर्तये	श्री वेङ्कटेशाय नमः
74. ओम् रुक्माब्ज-सरशीकूल-लक्ष्मी-कृत-तपस्विने	श्री वेङ्कटेशाय नमः
75. ओम् लसल्लक्ष्मी-करांभोज-दत्त-कल्हारकस्रजे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
76. ओम् सालग्राम निवासाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
77. ओम् शुक-दृग्गोचराय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
78. ओम् नारायणार्थिताशेष-जनदृग्विशयाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
79. ओम् मृगयारसिकाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
80. ओम् वृषभासुर-हारिणे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
81. ओम् अंजनागोत्रपतये	श्री वेङ्कटेशाय नमः
82. ओम् वृषभाचल-वासिने	श्री वेङ्कटेशाय नमः
83. ओम् अंजना-सुत दात्रे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
84. ओम् माधवीयाघ-हारिणे	श्री वेङ्कटेशाय नमः
85. ओम् प्रियंगु-प्रिय-भक्षाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
86. ओम् श्वेतकोल-वराय	श्री वेङ्कटेशाय नमः
87. ओम् नील-धेनु-पयोधाराशेक-देहोद्भवाय	श्री वेङ्कटेशाय नमः

88. ओम् शंकर-प्रिय - मित्राय श्री वेङ्कटेशाय नमः
89. ओम् चोल-पुत्र-प्रियाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
90. ओम् सुधर्मिणी-सुचैतन्य-प्रदात्रे श्री वेङ्कटेशाय नमः
91. ओम् मधु-घातिने श्री वेङ्कटेशाय नमः
92. ओम् कृष्णाख्य-विप्र-वेदान्तदेशिकत्व प्रदाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
93. ओम् वराहाचल-नाथाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
94. ओम् बलभद्राय श्री वेङ्कटेशाय नमः
95. ओम् त्रिविक्रमाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
96. ओम् महते श्री वेङ्कटेशाय नमः
97. ओम् हृषिकेशाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
98. ओम् अच्युताय श्री वेङ्कटेशाय नमः
99. ओम् नीलाद्रि-निलयाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
100. ओम् क्षीराब्धि-नाथाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
101. ओम् वैकुंठाचल-वासिने श्री वेङ्कटेशाय नमः
102. ओम् मुकुंदाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
103. ओम् अनंताय श्री वेङ्कटेशाय नमः
104. ओम् विरिंचाभ्यर्थितानीत-सौम्य-रूपाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
105. ओम् सुवर्ण-मुखरी-स्नात मनुजाभीष्ट-दायिने श्री वेङ्कटेशाय नमः
106. ओम् हलायुध-जगत-तीर्थ-समस्त-फलदायिने श्री वेङ्कटेशाय नमः
107. ओम् गोविंदाय श्री वेङ्कटेशाय नमः
108. ओम् श्रीनिवासाय श्री वेङ्कटेशाय नमः

ओम् शांति शांति शांतिः